भारतीय साहित्य रत्नमाला

सत्यमेव जयते

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,

शिक्षा तथा युवक सेवा मंत्रालय,

भारत सरकार

भारतीय साहित्य रत्नमाला

राष्ट्रीय गांधी जन्मशताब्दी समिति की राष्ट्रीय
एकता उपसमिति, के निश्चयानुसार विभिन्न
मान्य विद्वानों द्वारा चयन की हुई
भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि
रचनाओं का संकलन

सत्यमेव जयते

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,

शिक्षा तथा युवक सेवा मंत्रालय,

भारत सरकार

© भारत सरकार

प्रथम संस्करण
1970

मूल्य : 16 रुपए

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा एवं सेवा मंत्रालय,
भारत सरकार द्वारा प्रकाशित तथा राकेश प्रेस, अज़ीजगंज,
दिल्ली-6 द्वारा मुद्रित ।

दो शब्द

पिछले पांच हजार वर्षों में विभिन्न जातियों और धर्मों के लोग भारत में आए और इसे अपना घर बनाकर यहाँ बसते रहे। विभिन्न मतों और सम्प्रदायों के लोग दीर्घकाल तक प्रेमपूर्वक साथ-साथ रहे। अपनी विविध मान्यताओं और रीतिरिवाजों में अगाध श्रद्धा और आस्था रखते हुए भी आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की एक प्रबल धारा में सब एक साथ अवगाहन करते रहे। इसी कारण विविध सम्प्रदायों और जातियों के संत और महात्मा समान रूप से सभी सम्प्रदायों और समुदायों के सम्मान-भाजन बने रहे। उपासना और पूजा के विविध रूपों में ब्रह्म-साक्षात्कार एवं आत्म-दर्शन की तीव्र अभिलाषा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती रही। इस प्रकार इस विशाल देश के विभिन्न भागों के निवासियों के विविध क्रिया-कलापों एवं गतिविधियों के हर पहलू में अन्तर्निहित एक अविच्छिन्न एकता का दर्शन होता रहा। इसमें संदेह नहीं कि विगत कई सौ वर्षों में राजनीतिक उथल-पुथल के फलस्वरूप एकता की यह धारा अवरुद्ध अवश्य हुई परन्तु तिरोहित नहीं हो पाई; त्रिवेणी की तरह अन्तःसलिला होकर बराबर बहती रही।

अपने जीवन-काल में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इस एकता का शुभ दर्शन भारतीयों को ही नहीं कराया, अपितु देश-देशान्तर के निवासी भी उनके ऐक्य-दर्शन से प्रभावित हुए।

गांधी जी की जन्मशताब्दी पर भारत की विविध भाषाओं के साहित्य में इसी आन्तरिक एकता की झांकी प्रस्तुत करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय गांधी जन्मशताब्दी समिति की राष्ट्रीय एकता उपसमिति ने एक संकलन प्रकाशित करने का निश्चय किया। परिषद् ने यह प्रस्ताव भी किया कि उक्त संकलन का हिन्दी-संस्करण शिक्षा एवं युवक सेवा मंत्रालय के अधीनस्थ कार्यालय, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, द्वारा प्रकाशित किया जाय।

इसी निश्चय के फलस्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणयन का कार्य आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष डा० बाबूराम जी सक्सेना के कार्यकाल में आरम्भ हुआ था और अब यह परिपूर्ण रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। हिन्दी-संस्करण द्वारा हम राष्ट्रीय एकता का संदेश एक विशाल जनसमुदाय तक पहुँचाने में समर्थ होंगे।

कृष्णदयाल भार्गव
अध्यक्ष

भारतीय साहित्य रत्नमाला

(क) मूल सामग्री चयनकर्त्ता विद्वान्

1. **अंग्रेजी** प्रो॰ के॰ आर॰ श्रीनिवास अयंगार, भूतपूर्व उपकुलपति, आंध्र विश्वविद्यालय, वालटेयर।

2. **असमिया** डा॰ महेश्वर नियोग, जवाहरलाल नेहरू प्रोफेसर, गोहाटी विश्वविद्यालय, गोहाटी।

3. **उड़िया** अध्यापक वेणुधर राउत, अध्यक्ष, उड़िया विभाग, बी॰ जे॰ बी॰ कालेज, भुवनेश्वर।
श्री पतित पावन परिड़ा (सहयोगी)

4. **उर्दू** श्री जिया-उल-हसन फारुकी, प्रिंसिपल, जामिया कालेज, दिल्ली।

5. **कन्नड़** प्रो॰ आर॰ एस॰ मुगलि, कन्नड विभाग अध्यक्ष, बंगलौर विश्वविद्यालय, वंगलौर।

6. **कश्मीरी** प्रो॰ जे॰ एल॰ कौल, श्रीनगर।

7. **गुजराती** श्री चन्द्रकांत मेहता, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, गुजराती विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

8. **तमिल** डा॰ टी॰ पी॰ मीनाक्षी सुन्दरन् पिल्ले, कुलपति, मदुराई विश्वविद्यालय।
(श्री आर रंगाचारी—ऐतिहासिक समीक्षा)

9. **तेलुगु** डा॰ डी॰ वेंकटावधानी, अध्यक्ष, तेलुगु विभाग, उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

10. **पंजाबी** पंजाबी विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री कृपाल सिंह नारंग द्वारा गठित समिति
डा॰ दर्शन सिंह मैनी, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला—ऐतिहासिक समीक्षा।

11. **बंगला** श्री आर॰ के॰ दास गुप्ता, अध्यक्ष, आधुनिक भारतीय भाषा-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

12. **मराठी** डा० डी० वी० पटवर्धन, अध्यक्ष, मराठी विभाग, भवन का एम० एम० कालेज आफ़ आर्टस एंड साइंस, अंधेरी, बम्बई-58।

13. **मलयालम** प्रो० पी० के० नारायण पिल्ले, मलयालम प्रोफेसर तथा डीन, प्राच्य अध्ययन संकाय, केरल विश्वविद्यालय, त्रिवेन्द्रम।
(श्री के० के० नायर, सम्पादक, इंडियन एण्ड फारेन रिव्यू-ऐतिहासिक समीक्षा)

14. **संस्कृत** डा० वी० राघवन्, संस्कृत प्रोफेसर, मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास।

15. **सिंधी** श्री एन० आर० मलकाणी, सर्वेंट्स आफ दी पीपुल्स सोसाइटी, दिल्ली।

16. **हिन्दी** डा० नगेन्द्र, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

भारतीय साहित्य रत्नमाला

प्रधान सम्पादक :

श्री कृष्ण दयाल भार्गव
अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

सम्पादक :

डा० रघुनाथ प्रसाद
प्रधान अनुसंधान अधिकारी

श्री श्याममोहन श्रीवास्तव
वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी (ग्रंथ निर्माण)

श्री दशरथ श्रोत्रिय
वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी (पांडुलिपि)

अन्य सहायक :

डा० जगदीश प्रसाद गुप्त
अनुसंधान सहायक

श्री ठाकुर दास
अनुसंधान सहायक

श्री सत्यपाल
अनुसंधान सहायक

श्री सुरेंद्र अरोड़ा
अनुसंधान सहायक

श्रीमती सुमन शर्मा
अनुसंधान सहायक

श्री सुधीर कुमार
अनुसंधान सहायक

भारतीय साहित्य रत्नमाला

(ख) हिन्दी भाषांतरकार विद्वान्

1. अंग्रेजी	श्री बालकृष्ण राव
2. असमिया	श्री नवारुण वर्मा
3. उड़िया	श्री शान्ति प्रसाद अग्रवाल
4. उर्दू	डा० गोपीनाथ अमन
5. कन्नड़	डा० हिरण्मय
6. कश्मीरी	श्री शंभुनाथ भट्ट हलीम
7. गुजराती	श्री राजीव सक्सेना
8. तमिल	डा० एन० वी० राजगोपालन्
9. तेलुगु	श्री हनुमच्छास्त्री अयाचित
10. पंजाबी	डा० महीप सिंह
11. बंगला	श्री भवानी प्रसाद मिश्र
12. मराठी	डा० प्रभाकर माचवे
13. मलयालम	डा० (श्रीमती) रत्नमयी देवी दीक्षित
14. संस्कृत	डा० सत्यकाम
15. सिन्धी	श्री मोतीलाल जोतवाणी

विषय-सूची

1. **अंग्रेजी साहित्य**
   (क) ऐतिहासिक समीक्षा प्रो० के० आर० श्रीनिवास अयंगार 1
   (ख) चयन वही 12
2. **असमिया साहित्य**
   (क) ऐतिहासिक समीक्षा डा० महेश्वर नियोग 71
   (ख) चयन वही 83
3. **उड़िया साहित्य**
   (क) ऐतिहासिक समीक्षा श्री वेणुधर राउत 127
   (ख) चयन वही 142
4. **उर्दू साहित्य**
   (क) ऐतिहासिक समीक्षा श्री जिया-उल-हसन फारुकी 181
   (ख) चयन वही 188
5. **कन्नड़ साहित्य**
   (क) ऐतिहासिक समीक्षा प्रो० आर० एस० मुगलि 234
   (ख) चयन वही 237
6. **कश्मीरी साहित्य**
   (क) ऐतिहासिक समीक्षा प्रो० जे० एल० कौल 300
   (ख) चयन वही 310
7. **गुजराती साहित्य**
   (क) ऐतिहासिक समीक्षा श्री चन्द्रकांत मेहता 373
   (ख) चयन वही 378
8. **तमिल साहित्य**
   (क) ऐतिहासिक समीक्षा श्री आर० रंगाचारी 440
   (ख) चयन डा० टी० पी० मीनाक्षी सुन्दरन् पिल्ले 453
9. **तेलुगु साहित्य**
   (क) ऐतिहासिक समीक्षा डा० डी० वेंकटावधानी 527
   (ख) चयन वही 537

10.	**पंजाबी साहित्य**		
	(क) ऐतिहासिक समीक्षा	डा० दर्शनसिंह मैनी	584
	(ख) चयन	श्री कृपालसिंह, उपकुलपति, पंजाबी विश्वविद्यालय द्वारा बनाई गई समिति	596
11.	**बंगला साहित्य**		
	(क) ऐतिहासिक समीक्षा	श्री आर० के० दास गुप्ता	631
	(ख) चयन	वही	647
12.	**मराठी साहित्य**		
	(क) ऐतिहासिक समीक्षा	डा० डी० वी० पटवर्धन	701
	(ख) चयन	वही	713
13.	**मलयालम साहित्य**		
	(क) ऐतिहासिक समीक्षा	श्री के० के० नायर	745
	(ख) चयन	प्रो० पी० के० नारायण पिल्ले	753
14.	**संस्कृत साहित्य**		
	(क) ऐतिहासिक समीक्षा	डा० वी० राघवन्	809
	(ख) चयन	वही	825
15.	**सिंधी साहित्य**		
	(क) ऐतिहासिक समीक्षा	श्री० एन० आर० मलकाणी	993
		द्वारा चुना गया विद्वद्वर्ग	1000
	(ख) चयन	वही	
16.	**हिंदी साहित्य**		
	(क) ऐतिहासिक समीक्षा	डा० नगेन्द्र	1043
	(ख) चयन	वही	1049
	लेखक-अनुक्रमणिका		

अंग्रेजी साहित्य

चयन :

प्रोफेसर के० आर० श्रीनिवास अय्यंगार

अनुवाद :

श्री बालकृष्ण राव

अनुक्रम

ऐतिहासिक समीक्षा		3
तोरु दत्त	• सीता	12
	• हमारा कैसुरीना का पेड़	14
रवीन्द्रनाथ ठाकुर	• गीतों की भेंट	17
	• आस्थावान व्यक्ति	19
सरोजिनी नायडु	• पद्मासीन बुद्ध के प्रति	22
	• जीत	24
अरविन्द	• अतियथार्थवादी विज्ञान का एक स्वप्न	26
	• ईश्वर का गुलाब	27
	• ईश्वर का पुत्र	28
हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय	• अतिशय अद्भुत गुरु: श्री रमण	30
डोम मोरेस	• सीमा	32
पी० लाल	• गुलाब की दुनिया	33
स्वामी विवेकानन्द	• अनन्त परमानन्द की सन्तान	34
रवीन्द्रनाथ ठाकुर	• साधुता क्या है ?	38
मोहनदास करमचन्द गांधी	• अहिंसक प्रतिरोध (सत्याग्रह)	42
अरविन्द	• मनुष्य : एक सांक्रांतिक जीव	46
सर्वपल्लि राधाकृष्णन्	• सभ्यता का भविष्य	49
जवाहर लाल नेहरू	• एक प्रभामंडल विलीन हो गया	54
चक्रवर्ती राजगोपालाचारी	• मंत्री सीताराम अय्यर	59
राज राव	• कंठापुर पर वैशाखी वर्षा	63

ऐतिहासिक समीक्षा

अंग्रेजी में भारतीय लेखन का इतिहास दो शताब्दियों से कम पुराना है। उसका आरम्भ राजाराम मोहनराय से माना जा सकता है। जिन्होंने यह स्पष्ट देख लिया था कि यदि भारत को आधुनिक सभ्यता के केन्द्र तक पहुँचना है तो अंग्रेजी का ज्ञान अपरिहार्य है। इस नयी भाषा का प्रयोग स्वयं वे यथेष्ट आत्म-विश्वास के साथ करते थे और ऐतिहासिक दृष्टि से उनके अंग्रेजी लेखन का बहुत महत्व है। पर वह भारत का स्वातंत्र्य-आन्दोलन था जिसने सहसा अंग्रेजी भाषा को अखिल भारतीय महत्व प्रदान किया, क्योंकि इस भाषा ने भारत भर के देशभक्तों को एक दूसरे से मिलाया और विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक सामान्य मंच उपलब्ध कराया। बीसवीं सदी के अरुणोदय के समय हमारे यहाँ बाल गंगाधर तिलक, दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, रमेशचंद्र दत्त, रवींद्रनाथ ठाकुर और अरविंद जैसे राजनीतिक व्यक्तित्व हुए जो बड़ी सहजता से अंग्रेज़ी का प्रयोग करते थे और 'हिन्दू' 'मराठा,' 'वंदे मातरम्' और 'कर्मयोगिन्' जैसे राजनीतिक समाचारपत्र भी साहित्य तथा विद्वत्ता की आभा से चमका करते थे।

अंग्रेज़ी के भारतीय लेखकों ने साहित्य की सभी विधाओं में रचना की है। पहले कवियों में थे हेनरी डेरोज़ियो, काशीप्रसाद घोष और माइकेल मधुसूदन दत्त। डेरोज़ियो और दत्त की निपुणता इतिवृत्तात्मक काव्य में थी। बाद में आयीं तोरू दत्त, जो उत्कृष्ट गीतिकार थीं। यद्यपि वह किशोरावस्था में ही स्वर्ग सिधारीं, उनकी जन्मजात प्रतिभा को उनके पिता गोविनचंद्र दत्त का संरक्षण प्राप्त था। गोविनचंद्र दत्त स्वयं प्रतिभाशाली कवि थे। तोरु दत्त ने सफलतापूर्वक प्राचीन भारतीय मिथकों को अंग्रेज़ी कविता में भाषांतरित किया। उनके 'एन्शैंट बैलैड्स ऐंड लीजेंड्स आफ़ हिन्दुस्तान' का प्रकाशन 1882 में एडमंड गौस के उत्साह भरे प्राक्कथन के साथ हुआ। वर्जिल के एक वाक्यांश में उनकी कविता पर टिप्पणी की जा सकती है : वस्तुओं में आँसुओं का संस्पर्श ! अल्पावस्था में उनकी मृत्यु हुई, पर इससे पहले ही वे अपने भाई

और बहन का वियोग झेल चुकीं थीं। उनकी 'सीता' तथा 'हमारा कैसुरीना का पेड़' जैसी प्रसिद्ध कविताओं में उनके इन व्यक्तिगत दु:खों के कवित्वमय संकेत मिलते हैं।

निस्संदेह तोरु दत्त के बाद भारत की सबसे बड़ी कवयित्री सरोजिनी नायडू हुईं। भारत के स्वातन्त्र्य-संघर्ष में महात्मा गाँधी की निकटस्थ सह-योगिनी सरोजिनी नायडू अति विकसित बुद्धि की बालिका थीं। एडमंड गौस से बाल्यावस्था में हुई भेंट ने उनकी काव्य-प्रतिभा को भारत के अन्तर्मन की अभिव्यक्ति की, भारत की सहज भावना का सीधा-सच्चा और गम्भीर विश्लेषण करने की, पुरातन धार्मिक सिद्धान्तों की और इन गुह्य उद्‌भावनाओं की ओर प्रेरित किया जो पूर्व की आत्मा को उस समय उद्वेलित कर रही थीं, जब पश्चिम को इसका ज्ञान भी न था कि उसकी आत्मा भी है। उनकी उल्लेख्य उपलब्धियाँ हुईं 'दि गोल्डेन थ्रेशोल्ड', 'दि बर्ड आफ़ टाइम' और 'दि ब्रोकन विंग' नामक कविता संग्रह। फिर भी न जाने क्यों सरोजिनी ने अपने जीवन के अन्तिम तीन दशकों में काव्य-रचना छोड़ दी थीं। यहाँ यह जोड़ना अप्रासंगिक न होगा कि इनके भाई हरींद्रनाथ चट्टोपाध्याय ने भी अंग्रेज़ी के कवि के रूप में ख्याति अर्जित की है।

नोबेल पुरस्कार जीतकर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने पहली बार संसार का ध्यान सांप्रतिक भारतीय लेखन की ओर आकृष्ट किया। मूलतः वे बंगला के कवि थे, पर उन्होंने अपनी कई रचनाओं का अंग्रेज़ी में स्वयं अनुवाद किया था। उनकी 'गीतांजलि' और 'दि गार्डनर' की प्रसिद्धि सर्वथा उचित ही है। पर कुछ संवेदनशील और प्रतिभा-सम्पन्न युवकों की कृपा से अब तो उनकी समस्त बंगला कविता अंग्रेज़ी में उपलब्ध है। रवीन्द्रनाथ नाटककार और उप-न्यासकार के रूप में भी पथान्वेषक थे और उनके बहुत से नाटक, उपन्यास और अनेक कहानियाँ भी अंग्रेज़ी में उपलब्ध हैं।

शायद 'दि चाइल्ड' ही उनकी मूलतः अंग्रेज़ी में रची अकेली कविता है। १९३० में रवींद्रनाथ ने आक्सफ़ोर्ड में 'हिब्बर्ट लेक्चर्स' नामक व्याख्यान-माला दी थी। बाद में वे जर्मनी गये। यहाँ उन्होंने ओबरामरगाउ नामक गाँव में स्थानीय ग्रामीणों द्वारा प्रस्तुत ईसाई धार्मिक नाटक देखे। रवीन्द्रनाथ के उपचेतन में उनकी विषय-वस्तु की संगति महात्मा गाँधी के डाँडी अभियान से बैठ गयी। परिणामतः उन्होंने एक ही रात में सर्जनात्मक शक्ति के विलक्षण विस्फोट के रूप में 'दि चाइल्ड' की रचना कर डाली। इस कविता में उस मनुष्यता का बड़ा ही शक्तिशाली आवाहन है जो रात में फँसी है, कुंठाओं और विफलताओं के भार से ऊपर उठने की चेष्टा करती है और

इस प्रक्रिया में स्वयं खंड-खंड होती हुई-फिर भी हार मानने के लिए प्रस्तुत न होती हुई, साधना में लीन, फिर-फिर प्रयास करती है और विश्वास करती है कि आत्मोद्धार की कुंजी मनुष्य के ही पास है। और एक-न-एक दिन नवजात दिव्य शिशु युगों के पुराने भार से मुक्ति दिला देगा और सदा के लिए कामना और उद्वेग, प्रेरणा और क्रिया, साहसपूर्ण कार्य और मनस्तुष्टि के बीच का अन्तःसंघर्ष समाप्त कर देगा।

भारत के महान् दार्शनिक कवि श्री अरविंद के कृतित्व के बारे में दो-एक परिच्छेदों में सब कुछ कह देना सरल नहीं है अपने बड़े भाई कवि मनमोहन घोष की तरह वे भी इंगलैंड में शिक्षित हुए। भारत लौटने पर वे बड़ौदा में अंग्रेज़ी के प्राध्यापक हुए। उनका ध्यान देश की राजनीति की ओर आकृष्ट हुआ और वे राष्ट्रीय कांग्रेस के उग्रवादी नेता के रूप में प्रख्यात हुए। जल्दी ही वे अलीपुर बम-कांड के मामले में फँस गये और एक वर्ष कारागार में रहे। देशबन्धु चितरंजनदास ने उनके मुकदमे की पैरवी की और श्री अरविंद मुक्त कर दिये गये। पर अपनी रिहाई के बाद वे योग की ओर आकृष्ट हो गये और उन्होंने अपने जीवन के अंतिम चार दशक पांडिचेरी में एकांतवास करते हुए बिताये। वे बहुसर्जक रचनाकार थे। उन्होंने प्राचीन भारतीय धर्म-ग्रन्थों-जैसे वेद, गीता आदि की नयी व्यवस्था की। 'दि लाइफ डिवाइन' में उन्होंने अपने तात्विक चिंतन को आकार दिया। समाजशास्त्र, योग और शिक्षाशास्त्र पर पुस्तकें लिखीं। इसके अतिरिक्त वे अंग्रेजी में पूरे पांच काव्य नाटकों के रचयिता भी थे। इनके ये नाटक—'वासवदत्ता', 'रोदोगुन', 'दि वज़ीर्स आफ बासोरा', 'एरिक' और 'पर्स्यूस दि डिलीवरर' अपने अभिकल्प में ही नहीं, भाषा में भी शेक्सपियर तुल्य हैं। पर सबसे बड़ी बात यह है कि वे हमारे लिए विपुल परिमाण में अंग्रेजी कविताएँ छोड़ गये हैं। शास्त्रीय छंदों में उनके साहसिक प्रयोगों के अतिरिक्त, उनकी छोटी-छोटी कविताएं और सानेट रहस्यवाद और तत्व-चिंतन के क्षेत्र में व्यापक दृष्टि का परिचय देती हैं। 'उर्वशी' और 'लव ऐंड डेथ' जैसी भावोद्रेक की कविताएं हैं, 'बाजी प्रभु' जैसी वर्णनात्मक कविताएं हैं, 'दि मेडिटेशन्स आफ मंडय्या' और 'अहन' जैसी प्रतीकात्मक कविताएं हैं।

श्री अरविंद ने प्राचीन छह चरणों के 'हिरोइक' छंद में 'इलियन' नामक महाकाव्य की भी रचना आरंभ की थी पर अभाग्यवश वह अपूर्ण ही रह गया। पर निःसंदेह उनकी सबसे महान् उपलब्धि 'सावित्री' है जो अंग्रेजी के अतुकांत छंद में चौबीस हजार पंक्तियों का महाकाव्य है। श्री अरविंद ने सावित्री और सत्यवान के प्राचीन कथानक पर मनुष्य के अतीत, वर्त्तमान

और भविष्य को रूपायित और व्याख्यात करने वाला एक प्रतीक आरोपित किया है। सावित्री, राजकुमारी मोक्षप्रदा देवी—वह अवतार है जो संसार को शोक की अंधेरी रात से मुक्त करके आनंद के मुक्त अनंत प्रभात में ले जायेगी। इधर सारे संसार के विद्वानों का ध्यान इस महाकाव्य की ओर अधिकाधिक आकृष्ट होता जा रहा है। अमरीकी प्राध्यापक फ्रेंक रेमंड पाइपर ने यह कह कर 'सावित्री' का अभिनंदन किया है कि वह अब तक लिखी गयी कविताओं में सर्वाधिक व्यापक, संपूर्ण, सुंदर और निर्दोष विश्वतोमुखी काव्य है। शायद 'सावित्री' मानव मानस को असीम की दिशा में विकसित कराने वाली संसार की सर्वाधिक शक्तिमती कलाकृति है।

इन दिनों बहुतेरे कवि जो अरविंदवादी कहे जा सकते हैं उन्हीं की तरह रहस्यवादी और आध्यात्मिक कविताएं लिखते हैं। इस धारा के प्रसिद्ध कवि हैं : दिलीपकुमार राय, नीलबरन, के० डी० सेठना और पृथ्वींद्र मुकर्जी। युवक कवियों का एक और वर्ग भी है जो टी० एस० इलियट और एज़रा पाउंड से बहुत प्रभावित है। वे सब मुक्तक कवि हैं और उनमें से कुछ—पी० लाल, राघवेंद्र राव, ए० के० रामानुजन, डाम मोरेस, कमला दास—बड़े कुशल शिल्पी भी हैं। इनमें डाम मोरेस ने, जिन्होंने हाथार्नडन पुरस्कार जीता था, सबसे अधिक लोकप्रियता प्राप्त की है। उनके अत्यंत वैयक्तिक प्रगीतों की शिल्पगत उत्कृष्टता सहज ही आधुनिक ब्रिटिश तथा अमरीकी काव्य की पृष्ठभूमि में घुल-मिल जाती है।

राजा राममोहन राय के समय से ही भारतीयों ने अंग्रेज़ी भाषा को तर्क, व्यवस्था और उद्‌बोधन के लिए बहुत अच्छा साधन माना। पर उनका गद्य केवल अंग्रेज़ वक्ताओं और लेखकों की अनुभूति ही नहीं रहा है। अंग्रेज़ी गद्य का उपयोग भारतीय चेतना की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में किया गया है। फलतः उसका अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व निखर सका है। वह स्वामी विवेकानन्द थे जिन्होंने सत्तर वर्ष पूर्व शिकागो की श्रोतृमण्डलियों को पौरस्त्य धर्म पर अपनी अंग्रेज़ी की वक्तृताओं द्वारा विद्युत-संस्पर्श का अनुभव कराया था। स्वामी विवेकानन्द रामकृष्ण परमहंस के प्रधान शिष्य थे और जब गुरु नहीं रहे तब उन्होंने रामकृष्ण मिशन को व्यवस्थित-संघटित किया। विवेकानन्द के लेखों और व्याख्यानों के अनेक ग्रंथ हैं। वे सदा ज्ञान के आधार पर आस्था के स्वर में जो कुछ कहते थे उसकी आवश्यकता की चेतना के साथ बोलते थे। वे बड़े प्रभावशाली वक्ता थे, साहसी, निर्भीक, निर्बाध और सच्चे अर्थ में ज्ञानदाता। जो अन्य भारतीय सच्चे भारतीय स्वर में लिखते और बोलते थे उनमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्री अरविंद भी

थे। अंग्रेज़ी जैसे विदेशी माध्यम के संवेदनशील और प्रभावशाली प्रयोग द्वारा वे भारत के चिंतनशील मानस की सारभूत वर्चस्विता से संसार-व्यापी जनता को परिचित कराने में सफल हुए और डा० राधाकृष्णन के दार्शनिक लेखों और भारतीय जीवन-पद्धति-विषयक सर्वगम्य व्याख्याओं ने उनके लिए लोकव्यापी भावक-वर्ग प्रशस्त कर दिया है और साथ ही भारतीय चिंतन के गौरव को भी उन्नत किया है।

भारत के स्वातंत्र्य आंदोलन ने अंग्रेज़ी गद्य के विकास को विलक्षण प्रेरणाप्र दान की। बाल गंगाधर तिलक प्रकांड विद्वान थे जिन्होंने 'मराठा' नामक अंग्रेज़ी समाचार पत्र का योग्यतापूर्वक संपादन किया। अंग्रेज़ी पत्रकारिता के क्षेत्र में अन्य उल्लेख्य नाम हैं : बहरामजी मालाबारी, श्री अरविंद, लाला लाजपतराय, कस्तूरी रंगा अय्यर और टी० प्रकाशम्। महात्मा गांधी भी अंग्रेज़ी के पत्रकार थे, उन्होंने पहले 'यंग इंडिया' और फिर 'हरिजन' का संपादन किया। उन्होंने अलंकृत विक्टोरिया-कालीन शैली को छोड़ कर अभिव्यक्ति की स्पष्टता और सरलता को प्रश्रय दिया। वे खरी बात कहने से हिचकते न थे, पर कभी कटुता नहीं आने देते थे। उनके छोटे-छोटे, इस्पात जैसे वाक्यों में एक प्रशांत निर्मलता है। 'हिंद स्वराज्य' जैसी उनकी राजनीतिक पुस्तिकाओं ने समुचित प्रसिद्धि पायी और उनका 'माई एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ" तो एक गौरव-ग्रंथ माना जाता है।

जवाहरलाल नेहरू अपने गुरु के चरण-चिन्हों पर चले। उन्होंने भी एक आत्मचरित लिखा-जो बहुत बिकने वाला ग्रंथ बन गया-और लोकप्रिय इतिहास-ग्रंथों की रचना की, जैसे 'दि डिस्कवरी आफ़ इंडिया' या 'ग्लिंप्सेज़ आफ़ वर्ल्ड हिस्ट्री'। वे बहुभाषी वक्ता थे और हालांकि उनके भाषणों में बिखराव रहता था, फिर भी उनके व्यक्तित्व, उनकी सच्चाई और लगन तथा अपने कथ्य से संपृक्ति के कारण उनके गद्य में एक सम्मोहन है जिसका प्रभाव देर तक बना रहता है। उन्होंने प्राचीन तथा आधुनिक साहित्य का विस्तृत और विवेकपूर्ण अनुशीलन किया था, महान् विचारों और चिंतकों के साहचर्य में उनका मन रमता था। उनके लेख और भाषण संस्कृति और जीवनदायिनी वायु से अनुप्राणित हैं और एक स्थिर कांति से चमकते रहते हैं।

स्वतंत्रता की प्राप्ति के साथ विद्वान् राजनीतिज्ञों की उदात्त परंपरा मानो निःशेष हो गयी। यह सच है कि सौभाग्य से चक्रवर्ती राजगोपालाचारी अभी हमारे बीच मौजूद हैं। उनकी अंग्रेज़ी की तीक्ष्ण शैली राजनीति के लिए जितनी उपयुक्त हैं उतनी दर्शन के लिए भी और उन्होंने जिस ढंग से अंग्रेज़ी

में 'रामायण' और 'महाभारत' को पुनः साकार किया है वह वास्तव में उत्कृष्ट है। उनकी लघु-कथाओं और कहानियों में उनकी अंग्रेज़ी की हिमानी-स्फटिक-स्वच्छता पिघलती सी जान पड़ती है।

अंग्रेज़ी में भारतीय पत्रकारिता की समृद्धि और प्रभविष्णुता एक स्वीकृत तथ्य है। के० नटराजन, सी० वाई० चिंतामणि और खासा सुब्बाराव जैसे महान् पत्रकार हो चुके हैं। इस कला के जो प्रवीण शिल्पी अब तक सृजन-शील रहे हैं उनमें पोथेन जोजेफ़, एम० चलपति राव, के० ईश्वर दत्त, जी० वी० कृपानिधि, फ्रैंक मोरेस और एस० मुलगांवकर के नाम उल्लेखनीय हैं। कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी अपने अनेक प्रकार के लेखन-कार्यों में, जिनमें उपन्यास भी हैं और ललित साहित्य की अनेक विधाएँ भी, बड़ी जोशीली और जीवित अंग्रेज़ी का प्रयोग करते हैं।

इनके अतिरिक्त नीरद चौधरी का अप्रतिम व्यक्तित्व भी है जिन्होंने प्रौढ़ अंग्रेज़ी गद्य के लेखक के रूप में अपनी तीन पुस्तकों, 'ऑटोबायोग्राफ़ी ऑफ़ एन अननोन इंडियन', 'ए पैसेज टु इंगलैंड' और 'दि कांटिनैंट आफ़ सिर्सी' के द्वारा यथेष्ट ख्याति अर्जित की है।

उपन्यास के क्षेत्र में 1902 में रमेशचन्द्र दत्त की कृति 'दि लेक आफ़ पाम्स' प्रकाशित हुई थी। उसके सात वर्ष बाद आया 'दि स्लेव गर्ल आव आगरा' नामक उपन्यास। उनके बाद बहुतों ने छिट-पुट उपन्यास लिखे, पर वास्तव में भारतीय-अंग्रेज़ी उपन्यास विधा को व्यापक स्वीकरण मुल्कराज आनन्द के आने पर ही मिला। मानव-निर्मित श्रेणियों और वर्णों के भेद के प्रति मुल्कराज आनन्द का आक्रोश, दलित के प्रति उनकी गहरी संवेदना उन के कई उत्कृष्ट उपन्यासों में परिलक्षित होती है। उनके अधिक प्रसिद्ध उपन्यासों में है 'कुली' (1933), 'अनटचेबुल' (1935) 'टू लीव्ज़ ऐंड ए बड' (1937) और 'दि बिग हार्ट' (1954), उनके पात्रों की जीवंतता उन की सहानुभूति की विविधता और व्यापकता और उनके कथानकों की शक्ति पाठक को अभिभूत कर देती है। उनकी तुलना में कम लिखने वाले, पर अधिक निष्ठावान, कलाकार आर० के० नारायण बराबर सृजनशील रहे हैं। उन्होंने नौ पूरे उपन्यासों की रचना की है जिनमें नवीनतम है 'दि वेंडर आव स्वीट्स'। वे मुल्कराज आनन्द की तरह क्रांतिकारी नहीं हैं। पर उनके लेखन में एक सौम्य शक्ति है। अपनी कल्पना की सृष्टि मालगुड़ी नामक एक छोटे-से ग्राम के सीमित क्षेत्र में ही सर्जना करते हुए नारायण दक्षिण भारतीय जीवन-पद्धति का साकार और जीवन्त अँकन करने में सफल हुए है। संभवतः उनकी सर्वोत्तम कृति "दि इंगलिश टीचर" है। यह उनकी आरम्भिक रचनाओं में से

एक है और अंशतः आत्म-चरितात्मक है। अपने बाद के कुछ उपन्यासों में नारायण वैद्य की तरह रुग्ण जीवन की व्याधियों का निदान ढूंढ़ते-से जान पड़ते हैं। मि० संपत और मरगैया की सट्टेबाज़ी, राजू के नैतिक ऊहापोह और भारतीय और श्रीराम के दांवपेच सबके प्रति नारायण ने सहानुभूति और गहरी संवेदनशीलता दिखाई है। 'दि मैन ईटर आव मालगुड़ी' तो अपनी तरह की अकेली कृति है। लगता है कि इस उपन्यास के रचनाकाल में नारायण भारत की प्राचीन मिथकों और दंतकथाओं के प्रति आकृष्ट हो गए थे— क्योंकि इसके बाद भी उनकी पुस्तक 'गाड् डेमन्स एंड अदर्स' का प्रकाशन हुआ 'दि मैन ईटर आव मालगुड़ी' में नारायण ने बड़ी कुशलतापूर्वक भस्मासुर के कथानक को आधुनिक परिवेश में उतारा। चर्म-प्रसाधक वासू आधुनिक भस्मासुर है, नरभक्षक बाघ की तरह फुर्तीला और निर्भय, आत्म-विस्तार के लिए प्रतिक्षण नये क्षेत्रों के अनुसंधान के लिए उद्यत। नारायण इस रूपक को बड़ी सूक्ष्मता से निभाते हैं। पुरानी कथा के अनुसार भस्मासुर की जो परिणति हुई थी उसकी और इस कारण उसी की पूरी पुनरावृत्ति हम वासू की मृत्यु में देखते हैं।

पाठक पर जो प्रभाव पड़ता है वह कुछ इस प्रकार का है मानो एक दुर्निवार शक्ति कामना की लिप्सा में गहरे डूब कर अपने को ही निश्शेष कर रही हो। इसकी तुलना में नारायण का नवीनतम उपन्यास 'दि वेंडर आव स्वीट्स' फीका लगता है। फिर भी जगत का चित्र इतना भोला-भाला दुनिया के नये मूल्यों के बीच खोया-खोया सा आँखों के आगे से नहीं हटता। उनमें व्यंग्य का हलका-सा पुट है, पर एक उच्चतर जीवन की आकांक्षा भी है, यहीं और इसी समय इसी जगत में एक नए सौन्दर्यबोध के साकार होने की आशा भी है।

अंग्रेज़ी में लिखने वाले और भी कुछ भारतीय उपन्यासकार हैं जिन्हें विस्तृत भावक वर्ग उपलब्ध है। भवानी भट्टाचार्य, आधुनिक जीवन की विविध परतों का सोद्देश्य अन्वीक्षण करते हैं और निर्भयता से उसके छद्म को निरावृत्त करते हैं। उनका हाल का उपन्यास 'शैडो फ्रॉम लद्दाख' इस बात का अच्छा उदाहरण है। वे महात्मा गांधी के सर्वोदय की सादगी और निरीहता के आदर्श और आज की विशाल किन्तु आत्मारहित इस्पाती निर्मितियों के अंतर को उद्घाटित करते हैं। अंत में गांधीवाद की विजय होती है। अन्य उपन्यासकार जिनका उल्लेख किया जा सकता है शांता रामाराव, मनोहर मुलगांवकर, कमला मार्कण्डेय, खुशवंत सिंह, नयनतारा सहगल और अनीता देसाई हैं। पर जिस भारतीय उपन्यासकार ने वास्तव में अपनी सर्जनशक्ति के

आगे अंग्रेज़ी भाषा को सिर झुकाने के लिए विवश किया है वह राजा राव ही हैं। उन्होंने लिखा बहुत कम है, और जो लिखा भी है उसमें से कुछ—उदाहरणार्थ, उनका हाल का उपन्यास 'दि कैट एंड शेक्सपियर'—दिमाग को चक्कर में डाल देता है। पर उनकी तीन पुस्तकें, 'कंठापुर', 'दि काऊ आफ दि बैरीकैड्स' और 'दि सर्पेंट एंड दि रोप' अंग्रेज़ी भाषा के लिए नये अज्ञात क्षितिजों की ओर संकेत करती हैं। इसके अतिरिक्त वही एकमात्र कलाकार हैं जिनके उपन्यासों में गांधी-युग सजीव हो सका है। "दि काऊ ऑफ दि बैरीकेड्स" कहानियों का संग्रह है। जिस कहानी पर पुस्तक का नाम रखा गया है। उसके कथानक की पृष्ठभूमि में महात्मा स्वयं हैं। केन्द्रीय पात्र निश्चय ही गौरी है—कामधेनु मातृत्व और असीम करुणा भारत माता की प्रतिमूर्ति है। गांधीवादी देशभक्तों का अहिंसात्मक कार्य हिंसात्मक उपद्रव में बदल जाता है। गुरु महात्मा के प्रतिनिधि, निरुपाय हो जाते हैं। उसी समय गांव की गाय जिसके प्रति सभी को प्यार और आदर भी था, घटनास्थल पर आ पहुँचती है। जोशीले ग्रामीण आह्लादित हो "वंदे मातरम्" के गान से उसका स्वागत करते हैं। गाय आगे जहां मार्ग अवरोधी तक बढ़ जाती है, मानों जानती हो कि क्या कर रही है। सिपाही कुछ समझ नहीं पाते—क्या यह आन्दोलनकारियों की ओर से सुलह करने का इशारा है?

> "पर जब उन्होंने गाय से उसकी आकृति और उसके आँसू को देखा, जो गंगा-जल की बूंद की तरह स्वच्छ था, वे चिल्ला पड़े, "महात्मा गांधी की जय !" और भीड़ में शामिल हो गए। पर उनके नायक ने यह देखा और एक गोली दाग दी। गोली गौरी के सिर में लगी और वह, ईश्वर की संदेशवाहिका, क्षुद्र मानवों के बीच धराशायी हो गयी।"

क्या भारत के स्वातंत्र्य के लिए गांधी द्वारा संचालित आन्दोलन का कभी इससे अधिक कवित्वमय आवाहन भी हुआ है? लगता है कि राजा राव ने युद्धरत सम्प्रदायों के बीच महात्मा के महान् बलिदान का एक नियति-निर्दिष्ट परिणति के रूप में पूर्वानुमान कर लिया था। यद्यपि 'दि सर्पेंट एंड दि रोप' अधिक लंबा और अधिक प्रसिद्ध उपन्यास है, 'कंठापुर' ही अब तक गाँधीवादी राजनीति का सर्वोत्तम औपन्यासिक स्मारक है। इसमें एक दक्षिण भारतीय गाँव पर गाँधी ने संघात से उत्पन्न स्फुरण का एक बूढ़ी विधवा की सामान्य की बोलचाल की भाषा में अंकन किया गया है और हम सब-कुछ उसी की स्मृति, संवेदनशीलता और बौद्धिक वृत्तियों के माध्यम से देखते हैं। इसमें मिथक, दंतकथा, एक सामान्य ग्राम का सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय और

ग्रामीण स्तर पर गांधीवादी आन्दोलन, सभी कुछ एक असाधारण अंतर्दृष्टि और शक्ति-सम्पन्न उपन्यास में रूपान्तरित हो जाते हैं। राजा राव भाषा के स्वामी की तरह साधिकार अंग्रेज़ी लिखते हैं, मानो एक नयी भाषा गढ़ रहे हों, और भारतीय वाणी की लयात्मकता जिसकी आत्मा भारतीय है, काया अंग्रेज़ी—प्रतिपल बदलती चित्त-वृत्तियों के साथ घुल-मिलकर जो सर्जनाएं करती हैं उनकी गणना भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धियों में की जाती है।

—के० आर० श्री निवास अयंगार

सीता

तोरु दत्त

अँधरे कमरे में तीन बच्चे किलकारियां मार रहे हैं ?
क्या है जिसे वे यों देखते हैं आँखें फाड़-फाड़ कर ?
एक घना, बहुत, बहुत घना वन है,
        सूरज की एक भी किरण जिसे ढूँढ़ नहीं पाती है,
और उसके बीच में है एक साफ किया हुआ स्थान,
वहाँ खिलते है बड़े-बड़े फूल, उन बेलों पर
        जो लिपटी हुई हैं लंबे-लंबे पेड़ों से ।
वहाँ एक शांत, स्वच्छ सरोवर में
        तैरते हैं श्वेत राजहंस;
वहाँ, झाड़ी से झटके के साथ निकलकर
        मोर झपट पड़ता है;
दौड़ते हैं वहाँ झुंड के झुंड जंगली हिरण;
जगह-जगह वहाँ झिलमिलाते हैं टुकड़े जमीन के
        जिन पर लहराती हैं सुनहली बालियाँ अनाज की;
वहाँ विचित्र वेदियों से उड़ता है हल्का, नीलाभ धुआँ,
वहाँ रहता है संन्यासी-कवि
        चिर शांति के साथ ।

कौन है किंतु यह रूपवती ?
व्यर्थ ही रोती नहीं है यह—देखो तो,
इसकी आँखों से गिरे एक-एक आँसू के साथ
बहने लग जाती हैं अश्रुधार

तीन नेत्र-युग्मों से,
तीनों शिशु शीश
भुक जाते हैं करुणा से ।
बहुत, बहुत पुरानी कहानी है यह,
दुखी सीता का
बीते हुए युग से जिसने आह्वान किया,
वह गीत
गाया एक माता ने ।

आखिर सब मूक हुआ,
उसकी आँखों के आगे का चित्र
शून्य में विलीन हुआ,
फिर भी वे सपनों के सारे दिन
उसको ही देखेंगे !
फिर कब, आह फिर कब पहले की तरह
सांझ होते-होते
घेर कर चारों ओर से अपनी माँ को
वे बच्चे पास आकर बैठ जायेंगे ?

—'एन्शेंट बैलड्स एंड लीजेंड्स आफ हिंदुस्तान' से

हमारा कैसुरीना का पेड़

तोरु दत्त

तारों तक पहुँचता है ऊँचा सिरा पेड़ का
जिसके उस खुरदरे घाव-भरे तने के चारों ओर
भीमकाय अजगर-सी लिपटी हुई
एक बेल
ऊपर सरकती ही जाती है—
कोई पेड़ दूसरा
जीता न बच पाता उसके आलिंगन में
एक बार कस कर ।
किंतु वह वीर बड़े साहस से
रहता है लपेटे इसे—
एक-एक डाल से
झूलते हैं लाल-लाल पुष्प-गुच्छ ।
चिड़ियाँ—मधुमक्खियाँ
सारे दिन घेरे रहती है उन गुच्छों को,
रातों में कई बार
भर जाया करता है उपवन में
मधुमय संगीत एक सीमाहीन—
गीत वह आता है हमारे इस पेड़ से
मानव जब करते हैं विश्राम ।

प्रात: जब
खुलता है मेरा वातायन,

आह्लादित आँखें मेरी
उस पर गड़ जाती हैं;
कभी-कभी (शीत में विशेषतः)
चोटी पर पेड़ की
सूर्योदय देखता
बैठा रहता है भूरे रंगवाला लंगूर,
और उसके नन्हें-नन्हें बच्चे
निचली डालों पर रहते हैं फुदकते, खेलते ।
दूर और पास से कोयलें
स्वागत करती हैं दिवस का;
अधजगी गायें हमारी
चल पड़ती हैं चरागाहों की ओर,
और इस विशाल और सुन्दर
पुरातन वृक्ष की छाया में,
जो उस बड़े तालाब पर पड़ती हैं,
खिलती है कुमुदिनी
हिमराशि के समान ।

पर अपने विराट वैभव के कारण नहीं
प्रिय है मेरी आत्मा को कैसुरीना;
इसके नीचे हमने खेल खेले हैं :
भले ही बीत जाएँ अनेकानेक वर्ष
किंतु ओ प्यारे साथियो,
जिन्हें मैंने पूरे मन से प्यार किया है,
तुम्हारे कारण
यह पेड़ सदा-सदा मुझे प्यारा लगेगा !
घुल-मिल गयी हैं तुम्हारी आकृतियाँ इसमें—
उनके साथ
यह तब तक मेरी स्मृति में होता रहेगा साकार
जब तक जलते आँसुओं की धारा
आच्छादित कर न देगी मेरी दृष्टि को ।
वह शोक-गीत सी ध्वनि क्या है जो सुन पड़ती है,
तट पर पछाड़ खाते सागर की तरह ?
यह वृक्ष का विलाप है, अपार्थिव वाणी है
जो कदाचित अनजानी भूमि तक पहुँच जाए ।

अनजानी ! किंतु आस्था की दृष्टि में सुपरिचित !
आह, मैंने वह क्रन्दन दूर, बहुत दूर देशों में सुना है
सागर के अनेक एकांत कोनों में,
जब सिंधु-प्रेत अपनी गुफा में होता था निद्रा-मग्न
और हल्के-से चूमती थीं लहरें
फ्रांस अथवा इटली के पुरातन तटों को, चांदनी में
जब मूर्छित पड़ी होती थी पृथ्वी एक निःस्वप्न निद्रा में ।
हर बार जब उठता था संगीत,
मेरे अंतर्मन में तब उठती थी एक दिव्य आकृति,
तेरी आकृति, ओ वृक्ष, जैसा मैंने तुझे
अपने बालपन के आनन्द के दिनों में
देखा था अपनी ही प्यारी स्वभूमि में ।

इस कारण ओ वृक्ष, तेरे प्रति श्रद्धा से
मैं सहर्ष अर्पित करूंगी एक गीत,
तू जो प्यारा था उनका
जो अब चिर-निद्रा में विश्राम कर रहे हैं,
जो मुझे जीवन से अधिक प्यारे थे !
काश जब मेरे दिन पूरे हो जाएँ
तब तेरी गणना उन अजर-अमर वृक्षों में हो—
उन वृक्षों की तरह जो बोरोडेल में हैं
जिनकी भयानक शाखाओं के नीचे
काँपते खड़े थे विवर्ण
भय, थरथराती हुई आशा, और मृत्यु, कंकाल,
और वह छाया जिसका नाम है काल—
और वह कविता भले ही अशक्त हो
जो चाहती है तेरी सुन्दरता को रूपायित करना,
फिर भी प्रेम रक्षा करे तेरी
नाश के शाप से ।

—'एन्शेंट बैलड्स एंड लीजेंड्स आफ़ हिन्दुस्तान' से

गीतों की भेंट

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

[1]

तूने मुझे अनंत बना दिया है, तेरी वही इच्छा है।
बार-बार तू इस क्षुद्र पात्र को रीता कर देता है,
और फिर भर देता है ताज़े नये जीवन से।

नरकुल की इस छोटी-सी वंशी को
तू ले गया है पर्वतों-घाटियों पर,
और उससे फूँकी हैं तूने चिर-नवीन रागिनियाँ।

तेरे अमर करों के स्पर्श से मेरा छोटा-सा मन
अतिक्रमण कर जाता है अपनी सीमाओं का
और जन्म देता है शब्द वाणी को।

तेरे **अपरिमेय अवदान** प्राप्त होते हैं मुझे
इन्हीं मेरे अतिशय लघु हाथों की अंजलि में।
युग बीत जाते हैं, पर तू उँड़ेलता ही जाता है,
फिर भी स्थान शेष रहता है और भरने के लिए।

[2]

जब तू मुझे आदेश देता है गाने के लिए, मुझे लगता है
गर्व से मेरा हृदय फट जायगा; मैं तेरे मुख की ओर देखता हूँ,
मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं।

मेरे जीवन में जो कुछ परुष है, बेसुरा है,
वह सब घुल जाता है एक मधुर स्वर-संगति में—
और मेरी आराधना पंख फैला देती है
सागर पार उड़ते हुए प्रसन्न पक्षी की भाँति।

मैं जानता हूँ तुझे प्रसन्नता होती है मेरे गायन से। जानता हूँ
तेरे सान्निध्य में उपस्थित हो पाता हूँ मैं
केवल एक गायक के रूप में ही।

पहुँचने का तेरे जिन चरणों तक
कर भी नहीं सकता था आकांक्षा, उन्हें स्पर्श करता हूँ
अपने गीत के विस्तीर्ण डैने के छोर से।

गायन के उल्लास से उन्मत्त हो मैं अपने को ही भुला देता हूँ
और तुझे, जो मेरा स्वामी है, 'सखा' कहकर पुकारता हूँ।

—'गीतांजलि' से

आस्थावान व्यक्ति

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

[1]

ऊँची, पहाड़ी, पथरीली राह पर,
निर्मम, जलती हुई बालू पर पाँव रख
आगे बढ़ता है आस्थावान व्यक्ति ।
उसके अनुगामी हैं शक्तिशाली, निर्बल, वृद्ध और नववयस्क,
राज्यों के शासक और कर्षक जो भूमि के हैं ।
कुछ थक जाते हैं, पाँवों में किन्हीं के पड़ जाते हैं छाले,
कुछ खीझते हैं, कुछ होते हैं शंकाग्रस्त,
एक-एक पग ज्यों-ज्यों आगे घसीट कर
पूछते हैं, और कितनी दूर है अंत इस मार्ग का ?
उत्तर में आस्थावान गाता है,
त्यौरी चढ़ाते हैं वे, घूँसा दिखलाते हैं, लेकिन नहीं कर पाते वे
उसका प्रतिरोध;
आगे ठेलता है उन्हें
गतिशील जनसमूह, अनिश्चित आशा का दबाव ।
निद्रा घटा देते हैं वे अपनी, कम कर देते हैं विश्रामकाल,
एक-दूसरे से होड़ करते हैं क्षिप्रता में गति की,
आशंकित रहते हैं वे सदैव अवसर जब आये तब
कहीं पीछे रह न जाएं, कोई अन्य
कहीं उनसे अधिक भाग्यवान न हो ।
दिन बीते जाते हैं,
पीछे ही पीछे हटता हुआ क्षितिज

लोभ से अदृश्य के
तब तक उन्हें अधिकाधिक ललचाता जाता है
जब तक वे नहीं हो जाते श्लथ, अशक्त।
उनकी आकृतियाँ कठोर हो जाती हैं,
उनके अपशब्दों का स्वर
ऊँचा, और ऊँचा होता जाता है।

[2]

रात है।
बरगद के नीचे बिछा रहे हैं यात्रीगण अपनी चटाइयाँ
हवा के एक झोंके से दीप बुझ जाता है
और अँधेरा गहराता है जैसे नींद गहराती है मूर्छा में।
भीड़ में से सहसा उठ खड़ा होता है कोई
और नेता की ओर निर्दयतापूर्वक करता इशारा बोल उठता है:
"झूठे भाविद्रष्टा, तूने हमें धोखा दिया।"
एक-एक कर सभी यह आवाज़ उठाने लगते हैं,
स्त्रियाँ अपनी घृणा को 'छि: छि:' करके व्यक्त करती हैं,
पुरुष गुर्राकर।
आखिर एक व्यक्ति, जो औरों से अधिक साहसी है,
उस पर प्रहार कर बैठता है।
वे उसकी सूरत नहीं देख पाते, पर एक नाशकारी क्रोधोन्माद के साथ
टूट पड़ते हैं उस पर,
और उसे तब तक मारते ही जाते हैं जब तक वह धराशायी नहीं
हो जाता,
उसके प्राण निकल नहीं जाते।
शांत है निशा, दूर से रुँधी हुई-सी आती है ध्वनि जल-प्रपात की
और तैरती है—
हल्की-सी खुशबू चमेली की।

[3]

यात्री भयभीत हैं।
स्त्रियाँ रोने लगती हैं, पुरुष अपनी दयनीयता की व्यथा के मारे
उन्हें चिल्ला-चिल्लाकर चुप हो जाने के लिए कहते हैं।

कुत्ते भोंकने लगते हैं और उन्हें निर्दयता से बेंत मार-मार कर चुप
कराया जाता है ।
रात अनंत जान पड़ती है और स्त्री-पुरुष आपस में झगड़ने लगते हैं
कि इसका दोषी कौन है ।
वे चीखते चिल्लाते हैं और ज्योंही अपने-अपने छुरे निकालने के
लिए उद्यत होते हैं,
अँधेरा छँटने लगता है, पहाड़ की चोटियों पर प्रभात की ज्योति
बिखर पड़ती है ।

सहसा वे हो जाते हैं स्थिर, शांत
और हाँफते हुए नीचे पड़े शव की ओर देखते रह जाते हैं ।
औरतें ज़ोर-ज़ोर से रोने लगती हैं और मर्द हथेलियों में अपने मुँह
छिपाने लगते हैं ।

कुछ औरों की आँखें बचा खिसक जाने की कोशिश करते हैं,
पर उनका पाप उन्हें उनके शिकार के साथ बाँधे रखता है ।
चकित होकर वे पूछते हैं एक-दूसरे से :
'हमें राह कौन दिखायेगा ?'
पूर्वदिशा का वृद्ध सिर झुकाये हुए कहता है :
'वही जो शिकार हुआ ।'
वे स्थिर और निःशब्द बैठे रहते हैं ।
बूढ़ा फिर बोलता है :
'शंकाग्रस्त हो हमने उसे अस्वीकृत किया
क्रुद्ध होकर उसकी हत्या की,
अब हम अपनायेंगे उसे प्यार से,
क्योंकि वह मृत्यु में हम सबका जीवन जी रहा है,
'वह हमारा महान् शिकार ।'
और वे सब खड़े होकर स्वर में स्वर मिलाकर गाते हैं :
'शिकार की जय हो, जय हो ।'

—'दि चाइल्ड' से (*1931*)

पद्मासीन बुद्ध के प्रति

सरोजिनी नायडू

प्रार्थना करती हुई आँखें और उल्लसित हाथ लिये
अपने पद्म-सिंहासन पर बैठे बुद्धदेव,
क्या है वह तुम्हारी गुह्य विह्वलता,
चरम और निर्विकार ?
कैसी शांति है वह, हमारी पहुँच के परे,
मिटा दी गई है जो मानस जगत से ?

हमारे रास्ते के हंगामे के बीच
परिवर्तन की हवा सदा बहती रहती है,
हमारे बीते हुए दिन के दुःखों को
अपदस्थ करते रहते हैं अजन्मे आगामी दिवस के शोक ।
सपने जगह लेते हैं सपनों की,
कलह के पीछे चलती है कलह,
और जीवन के जाल को उधेड़ डालती है मृत्यु ।

हमारे लिए हैं घोर परिश्रम और गर्मी,
हमारे अभिमान के चूर-चूर हुए रहस्य,
पराजय की कष्टकर शिक्षा,
जिसके पुष्प का विकसित होना स्थगित है,
फल जो वर्जित है
पर नहीं है बुद्धदेव वह तुम्हारे पद्म-सिंहासन की

शांति की परमोपलब्धि ।
अपने तुच्छ हाथों से करते हैं हम
अलभ्य इच्छापूर्ति के निमित्त व्यर्थ प्रयास,
डूबती हुई आस्था और थकने वाले पाँवों से
दिव्यतर शिखरों की प्राप्ति की चेष्टा,
पर हमारी आत्मा की स्वर्गोन्मुख भूख
न जीती जा सकती है, न परवश हो सकती है ।

और वह दूरस्थ, दुर्ग्राह्य लक्ष्य
अब भी संकेत करता हुआ, भागता हुआ,
हमें लुभाता ही जाता है,
और हमारे समस्त मर्त्य क्षण
एक सत्र मात्र हैं असीम के ।
कैसे हम पहुँचेंगे तेरे पद्म-सिंहासन के
महान्, अज्ञात निर्वाण तक ?

—'दि सेप्टर्ड फ्लूट' से

जीत

सरोजिनी नायडू

जीवन ने मुझे दान दिया हर्ष और गान का,
हँसी का, सौम्यता का, कांतिमती कीर्ति का,
फूली वन-विपटी-सी आशा का,
शलभों के पंखों-से गुंजायमान सपनों का ।
ऊँचे अधिकारासन पर बैठे हुए ईश्वर को चिंता हुई,
उसने ओ प्रेम, तुम्हें भेजा तारक लोक से
वेदना की तीक्ष्ण और दाहक सौगात लिये,
रोना सिखलाने मुझे ।

तुमने लिया मेरे हर्ष के पात्र को
और शुष्कता की रेती में उड़ेल दिया उसका मधु,
मेरे गीत से तुमने चुरा ली उसकी लय और ताल,
स्वच्छंद हास के मुँह पर प्रहार किया ।
जो सारे संसार में अपनी किरणों की ज्योति छिटकाता था
यश के उस दीप्त द्योतन को तुमने छीन लिया,
आशा की टहनियों को नोच-नोच कर नग्न कर दिया
और मार डाला
मेरे परवाले सपनों को ।

जीवन की नष्ट-भ्रष्ट सुंदरता के बीच
मैं अकेला खड़ा रहा, उदास, सान्त्वनाविहीन,

दु:ख से पराभूत।
अपने जाज्वल्यमान सिंहासन से
ईश्वर मुस्कराया मेरी विपन्न स्थिति को देख।
निष्ठुर, अविक्षुब्ध, भव्य,
तुम मेरे दु:ख से बहुत ऊँचे उठे, और तुमने कहा
"मैं उसका चुना हुआ सावन हूँ
तेरा गर्व चूर करने के लिए।"

'तुम जिसकी धृष्ट दृष्टि ने
दूर-दूर तक फेंका था
विपुल मायाजाल तुम्हारे प्रभुत्व का।
दावा किया था सगोत्रता का जिसने
प्रभात-तारे से,
मैत्री का किया था प्रयास जिसने
मध्यनिशा के सूर्य से,
देखो, मैं हूँ वह,
तुम्हारे बंदी मन को
आबद्ध रखने की शक्ति से सम्पन्न...
अभिमानी मन, जिसके आगे
विश्व के राष्ट्र नतमस्तक थे,
अब झुको मेरे आगे, झुको मेरे आगे।'

—'दि फेवर आफ दि डान' से (*1961*)

अतियथार्थवादी विज्ञान का एक स्वप्न

श्री अरविंद

किसी ने सपना देखा कि एक ग्रंथि ने "हैम्लेट" लिखा,
"मर्मेड में मधुपान किया, प्राप्त किया अमरत्व;"
ईजियन सागर के तट पर बैठी हार्मोनो की एक समिति ने
"इलियड" और "ओडिसी" की रचना की ।

बोधि वृक्ष के नीचे बैठी
प्रायः नग्न, ध्यानमग्न एक धायराइड ने
देख ली अमर ज्योति,
और फिर, अपनी विराट एकांतता से उठकर
उसने बातें कीं चक्र की और अष्ट मार्ग की ।

विकृत उदर से प्रचालित एक अस्त-व्यस्त मस्तिष्क
गरज गया यूरोप के आर-पार,
विजयी हुआ, शासन किया और फिर गिर गया ।
सेंट हेलेना से चला गया, संभवतः, स्वर्ग को ।
यों ही हिलता-डुलता रहा अतियथार्थवादी संसार तबतक,

जब तक एक वैज्ञानिक ने, अणुओं के साथ खेलते हुए,
विश्व को ही फूंक से उठा दिया,
इससे पहले कि ईश्वर चिल्लाकर उसे रोक पाता ।

—'लास्ट पोएम्स' से (*1952*)

ईश्वर का गुलाब

श्री अरविंद

ईश्वर के गुलाब, स्वर्ग की नीलिमा पर सिंदूरी चिन्ह,
परमानंद के गुलाब, अग्नि-मधुर, सप्त-रंग-रंजित सा उल्लासों से !
ओ चमत्कार, ओ वह्नि शिखा। हमारे मानवीयता के मर्म में उछल पड़ी,
अनाम के जो आवेग पुष्प, गुह्य नाम के मुकुल।

ईश्वर के गुलाब, अस्तित्व के शिखरों पर महान् प्रज्ञा-कुसुम,
ज्योति के गुलाब, चरम दृष्टि के निष्कलंक बीजकोष !
हमारी पार्थिवता के मन में निवास करो, ओ स्वर्णिम रहस्य, फूल,
कालातीत के शिखर पर के सूर्य, अद्भुत घड़ी के ओ अतिथिवर !

ईश्वर के गुलाब, असीम की दमिश्की शक्ति, अरुण प्रतिमा पराक्रम की,
सामर्थ्य के गुलाब, रात को बींधते हुए अपने हीरक भामंडल से।
मर्त्य के संकल्प में जाज्वल्यमान, तेरे विन्यास का अभिकल्प एक अचरज है,
अमरता की प्रतिमूर्ति, मानव में ईश्वरीयता का प्रस्फुटन।

ईश्वर के गुलाब, साकार दिव्य इच्छा के संघात से नीललोहित,
जीवन के गुलाब, पंखुड़ियों से भरे-पुरे, रंगों की वीणा तुम !
मधुर ऐंद्रजालिक गीति-रचना की भाँति मर्त्य के शरीर को
कर दो रूपांतरित,
हमारी पार्थिवता और दिव्यता के मध्य रचना करो सेतु की,
काल की संतति को कर दो अमरत्व दान।
ईश्वर के गुलाब, अनंत के मुख पर उल्लास की अरुणिमा-से।
प्रेम के गुलाब, समस्त अस्तित्व की मानिक-सी गहराई,
सौम्यता के आग्नेय मनोद्वेग
प्रकृति की गुहा में जो लालसा सिसकती है, उठी उसके मर्म से,
पृथ्वी को बना दो आवास चमत्कारिक का, जीवन को
श्रेयस् का अधर-स्पर्श।

—'कलेक्टेड पोएम्स एंड प्लेज़' से

ईश्वर का पुत्र

श्री अरविंद

जन्मा ईश्वर का पुत्र मानव-पुत्र रूप में,
कड़वी घूँट पीकर ऋण चुका दिया ईश्वरीय,
जिस ऋण का करना है अनंत को प्रतिदान,
इन पतितों के प्रति बाँधा जिन्हें उसकी ही इच्छा ने
मृत्यु और जीवन-संघर्ष से,
कांक्षा करते हैं जो व्यर्थ विश्रांति, चिर शांति की ।
ऋण-परिशोध संपन्न हुआ,
पूरा हुआ पुराना हिसाब ।
मानव आकार में अनंत कष्टग्रस्त है,
मोक्ष के विधान को हस्ताक्षर कर उसने
किया है प्रमाणित अपने ही रक्त से,
अपनी चिर-शांति के अनावृत किये हैं द्वार ।
देवता ने प्राणी की पूरी की माँग ।
पीड़ा और मृत्युकी यातना सहन करता है सर्जक,
प्रतिशोध करता है साकार देवत्व पर प्रहार ।
स्वर्ग तक मर्त्य का मार्ग उसके प्रेम में किया प्रशस्त,
मर्त्य अज्ञान के अंधकार का हिसाब
पूरा करने के लिए उसने ज्योति और जीवन तक अपना दे डाला है ।
पूरा हुआ भीषण, रहस्यमय बलिदान, ईश्वर का
लोकहित हेतु दिव्य तन का ही अपने समर्पण,
वधस्थल है उसका भाग्य ।
ढोता है वह सलीब, जिस पर कीलों से जड़ी जाती है
मानव आत्मा,

भीड़ के अपशब्द उसके सहयात्री हैं,
अपमान और उपहास उसके दावे की स्वीकृतियाँ हैं
उसके महान् उत्सर्ग का परिहास करती है,
मौतें दो चोरों की
फाँसी पर लटके जो उसके साथ।
खून बहाता हुआ मस्तक लिए चला वह
त्राणकर्ता की राह पर।
वह जिसने स्थापित कर लिया है तादात्म्य ईश्वर के साथ
मृत्यु से शरीर की आत्मा की उत्कट ज्योति का
चुकाता है मूल्य।
उसकी मृत्यु से विजयी होता है उसका अनश्वर ज्ञान।

—'सावित्री' से (*1954*)

अतिशय अद्भुत गुरुः श्री रमण

हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय

धारण कर ली है मानवाकृति शाश्वतता ने,
मानवायुष्य की छोटी-सी अवधि में सिकोड़कर अपने को,
देखो, अविनाशी हो गया है मनुष्य,
देश-काल-सीमा में आबद्ध स्वेच्छा से ।

सकरे-से मंच पर बैठा देखते हो उन्हें,
कोमलता, सौम्यता, शक्ति का दिव्यदर्शन है,
सीमा में अपनी हथेली के
लेकर वे बैठे हैं रहस्य निस्सीम का ।

हमारे एकाकीपन के पीछे वह हैं
दुर्लभ विवेक व्यक्त करती हुई वाणी, और
हमारी कल्पना के परे, पीछे हमारे स्वर के,
वह हैं हमारी पहुँच से परे वह एकांतता
अब-तक हो पाता है केवल जिसका अनुमान ।

ऊँचे बैठ हुए अति अद्भुत विशुद्ध गुरु,
जिसकी ओर हमारी मूक याचना है उन्मुख, एक-एक, अलग-अलग,
तुम्हारी मूर्ति को मन में धरने का करते प्रयत्न,
अपनी अन्वेषक ज्योति से ओ, भेद दो हमारी निशा ।

वह ज्योति जो परिचित है हमारी लुका-छिपी से,
जानती है किस अँधकार से आवृत हैं हम, किन
शोकग्रस्त मार्गों से हम चलते हैं। ओ मौनावलंबी गुरु,
ले चलो हमारे पाँवों को विश्रांति के शिखरों पर।

हम सब हैं श्रांत क्योंकि स्वर में मिले नहीं हैं
उस अस्खलित निःस्वरता से जो तुम हो,
हमारे पाँवों से बह रहा है रक्त, लक्ष्य अभी दूर है,
स्वामी, दया करो ! एक-एक व्रण का करो उपचार।

सीमा

डाम मोरेस

घाटी के ऊपर सूरज का सामना करते हैं बाज़ :
तेल के रंग का एक साँप पत्थरों में कुंडली मारता सरकता है ।
मैं चढ़ता जाता हूँ फिर भी एक अंतरंग अस्थियों में पाड़ पर,
बाज़ों से ऊँचा—तब तक मुझे प्रवेश नहीं मिल जाता
एक मिथक के बाहरी पार्श्व पर, जहाँ बाज़ ग़ायब हो जाते हैं ।
फिर भी साँप सरकता जाता है
नदी में, और अपनी जिह्वा से उपहास करता है उस मेढक का
जो मौत में पेट तक धँसा हुआ बैठा है ।

साँस लो, वे भी ग़ायब हो गये । यदि मैं मूंदता हूँ अपनी आँखें,
पर्वत और सूर्य त्वचा करते हैं त्याग, और निःस्वर समय
एकमात्र साक्षी रह जाता है उन खुली खदानों में जहाँ

चमकता है वह चेहरा जिसे मैं छिपा सकता,
इस अँधेरे सीमाप्रान्त में भी, छंद-तुक में ।
मैं कहीं भी चला जाऊँ, वह होती है वहाँ ।

—'लास्ट पोएम्स' से (*1960*)

गुलाब की दुनिया

पी० लाल

यह गुलाब की दुनिया है,
यहाँ सौरभ ही अर्थ है
और जीवन है सतर्क-पल्लव-प्रसूति ।
यह मेरे मित्र का गुलाबों का बाग़ है :
स्वागत नहीं है यहाँ, न विदाई—
प्रेम के निमित्त से ही तुम्हें रखा जायेगा याद ।

अजनवी, यदि तुम्हें मानूँ मैं मुद्रा मात्र,
कोमल समीर में केवल एक भंगिमा,
तो मुझे अचरज होगा कि गुलाब क्यों है सौरभमय ।

पर यह मेरे मित्र का गुलाबों का बाग़ है ।
तुम यहाँ आओगे तो फूल या पत्ती के रूप में ।
यहाँ हैं दिन ढलते के आनंद,
सूर्यास्त-पूर्व चाय, सुखद वार्तालाप,
गिलहरियाँ, घर लौटती गौरय्याँ ।
इस गुलाब की दुनिया का अभिप्राय
व्यक्त करता है जिन शब्दों को
वे जीवन से अधिक तेजोमय होते है ।

—'दि पैरटस् डेथ एण्ड अदर पोएम्स' से *[1960]*

अनंत परमानंद की संतान

स्वामी विवेकानंद

हाँ, तो मानव आत्मा शाश्वत और अनश्वर है, सम्पूर्ण और असीम है, और मृत्यु का अर्थ है केवल एक काया से दूसरी काया में केंद्र का स्थानांतरण। हमारे पिछले कर्मों से हमारा वर्तमान निर्धारित होता है, और भविष्य वर्तमान के द्वारा। एक जन्म से दूसरे जन्म और एक मृत्यु से दूसरी मृत्यु तक जाने में आत्मा का या तो ऊर्ध्वोन्मुख विकास होता है या प्रत्यावर्तन। पर यहीं एक और प्रश्न उठता है : क्या मनुष्य झंझावात में फँसी एक छोटी-सी नौका है जो एक क्षण एक उफनती हुई लहर के सिरे पर ऊँची उठा ली जाती है और दूसरे क्षण गहरे गह्वर में गिरा दी जाती है ? क्या वह केवल अपने ही भले-बुरे कर्मों के आधार पर इधर से उधर लुढ़काया जाता रहता है ? क्या वह जो कार्य-कारण की सतत क्षुब्ध, निरंतर वेगवती, अनाराध्य लहर में पड़ा हुआ एक अशक्त, असहाय भग्नपोत है ? क्या वह उस कर्मफल के चक्र के नीचे पड़ा कीड़ा है जो न विधवा के आँसू के लिए ठहरता है, न अनाथ की पुकार पर रुकता है···जो कुछ सामने आया उसे पीसता हुआ आगे बढ़ता जाता है ? इस विचार मात्र से दिल बैठ जाता है, पर यही निसर्ग का नियम है। क्या कोई भी आशा नहीं है ? क्या निकल भागने की कोई भी राह नहीं है ? यह थी निराशा के मर्म के अंतस्तल से निकली हुई चीख। वह करुणा के सिंहासन तक पहुँची, और आशा और आश्वासन के शब्द अवतरित हुए और उन्होंने वैदिक युग के एक ऋषि को प्रेरित किया, और उसने संसार के सामने खड़े होकर तूर्यनाद के से स्वर में कहा: "सुनो, जो अनंत परमानंद की संतानों···तुम भी सुनो ओ ऊँचे स्तरों के निवासियों ! मैंने पुराण पुरुष को पा लिया है, जो सारे अंधकार और भ्राँति के परे है। अकेले उसे ही जानकर तुम बार-बार मरने से बच सकते हो।" 'अनंत परमानंद की

संतान !' कितना मधुर, कैसा आशाप्रद नाम है। अनंत परमानंद के उत्तराधिकारी...हाँ, हिंदू तुम्हें पापी कहना अस्वीकृत करता है। तुम परमेश्वर की संतति हो, अनंत परमानंद के सहभागी, पुनीत, परिपूर्ण जीव। तुम पृथ्वी पर देवत्व हो। पापी ? मनुष्यों को ऐसा कहना पाप है। मानव-प्रकृति के विरुद्ध यह एक स्थायी अपलेख है। उठो, ओ शेरों, और यह भ्रम छोड़ दो कि तुम भेड़ें हो ! तुम अमर आत्माएँ हों, मुक्त जीव हो, शाश्वत और धन्य हो। तुम पदार्थ नहीं हो। तुम शरीर नहीं हो, जड़ वस्तु तुम्हारी सेविका है, तुम जड़ वस्तु के सेवक नहीं हो।

इस प्रकार वेदों ने घोषणा की, निष्करुण नियम-संहिता की नहीं, कार्य और कारण के अनंत बंदीगृह की नहीं, वरन् इसकी कि इन समस्त नियमों के ऊपर शक्ति और जड़ वस्तु के एक-एक अणु में व्याप्त, वह एक है, "जिसके आदेश पर हवा चलती है, आग जलती है, मेघ बरसते हैं और मृत्यु पृथ्वी पर संचरण करती है।"

और उसकी प्रकृति क्या है ?

वह सर्वव्यापी है, शुद्ध और निराकार, सर्वशक्तिमान और करुणामय। "तू हमारा पिता है, तू हमारी माता है। तू हमारा प्रिय सखा है। तू ही सभी शक्ति का स्रोत है। हमें शक्ति दे। विश्व के भारों का वाहक तू ही है; इस छोटे से जीवन के तुच्छ भार को वहन करने में हमारी सहायता कर।" वैदिक ऋषियों ने इस प्रकार गाया था। और हम उसकी पूजा कैसे करें ? प्रेम के द्वारा। "उसकी आराधना अपने प्रियतम के समान करनी चाहिए, इस जीवन अथवा अगले जीवन की सभी वस्तुओं से अधिक प्रिय।"

वेदों में उद्घोषित प्रेम का सिद्धांत यह है। हम देखें कि यह किस प्रकार पूर्णतया विकसित और प्रतिपादित किया गया कृष्ण के द्वारा, जिन्हें हिंदू पृथ्वी पर परमेश्वर का अवतार मानते हैं।

उनका विश्वास था कि मनुष्य को इस जगत में कमल-पत्र की भाँति रहना चाहिए, जो जल से उत्पन्न तो होता है पर कभी भीगता नहीं। मनुष्य को इस संसार में ऐसे ही रहना चाहिए...उसका मन ईश्वर में लगा हो, हाथ कर्म में।

इहलोक अथवा परलोक में पुरस्कृत होने के निमित्त ईश्वर से प्रेम करना अच्छा है, पर उससे अच्छा है प्रेम के निमित्त ईश्वर से प्रेम करना। प्रार्थना है: "प्रभु, मैं न संपदा चाहता हूँ, न संतति, न विद्या। यदि यही तेरी इच्छा

है तो मैं सौ जोखम उठाऊँगा पर मुझे केवल यह दे कि मैं बिना प्रतिफल की आशा के तुझसे प्रेम कर सकूँ···निःस्वार्थ भाव से, केवल प्रेम के लिए।"

भारत के तत्कालीन एक सम्राट को, जो कृष्ण के भक्त थे, शत्रुओं द्वारा खदेड़े जाकर अपना सिंहासन छोड़कर हिमालय के एक वन में अपनी रानी के साथ शरण लेनी पड़ी। वहाँ एक बार उससे उसकी रानी ने पूछा कि ऐसा क्यों हुआ कि उस जैसे परम सात्विक मनुष्य को इतना कष्ट सहना पड़ा। युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "देखो प्रिये' हिमालय की ये पर्वत श्रेणियाँ कितनी भव्य और सुन्दर हैं। मैं इनसे प्रेम करता हूँ। ये मुझे कुछ नहीं देतीं। पर भव्य और सुंदर को प्यार करना मेरा स्वभाव है। अतः मैं इनसे प्यार करता हूँ। इसी प्रकार मैं प्रभु को प्यार करता हूँ। वे समस्त सौंदर्य, समस्त उत्कृष्टता के स्रोत हैं। प्रेम के एकमात्र सुपात्र वे ही हैं। उनसे प्रेम करना मेरा स्वभाव है, इस कारण मैं उन्हें प्यार करता हूँ। मैं किसी चीज के लिए प्रार्थना नहीं करता, कोई भी चीज नहीं माँगता। वे जिस स्थिति में मुझे रखना चाहें रखें। प्रेम के निमित्त मुझे उनका प्यार करना है। मैं प्रेम का व्यापार नहीं करता।"

वेद बताते हैं कि आत्मा दिव्य है, केवल जड़-तत्व के पाश में बँधी हुई है और परिपूर्णता की स्थिति तब प्राप्त होगी जब यह बंधन टूट जायेगा। अतः उद्धार के लिए वे जिस शब्द का प्रयोग करते हैं वह है 'मुक्ति'···स्वतंत्रता, अपूर्णता के बंधनों से छुटकारा, मृत्यु और दुःख से छुटकारा।

ईश्वर की दया से ही वह बंधन छूटते हैं, और वह दया उन्हें प्राप्त होती है जो शुद्ध हैं अतः शुद्धता ईश्वरीय करुणा की शर्त है। किस प्रकार वह करुणा अभिव्यक्त होती है! शुद्ध मन वाले व्यक्ति के प्रति ईश्वर अपने को उद्घाटित करता है, और शुद्ध मन वाले निर्मल व्यक्ति उसका दर्शन करते हैं, हाँ, इस जीवन में ही। उस समय और केवल तभी, मन की सारी कुटिलता ऋजुता में परिणत हो जाती है। तब समस्त संशय समाप्त हो जाते हैं। तब मनुष्य कार्य-कारण के भयावह विधान का शिकार नहीं रह जाता। यही हिंदू धर्म का वास्तविक केंद्र बिंदु उसकी मूलभूत अवधारणा है। हिंदू केवल शब्दों और सिद्धांतों के सहारे रहना नहीं चाहता। यदि सामान्य, इंद्रियगम्य अस्तित्वों के परे और कोई अस्तित्व है तो वह उससे साक्षात्कार चाहता है। यदि उसके पास कोई आत्मा है जो जड़ पदार्थ नहीं है, यदि कोई परम करुणामय परमात्मा है, तो वह सीधे उसके सान्निध्य में पहुँचना चाहता है। उसे ईश्वर के दर्शन करना है। सारी शंकाएँ केवल उसी से नष्ट हो सकती हैं। अतः हिंदू दृष्टा आत्मा के विषय में, ईश्वर के विषय में जो

सर्वोत्तम प्रमाण देता है वह यह कि : मैंने परमात्मा का दर्शन किया है; मैंने ईश्वर को देखा है।" और परिपूर्णता की वही एकमात्र शर्त है। किसी सिद्धान्त या वाद विशेष पर विश्वास करने के लिए किये गये प्रयासों में हिंदू धर्म नहीं है, वह है आत्मानुभूति में; विश्वास करने में नहीं है, होने और बनने में है।

अतः उसके शास्त्र का समस्त उद्देश्य है निरंतर प्रयास के द्वारा पूर्णता की प्राप्ति, दिव्यता की प्राप्ति, ईश्वर की प्राप्ति, और ईश्वर का दर्शन; और यह ईश्वर के सान्निध्य की प्राप्ति, ईश्वर का दर्शन, वैसा परिपूर्ण बनना जैसा परिपूर्ण स्वर्ग में निवास करने वाला पिता है…ये हैं हिंदुओं के धर्म के संघटक तत्व।

—'शिकागो ऐड्रेसेज' से

साधुता क्या है ?

•

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रश्न किया जायगा कि साधुता (भलाई) क्या है ? हमारी नैतिक प्रकृति का क्या अर्थ है ? मेरा उत्तर है कि जब मनुष्य को अपने वास्तविक अहं की व्यापकता का बोध होने लगता है, जब वह यह जान जाता है कि वह उस क्षण जैसा जान पड़ता है उससे कहीं बृहत्तर है, तब उसे अपनी नैतिक प्रकृति का बोध होने लगता है। तब उसे इसका ज्ञान होता है कि उसे क्या बनना है, तब उसकी अननुभूत स्थिति उससे अधिक वास्तविक हो जाती है जिस स्थिति का उसे सीधे अनुभव हो रहा होता है। अनिवार्यतः जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाता है, उसकी संकल्प-शक्ति उसकी इच्छाओं का स्थान ले लेती है। क्योंकि संकल्प-शक्ति उस विराटतर जीवन की चरम कामना है जिसका अधिकतर भाग हमारी पहुँच के परे है, जिसके लक्ष्य अधिकांशतः हमारी आँखों से ओझल रहते हैं। तब होता है संघर्ष हमारे क्षुद्रतर व्यक्तित्व का हमारे बृहत्तर व्यक्तित्व से, हमारी वासनाओं का हमारे संकल्प से, उन वस्तुओं की कामना का जो हमारी इन्द्रियों को प्रभावित करती हैं, उस अभीष्ट से जो हमारे मन में रहता है। तब हम अंतर करने लगते हैं उसमें जिसकी हमें तत्काल कामना होती है और जो सत् है। क्योंकि सत वह है जो हमारे बृहत्तर अहं के लिए कांक्ष्य है। इस प्रकार हमारा सत का बोध अपने जीवन के प्रति अधिक सच्ची दृष्टि से उत्पन्न होता है, वह सच्ची दृष्टि है जीवन के क्षेत्र की समग्रता के प्रति एक संयोजित दृष्टि जो केवल उसका ही ध्यान नहीं रखती जो हमारे सामने प्रस्तुत है वरन् उसका भी जो नहीं है, और सम्भवतः कभी नहीं हो सकता। मनुष्य, जो कि दूरदर्शी है, अपने उस जीवन के बारे में चिंता करता है जिसका अभी अस्तित्व नहीं है, जो वर्तमान है उससे कहीं अधिक। अतः वह अपनी वर्तमान वासनाओं का अननुभूत भविष्य के लिए

त्याग करने के लिए प्रस्तुत रहता है। इसमें ही उसकी महत्ता है, क्योंकि वह सत्य का साक्षात्कार कराता है। कुशलतापूर्वक स्वार्थपरायण होने के लिए भी मनुष्य को यह सत्य स्वीकारना ही पड़ता है, उसे अपनी तात्कालिक वासनाओं पर नियंत्रण करना ही पड़ता है—दूसरे शब्दों में, उसे नीतिपरक बनना ही पड़ता है। क्योंकि हमारी नैतिक ऊर्जा ही वह मन:शक्ति है जिससे हम यह जान पाते हैं कि जीवन केवल निरुद्देश्य और असंबद्ध खंडों से ही नहीं बना है। मनुष्य की यह नैतिक चेतना उसे केवल यह देखने की शक्ति ही नहीं देती कि काल की अनंतता में भी अहं का नैरंतर्य है, उसे यह जानने की शक्ति भी प्रदान करती है कि केवल आत्मकेन्द्रित होकर वह सत्य को नहीं पा सकता। वह तथ्यतः जितना बड़ा है उससे अधिक बड़ा सत्यतः है। वह सचमुच उन व्यक्तियों का हो जाता है जो उसके अपने व्यक्तित्व के अंश नहीं हैं, और जिनसे संभवतः वह कभी परिचित भी न होगा। जिस तरह उसके मन में अपने उस भावी अहं की एक चेतना है, जो उसकी वर्तमान चेतना की परिधि से परे है, वैसे ही उसके मन में अपने बृहत्तर अहं के प्रति भी एक चेतना है जो उसके व्यक्तित्व की सीमा के बाहर है। ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जिसे, किसी न किसी सीमा तक, इस प्रकार का भाव न हो, जिसने कभी किसी अन्य व्यक्ति के लिए अपनी स्वार्थपूर्ण इच्छा का बलिदान किया हो, जिसने कभी कोई क्षति या कष्ट सहने में इस कारण सुख का अनुभव न किया हो कि उसकी वजह से किसी दूसरे को कोई सुख मिल रहा है। यह सत्य है कि मनुष्य निर्लिप्त प्राणी नहीं है, उसका एक सार्वलौकिक पक्ष भी है। जब उसे इसकी पहचान हो जाती है तब वह महान् हो जाता है। पाप की ओर सर्वाधिक प्रवृत्त स्वार्थपरता को भी, जब वह पाप करने के लिए सामर्थ्य प्राप्त करना चाहती है, यह स्वीकारना ही पड़ता है, क्योंकि यह नहीं हो सकता कि वह सत्य की उपेक्षा करके भी शक्ति पा सके। अतः सत्य की सहायता की अर्हता अर्जित करने के लिए, स्वार्थपरता को भी एक सीमा तक, नि:स्वार्थ बनना ही पड़ता है। दल के रूप में गठित रहने के लिए दस्युओं के दल को भी नीतिपरायण बनना ही पड़ता है; भले ही वे सारे संसार को लूटें, पर एक-दूसरे को कभी नहीं लूटते। अनैतिक उद्देश्य को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए कुछ नैतिक साधनों का भी उपयोग करना आवश्यक है। वस्तुतः अनेक बार हमारी नैतिक शक्ति ही हमें प्रभावपूर्ण ढंग से पाप करने, अपने लाभ के निमित्त अन्य व्यक्तियों का शोषण करने, और दूसरों से उनके न्यायपूर्ण अधिकारों का अपहरण करने के लिए अपेक्षित सामर्थ्य प्रदान करती है। पशु का जीवन निर्नैतिक होता है, क्योंकि उसे केवल वर्तमान क्षण का ही बोध होता

है। मनुष्य का जीवन अनैतिक हो सकता है, पर इसका अर्थ यही है कि उसके लिए नैतिक आधार आवश्यक है। जो अनैतिक है वह अपूर्णतया नैतिक है, जैसे कि असत्य अंशतः सत्य होता है, अन्यथा वह असत्य भी नहीं हो सकता। न देख पाना अँधा होना है, पर ग़लत देखने का अर्थ है अपूर्ण ढंग से देखना। मनुष्य की स्वार्थपरता जीवन में कोई संबद्धता, कोई उद्देश्य देख पाने का प्रारम्भिक उपक्रम है, और उसके आदेशों के अनुरूप चलने के लिए आत्मनियंत्रण और व्यवस्थित आचरण की आवश्यकता होती है। स्वार्थी व्यक्ति अपने अहं के निमित्त कष्ट सहने के लिए सहर्ष प्रस्तुत हो जाता है, वह बिना ज़रा भी शिकायत किए दुःख और दैन्य सह लेता है क्योंकि वह जानता है कि एक सीमित कालावधि के परिप्रेक्ष्य में देखने पर जो पीड़ा और कष्ट लगता है वही उससे वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में उसके ठीक विपरीत हो जाता है। इस प्रकार क्षुद्रतर मनुष्य के लिए जो क्षति है वही महत्तर व्यक्ति के लिए लाभ है। इसका विलोम भी उतना ही सत्य है।

जो व्यक्ति एक आदर्श के लिए, अपने देश के लिए, मनुष्य जाति के हित के लिए जीता है उसके लिए जीवन का एक व्यापक अर्थ होता है और उस सीमा तक कष्ट उसके लिए महत्वहीन हो जाता है। साधुता का जीवन व्यतीत करना ही सार्वजनीन जीवन जीना है। सुख केवल अपने अहं के निमित्त होता है, पर भलाई का संबंध समस्त मानवता से और सदा सर्वदा के लिए होता है। सत् के दृष्टिकोण से सुख और दुःख के अर्थ बदल जाते हैं, यहाँ तक कि सुख त्याज्य हो सकता है और उसके बदले कष्ट की कांक्षा की जा सकती है और जीवन को एक उच्चतर मूल्यवत्ता प्रदान करने वाली के रूप में स्वयं मृत्यु ही अभिनंदनीय हो सकती है। मनुष्य के जीवन के इन उच्चतर दृष्टिकोणों से—जो सत् के दृष्टिकोण हैं—सुख और दुःख अपना चरम मूल्य गंवा देते हैं। इतिहास साक्षी है कि प्राणों का उत्सर्ग करने वाले शहीदों ने इस सत्य को प्रमाणित किया है, और हम अपने दैनंदिन जीवन में इसे प्रतिदिन अपनी छोटी-छोटी शहादतों से प्रमाणित करते रहते हैं। जब हम समुद्र से एक घड़ा भर पानी निकालते हैं तब उसका एक वजन होता है, पर जब हम समुद्र में स्नान करते हैं तब हजारों घड़े भर पानी हमारे सिर पर से बह जाता है और हमें उसके वजन का पता तक नहीं चलता। अपने अहं के घड़े को ले चलने में हमें अपनी सारी शक्ति लगा देनी पड़ती है। अतः जहाँ स्वार्थ के स्तर पर सुख और दुःख का अपना पूरा-पूरा वजन रहता है, नैतिक स्तर पर वे इतने हल्के हो जाते हैं कि जो व्यक्ति उस तक पहुँच जाता है वह पीस डालने वाले

कठिन परीक्षणों के सामने अपने धीरज के कारण और द्वेषपूर्ण अत्याचार के प्रति सहिष्णुता के कारण हमें अतिमानव-सा जान पड़ता है।

पूर्ण साधुता का जीवन व्यतीत करना अनंत के तात्विक अंश के रूप में अपने अस्तित्व की उपलब्धि करना है। जीवन के विषय में यही वह सर्वाधिक व्यापक दृष्टि है जो जीवन की पूर्णता के प्रति नैतिक चेतना की अपनी स्वभावजन्य शक्ति के द्वारा हमें प्राप्त है। और बुद्धि की शिक्षा इसी नैतिक शक्ति के अधिकतम विकास करने की है, यह जानने की है कि हमारा कार्यक्षेत्र हमारे संकुचित अहं के स्तर तक ही सीमित नहीं है। खीस्त के ईश्वरीय राज्य की कल्पना यही है। जब तक हम उस सार्वलौकिक जीवन को उपलब्ध कर लेते हैं जो नैतिक जीवन है, तब हम सुख-दुःख के बंधनों से छुटकारा पा जाते हैं और तब हमारे अहं के द्वारा परित्यक्त स्थान में निस्सीम प्रेम से उत्पन्न अकथनीय आनन्द भर जाता है। इस स्थिति में आत्मा की क्रियाशीलता और भी बढ़ जाती है, हाँ, उसकी सक्रियता की प्रेरक कारण इच्छाएँ नहीं, स्वयम् उसी का आनन्द हो जाता है। यह है 'गीता' का 'कर्मयोग', निःस्वार्थ साधु आचरण द्वारा अनंत जीवंता के साथ अभिन्न हो जाने का मार्ग।

—'साधना' से

अहिंसक प्रतिरोध (सत्याग्रह)

मोहनदास करमचंद गांधी

अहिंसक प्रतिरोध (सत्याग्रह) कष्ट सहन द्वारा अधिकार पाने का एक उपाय है : सशस्त्र विरोध का विपर्यय है। जब मैं वह काम अस्वीकृत करता हूं जो मेरे मन को बुरा लगता है तब मैं आत्मिक शक्ति का प्रयोग करता हूं। उदाहरणार्थ, वर्तमान शासन ने एक विधान पास किया है जो मेरे ऊपर लागू होता है। मैं उसे पसंद नहीं करता। यदि हिंसा का प्रयोग करके मैं उस विधान को निरस्त करने के लिए शासन को विवश करूं तो मैं उस बल का प्रयोग कर रहा होऊंगा जिसे शारीरिक बल कहते हैं। यदि मैं उस विधान का पालन न करूं और उसके उल्लंघन का दंड स्वीकार कर लूं, तो वह आत्मिक शक्ति का प्रयोग होगा। इसमें आत्म-बलिदान निहित है।

सभी लोग यह मानते हैं कि दूसरों की बलि करने की अपेक्षा आत्म-बलिदान अधिक श्रेयस्कर है। इसके अतिरिक्त, यदि इस प्रकार की शक्ति का प्रयोग किसी अन्यायपूर्ण कार्य के लिए किया जाता है तो केवल प्रयोगकर्ता ही कष्ट सहता है। अपनी भूल के लिए वह दूसरों से कष्ट-सहन नहीं कराता। पहले भी लोगों ने ऐसे बहुत से काम किये हैं जो बाद में गलत साबित हुए। पूरी तरह सही होने का दावा कोई भी मनुष्य नहीं कर सकता, न इसका दावा कि कोई वस्तु केवल इस कारण ग़लत है कि वह उसे ग़लत मानता है। पर जब तक यही उसका सुविचारित मत है कि वह वस्तु ग़लत है तब तक उसके लिए वह ग़लत ही होगी। इस कारण यह उचित है कि जिस काम को वह ग़लत मानता है उसे न करे और न करने का जो भी दुष्परिणाम हो उसे सहन करे। आत्मिक शक्ति के प्रयोग की यही कुंजी है।

यदि शरीर इसके लिए प्रशिक्षित न हो तो सत्याग्रही बनना कठिन है। सामान्यतः अधिक लाड़-प्यार से पालित होने के कारण निर्बल शरीर में

निवास करने वाला मन भी निर्बल होता है, और जहां मनःशक्ति नहीं है वहां आत्मिक शक्ति हो ही नहीं सकती। बाल-विवाह और विलासितापूर्ण जीवन को त्याग कर हमें अपने शरीर का सुधार करना होगा। यदि मैं किसी क्षण, जर्जर देह वाले व्यक्ति से तोप का सामना करने के लिए कहूं तो मैं अपनी खिल्ली उड़वाऊंगा। सत्याग्रही बनना सरल है, पर जितना सरल हैं उतना ही कठिन भी है। मैं एक चौदह वर्ष के बालक को जानता हूं जो सत्याग्रही बना। मैं ऐसे रुग्ण व्यक्तियों को भी जानता हूं जो सत्याग्रही बन सके। और मैंने ऐसे शरीर से बलिष्ठ और सुखी व्यक्तियों को भी जाना है जो सत्याग्रह करने में सफल नहीं हो सके। बहुत अनुभव के बाद मुझे ऐसा लगने लगा है कि जो देश की सेवा के लिए सत्याग्रही बनना चाहते हैं उन्हें पूरी तरह संयमशील बनना पड़ेगा, निर्धनता स्वेच्छा से स्वीकारनी पड़ेगी, सत्य का अनुसरण करना पड़ेगा और भय से मुक्त होना पड़ेगा।

संयमशीलता उन सबसे महत्वपूर्ण अनुशासनों में एक है जिनके बिना मन की अपेक्षित दृढ़ता मिल नहीं सकती। असंयमशील व्यक्ति काम करने की शक्ति गंवा देता है, पुंसत्वहीन और कायर हो जाता है। जिसका मन वैषयिक वासनाओं में प्रवृत्त हो जाता है वह कोई बड़ा प्रयास नहीं कर सकता। यह बात अनगिनत उदाहरणों से प्रमाणित की जा सकती है। स्वभावतः प्रश्न उठता है कि तो फिर विवाहित व्यक्ति क्या करे ? यह सवाल उठता तो है पर आवश्यक नहीं है कि उठे। पति और पत्नी जब अपनी वासनाओं की पूर्ति करते हैं तब उनका कार्य भी जैविक आनन्द प्राप्ति ही होता है। वंश चलाते रहने के निमित्त की जाने वाली इस प्रकार की आनन्द प्राप्ति के अतिरिक्त ऐसी आनन्द प्राप्ति सर्वथा निषिद्ध है। पर सत्याग्रही को तो इस सीमित विलासिता से भी बचना होता है, क्योंकि उसके संतान की कांक्षा ही नहीं हो सकती। अतः विवाहित व्यक्ति भी पूर्णतः संयमशील रह सकता है। यह विषय अधिक विस्तृत विवेचन के योग्य नहीं है। बहुतेरे प्रश्न उठते हैं : अपनी पत्नी को अपने साथ कैसे रखा जाय ? उसके अधिकार क्या हैं ? इस तरह के और भी प्रश्न हैं। फिर भी जो महान् कार्य में योग देना चाहते हैं वे इन पहेलियों का हल निकाल ही लेते हैं।

जिस तरह संयमशीलता आवश्यक है वैसे ही धनहीनता भी। द्रव्यलाभ की आकांक्षा और सत्याग्रह की परस्पर संगति नहीं बैठ सकती। जो धनवान् हैं उनसे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि अपना धन फेंक देंगे। पर उनसे धन के प्रति उदासीन होने की अपेक्षा की जा सकती है। उन्हें इसके लिए

प्रस्तुत रहना चाहिए कि चाहे एक-एक पैसे से हाथ धोना पड़ जाय मगर सत्याग्रह न छोड़ेंगे।

हमारे विचार-विमर्शों के दौरान सत्याग्रह को सत्य शक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है। किसी भी कीमत पर क्यों न हो, सत्य का पालन तो करना ही पड़ेगा। इस संदर्भ में इस प्रकार के सैद्धान्तिक प्रश्न उठा करते हैं जैसे प्राणों की रक्षा के लिए असत्य भाषण किया जा सकता है या नहीं, आदि। पर ऐसे प्रश्न उन्हीं के मन में उठते हैं जो असत्य का समर्थन करना चाहते हैं। जो हर समय केवल सत्य का ही अनुसरण करना चाहते हैं वे इस प्रकार की उलझनों में पड़ते ही नहीं। और पड़ भी जांय तो भी ग़लत स्थिति में पड़ने से बच जाते हैं।

भयहीनता के बिना सत्याग्रह एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ सकता। वे ही सत्याग्रह का मार्ग अपना सकते हैं जो भय से मुक्त हैं, चाहे वह भय अपनी जायदाद के विषय में हो, या प्रतिष्ठा की मिथ्या भावना के कारण हो, या बंधु-बांधवों के लिए हो, या सरकार से हो, शारीरिक आघात का हो, या मृत्यु का हो।

इन नियमों का पालन केवल कठिन होने के कारण त्याज्य नहीं है। जो स्वतः बढ़ाई न गई हो उस कठिनाई या कष्ट का सामना कर पाने की क्षमता प्रकृति ने मनुष्य को दी है। जो देश की सेवा करना नहीं चाहते उन लोगों के लिए भी ये गुण वांछनीय हैं। इस संबंध में कोई भ्रम न होना चाहिए कि जो शस्त्रास्त्रों के उपयोग की क्षमता प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें भी किसी न किसी हद तक इन गुणों से संपन्न होना ही पड़ेगा। इच्छामात्र से ही कोई योद्धा नहीं हो जाता। योद्धा बनने की आकांक्षा रखने वाले व्यक्ति को संयमी होना होगा, और उसे निर्धनता को ही अपनी नियति के रूप में प्रसन्नतापूर्वक स्वीकारना होगा। ऐसे योद्धा की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती जो निर्भय न हो। यह सोचा जा सकता है कि उसे पूरी तरह सत्यपरायण होने की आवश्यकता नहीं है, पर वह गुण सच्ची भयहीनता का अनुगामी है। जब कोई सत्य का त्याग करता है तब वह किसी न किसी रूप या आकार में भय के कारण ही ऐसा करता है। अतः ऊपर के चारों गुणों में से किसी को भी आतंकित नहीं होना चाहिए। इसी जगह यह कह देना उचित होगा कि शारीरिक शक्ति में विश्वास रखने वाले व्यक्ति को ऐसे और कई निरर्थक गुणों की आवश्यकता होती है जिनकी सत्याग्रही को कभी ज़रूरत नहीं पड़ती। और आप यह पायेंगे कि तलवार चलाने वाले को जो अतिरिक्त आयास

करना पड़ता है वह भयहीनता के अभाव के कारण ही आवश्यक होता है। यदि साकार निर्भयता है तो तलवार उसी क्षण उसके हाथ से गिर जायगी। उसे तलवार के आधार की आवश्यकता ही न रहेगी। जो घृणारहित है उसे तलवार की जरूरत नहीं है। एक बार एक आदमी, जिसके हाथ में सिर्फ़ एक छड़ी थी, शेर के सामने आ गया। तुरंत स्वभावतः उसने अपनी रक्षा के लिए छड़ी उठायी। उस व्यक्ति को पता चल गया कि वह व्यर्थ ही अपनी निर्भयता की डींग हांका करता था जबकि उसका हृदय सचमुच भय-रहित नहीं था। उसी क्षण उसने छड़ी नीचे गिरा दी और अपने को बिल्कुल भयहीन पाया।

—'इंडियन होम रूल' से

मनुष्य : एक सांक्रांतिक जीव

श्री अरविंद

मनुष्य एक सांक्रांतिक जीव है, अंतिम नहीं। क्योंकि मनुष्य में उसके मन से परे ऊपर-ऊपर उठती हुई ऐसी कांतिमती श्रेणियाँ हैं जो दिव्य अतिमानवता तक पहुंच जाती हैं। उसी में हमारी नियति और हमारे महत्वाकांक्षी किन्तु आक्रान्त और सीमाबद्ध भौतिक अस्तित्व के उन्मुक्त होने की कुंजी है।

मनुष्य से हमारा अभिप्राय है जीवंत शरीर में बंदी मन से। पर मन ही चेतना की सर्वाधिक सम्भाव्य शक्ति नहीं है, क्योंकि मन सत्य का अधिकारी नहीं, केवल उसका अबोध अन्वेषी है। मन के परे चेतना की एक अतिमानसिक और गूढ़ज्ञानवादी शक्ति है जो सत्य की सनातन अधिकारिणी है। अपने उद्गमस्थल पर यह अतिमानस गत्यात्म चेतना है, प्रकृत्या और अविच्छेद्य रूप से यह दिव्य ज्ञाता और सर्जक की निःसीम बुद्धिमत्ता भी है, अपरिमित संकल्प शक्ति भी। अतिमानस ही अतिमानव है। पार्थिव प्रकृति के द्वारा प्राप्य अगला स्पष्ट दीखनेवाला विकास का गौरवशाली चरण है गूढ़ज्ञान पर आधारित अतिमानवता।

पृथ्वी के विकास-क्रम में अगली आसन्न उपलब्धि है मानव से अतिमानव तक का संचरण। यह अनिवार्य है क्योंकि यह एक साथ अन्तरात्मा की इच्छा भी है और प्रकृति की प्रक्रिया की तार्किक परिणति भी।

भौतिक और जैविक जगत में मानवीय सम्भावना का प्रादुर्भाव एक आने वाली दिव्य ज्योति की पहली झलक थी; पदार्थ से उत्पन्न होने वाले देवत्व की पहली, दूरप्रस्थ प्रतिज्ञा थी। मानव जगत में अतिमानव का प्रकट होना इसी दिव्य प्रतिज्ञा की मूर्ति होगी। हमारा मानव श्रृंखलाओं से बंधे दास की भाँति जिस भौतिक चेतना के भीतर कार्य करता रहता है, उसी से शक्ति,

आनंद और ज्ञान के एक गुह्य सूर्य-बिम्ब का आविर्भाव हो रहा है। उस जाज्वल्यमान ज्योति का साकार कार्य ही अतिमानस होगा।

मानव का अपने प्राकृतिक विकास-शिखर तक पहुँच जाना अतिमानव बन जाना नहीं है, केवल उच्चतर स्तर की मानवीय महत्ता, ज्ञान, बल, विचक्षणता संकल्पशक्ति, चारित्रिक-गुण, प्रतिभा, गत्यात्मकता, सामर्थ्य, पवित्रता, प्रेम, शुद्धता या पूर्णता नहीं है। अतिमानस मनुष्य की मानसिक सीमाओं से परे कोई वस्तु है, मानव प्रकृति के अनुरूप चेतना का जो उच्चतम स्तर है उससे अधिक ऊंची चेतना है।

मानव वह मानसिकता-सम्पन्न प्राणी है जिसकी बुद्धि यहां एक स्थूल मस्तिष्क में फंसी, ढकी, दबी रहती है। मनुष्यों में जो सर्वोच्च हैं उनमें भी वह चरम सामर्थ्य और स्वतन्त्रता की अपनी दीप्तिमती सम्भावनाओं से, इस परवशता के कारण, वंचित रह जाती है, अपनी ही दिव्य-शक्ति तक से दूर रखी जाती है, केवल कुछ संकीर्ण और संकटाकीर्ण सीमाओं के अतिरिक्त हमारे जीवन में कोई परिवर्तन लाने में असमर्थ रहती है। वह एक कैद की हुई और जकड़ी हुई शक्ति है, अधिकतर जीवन और शरीर के लिए मनोरंजन और सुख-सुविधा जुटाने के लिए नियुक्त भृत्य के सिवा कुछ नहीं हो पाती। पर दिव्य अतिमानव एक गूढ़ ज्ञानजन्य आत्मा होगा। उसका अतिमानस मानसिक तथा भौतिक साधनों को हाथ में लेगा और हमारे उन निम्नतर स्तरों के ऊपर स्थित होकर, जो अब तक प्रकट हो चुके हैं, वह उनको भेदता हुआ मन, जीवन, और शरीर को परिवर्तित कर देगा।

मन ही मानव की सबसे बड़ी शक्ति है। पर मानव का मन एक अज्ञान-बद्ध, आच्छन्न और संघर्षरत शक्ति है। जब अधिक तेजोमयी भी होती है, उस समय भी वह केवल एक क्षीण, निष्प्रभ, प्रतिक्षिप्त ज्योति मात्र हो पाती है। पर स्वतत्र अधिकार-सम्पन्न अतिमानस, जो दिव्य महिमाओं की अभिव्यक्ति होगा, वह अतिमानव का मुख्य उपकरण होगा। आत्म स्थित ज्ञान की उसकी निर्बाध गति, उसकी सहज शक्ति और उसका निर्दोष आनंद पार्थिव जीवन पर देवात्माओं के जीवन की सुसंगति की छाप अंकित कर देगा।

अपने आप में मनुष्य केवल एक महत्वाकांक्षी 'न कुछ' हैं। वह एक क्षुद्रता है जो अपनी पहुँच से परे एक विशालता और विराटता की ओर हाथ बढ़ाये हुए है, एक बौना है, जो उच्चताओं पर आसक्त है। विश्व मानव की भव्यता के बीच वह एक काली रेखा है। उसका जीवन, विश्व के जीवन में एक संघर्ष का, यातना का, उत्सुक्तापूर्ण उद्वेग अथवा करुणा का, या एक अंधी

और मूक कामना का क्षुद्र कण मात्र है । स्थूल विश्व में उसका शरीर एक परिश्रमरत क्षीयमाण कण मात्र है । प्रकृति की गुप्त, ऊर्ध्वोन्मुख गति का यह लक्ष्य नहीं हो सकता । परे भी कुछ है, 'कुछ' जो मनुष्यता को बनना है । संप्रति उसकी झलक केवल अब-तक सीमाओं की उस बड़ी दीवार की दरारों से मिल पाती है जो दीवार उसकी सम्भावना और अस्तित्व को नकारती-सी खड़ी हुई है । अमर आत्मा कहीं उससे भीतर है और अपनी उपस्थिति का परिचय किन्हीं चिनगारियों से देती रहती है । ऊपर से उसे शाश्वत आत्मा अपनी छाया से ढकी रहती है और उसकी प्रकृति की आत्मिक निरंतरता का समर्थन करती है । पर यह बृहत्तर आत्मा उसके बनाये हुए व्यक्तित्व में मोटे ढक्कन के द्वारा नीचे उतरने से रोकी जाती है, और ऊपरी आवरणों की मोटी तहों के नीचे लिपटी हुई उसकी ज्योतिर्मयी अन्तरात्मा का दम घुटता रहता है । कुछ थोड़े से लोगों के सिवा अन्य अधिकतर लोगों की आत्मा शायद ही कभी सक्रिय होती हो, अधिकतर लोगों में तो उसका आभास ही नहीं होता । मनुष्य की आत्मा और उसका व्यक्तित्व, लगता है कि उसकी प्रकृति के ऊपर और पीछे कहीं है, उसकी बाह्य और दृश्य वास्तविकता के अंग नहीं जान पड़ते । स्थूल पदार्थ में प्रकट नहीं, उत्पन्न होने की प्रक्रिया के बीच जान पड़ते हैं । मानव चेतना के लिए वे सम्भावनाएँ जान पड़ती हैं, न कि उपलब्ध और वर्तमान वस्तुएं ।

मनुष्य की महत्ता इसमें नहीं है कि वह क्या है, इसमें है कि वह क्या कुछ संभव बन पाता है । उसका गौरव इसमें है कि वह एक जीवंत कार्यकलाप का गुप्त स्थान, रहस्यमय कारखाना है जहाँ एक दिव्य कारीगर अतिमानव को गढ़कर तैयार कर रहा है । पर उसे उससे भी महत्तर महत्ता का सहभागी भी बनने दिया जाता है । निम्नतर प्राणियों से भिन्न बनने दिया जाकर वह इस दिव्य परिवर्तन को घटित कराने में भी हाथ बटाता है । ताकि वह महिमा जो उसके व्यक्तित्व का स्थान ग्रहण करने जा रही है, उसके शरीर में प्रविष्ट हो सके, इसके लिए उसकी चेतन सहमति, उसका समर्पित संकल्प और उसका सहयोग आवश्यक है । उसकी आकांक्षा अति-मानसिक सर्जक के प्रति पृथ्वी की पुकार है ।

यदि पृथ्वी पुकारती है और सर्वोच्च उत्तर देता है तो यही समय उस महान् और चमत्कारिक परिवर्तन की वेला हो सकता है ।

—'दि आवर आफ गाड' से

सभ्यता का भविष्य

■

सर्वपल्लि राधाकृष्णन्

लगता है कि सभ्यता आज वैसे संकट-काल से गुजर रही है जैसे संकट-काल से उसे समय-समय पर गुज़रना पड़ता है। संसार अपने जीर्ण वस्त्रों का त्याग कर रहा है। जो आदर्श, जो लक्ष्य, जो संस्थाएं अभी एक पीढ़ी पहले तक सामान्यतः स्वीकृत थीं उन्हें भी अब चुनौती दी जा रही है, उनमें भी परिवर्तन घटित हो रहा है। पुराने प्रेरणा स्रोत अशक्त होते जा रहे हैं; नयी शक्तियाँ तेजी से उभर रही हैं। जिसे युग-मानस की गहराइयों में झाँक सकने की क्षमता प्राप्त है वैसे इस युग की बेचैनी और संशयग्रस्तता का वर्तमान आर्थिक और सामाजिक परिवेश के प्रति असंतोष का और एक ऐसी नयी व्यवस्था की कामना का जो अभी उपलब्ध नहीं की जा सकी है स्पष्ट बोध हो जाता है। विचारों की समस्त सांप्रतिक अस्तव्यस्तता और अस्पष्ट आदर्शों के लिए अस्थायी उत्साह यह बताते हैं कि मानवता आगे की ओर एक नया कदम बढ़ाने जा रही है।

इस अव्यवस्था के प्रमुख तत्वों में एक तत्व है आधुनिक विज्ञान। यद्यपि विज्ञान हमारी सभ्यता की विशेषता नहीं है पर हाल में उसकी गति इतनी क्षिप्र हो गयी है और उसकी व्याप्ति इतनी विशद और गम्भीर हो गयी है कि हम तेजी से अपने को उसके अनुरूप बदल नहीं पा रहे हैं। यदि हम किसी जंतु को उसके स्वाभाविक परिवेश से अलग करके एक अन्य परिवेश में डाल दें तो वह जब तक अपनी नयी स्थिति के अनुरूप अपने को ढाल नहीं लेता तब तक अशान्त और बेचैन रहेगा। जब रिपन के विशप ने यह सुझाव दिया था कि कुछ थोड़े से समय के लिए विज्ञान छुट्टी ले ले तो उनका आशय हमें इस बात की चेतावनी देने का था कि जिस प्रकार एक ओर विज्ञान बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा है और हमें नये-नये आविष्कार प्रदान करता जा रहा है, उसी गति से दूसरी ओर उनका उपभोक्ता मनुष्य अपने को विकसित नहीं कर पा रहा है।

संसार बाहर से एक समान हुआ जा रहा है। यूरोप और अमेरिका एशिया और अफ्रीका सभी एक ही दिशा की ओर बढ़ रहे हैं, अन्तर केवल यह है कि प्रथम दोनों अधिक तीव्र वेग से बढ़ रहे हैं। आधुनिकीकरण के सर्वाधिक शक्तिशाली प्रतीक मोटरकार, वायुयान और चलचित्र सर्वाधिक पिछड़े हुए देशों में भी देखे जा सकते हैं। चीन से मेक्सिको तक यह विश्वास बढ़ता जा रहा है कि प्राकृतिक साधनों और शक्तियों पर अधिकार करने से ही मानव की प्रगति आश्रित है।

भारत और चीन इस आवर्त में खिंचे चले जा रहे हैं। पूर्व की बेचैनी का कारण यह नया बोध है कि यदि प्राच्य देशों को जीर्ण और नष्ट नहीं हो जाना है तो उन्हें चेष्टा करनी होगी कि इन देशों के साथ कन्धा मिलाकर खड़े होने की जिनकी साहसिकता और संघटन शक्ति ने उनकी प्रभुता को पृथ्वी के दूर-दूर के भागों तक पहुँचा दिया है। पूर्व और पश्चिम एक दूसरे से उतने अलग नहीं है जितने कि भय फैलाने वाले बतलाते हैं। मनीषा और बुद्धि की उपलब्धियाँ रचनात्मक विज्ञान, आभियांत्रिक प्रविधियाँ, शासकीय रूप-विधान, वैधिकनियम, प्रशासनिक व्यवस्था और आर्थिक संस्थाएँ विभिन्न संस्कारों से सम्पृक्त अनेक राष्ट्रों को एक में बाँध रही हैं और एक-दूसरे के साथ निकटतर अन्योन्य सम्पर्क ला रही हैं। आज संसार की प्रवृत्ति एक संघटित निकाय के रूप में कार्य करने की हो रही है।

पर इस बाहरी समानता के फलस्वरूप मन और आत्मा की आन्तरिक एकता उपलब्ध नहीं हो पायी है। हम खिंच कर जिस नयी निकटता की परिधि में पहुँच गये हैं उससे सुख की वृद्धि या संघर्ष की कमी नहीं हुई, क्योंकि हम एक दूसरे के निकट आने के लिए मन या आत्मा से तैयार नहीं हैं। मैक्सिम गोर्की ने बताया है कि एक बार जब वे किसानों की सभा में विज्ञान और आधुनिक आविष्कारों की आश्चर्यजनक उपलब्धियों के विषय में भाषण कर रहे थे उनकी बात पर आपत्ति करते हुए एक किसान ने कहा था: हाँ, हमें चिड़ियों की तरह हवा में उड़ना तो सिखाया जाता है, पानी में मछलियों की तरह तैरना तो सिखाया जाता है, पर हम यह नहीं जान पाये कि पृथवी पर जिया कैसे जाए। अच्छे जीवन के लिए जो भाई-भाई की भावना आवश्यक है वह इन जातियों, सम्प्रदायों और राष्ट्रों में है ही नहीं जो इस छोटी-सी पृथवी पर साथ-साथ रहते हैं। उसके प्रतिकूल वे अपने को परस्पर-विरोधी शक्तियाँ समझते हैं। यद्यपि मनुष्यता ने एक बाहरी संघटित शरीर धारण कर लिया है, वह अब भी एक प्राणप्रद आत्मा से वंचित है। संसार एक मानसिक इकाई नहीं है।

"दि डिक्लाइन आफ़ दि वेस्ट' [पश्चिम की अवनति] नामक अपने असाधारण ग्रन्थ में स्पेंग्लर का यह प्रतिपाद्य कि विभिन्न राष्ट्रों की अपनी-अपनी पृथक् संस्कृतियाँ होती हैं जो विशिष्ट आदर्शों की अभिव्यक्ति करती हैं, किसी समान संस्कृति या सभ्यता के विकास की दृष्टि से बहुत ही निराशाजनक है। उनकी यह आकर्षक परिकल्पना कि जातियाँ और संस्कृतियाँ वे इकाइयाँ हैं जो नियमित और क्रमबद्ध रूप से जन्म लेती, बढ़ती, जीर्ण होती और नष्ट होती रहती हैं, तथ्यों को देखते हुए संतोषप्रद नहीं जान पड़ती। संभव है प्राचीन काल में क्षेत्रीय समस्याएँ इस प्रकार, एक की उत्तराधिकारिणी के रूप में दूसरी, आगे आती रही हों अथवा शैशव, बाल्यावस्था, प्रौढ़ावस्था और वार्धक्य की क्रमिक स्थितियों से गुजरती रही हों और जब नष्ट हो जाती रही हों तब नयी शिशु-समस्याओं को उत्तराधिकार के रूप में अपनी उपलब्धियाँ सौंपी जाती हों और वे आगे बढ़कर उनका स्थान ग्रहण कर लेती रही हों। इस दिशा की सारी सम्भावनाएं प्रायः निःशेष हो चुकी हैं। सीमित क्षेत्रों में बंद प्रादेशिक सभ्यताओं का युग अब समाप्त हो चला है। न यही सम्भव है कि हम किसी निश्चयात्मक रूप से मनुष्यता के इतिहास को एक अकेली, निर्बाध गति से बहने वाली ऐसी धारा के रूप में देख सकें; जो बाद में वातावरण और स्वाभाविक प्रतिभा के कारण और उनके आधार पर भिन्न-भिन्न नदियों के रूप में विभक्त हो गयी हो। पता लगाने पर जो तथ्य ज्ञात हुए हैं उनसे जाना जाता है कि विभिन्न संस्कृतियाँ चिरंतन काल से अपने-अपने ढंग से विकसित होती रही हैं। उधर हाल में वे एक दूसरे की ओर उन्मुख होने लगी हैं और अब आपस में मिलकर एक विराट् इकाई बनने की ओर प्रवृत्त हैं। जब स्पेंग्लर यह कहते हैं कि पाश्चात्य सभ्यता, जिसके विरुद्ध विद्रोह व्यर्थ होगा, ऐसे निर्मम नियति के एक आदेश को मानकर अपनी वृद्धावस्था से गुज़र रही है, तब उनके कथन में एक वृहत्तर सत्य का अंश गर्भित है—कि सभी प्रादेशिक समस्याएँ नष्ट हो रही हैं और अब हम संसार-व्यापी क्षेत्र पर जीवन की कला का एक नया प्रयोग करने के लिए उद्यत हो रहे हैं। कोई एक इतिहास-वर्णित सभ्यता पूर्ण सार्वभौमिकता का दावा नहीं कर सकती, क्योंकि प्रत्येक किन्हीं व्यक्ति-समूहों की जीवन्त शक्तियों की अभिव्यक्ति है। इन विषयों में इतिहास के तर्क के सिवा और कोई भी तर्क संगत नहीं है, और इतिहास किसी काल्पनिक सार्वभौम मनुष्य को जानता-मानता नहीं है। अतः कोई सार्वभौमिक सभ्यता हो ही नहीं सकती। भविष्य की सभ्यता को स्वयं ही मनुष्य और मानव जीवन के प्रति एक सार्वभौम दृष्टि विकसित करनी होगी। विगत युगों की और वर्तमान समय की प्रादेशिक

सभ्यताएँ मानव जाति के सच्चे हितों के प्रति निष्ठावान नहीं रही हैं। वे जातीय, धार्मिक तथा राजनीतिक एकाधिकार के, स्त्री पर पुरुष की और निर्धन पर धनाढ्य की श्रेष्ठता के पक्ष में खड़ी हुई हैं। इसके पहले कि हम समस्त मानव जाति के उपयुक्त किसी स्थायी सभ्यता का निर्माण कर सकें यह आवश्यक है कि प्रत्येक पुरानी सभ्यता को अपनी सीमाओं का और सारे संसार के लिए आदर्श सभ्यता बन सकने में अपनी अयोग्यता का बोध हो जाय।

जहाँ नये यांत्रिक निर्माणों की विजय ने भविष्य की सभ्यता के लिए एक सामान्य आधार-भूमि प्रस्तुत कर दी है, वहीं परम्परागत विचार-पद्धतियों, मान्यताओं और कार्य-प्रणाली का खण्ड-खण्ड हो जाना आत्मिक एकता की उपलब्धि के लिए आवश्यक तैयारी है। सभी राष्ट्रों में यह खमीर काम कर रहा है, विशेष रूप से युवकों में। वे दूसरों के हाथों में मिट्टी के लोंदे बने रहने के लिए तैयार नहीं हैं, भले ही वे दूसरे कितने ही वृद्ध या बुद्धिमान क्यों न हों। चेतना उत्तेजित हो गयी है, इसका बोध हो गया है कि यहीं कोई कमी है। उन विचारों और परिणामों में, जिन्हें हम मानते रहे हैं, कहीं कुछ है जो संतोषप्रद नहीं है। नये मूल्यों की खोज में हाथ इधर-उधर टटोल रहे हैं। वातावरण में विघटन व्याप्त है। आस्था के पुराने आधार डगमगा रहे हैं। प्रत्येक देश और प्रत्येक संप्रदाय के विचारशील व्यक्तियों में आशा और आकाँक्षा का भाव है।

यदि हम उन हठवादियों को एक ओर छोड़ दें जिनके साथत र्कसंगत ढंग से बात करना असंभव है तो हम देखेंगे कि प्रत्येक परंपरागत सभ्यता के नायक आज यह मानते हैं कि अपनी समस्त ऐतिहासिक व्याप्ति में मनुष्य-जाति एक संगठित निकाय है, अपनी बढ़ती हुई तेजस्विता में प्रणम्य और प्रगति की ऐसी संभावनाओं से युक्त, जिस पर कोई रोक नहीं लगा सकता। दांते ने घोषणा की थी : "इस सभ्यता के लिए एक और उस सभ्यता के लिए दूसरा लक्ष्य नहीं है, समस्त मानव जाति की सभ्यता का एक ही लक्ष्य है।" यदि समस्त सभ्यताओं का चरम लक्ष्य एक ही है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि सब लोग एक ही भाषा में बोलें या एक ही धर्म को मानें अथवा सब एक ही शासनतंत्र द्वारा शासित हों अथवा रीति-रिवाज़ों में सब एक अपरिवर्तनशील ढाँचा स्वीकारें। सभ्यता की एकता सादृश्य में नहीं सामंजस्य में खोजी जा सकती है। प्रत्येक महान् संस्कृति विभिन्न आदर्शों को मानने वाले और विभिन्न प्रकृति के लोगों के मिश्रण का परिणाम है। मिस्र, बैबीलोन, भारत, चीन, यूनान और रोम इस सत्य को प्रमाणित करते हैं। आज इनकी परिधि

जो इस साँस्कृतिक संश्लेषण में भाग ले रहे हैं, अधिक विशद हो गयी है, प्रायः सारे संसार को लपेट रही है। भविष्य की आस्था सहयोग में है, अपनी पृथक् पहचान में नहीं। सहवर्ती मनुष्यों के साथ समायोजन में है, उनकी नकल करने में नहीं, उदारता में है, निरपेक्षता में नहीं।

—'कल्कि' से

एक प्रभामंडल विलीन हो गया

●

जवाहरलाल नेहरू

श्रीमान् आपने जो कहा उसके साथ मेरी बात जोड़ने की क्या मुझे इजाज़त देंगे ? दिवंगत प्रख्यात व्यक्तियों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने की और तारीफ के और संवेदना के कुछ शब्द कहने की, इस सदन की सामान्य परम्परा रही है । इस अवसर पर मेरे या इस सदन के किन्हीं अन्य सदस्यों के लिए कुछ कहना ठीक है या नहीं, इसके बारे में मैं अपने ही मन में बहुत स्पष्ट नहीं हूं, क्योंकि व्यक्ति के रूप और भारत-शासन के प्रमुख के रूप में मुझे इस बात पर गहरी ग्लानि और लज्जा का बोध हो रहा है कि जो सर्वाधिक मूल्यवान रत्न हमारे पास था उसे ही हम सुरक्षित नहीं रख सके। यह हमारी असफलता है—जैसे पिछले कई महीनों में अनेक बेगुनाह स्त्री-पुरुष और बच्चों की सुरक्षा में हम असफल रहे हैं। शायद यह भार और दायित्व हमारे या किसी भी शासन के लिए बहुत ज्यादा था। फिर भी यह असफलता तो है ही। और आज यह हम सब के लिए लज्जा की बात है कि यह महान् व्यक्तित्व, जिसके प्रति हमारा आदर और प्रेम निःसीम था, इस कारण से हमारे बीच नहीं रहा, क्योंकि हम उसकी सुरक्षा की यथोचित व्यवस्था नहीं कर सके। मेरे लिए भारतीय होने के नाते यह लज्जा की बात है कि उसके ऊपर एक भारतीय ने हाथ उठाया, हिन्दू होने के नाते मेरे लिए यह लज्जा की बात है कि एक हिन्दू ने यह कार्य किया और उसके विरुद्ध किया जो आज का सबसे महान् भारतीय और युग का सबसे महान् हिन्दू था।

हम चुने हुए शब्दों में लोगों की प्रशंसा करते हैं और हमारे पास महत्ता का कोई न कोई माप-दण्ड भी है पर जो हमारे बीच नहीं रहा, उसकी हम

1. संविधान सभा (विधायी) के समक्ष वक्तव्य, नई दिल्ली, फरवरी 2,1968।

कैसे प्रशंसा करें ? कैसे उसे मापें ? क्योंकि वह उस साधारण मिट्टी का बना हुआ नहीं था जिससे हम सब बने हैं। वह आया, काफ़ी दिनों जीवित रहा, और अब चला गया है। उसे इस सदन में बैठे हम लोगों के प्रशंसात्मक शब्दों की अपेक्षा नहीं है क्योंकि मानव इतिहास में अपने ही जीवन काल में सर्वाधिक प्रशंसा पाने वाला वही था और अपनी मृत्यु के बाद के इन दो-तीन दिनों में उसने समस्त जगत की श्रद्धांजलियां पा ली हैं। हम उनमें भला क्या जोड़ सकते हैं ? हम उसकी प्रशंसा कैसे कर सकते हैं, हम जो उसके अपने बच्चों से भी अंतरंग रूप में उसके बच्चे रहे हैं, क्योंकि हम सभी अयोग्य होते हुए भी, किसी न किसी मात्रा में उसकी आत्मा की संतान रहे हैं।

एक प्रभामंडल विलीन हो गया है। जो सूर्य हमारे जीवन को आलोक और ऊष्मा प्रदान कर रहा था वह अस्त हो गया है—हम अंधकार और ठंड में काँपते खड़े हैं। पर वे नहीं चाहते कि हम ऐसा अनुभव करें। आखिर उस प्रभामंडल ने, जिसे हमने इतने वर्षों देखा, जाना, उस दिव्य अग्नि-शिखा ने हमको भी तो बदल दिया है। उस दिव्य अग्नि शिखा से दो-एक चिनगारियाँ हममें से भी कई लोगों ने ली थीं और उन्हीं से शक्ति प्राप्त कर कुछ दूर तक उनके द्वारा प्रशस्त किये मार्ग पर चल सके थे। इसलिए जब हम उनकी प्रशंसा करते हैं तब हमारे शब्द बड़े अपर्याप्त से लगते हैं और अगर हम उनकी प्रशंसा करते हैं तो अंशतः ही सही अपनी प्रशंसा भी करते ही हैं। महान् और विख्यात व्यक्तियों के लिए काँसे और संगमरमर के स्मारक खड़े किये जाते हैं, पर दिव्य ज्वाला से संपृक्त इस व्यक्ति ने अपने जीवन काल में ही लाखों के हृदयों में अपने को प्रतिष्ठित कर दिया था। परिणामतः हम सब किसी न किसी अंश में उस तत्व से संपृक्त हो गये जिससे वह बना था, हाँ, उसकी तुलना में कहीं कम परिमाण में। इस प्रकार वह भारत में व्याप्त हो गये, केवल महलों में ही नहीं, और न केवल विशिष्ट स्थानों या सभाओं में, पर हर छोटे-से-छोटे गाँव में, हर उस झोंपड़ी में जिसमें कोई दलित या पीड़ित व्यक्ति रहता है। वे लाखों, करोड़ों के हृदयों में निवास करते हैं और युग-युगों तक करेंगे ?

तो फिर हम उनके बारे में कह क्या सकते हैं ? इस अवसर पर तुच्छ और विनत अनुभव करने के सिवा कर क्या सकते हैं ? उनकी प्रशंसा करने की हममें पात्रता नहीं है—उनकी प्रशंसा करने की, जिनका हम समुचित और यथेष्ट अनुसरण नहीं कर सके। वे जो हमसे श्रम, अध्यवसाय और त्याग की माँग करते थे, उनके विषय में केवल शब्दों का प्रयोग करके हम आगे बढ़ जाएँ, यह उनके प्रति अन्याय होगा। पिछले तीस वर्षों

की या उससे भी लम्बी, अवधि में बहुत कुछ उन्होंने इस देश को आत्मोत्सर्ग के उन शिखरों तक पहुँचा दिया जिन तक और कोई नहीं पहुँच सका । वे इसमें सफल हुए । पर अन्त में ऐसी घटनाएँ घटीं जिनसे उन्हें निस्संदेह बहुत पीड़ा हुई होगी, यद्यपि उनके कोमल मुख पर मुस्कान बनी रही और उन्होंने कभी किसी से कोई कड़ा शब्द नहीं कहा । फिर भी उन्हें पीड़ा हुई होगी—पीड़ा हुई होगी इस पीढ़ी की असफलता पर, जिसे उन्होंने ही प्रशिक्षित किया था, क्योंकि हम उनके द्वारा दिखाए मार्ग से भटक गए थे । और अन्त में उन्हीं के एक बच्चे के हाथ ने—क्योंकि आखिर वह भी उतना ही उनका बच्चा है जितना कोई दूसरा भारतीय—उन पर घातक प्रहार किया ।

युगों बाद इतिहास उस काल खण्ड का परीक्षण करेगा जिससे हम गुज़रे हैं । वह उसकी सफलताओं और असफलताओं पर विचार करेगा—समुचित परीक्षण के लिए और जो हुआ और नहीं हुआ इसे समझने के लिए । हम अभी तक अपने युग के अतिशय निकट हैं । हम इतना ही जानते हैं कि एक प्रभामंडल था और अब वह नहीं रहा । और हम यह जानते हैं कि इस क्षण अंधकार है—पर निश्चय ही इतना घना अंधकार नहीं, क्योंकि जब हम अपने मन के भीतर देखते हैं तो अब भी हमें वह अग्नि-शिखा जीवित दिखाई देती है जिसे वे वहाँ प्रज्ज्वलित कर गए थे । और यदि वे जीवन्त वह्नि-शिखाएँ हैं तो इस देश में अंधकार नहीं होगा और हम अपने ही उद्योग से, उन्हें याद करते हुए और उनके दिखाए मार्ग पर चलते हुए इस देश को फिर आलोकित कर सकेंगे—इसके बावजूद कि हम बहुत छोटे हैं, फिर भी उसी अग्नि से जो वे हमारे भीतर जला गये हैं ।

संभवतः भारत के अतीत के वे सबसे बड़े प्रतीक थे, और मैं तो कहूँगा कि भविष्य के भी । हमें जो बड़े से बड़ा प्रतीक उपलब्ध हो सकता था वे वही थे । हम वर्तमान के ख़तरनाक सिरे पर खड़े हैं, उस अतीत के आने वाले भविष्य के बीच । हम हर प्रकार के ख़तरों का सामना कर रहे हैं और सबसे बड़ा खतरा है आस्था के लुप्त हो जाने का, कुंठा का, दिल डूबने का और पस्ती का, जिसका हमें बोध होता है जब हम आदर्शों को भ्रष्ट होते और उन महान् व्यक्तियों को जिनकी हम चर्चा किया करते थे, खोखले शब्दों में परिवर्तित होते देखते हैं । जब हम देखते हैं कि जीवन की धारा ने अपनी दिशा ही बदल दी है । फिर मैं विश्वास करता हूँ कि यह समय भी शीघ्र ही बीत जायगा ।

जीवन में तो यह दिव्य पुरुष महान् था ही, मृत्यु में भी वह महान् है और इसमें मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं है कि जिस महान् उद्देश्य की पूर्ति में वे

जीवन भर लगे रहे उसी के हित में उन्होंने प्राण-त्याग भी किया। हम उनके लिए विलाप करते हैं। उनके लिए हम सदा विलाप करेंगे क्योंकि हम मनुष्य हैं और अपने प्यारे गुरु को भुला नहीं सकते। पर मैं जानता हूँ कि वे नहीं चाहेंगे कि हम उनके लिए बिलाप करें। जब उनके निकटतम और प्रियतम व्यक्ति का देहांत हुआ तब उनकी आँखें सजल नहीं हुईं—केवल एक दृढ़ संकल्प किया कि जिस महान् लक्ष्य की प्राप्ति को अपना ध्येय बनाया है उसके लिए प्रयत्न करें। यदि हम केवल विलाप करेंगे तो वे हमसे रुष्ट होंगे। उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने का यह बड़ा क्षुद्र ढंग होगा। एक ही तरीका है—अपने संकल्प की अभिव्यक्ति करना, अपने को पुनः समर्पित करना, समुचित आचरण करना और उस महान् कार्य के निमित्त अपने को सौंप देना जिसका उन्होंने बीड़ा उठाया था और जिसे बहुत दूर तक वे पूरा भी कर सके। इसलिए हमें काम करना है, परिश्रम करना है, त्याग करना है और इस प्रकार यह प्रमाणित करना है—कुछ ही मात्रा में सही—हम उनके योग्य अनुयायी हैं।

श्रीमान्, स्पष्ट ही, जैसा आपने स्वयं कहा है, यह घटना, यह दारुण घटना किसी एक पागल का अकेला कृत्य नहीं है। यह हिंसा और घृणा से व्याप्त वातावरण की उपज है, उस वातावरण की जैसा इस देश में कई महीनों, कई वर्षों से हो रहा है, और विशेष रूप से पिछले कुछ महीनों से। उस वातावरण ने हमें जकड़ रखा है और बाँध रखा है, और यदि हमें उस लक्ष्य के लिए कार्य करना है जो उन्होंने हमारे आगे रखा, तो हमें उसका सामना करना होगा, इससे लड़ना होगा, इससे संघर्ष करना होगा और हिंसा और घृणा के पाप को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा।

जहाँ तक इस शासन का संबंध है, मुझे विश्वास है कि वह उसको सुलझाने के लिए कुछ भी उठा न रखेगा क्योंकि अगर हम यह नहीं करते, यदि अपनी कमजोरी के कारण या किसी भी कारण से जिसे हम यथेष्ट समझें, हम इस हिंसा को रोकने के लिए वचन, लेखन अथवा कर्म द्वारा घृणा के प्रचार को रोकने के लिए, प्रभावी और सार्थक कार्य नहीं करते तो निश्चय ही हम इस शासन के अंग होने के योग्य नहीं है, हम उनके अनुयायी होने के योग्य नहीं हैं और उस दिवंगत आत्मा की प्रशंसा में कुछ भी कहने के योग्य नहीं हैं। इसलिए इस अवसर पर या किसी भी अवसर पर, जब हम उस महान् गुरु का ध्यान करें जो अब हमारे बीच नहीं है, तब हमें चाहिए कि हम उसके बारे में कर्म, परिश्रम और त्याग के, जहाँ बुराई दिखाई पड़े वहाँ उससे लड़ने के और सत्य का जो दर्शन उन्होंने हमें कराया था, उस रूप में

सत्य के प्रति निष्ठावान रहने के संदर्भ में ही विचार करें। और यदि हम ऐसा करेंगे तो हम कितने ही अपात्र क्यों न हों, कम-से-कम हम अपना कर्तव्य तो करेंगे और उनकी आत्मा के प्रति श्रद्धा भी अर्पित कर सकेंगे।

वे चले गए हैं और सारे भारत में अकेले और असहाय छोड़ दिये जाने का भाव व्याप्त है। हम सबके मन में ऐसा ही भाव है और मैं नहीं जानता कि इस भाव से हमें छुटकारा कब मिलेगा। पर उस भाव के साथ ही साथ एक गौरवपूर्ण कृतज्ञता का भाव भी है कि इस शक्तिमान पुरुष के संपर्क का सौभाग्य हमारी पीढ़ी को मिला। आने वाले युगों में, हमारे सैकड़ों, संभवतः सहस्रों वर्ष बाद लोग इस पीढ़ी को याद करेंगे, जब इस दिव्य पुरुष के चरण पृथ्वी पर पड़े थे। और वे हमारे बारे में भी सोचेंगे, हम जो, बहुत छोटे होते हुए भी उनके मार्ग के अनुगामी थे और उसी पवित्र भूमि पर चलते थे जिस पर उनके पाँव पड़ चुके थे। हम उनके योग्य बनें।

मन्त्री सीताराम अय्यर

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

"कल कृष्णदास हमारे गाँव आ रहे हैं।"

पल्लिकोंडन गाँव की स्त्रियों और बच्चों ने बड़े उत्साह से उनके स्वागत की तैयारियाँ कीं।

यह नहीं कि तैयारियाँ कोई बहुत ज्यादा थीं। उन्होंने एक पीढ़ी की व्यवस्था की जिस पर वे आकर बैठें। कुम्हार के यहाँ से वे कुछ नये मिट्टी के बर्तन ले आये। कृष्णदास को एक छोटी थाली भर पके हुए चावल और एक छोटे-से बर्तन में दही देने का रिवाज था। यही उनका भोजन था, और यह भोजन वे दिन भर में एक बार करते थे।

सवेरे 9 बजे वे पल्लिकोंडन पहुँचे। राह में उन्होंने एक तालाब पर स्नान करके जप कर लिया था और 'गोपाल !' की पुकार लगाते हुए वहाँ आ पहुँचे। सारा गाँव उन्हें घेर कर खड़ा हो गया। उन्होंने बच्चों को दुलारा और उन्हें आशीर्वाद दिया। "झुको, झुककर गोपाल को नमस्कार करो", उन्होंने बच्चों से कहा।

बच्चों ने धूल में लेट कर 'गोपाल' का नाम रटते हुए प्रणाम किया और फिर कृष्णदास के सामने हाथ जोड़े खड़े हो गये। उन्होंने अपनी थाली में दही और भात मिलाया, एक मौन प्रार्थना के साथ उसे प्रभु गोपाल को अर्पित किया और फिर अँगुली भर-भर कर उसे बच्चों में बाँट दिया। बच्चे चिल्लाने लगे, "बस ! बस ! अपने खाने के लिए भी तो कुछ रखिये।" जो बचा था वह उन्होंने खाया और फिर कुछ देर एक पेड़ के नीचे आराम किया। फिर अपना कमंडल उठाकर चल पड़े। बूढ़े जवान, स्त्री-पुरुष, सभी उनके आगे श्रद्धा से भूमि पर प्रणत हो गये, उनका आशीर्वाद पाया और फिर उन्हें गाँव के छोर तक जाकर छोड़ आये।

अपने पिछले आश्रम[1] में कृष्णदास रंगपुरम के धनाढ्य वकील सीताराम अय्यर थे। उन्होंने तीस वर्ष की अवस्था में अपना पेशा छोड़ दिया, स्वराज्य के आन्दोलन में सम्मिलित हुए और जेल गये। उनके पिता बूढ़े और बीमार थे। उनकी पत्नी का स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं था। उनका छोटा भाई नारायण सरकारी दफ्तर में क्लर्क था। मामूली-सा वेतन पाता था। नारायण ने पिता से कहा, "बड़े भाई वकालत छोड़कर स्वतन्त्रता आन्दोलन में शामिल होने की सोच रहे हैं।"

पिता ने कहा "कभी नहीं', । "इस तरह की झूठी बातों से मुझे परेशान मत किया करो।"

नारायण बोला "नहीं, यह झूठ नहीं है" यह सीधी, सच्ची बात है, पिताजी !"

सीताराम अय्यर ने अपना निश्चय पत्नी को बताया तो वह रो पड़ी।

"तुम इन बातों को नहीं समझतीं", उन्होंने धीरज बँधाते हुए कहा। "देश की प्रतिष्ठा की रक्षा करनी ही है।" फिर वे बोले, शंकरलिंग चेट्टियार हर प्रकार से हमारे परिवार की सहायता करेंगे। डरो मत।"

फिर वे उत्तर की ओर यात्रा पर निकल पड़े।

जज ने उन्हें चार वर्ष की सख्त सज़ा का फ़ैसला सुनाया। उनके विरुद्ध अभियोग राजद्रोह का था। उन्होंने अपनी सज़ा उत्तर की ओर, नागपुर में, काटी। तीसरे वर्ष उनके पिता गंभीर रूप से बीमार पड़ गये। छोटे भाई का तार आया कि रोगशय्या पर छह महीने कष्ट पाने के बाद पिता का स्वर्गवास हो गया। जेल सुपरिंटेंडेंट ने उन्हें वह तार प्राप्त होने के तीन दिन बाद दिखाया। उन्होंने नारायण को एक पत्र लिखकर अधिकारियों के माध्यम से भिजवाया कि अंत्य-क्रियाएँ विधिपूर्वक पूरी करें।

एक वर्ष बाद उन्हें एक और पत्र मिला। उनकी पत्नी कठिन रोग से ग्रस्त थीं और उनके बचने की आशा नहीं थी। यह पत्र भी पहुँचने के आठ रोज़ बाद सीताराम अय्यर को दिया गया। "ईश्वर की इच्छा जो होगी वही होगा, उन्होंने सुपरिंटेंडेंट से कहा। यह अधिकारी भला था, नया-नया आया था और सीताराम अय्यर को मानता था। उसने कहा कि उच्च अधिकारियों को लिखेगा कि सीताराम अय्यर को परोल पर जाने दिया जाए। सीताराम अय्यर ने कहा, "नहीं, यह न करना, मेरे करने के लिए अब कुछ नहीं है,

1. "आश्रम" चार होते हैं। विद्यार्थी का, गृहस्थ का, अरण्यवासी का और संन्यासी का।

मरे हुए वापस नहीं आते ।" उन दिनों के देशभक्तों की स्वातन्त्र्यप्रियता ऐसी ही हुआ करती थी । वे सरकार से किसी तरह की रियायत नहीं माँगते थे ।

चार वर्ष बीतने के बाद वे रिहा किये गये । पर वे फिर स्वतंत्रता के आन्दोलन में शरीक हुए और इस तरह कई बार जेल भेजे गये ।

जब मद्रास में 1937 में स्वतन्त्र शासन आरम्भ हुआ तब वे प्रायः पचास वर्ष के थे । वे शिक्षा मंत्री बने और अन्य मंत्रियों की भाँति, उनकी भी अच्छी ख्याति हुई ।

शंकरलिंग चेट्टियार ने आह भरते हुए कहा, "आज यदि तुम्हारे पिता जीवित होते तो कितने प्रसन्न होते !" सीताराम अय्यर की आँखों में आँसू आ गये । उन्हें अपनी पत्नी की भी याद आयी और उन्होंने मन-ही-मन स्वीकार किया कि शंकरलिंगम चेट्टियार ने जो कहा वह बिल्कुल ठीक था । शंकरलिंगम् ने सीताराम की पत्नी का कोई जिक्र नहीं किया था । पर उसकी जरूरत ही क्या थी ?

उन्हें रात में अक्सर स्वप्न आते थे और वे परेशान होते थे । स्वप्न में देखते कि पिता जीवित हैं । वे झटके से उठ बैठते और मारे दुःख के रोने लगते ।

"सीताराम, मेरे बच्चे, तुमने मुझे बिलकुल अकेला छोड़ दिया । मेरी देखरेख कौन करेगा ? क्या यह उचित है ? मेरे पास लौट आओ !" लगता था कि वृद्ध यह कह रहे हैं ।

कभी लगता कि पत्नी पूछ रही है, "तुम्हें पता भी है कि मैंने कैसे-कैसे कष्ट भोगे ?"

सीताराम कह उठते, "अरे, मैं तो समझता था कि तुम नहीं रहीं । मेरी प्रियतमा, क्या तुम जीवित हो ? मेरा दुःख दूर हो गया ।"

"उन लोगों ने मेरे शरीर को चीर-फाड़ कर मेरे पेट में से लोटा भर जहरीला पानी निकाला था । उन दिनों तुम जेल में बड़े सुखी थे । मैं असहाय मर गयी" उनकी पत्नी उलाहना देती ।

रोते-रोते उनकी हिचकियाँ बंध जातीं । फिर वे अपनी पत्नी को आलिंगन पाश में कस लेते ।

"सीताराम, इसे केवल स्वप्न न समझना," उनके पिता उन्हें चेतावनी देते," तुमने अपने पिता को धोखा दिया, उन्हें त्याग दिया । नरक तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है ।"

सीताराम अय्यर पूरी तरह से झकझोर उठे थे । "मैं क्या करता ?" उन्होंने रोते हुए कहा । "ओ रामचन्द्र, क्या तुम अयोध्या छोड़कर वन कहीं

चले गये थे ? क्या तुम अपने वृद्ध पिता को पीछे नहीं छोड़ गये थे ?" नज़दीक खड़े हनुमान ठठाकर हँस पड़े । सीताराम उनकी ओर मुड़े ।

"तुम्हें अपने सच्चे कर्तव्य का ज्ञान नहीं था । क्या तुम वह करने की आशा कर रहे थे जो एक क्षत्रिय योद्धा ने किया ? क्या शंकरलिंगम चेट्टियार से भी माँग-माँग कर पेट पालने के लिए अपने पिता और अपनी पत्नी को यों छोड़ जाना तुम्हारे लिए उचित था ? कम्बख्त !" यह थी हनुमान की भयंकर भर्त्सना ।

"हाय ईश्वर, मैंने बहुत बड़ा पाप किया है । मैं उसे ढो न पाऊँगा । तुम्हीं मेरे आश्रय हो ।" वे रोने लगे, "मैं अपना धर्म, अपना कर्तव्य जान नहीं सका । मैं अपने उचित मार्ग से विमुख हो गया । मैंने धोखा खाया । मेरी रक्षा करो, ओ गोबिंद !"

"मैंने एक-एक पाई, एक-एक आना बचाया, ताकि तुझे शिक्षित कर सकूँ । मैंने कई अनुचित काम किये, ताकि इतना धन कमा सकूँ कि तेरी पढ़ाई और शहर के जीवन के लिए पैसे भेजने में कभी चूक न हो । तेरे लिए मैंने पाप किया । पर जब मैं रोगशय्या पर असहाय पड़ा था, मवाद से भरा मेरा पैर सूजा था, मैं दर्द से कराह रहा था, उस समय तुम अपनी देशभक्ति के मद में अंधे होकर कुछ लोगों की उछल-कूद में शामिल होकर अपना समय नष्ट करते रहे । अपने पिता के प्रति किये इस विश्वासघात का धब्बा तुम कैसे मिटा सकते हो ?" बूढ़े ने फिर पूछा ।

"पिता जी ! पिताजी !" सीताराम की पत्नी चिल्लायी", अपने बेटे को इस प्रकार शाप न दीजिये । आखिर अपने बेटे ने भी तो वही किया था जो और भी बहुतेरों ने किया ।" स्वप्न में अब उसकी पत्नी मातेश्वरी बन गयी थीं । जब उसने "गोविंद" का नाम लिया तब भगवान कृष्ण स्वयं अपने सौम्य आकार में सीताराम अय्यर के सामने उपस्थित हो गये ।

"मैं तुम्हें समस्त पापों से बचाऊँगा" प्रभु ने कहा, "कोई चिंता न करो । आओ, मेरे रथ पर चढ़ जाओ ।"

अगले दिन सीताराम अय्यर ने मंत्रिपद से त्यागपत्र देकर शहर छोड़ दिया । मंत्री सीताराम अय्यर "कृष्णदासन्" बन गये । वे एक दिन में एक गाँव के हिसाब से गाँव-गाँव जाते, भोजन के लिए भिक्षा माँगते, दिनभर में एक बार खाते, और यों घुमंतू साधु की तरह जीवन बिताने लगे । दो वर्ष बाद गोकुलाष्टमी के दिन, उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई ।

—'दि प्लाउ एण्ड दि स्टार' से

कंठापुर पर वैशाखी वर्षा

•

राजा राव

वैशाख में लोग कंठपुर के खेतों को जोतते हैं। वर्षा आयी, वह तीखी, पहली वर्षा, काँसे के रंग वाली, पहाड़ियों पर उछलती हुई, टीलों पर दबे पाँव चढ़ती हुई, घाटियों में कूदती हुई, हवा में झूलती, छींटे बिखराती, सूप-से पछोड़ी-सी बौछार—और नारियल के और सुपारी के पेड़ और इलायची के पौधे गले तक पानी-पीये-हुए-से-मानों बदले में फुफकारते से हों। और वह लो, वह आयी, बेब्बर पहाड़ी और भीतर पहाड़ी पर होती हुई आती है और पंजों से खपड़ों को खुजलाती है और चौपाये भागते हुए घर की ओर चले आ रहे हैं। उनके कान पीछे की ओर खींचे हुए हैं, और उनका चरवाहा किसी बैल या पीपल के पेड़-तले खड़ा झोंका खा रहा है। लोग अपनी चक्कियाँ छोड़-छोड़कर आँगन की ओर भागते हैं और केंचम्मा के मंदिर की ओर मुड़ कर प्रार्थना करते हुए कहते हैं 'हाँ, देखो देखो केंचम्मा, वर्षा आ गयी है। ऐसा करो कि हमारे घर धुलकर चाँदी की तरह हो जाएँ।' और बिजली कौंधती है और तड़प कर खपड़ों को हिला देती है और बच्चे कागज़ की नावें तैराने के लिए परनालों की ओर दौड़ पड़ते हैं। और एजेंट नंवुंद्यया की पत्नी चेन्नम्मा और सब्बा चेटी की पुत्री सड़क में पहुँच चुकी है और सुनहली धूल के लिए पानी को छान रही है। और पुजारी रंगप्पा अपनी पुस्तकों का बस्ता खोलते हैं और कहते हैं, "ओह कल रोहिणी नक्षत्र है लोग कल अपने बैलों को हलों में जोतेंगे।' और छाता लिए हुए वह खड़े हैं रंग गोंड़ा' उनके हाथ में एक नारियल है" और पान पत्ते। वह पुजारी रंगप्पा के पास जाकर कहते हैं, तो तब पंडित महाराज कब? और रंगप्पा इधर-उधर देखते हैं क्योंकि चपरासी अब रंग गोंडा के नहीं थे, न गाँव ही अब रंग गोंड़ा का था' पर वह स्वर तो सदैव ही रंग गोंड़ा का था।

इसलिए रंगप्पा जमीन की तरफ देखते हुए कहते हैं, 'कल ही तो, रंग गोंड़ा कल ही तो।' और रंग गोंड़ा घर लौट कर चपरासियों को फटकारते हैं और चपरासी चेन्ना पूछता है," तो, पटेल, वह कब है ?" "अरे कल ही तो, चूहे," और चपरासी चेन्ना घर जाकर सोता रहता है। और जब मेंढक अपनी टर्र-टों बंद कर देते हैं तब नगाड़ा लिए चेन्ना दिखाई पड़ता है और वह पुकार लगाता है, "सुनो, सुनो, आज सवेरे हल को आमंत्रित किया जायगा" और लोग कहते हैं, अरे, आज सबेरे ही ? और शतन्ना उठता है और कहता है' 'अरे, मेरी तो दाहिनी आँख फड़क रही है, हमारी फसल बहुत अच्छी होगी'। और बुकर चेन्नय्या दौड़ कर हाथ पैर धोता है और अपने बालों में तेल डालता है और उसकी पत्नी बाग़ में फूल तोड़ने के लिए पिछवाड़े की तरफ जाती है' और चंद्रय्या वह मखमल का कोट पहन लेता है जो उसने गहर में उस समय सिलवाया था जब सिद्दा के विरुद्ध मुकदमा जीता था। और रामय्या अपनी आंखें फाड़कर खपरों के बीच देखता है और कहता है, "हे सूर्य देवता, इस साल हमें बढ़िया फसल दो तो मैं भट्ट के पौने चार सौ रुपये लौटा दूँ, अपनी सबसे छोटी बेटी का ब्याह कर दूंगा और अपनी औरत की बीमारी दूर करने के लिए मैंने कंचम्मा को जो बकरा चढ़ाने की मन्नत मानी थी उसे पूरा करूँगा। और अंत्यज तिमय्या कहता है : 'मैं क्यों उठूँ, भला ? मेरे हल के लिए बैल नहीं हैं, खेत के लिए दाना नहीं है।' पर उसकी पत्नी जोरदार औरत है," वह कहती है, 'जा रे देवता इतने निर्दयी नहीं है' और तिमय्या भुन-भुनाता है, कांखता-कराहता है और बिना माथे पर वर्ण-चिन्ह के और हाथों में फूल के वह सड़क पर जा पहुँचता है। तब तक आदमी और बच्चे कंधों पर हल रखे, हाथों में चाबुक लिए, बैलों को हँका कर बाहर ले जाते हैं और नदी पर पहुँच कर बैलों को रगड़-रगड़ कर नहलाते हैं और उनके सींगों पर फूल बांध देते हैं और फिर "हे, हे" करते हुए उन्हें मंदिर के आँगन में हांक ले जाते हैं।

'हे, हे—वर्षा का जल धरती ने सोख लिया है। टूटे दाँतों वाला सिद्दय्या ज़मीन में लकड़ी गड़ा देता है और कहता है, "अरे, यह तो चार अंगुल गहरी चली गयी', और सब लोग कह उठते हैं," हाँ, पानी तो ऐसा बरसा मानों देवी ने उसकी माँग की हो।" और फिर जब दिन अच्छी तरह निकल जाता है और सारे आदमी और बैल बाहर आ जाते हैं तब पुजारी रंगप्पा सिर पर पवित्र जल का घड़ा रखे हुए, गीले कपड़ों को हाथ में लिए हुए, वहाँ आते हैं और कहते हैं, हे, हे, तो तुम सब आ गये हो...?' और वे जवाब देते हैं, हाँ 'पंडित जी महाराज' और वे दरवाजे खोल देते हैं

पवित्र परदों को एक ओर कर देते हैं, देवी को स्नान कराकर उनका श्रृंगार करते हैं' और बिगुल वाला लिंगय्या और तुरही वाला रामय्या, जो वहां खड़े हुए हैं; चंपक के पास खड़े हो जाते हैं और पूरब की ओर और पश्चिम की ओर और उत्तर और दक्षिण की ओर अपने-अपने बाजों से आवाज़ गूंजती हुई वर्षा से धुलकर साफ़ हुई, हवा में फेंकते हैं। भोंपू का कड़ा, तीखा स्वर उधर से आता है और लोग अपने-अपने हल-बैल लिए इधर-उधर तेज़ी से भागते दिखायी पड़ते हैं और मंदिर की अमराई में गूंजती हुई बैलों के गले में बंधी घंटियों की आवाज सुनाई पड़ती है। वे भी चले आ रहे हैं, राबन्ना और मदन्ना भी, यहाँ एक कुम्हार रंगा चमार सिद्दा, तिमयया का बेटा भीमा भी और मोटा और टिप्पा भी जिनके न बैल हैं न खेत, वे भी अपने-अपने बालों में फूल खोंसे चले आ रहे हैं। और अपनी कड़ी आवाज में पुजारी रंगप्पा कहते हैं, 'तो तुम सब तैयार हो मेरे बेटों ? और वे सब उत्तर देते हैं,' अवश्य, अवश्य।' 'और वह कहाँ है ?' और लोग जवाब देते हैं, पटेल आ रहे हैं—वह आ गये।' और पटेल अपने घोड़े पर आते देखे जाते हैं, उनके कंधे पर जालीदार शाल पड़ा हुआ है, सिर पर उनकी दरबारी पगड़ी बंधी हुई है, हाथ में विलायती लगाम पकड़े हुए हैं। प्यादा उनके पीछे-पीछे दौड़ता आ रहा है—मानों उसके मुँह से गिरती लार कलक्टर या गवर्नर पोंछ सकते हों; पर रंगागोंड़ा कंठपुर में पटेल के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। और जब वह काले नाग की बाँबी के पास पहुंच जाता है तब उतर पड़ता है, मादा के हाथों में लगाम पकड़ा देता है और मज़े-मज़े से चलता हुआ मंदिर के आँगन में पहुँच जाता है। और पुजारी रंगप्पा का मंदिर के गर्भगृह के घंटे का बजाना सुन पड़ता है, सब की आँखें धुँधली हो जाती हैं, पलकें गिर जाती हैं और सब लोग कहते हैं, 'अब, अब देवी दर्शन देने जा रही है।' लोग काँपने लगते हैं और एक-दूसरे के अधिक निकट सरक जाते हैं। उनकी टाँगे खुल जाती हैं पर उन्हें खुजलाते नहीं, शरीर से पानी चूता है तो वे बदन झकझोरते नहीं। इतने में अचानक पर्दा हट जाता है। मां केंचम्मा सीधी, चमकती हुई, दया की मूर्ति। लटकते दीपकों की ज्योति उनके चारों ओर आलोक का जाल बुनती है। लोग कहते हैं, 'लगता है, उनकी रात अच्छी कटी है।' फिर पुजारी रंगप्पा कपूर जलाते हैं और उसे देवी के रत्न-जटित मुख तक उठाते हैं और फिर उनके हीरे के हाथों और लाल रत्न के पाँवों के चारों ओर घुमाते हैं। फूल चुपचाप उनके चेहरे से लुढ़कते हैं और लोग कह उठते हैं, 'देवी हमें आशीर्वाद दे रही हैं। ओह केंचम्मा, हमें बढ़िया फसल दो और बीमारियाँ हम से दूर

रखो' देवी केंचम्मा, दयामयी केंचम्मा ।' लोग यों पुकारते हैं, और बैल भी बिना पूँछ हिलाये खड़े रहते हैं । पुजारी रंगप्पा पवित्र जल का कलश लिए बाहर आते हैं । कपूर और चंदन लाये जाते हैं । लोग कपूर और चंदन लेते हैं और देखते हैं कि कहीं बादलों के बीच सूर्य दिखायी देता है या नहीं— और वहाँ मंदिर की अमराई के पार घुड़मुँहीं पहाड़ी के ऊपर साड़ी के किनारे के बराबर चौड़ी एक लाल लीक़ नज़र आती है और लोग थर-थर काँपते हैं, हाथ जोड़े हुए आपस में फुसफुसा कर बात करते हैं । रंगगोंड़ा पुजारी से कुछ फुसफुसा कर कहता है, पुजारी सुब्बा गौड़ा के कान में फुसफुसाते हैं, "क्यों तुम्हारे बैल ही सब से कम उम्र के हैं न ? तुम उन्हें हल में जोतो ।" सुब्बा गौड़ा की छाती गर्व से फूल जाती है और वह अपने तीन साल के अमृतमहल बैलों के पास जाता है, जिन्हें उसने संतूर के जानवरों के मेले में खरीदा था । हल साफ़ और तेज़ है । लोग बार-बार देवी के वाहन चील के लिए इधर-उधर नज़रें दौड़ाते हैं कि वह दिखायी दे जाए । और उधर पुजारी रंगप्पा मंत्रों का पाठ करके घंटा बजाते जाते हैं, इधर वह मंदिर के कंगूरे पर होता हुआ आ पहुंचता हैं । वह आया, दिव्य डैनों वाला, एक बार मुड़ता है, फिर दूसरी बार, फिर तीसरी बार मंदिर की, मनुष्यों की, बैलों की परिक्रमा करता हैं और बिगुल चीख़-चीख़ कर अपनी आवाज़ अमराई के और घाटी के पार पहाड़ की चोटियों तक फेंक रहे हैं । पुजारी रंगप्पा पत्थर पर एक नारियल तोड़ते हैं और ज्योंही सुब्बा गौड़ा चिल्लाता हैं हे, हे, हे, हे', हो' त्योंही लोग फूल और अक्षत बरसाते हैं और हल धरती को चीरता हुआ और मिट्टी फेंकता हुआ जैसे-जैसे आगे-आगे बढ़ता जाता हैं वैसे-वैसे और आसानी से काटता चला जाता हैं । जब नागवाला खेत और गाँव का मैदान और तालाब वाला बाग जोते जा चुकते हैं तब सुब्बा हल को ज़मीन से सीधा बाहर निकाल लेता है और बैल और भी ज्यादा तेज़ी से दौड़ते हैं और लोग चिल्लाते हैं "होयला, होयला" और फूल बिखराते और अक्षत डालते हुए वे स्केफिंगटन के अहाते के आगे, भट्ट के भुतहे खेतों के आगे, नदी के किनारे के परे भागते जाते हैं । ज्योंही वे मंदिर के तालाब तक पहुंचते हैं त्योंही सुब्बा लड़खड़ा पड़ता है; फिर घूम जाता हैं और टीले से उतरता हुआ सीधे दालान में पहुंच जाता हैं और रुक जाता हैं । सब लोग रुक जाते हैं, खाँसते-खंखारते, पसीना पोंछते ही इस बीच पुजारी रंगप्पा फिर एक नारियल तोड़ते हैं और तोड़कर उसे बैलों को दे देते हैं । और सब लोग एक-दूसरे पर लाई-लावा फेंकते हैं और हर आदमी रंगप्पा को इकन्नियां-दुवन्नियाँ देता हैं और तब रंगप्पा भीतर जाते हैं और पुनीत जल

से भरा एक चाँदी का कलश लिये बाहर निकलते हैं और आठों दिशाओं में एक-एक अंजुली जल छिड़क देते हैं और सब लोग कहते हैं, अब हम लोग ज़मीन जोत सकते हैं। और कानों में पवित्र फूल खोंसे हुए अपने मन में पवित्रता लिए हुए, औरतें तेजी से अपने घरों की ओर और मर्द खेतों की ओर चले जाते हैं।'

असमिया साहित्य

चयन :

डा० महेश्वर नियोग

अनुवाद :

श्री नवारुण वर्मा

अनुक्रम

शंकर देव	• उद्धव को संबोधित कर	83
	• चरणों में पड़ा हरि	85
माधव देव	• अव्यक्त ईश्वर	86
	• दुर्निवार दुःसंग	88
	• राम गोसाईं	90
	• होवो भाई सावधान	90
	• दया के ठाकुर	91
श्रीधर कन्दली	• कान-खोवा	92
अज्ञात	• तंखुङ्वीय इतिहास	95
चन्द्र कुमार अगरवाल	• प्रकृति	97
	• अजेय	98
लक्ष्मीनाथ बेज बरुआ	• भदरी	99
हेमचन्द्र गोस्वामी	• प्रियतमा की चिट्ठी	103
रघुनाथ चौधरी	• गुलाब	104
दुर्गेश्वर शर्मा	• विश्व-भावना	106
यतीन्द्रनाथ दुवरा	• अतीत को भूल मत जाना	107
सूर्य कुमार भुइयाँ	• सृष्टि-समारंभ	109
अम्बिका गिरी रायचौधरी	• जाग, जाग, जाग	111
रत्नकान्त बरकाकति	• दो मनुष्य	113
नलिनी बाला देवी	• परम तृष्णा	115
देवकान्त बरुआ	• हम खोलते हैं द्वार	118
ज्योति प्रसाद अग्रवाल	• राजमहल की दासी	120

ऐतिहासिक समीक्षा

आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का उद्‌भव ईसा की ग्यारहवीं सदी के आसपास हुआ। असमिया इन भारतीय आर्य-भाषाओं में सबसे पूर्वी हिस्से की भाषा है। इस भाषा के एक हजार साल से पहले के नमूने अब तक हमारे सामने नहीं आये हैं। हालांकि ईसा की आठवीं और बारहवीं सदी के बीच रचित रहस्य-मूलक दोहों में, जिन्हें "चर्यापद" कहा जाता हैं, उस काल की भाषा का कुछ स्वरूप दिखाई पड़ता है। इन चर्यापदों में "सहज यान" की साधना-संबंधी उपदेश और योग-साधना पद्धति का निर्देश है। हालांकि भारत के पूर्वांचल की सभी आर्य-भाषाओं के विद्वान् इन चर्यापदों को अपनी-अपनी भाषा का पूर्वरूप बताते हैं। चाहे जो भी हो इस ग्रंथ के कुछ पद बौद्ध-धर्म के सांकेतिक रूपों से संबंधित हैं और इनके रचयिता कामरूप के ही थे, इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

असमिया साहित्य का पहला रूप हमें उस समय मिलता है जब यह भाषा शब्द-भंडार, कारक व वाक्य-रचना तथा पयार और त्रिपादी जैसे छन्दों से पर्याप्त समृद्ध हो चुकी होती है। माधव कन्दली (ईस्वी चौदहवीं सदी) इस समय के प्रमुख तथा श्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने सुललित और मुहावरेदार भाषा में "रामायण" के बीच के पांच कांडों का रूपान्तर किया था। ईस्वी चौदहवीं सदी में राजा दुर्लभ नारायण के राज्य काल में हरिबर विप्र तथा हेम-सरस्वती ने और दुर्लभ नारायण के पुत्र इन्द्रनारायण के राज्य काल में कवि-रत्न सरस्वती ने काव्य-रचना की थी। हरिबर विप्र इस काल के दूसरे श्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने रामचन्द्र के साथ उनके बेटों लव-कुश के संग्राम से संबंधित कथानक पर "लव-कुश युद्ध" तथा जैमिनीय अश्वमेध-पुराण के अर्जुन और उनके बेटे बभ्रुवाहन के युद्ध की कथा के आधार पर "बभ्रुवाहन युद्ध" काव्य की रचना की थी। हेम सरस्वती ने वामन पुराणान्तर्गत प्रह्लाद और हिरण्यकशिपु की कथा का रूपान्तर सौ पदों के काव्य में किया। साथ ही उन्होंने संभवतः कई पुराणों के आधार पर "हर-गौरी संवाद" नाम के और

एक काव्य की रचना की थी। कविरत्न ने महाभारत के द्रोण-पर्व के अन्तर्गत जयद्रथ-वध अनुपर्व के कुछ अंश का असमिया में अनुवाद किया था।

श्री शंकरदेव (1449-1568 ई०) द्वारा प्रवर्तित नव वैष्णव-आन्दोलन के रूप में देश में महान् पुनर्जागरण आया। मनकर, दुर्गावर कायस्थ और पीताम्बर कवि, ये तीनों कवि इस आन्दोलन के अन्तर्गत नहीं आते। इन लोगों ने सोलहवीं सदी के प्रारंभ में अपनी रचनाएँ—की थीं। मनकर और दुर्गावर ने सर्पों की देवी "मनसा" के पूजक धर्म सम्प्रदाय के लिए मनसा देवी की कथा से संबंधित पुराण की रचना लोक भाषा-में की थी। दुर्गावर ने लोक-प्रचलित छन्दों में कुछ बड़े मधुर रागों में गीति-रामायण की रचना की थी। पीताम्बर ने भी इसी शैली में उषा-परिणय. भागवत-दशम, नल-दमयन्ती, चंडी आख्यान आदि काव्यों की रचना की। भावना की दृष्टि से ये तीनों कवि अपने समकालीन वैष्णव कवियों से भिन्न हैं। इनकी रचनाओं को "पाचाली" या "पांचाली" कहा जाता है। बंगाल में इस शैली की रचनाएं बड़ी लोक-प्रिय हैं। विषय-वस्तु की दृष्टि से भी ये रचनाएं चिन्तन की बजाय भावना को अधिक प्रभावित करती हैं।

शंकरदेव का वैष्णव-धर्म का मूल सिद्धान्त अद्वैतवादी-भावना पर आधारित है। विष्णुरूपी श्रीकृष्ण के गुण कीर्तन तथा उनकी लीलाओं में विश्वास रखने को ही यह ईश्वर-प्राप्ति का प्रमुख साधन मानता है। इसे "एक शरण—नामधर्म" कहा जाता है। यह एक ईश्वर की उपासना का प्रचार तथा अन्य देव-देवियों की पूजा का निषेध करता है। शंकरदेव के इस आन्दोलन के साथ ही साहित्य-क्षेत्र में भी नवीन जागरण आया। शंकरदेव और उनके प्रमुख शिष्य व अनन्य अनुगामी माधवदेव ने गीतों, नाटकों, प्रबंध-काव्यों, और अन्य प्रकार की अनेक रचनाएँ कीं। कहा जाता है कि शंकरदेव ने भागवत्-पुराण के बारह स्कन्धों में से आठ स्कन्धों का असमिया में अनुवाद स्वयं किया था। उन्होंने इसके शेष अंश को पूरा करने के लिए विद्वानों को प्रेरणा दी तथा निर्देशन भी किया। इस महान धर्म-ग्रंथ का मूल-तत्व शंकरदेव की प्रमुख कृति "कीर्तन घोषणा" में भी सन्निविष्ट है। शंकरदेव ने अपने गीतों (वरगीत) तथा पत्नी-प्रसाद, कालि-दमन, केलि गोपाल, रुक्मिणी-हरण, पारिजात हरण और रामविजय आदि नाटकों में "ब्रजबुलि" (मैथिली, ब्रजभाषा तथा असमिया मिश्रित भाषा—अनु०) का अर्शाद प्रयोग किया है। उनके रचित नाटकों में संस्कृत नाटकों की कुछ विशिष्टताएँ हैं, वही रचना-शैली तथा अन्य कुछ दृष्टियों से उससे भिन्न भी हैं।

माधवदेव के बरगीत और "चोरधरा", "पिम्परा गुचुवा" आदि नाटक

कलात्मक निपुणता में उनके गुरु की कृतियों से भी कुछ हद तक अधिक निखरे हैं। शंकरदेव की कृतियों में जहां "दास्य" भावना प्रमुख है, वहाँ माधवदेव की कृतियों में "वात्सल्य" भावना की प्रमुखता है। वे बड़े उमंग से श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का चित्रण करते हैं। बालक कृष्ण, माता यशोदा और वृन्दावन गोपियों से हर तरह की क्रीड़ाएँ करते हैं। उनके आदेशों का भी पालन करते हैं। इस प्रकार की लीलाओं के वर्णन से माधव-देव जनमानस में एक रहस्यात्मक भीति भावना उत्पन्न कर कृष्ण के प्रति उसे आकर्षित करते हैं। एक हजार पदों से समन्वित 'नाम-घोषा' उनकी महान कृति है। इस ग्रंथ में महान्-भक्त और वेदान्त के चिन्तक के रूप में माधवदेव का स्वरूप उद्भाषित हो उठा है।

अन्नत कन्दली और राम-सरस्वती शंकरदेव के समकालीन श्रेष्ठ कवि थे। वैष्णव धर्म-गुरु श्री शंकरदेव ने अनन्त कन्दली को भागवत-दशम स्कन्ध के उत्तरार्ध का अनुवाद करने का काम सौंपा था। रामसरस्वती ने संत के विश्वस्त अनुगामी के रूप में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। अनन्तकन्दली की सबसे लोकप्रिय कृति "कुमार-हरण" उषा और अनिरुद्ध की प्रेम-कथा के आधार पर रचित है। उन्होंने भागवत के कुछ अंश का भी अनुवाद किया और रामायण का रूपान्तर भी निजी शैली में किया था। हालाँकि इसमें उन्होंने कुछ हद तक माधवकन्दली की रामायण से सामग्री उधार ले ली है। राम-सरस्वती महाभारत की—खासकर वनपर्व की कथाओं के आधार पर रचना करनेवाले निपुण कवि थे। अपनी कुछ कृतियों में उन्होंने पांडवों द्वारा असुरों के वध की कथाओं का वर्णन बड़े ही कौतूहल तथा अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दावली में किया है। इस क्षेत्र में "खटासुर वध" काव्य के रचयिता सागर खरि जैसे उनके कई अनुकारी थे। राम-सरस्वती ललित व्यंग काव्य 'भीम-चरित्र' की रचना के लिए भी प्रसिद्ध हैं। इसमें कवि ने शिव जी को एक कृषक तथा भीम को उनके सेवक के रूप में चित्रित किया है। इस प्रकार मनोरंजक कौतुक की दूसरी रचना 'श्रीधर कन्दली' रचित 'कान-खोवा' (कान खानेवाला) है। इसमें लोरियों जैसा माधुर्य और लालित्य है।

गोपीनाथ पाठक सत्रहवीं सदी के प्रारंभ में दामोदर दास, लक्ष्मी नाथ द्विज, पृथुराम द्विज और दूसरे कवियों ने भी महाभारत के विभिन्न खंडों का रूपान्तर करने का काम अपने अपने हाथ में लिया था। हृदयानन्द कायस्थ और दूसरे कुछ कवियों ने रामायण के अंशों का अनुवाद किया। असम के एक प्रधान-मंत्री पूर्णानन्द बुढ़ागोहाँइ के आदेश से श्रीकान्त सूर्यविप्र ने (उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में) अवधी भाषा में रचित तुलसीदास के "रामचरित-

मानस' का असमिया-रूपान्तर किया था। गोविन्द मिश्र और रत्नाकर मिश्र ने बड़ी निपुणता से भगवद्गीता का पद्यात्मक अनुवाद किया था। गोपालचन्द्र द्विज (ई० 16वीं सदी) भवानन्द मिश्र (ई० 16वीं सदी) और विद्याचन्द्र भट्टाचार्य (ई० 18वीं सदी) ने "हरिवंश" का रूपान्तर किया था। इनमें शेषोक्त दोनों कवि मूल से काफी दूर हट आये हैं। अनेक कवि पुराणों के अनुवाद में आकर्षित हुए। श्रेष्ठ प्रतिभाएँ वस्तुतः भागवत के अनुवाद में ही केन्द्रित रहीं। शंकरदेव और अनन्त कंदली के अलावा अनिरुद्ध कायस्थ (माधवदेव के सौतेले भाई के नाती 16वीं सदी), अनिरुद्ध कायस्थ (मोवामरीया वैष्णव सम्प्रदाय के संस्थापक), गोपालचन्द्र द्विज (16वीं सदी) केशवदास कायस्थ (शंकरदेव के सौतेले भाई के नाती, 16वीं सदी), नित्यानन्द कायस्थ (सत्रहवीं सदी) आदि इस पुराण अनुवाद-कार्य में नियोजित हुए थे। इनके अलावा अन्य पुराणों के उल्लेखनीय अनुवादों में भागवत मिश्र (सत्रहवीं सदी) ने 'विष्णु पुराण' का भुवनेश्वर वाचस्पति मिश्र (अठारहवीं सदी के प्रारंभ में) ने 'वृहन्नारदीय पुराण' का तथा रुचिनाथ कन्दली (अठारहवीं सदी) और रंगनाथ द्विज चक्रवर्ती ने मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत 'चंडी-आख्यान' का पद्यात्मक रूपान्तर किया था।

कलापचन्द्र का 'राधा-चरित' रामद्विज का 'मृगावती-चरित' पशुपति द्विज का 'चन्द्रावली-वृषाकेतु' द्विजवर का 'माधव-सुलोचना उपाख्यान' अज्ञात रचित 'मधुमालती' पुराने असमिया साहित्य के प्रेमगाथा-काव्य हैं। इस धारा के काव्य के विकास में उत्तर-भारत के कुतुबन और मंझन जैसे कवियों का प्रभाव उल्लेखनीय है। कविराज सूर्य विप्र (1616 ई०) एक भ्रमण-शील भाट थे। उनका लिखा हुआ 'शियाल-गोसाईं' (संत शियार) एक ऐसे वैष्णव की कथा है जिन्होंने अपना बचपन सियारों के बीच बिताया था। रामचन्द्र द्विज का 'महामोह काव्य' कृष्ण मिश्र के प्रतीकात्मक 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नाटक पर आधारित है। राम मिश्र (1654-63) ने 'हितोपदेश' और 'द्वात्रिंशत् पुत्तलिका' की कथाएं असमिया में लिखी थीं। इनके अलावा उन्होंने "वृन्दावन-चरित्र, में वृन्दावन के तीर्थों का विवरण सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया था।

शंकरदेव और माधवदेव के 'बरगीतों' की प्रेरणा से असम के अनेक वैष्णव महन्तों ने पदों की रचना की थी। कृष्ण-भक्ति मूलक इन पदों के साथ अठारहवीं सदी में स्वर्गदेव रुद्रसिंह (1694-1714) और स्वर्गदेव शिवसिंह (1714-44) तथा उनके राज्यकाल के अनेक कवियों ने शक्ति उपासना तथा राधा-कृष्ण संबंधी गीत-पदों की रचना की थी। इन कवियों ने राम-

नारायण कविराज चक्रवर्ती विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन्होंने गीत-गोविन्द, ब्रह्मवैवर्त-पुराणान्तर्गत—कृष्ण जन्म-कांड, और प्रकृति कांड से 'शंखचूड़ और तुलसी' की कथा का अनुवाद किया था। उन्होंने 'शकुन्तला' काव्य भी लिखा था, जिसमें उन्होंने चन्द्रकेतु और कामकला की प्रेम-कथा भी सन्निविष्ट कर दी थी। कामरूप जिले के हाजो स्थित हयग्रीव-माधव के पूजा-विधान हेतु राज्य के एक अधिकारी रामचन्द्र बरपात्र ने 'योगिनी तंत्र' के कुछ अंश का अनुवाद किया था। शिव संबंधी संस्कृत-स्तोत्र 'सौंदर्य-लहरी' का असमिया काव्यानुवाद 'आनन्द-लहरी' के नाम से अनन्त आचार्य ने किया था। भाषा रचित नारायण देव के 'पद्मा-पुराण' में मनसा देवा का गुणगान किया गया है।

वैष्णव-सत्रों (आश्रमों) के अनेक "अधिकारों" (महन्तों) ने शंकरदेव और माधव देव की शैली के नाटकों की रचना की थी। इनमें से कुछ नाटकों की रचना में सच्ची प्रतिभा दिखाई पड़ती है तथा ये इस अंचल में आजतक बड़े ही लोकप्रिय हैं।

दैत्यारि, भूष्ण, बैकुंठ और रामानन्द (सत्रहवीं सदी) ने चरित-काव्य रचना का श्रीगणेश किया। इन सभी लेखकों ने शंकरदेव के जीवन के संबंध में ही विवरण प्रस्तुत किये और परवर्ती लेखकों के लिए उनका संग्रह किया। सूर्यखरि दैवज्ञ (1798 ई०), रतिकान्त और कुछ दूसरे लेखकों ने कामरूप के कोच राजाओं की प्रेरणा से विभिन्न विषयों की रचनाएं कीं। वहीं उन्नीसवीं सदी के आस पास विश्वेश्वर और दुतिराम ने आहोम राज्य के पतन का वर्णन काव्य में किया। उपयोगी कलाओं के संबंध में भी पद्यात्मक रचनाएं हुई थीं। इनमें से बकुल कायस्थ की 'किताबत मंजरी' (1434) गणित, जमाखर्च और भू-मिति संबंधी पुस्तक है।

असमिया गद्य का पहला नमूना शंकरदेव और माधवदेव के नाटकों में मिलता है। यह ब्रजबुलि-मिश्रित गद्य है। इसने अपने पीछे लम्बी और सशक्त गद्य-परम्परा की नींव डाली। बैकुंठनाथ भागवत भट्टाचार्य जो भट्टदेव के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं (1558-1638) ने पुराने कवियों की कृत्रिम भाषा शैली और वाक्य विन्यास-पद्धति को गद्य में भी अपनाया और 'भागवत-पुराण' तथा 'भगवद्गीता' का अनुवाद गद्य में किया। लगभग एक ही काल में एक उल्लेखनीय कवि गोपालचन्द्र द्विज ने शंकरदेव की भक्ति-संबंधी संस्कृत कृति 'भक्ति-रत्नाकर' का सुललित गद्य में अनुवाद किया था। रघुनाथ महन्त की 'कथा-रामायण' (1658 ई०), एक अज्ञात लेखक

का 'पद्मपुराण' (क्रिया-योग सार) कृष्णानन्द का 'सत्यता-तंत्र' और 'कथा-घोषा' आदि परवर्ती सदियों में गद्य में रचित धर्म-पुस्तकें हैं।

वैष्णव द्वारा रचित 'कथा-गुरुचरित' और 'बुरंजी' (इतिहास-अनु०) नाम से प्रसिद्ध आहोमों के घटना-विवरणों में, दैनन्दिन जीवन में गद्य के प्रयोग का नमूना मिलता है। अन्ततः सत्रहवीं सदी के अन्तिम दो दशकों में इन दोनों प्रकारों की गद्य रचना का अटूट सिलसिला मिलता है। 'पुरणि असम बुरंज़ी' (गोस्वामी द्वारा सम्पादित, 1922), 'असम बुरंजी' (डा० भुइयां द्वारा सम्पादित, 1945) और 'कथा गुरुचरित' (लेखारु द्वारा सम्पादित, 1952) आदि साहित्यिक प्रवाह के साथ-साथ विषय-वस्तु के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से ऐसे 'चरितो' और 'बुरंजियों' की गद्य-रचना के प्रारंभिक तथा बड़े सुन्दर नमूने हैं। इस ढंग के घटना-विवरण का लेखन-क्रम उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ से काशीनाथ फूकन, मणिराम देवान बरुवा (सन् 1857 के शहीद) और हरकान्त बरुवा के असम इतिहास लिखने के समय तक लगातार चलता रहा।

कुछ उपयोगी कलाओं संबंधी रचनाओं के लिए भी गद्य का प्रयोग होता था। सुकुमार बरकाथ का 'हस्तिविद्यार्णव' (1734) एक संस्कृत ग्रंथ पर आधारित हाथी पकड़ने और पालने संबंधी पुस्तक है। 'घोरा-निदान' घोड़ों की चिकित्सा संबंधी पुस्तक है, जिसके लेखक का पता नहीं चला है। काशीनाथ की 'अंकर-आर्या' गणित संबंधी पुस्तक है। नृत्य के समय हाथों के संचालन के संकेतों संबंधी शुभंकर की 'हस्त मुक्तावली' (निओग द्वारा सम्पादित, (964) का अनुवाद व टीका इस काल की और एक उल्लेखनीय गद्य-रचना है।

सन् 1826 ई० में अंग्रेजों और बर्मा के बीच 'यान्दाबू' समझौते के फल-स्वरूप अंग्रेजों ने चतुराई से असम पर कब्जा कर लिया और इस भूमि को मृत्यु की छाया से होकर गुजरना पड़ा। सन् 1836 ई० में बंगला भाषा ने असमिया भाषा को स्कूलों और कचहरियों से बहिष्कृत कर दिया। यहाँ की जनता के अन्तर में अपनी भाषा के प्रति गौरव की भावना उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल से ही जाग्रत हुई। अमेरिकन बैप्टिस्ट मिशनरियों ने असमिया-भाषा में तथा असमीया-संबंधी पुस्तकें, जैसे—काशीनाथ फूकन का 'इतिहास' (1844), रेवरेंड नाथन ब्राउन का 'ग्रामेटिकल नोटिसेज़ आफ़ दी असमिया लेंग्वेज' (1844) डा० माइल्स ब्राउन की 'आसामीज इंगलिश डिक्सनरी, (1867) आदि प्रकाशित कर इस जागरण में महत्वपूर्ण हाथ बंटाया। इसके पहले सन् 1813 ई० बंगाल के श्रीरामपुर स्थित अंग्रेज मिश-

नरियों ने असमिया में बाइबिल का प्रकाशन किया था। सन् 1846 ई० में अमेरिकन बैप्टिस्ट मिशनरियों ने मासिक पत्र—'अरुनोदई' (अरुणोदय) का प्रकाशन आरंभ किया। इसी पत्र के जरिये असमिया भाषा में नया स्वर और नवीन दृष्टिकोण का समावेश हुआ। खासकर आनन्द राम ढेकियाल फूकन और इन मिसनरियों के प्रयास से ही सन् 1873 ई० में असमिया भाषा सरकारी कामकाज की भाषा का गौरव पुनः प्राप्त कर सकी। इसके बाद इसका साहित्यिक अभियान पुन: प्रारंभ हो गया।

असमिया साहित्य के सबसे प्रथम श्रेष्ठ प्रतिभा सम्पन्न पुरुष थे हेमचन्द्र बरुवा। अपने व्याकरणों और कोशों की रचना कर उन्होंने आधुनिक असमिया भाषा का मानक प्रतिष्ठित किया। अपनी व्यंगात्मक निबंध-रचना, जिसे लघु-उपन्यास भी कहा जा सकता है—'बाहिरे रं चं भितरे कोवा भातुरी' (1861) और लघु-नाटिका 'का नियार कीर्तन' के जरिये आपने सामाजिक दुर्गुणों को मिटाकर सफाई करने का प्रयास किया। गुणाभिराम बरुवा आधुनिक युग के प्रथम ऐतिहासिक और जीवनी लेखक थे। रमाकान्त चौधरी और भोलानाथ दास ने अपने काव्य 'अभिमन्यु वध' (1875) और 'सीताहरण' (1888) में पहले-पहल अभित्राक्षर छन्द का प्रयोग किया।

आधुनिक असमिया साहित्य के सबसे विराट व्यक्तित्व थे लक्ष्मीनाथ बैजबरुवा जिनका जन्म शताब्दी-समारोह सन् 1968 ई० में मनाया जा चुका है। उन्होंने अपने दोनों मित्रों—चन्द्रकुमार अग्रवाल और हेमचन्द्र गोस्वामी के सहयोग से सन् 1889 ई० में 'जोनाकी' मासिक-पत्र निकाला। उन्होंने हेमचन्द्र बरुवा की शैली को महत्तर पूर्णता प्रदान की और उसे आधुनिक साहित्य के विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति का सही माध्यम बनाया। हेमचन्द्र भी सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक व्यंग लिखने में उनसे काफी प्रभावित थे। बेजबरुवा की कहानियों, नाटक-प्रहसनों, उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें उन्होंने असमिया पात्रों का चित्रण बड़ी निपुणता से किया। बेजबरुवा गोस्वामी और अग्रवाल ने उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजी साहित्य में चलनेवाली रोमांटिसिज्म की धारा असमिया साहित्य में भी बहा दी। अब काव्य का दृष्टिकोण आत्मनिष्ठ प्रधान और स्वर धर्मनिरपेक्ष होने के साथ ही उसकी परिधि भी काफी विस्तृत हो गई। गोस्वामी प्रथम 'सानेट' लेखक थे। हालांकि आखिर में वे देश के पुरातत्व संबंधी विद्वत्तापूर्ण शोध व अध्ययन में लग गये थे। अग्रवाल की कविताओं में उच्च आदर्शवाद की झलक मिलती है। कमलाकान्त भट्टाचार्य ने अपने अनगढ़ छन्दों और ओजपूर्ण गद्य में प्रखर देश-प्रेम और बौद्धिक चिन्तन का समावेश किया। पद्मनाथ

गोहांइ बरुवा और एक प्रभावशाली साहित्यकार थे। नाटकों और उपन्यासों में ऐतिहासिक तत्वों का समावेश करने में वे पर्याप्त सफल हुए। वे निपुण कवि भी थे। विषय-प्रधान वर्णनात्मक-काव्य (लीला) के रूप में उन्होंने वैयक्तिक विषयी-प्रधान भावना को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया था। अपने परवर्ती जीवन में उन्होंने धार्मिक व दार्शनिक विषय-वस्तु को सफलता-पूर्वक अपना लिया थी। उनकी अपनी विशिष्ट गद्यशैली थी। लम्बोदर बरा और सत्यनाथ बरा ये दोनों सचेतन गद्य-शैलीकार थे। सत्यनाथ बरा ने अपनी कुछ रचनाओं में बेकन के निबंधों की शैली अपनाई थी। रजनीकान्त बरदलै ने अपने ऐतिहासिक व रोमांटिक उपन्यासों में स्कॉट और बंकिमचन्द्र का अनुकरण किया था। हितेश्वर बरबरुवा मुक्तक कविताओं के श्रेष्ठ कवि थे। गीति-काव्यकार दुर्गेश्वर शर्मा घरेलू जीवन संबंधी अपनी काव्य-कृतियों के लिए विशिष्ट हैं।

बीसवीं सदी के नवीन साहित्यकार खासकर 'जोनाकी' मासिक-पत्र के आदर्श के प्रति विश्वस्त रहने की कोशिश करते थे। बेजबरुवा का मासिक-पत्र 'बांही' (1909-1945) नवीन लेखकों को साहित्य क्षेत्र में आने और उन्हें आगे बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण साधन था। रघुनाथ चौधरी अन्य काव्य-प्रतिभा के अधिकारी थे। अपनी पक्षियों-संबंधी कविताओं में आपने प्रकृति का गुणगान किया है। अम्बिकागिरी राय चौधरी की कविताओं में विभिन्न स्तरों पर रहस्यवादी प्रेम भावना, पौरुष की प्रबल अनुमति और गहरा देश प्रेम अभि-व्यक्त हुआ है। यतीन्द्रनाथ दुबारा की सुन्दर गीत-कविताओं और (तुर्गनेव की शैली में रचित) गद्य-काव्यों में चिन्तनपूर्ण विषाद की छाप है। दुवारा का भावनापूर्ण हृदय विभिन्न स्थानों और काल का काव्यात्क सौंदर्य संग्रह कर नवीन प्रकाश में, नये रूप में उनका सर्जन करने को उत्सुक रहता था। उनका 'ओमर-तीर्थ' उमरखैयाम की और 'मिलनर-सुर' हाफिज की कृति का अनुवाद है। सूर्यकुमार भुयां, रत्नकान्त बरकाकति, लक्ष्मीनाथ फूकन, शैलधर राजखोवा और नलिनी बाला देवी की गीति-कविताएँ विषय-वस्तु और अभि-व्यक्ति शैली में अलग-अलग विशिष्टताएँ रखती हैं। बीसवीं सदी के दूसरे दशक में डिम्बेश्वर निकोग, बिनन्दचन्द्र बरुआ, अतुलचन्द्र हजारिका, दैवचन्द्र तालुकदार जैसे श्रेष्ठ कवियों का उदय हुआ। देवकान्त बरुआ तीसरे दशक के सम्भवतः सबसे श्रेष्ठ कवि हैं। अत्याधुनिक शैली की काव्य रचना में वे आगे आये और प्रेम-कविताओं में नवीन प्रश्न-मूलक पौरुष तथा चिन्तन का समावेश किया। दूसरी ओर गणेशचन्द्र गर्ग की प्रेम-नीति-कविताओं में तीव्र भावात्मकता और विषाद है। चन्द्रधर बरुआ, पद्मधर चलिहा, नीलमणि

फूकन, दंडीनाथ कलिता, उमेशचन्द्र चौधरी, कमलेश्वर चलिहा, प्रसन्नलाल चौधरी, आनन्द चन्द्र बरुआ इस काल के अन्य उल्लेखनीय कवि हैं। जगह की कमी के कारण उनका उल्लेख भर किया जा रहा है।

नाटकों के क्षेत्र में अतुलचन्द्र हजारिका ने सबसे ज्यादा नाटक लिखे हैं। ज्योतिप्रसाद अग्रवाल का पौराणिक-नाटक 'शोणित-कुँवरी' और ऐतिहासिक-सामाजिक नाटक 'कारेडर लिगिरी' में उच्चकोटि की कलात्मक और शैलीगत श्रेष्ठता दिखाई पड़ती है। मित्रदेव महन्त, इन्द्रेश्वर बरठाकुर, नकुलचन्द्र भुयां, प्रसन्न लाल चौधरी तथा और भी कोई अन्य नाटककार असम के अव्यावसायिक रंगमंच की अच्छी खुराक जुटा रहे हैं। दंडीनाथ कलिता, देवचन्द्र तालुकदार और दूसरे साहित्यकारों ने असमिया उपन्यास के भंडार को परिपूर्ण करने में काफी योग दिया।

कहानी-रचना में यह काल काफी समृद्ध है। शरतचन्द्र गोस्वामी इस कला के विशिष्ट साधक थे। तीसरे दशक में कई श्रेष्ठ कहानीकार सामने आये। महीचन्द्र बरा और हलिराम डेका ने व्यंग-कौतुक पर आधारित कहानियां लिखीं। वीणा बरुवा, रामदास, मुनीन बरकटकी, कृष्ण भुइयां, नगेन्द्र नारायण चौधरी, त्रिलोक्यनाथ गोस्वामी इस काल के अन्य उल्लेखनीय कथाकार हैं। लक्ष्मीधर शर्मा की कहानियां अभिव्यक्ति की शक्ति के साथ ही आन्तरिक गहराई से भी पूर्ण हैं। सर्वहाराओं के प्रति रोमांटिक सहानुभूति और भाषा के स्वाभाविक प्रहार के कारण सैयद अब्दुल मालिक इस काल के कहानीकारों में विशिष्ट स्थान रखते हैं।

'चित्रसेन जखरिया' ने लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ के साहित्यिक निबंधों के अनुकरण में कुछ लघु-निबंध लिखे हैं। तरुण राम फूकन की शिकार—कथाएं सुन्दर साहित्यिक—प्रवाह पूर्ण हैं। सूर्यकुमार भुइयां, सोनाराम चौधरी और आनन्द चन्द्र अग्रवाल ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई श्रेष्ठ ऐतिहासिक निबंध लिये। वाणीकान्त काकति ने प्राचीन और नवीन असमिया साहित्य पर आधुनिक समालोचना का प्रकाश डाला। तीसरे दशक और चौथे दशक के प्रारंभ में विरिंचि कुमार बरुआ, तीर्थ नाथ शर्मा, बरुवा हेम महेश्वर नियोग कुछ अन्य लेखक भी इस क्षेत्र में उतरते देखे गये।

सन् 1940 ई० के आसपास नई पीढ़ी के लेखकों ने बड़ी तेजस्विता से प्रचलित साहित्यिक परम्परा के खिलाफ विद्रोह की आवाज उठाई। कहानियों की संरचना में मनो-विश्लेषण का प्रयोग आरंभ हो गया। मुक्तक छन्द को यद्यपि अधिक संख्यक कवियों ने नहीं अपनाया फिर भी कविता में इसका

प्रयोग धड़ल्ले से होने लगा। लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ की 'नयी' आत्म-कथा में इस नवीन आलोचना दृष्टि का वैयक्तिक प्रयोग है।

दूसरे महायुद्ध ने असम के जन-जीवन को बहुत बुरी तरह अस्तव्यस्त कर डाला। अन्य कई विषयों की भांति यहां लेखन का कार्य भी अवरुद्ध-सा हो गया। प्रकाशन का काम ठप्प पड़ गया और मासिक-पत्र-पत्रिकाएं बंद हो गई। नतीजा यह हुआ कि पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन जब पुनः आरम्भ हुआ, तब ये पुराने आदर्शों से काफी हद तक कटे हुए थे। साहित्य के संकरे से प्रवाह में दूर और नजदीक के प्रभावों की भीड़ लग गई। खासकर कविता के क्षेत्र में ही यह परिवर्तन सबसे ज्यादा अनुभूत हुआ। काव्य क्षेत्र में ये परिवर्तन प्रबल वेग से आये और इसमें पर्याप्त सफलता भी मिली। अमूल्य बरुवा, नवकान्त बरुवा, हेम बरुवा, हरि बरकटकी, महेन्द्र बरा, नीलमणि फूकन, वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य, केशव महन्त, निर्मल प्रभा बरदले, अमलेन्दु गुह, वीरेश्वर बरुआ, होमेन बरगोहांइ, भवेन बरुवा और हीरेन दत्त आदि नये कवियों ने एक और रवीन्द्रनाथ और जीवनानन्द से और दूसरी ओर फ्रांस के प्रकृतिवादी स्कूल और जापानी काव्य-धारा आदि काव्य व चिन्तन के विभिन्न उद्गमों से प्रेरणा ली हैं।

उपन्यास का विकास कुछ धीमा मगर ठोस रूप से होता रहा। वीणा बरुवा का 'जीवनर बाटत', रसना बरुआ का 'तेउजी पातर काहिनी' (ये दोनों लेखकीय उपमान विरिंचिकुमार बरुआ के हैं) राधिका मोहन गोस्वामी का 'चाक नैया', नवकांत बरुआ का 'कपिली परीया साधु', प्रफुल्लदत्त गोस्वामी का 'केंचा पातर कंपनि,' योगेश दास का 'डाबर आरु नाई' अब्दुल मालिक का 'छविघर', 'सूरुज मुखीर स्वप्न' और 'आधारशिला', हितेश डेका का 'माटिकार' और 'भारा घर', पद्म बरकटकी का 'मनर दापोण', वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का 'इयारुइंगम' आदि उत्कृष्ट उपन्यास हैं। महम्मदपियार और कुछ दूसरे लेखकों के भी कुछ लघु-उपन्यास निकले हैं। प्रेमनारायण दत्त ने जासूसी उपन्यासों की परम्परा की नींव डाली। कहानियां आज भी सबसे प्रमुख साहित्य-विधा है। अब्दुल मालिक और दीनानाथ शर्मा जैसे पुराने लेखक आज भी कहानियां लिख और प्रकाशित कर रहे हैं। परन्तु तीसरे दशक के ज्यादातर कहानीकार आजकल कभी कभार ही दिख जाते हैं। बहुत से नवीन लेखक जीवन के प्रति नई दृष्टि, अभिव्यक्ति की जीवन पद्धति और सूक्ष्म व कभी कभी जटिल शैली के साथ मैदान में आये हैं। इन नवीन कहानीकारों में योगेश दास, वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य, होमेन बरगोहाई, सौरभ चलिहा, राहिणी कुमार काकति, चन्द्र प्रसाद शइकिया, महिम बरा, निरोध चौधरी,

भवेन शइकिया, लक्ष्मीकान्त बरा आदि ने जीवन की गहराइयों के चित्रण तथा विशिष्ट शैली के कारण अपना स्थायी स्थान बना लिया है। साहित्यिक और वैयक्तिक निबंध-लेखन में कुछ नये साहित्यकारों का ध्यान आकर्षित हुआ है। हेमचन्द्र बरुआ, तिलक हाजरिका, हेमचन्द्र शर्मा, भद्रबरा की कुछ रचनाएं पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुकी हैं। ललित बरा और किरण चन्द्र शर्मा के लेखादि स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहते हैं।

हमारे यहां व्यावसायिक रंगमंच का अभाव आज भी है। फिर भी खासकर युवा-वर्ग में नाटक खेलने की असीम उत्कंठा है। उसकी तुलना में यहां नाटक-लेखन की प्रगति संतोषप्रद नहीं कही जा सकती। आधुनिक काल में पौराणिक नाटकों की रचना नहीं ही हो रही है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान जिन ऐतिहासिक नाटकों की पुरानी वीर कथाएँ चोटी की लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी थीं, आजकल वैसे नाटकों की रचना भी कम हो रही है। हालांकि 'लाचित बरफूकन' (गुवाहाटी में मुगलों के विरुद्ध संग्राम करने वाले), मणिराम देवान (सन् 1857 के शहीद), टिकेन्द्रजीत (मणिपुर में अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करने वाले) और कुसलकोंवर (1942 के शहीद) आदि के कथानक आज भी नाटककारों को आर्कषित करते हैं। सामाजिक विषय-वस्तु पर आधारित और एकांकी नाटक ही अधिक से अधिक मंच पर आ रहे हैं। सार्वत्रिक प्रतिभा सम्पन्न नाटककार संभवतः अभी भविष्य में आनेवाले है—मगर सत्य प्रसाद बरुआ, गिरीश चौधरी, अनिल चौधरी, सारदा बरदलै, सुरेन्द्र नाथ शइकीया, दुर्गेश्वर बरठाकुर. अरुण शर्मा आदि लेखकों का नाम उल्लेखनीय है जो रंगमंच की भूख मिटा रहे हैं। वीणा बरुणा का "ए बेलार नाट", रेडियों पर बड़ा ही सफल रहा, मगर उपयोगी होते हुए भी इसे अब तक रंगमंच पर खेला नहीं गया है।

साहित्यिक समालोचना का अब तक उत्साह-जनक समय नहीं आया है। समालोचना में से बहुत से व्यक्ति विशिष्टता प्राप्ति हेतु प्रयत्न कम करते हैं। चाहे जो भी हो कुछ अध्यापक इस क्षेत्र में भी सक्रिय हैं और इस साहित्य की विभिन्न विधाओं में अध्ययन व शोध कर रहे हैं। विरिंचि कुमार बरुआ, हेम बरुआ, त्रैलोक्य नाथ गोस्वामी, महेश्वर निओग, प्रफुल्ल दत्त गोस्वामी, सत्येन्द नाथ शर्मा. उपेन्द्र नाथ गोस्वामी, भवानन्द दत्त, अतुल चन्द्र बरुआ, आदि ने साहित्य के संबंध में कुछ अच्छी परिचयात्मक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। मध्यकालीन असमिया-साहित्य के आलोचनात्मक संस्करण निकालने में गुवाहाटी विश्व-विद्यालय के अध्यापकगण स्वैच्छिक रूप से न होने पर भी गड़े-मुर्दे उखाड़कर सन्तोष प्राप्त करते हैं। जीवनी लेखन और यात्रा-वर्णन-

लेखन में पेशेवर-लेखक अब तक आकर्षित नहीं हो सके हैं। महेश्वर निओग का 'श्री श्री शंकरदेव' प्रमाणिक जीवनी-लेखन के क्षेत्र में एक सोपान है। वेणुधर शर्मा का "मणिराम देवान" अतीत का जागता स्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत करने का राष्ट्रवादी उद्यम है। ये दोनों कृतियां महायुद्ध के बाद प्रकाशित हुईं। सूर्य कुमारभुयां का 'हरिहर आता' एक संत की जीवन-कथा है जो कुछ कम प्रसिद्ध हैं। इसमें विषय-वस्तु के प्रस्तुतीकरण तथा शैली की जटिलता नहीं है। विरिंचि कुमार बरुवा, प्रफुल्ल दत्त गोस्वामी, अमलेन्द्र गुह आदि ने अपने-अपने यूरोप-भ्रमण की अभिज्ञताएँ हमारे सामने प्रस्तुत की हैं। हेम बरुआ के अमेरिका, सोवियत रूस, इजराइल आदि की यात्रा के सुलिखित भ्रमण-विवरणों में कविता और रोमान्स की सुगन्ध मिलती है।

असम का आज का साहित्यिक वातावरण प्राण-शक्ति, पौरुष और दृढ़-विश्वास से विशिष्ट रूप से परिपूर्ण है। संख्या की दृष्टि से न होने पर भी गुण की दृष्टि से श्रेष्ठ रचनाएँ पर्याप्त मात्रा में हो रही हैं और ये भारत की अन्य राज्यीय भाषओं की साहित्यिक रचनाओं की समकक्षता भली-भाँति कर सकती हैं।

अनुवाद—नवारुण वर्मा।

उद्धव को सम्बोधित कर

शंकर देव

उद्धव को संबोधित कर बोले कृष्ण अनन्तर—
मुक्त होता वही कर्मबन्ध से, जो रखता प्रबन्ध कर।
वैष्णव का संग लेता जो जन प्रारंभ में—
सुनता मेरा चरित्र भक्तों के पास में—
मेरा नाम कीर्तन जो करता सर्व-क्षण
हृदय में मेरा रूप यत्न से करता चिन्तन—
मेरा यश गाकर जो करता गीत-नृत्य
नहीं जिसे चिन्ता वही होता कृतकृत्य।
सुनो उद्धव, कहता भक्ति-रहस्य गूढ़
अभ्यास करो नित्य मति कर स्थिर।
समस्त भूतों में मैं व्याप्त हूं हरि
मानो सभी को विष्णु-रूप जान कर।
ब्राह्मण चांडाल का पूछो मत जाति-कुल
दाता-चोर में रखो दृष्टि सम-तुल्य।
नीच और साधु में जिसका होता सम-ज्ञान
उसे ही कहते हैं पंडित सर्वज्ञ-जन।
विशेषतः मनुष्यों में जो नर
सदा विष्णु रूप मुझे रहता मानकर
ईर्ष्या, असूया, अहंकार, तिरस्कार
तत्क्षण विनष्ट हो जाते उसके सभी विचार।
लख संगीगण को जो हँसता सब आवृत कर
मैं साधु, यह चोर, ऐसी भावना, लज्जा तज कर

कुत्ता, चांडाल, गर्दभ की भी आत्मा हैं राम
ऐसा जान सभी को करना साष्टांग प्रणाम।
सभी भूतों में विष्णुबुद्धि रहे नित्य —
काय—मनोवाक्य से अभ्यास करना निज चित्त।
विष्णुमय देखता जो अखिल जगत को
निज जीवन में शीघ्र ही वही होता मुक्त।
समस्त प्राणियों को देखे आत्म-सम
मुक्ति-उपाय यही है प्रमुखतम।
मेरे इस धर्म में नहीं रंच मात्र हानि—
क्योंकि सम्यक् रूप से मैं कहता तत्व-वाणी।
दांभिक, शठ से न कहना यह तत्व
वैष्णव-जनों को उपदेश देना नित्य
स्त्री शूद्र भी करते यदि मेरी भक्ति
उनसे कहना यह ज्ञान महा मति।
तथा भक्ति-भाव से पड़ता जो ज्ञान-जन
महा शुद्ध हो वही ज्ञान-दीप से पाता मेरा दर्शन।
जान गये तुम उद्धव—यही दिया उपदेश—
शोक-मोह क्या हो गया तुम्हारा निःशेष?
ब्रह्मा, हर, हलायुध, लक्ष्मी, प्रिय जाया
परम सुन्दर मेरी देखते जो यह काया—
सबसे अधिक तुम हो मेरे प्रियतम
उद्धव, नहीं कोई है बान्धव तुम्हारे सम।
भक्त ही है मेरा हृदय, जान लो निश्चय —
और भक्त-जन का मैं हूं हृदय।
मुझे छोड़ भक्त नहीं चिन्तन करता अन्य
भक्त को छोड़ मैं भी देखता नहीं अन्य।

चरणों में पड़ा हरि

शंकर देव

चरणों में पड़ा हरि करता विनती, रखो मेरे प्राण !
विषय-विषधर के विष से जर्जर रहता नहीं मेरा जीवन ॥ ध्रु० ॥

अस्थिर धन जन जीवन यौवन,
अस्थिर है यह संसार

पुत्र परिवार सभी हैं असार
किसे करूँ मैं प्यार ॥

कमल-दल-जल चित्त चंचल
स्थिर नहीं है कण-मात्र,

नहीं भव-भय भोग में मिटता हरि-
बिना परम-पद पाये ।

कहता शंकर यह दुख सागर
पार करो हृषिकेश

तुम ही गति-मति दो हे श्रीपति
तत्व-पंथ उपदेश ॥

अव्यक्त ईश्वर

माधव देव

अव्यक्त जो ईश्वर हरि पूजोगे किस भाँति उन्हें
व्यापक में कैसा विसर्जन

सदैव हैं जो भूतिहीन कैसे उनका हो चिन्तन-
"राम" कह शुद्ध करो मन ।।

तुम्हीं मेरी चित्त-वृत्ति के प्रवर्तक हो नारायण
तुम हो नाथ, मैं हूँ नाथवन्त

चरण-छत्र-छाया देकर करो दूर माया
दया करो मुझ पर भगवन्त

तुम्हीं मेरे अन्तर्यामी भृत्य तुम्हारा हूँ मैं
जान कृपा करो हृषिकेश-
दाँतों में तृण ले लिया चरणों में जैसे रहूँ-

दो मुझे यही उपदेश ।
मेरे तुल्य पापी-जन और न कोई त्रिभुवन में

तुम-सा नहीं पाप-हारी
जान यह, गोविन्द मुझ पर कृपा करो नाथ जैसे

करता निवेदन चरणों में तुम्हारे !
सहस्र सहस्र घोर अपराध दिवा-रात्र

करता मैं महा मूढ़ जन
प्रभु, मैं तुम्हारा दास, जान कर जगन्निवास

क्षमा करो श्री मधुसूदन।
धर्म को जानता मैं, फिर भी प्रवृत्ति नहीं
अधर्म से भी होती नहीं निवृत्ति
हृदय में स्थित हो तुम जैसे करवाते हो स्वामी
हृषिकेश, करता मैं उसी भाँति।
नहीं जानता आवाहन, नहीं जानता विसर्जन
नहीं जानता पूजा-मंत्र किंचित्
मैं दास तव चरणों का
अतः परमेश्वर, मुझे गति मुक्ति देना है उचित।

दुर्निवार – दुःसंग

माधव देव

दुर्निवार— दुःसंग दुर्वासनाओं से दूषित
हरि हरि हरि हरि हे !
अनादि अविद्या से मैं आप ही हुआ विमोहित !
अनात्मा इस देह को आत्म रूप मानकर
हरि हरि हरि हरि हे !
तुम परमात्मा ईश्वर से हुआ वंचित ।
परम-सुख तो है तुम्हारी पद-सेवा ही—
हरि हरि हरि हरि हे—
सेवा छोड़ उस सुख से हुआ मैं वंचित ।
माया मय घोर है संसार की यंत्रणा
हरि हरि हरि हरि हे –
उसे ही सुख मानकर मग्न हो गया मेरा चित्त !
हे कृष्ण, तुम्हीं मेरे हो आत्मा प्रियतम गुरु
मेरा प्रभु नारायण है—
परम ईश्वर भयहारी –
हरि हरि तुम हो इष्टदेव भय-हारी
यही जानकर तुम्हारे चरणों में शरण ली—
मेरे प्रभु नारायण हे—
न छोड़ना इस बार मुझे मुरारी
हरि हरि मुझे अपनाना माया से मुक्त कर हरि हे !
मनुष्य योनि के कर्मों से घूमा अनन्त योनियों में—
दीनबंधु दामोदर हे—

हरि हरि बार बार भोगा दुःख अपार—
दीनबंधु दुःख-भोग का नहीं कोई पार।

इस बार तुम्हारे चरण-युगल में ली शरण।
दीनबंधु दामोदर हे—

हरि हरि मुझे करना नहीं परिहार—
प्राणबंधु चरणों में रखना इस बार हरि हे !
बार बार नर-तनु पाकर भी तुम्हें त्यजा

दीनबंधु दामोदर हे—

हरि हरि संसार में भ्रमता रहा असंख्य बार
दीनबन्धु कितने किये यातायात।

इस बार करुणामय तुम्हारा किंकर बना—
दीनबन्धु दामोदर हे—

हरि हरि अनुराग मेरा रहे तुम्हीं में—
प्राणबन्धु चरणों में करता प्रणाम हरि हे !

माधव मुकुन्द मुरारी क्या गति होगी हमारी—
माया-सृष्टि आशा-नदी के बीच
डूब कर भी मिलता नहीं पार।

राम गोसाईं

माधव देव

राम गोसाईं करता हूं मैं गुहार—
मम हृदय-पंकज-थान में नित वास करो ।। ध्रु० ।।
माया से, मुक्त कर भक्ति करो दान ।
करूँ जैसे तुम्हारा चरण-पंकज मधुपान ।
माधवदास कहता, राम तुम्हारे
जहां जहां चरण हैं वहीं है सिर मेरा ।।

होवो भाई सावधान

माधव देव

होवो भाई सावधान, जिससे नहीं छूटै प्राण !
गोविन्द का आदेश पास ही मिले जान ।।
जीवन-यौवन है क्षणिक, सभी मायामय हैं छोड़ो
दुखों को अपना कर हरि-चरण में मन जोड़ो ।
छोड़ सभी अभिलाषाएँ, दूर कर मोह-पाश
हरि-चरण में लगाओ आश, कहता माधवदास ।।

दया के ठाकुर

माधव देव

दया के ठाकुर हरि यदुमणि हे राम,
अधम तुम्हारा नाम है पुकारता ।
कृपा करो नारायण, मेरा यह चंचल मन
रहे जैसे तुम्हारे चरणों में ॥धु०॥
वह विप्र अजामिल, था मंदमति पापशील
स्मरण कर तुम्हारा पुत्र-भाव से—
कर्म बन्ध कर विनाश पाया बैकुंठ निवास
यह है अति प्रसिद्ध संसार में
कोटि कोटि गुना उससे भी हूं पापमति निदारुण में—
तुम्हारे नाम की ही है आशा
परम पतित मैं पतित पावन तुम
जानकर किया तुम्हीं पर भरोसा ॥
धन्य-धन्य कलिकाल धन्य शुभ नर-शरीर
धन्य-धन्य भारतवर्ष—
तप जप यज्ञ तज तुम्हारा ही चरण भज
तव नाम-घोष से मिलता जहां हर्ष ।
कहते निगमागम-प्राप्त होते प्रभु तुम वहीं
उत्तम रूप से हम भी यह जानते नारायण
माधव है मूर्खमति सत्य सत्य यदुपति
तव चरणों में ले ली शरण ॥

कान-खोवा[1]

श्रीधर कन्दली

घोषा[2] ॥ सो जाओ रे, अरे कन्हैया
अरे "कान-खोवा" आता ।
सभी बच्चों के कान खाकर
तुम्हारे पास आता ।
पद ॥
मां के वचन सुन निकट आ
हंस बोले कन्हैया —
कैसा वह, सबके कान खाया करता
पहचान बता दो मैया ।
सुन उसका नाम नींद नहीं आती
मेरी छाती भय से होती कम्पमान
देखते ही उसे जैसे दौड़-भाग सकूं मैं
शीघ्र बता दो पहचान !
अनादि-स्वरूप से मैंने विश्व का सर्जन किया
चराचर का भेद बनाकर
सारे विश्व को प्रतिपालन करता सदा
रहता आत्मा रूप धारण कर ।

---

1. कान-खोवा — शिशुओं को भय दिखाने के लिए बताया जानेवाला एक कल्पित जीव ।
2. कीर्तन गाते समय बार-बार दुहराया जानेवाला पद-खंड ।

ब्रह्मा महेश्वर से लेकर हैं जो कुछ भी
सभी है मेरी ही सर्जना
मैं भी नहीं जान पाया इस 'कान-खोवा' की
किसने की है सर्जना।
विष्णु रूप से मैंने बैकुण्ठ लोक से
चढ़ गरुड़ के कंधों पर
विश्व भर में कर देखा संधान
बहुत प्रयत्न से घूम फिर कर।
स्वर्ग-निवासी नारकी, दुर्जन-महन्त
ढूँढ़ा सबके बीच
कहीं भी मैंने देख नहीं पाया
कान खोवा कहाँ छिपा ?
पहला अवतार मैंने लिया था—
दिव्य मत्स्य रूप धर—
चारों वेदों को पाताल बीच से
ले आया था उद्धार कर।
पुनः वहीं बढ़ाकर मत्स्य-काय—
भ्रमण किया सागर-तट पर
वहां भी तो मिला नहीं कोई भी
कान 'खोवा जैसा वीर।'
कर्म रूप से मैंने मन्दर धारण किया—
सागर-मंथन हेतु—
हुआ जब सागर उद्वेलित सारे जलचर
भाग गये सभी भयभीत।
काल-कूट गरल, अश्व उच्चैःश्रवा,
लक्ष्मी प्रकट हुई अन्त में—
उधर भी तो मिला नहीं कोई भी—
'कान-खोवा' रहता किस पंथ में ?
इस बार लेकर कृष्ण अवतार—
रहता हूँ तुम्हारे पास
'कान-खोवा' नाम सुन कांपता शरीर थर-थर
होता मुझे है त्रास।

निद्रा के छल से अबोध शिशु मैं—
नयन खोल रहता निरखता—
मैया, बता दो कैसे वह सबके
कान खाता फिरता।
कृष्ण-वचन सुन कर यशोदा—
रह गई मौन, हो शंकित
उत्तर दे न सकी कोई भी जब
हंस कर बलैया ली अन्त में।
'बेटा, यह झूठा है' कह कर मुंह में स्तन डाल दिया
गोद में कृष्ण को लेकर
श्रीधर कन्दली कहते कृष्ण-केलि—
मिलकर पुकारो हरि हरि!

तुंखुङीया[1] इतिहास

अज्ञात

इसके बाद महाराज ने ढाका पर अधिकार करने का तय कर बैशाख महीने में नदी की माटी की ओर शराईघाट में जाकर परीक्षित राजा के गढ़ के अन्दर अपनी छावनी डाल दी।

इसके अनन्तर राजा ने ढाका अधिकार करने के लिए भाद्रपद महीने में लाइथपना गोहाई के बेटे बरगोहाई, कुवैरगांव के फूकन बुढ़ी गोहाई, केन्दुगुरी के युवक बरपात्त गोहाई, इन तीनों महोदयों के साथ-साथ बरुवा, फुकन आदि सभी अधिकारियों से पूछा—"मैं ढाका की सीमा से लेकर इस राज्य पर अधिकार करना चाहता हूं। तुम लोगों का विचार क्या है ? केन्दुगुरीवाले बरपात्र गोहांई ने महाराज की बात पर हामी भरते हुए कहा—स्वर्गदेव ने ठीक ही पूछा है। करतोया-गंगा तक हमारा ही राज्य है। इधर हमारे ध्यान न देने के कारण ही दुश्मन ने ले लिया है। राजा बनने पर दुश्मन को मार कर अपनी सीमा बराबर रखते हुए राज्य जीत लेना ही उचित है। और नाथ नाविक, साज-सरंजाम आदि काफी हो गये हैं। स्वर्ग देव की आज्ञा हो जाय तो उस पर अधिकार कर सकते हैं। "कुवै गांव के फुकन बुढ़ागोहाई ने कहा—स्वर्गदेव ने ठीक ही पूछा है। बरपात्र गोहाई ने भी ठीक ही कहा है। स्वर्ग देव से पहले पुलिन महाराज ने अपने शक्ति-शौर्य के बल पर रंगाभाटी पार कर करतोया-गंगा में खाँडा धोया था। तब उसे ही असली-सा मानकर गुवाहाटी में थाना बनाकर मीनारा (नदी) को सीमा कह गये हैं। जयध्वज सिंह के जमाने में ऐसे साज-सरंजाम काफी थे फिर भी उसका नाम पड़ा भगोड़ा राजा। अस्त्र-शस्त्र, साज-सरंजाम सभी जड़ हैं। स्वर्गदेव के दास-

1. तुंखुङीया—आहोमों के एक प्रमुख राजवंश का नाम।

सेवक ही चेतन हैं। उन्हें ही चलाने पर चलता है। उसका बलाबल भी समझ लेना चाहिए। दुश्मन का बलाबल भी समझना चाहिए। युद्ध में जय-पराजय दोनों होते हैं। मैं समझता हूँ कि इसे भी विशेष रूप से समझ कर ही कदम बढ़ाना अच्छा है। फिर भी स्वर्गदेव जैसा कहेंगे, वैसा ही होगा।

राजा ने नाराज होकर कहा—हर जमाने ने गोहाँइ लोग ऐसी ही बातें करते हैं। और उन्हें विमा दे दी। इसके बाद बरुवा, फुकन आदि सभी ने कहा—स्वर्गदेव, गोहाइयों की कोई जरूरत नहीं है। हमें आज्ञा दीजिये, ढाका की सीमा तक हम अधिकार कर लें।[1] इसके बाद राजा ने बरदुवार मुख से लोहित तक राह के दोनों किनारे समान करवा कर राज्य का पालन किया। महाराज ने राह के दोनों किनारे रहने वाली सारी प्रजा का आनन्द देखने के लिए एक महल बएाया। उनके वहां बैठने पर राज्य के सभी लोगों ने उनको आशीर्वाद दिया। वहीं महाराज की तबीयत खराब हो गई। वे राज-भवन लौट आये। उस दिन से उनकी बीमारी बढ़ती ही गई। और उन्होंने नगर को और फैलाने के लिए हेवाली पर्वत को कटवा डाला। रात को उन्होंने सपना देखा—"पर्वत विधाता ने बनाया है। उसे तूने ढहाया, इसलिए बीमार पड़ा है।" इसके बाद पूर्ववत्, पर्वत बंधाकर पेड़ पौधे सब कुछ रोपे, बहुत दान दक्षिणा भी की, पर स्वस्थ नहीं हुए।

बीमार होने के आठवें दिन रविवार को एक पहर दिन रहते ही श्री श्री रुद्रसिंह महाराज स्वर्गवासी हुए। शक् संवत् 1636 के भाद्रपद महीने की तारीख 13 कृष्णा द्वितीया तिथि को। राज-भोग-अठारह साल छह महीने।

प्रकृति

चंद्रकुमार अगरवाल

खिली फूल की कली,
बहा गन्ध-प्रीति की धारा
कर कर हो गई विलीन —
मधु-पायी उस सुमन का
उन्मत्त वह भ्रमर
घूम-घूम फिरता एकाकी, उन्मन !
उड़ घूमकर वेदना से
बरसा कर निज हृदय-रागिनी—
चला गया वह भी —
कहां रहा कौन, क्या हुआ —
स्मृति-विहीन मिट गया —
जैसी थी, वैसी बनी रही प्रकृति ॥

अजेय

चन्द्रकुमार अगरवाल

नियति, दु:खकी चक्कीर में डाल —
यद्यपि तूने पीस डाला मेरा जीवन-अन्न—
चूर्ण-विचूर्ण कर ।
पर, तू भी देखना, निज आंसुओं से उसको
सान-गूँथ कर
बना लूँगा आशा के पीठा, मिठाई, लड्डू
जो ऐसे सहस्रों हृदयों के
भोग करने पर भी नहीं होंगे निशे:ष
जिनके लिए नहीं खिलते,
खेतों में फसलों के गुच्छे
तितलीकी, जंगली घास-फूस भी —
जिन्हें कभी मिलती या नहीं मिलती ।
नियति री, तूने —
दु:ख के ज्वलन्त अग्निकुंड में
मेरे लिखते हुए जीवन को
भस्म कर दिया, धूल में मिला दिया—
कुचल कर दिया शेष—
परन्तु देख री देख —
देखते ही देखते भर उठी
फूल-पत्तों से मेरी कुंज-लता
स्निग्ध-प्रेम की जीवन-दायिनी
शाखा-प्रशाखाओं से हो सम्पन्न —
यहां शान्त होंगे सहस्रों-हृदय
खिलेंगे उस मरु के बीच —
जहां लकड़ी जैसे सूखे, नीरस काल की—
कंटक कलियों के सिवा
और नहीं था कुछ भी ।।

भदरी

•

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा

अरी ओ, सुन रही है ? भात लेआ । अरी सुन रही है या नहीं । भात जल्द ले आ ।

शिशुराम इस तरह जोर जोर से चीखता-पुकारता हुआ घुटनों तक की लम्बी, भीगी हुई धोती बदल कर सीधे रसोईघर में चला गया । उसकी पत्नी भदरी रसोई बना रही थी । शिशुराम ने रसोईघर में जाकर देखा कि खाना परोसने की बात तो दूर, अब तक भात का पानी भी उबला नहीं था । एक थाली में मुट्ठी भर ढेकिया' साग साफ कर रखा हुआ था--उसे धोने की भी बारी अब तक नहीं आई थीं । सब्जी काटने की पहसुल एक केले के पत्ते पर मरे हुए मोर की भाँति टेढ़ा पड़ा हुआ था । सिर कुचली मिट्टी से सनी कावै कवई मछलियां यों तड़प रही थी मानो गाँजे का दम लगा कर नशे में धुत फकीर आपस में लड़-झगड़ कर सिर फुड़वा कर पड़े हों । दूसरी ओर भदरी चूल्हें में मोटी-मोटी ऊदी लकड़ियां डालकर लोहार की भाती की तरह जल्दी जल्दी लगातार फूँ-फूँ कर फूँके मार परेशान हो रही थी । फिर भी ऊदी लकड़ी जली नहीं । मानों वह किसी बीमार औरत सी कराहती-विलपती धुँधुआती रही ।

सुबह से ही कुछ और वजह से शिशुराम आग-बबूला हो रहा था । खेत से भूखा-प्यासा लौटने पर भी अब जब खाना बना हुआ नहीं मिला, तब तो आग में घी ही पड़ गया । उसके जलने का पहला कारण तो यह था कि कल कृष्णा-एकादशी आई । शिशुराम उपवासी रख, उसके खेत का हल भी बन्द कर चली गई । दूसरा कारण था शायद एकादशी के उपवास जनित आलस्य से बैलों ने उसे सुबह से ही तंग कर रखा था ।

पर असल में आज का कसूर बैलों का ही था । क्योंकि उनके कंधों पर

जुआ रखते ही मारे आलस्य के वे जमीन पर लेट गये थे । बैलों के हिन्दू मालिक अपनी पूजनीय गो जाति के खिलाफ गैर-हिन्दू गाली गलौज प्रयोग करने के अपराधी हैं। चाहे लोग कुछ भी क्यों न कहें, हम तो लोगों के बीच फूट डालना नहीं चाहते । एकादशी के उपवास से जिसके पेट-पीठ मिलकर एक हो गये थे, ऐसे शिशुराम को इधर उधर की बातें कर भूखों रखना हमें बिलकुल पसन्द नहीं । फिर अपने इन बैलों के बारे में भदरी की भी बड़ी अच्छी धारणा है । उसके प्रति भी हम अनादर नहीं दिखा सकते । तीसरे कारण का भी उल्लेख यहां होना आवश्यक है क्योंकि उसके बिना शिशुराम भदरी की कथा अधूरी ही रह जायगी ।

दूसरों की सीमा पार कर अपनी जमीन का परिमाण बढ़ाने का प्रयत्न करने के कारण सुबह ही बेथाई बरुवा के साथ सबका झगड़ा हुआ था । वह झगड़ा तन्दूरी रोटी की तरह फूल उठने ही वाला था कि हालत गंभीर होने की आशंका से मानो रोटी में छेद कर वह वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया । नतीजा यह हुआ कि शिशुराम के मन का गुस्सा मन ही में रह गया । इस अनोखी दुनिया में प्रायः ऐसा देखा जाता है कि बाहर अगर कहीं किसी पुरुष का अपमान होता है या कहीं किसी कारण से उसे क्रोध आता है और वह अगर अपने क्रोध का सद् या असद् व्यवहार उसी जगह नहीं कर सकता तो घर लौट कर अपनी औरत पर ख्वामख्वाह गुस्से में अपनी मर्दानगी दिखाने लगता है । सांसारिक व्यक्ति हमारा शिशुराम भी इस नियम का अपवाद न था । इस घटना के पहले भी एक दिन शिशुराम को उसी धूर्त बेथाई से बे-इज्जत होकर घर आना पड़ा था । उसने देखा था गुहाल में गायों के मक्खा-मच्छर आदि भगाने के लिए धुँए की व्यवस्था नहीं की गई थी । फिर तो घर में घुसते ही बेचारी भदरी की पीठपर किस तरह मार पड़ी थी, यह भी हमें ज्ञात है ।

अपने पति की इस तरह तीसमारखनेपन का मतलब भदरी को भी भली भाँति मालूम था । पति के अत्याचार का प्रतिकार किये बिना ही वह जननी वसुमति की भाँति अपनी पीठ उसके सामने कर देती । वस्तुतः भदरी का विश्वास था कि लात-घूँसे,थप्पड़-तमाचे, डंडे-मूसल आदि की मार उसके उठने बैठने खाने-पीने आदि की ही भांति विवाहित जीवन के ही अंग हैं। पर सभी बातों की सीमा भी रहती है मार-पीट भी अनन्त ईश्वर के साथ का ही कोई अनन्त पदार्थ है, ऐसा तो नहीं । सर्व सहा वसुमती का शिला-मिट्टी से निर्मित शरीर भी कभी कभी प्रकंपित हो उठता है । फिर हमारी छोटी-सी सहनशीला वसुमति भदरी का खून-पसीने का शरीर भी मार सहते-सहते कभी कभी कंपित

हो उठे तो यह क्या कोई बड़ी बात है ? आग जलाने के लिए ऊदी लकड़ी फूँकते फूँकते उसके नाक और आँख का पानी मिल कर एक हो गया था। ऐसी स्थिति में आज भी उसमें असंगत और अनुचित कम्पन हो गया।

शिशुराम-अरी, अमुक की लाड़ली भला, सूरज ढल जाने तक भी खाना क्यों नहीं बना ?

भदरी –भला मैं किसके सिर से खाना तैयार करूँ ? सूखी लकड़ी एक भी घर में नहीं। क्या इसकी भी खबर तुम्हें है ? फिर मैं यह ऊदी कच्ची लकड़ियों को फूँकते फूँकते मरी जा रही हूँ। बिना कुछ सोचे समझे यों डांटने-धमकाने से ही काम क्या बन जाता है ?

'ठहर चुड़ैल कहीं की' कह कर जामदग्न जैसे शिशुराम ने कवई, मछलियों का खून पीने के लिए पड़ी हुई पंहसुल उठा ली और उससे भदरी की पीठ पर दो बार चोट कर दी। तीसरी बार वार करने के लिए उसने पहंसुल उठाया ही था, इतने में भदरी की चीख सुनकर शिशुराम का भाई किनाराम आ गया। 'अरे अरे भैया, यह क्या करते हो', कहते कहते पीछे की ओर से उसने शिशुराम को मजबूती से पकड़ लिया और उसके हाथ से खून से सनी हुई पहंसुल छीन ली। खून से लथपथ भदरी बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ी।

अस्पताल में तीन दिन के बाद भदरी को होश आया। आँख खुलते ही उसने पास बैठी हुई नर्स डेरची से पूछा 'वे कहां गये ?'

डेरची--वे कौन ?

भदरी—(कुछ अप्रस्तुत सी होकर) हमारे वे-मेरे पति।

डेरची—वह आदमी हिरासत में है।

भदरी– उन्हें बुला भेजिये न।

डेरची—उसे भला क्यों बुलवा रही हो। वह अभी आ नहीं सकता। वह हिरासत में बन्द है। तुम चुपचाप पड़ी रहो। अपने आदमी की बात न सोचो। यह सब सोचने पर तुम्हारी बीमारी बढ़ जायेगी।

अस्पताल में डेरची की ऐसी बात सुनते ही भदरी फिर बेहोश हो गई। इतने में बड़े डाक्टर साहब वहां पहुंचे। कम्पाउन्डर के मुंह से उन्हें सारी बातें मालूम हुईं। उन्हें महसूस हुआ कि अगर शिशुराम को हिरासत से अस्पताल में न लाया जाय तो भदरी की हालत सुधरने की कोई संभावना नहीं। अन्त में उसे हिरासत से ले आने का ही तय हुआ।

फिर होश आने पर भदरी ने अपने पति शिशुराम को दो लाल पगड़ी

वाले पुलिसमैनों के बीच खड़ा देखा। डाक्टर साहब उनके बिलकुल करीब खड़े थे।

भदरी—(शिशुराम की ओर देख कर) तुम्हारी तबीयत ठीक है न? आज खाना तो खाया है न? तुम्हें शायद खाने पीने की बड़ी तकलीफ हो रही है।

जवाब में शिशुराम की आँखों से आंसुओं की दो बूँदें ढुलक पड़ीं।

भदरी ने हाथ जोड़, डाक्टर साहब की ओर देखते हुए कहा-धर्मावतार! मेरे मां-बाप! इनका जरा भी कसूर नहीं है। इन्हें छोड़ दीजिये। घुटने टेक कर यह दासी आपसे भीख मांग रही है, मेरे पति को छोड़ दीजिये। मछलियाँ काटने के लिए पहंसुल रखी हुई थी। मैं फिसल कर उस पर गिर पड़ी और इसी से दासी की ऐसी हालत हुई।

भदरी की करुण-कथा सुनकर डाक्टर, डेरची और सिपाही सभी चकित रह गये। शिशुराम से भी रहा नहीं गया। वह चिल्लाकर कहने लगा-नहीं, नहीं हजूर, मैंने ही इसे पहंसुल से घायल किया। मुझे जरूर फांसी पर चढ़ा दीजिये। धर्मावतार, मैं महापापी हूँ। मैंने ऐसी लक्ष्मी-पत्नी के शरीर पर हथियार से वार किया। मुझे फांसी दे दीजिये हुजूर!

कुछ दिनों में भदरी चंगी हो गई। इसके बाद अपने पति को निर्दोष प्रमाणित कर कानून के पंजे से निकाल लाने के लिए वह जी-जान से कोशिश करने लगी। फिर भी शिशुराम को तीन साल कड़ी कैद की सजा हो गई। शिशुराम हँसते हँसते उस विशाल जेलखाने के अन्दर चला गया। भदरी का दिल टूट गया। वह आँसू बहाती हुई घर लौटी।

प्रियतमा की चिट्ठी

हेमचन्द्र गोस्वामी

सौन्दर्य के वक्ष का खोल कर आवरण—
देखा उत्कंठा से प्रकृति का साज-घर।
मुरगी के टेढ़े-मेढ़े पैरों जैसे इन चन्द अक्षरों में—
जो अमृत भरा है, नहीं है और कहीं भी।
कवि निकुंज में खिलकर कितनी ही कविताएं—
मलय पवन में बहती फिरती हैं विश्व में—
लेकिन जो गीत जानता है तुम्हारा यह पत्र—
कवि के काव्य में नहीं है उसकी गंध भी।
खिलकर सुमन झर जाते, सूख जाते वन-उपवन
वसन्त के किसलय मुरझा जाते धूप में—
पर तुम्हारा पत्र प्रिये जानता कैसा सम्मोहन
खिलता नित्य नये रूपों में, कभी न बासी होता है।
सूंघता, चूमता चाहे जितना भी, लगती नहीं विरक्ति—
हृदय में उल्लास का जगता भोर का तारा।

गुलाब[1]

रघुनाथ चौधरी

किसके स्पर्श से तू खिली बान्धवी,
ओ स्नेहमयी फूल-कली मेरी ।
उन्मोचित कर श्यामल-पल्लव पट
किसकी ओर निहार बिखेरती मधुर हास ?
किस नन्दन में लगा दी तूने चकाचौंध
जहां नाचतीं बुलबुल परियां—
अभिशप्ता सी विलास-निकुंज में--
प्रेम-सुरा में तल्लीना-सी !
हुस्न हेना फूलों की तीव्र सुगंध से—
स्वप्न-विभोर सी माधवी-निशा—
तेरे स्पर्श से विरही-चांद की
मिटी क्या प्रिये प्राण-पिपासा ?
अरब-प्रिया बसरा-रानी का
किया शीतल तूने गुल-बदन—
तेरे रूप-तरंग में तैरता रहता
पपीहे का स्वर स्निग्ध-करुण ।
जिस दिन खिली तू नखलिस्तान में—
भर गया सुवास अखिल भुवन में
गगन-चुम्बी 'कलसस' ने तेरी
छक कर पी रूप-माधुरी

1. गुलाब—कवि ने गुलाब को एक नायिका के रूप में चित्रित किया है ।

रहती क्या थी प्रिय तू बेबीलोन के
सुमनोद्यान में बनी कुसुम-रानी—
स्वर्ग का नन्दन सजा शून्य में—
कवि-कंठ में बन अमरवाणी !
रूप-रस-गंध-स्पर्श-प्रेम से —
जीत लिया तूने प्यारे हिन्दुस्तान को-
बादशाही-हरम को गुलजार कर
प्लावन लायी हृदय सिन्धु में ।
विश्व विभोर है तेरे रूपों से
कर रही प्रवाहित निर्मल प्रेम-धार-
दिल्ली-बेगम नूरजहां की
क्या थी तू ही दिल-बहार ?
किस सुन्दरी के कल-कपोल में—
रच दी तूने बेलबूटों की बारीक नक्कासी-
प्रेमी शाहजहां की जगी जहां—
भुवन-विजयिनी संगमरमर की ताज ।
कितनी ही काव्य गाथाएं, अतीत स्मृतियां,
उदास-प्रेम का मूर्तित विकास-
विजड़ित तेरे कोमल वक्ष में-
कितने विरहियों के हाहाकार !
खिलेगी क्या मेरे भी मानस कुंज में --
ओ मेरी करुणामयी फूल-कली—
बजेगी क्या प्रिये, पपीहे की
मिलन-बांसुरी पुलक-भरी ?

विश्व-भावना

दुर्गेश्वर शर्मा

हम नाच रहे हैं-जीवन भर
किसके स्वर से, नहीं जानते
हम गाते रहते जीवन भर
किसके गीत, नहीं जानते ।
हम मिट्टी के पुतले, नाच रहे हैं—
कौन नचाता, नहीं देखते—
किसकी बंसी, बजते रहते
कौन—बजाता, नहीं देखते ।
हम गा ही रहे हैं गुण किसके
अपने को खुद ही भूल कर
हम किसके काम करते रहते —
विश्राम न पाते हैं क्षणभर ।
हम भूमि का निभाने वाले भर, जग रंगमंच—
नित्य सजाते रहते—
हम सच्चे अभिनेता हंस-रो, नाच-नाच-
करना निज अभिनय जानते ।

अतीत को भूल मत जाना

यतीन्द्र नाथ दुवारा

सनेही सखा मेरे, अन्तिम अनुरोध यही
अतीत को भूल मत जाना ।
वसुधा के वक्ष पर समाप्त कर जीवन-खेल —
जिस दिन होगा अलग हो चले जाना
अतीत को भूल मत जाना ।

सुख में, दुःख में जीवन के पीछे पीछे फिरते हैं
अतीत के सपने सुनहले —
छोड़ हम आये जो दर्पण प्रेम का
विषाद-क्षण में, पल में आते सामने ले ।
अतीत के सपने सुनहले ।

कंपित युग अधर प्रकट नहीं कर पाते
'जाते हैं' यह विदा की वाणी —
कपोलों पर बहती आंसुओं की धाराएं
अंतिम विदा मांगती अनमनी —
'जाते हैं' यह विदा की वाणी ।

आवृत कर लेते जीवन-नभ को विषाद-मेघ
जब रहता है प्रकाश का चिह्न नहीं—
फिर भी धीरे धीरे कदम कदम
राही बढ़ चलता दूर कहीं—
जब रहता-प्रकाश का चिह्न नहीं ।

कुहरा अंधियारा कुछ भी नहीं मान
सम्मुख रहता स्मृतियों का श्मशान
जहां विलीन हो जाती कितने प्रेम की छवियाँ
जगा कर करुण भरी तान—
सम्मुख रहता स्मृतियों का श्मशान ॥

उसी के बीच जलता रहता मेरा राही—
सुनता सुख-दु:ख के संगीत ।
रह स्वयं एकाकी, अन्तर में आशा-निराशा की—
रेखाएं करता अंकित—
सुनता सुख-दु:ख के संगीत ।

श्वेत-पंखी नाम ले अपनी—
नाविक खड़ा बाट जोहता —
ज्यों चढ़ जाऊंगा नाव की छाती पर, वह नाव खोल
चल देगा भाटी की ओर गाता—
नाविक खड़ा बाट जोहता ।

दूर गरजता सुनो अत्यन्त सागर
पर्वत सरिस तरंगें जगाकर
उद्‌बाहु मरण का अंतिम आलिंगन—
चिह्न नहीं रख जाता कण भर ।
पर्वत-सरिस तरंगे जगा कर ॥

विश्व में जो भी मिले अनादर-अवहेलना-
सुख-दु:ख सब कुछ संग्रह कर,
निवेदन करता सब को आन्तरिक प्रमाण —
चला जा रहा नाव खोल कर—
सुख-दु:ख सब कुछ भूल कर ।

सांध्य-गगन के झिलमिल छोटे तारे का
आ रहा सादर अन्तिम आवाहन —
हरियाली भरी प्रकृति के कोमल आंचल में—
हो गया मेरा खेल समापन ।
आ रहा सादर अंतिम आवाहन ।

नाव खोल कर चला, दूर जाना
अतीत को भूल मत जाना ॥

सष्टि की भूमिका

सूर्य कुमार भुइयां

उस प्रलय के दिन
प्रभु, तुमने हाथ में ले ली
अपनी रुद्र वीणा ?
नहीं था कोई भी आनन्दित —
थे अरुण चन्द्र भी मौन व्यथित
दिगन्त में जल उठी
भयावह उद्दीपना
जिस दिन तुमने हाथ में ली
अपनी रुद्रवीणा।
चल गया चन्द्र निज कक्ष छोड़
नये गगन की कामना जोड़
शून्य वक्ष में ज्योतिर्मालाएं
हो गई थी ज्योति हीना—
जिस दिन तुमने हाथ में ली —
अपनी रुद्र वीणा।
आकाश हो गया मेघावृत्त—
लुप्त धरा की रेखा कुँचित
अखिल सृष्टि में परिव्याप्त थी
जलधाराएँ विश्व प्लाविनी—
उस पर से उड़ चली प्रभु
तुम्हारी रुद्र वाणी।

उस अंधकार में जगे पुनः
लाखों तारे —
उस विनाश ने जन्म दिया
फूल भरी धरती को ।
मुकुलित हुई चिन्ता-लताएं —
नये स्वरों की नई कथाएँ —
निकल विश्व से जन-अन्तर में —
जगी नई सृजन-कणिकाएं —।
उस दिन तुमने रख दी ---
अपनी रुद्र वीणा ।

जाग, जाग, जाग

अम्बिका गिरी राय चौधरी

जाग, जाग, जाग, भारत-सन्तान हिन्दू मुसलमान जाग ।
मुक्ति-शंख बजता गरजता भेद कर
लक्ष भ्राताओं के हृदय-रक्त से
रंजित होने वाला जलियाँवाला बाग ।।

जाग, हृदय-विहीन दानव-व्रज पद-मर्दित नरनारी ।
जाग, आवाल वृद्ध-बनिता दासता घृणित अरे, जीवन-भारी ।
जाग, सुखी, दु:खी, शोकमग्न रोगी, भोगी, योगी
हो सु-भागा या अभागा ।
जाग, तीन शताब्दियों से पिटी मुरझाया
जातीय आत्म-अभिमान ।

जाग, सत्य, द्वापर, त्रेता मुखरित मृत संजीवनी सामगान
जाग, कर्बला-भूमि, कुरुक्षेत्र, राम-रावण का इतिहास ।
जाग, शुक, वशिष्ठ, विश्वामित्र, बाल्मीकि, मनु, वेदव्यास !
जाग, बराह-मिहिर, खना, लीलावती, कालिदास, भवभूति, माघ ।
जाग, यमुना, सिकता को धोकर चांद बनाने वाली शुभ्र शारदीय-
ज्योत्सना —

जाग, प्रेम-विभोरा गोपिका मधु-मुरली की पहचान-
जाग, पांचजन्य-गम्भीर नाद-सुदर्शन की विद्युत शिखाएँ
जाग, जागरण-गीत झंकृत कर स्वर्ग मर्त्य सभी दिशाएं —
जाग, हरिनाम रस के विश्व-प्लावी नारदी-वीणा की राग
रागिनी —

जाग, स्थिर-प्रतिज्ञ, कठोर ब्रह्मचारी भीष्म का रिपु-दमन ।
जाग, बुद्ध देव, मुहम्मद का सत्य-हेतु जीवन प्रण
जाग, भागवत, गीता, वेद, कुरान का आत्म-विनाशी तत्वगीत
जाग, भारतवासी के हर अन्तर में महान शक्ति जगत जीत ।
जाग, स्वदेश राष्ट्र रक्षण हेतु दधीचि मुनि का तनु त्याग,
जाग, सप्तसिंधु अंजलि भर में सोखने वाले अगस्त ऋषि महान् ।
जाग, सत्याग्रही साधु मन्सूर, सुधीर प्रह्लाद भगवान ।।
जाग, कालकूट विष छोड़कर पानी करने वाला देवों का अमोघ बल ।
जाग, पान मात्र से पापी तापी का त्राण करनेवाला चिर पवित्र
गंगाजल ।
जाग, हाथ की मुट्ठी में हरि को रखने वाला साधन, भजन, यज्ञ-याग ।
हिन्दू-मुसलमान दोनों भाइयों को एक प्राण में गूंथने हेतु
जाग, कबीर, नानक, सिद्ध साधु की शिक्षा-दीक्षा मूर्त हो !
जाग, सभी विरोध, विघ्न, विपद-नाश कर देने वाला धर्म ज्ञान ।
जाग, मातृ-चरण पूजा की बलि में लाखों-पुत्रों का जीवन दान
जाग, भारत-माता का गौरव-रवि मिटा सभी कालिमा निशान ।।

दो मनुष्य

रत्नकान्त बरकाकति

एक गृह में
दो ही केवल
दो ही मनुष्य रहते ।
एक खेलता-
छिपकर सपने-
एक जल कर झरता ।
एक हँसता
तारों के अधरों से
फूलों की गंध लेकर
एक रोता
धरती की छाती पर
कूलों का बन्धन मानकर ।
एक आता-
प्रिय के रूप में-
झिझकता सकुचाता-सा,
दूसरा रहता
रुद्ध गेह में-
शून्य-शयन पर पड़ा हुआ-सा-
एक मुक्त
शिशु के प्राणों में-
नाचता आकाश भर कर-
दूसरा तल्लीन-

निज कर्मों में
      मरता जल-भुन कर।
एक स्तब्ध
      गिरि-गुफा
सरिता सागर-पार कर
      एक क्षुब्ध
घूम फिर कर-
      नहीं पाता कहीं पहचान !
एक निरन्तर धावित
      बहु वेशों में—
ध्वंस-सृजन के
      ताल ताल में,
दूसरा मरता
      देश देश में—
क्षण-क्षण में
      काल-काल में।

परम तृष्णा

नलिनी बाला देवी

आज की हो नहीं तुम मेरी, सुन्दर धरती-
जन्म-जन्म की, हो युग-युग की तुम मेरी-
अनन्त काल का मेरा शांति-निवास-गेह
हो स्वप्न-लीला भूमि तुम अतीत की।
विगत जन्मों की कितनी अनगिनत स्मृतियों की-
वृक्ष-पल्लवों में जगी हुई हैं रेखाएँ—
प्रकृति के रूपों में लिखित हैं अस्फुट-भाषा की
कितनी ही करुण कथाएँ।
कितनी ही बार जन्म लिया तुम्हारी गोद में
और फिर लौट कर चली गई
अधूरे कर्मों का बोझ उठा कर
घूम-घूम फिर यहीं चली आई—
सुन रही, पर्वतीय निर्झर झर-झर रव में
करता करुण पुकार—
नयनों में क्या बह रही किसी बीते युग की-
आँसुओं की धार ?
पहन तुहिन-मुक्तावली, रंगीन आंचल फैलाये
आती उषा स्वर्णिम रथ पर
प्रकृति के सौन्दर्य उपवन में अरुण मन्द मुस्काता
निशा का पट उन्मोचित कर।
दूर के पक्षी उड़ कर खो जाते दिगन्त में
पुकार व्याकुल स्वर में—

प्रतिध्वनि गूँजती सुदूर में—
जीवन-लहरी मेरा पिंजड़े का पंछी भी-
मिल जाना चाहता अनन्त में-
असीम के अपरिचित पंथ में ।
प्रभाती ओस कणों से सिक्त पवन के झोंके
बह जाते भाल भिगोकर
अनजान संदेश वितरित कर ।
निमीलित नयन खोलने के पहले ही
स्वप्नों की जड़ता टूटने के पहले ही-
स्वप्नों के पार के युगान्त की क्षीण स्मृतियां-
उतरातीं, फिर धीरे से हो जातीं विलीन-
भर मेरे अन्तर में आवेगों का कम्पन ।
सुन कर विहगी के मधुर स्वरों के गीत-
खिल उठतीं स्मृतियां किसी दूर अतीत की
कोकिल, 'केतकी' के स्वर में कंठ मिलाकर-
उस अतीत में गाये हुए कितने विस्मृत गीत प्रभात के ।
लिपटे शत-शत स्मृतियां युगान्त के प्रकृति-रूपों में
ज्योत्स्ना-ज्योति-विमंडित सांध्य पवन में ।
हरे-भरे खेतों के श्यामल अंचल में—
हास-रुदन, वेदना के छाये संघात-प्रतिघात ।
मेरे अन्तर की अनन्त तरंग-राशि-
उथल उठी है प्रकृति-वक्ष में —
अतीत के परिपूर्ण आवेग में ।
गूँथ रही मैं अनन्त माला लक्ष-जगवन की
अधूरे पड़े हुए शत-शत कर्मों की
मानस-मुक्ताओं से कल्पना का हार
भार लिये विगत की असीम वेदना का ।
क्यों यों आई थी, फिर लौट भी गई थी क्यों ?
किसकी है यह अभिलाषा, क्यों है यह गति असीम,
सभी मिला, फिर भी लगता जैसे कुछ मिला नहीं-
अधरों में न खिलती-भाषा, प्राण-भाव खोज नहीं पाते ।
किसने दे दी यों मानव की आत्मा में
विश्व-ग्रासी उत्कट अभिलाषाओं की बुभुक्षा —

अगर उसने यहां दी नहीं आत्मा की चिर-शांति—
स्पर्श मणि की प्रेम-सुधा ?
कौन सदैव पुकारता व्याकुल उद्वेलित स्वर में—
किस दूर-सुदूर से—
दिया नहीं उसने यदि व्याकुल जीवन के हेतु
शांतिमय सुख का निर्झर।
भोग से ही मानव की हो यदि सकती तृप्ति—
नहीं रहती वासना भी—
मानव की वासना का समाधिशयन होता तो
नहीं रहता जीवन-मरण भी।
मानव के नयनों की असीम सौंदर्य तृष्णा
अन्तर की सुख-आशा, अभिलाषाएँ—
नहीं हैं यह मर्त्य के क्षणिक जीवन हेतु—
सुख-आशा परम पद की।
रूप-तृष्णा चिर सुन्दर की ॥

हम खोलते हैं द्वार

देवकान्त बरुआ

मेरी मेज पर एक चित्र है
निकोलस टोरिक का ! उसका नाम ?
नाम है—"हम खोलते हैं द्वार।
किसका द्वार ? पूरब का या पश्चिम का ?
या दक्षिण कायम का द्वार ?
या महाप्रस्थान का आमंत्रण-मुखरित
उत्तरापथ का सिंह-द्वार ?
मैं हूं कवि देवकान्त,
यौवन का दिन ढलने पर
बाट के किनारे बैठा केवल क्षण भर
देख रहा हूं स्वप्न आज लम्बी-राह का—
अन्तहीन विफल राह का।
विश्राम-गृह में सुनता हँसी-ठिठोली की आवाजें
स्थान कहां है विश्राम का ?
उसके बन्द द्वार के मुहाने पर जनता के धक्कम-धक्के
द्वार खुलता कहाँ ?
जानता हूं ? जीवन के उद्‌भ्रान्त-छन्द का ताल
उतावला बना रहा है मुझको।
जानता हूं गति के अलावा मेरी और कोई गति नहीं।
परन्तु यात्रा के अन्त में कहाँ है मुक्त-द्वार ?
मिलेगा क्या सिंहद्वार प्राणों के छन्दों में मेरे
चमगादड़ों की खोह-सा-घर खुल जायेगा अपने आप

यौवन का आमंत्रण देते हुए ?
भटक चुका हूँ अनेक राहों पर—
पेरू की इन्काओं के साथ-सोने चाँदी से मढ़ी पालकी पर-
मरण-मधुर उस यौवन के विराट खंड में मेक्सिको में
आहुतियां दी मैंने रूपकुँवर के साथ—
रूपसी के नृत्य के छन्दों में।
निनेवा के पक्ष-विमंडित साँड़ों के सामने
असुरों का विजयोत्सव ! उसमें भी सम्मिलित हुआ मैं,
शून्य-उद्यान बेबीलोन का। इनान्ना के मंदिर के सिंह द्वार पर
प्रभाकांक्षिणी शत शत देवदासियाँ--
प्रेमांजलि ग्रहण की देवदासी-राजकुँवरी की
कितने ही आनन्दोत्सवों का किया प्रारम्भ—
मैंने युवा-युवतियों के साथ—
उस समुद्र-स्तनित सौंदर्यशाली क्रीट के
उत्सव-प्रांगण में—
भटक-चुका बहुत-सी राहों पर—
परन्तु द्वार खुले कहाँ ?
देखता हूं, बन्द हैं सारे द्वार।
द्वार खुला है सिर्फ अचल चित्र का,
किताबों की ढेरी में रखा निकोलस टोरिक के
एक चित्र का।

राजमहल की दासी

ज्योति प्रसाद अग्रवाल

तीसरा दृश्य

रेवती : कुमार, दासी शेवाली पाठशाला में भी नहीं है।

सुन्दर : वह गई कहां ?

रेवती : क्या जानें ? बता नहीं सकती !

सुन्दर : (रेवती के पैरों से लेकर सिर तक तेज निगाह डालकर) तू ठीक से बातें क्यों नहीं कर पा रही है ? जैसे कांप रही..............है। (कुछ सोच कर सन्देह का भाव प्रकट करता है) शेवाली राजमहल के अन्दर है या नहीं ?

रेवती : कह नहीं सकती।

सुन्दर : (अत्यधिक विस्मित होकर) कितने अचरज की बात है। ऐसी घटना तो कभी नहीं हुई थी। मित्र, सुन रहे हो ? कहती है, शेवाली राजमहल में नहीं है। यों—अचानक वह गायब क्यों हो जायेगी ? हूं—समझा, (सिर हिलाकर) मैं समझ गया अरे दास और रेवती ! तुम्हें शेवाली को खोज लाना ही पड़ेगा। राजमाता और पिता जी से पूछो—शेवाली गई कहां ? (राजमाता धीरे-धीरे प्रवेश करती हैं। सुन्दर उनकी ओर भेड़िये की तरह खूंख्वार नज़रों से देखता है)

सुन्दर : शेवाली कहां चली गई ?

राजमाता : (रुखाई से) शेवाली से तेरा क्या काम है ?

सुन्दर : (पहले से तेज आवाज में) शेवाली गई कहां बताओ !

(राजमाता बाघिन की भांति सुन्दर की ओर देखती हुई चुप रहती है)

सुन्दर : (नौकर और रेवती से) कहाँ गई वह ? (नौकर और रेवती चुप रहते हैं) क-हाँ-गई नहीं ब-ता-येगा ? (कहते-कहते नौकर के कंधे पकड़ कर जोर-जोर से झकझोरते हुए) क्यों ? —क्या—क्या—क्यों—रे।

नौकर : (परेशान होकर) हे भगवान ! मैं—मैं—नहीं जानता।

सुन्दर : जानता है, जानता है, जानता है। इस राजमहल के सभी लोग जानते हैं। सभी ! (उन्मत्त की भाँति) अरे कौन है ? कौन ! बुला-ला-बुला-ला ! सभी लोगों को बुला ला (नौकर दौड़ता हुआ निकल जाता है। सुन्दर की चीख-पुकार सुनकर, पुरुष-नारी, दास-दासी सभी अन्दर से वहां आकर त्रास से उद्विग्न होकर खड़े रहते हैं। सुन्दर सब की ओर देख कर कहता है)

सुन्दर : शेवाली कहाँ गई ?

सभी : (एक ही साथ) हम कह नहीं सकते।

सुन्दर : (हर अक्षर पर जोर दे देकर) स-क-ना-हो गा। नहीं तो मैं तुम को कड़ी सजा दूंगा, मैं असुन्दर बनूंगा। ऐसा अमानुष—असुन्दर बन जाऊंगा—मैं—दास—दास। चाउडाँ बरुआ[1] को बुला ला। तुरंत अभी अभी—

(सुन्दर क्रोध में थर-थर कांपता है। सुदर्शन किंकर्तव्यविमूढ़ है।)

राजमाता : तेरे दिमाग में क्या बैठ गया है ? संसार में जो नहीं करना चाहिए वही कर डाला। अपनी विवाहिता पत्नी को दूसरे के हाथ सौंप दिया। राजवंश के चेहरे पर कालिख लगा दी। अपनी मान-मर्यादा सब कुछ मिट्टी में मिला दी। बुढ़ा गोहाँई की छाती में कांटे चुभो दिये। राजपरिवार को प्रजा की ठिठोली का पात्र बना दिया। समाज की रीति, धर्म-कर्म सब कुछ तिलांजलि दे दी। अब भी तुझे शर्म नहीं आती। बेशर्म, पापी ! अब फिर उस दासी के लिए पागल हो रहा है।

---

1. चाउडाँ बरुवा—आहोम राजाओं की अंगरक्षक-सेना का प्रधान आहोम राजा इसी अधिकारी के जरिये अपराधी को प्राणदंड देते थे।

सुन्दर : बहुत अच्छा हो रहा है। शेवाली कहाँ गई ? शेवाली को तुमने क्या किया ?

राजमाता : शेवाली को मैंने मार डाला या काट डाला या चाहे जो भी किया हो। तेरा क्या ?

सुन्दर : चाहे जो भी किया हो, कह देने से काम नहीं चलेगा, माँ।

राजमाता : चलना पड़ेगा। तुझे मेरी बात सुननी ही पड़ेगी।

सुन्दर : नहीं सुनूँगा, नहीं सुनूँगा। नहीं च-लूँ-गा। अगर शेवाली को कहीं छिपा रखा है तो उसे निकाल दो। अगर भगा दिया है तो लौटा लाओ। अगर निर्वासित किया है तो वह आदेश रद्द कर दो। अगर हाथ पैर काट डाले हैं तो उन्हें फिर लगवा लाओ। अगर उसे जान से मार डाला हो—तो उसे फिर से जिन्दा कर मेरे पास ला दो।

राजमाता : और नहीं तो क्या करेगा तू ?

सुन्दर : मैं क्या करूंगा ? तुम्हारी जो भी कण-भर मान-मर्यादा बची-खुची है उसे भी मैं पैरों से कुचल कर धूल में मिला डालूंगा। तुम्हारे सात—पुरखों की—रीति-नीतियों को तोड़-ताड़ कर चूर-चूर कर डालूँगा। (चाउडां बरुवा आकर घूटने टेक कर बैठ जाता है।) चाउडां बरुवा ! शेवाली दासी नहीं मिल रही है। तुम्हारे पास कितने रक्षक-पहरेदार हैं-सबको उसे ढूंढ़ने में लगा दो और इस नगर का घर-घर, वन-जंगल सभी जगह छान मारो। राजमहल के इन सभी को ले जाकर पूछो कि शेवाली का क्या कर डाला। जैसे भी हो इनकी जबान से बात निकालनी ही होगी। मैं सब कुछ जानता हूं। राजमहल के सभी लोगों की इसमें साजिश है।

राजमाता : (दृढ़ता के साथ) सुन्दर ! तू राजमहल के अन्दर शेवाली को नहीं ला सकता।

सुन्दर : अगर तुम ऐसा ही कहोगी तो भला मैं कर ही क्या सकता हूं। मेरे पास शेवाली को ला ही देना पड़ेगा। चाउडाँ बरुवा, नौकर-चाकर, अभी तुरंत उसे ढूंढ़ कर ले आओ। (राजमाता से) राजमहल के अन्दर नहीं ला सकता, मां, मैं तुम्हारा यह आदेश नहीं मानूँगा। केवल इतना ही नहीं, इससे और भी

ज्यादा करूँगा। तुम्हारा आदेश, समाज का आदेश, मेरे पूर्वजों का आदेश, शास्त्रों की निषेधाज्ञा, शास्त्रकारों की वर्जना, मैं इन सबके विरुद्ध चलूँगा। मैं शेवाली को राजमहल के अन्दर लाऊंगा-मैं-मैं-उससे विवाह करूँगा। (सभी चौंक उठते हैं) और क्या करूँगा जानती हो मां! राजमहल के सभी लोगों को, सारी प्रजा को उसके सामने घुटने टेकना पड़ेगा। मैं उसे राजमहल की दासी से राजमहल की कुंवरी बनाऊँगा।

उड़िया साहित्य

चयन :

अध्यापक वेणुधर राउत

पतित पावन परिड़ा (सहयोगी)

अनुवाद :

शान्ति प्रसाद अग्रवाल

अनुक्रम

ऐतिहासिक समीक्षा		127
शूद्र मुनि सारलादास	• सारला महाभारत	143
कवि-सम्राट् उपेन्द्र भंडा	• लावण्यवती	146
कविवर राधानाथ राय	• चिलिका	148
भक्तकवि मधुसूदन राव	• बसन्त गाथा	151
श्री मायाधर मानसिंह	• कोणार्क	153
श्री सच्चिनन्द राउत राय	• सुन्दरम्	155
नारायणानन्द अवधूत स्वामी	• रुद्र सुधानिधि	156
शिव दास	• बत्तीस सिंहासनों की कथा	158
कवि फकीरमोहन सेनापति	• आत्म-जीवन चरित	160
उत्कलमणि गोपबन्धु दास	• भाषा और देश भक्ति	167
श्री गोपीनाथ महन्ती	• परजा (उपन्यास) [एक अंश]	170
श्री सुरेन्द्र महन्ती	• पिता और पुत्र (कहानी)	173

ऐतिहासिक समीक्षा

1 — उड़िया जाति, भाषा और साहित्य का आदिकाल :

भारत के प्रान्तों में उड़ीसा का अन्यतम स्थान है। इस प्रान्त की भाषा तथा साहित्य उड़िया कहलाते हैं। इस स्थान पर नाना जाति-उपजातियाँ निवास करती हैं। उड़िया लगभग दो करोड़ लोगों की प्रमुख भाषा है।

आधुनिक उड़ीसा का एक अन्य नाम उत्कल है। प्राचीन उत्कलिंग अथवा उत्तर-कलिंग का ही कालक्रम से संक्षिप्त होकर उत्कल नाम रह गया है। इस की अत्यन्त प्राचीनता से सम्बन्धित इसका उल्लेख नाना प्राचीन पुराणों, और व्यास के महाभारत तथा बौद्ध साहित्य आदि में देखने को मिलता है।

इसके अतिरिक्त निर्दिष्ट ऐतिहासिक सूत्रों से कलिंग का परिचय अशोक के कलिंग अभियान और युद्ध में मिलता है। धौली और जौगढ़ में उनकी राजाज्ञा इसके साक्ष्य के रूप में आज तक विद्यमान है तथा ई० पू० द्वितीय शताब्दी के जैन सम्राट् खारवेल के हाथी गुंफा-शिलालेख भुवनेश्वर-स्थित खण्ड गिरि और उदय गिरि में उत्कीर्ण होकर तत्कालीन कलिंग के शौर्य तथा समृद्धि की घोषणा कर रहे हैं। द्वितीय शताब्दी के ग्रीस देश के भौगोलिक विद्वानों ने कलिंग का जो उल्लेख किया है, उनमें टलेमि ने महोदधि का उल्लेख सागर के रूप में किया है। किन्तु ईसा से चार शताब्दी पूर्व कालिदास के रघुवंश से पता चलता है कि उस समय उत्कलिंग उत्कल के रूप में पूर्ण रूप से प्रसिद्ध हो गया था।

अशोक की राजाज्ञा तथा खारवेल राजाओं के शिलालेखों में आजकल प्रचलित बहुत से उड़िया शब्दों के आदिम रूप की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। शिलाओं पर उत्कीर्ण यह भाषा पाली या प्राकृत के पर्याय शब्दों से समन्वित है। खारवेलों के वंश-चेतियों के जैन होने के कारण एवं उस समय मथुरा एवं शूरसेन जनपदों के जैन केन्द्र होने के कारण, उनके प्रभाव एवं सम्पर्क-सूत्र से हाथी गुंफा के शिलालेखों की भाषा पाली के अधिक निकट होते

हुए भी शौरसेनी प्राकृत के अन्तर्गत आती है और अशोक के शिलालेख मागधी प्राकृत के पर्यायों से युक्त प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त लगभग ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में भरत ने उड़ नाम की एक विभाषा का उल्लेख किया है। पूर्वांकित पाली-प्राकृत, शौरसेनी प्राकृत, संस्कृत, द्रविड़ भाषा तथा मागधी प्राकृत के समन्वय तथा आदान-प्रदान से कलिंग प्राकृत का विकास होने लगा। खारवेलों के शिलालेखों की भाषा इसका उदाहरण-स्वरूप है। इस भाषा को कलिंग प्राकृत कहना समीचीन जान पड़ता है।

ईसा की पहली शताब्दी से लगभग सातवीं शताब्दी तक बौद्ध श्रमण, भिक्षु और संन्यासियों ने इस स्थान से चीन, सिंहल, ब्रह्मदेश, भोटदेश आदि दूर-दूरान्तर में जाकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया। इसने कलिंग प्राकृत को एक निर्दिष्ट प्रान्तीय अथवा आंचलिक भाषा बनने की ओर अग्रसर होने में सहायता दी।

लिपि की दृष्टि से, बुद्धदेव के द्वारा जानी हुई चौंसठ भाषाओं की लिपियों में, 'ललितविस्तर' में उग्रि लिपि का उल्लेख पाया जाता है। उसी उग्रि लिपि का उड़ि लिपि होना सम्भव है—ऐसा इतिहासकार राजेन्द्रलाल मित्र का कहना है। किन्तु खारवेल राजाओं के शिलालेख, ऐसा समझा जाता है, ब्राह्मी लिपि में खुदे हुए हैं। इस कारण उग्रि या उड़ि (?) लिपि का प्राकृत स्वरूप नहीं जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त ईसा की बारहवीं शताब्दी के लगभग उस समय की नागरी लिपि की एक विकारावस्था स्वतन्त्र लिपि के रूप में विकसित होने लगी थी। प्रायः तीन सौ वर्षों के समय के परिवर्तनों में गति करने के बाद इसने उड़िया लिपि का रूप ग्रहण किया।

प्रायः ईसवी सन् 638 में हुएन्-सांग ने कलिंग और उसके अन्तर्गत कोंगद आने के समय इस देश का 'उड़' रूप में वर्णन किया है। इस कारण उस समय की भाषा उड् नाम की ही रही होगी। शौरसेनी और विशेषतः मागधी प्राकृत ने भरत अथवा अशोक के समय में अथवा उसके पूर्व ही इस भाषा के ऊपर प्रभाव डालना प्रारम्भ किया, उसके उपरान्त यह विकास तथा परिवर्तन भारत की अन्यान्य भाषाओं के पक्ष में समकालीन रूप से अनुरूप ही घटित होता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि मागधी प्राकृत तथा उसके अपभ्रंश का सम्पर्क पूर्वोक्त कलिंग प्राकृत अथवा उड़ि प्राकृत को स्वतन्त्र रूप में विकसित करने की दिशा में ईसा की दसवीं शताब्दी तक कार्य करता रहा।

ग्यारहवीं या बारहवीं शताब्दी तक यह औड़ी प्राकृत उड़िया भाषा के रूप में स्वतन्त्र रूप से विकसित हो चुकी थी। इसके साथ ही यह भी ध्यान

रखा जाना चाहिए कि उत्तर भारत के संस्कृत साहित्य और भाषा के संस्रव का निरवच्छिन्न रूप से इस प्राकृत के विकास की धारा में योग रहा।

ईसा की लगभग तीसरी-चौथी शताब्दी और बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी के बीच स्थूल रूप से अपभ्रंश-स्तरीय चर्या-गीत बौद्ध-सिद्धाचार्यों के द्वारा लिखे गये हैं। नेपाल में उपलब्ध इस गीत माला पर बंगाली, उड़िया, आसामी और मैथिल लोग अपनी-अपनी प्राथमिक और प्राचीन भाषा के रूप में दावा करते हैं। उस समय इस अपभ्रंश का अन्तिम काल था और इन स्वतन्त्र भाषाओं का प्रारम्भिक काल था। दोनों की मिलित अथवा मिश्रावस्था के एक प्रकार की होने के कारण इसमें प्रत्येक भाषा के दावेदार होने में स्वाभाविकता है। इनमें काह्नुपाद, कृष्णाचार्य, भुसुकुपाद, लुइपाद और सहजपाद आदि के अनेक गीतों में ओड़्री प्राकृत के जो अनेक लक्षण पाए जाते हैं, उनके बारे में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में डा० सुनीति कुमार चटर्जी का कहना है—कुछ परवर्ती महायान बौद्ध 'सिद्ध' लेखकों, जिन्होंने चर्यापदों की रचना की है, का उड़ीसा से सम्बन्ध है। वास्तव में, इनकी भाषा बोली के उस काल का प्रतिनिधित्व करती है जो कि प्राचीन उड़िया और प्राचीन असमी के भी उतनी ही सन्निकट है जितनी कि प्राचीन बंगाली के। इनके कुछ विशेष रूप हैं, उदाहरण के लिए भूत एवं भविष्य काल के क्रिया-रूपों में क्रमशः—हल् और इब—जो कि मागधी बोलियों के बंगला—असमी-उड़िया वर्ग की विशेषताएं हैं। (दि उड़िया लैंग्वेज़-इट्स अर्ली हिस्ट्री, दि कल्चर आफ उड़ीसा का पृष्ठ 30, 1964)

2. उड़िया साहित्य : गंगवंशी काल (ई० 1422-1435 तक)

अनेक चर्यागीतों में उड़िया भाषा और साहित्य की अंकुरावस्था के अलावा बारहवीं शताब्दी के पूर्व की अन्य कोई प्रामाणिक साहित्य-कृति नहीं मिलती है। उस समय या उससे कुछ बाद की 'शिशुवेद' और 'सप्तांग' प्रथम उड़िया साहित्य की कृतियों के रूप में उपलब्ध होती हैं। दोनों ही कृतियां नाथपन्थी हैं, इनमें उत्तरकालीन महायनी बौद्ध विचारधारा, योग और शिव-पूजा आदि का स्वरूप प्राप्त होता है।

गंगवंशी राजाओं के समय के कितने ही लेखों-अभिलेखों में तत्कालीन गद्य के स्वरूप का परिचय प्राप्त होता है, जैसे-अनन्तवर्मा वज्रहस्त देव के सेनापति माधुरीय की भार्या गुण्डुमा नायकाणी का शिलालेख (1069 ई०) द्वितीय नरसिंह देव का रेमुणा नामक स्थान का ताम्रशासन (1278-1305 ई०), अथवा तृतीया नरसिंह देव का शिलालेख (1328-1352 ई०)।

पन्द्रहवीं शताब्दी तक, इस काल में, भाषा-तत्व की दृष्टि से विचार करने पर, नागुल चड़डि व्रत कथा, दामोदर उषा कथा, खुदुरुकुणी उषा कथा आदि कितनी ही रचनाएं तत्कालीन गद्य में लिखी गई प्राप्त होती है। इनमें कितनी ही रचनाओं में उस समय के नौचालन, उड़िया समुद्र-यात्रियों तथा वणिकों के सामुद्रिक जीवन, नाव की पूजा-वन्दना तथा वैदिक कर्मकाण्ड आदि की प्राकृत रूपरेखा आदि के संकेत पाए जाते हैं।

काव्य-कविता की दृष्टि से, इस काल के परिप्रेक्ष्य में, वैराग्योद्दीपक कौल या योगी गीत, तथा देव-देवी के विवाह या अभिषेक आदि के उपलक्ष्य में 'कलसा' श्रेणी के चौंतीसा और गीतों आदि की रचना हुई थी। आठ शुभ चिह्नों में कलस की सर्वप्रथम गणना होती है, कथावस्तु के लक्षण की दृष्टि से इन रचनाओं को कलसा नाम दिया गया, ऐसा सम्भव जान पड़ता है।

3. उड़िया साहित्य : सूर्यवंशी काल (1435-1568 ई०)

(क) सारलादास ने पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में, कपिलेन्द्र देव के राज्य काल में महाभारत की रचना की थी। संसार की विपुलतम साहित्यिक कृतियों में इसकी गणना की जाती है। केवल सभापर्व ही इलियड से सात आठ गुना है। व्यास के संस्कृत महाभारत के 18 पर्वों के समान सारलादास ने अपने महाभारत में भी सर्गों की संख्या 18 ही रखी है किन्तु फिर भी सारलादास ने इसकी कथावस्तु में अनेक परिवर्तन किए हैं—कहीं उन्होंने इसमें कुछ मिलाया है तो कहीं कुछ छोड़ दिया है और कहीं कुछ परिमार्जन किया है।

इसमें सारलादास के महाभारत में कथावस्तु का क्रम न तो ठीक संस्कृत महाभारत जैसा ही रहा है और न ही इसमें मौलिक कथा से किसी प्रकार की त्रुटिपूर्ण विच्युति ही हुई है। दूसरी ओर इस समस्त स्वातन्त्र्य में सजीव सामाजिकता और वास्तविक जीवन में व्याप्त विविध वर्णों के योग से इस महाभारत का आकर्षण कम नहीं हुआ वरन् बढ़ा ही है। ऐसा जान पड़ता है कि एक जाति के विक्षुब्ध नाना-वर्णों से युक्त, युद्धबहुल एवं विजय-प्रचुर काल में और नूतन 'प्राकृत' उड़िया भाषा के परिप्रेक्ष्य मे सारलादास ने उन महा-कवि व्यास के ध्यान में एक सर्वथा नए महाभारत की ही रचना कर डाली है।

हिन्दी के रासो साहित्य के समान ही इस महाभारत के युद्धचित्र उड़ीसा के अमूल्य युद्ध-साहित्य हैं। ये चित्र कवि के प्रत्यक्ष-ज्ञान के परिणाम हैं। इसी लिए इतने वास्तविक, लोमहर्षक एवं चित्ताकर्षक बन पड़े हैं। महान् वीर

कपिलेन्द्र देव के युद्ध और दिग्विजय के काल से सारलादास के जीवन का अभिन्न संबन्ध होने के कारण ही यह होना सम्भव हुआ है। इस कारण ऐसा अनुमान होता है कि वास्तव में जैसे कपिलेन्द्र देव अर्जुन के चरित्र और विशेष रूप से सभापर्व के अर्जुन के चरित्र के आदर्श रहे हैं।

इस महाभारत के चित्रों में साधारणता और महत्ता, लौकिकता और अलौकिकता का अपूर्व समन्वय दिखलाई पड़ता है। जैसे द्रौपदी में देवीत्व और साधारण नारीत्व का मधुर सहावस्थान देखते ही बनता है। स्थूल रूप से वाल्मीकि रामायण और कम्ब रामायण में जैसा तारतम्य पाया जाता है, वैसा ही व्यास के महाभारत और सरलादास के महाभारत में भी है।

कवि के गम्भीर और व्यापक ज्ञान की दृष्टि से उस समय के सामाजिक रीति-रिवाजों, विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के धार्मिक अनुष्ठान और आचरण, जीवन और जीविका, विश्वास और विज्ञान, पाप और पुण्य, अपराध और दण्ड, प्रेम और व्यभिचार, तन्त्र और अभिचार आदि के लाखों चित्र उनकी लेखनी में सजीव हो उठे हैं। इसके साथ ही विलक्षण चरित्र-चित्रण, शिक्षात्मकता, मुक्त छन्द, सरल शैली, यथोचित उपमा-विन्यास आदि से यह एक अपूर्व साहित्य के रूप में उपभोग्य है। स्थूल रूप से सारला-महाभारत तत्कालीन उड़ीसा और भारत का एक बहुमुखी विपुल ज्ञानकोष या एनसाइ-क्लोपीडिया है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि यह मुक्त छन्द में लिखा गया है। पादों में अक्षरों की संख्या 8-10 से लेकर 30-32 तक पाई जाती है। यह धारा-प्रवाह रूप में पढ़ा जा सकता है, अतः लक्षणों से आधुनिक काव्य के समान ही है। इस महाकाव्य (Great Epic) ने अनेक परवर्ती कवियों को नाना प्रकार से प्रभावित किया है।

सारलादास के परवर्ती कवि अर्जुनदास का काव्य 'कल्पलता' और 'रामविभा' शिशुशंकर दास का 'उषाभिलाषा' समृद्ध उड़िया रीतिकाव्य के पथप्रदर्शक हैं। प्रत्येक पंक्ति में कोयल को सम्बोधित करके लिखे जाने वाले काव्यों की परम्परा में मार्कण्डदास ने लोकप्रिय गीति-काव्य 'केशवकोइलि' की रचना की। विप्रलम्भ और वात्सल्य रस की व्यथा का यह एक अनुपम निर्झर है। कलसा काव्यों की परम्परा में वत्सादास ने 'कलसा चउतिशा' लिखा। इसमें छद्मवेशी शिव और पार्वती का विवाह और प्रेम अत्यन्त रसमय ढंग से व्यक्त हुआ है।

कपिलेन्द्र देव और पुरुषोतम देव के अभिलेखों में उस काल की गद्य-शैली के दर्शन होते हैं किन्तु नारायणानन्द अवधूत स्वामी का 'रुद्रसुधानिधि चमत्कार'

साहित्यक गद्य के रूप में सामने आया। भाषा, शैली, कथावस्तु के साथ इस काल की धार्मिक भित्ति में शाक्त-शव-तान्त्रिक आदि विविध मतवादों से यह ग्रन्थ ओतप्रोत है। इसकी बड़ी विशेषता इसका पद्यात्मक गद्य है और यह बाणभट्ट की कादंबरी के समान आलंकारिक चमत्कारिकता, वर्णनाचातुरी और कल्पना-वैचित्र्य से समन्वित है।

(ख) प्रभु जगन्नाथ जी स्मरणातीत काल से पुरी क्षेत्र में आराधित होते आए हैं और विभिन्न धर्मसंप्रदाय अपने विश्वास और मत की निर्विशेषता से इनको अपनाकर समान रूप से ग्रहण करते रहे हैं। इस कारण उड़ीसा में जगन्नाथ जी का आश्रय लेकर एक स्वतन्त्र स-धर्मसंस्कृति निर्मित हुई है और भारतीय विभिन्न धर्मसंप्रदाय के मतवादों की सरिताएं इस जगन्नाथ-जलधि में मिल कर अपने गुणों को भूल जाती हैं। विभिन्न धर्म और भक्ति-पन्थ के महापुरुष यहां मत-प्रचार के लिए आकर निर्गुण तथा सगुण ब्रह्म स्वरूप जगन्नाथ को स्वीकार करते हैं। लगभग 1510 ई० में चैतन्य महाप्रभु के यहां आने के समय उड़ीसा के वैष्णव साधक मुख्य रूप से ज्ञान मार्ग, योग मार्ग या शून्यपन्थ की परिधियों में भक्ति साहित्य की रचनाएँ कर रहे थे और इनका मुख्य कार्य था पिण्ड के मध्य में ब्रह्माण्ड की अनुभूति और उसमें शरीर साधना या योग मार्ग में निर्गुण को उपलब्ध करना। इस काल के मुख्य पंच-वैष्णव कवि अर्थात् बलराम, अच्युत, यशोदत्त, अनन्त और जगन्नाथदास को लेकर इसे पंचसखा-युग कहा जा सकता है। इन सब की कृतियों में अच्युत की 'शून्यसंहिता' और 'हरिवंश' (कृष्ण चरित), बलराम की 'जगमोहन रामायण' और दूसरे कवियों के बहुत से गीत और भजन आदि का प्रमुख स्थान है। किन्तु इन सब में संस्कृत के भागवत के अनुकरण पर रचित जगन्नाथ का भागवत सर्वोत्तम है। इस में सरल भाषा, मधुर शैली और विषयादि की हृदय उपस्थापना की भंगिमा में संस्कृत भागवत की मधुर अव-तारणा हुई है। स्वच्छन्द कवित्व, जटिल तात्विकता के भी सरल प्रस्तुतीकरण, केवल नवाक्षरी वृत्त-गर्भित मधुर और प्रांजल भाषा की दृष्टि से इसको एक स्वतन्त्र कृत्ति कहा जा सकता है। यह ग्रन्थ निरवच्छिन्न प्रसिद्धि से आज तक उद्भासित हो रहा है, उड़िया लोगों के धार्मिक जीवन, नैतिक जीवन और भक्ति-जीवन को नियन्त्रित करता चला आ रहा है और लोकशिक्षा के संबल रूप में अवलंबन बना रहा है। भागवत-चर्चा और अन्यान्य शास्त्रों की चर्चा के लिए उड़ीसा के गाँव-गाव में इसके नाम के अनुरूप ही भागवत-घर प्रति-ष्ठित हो गए थे। आज भी नीति-नियम विश्रृंखल मूल्य-बोध-विच्युत आधुनिक

समाज में इसकी उपयोगिता का अनुभव होता है। यह सर्वाधिक लोगों द्वारा आदृत उड़िया ग्रन्थ है।

4. उड़िया साहित्य : मुगल व मुसलमान काल (1568-1751 ई० तक)

स्वाधीन गजपति मुकुन्ददेव की मृत्यु के उपरान्त 1568 ई० में उड़ीसा में मुग़ल शासन रहने के बावजूद नव-स्थापित भोइवंश ने राज्य किया। भोइ वंश के गौरव और महत्व को अपने पूर्ववर्ती गजपति राजाओं की परम्परा के समकक्ष लाने के लिए इन राजाओं के राज्य-काल में मादलापंजी (पंचांग) का लिखना आरम्भ किया गया। इसमें पहले से चली आती हुई बड़ मन्दिर अर्थात् पुरी के जगन्नाथ मन्दिर, बड़ ठाकुर अर्थात् जगन्नाथ जी और ठाकुर राजा अर्थात् गजपति राजाओं के इतिहास, पूजा के नीति-नियमों आदि के विवरणों का संग्रह कर के उन्हें लिपिबद्ध किया गया। लिखने की यह परम्परा आगे भी चलती रही। इस मादलापंजी के लिखने में प्रयुक्त होने वाली सोलहवीं शताब्दी की गद्यभाषा वैसे ही अपरिवर्तित रूप में आज तक प्रयुक्त होती चली आ रही है।

कवि सम्राट उपेन्द्रभंज के पितामह और 'रघुनाथविलास' आदि के कवि धनंजयभंज (1611-1701) को उड़िया रीतिकाव्य का प्रतिष्ठाता कहा जाता है। इस समय के लोकनाथ विद्याधर एक अन्य प्रसिद्ध कवि हैं। इनके काव्य-ग्रन्थों में 'नीलाद्रि-महोत्सव' एक अनन्य कृति है। इसमें प्रभु जगन्नाथ और महालक्ष्मी—इन मुख्य चरित्रों की लीला का वास्तविक जीवन की पृष्ठभूमि में अंकन किया गया है। इन दोनों काव्यों की कल्पना-चातुरी और परिमार्जित शैली के कारण इनके काव्य बहुजन-उपभोग्य बने हैं।

उड़ीसा में बाहर से आकर बसने वाले भूपति पण्डित ने उड़ीसा में शिक्षा प्राप्त करके काव्य लिखना प्रारम्भ किया और काव्य की भाषा और शैली की विलक्षणता दिखाते हुए जनसामान्य का आदर प्राप्त किया, जैसा कि उनके काव्य 'प्रेमपंचामृत' से स्पष्ट पता चलता है। देवदुर्लभदास की 'रहस्यमंजरी' के समान ही इसमें भी वैष्णव सिद्धान्तों और प्रेम-भक्ति का विवेचन है।

इसी समय कविसम्राट् उपेन्द्रभंज के समकक्ष दीनकृष्णदास का उदय हुआ। उन्होंने अनेक विषयों पर बहुत से ग्रन्थों की रचना की। इनमें रस-विनोद नामक विशाल कृति में दुःख एवं दैन्य का सुन्दर परिचय दिया गया है। 'आर्त्तत्राण चौंतीसे' के समान इनके चौंतीसे भी सफल एवं हृद्य बन पड़े हैं। इनके सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय काव्य 'रसकल्लोल' में जगन्नाथ जी के अवतार—श्रीकृष्ण के जन्म, वृन्दावन लीला और गोपियों के प्रेम और भक्ति

को मुख्य प्रदिपादित विषय बनाया गया है। इसमें अंकित सजीव प्रकृति-चित्र और ऋतु-चित्र अनेक परवर्ती कवियों के आदर्श बने हैं।

उड़िया साहित्य का रीतिवाद संस्कृत साहित्य के सर्वथा समान नहीं है। पहले निर्दिष्ट किए गए अनेक दिशाओं में सफल स्वतन्त्र आचरण के समान ही यहां भी वैसा ही दिखाई देता है। संस्कृत के अलंकार, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि का समन्वय ही यहां रीतिवाद का रूप है तथा इस रूप में संस्कृत कवियों की काव्य रचनाओं की विविध शैलियों और परम्पराओं को यहां भी ग्रहण किया गया है। ये लोग रस को काव्य की आत्मा मानते हैं। अलंकार एवं अन्यान्य को यहां भी आनुषंगिक स्थान ही दिया गया है।

इस रीति-वादी काव्य युग के सर्वप्रथम कवि हैं, राजकुमार कविसम्राट् उपेन्द्रभंज जिनका समय 1675-1720 ई० है। भाषा, अभिव्यक्ति-शैली, उपमादि अलंकार, कल्पना-चातुरी, ज्ञान की गम्भीरता और प्रगाढ़ता, कवित्व और पाण्डित्य में वह श्रीहर्ष सदृश संस्कृत कवियों की श्रेणी में रखे जाने योग्य हैं। उनकी 'लावण्यवती', 'कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' आदि प्रायः 60-70 सुन्दर काव्य रचनाएं हैं। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है। विचित्र पदविन्यास एवं वाग्विदग्धता ने भी उनके काव्य को कहीं भी व्याघात नहीं पहुँचाया है वरन् दूसरी ओर उन्होंने कथावस्तु की गम्भीरता और मुख्यता की श्रीवृद्धि ही की है। काव्य के प्रत्येक चरण का प्रारम्भ एक ही वर्ण से करके उन्होंने प्रभूत मात्रा में काव्य-सृष्टि की है। इस प्रकार के काव्यों के कतिपय-निदर्शन हैं—'व' वर्ण के लिए प्रसिद्ध 'वैदेहीशविलास', 'स' वर्ण के लिए 'सुभद्रा परिणाय', 'क' वर्ण के लिए 'कलाकौतुक' आदि। 'लावण्यवती' और कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी' उनकी सर्वश्रेष्ठ काव्य-कृतियां हैं। नाटकीय भंगिमा और द्रुति की दृष्टि से उनकी शैली अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है।

गौड़ीय वैष्णव प्रेम-भक्ति-मूलक अनेक काव्यों की रचना भी इस काल में की गई। उनमें प्रथम उड़िया कवयित्री वृन्दावती दासी रचित पूर्णतम-चन्द्रोदय का विशिष्ट स्थान है। इसी काल के अन्य विशिष्ट वैष्णव कवि सदानन्द कवि सूर्य ब्रह्मा की बहुत-सी कृतियां भी अनुपम बन पड़ी हैं।

इसी काल में, विश्वनाथ खुण्टिया और केशव पटनायक जैसे रामपन्थी कवियों ने 'गीति' रामायण की रचना की। इनका वाग्विलास आज भी रामलीला के नृत्याभिनय में प्रयोग होता चला आ रहा है।

उपेन्द्रभंज तथा अन्य अनेक कवियों की रचनाओं से समृद्ध इस काव्य-धारा के साथ ही, एक अन्य संक्षिप्त तथा निर्मल प्रवाहयुक्त गद्य-धारा की गति भी यहां आकर काफी तीव्र हो गई है। इसके प्रमाणस्वरूप 'सोमनाथव्रतकथा'

और शिवदास-रचित 'बत्तीस-सिंहासन कथा' उल्लेखनीय है। इन रचनाओं की भाषा और शैली परिष्कृत है और प्रारम्भिक काल की पद्यात्मकता से मुक्त है।

5. उड़िया साहित्य : मरहट्ठा काल (1758-1803 ई०)

उपेन्द्रभंज का काव्य-प्रभाव तथा सदानन्द कविसूर्य ब्रह्मा का वैष्णव प्रभाव इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियां हैं।

इस काल में व्यंग्य एवं परिहास का आश्रय लेकर चक्रपाणि, बलदेव एवं यदुमणि ने एक नए विभाव की सृष्टि की है। दूसरी ओर इनके साथ रानी निशंकराय, ब्रजनाथ बड़जेना आदि प्रमुख प्रसिद्ध एवं समादृत कवियों के होने पर भी, इन सभी कवियों की रचनाओं पर उदेन्द्रभंज की कविताओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। केवल ब्रजनाथ ने तत्कालीन मराठाओं के के साथ ढेंकानाल के राजा के युद्ध का जैसा प्रत्यक्ष, सजीव और उद्दाम वर्णन किया है उससे सारलादास के युद्धकाव्य के उपरान्त, 'समरतरंग' नाम के काव्य के रूप में उनके युद्धचित्र अनन्यतम बन पड़े हैं। उनका सर्वश्रेष्ठ काव्य 'अंबिकाविलास'—चालीस से भी अधिक छन्दों के प्रत्येक चरण में प्रारम्भिक वर्ण 'अ' के नियमानुसार, उपेन्द्रभंज की शैली का अनुसरण करते हुए लिखा गया है। इनके अतिरिक्त उनका 'चतुरविनोद' गद्यधारा के पूर्ण रूप को प्रस्तुत करता है।

यद्यपि कोइलि चौंतीसा, पोइ, भजन आदि विभिन्न रूपों में पहले से ही गीतों की रचना होती चली आ रही थी तथापि वनमाली ने संगीत के नियमों में बंधे गीति-साहित्य की प्रतिष्ठा की। बाद में बलदेव और गोपालकृष्ण ने इस साहित्य की बहुत श्रीवृद्धि की।

अभिमन्यु सामन्तसिंडार, इस काल के, चैतन्यपन्थी परम वैष्णव कवि हैं। इन्होंने काव्यशैली में उपेन्द्रभंज तथा श्रीहर्ष का अनुसरण किया है। इनके कवित्व, दार्शनिकता, पाण्डित्य, वैष्णव-भावना आदि को देखने से जान पड़ता है कि ये सर्वाधिक बहुज्ञ कवि थे। इनके प्रसिद्धतम 15 प्रकार के छन्दों वाले, मधुर कृष्णलीला काव्य—'विदग्धचिन्तामणि' में वृन्दावन के समान रीति-कवित्व और राधा-प्रेमभक्ति का अपूर्व समन्वय दृष्टिगोचर होता है। इस समन्वय-शैली में वह अपने वैष्णव-गुरु प्रसिद्ध सदानन्द कविसूर्य ब्रह्मा की रचनाओं से प्रभावित रहे हैं।

ऐसे ही एक जन-प्रिय कवि हुए भक्तचरण (1745-1805) उनके 'प्राथमिक 'मनबोध चौंतीसा' में जगन्नाथ-भक्ति का अपूर्व भाव से वर्णन होने पर

भी उन्होंने अपने परवर्ती जीवन में गौड़ीय वैष्णव मार्ग को अपनाया। 'मनः-शिक्षा' में वर्णित गौड़ीय तत्त्व की अपेक्षा प्रसिद्ध 'मथुरामंगल' में यही इतना मुखरित हो उठा है कि जैसे इनके मत-परिवर्तन का स्पष्टीकरण ही हो। उद्धव के साथ यशोदा, गोपी और कृष्ण की बातचीत में प्रेमभक्ति तत्त्व का प्रासादिक, मधुर और संक्षिप्त वर्णन अपनी सानी नहीं रखता।

कृष्णसिंह का महाभारत इस काल की एक विशाल कृति है। विश्वम्भरदास का विचित्र महाभारत जन-सामान्य के बीच में भारत-लीला नृत्य प्रस्तुत करने की दृष्टि से एक सार्थक रचना है। राम कृष्ण की लीलाओं को नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत करने वाली 'विचित्र-रामायण', 'रामलीलामृत' और 'कृष्णलीलामृत' भी ऐसी ही रचनाएं हैं।

6. उड़िया साहित्य : ब्रिटिश काल (1803-1947 ई०)

कविसूर्य बलदेव रथ उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध के कवि हैं। यदुमणि और चक्रपाणि इन के समसामयिक थे। बलदेव मुख्यतः संगीत-कवि हैं। चौंतीसा शैली का उन का प्रसिद्ध 'किशोरचन्द्रानन्दचम्पू' जयदेव के 'गीतगोविन्द' की कथावस्तु की अपेक्षा चारित्रिक दृष्टि से अधिक औचित्यपूर्ण है। इसी प्रकार भाषा, अपूर्व ज्ञान और काव्यमय प्रयोगों में दक्षता उन की रचना-माधुरी की अन्यतम विशेषताएं हैं। यहां राधाकृष्ण के विरह-मिलन में महिमा के साथ स्वाभाविकता का मिलन ओत-प्रोत है। इनके अन्य अनेक गीत, कविताएं जणाण[1] आदि भी अत्यन्त लोकप्रिय हैं। ओड़िसी संगीत नाम की एक विशिष्ट संगीत-शैली का निर्माण करने और ओड़िसी नृत्य को महिमामण्डित करने में आप प्रमुख शिल्पी रहे हैं। रीति में उपेन्द्रभंज तथा चातुरी में बाणभट्ट और श्रीहर्ष इनके आदर्श रहे हैं।

गोपालकृष्ण (1785-1856 ई०) की 'गीतावली' उड़िया गीति-साहित्य की अन्यतम उज्ज्वल कीर्ति हैं। इसमें वैष्णव तत्व, प्रेम-भक्ति तथा संगीत-माधुरी का अपूर्व संगम हुआ है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्थ में रचित बलदेव की 'चन्द्रकला' और यदुमणि के 'प्रबन्धपूर्णचन्द्र' में पहले से चली आती हुई रीतिवादी परम्परा के दर्शन होते हैं। उड़िया में कम-से-कम 400 ग्रन्थों में चमत्कारपूर्ण रीतिकाव्य का वैभव देखा जा सकता है। हिन्दी में जायसी का पद्मावत भी ऐसी ही एक रचना है।

---

1. उड़िया में गेय साहित्य की एक विधा।

ऐसा कहा जाता है कि 1879 ई० में आधुनिक उड़िया साहित्य का अवतरण हुआ। 1873 ई० में नवीन कविता के रूप में राधानाथ मधुसूदन की कवितावली प्रकाशित हुई। 1873 ई० में अन्यान्य पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य की विविधता दिखाने के लिए 'उत्कलदर्पण' प्रकाशित हुआ। इसी दशक में जगन्मोहन ने 'बाबा जी' नाटक की रचना की। रामशंकर ने प्रथम उपन्यास 'सौदामिनी' लिखा। इसी काल में एक अन्य दिशा में भी कार्य हुआ—और वह था पाठ्य पुस्तकों का लिखा जाना। साहित्यकारों ने साहित्य की विविध विधाओं की ओर अपनी लेखनी चलाई और प्रायः 70 वर्ष के अंग्रेजी शासन के बाद अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य को उड़िया में ग्रहण कर के उसका उपयोग किया गया। प्राचीन परम्पराओं के साथ पाश्चात्य तथा नवीन साहित्य का सामंजस्य अपने देश की पृष्ठभूमि में किया गया। इस नई उथल-पुथल को सभी ने स्वीकार किया और अपने साहित्य में स्थान दिया। राधानाथ (1848-1908 ई०) इस नए युग के अग्रणी कवि हैं।

इस नए साहित्य के युग में, महिमा धर्म के अनुयायी, रहस्यवादी गीतिकवि भी भाभोइ (1820-1898 ई०) रीतिवादी काव्यधारा के अंतिम प्रसिद्ध कवि हुए।

अभिमन्यु सामन्त सिंहार के समान, राधानाथ सबसे अधिक ज्ञान रखने वाले आधुनिक कवि हैं। उन्होंने अनेक भाषाओं और साहित्यों का गम्भीर अध्ययन किया था। उनकी विशेषता है उनके अनेक काव्यों की कथावस्तु जो कि विदेशी साहित्य विशेषकर यूनानी पुराण साहित्य में लोकप्रिय हो कर उड़ीसा की विभिन्न भौगोलिक पृष्ठ भूमियों में चित्रित हुई है और स्थानीय इतिहास, किंवदन्ती, एवं धार्मिक विश्वासों से जिनका श्रृंगार हुआ है। इनके प्रायः सभी काव्यों में राष्ट्रीय भावना सर्वोपरि दिखाई देती है। इससे भी बढ़ कर बात तो यह है कि इनके साहित्य में प्रकृति के विविध रूपों का खुल कर चित्रण हुआ है। इस दृष्टि से वह अपने 'चिलिका' नामक खण्डकाव्य में अत्यन्त सफल रहे हैं। और यही उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। 'महायात्रा', पार्वती, नन्दिकेश्वरी आदि उनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाएं हैं। इनकी प्रभावान्विति इतनी अधिक है कि इनकी कवि-सुलभ कथाओं ने इतिहास की घटनाओं एवं चरित्रों को भी प्रभावित किया है।

इसके शिष्य मधुसूदन राव (1853-1912 ई०) दार्शनिक एवं भक्त कवि हैं। माध्यमिकता और भक्तिमय जीवन का निर्मल रूप इनकी कविताओं में परिस्फुटित हुआ है। बेद एवं उपनिषद् काल के ऋषियों को ही सुलभ अनेक दिव्य अनुभवों की अभिव्यक्ति भी इनकी कविता में हुई है।

गंगाधर मेहर (1871-1924 ई०) ने राधानाथ पन्थी होने पर भी उपेन्द्रभंज की आलंकारिक वाग्रीति, वाल्मीकि-व्यास-भवभूति एवं सर्वोपरि कालिदास के हिन्दू-संस्कृति-मूलक आदर्श की भंगिमा और प्रकृति के मानवीकरण की दृष्टि को मुख्य रूप से स्वीकार किया है। इन सब के समन्वय तथा अपने स्वतन्त्र चमत्कार के लिए यह एक हृदयग्राही कवि बन पड़े हैं।

नन्दकिशोर बल (1875-1928 ई०) ग्रामीण कवि के रूप में अत्यधिक प्रसिद्ध हुए। इन्होंने ग्रामीण जीवन तथा ग्रामीण प्रकृति को विविध रूप में गीतिबहुल शैली में अभिव्यक्त किया। राधानाथीय होने पर भी उनका यही स्वातन्त्र्य है।

अनेक लोग फकीरमोहन सेनापति (1843-1918 ई०) को इस नए युग के साहित्यकारों में अग्रणी मानते हैं। इन्होंने 55 वर्ष की अवस्था में स्वभावतः उत्तम एवं गम्भीर साहित्य की रचना प्रारम्भ की। उनके उपन्यास 'छ माण आठगुण्ठ', 'मामूं' और 'प्रायश्चित' और लघु कथाएं आज भी सर्वाधिक शक्तिशाली एवं आदरणीय रूप में ग्राह्य हैं। जीवन के सभी उतार-चढ़ावों का ज्ञान, तीक्ष्ण पर्यवेक्षण, अभिव्यक्ति-चातुरी, व्यंग-परिहास-परक भंगिमा इत्यादि किसी भी दृष्टि से देखें वह उपन्यासकारों में सर्वश्रेष्ठ हैं। उनकी रचनाओं में तत्कालीन समाज और मनुष्यों के जीवन के सर्वतोमुखी चित्र सुरम्य शैली में चित्रित हुए हैं। इनके अलावा, इनकी आत्मकथा इनकी एक लब्धप्रतिष्ठ रचना है। इसमें शिवाजी के काल में केउंभर में हुए भुइयां विद्रोह में उनके प्रत्यक्ष जीवन-मरण के संघर्ष की अनुभूति किसी भी आधुनिक भारतीय भाषाओं के लेखक की कृतियों में दुर्लभ ही है।

रामशंकर, उमेशचन्द्र, नन्दकिशोर आदि इस काल के अन्य उपन्यासकार हैं। इसमें रामशंकर प्रकृत उड़िया नाटक साहित्य के प्रतिष्ठाता हैं। इन्होंने संस्कृत नाटकों की परम्परा में 'कांचीकावेरी' जैसे कितने ही नाटकों का प्रणयन किया तथापि आपने सामाजिक नाटकों तथा प्रहसनों आदि में स्वतन्त्र विचारधारा का प्रतिपादन किया है। कोठपदा महन्त के उद्यम और उत्साह से स्थापित किए गए रंगमंच पर इनके अनेक नाटकों का अभिनय किया गया है।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम कई दशकों में अश्विनी कुमार ने बहुत से औपन्यासिक नाटक लिख कर नाटक-साहित्य की अभिवृद्धि की। बलंगा के वनमाली पति की संरक्षता में स्थापित रंगमंच पर इनके बहुत से नाटकों का अभिनय किया गया।

सन 1910 ई० से 1925 ई० तक उत्कलमणि गोपबन्धु दास (1876-

1928 ई०) के नेतृत्व में स्थापित राष्ट्रीय सत्यवादी वनविद्यालय—द्वारा समग्र उड़ीसा में बड़ा क्रान्तिकारी काम किया गया। गुरुकुल की पद्धति पर गठित इस नवीन विद्यापीठ में स्वराज्य आन्दोलन के लिए बहुत से छात्र-सैनिकों ने शिक्षा ग्रहण की थी और यहां पर ही संग्राम के लिए अस्त्र-मन्त्र के रूप में एक नए साहित्य का सृजन हुआ। गोपबन्धु जी की राष्ट्रीय काव्य-कविताओं और आचरण एवं त्याग ने तरुणों को मुख्य रूप से उद्बोधित किया था। अनेक लेखकों ने इस राष्ट्रीय भावना का अनुसरण किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने लेखकों को विचारपरक गद्य साहित्य का प्रणयन और साधना करने के लिए भी प्रेरित किया। उन्होंने जैसा परिष्कृत और प्रभावोत्पादक गद्य लिखा वह आज तक आदर्श रूप में ग्रहण किया जाता है। उनके साथ काम करने वाले नीलकण्ठ सभी क्षेत्रों में बड़े ही संस्कार-प्रवण और राष्ट्रीयवादी थे। उनकी प्रधान काव्यकृति है 'कोणार्क'। उनकी गद्य शैली में मधुसूदन का गाम्भीर्य, फकीरमोहन का वेग और गोपबन्धु की परिष्कृतता विद्यमान है। समालोचक की दृष्टि से वह अपनी निष्पक्ष विचारधारा के लिए प्रसिद्ध हैं। इसके अलावा अन्य प्रमुख व्यक्ति हैं—नाटककार, गीतावली और औपन्यासिक गोदावरीश मिश्र।

राष्ट्रीयता की इस धारा का सबसे अधिक प्रस्फुटन हुआ कुन्तला कुमारी के काव्य स्फुलिंगों 'आवाहन' आदि में। इनमें और उनके उपन्यासों आदि में गांधीवादी आन्दोलन एवं आदर्शों का प्रतिपादन हुआ है।

1925 ई० के बाद के दशक में सबुज वर्ग के कवि पाठकों के सामने आए। वैकुण्ठनाथ 'कालिन्दी चरण' आनन्दा शंकर आदि कितने ही तरुणों ने जिनकी प्रवृत्ति पाश्चात्य रोंमाण्टिसिज्म की ओर थी, बंगला सबुजवादी और रावीन्द्रिक प्रभाव से नवीनता दिखलाने का यत्न किया किन्तु छन्दों के परिष्कार के अलावा ये लोग अपनी ओर से कोई विशेष स्वतन्त्र प्रतिभा का प्रदर्शन करने में असमर्थ रहे। वैकुण्ठनाथ की कुछ दार्शनिक कविताएं और गीत, कालिन्दी चरण की कुछ कविताएं, कहानियां और प्रसिद्ध उपन्यास माटिर मणिष अर्थात मिट्टी का मनुष्य को छोड़कर सबुजगोष्ठी का उल्लेखनीय योगदान कुछ भी नहीं है। यह उपन्यास भी गांधीवादी आदर्शों पर आधारित है।

मायाधर मानसिंह सबुज वर्ग के न होने पर भी इस समय के प्रमुख कवि हैं। रोमाण्टिसिज्म प्रेम रुचि और रचिरता राष्ट्रीय उद्बोधन ने उनके

---

1. हरिद्वर्ग।

कवि-स्वभाव को सबके लिए ग्रहणीय बना दिया है। इसके अलावा गीति-कवि अनन्त पटनायक, कथाकवि राधा मोहन गणनायक, कुंजविहारी दास प्रमुख हैं। इनके अलावा नाटक में कालिचरण, यात्रा में वैष्णवपाणि, उपन्यास में कान्हुचरण, राजकिशोर-पटनायक, नित्यानन्द महापात्र, गांधी जी के आन्दोलन को आधार बनाकर लिखने वाले उपन्यास कार हरेकृष्ण मेहताब कहानियों में राजकिशोर राय, राजकिशोर पटनायक, सच्चिदानन्द गोदावरीश महापात्र अन्य प्रमुख स्त्रष्टा हैं। इनका प्रभाव लगभग बीस वर्ष तक रहा।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से लेकर अब तक विश्वनाथ कर 'मृत्युंजय रथ' शशिभूषण राय, नीलकण्ठ, रत्नाकर पति, कालिन्दी चरण और मायाधर मानसिंह प्रमुख रूप से विचारोद्बोधक शक्तिशाली साहित्य के निर्माता रहे हैं। फकीरमोहन के 'ननांक पांजी' के अनुसरण पर लिखी हुई गद्य रचना तथा एक विशालकाय उद्यम 'पूर्णचन्द भाषा कोष' के लिए गोपालचन्द प्रहराज प्रसिद्ध हैं। समालोचक के क्षेत्र में शशिभूशण रत्नाकर के अतिरिक्त पूर्वोक्त निबन्ध-कारों के साथ गोपीनाथ नन्द, आर्य बल्लभ, कुंजविहारी दास, गौरी कुमार ब्रह्मा, सुरेन्द्रचितरंजन दास, नरवर सामन्तराय, वेणुधर राउत, चिन्तमाणि बेहेरा और जानकी वल्लभ महन्ती (छोटा) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

7. उड़िया साहित्य : स्वाधीनता काल 1947 ई०……

स्वतन्त्रता संग्राम में और विशेष रूप से स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद आधुनिक साहित्य के रूप में बहुत परिवर्तन हुआ है। रंगमंच के विकास के साथ-साथ नाटक में जितना परिवर्तन घटित हुआ है, कहानियों और उपन्यासों के क्षेत्र में उससे भी अधिक परिवर्तन आया है और कविता के क्षेत्र में तो यह परिवर्तन और भी अधिक परिलक्षित होता है। यहां पर पाश्चात्य आधुनिकता का ग्रहण आदर्श के रूप में हुआ है। इसलिए अपने देश की भावना से ओत-प्रोत यह साहित्य और विशेषकर काव्य-साहित्य छिन्न-भिन्न हो गया है। पहले के समान यहां पर साधारण स्तर के किसी भी लेखक को प्रायः प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती है वरन् इस काल में प्रतिष्ठित होने वाले लेखकों में अंग्रेजी की शिक्षा पाए हुए और बौद्धिक समाज के उच्च एवं मध्यम वर्ग के लोग हैं। इस अवस्था में प्राचीन साहित्य नगरों और ग्रामों में यथेष्ट लोकप्रिय रहा है। इस दिशा में हरिनाथ आदि प्रमुख पालागायकों की वाद्य-संगीत-मिश्रित काव्य-चर्चा ही बड़ा कारण है। इसी कारण आधुनिक नाटक की अपेक्षा वैष्णव पाणि के लोक-नाट्य उन्मुक्त मंच पर बिना रंगमंच की सज्जा के अधिक ग्रहणीय रहे हैं। इस छिन्न-भिन्नता का बड़ा कारण है पश्चिम का

अनुकरण। जीवन की जटिलता, मन के रहस्य और स्थिति-संघर्ष आदि नाना चमक-दमक से भरी हुई विदेशी विचारधाराओं का हमारे देश में न जाने कितनी दूर तक व्याप्त होकर परीक्षा एवं निरीक्षण का क्रम चल रहा है। भारतीय पृष्ठ भूमि में यह भी है। जहां भी इन नवीन विचारधाराओं को आरोपित कर दिया जाता है वहां अन्त में लेखकों और साधारण पाठकों में विच्छिन्नता का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। इतना होते हुए भी यह परीक्षा वरणीय है।

इस दृष्टि से नवीन कविता के आवाहन में सच्चिदानन्द राउत राय अग्र-दूत हैं। सांप्रतिकता के विभिन्न परीक्षण-निरीक्षणों के मध्य, अनेक काव्य रच-नाओं में इनका आज भी प्रमुख स्थान है। गीति कवि अनन्त पटनायक आज भी आधुनिक हैं। परवर्ती लेखकों में ज्ञानेन्द्र वर्मा, विनोद नायक, गुरु प्रसाद महन्ती, वेणुधर-राउत, चिन्तामणि बेहेरा प्रमुख रूप से साहित्य की विविध विधाओं में प्रसिद्ध हैं। रमाकान्त रथ और रवि सिंह के समान बहुत से तरुण-तर कवि विभिन्न दिशाओं में साधना और सृष्टि की दृष्टि से उल्लेखनीय बैठते हैं। गीतकारों के मध्य जीवनानन्द पाणि का नाम उल्लेखनीय है।

उपन्यास में गोपीनाथ महन्ती उच्च कोटि के शिल्पी हैं। वह आदिवासियों के उपेक्षित जीवन के आविष्कारक और पुनः स्रष्टा हैं। और जीवन-बोध और विषय-विश्लेषण के अद्वितीय कलाकार हैं। ये उपन्यास की एक नई दिशा का उद्घाटन करने वाले हैं। उनकी विशिष्ट रचनाओं 'परजा', 'अमृतर सन्तान,' तथा 'माटिमटाल' आदि के अतिरिक्त उनके परवर्ती लेखकों में वसन्तकुमारी पटनायक का 'अमड़ा वाट' एक सार्थकतम उपन्यास है। नवीनता के प्रसंग में एक अन्य उपन्यास 'नरकिन्नर' का उल्लेख भी यहां पर आवश्यक है।

कहानी के क्षेत्र में सुरेन्द्र महन्ती श्रेष्ठतम शिल्पी कहे जा सकते हैं। उनकी कहानियों में प्राचीन बौद्ध युग के वातावरण तथा आधुनिक सभ्यता के बहि-रंग जीवन का सजीव चित्रांकन हुआ है। इनका बड़ा आकर्षण है इनकी नाटकीयता से ओतप्रोत शैली। इनके समान शिल्पियों में वामाचरण मित्र, महापात्र नीलमणि साहू और किशोरी चरणदास आदि का नाम लिया जा सकता है।

नाटक के क्षेत्र में रामचन्द्र मिश्र तथा नाटक और नाटिका दोनों के क्षेत्र में गोपाल छोटुराय, मनोरंजन दास और प्राणबंधु कर अग्रणी हैं।

इनके अलावा बहुमुखी उड़िया साहित्य में नाना रूप में परीक्षा तथा साधना चल रही है। उड़िया साहित्य की इस अवस्था के अनुरूप ही भारत की

सभी प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य में भी यही स्थिति विद्यमान है। इसमें देशी परम्परा के साथ विदेशी प्रभाव और अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का कितना मेल हो सकेगा, यह समय के क्रम द्वारा ही निर्धारित होगा और अभी तो इतिहास के गर्भ में ही है।

अन्तिम निवेदन

इस निबन्ध में प्रमुख रूप से उड़िया साहित्य की विभिन्न धाराओं एवं प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले लेखकों और लेखों का नामोल्लेख अथवा संक्षिप्त उपस्थापन किया गया है। इसलिए यहां निर्धारित थोड़े स्थान के कारण यहां पर सबका समग्र वैशिष्ट्य दिखा पाना सम्भव नहीं हो सका है और यही कारण है कि यहां पर अनेक प्रसिद्ध लेखकों का भी उल्लेख नहीं किया जा सका है किन्तु इतना निश्चित है कि उनमें से अनेक का उल्लेख यदि यहां किया जाता तो यह लेख और भी प्रांजल हो जाता।

यहां पर संगृहीत गद्य और काव्य के अंश साहित्य की विभिन्न धाराओं, शैली, रूप व विकास की दृष्टि से उदाहरण के रूप में लिए गए हैं। उनका उद्देश्य प्रत्येक लेखक का वैयक्तिक वैशिष्ट्य दिखाना नहीं है।

सारला महाभारत

(आदि पर्व)

शूद्रमुनि सारलादास

(मध्य 15वीं शताब्दी)

'जारा शबर की अस्त्र-शिक्षा'

अगस्त्य जी ने कहा है कि हे वैवस्वत मनु सुनो ।
जारा नाम वाला किरातवर अजपति का पुत्र था ।।1।।

वह अत्यन्त यत्न से दो गेण्डे लाया ।
बड़े प्रसन्न मन से वारुणावन्त आया ।।2।।

उसके माथे पर मयूर-पंखों की झालर थी और कण्ठ में गुंजाओं की माला थी ।
नेत्र उसके लाल रंग के थे और अंगों पर लाल रंग की धूल लगी थी ।।3।।

उसका धनुष धनुर्वृक्ष की लकड़ी का बना हुआ था जिस पर कंटीले बांस की प्रत्यंचा चढ़ी हुई थी ।
पत्तों के आभरण उसने धारण कर रखे थे और फरसा तथा तरकश में दो बाण भी धारण किए हुए था ।।4।।

जिस समय अजपति किरात के बेटे ने
वारुणावन्त अखाड़े में द्रोण के दर्शन किए ।।5।।

गेण्डा देखकर द्रोण-गुरु अत्यन्त आनन्दित हुए ।
(और उन्होंने कहा) तुम विद्यापुत्र होओगे मेरा यह निश्चित आदेश है ।।6।।

युधिष्ठिर बोले गुरु जी, अच्छा है, यह किरात यहीं रहे,
यह वन का आदमी है यहां काफी काम आएगा ।।7।।

यह सुन कर धृतराष्ट्र के पुत्र ने क्रोध किया
और वह क्रोधपूर्वक बोला हे किरात, तुम यहां से तुरन्त चले जाना ।।8।।

अर्जुन ने कहा ऐसा नहीं होगा,
यह वन में विचरण करने वाला है यहां काफी काम आएगा ।।9।।

इससे हम गेण्डे, हरिण, मेष, बकरी, कृष्ण मृग
चमरी, वाराह आदि पा सकेंगे ।।10।।

यह सुन कर द्रोण जी ने आदेश किया ठहरो ।
दुर्योधन बोला, इस प्रकार की अर्थहीन बातें अकारण ही क्यों कर रहे हो ।।11।।

दुःशासन से बोला, रे इसको केश पकड़ कर ले जा,
और इसको अनेक प्रकार से दण्ड दे कर वन में छोड़ आ ।।12।।

यह सुन कर दुशासन कोपपूर्वक केश पकड़ कर
एक योजन के अन्त पर ले जा कर क्रोध से छोड़ आया ।।13।।

उस जारा किरात ने इस पर अत्यन्त क्रोध किया,
उसने उस अखाड़े से अपने गांव तक के सारे पेड़ कटा दिए ।।14।।

अपने गांव के दरवाज़े पर उसने अखाड़ा बनवाया,
द्वादश योजन पर स्थित इस कुटिया में वह धनुर्विद्या की साधना करने लगा ।।15।।

द्वार से ही वारणावन्त अखाड़े की ओर देखते हुए
वह बारह योजन दूर से ही विद्या की साधना करने लगा ।।16।।

शवर के प्रताप की महिमा देखो ।
वह जारा किरात द्वादश योजन दूर से ही विद्या साधना करता था ।।17।।

धनुर्विद्या का अभ्यास करते हुए कौरव जिस प्रकार से पद-विन्यास करते थे,
उसी प्रकार दौड़ कर वह भी यथासम्भव साधना करता था ।।18।।

वह उस गति को देख कर ही सारी विद्याओं की साधना करता था ।
और इस प्रकार वह क्षत्रियों की सारी महान् शिक्षा सीख गया ।।19।।

उसकी तारा नाम की जो प्रियतमा थी
उसने किरात से कहा कि तुम अपनी मति दूसरी ओर फिराओ ।।20।।

हम वनचर लोग हैं और वन्य पशुओं का आहार करते हैं,
तुम मृगया के लिए न जा कर इस प्रकार दौड़-दौड़ कर क्यों मरते हो ।।21।।

जारा बोला कि हे प्रियतमे सुनो,
समय आने पर ही तो तुम इसका महत्त्व जान पाओगी ॥22॥

भार्या ने कहा कि कैसे-कैसे होगा, बतलाओ तो
तुम्हारा कैसा स्वभाव है मैं समझ नहीं पाती ॥23॥

हे पामर तू अकारण ही इस तरह दौड़-दौड़ कर क्यों मरता है ।
तू साधना करता ही है लेकिन तेरा गुरु कौन है ? ॥24॥

बिना गुरु के विद्या प्राप्त नहीं होती ।
हे वनचर प्राणी तू मूर्ख है, तू पामर है ॥25॥

भार्या के वचनों ने उसका बहुत भला किया
जारा शेबर ने मिट्टी के द्रोण की स्थापना की ॥26॥

उसके माथे पर उसने कृष्णाजिन का चंवर लगाया ।
और गुंजाओं की एक माला से उसका ललाट सजाया ॥27॥

उस पर स्फटिक की बनी हुई दो आंखें लगाई,
और हृदय पर गुंजा एवं गरगड़ की बनी हुई मालाएँ लटकाईं ॥28॥

कोयल[1] के धागे से बनाया हुआ पवित्र आभरण बाएं अंग में धारण कराया,
कोन्दानाल का उत्तरीय दाएं कन्धे पर लहराया ॥29॥

चन्दन की लकड़ी को घिस कर उस का हृदय पर लेपन किया,
और धनुर्वृक्ष की लकड़ी का धनुष बना कर बाएं हाथ में धारण कराया
॥30॥

दाहिनी भुजा को जो तर्जनी अंगुली थी,
उसकी दृष्टि अपने अखाड़े की ओर को कराई ॥31॥

उन मिट्टी के द्रोण के चरणों की सेवा कर के,
उस विष्णुसेवी किरात ने समस्त विद्याओं की साधना की ॥32॥

---

1. यह प्रायः 10 हाथ लम्बी लता है । इसमें दूर-दूर पर गांठें होती हैं और छोटे-छोटे पत्ते होते हैं ।

लावण्यवती
(छठा छन्द)

कवि सम्राट् उपेन्द्रभंज
(1675-1720 ई०)

स्नान शोभा

हे कवियो, ध्यान दे कर सुनो,
सुकेशी नाम की राजकुमारी,
किनारे पर बकुल वृक्ष के मूल में
वेदी के ऊपर बैठी है ॥1॥

सरोवर के शोभायमान जल पर,
उसके नेत्र एवं मन लोभित हो रहे हैं ।
किनारे पर जड़े हुए मूँगाओं पर
पक्षियों की पंक्ति प्रतिबिंबित हो रही है ॥2॥

क्या यह कोई नीली साड़ी है जिस पर हंसावली के,
रंग की किनारी लगी हुई है ?
अथवा इस अवनी-वनिता की
इसको खरीदने की इच्छा अभिव्यक्त हो रही है ॥3॥

स्वच्छ स्फटिक की पहाड़ियों वाले
किनारों से जल टकराता है ।
सुन्दर चोटी तो इतनी सुन्दर गूंथी है कि
क्या यही तो त्रिवेणी नाम से प्रसिद्ध नहीं है ॥4॥

सरोवर के मध्य में स्थित मण्डप के सन्निकट
मरालों की पंक्ति भंवरी लगा रही है ।

यह किसी चन्द्रशाला को घेरकर,
उसकी शोभा चूर्ण करने वाली चंवरी तो नहीं है ? ॥5॥
जल-जंबाल की मलिनता में
मन की हीनता का हरण होता है ।
निर्मल जल सुन्दर
दर्पण को भी मात करता है ॥6॥
गम्भीर गुण का पंडितों
से ग्रहण कर के,
क्या नर्तकी से इसको भँवरी
की शिक्षा प्राप्त हुई है ? ॥7॥
अमृत की संगति की है,
मधुर गुण से,
चन्द्रमा के स्नेह को हीन
किया अपनी शीतलता से ॥8॥
कामदेव के बाणों पर विद्यमान
कुमुद के ऊपर वह,
आनन्द देने में,
सब प्रकार से शोभायमान है ॥9॥
सरोवर की शोभा देख-देख कर,
अच्छी तरह स्नान करने की इच्छा जागृत हो रही है ।
वृक्ष तक आने वाले जल में,
वह लावण्यनिधि प्रविष्ट हुई ॥10॥
कवि ने सोचा, विचित्र
बात हुई, तुम्बी डूब गई !
शैल नहीं डूबे, जल के
ऊपर ही तैरते रहे ॥11॥
क्या नहीं देखा जा सकता,
जब तक कि प्राण रहते हैं ।
इस स्थान पर तो विषम,
समस्या ही उठ खड़ी हुई है ॥12॥

कविवर राधानाथ राय
(1848-1908)

चिलिका से विदाई

हे चिलिका, मैं तुझसे विदा मांगता हूँ ।
मैं अभी ही इस दारुण संसार में लौट जाऊंगा ।
मैंने यह आशा की थी कि मैं तेरे पश्चिमी किनारे
पर अपने पश्चिम जीवन को व्यतीत करूंगा ।
मुझे आशा थी कि तेरे पास मेरी सौन्दर्य-पिपासा,
विना किसी प्रयास के ही शान्त हो जाएगी ।
यदि मेरा भाग्य मेरे अनुकूल रहा होता तो,
मैंने तेरे रम्य कूल पर आश्रय लिया होता ।
और यहां पर कुटिया बना कर जटिया पर्वत के
चरणों में अकेले ही अपनी आयु का शेष भाग बिताया होता,
किन्तु यह इन्द्रजाल ही निकला ।
और मेरी आशा आशा मात्र रह गई ।

संसार में आ कर मैं सदैव उदासीन ही रहा,
और प्रायः उदासीन रह कर ही मैंने अपने दिन व्यतीत किए ।
संसारी लोगों की संगति से संगी होने के लिए
कभी भी मेरे मन की इच्छा नहीं हुई ।
ये संसारी लोग तो हंस-खेल कर ही समय बिताते हैं
और जीवन को महान् उत्सवों से पूर्ण मानते हैं ।
मेरा तुच्छ भाग्य तो पत्थरों से ढंका हुआ है,
मेरा जीवन अन्य उपादानों से निर्मित हुआ है ।

मेरा यह तुच्छ जीवन सदैव हाहाकार से भरा रहा है।
वास्तव में मेरा यह जीवन जीवन नहीं वरन् जीवित मरण ही है।।
चिरकाल से दुःख के प्रहारों से जर्जरित मैं,
दुःख रूपी गुरु का पट्टशिष्य हूँ,
दुःख के द्वारा दिए गए ज्ञान-चक्षु से संसार को,
देखने का मैं सदैव अभ्यस्त रहा हूँ।
जिसको सारा संसार सुख कहता है
उसको दूर से ही नमस्कार करता हूँ।
सामान्य लोगों की दृष्टि से जो सुख जैसा दिखाई पड़ता है,
वह हाथ में आकर हाथ से गिरने के लिए होता है।
वह कोई वस्तु नहीं होती वरन् निरा धुआँ ही होता है
और इसी का दूसरा नाम आकाश कुसुम है।
तेरे पुलिन की मृगतृष्णा के समान
जगत् में वह मन-मृग को भ्रमित करता रहता है।

उस सुख के प्रति कभी भी मेरी स्पृहा न रही,
मेरा लक्ष्य तो तेरी तीर-गुम्फा थी,
शान्ति-रस के स्थान उस तेरे तट की छाया रूपी गोद में,
वाग्देवी के चरणों का निर्जन में पूजन करूंगा, यह कामना थी,
जिस रूप में निर्जन में निमग्न हो कर,
तेरे मधुर रूप का आस्वादन किया था,
वाणी के दोनों भाग्यवान् कुमारों—
कवि बलदेव और वीरवर उपेन्द्रभंज ने,
कहाँ वह और कहाँ मैं अकिंचन ?
मैं शायद जागृत स्वप्न ही देखता रहा।

आशा मद से मत्त हो कर न जाने कितनी बार।
मैंने मन-मोदकों से अपने उदर की पूर्ति की।
कभी अपने जीवन का पंचांग तो देखा नहीं

बस बैठ-बैठ कर हवाई किले ही बनाता रहा ।
उस प्रकार मैंने आकाशकुसुम ही तोड़े थे,
और मृगतृष्णा के जल में स्नान किया था ।
तभी आगे आ कर भविष्य की भयंकर छाया ने,
पल भर में ही उस मोहनी माया को तोड़ डाला ।
उस छाया के अन्धेरे में मैंने देखा भीषण,
नैराश्य प्रेत का विकट नर्तन ।
उस विभीषिका ने तेरी चारु छवि को,
हे चिलिका, एक निमिष में ही दूर कर दिया ।

वसन्त गाथा

भक्तकवि मधुसूदन राव
(1853-1912)

शंख ध्वनि

पश्चिम के चक्रवाल में सूर्य डूब रहा है,
प्रशान्त दिनान्त की छाया सारे अम्बर पर छा रही है ।
शान्तिमयी सन्ध्या नि:शब्द, गंभीर, धीर
मही-शिर पर शान्ति-वारि बरसा रही है ।
दिवस का अवसान होने पर मैं शान्त पथिक,
घर का ध्यान करता हुआ तेज़ कदमों से चला जा रहा हूं,
सहसा ही सुदूर ग्राम में शंख-ध्वनि हो उठती है,
उसके नाद से सारी धरा स्तंभित हो उठती है ।
वह स्वर लहरी क्षण भर के लिए कानों को चीरती हुई जाती है,
मैंने अचानक स्वप्नाविष्ट मनुष्य की भाँति उसे सुना ।
तभी मेरे प्राण एक महान् जागरण से भर उठे,
उस ध्वनि के अन्दर मुझे महासिन्धु की तान सुनाई दी ।
अनन्त अर्णव की महामहोदार ध्वनि
अर्णव-संभव शंख में विहार कर रही है ॥

—2—

महान् समुद्र की महान् प्रणव झंकार
शंख के मन्द्र-नाद युक्त घोष में अनवरत रूप से सुनाई देती है,
अनन्त अपार सिन्धु मेरा महालय है,
मेरा अन्तर अनन्त के नाद में नादमय है,

उस अमृत-आलय से अन्तरित हो कर भी,
क्या मैं उसका अमृत-संगीत भुला सकूंगा ?
क्षुद्र से भी क्षुद्रतर मर्त्य गृह के लिए
अविद्या के प्रमाद में, हे पथिक क्या तुम पागल हो गए हो ?
तुम किस प्रकार अपनी जन्म-भूमि की बात भूल गए ?
तुम्हारी रसना में अमृत वार्ता कहाँ है ?
आ-आ कर अत्यन्त गम्भीर महान् वेद की तानों से,
जगत् में सारी अमृत सन्तानों को जगाओ,
मर्त्य-लोक में प्रवास के समय अनन्त जीवन की स्फूर्ति,
और अनन्त अभय से युक्त रहते हुए अमृत की जय का गान करो ॥

कोणार्क

श्री मायाधर मानसिंह
(1907—)

हे कोणार्क, तुम्हारा यौवन बीत चुका है,
तुम अपने दु:ख में मौन रहती हुई सिकता पर शयन कर रही हो।
हे नयनों को विमुग्ध कर लेनेवाली, तुम्हारी इस जीर्ण देह को देखकर आज भी
विश्व तुम्हारे दु:ख में शयन करने के कारण
करुणा से अश्रुओं का विमोचन करता है।
जगत् भर के शिल्पी कवि तुम्हारे पास रूप-राग देखकर
शोभा की पिपासा से तुम्हारी वृद्ध देह का भी
आलिंगन करने की इच्छा करतें हैं।

हे गतयौवना आज भी तुम्हारे अंग-अंग का अरवरत रूप से
चुम्बन लेने की इच्छा होती है ॥1॥

बारह सौ कवियों की कल्पना में
संसार की बुद्धि से परे
तुम्हारा शैशव बीता जो अज्ञात और रहस्यमय है,
जिस दिन विश्व की चकित दृष्टि तुम्हारे ऊपर पड़ी,
तुम्हारे अंग-अग में यौवन के लावण्य की क्रीड़ा होती रहती है।
शरीर के प्रत्येक भाग में सुललित अंगों का सौष्ठव फूटा पड़ता है,
मन के उस पार से मन की जय करने को मन्त्र सीख कर आए थे
कल्पना में बारह सौ कवि ॥2॥

सहसा ही मलिन पड़ गया
आकाश ही आकाश में हो गया विलीन।

अगणित तारकों की दिव्य ज्योति में रजत के सदृश धवल
शीतल शीतांशु लाज के कारण व्योम-पट में छिप गया,
सुदूर स्थित नगमाला तेरी भक्ति के भय में चकित-प्रसन्नतायुक्त हो रही है,
महासिन्धु तेरे चरणों को चूमता हुआ तेरा स्तव-गान करता है—उसकी
लहरियां ही तुम्हारे अलक हैं—
हे मनुष्य-मात्र की चारु भैरव कीर्ति तू मेरे पुलिन को शोभायमान कर।
तेरी सेवा करके मैं धन्य होऊं ॥3॥

पौर्णमासी के शुभ्र हास्य के नीचे
धवलित समुद्र की लहरों में
ताल-ताल पर लास्य करती हुई मदमस्त जलदेवी तुम्हारी कथा गा रही है,
औषधीश की ज्योत्स्ना तुम्हारे तरुण मस्तक को पूर्ण रूप से सींचती है,
तुम्हारे मौन कटाक्ष में व्योम में विचरण करने वाला मार्ग में मूढ़ हुआ
नीचे उतर कर, कान-कान में रहस्यमयी वार्ता कह गया है।
स्वर्ग में कौमुदी की कल्लोल पर आ कर
अप्सराओं ने तुम्हारी वन्दना की है,
पारिजात के पुष्पों का उपहार देते हुए ॥4॥

जीवन की जितनी क्रीड़ाएं एवं मनोविनोद होते हैं
उन सब को अपने अंगों में धारण कर तुम शोभायमान हो रही हो,
शत्रु से युद्ध करना राजा ने तुमसे ही सीखा है।
पात्र मन्त्री ने भी राजा को उचित मन्त्रदान देना तुमसे ही सीखा है।
प्रेमी और प्रेमिकाओं ने तुम्हारे पास आकर आलिंगन सीखा है,
और वीरों ने युद्ध-भूमि में शत्रु के साथ अपनाया जाने वाला कौशल-विशेष,
बेंत धारण करने वाले शिक्षक की पाठशाला में आने वाले बच्चों ने भी,
हे पाषाण-निर्मित तुमसे ही शिक्षा ग्रहण की है ॥5॥

सुन्दरम्

श्री सच्चिदानन्द राउत राय
(1916—)

एक कवि ने दृढ़ स्वर में कहा था
"सत्य और शिव हो सकते हैं, किन्तु सुन्दर हो यह मिथ्या ही है।"
यह बात झूठ नहीं, यद्यपि इसके विषय में तर्क करने के लिए प्रचुर अवकाश है।
जीवन तो सत्य नहीं है, किन्तु वह तो कितना सुन्दर है।
और हम जीवन की छवि, चित्तरूपी आकाश के गीत रूप इन्द्रधनु
कितने लोभनीय हैं, कितने रम्य हैं, कितने चमत्कारमय !
यह सृष्टि की सुन्दर कला, यह कल्पना, यह काव्य सब कुछ मिट्टी के घर हैं,
सब माया है। तब भी ये सब कितने सुन्दर हैं। सच ही कितने सुन्दर हैं ?
सत्य और शिव होते हैं यह निःसंदिग्ध है। किन्तु क्या वही शोभन होता है ?
इस किशोरी के फोटोग्राफ में उसका यह रंगीन चित्रण
क्या अत्यन्त मनोज्ञ नहीं है ? क्या यह बहुत अधिक
    चित्त विमोहक नहीं है ?
वह कितने अंशों में मिथ्या हो सकता है, मात्र
    सत्य सत्य ही हो तो वह कितना प्राणमय होगा ॥
सत्य वह तो ध्रुव चिर, एक ही और अक्षय है,
उस से कैसे खेल-खेल में दृष्टि का विस्मय गढ़ा गया ?
उसकी सुनिर्दिष्टता को छोड़कर कहीं भी तिल भर का व्यवधान नहीं,
सब कुछ अनिवार्य है, सब कुछ अनपेक्ष, चिर और स्वाधीन।
    सत्य नित्य है। मिथ्या लीलास्वरूप।
    इसीलिए मिथ्या ऐसा ही सुन्दर होता है।
    इसी मिथ्या इन्द्रधनु के रूप में धूप या छाया का इन्द्रजाल
    विस्मय के इतने महाकाव्यों को जन्म देता है ॥

रुद्र सुधानिधि

•

नारायणानन्द अवधूत स्वामी

(15वीं शताब्दी का उत्तरार्ध)

अन्तिम परीक्षा

क्या ये सब सचमुच ही अच्छी प्रकार से समाधि में स्थित हो गए हैं ? ये लोग निश्चय ही सिद्धि-युक्त हैं, यह बात सत्य ही है ऐसा जानते हुए भी मैं इनके हृदय की दोष-परीक्षा करके ही मानूंगा । ऐसा सोच कर जगत्प्रभु त्रिपुरारि ने पार्वती को बुलाकर कौतुक से परिहास करके, स्वर को कोमल करते हुए कान में आज्ञा दी, भद्रे ! हे कल्याणि ! हे शुभ्र सुकुमारि ! हे शाकांबरि ! जगन्माया स्वरूपी, परम मोहनी रूपी, ब्रह्मादि का विस्तार करने वाली, प्रकृति के रूप में तुम बाहर और अन्दर सभी जगह व्याप्त हो, यह तुम्हारा विभ्रम ही माया का प्रभाव गुण है । इनको बोध का उदय होने पर इनकी बुद्धि का कैसा अचल निर्मल गुण होता है, यह सब के शुद्ध विचार कर के तराजू में रख कर तोलने से आज मालूम पड़ जाएगा—कौन लघु है कौन गुरु ? हे देवि ! अभी तुम ही हमारे वचन के अनुसार अत्यन्त प्रसन्न त्रैलोक्य को मोहने वाली एक कन्या को जन्म दोगी । यह सिद्ध रुद्रगणों की ज्ञान-बुद्धि को मोहित करने में समर्थ होगी । हे सुन्दरि ! तुम तो स्वभाव से ही परम-माया, हो तुम्हारी काया लावण्ययुक्त है, कन्दर्प तुम्हारे नितम्बों का आश्रय लेकर ही स्थित रहता है । हमारे योग को जिसने भग्न किया, वह शक्ति कामदेव की ही है यह आज मेरी समझ में आएगा । आज भी तुम ही हमारी समझ में अत्यन्त प्रसन्न हो कर हमारी कौतुक-लीला-क्रीड़ा के प्रसंग में भय छोड़कर, जारी ही हो कर, सचराचर को मोहने वाली एक कन्या को जन्म दोगी ।

वह कामदेव मोहनी कन्या के संग ही हो, उसका सहचर वसन्त उसका सखा बन कर उसके साथ हो, तब कामदेव पुष्पधनु धारण करे तभी उसका कार्य सिद्ध होगा, कामदेव ब्रह्मा की प्रतिज्ञा को देखकर आज ही समझ पाएगा। वह चैतन्य स्वरूपी ईश्वर की आज्ञा पा कर अपनी शक्ति को पाश-मुक्त कर प्राणियों के मन को फिर से अनंग के पाश में आकर्षित करने के लिए अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने केवल मुहूर्त भर ध्यान धारण करके अपने मन से सचराचर को मोहने वाली कन्या को भी जन्म दे दिया। यह ही है वह कन्या। जिसने रस से सारे जगत् को मोहित कर लिया। सारी पृथ्वी शोभित हो गई, प्राणिमात्र का धर्म छूट गया, अनंग का सागर क्या आया मानो कैलाश की कन्दरा को ही उसने घेर लिया। उनकी स्थिति धन्य है, धन्य है! कैसी भूमिगत स्थिति है! मन्मथ राजा के कोदण्ड की कैसी भ्रान्ति है! बिजली की कैसी कान्ति है! ब्रह्मादि देवताओं को भी मोहित करने वाली कैसी फांसी है। विधाता ने कैसी लावण्यराशि का निर्माण किया है! कामदेव भी कैसा अमृतमय कुम्भकार है।

ईश्वर ने स्वयं भी बड़े चमत्कार का अनुभव किया। पार्वती को पास लाकर उनका आलिंगन कर वह हर्षपूर्वक बोले, हे सखे, दहन हो गए कामदेव को कैसे मोहन-जल से जीवित किया है? हे अंबुजाक्षि! नया शरीर पा कर इस समय अनंग सृष्टि को तुमने रूप प्रदान किया है। जिसको देखकर हमारा मन भी निश्चित नहीं हो सका है। इस समय देखूंगा कि इन सिद्धों में से किस में कितना बल है। ऐसा बोलते-बोलते अदृष्टपूर्व अद्‌भुत...मोहनी कन्या को देख कर, सभी सिद्ध रुद्रगण समाधि से उदासीन हो गए।

बत्तीस सिंहासनों की कथा

शिवदास
(18वीं शताब्दी)

द्वितीय कथा

रात्रि जिस समय ढलने लगी तो भोजराजा नित्य-कर्मों से निवृत होकर, अपने साथ में एक फूलों का गुच्छा लेकर जब सिंहासन पर बैठने लगे तभी पहली पुतली हंस उठी। उस पुतली को हंसता हुआ देखकर राजा ने उससे पूछा, बता तू क्यों हंस रही है। वह पुतली बोली, हे राजन् यह जो सिंहासन है इस के योग्य विक्रम राजा ही है। ऐसा सुनकर राजा ने कहा, उसके क्या गुण थे। राजा के ऐसे वचन सुन कर पुतली बोली—उसके गुणों का मैं कैसे वर्णन कर सकूंगी। उसकी कथा तो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। मैं उसकी कथा किसी प्रकार कहूंगी। तुम ध्यानपूर्वक सुनो। ऐसा सुन कर भोजराजा बोले—क्या वह हम से भी बड़ा दानी था ? हम जब देना चाहते हैं, लाखों स्वर्णमुद्राएं दे डालते हैं। राजा के यह वचन सुन कर पुतली बोली—हे राजन् अब ही पता चला कि तुम बड़े कृपण हो। जिस समय तुमने अपने गुणों का बखान किया उसी समय मैं यह समझ गई। पहले से ही सुनती आई हूँ कि अपने पुरुषार्थ के विषय में स्वयं कहने से वह नष्ट हो जाता है। ऐसे ही ऋषियों के भी वाक्य हैं। जो गुणवान् होते हैं वे अपना पुरुषार्थ नहीं कहते। इसी प्रकार से सुना जाता है। अपने गुणों को जब दूसरे से कहा जाता है तभी उसकी विकर्मों में गिनती हो जाती है। इसीलिए अपने गुणों के विषय में दूसरों से न कहना चाहिए। यह बात उत्तम लोग यदि कहें तो वह नीचता ही है। उस पुतली ने राजा से इस प्रकार कहा। उस पुतली के वचन सुनकर राजा बोला—वह राजा हमसे भी बड़ा दानी है ? उस विक्रमादित्य के कैसे गुण हैं, उनको कहो, मैं सुनूंगा। राजा

के यह वचन सुन कर पुतली बोली, उस विक्रम राजा के पास सब ओर से आकर सामन्त, पात्र, रावत और नियोगी भेंट करते हैं। वह राजा उन लोगों को सहस्रों स्वर्णमुदाएं देता है। जिसकी ओर देखता है, उससे मीठा वचन कहता है, करोड़ों स्वर्णमुद्राएं देता है। राजा के देने पर भी जब वह ठगई करते हैं तो राजा उन्हें अपशब्द कहते हैं। इसीलिए भण्डारों के अधिकारी राजा को बता कर सोना लेकर बैठते हैं। इस तरह से राजा से पहली पुतली ने कहा। फिर बोली, हे राजा, ऐसे महान् गुण जब तुम्हारे में हों तो इस सिंहासन पर बैठो।

आत्मजीवन चरित

व्यास कवि फकीरमोहन सेनापति
(1843-1918)

केउंभर का भुइयां विद्रोह (1891-92)

हाथी पर बैठा हुआ मैं मुहूर्त्त भर के लिए सोचने लगा, इस समय क्या करना चाहिये, पैदल सैनिकों को उस स्थान पर छोड़कर दोनों तरफ कुछ दूर तक हाथी दौड़ा कर मैंने एक उपयुक्त स्थान की खोज की, अभिप्राय यह था कि एक ऊंचे वृक्षों वाला स्थान पाने पर वहाँ पर पैदल सैनिकों को रख कर आत्म-रक्षा का उपाय करूंगा। दुर्भाग्य उपस्थित होने के समय किसी भी प्रकार से सुभीता नहीं होता। उस स्थान पर तो थोड़ा-थोड़ा जंगल था और वहाँ पर शत्रु की सरलता से दृष्टि पड़ सकती थी। और किसी प्रकार का उपाय उस समय सम्भव नहीं था। मैं सब ओर से निराश हो गया। मैं हाथी को दौड़ा कर स्वतन्त्रतापूर्वक आनन्दपुर में आ सकता था किन्तु पैदल सैनिकों को शत्रु के हाथ में डाल कर भाग आने में मुझे बड़ी लज्जा का अनुभव हो रहा था। इसलिए मैंने पीछे को हट कर वसन्तपुर के उसी आमों के कुंज में डेरा डाल दिया। वहाँ पैदल सैनिकों को श्रेणीबद्ध करके मैं आत्म-रक्षा का प्रबन्ध कर ही रहा था कि तभी भुइयाओं ने आ कर हम लोगों को घेर लिया। घेरा डालने वाले भुइयाओं की संख्या थोड़ी ही थी उन को आसानी से मार कर भगाया जा सकता था, किन्तु थोड़ी ही दूर पर बहुत बड़ी संख्या में भुइयां एकत्र थे इसलिए साहस न हो सका। भुइयाओं ने मेरे पास आकर कहा, धरणीधर बाबू के निकट आना होगा। मैं कुछ उत्तर न दे, हाथी पर चढ़ कर अपने समस्त दल-बल को साथ लेकर, चल पड़ा।''

वसन्तपुर के पश्चिम में वराराशि पर्वत के मूल में वसाघर घाटी में

भुइयाओं का एक प्रधान मिलन-स्थल था। धरणीधर का बड़ा भाई गोपालिया उस घाटी का रक्षक था। इसके अलावा वह सारी भुइयां सेना का सेनापति था। इससे छः मास पहले मैंने उसको अपने किले में कारागार में देखा था। पैरों में लोहे की बेड़ियां डालकर उसे एक खम्भे से बांधा हुआ था। गोपालिया पांच हाथ लम्बा मर्द था। उसका शरीर विशाल था, देखने में वह स्थूल और भयंकर लगता था, शरीर की मांसपेशी ऐसी लगती थीं मानों लकड़ी की बनी हुई हों। छाती चौड़ी, मुख चपटा, विशाल और विकृताकार था। आँखें छोटी थीं और वह एक भैंसे की तरह शक्तिशाली था। जैसा वह मूर्ख था वैसा ही नृशंस और अत्याचारी था। बहुत सी नंगी तलवारें और लाठियाँ अपने दोनों ओर रख कर वह एक पत्थर के ऊपर बैठा हुआ था। बहुत से भुइयां लाठी, कुल्हाड़ी और नंगी तलवारें लिए गोपाल की आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए उसके चारों ओर खड़े हुए थे। मेरे सामने आते ही उसने अपनी लाल-लाल छोटी आंखों से कर्कशतापूर्वक थोड़ी देर के लिए मेरी ओर देखा। इधर मैं बन्दी के भाव से सामने खड़ा होकर उसकी भीषण आकृति और मुख के भाव बार-बार देख रहा था। क्षण भर के बाद मुझे हुक्म हुआ—'धरणी बाबू के पास राइसुआं चलो।'

मैं हाथी पर बैठ गया। दोनों हाथों में नंगी तलवारें लेकर मेरे पास बैठ कर उसने मुझ से पूछा—क्या तेरे हाथ में पिस्तौल है रे? मैंने कहा नहीं। उसने कहा—अच्छा सुन अगर तूने किले की ओर भागने का यत्न किया तो तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालूंगा, यह समझ ले। कमर में कुल्हाड़ी और तलवार बांधकर प्रत्यंचा चढ़े हुए धनुष हाथ में लिए हुए चालीस-पचास प्रहरी मुझे घेर कर राइसुआं की तरफ को चल दिए। हमारी यात्रा के समय लोगों के दल के दल राइसुआं की तरफ से बसाघर की घाटी की तरफ को आ रहे थे। सामने से किसी आदमी को आते हुए देखकर हमारे प्रहरी चिल्लाते थे—होशियार। यदि आगन्तुक उत्तर में होशियार कहता था तो उसको हुक्म होता था दूर हटो, दूर हटो। भुइयां, लोगों में होशियार कह कर हांक देने का संकेत था जो होशियार कह कर ही जवाब दे वह तो अपने पक्ष का आदमी समझा जाता था और जवाब न देने पर शत्रु पक्ष का समझा जाता था। हमारी यात्रा के प्रायः अधभर में एक भीषण मनुष्य धनुष पर बाण चढ़ा कर मुझसे बोला—विचित्रानन्द ने सवेरे से शाम तक बिना खाना दिये दुःख देकर काम कराया था। आज मैं तुमको जरूर मार दूंगा। ऐसा कह कर मेरी ओर निशाना साध कर धनुष की डोरी को खींचा। यदि एक सेकिण्ड का विलम्ब और हो जाता तो मेरी

मृत्यु निश्चित थी। इस बीच पीछे से एक और आदमी ने दौड़ कर आकर उस धनुर्धारी के डोरी पर रखे हुए हाथ को पकड़ लिया।

क़रीब-क़रीब तीन बजे के वक्त हम लोग राइसुआं पहुँचे। मेरे हाथी से उतरते ही धरणी भुइयां मेरे पास आकर बोला—'मेरे चरणों में पड़, मेरे चरणों में पड़'। मैं इधर-उधर देखने लगा। पूजा करके आहार करने वाले मेरे रो-रोकर दौड़ कर आने पर, मेरे बालों को पकड़ कर बोला—'अपने पैरों पर गिर'। मेरे पैरों पर न झुककर नमस्कार करने पर धरणी ने मुझ को हाथ से पकड़ कर समीप लाकर अपने बिछौने के पास में बिठा लिया। दिन डूबने को था। मैंने स्नान-आहार आदि करने की अनुमति मांग ली।

धरणी के दरबार-घर से थोड़ी ही दूर पर मेरे रात में रहने के लिए एक छोटी-सी कुटिया दी गई। वह कुटिया भीतर से पांच हाथ लम्बी और पांच हाथ चौड़ी थी। कुछ पत्तों वाली साल वृक्ष की शाखाओं से उसकी चारों तरफ की बाढ़ बनाई गई थी। उनको ऊपर से भी साल की शाखाओं से ही छाया गया था। भीतर बैठकर आकाश के नक्षत्रों को गिना जा सकता था। थोड़े दिन पहले ही बारिश हुई थी; पृथिवी तल अभी भी थोड़ा-थोड़ा गीला था मेरी कुटिया के द्वार के आगे नंगी तलवारें धारण किए हुए भुइयाओं का एक दल मेरा पहरा दे रहा था। कुटिया के पीछे भी पहरेदार थे। मैं बहुत थक गया था। नौकर ने उसी गीली मिट्टी के ऊपर बिछौना बिछा दिया। सन्ध्या ढलने पर मैं भोजन करके सो गया। सोने के कुछ ही क्षणों बाद दल के दल चींटे मेरे ऊपर आकर मुझे काटने लगे। इस छोटी-सी झोंपड़ी के भीतर गीली मिट्टी के ऊपर चींटों की कतारें चल रही थीं—यह मुझे नहीं पता था। सोए कौन, सारी देह जैसे आग से जल गई हो ऐसे जलने लगी। देह के मलने में और बिछौने के ऊपर चींटों को भगाने में रात व्यतीत हो गई।

प्रातःकाल धरणीधर का दरबार लगा। चारों ओर से आ-आकर भुइयां लोग एकत्र होने लगे। आज भुइयाओं के इस शिविर में एक बहुत भारी आनन्द था—मैनेजर पकड़ा गया है। दरबार में सारे प्रधान-प्रधान भुइयां उपस्थित थे। धरणी मुझे पास बिठाकर बोला—'फकीरमोहन बाबू, अब तुम्हें क्या करना है?' मैंने तुरन्त ही जवाब दिया—'अगर मुझे मैनेजरी पर रखेंगे तो रहूंगा, अन्यथा अपने गांव को चला जाऊंगा।' धरणी ने भुइयांओं से पूछा—'तुम लोग क्या कहते हो?' सारे भुइयां एक स्वर में ही चिल्ला उठे—'नहीं, नहीं इस व्यक्ति को मैनेजरी पर नहीं रखा जाएगा। यह तो महाराज के पक्ष का आदमी है।' उस दिन मैनेजरी की नियुक्ति के सम्बन्ध में

अन्तिम निर्णय न हो सका। अन्यान्य प्रसंगों की आलोचना-प्रत्यालोचनाओं के साथ दरबार भंग हो गया। उस दिन भी रात को मेरी कुटिया में चींटों का साम्राज्य रहा जिसके कारण निद्रा का अभाव ही रहा।

दूसरे दिन दरबार का आरम्भ होने पर मुझको मैनेजर के पद पर नियुक्त करने का प्रसंग उठा। अधिकांश सरदारों के मुझे मैनेजर के पद पर नियुक्त किए जाने के सम्बन्ध में आबाद करने पर 'महारानी पुत्र', धरणीधर ने कहा—'एक बुद्धिमान बौद्ध व्यक्ति मेरे पास न रहा तो मैं इतने बड़े राज्य को किस प्रकार चला सकूँगा?' सारे भुइयां सहमत हो गए। मैं मंत्री पद पर नियुक्त हो गया। नियुक्ति-पत्र के ऊपर हस्ताक्षर हुए—महारानी पुत्र धरणीधर भुइयां। प्रत्येक कागज पर इसी प्रकार दस्तखत होने लगे। वेतन के बारे में मुझको सात एकड़ बिना कर की भूमि का भोग करने की अनुमति प्राप्त हुई। राइसुआं को आए हुए आज तीसरी रात थी। पिछली दो रात मैं बिल्कुल न सो सका था। अनेक प्रयासों एवं प्रार्थनाओं से राइसुआं मौजे के प्रधान ने मुझको एक पुरानी एवं टूटी-फूटी रस्सियों की बुनी चारपाई ला दी। नौकर ने उस पर मेरा बिस्तर बिछा दिया। उसके बाद तम्बाकू भर के मेरे हाथ में हुक्का पकड़ा दिया। मैंने हुक्के के छेद में जैसे ही मुँह लगाया कि हुक्के की नली के सिरे से अलग होकर चिलम मेरे मुँह के ऊपर उल्टी होकर गिर गई। आग के देही पर पड़ने के कारण कई जगह फ़फोले पड़ गए। मैंने सोचा, विपत्ति अकेली नहीं आती।

मैं धरणीधर का मन्त्री बन गया। यह बात भुइयांओं के सारे शिविर में फैल गई। धरणीधर को मुझमें बहुत विश्वास था। राजकार्यों को चलाने के विषय में वह मेरा परामर्श अवश्य लेता था। आजकल वह उस दल में देवता के समान पूजा जाता था। प्रतिदिन भिन्न-भिन्न ग्रामों की स्त्रियों के झुंड के झुंड शंख बजाकर, मंगलसूचक[1] ध्वनि करते हुए धरणीधर की पूजा करने के लिए आते थे। धरणीधर पैर बढ़ा देता था। स्त्रियां हल्दी के पानी से उस के पैर धोकर, उसके बाद फूल चढ़ाकर पूजा करती थीं। धरणी की पूजा समाप्त होने पर वे मेरे पैर धोकर पूजा करने को आती थीं।' मैं मंत्री था या नहीं, उनके लिए पूजा करनी आवश्यक थी। केवल मैं उनको नमस्कार करके कह देता, 'तुम लोग मेरे पैर न छुओ। मैं तो एक नौकर हूं। मेरी फिर कैसी पूजा?'

---

1. उड़ीसा में स्त्रियां पूजा के समय मुंह में अंगुली डालकर विशेष प्रकार की मंगलसूचक ध्वनि करती हैं जिसे हुलहुलि कहते हैं।

धरणी मेरी बात सुनता था और मेरी कुटिया में आकर मेरे साथ पान खाता था। यह बात गोपालिया और महापात्र के लिए असह्य थी। मुझे पहाड़ के ऊपर, भुइयांओं के ग्राम में बांध कर रखने की महापात्र की बड़ी इच्छा थी। केवल धरणी के भय से वे कुछ नहीं कर सकते थे। अन्त में धरणी की अनुपस्थिति में मुझको पकड़ कर ले जाकर वन में छोड़ देने का महापात्र और दूसरे कितने ही भुइयांओं ने गुप्त रूप से परामर्श करके निश्चय किया। सैंकड़ों भुइयांओं ने, दिन में ही मुझको ले जाने के लिए घेर लिया। धरणी को जब यह पता चला तो उसने दौड़ के आकर मुझको उनसे छुड़ा लिया।

मेरे मंत्री पद पर नियुक्त होने पर भुइयांओं ने एक अन्य विषय की ओर ध्यान दिया। राजा के महल में लाखों रुपया जमा था, उस वक्त वह सारा धन ले आना और राजपरिवार और परिजनों को पकड़ कर ले आना उनका लक्ष्य बन गया। रानी, राजकन्या और दूसरे परिजनों के रहने के लिए पर्वत की तलहटी में झोंपड़ियों की कतारें की कतारें तैयार की जाने लगीं। पहले से तो वहां पर घर थे नहीं, हरण किए जाने के बाद वे सब कहां रहते······। मैंने कहा—'हमारे लिए बीस बमों की आवश्यकता है। एक आदमी जाकर सौ बम खरीद लाए। मिट्टी की दीवार की तो बात ही क्या, अगर एकसौ बम हों तो यह पर्वत उड़ा दिया जाएगा।' यह निश्चय हो गया, कलकत्ता एक आदमी जाकर सौ बम खरीद कर ले जाएगा। हज़ार रुपयों की ज़रूरत थी। रुपया जमा कराने के लिए बड़े-बड़ प्रजा-जनों के ऊपर परवाना जारी किया जाएगा। दो कर्मचारी परवाना लिखने को बैठ गए। हज़ारों परवाने लिखे जाएंगे। फिर परवाने के ऊपर महारानी पुत्र धरणीधर भुइयां के दस्तखत होंगे। यह कौन सहज बात थी—काफी दिनों की बात नहीं थी। दिन-रात लगकर कर्मचारी बैठ कर परवाना लिखने लगे। मैं बैठ कर उन सब के काम की जांच करता था।

केउंझर के किले की रक्षा के लिए सेना आएगी यह गवर्नमेण्ट का हुक्म हो गया है। इतने दिनों में वह आएगी नहीं। भुइयांओं को कितने दिन अटका कर रखा जा सकेगा? यदि किसी दिन ये सब क़िले के भीतर घुस गए तो राजवंश की समस्त सम्पत्ति, समस्त सम्मान एकदम नष्ट हो जाएगा महाराजा को यह खबर देनी होगी। महाराजा कहां हैं यह कैसे पता चले? कैसे सूचना भेजी जाए? एक तरकीब दिमाग में आई। बालेश्वर में रहने वाले बाबू भोलानाथ दे आनन्दपुर आफिस में सर्वेयर थे। उनको खबर देने से वह जहां भी महाराजा होंगे वहीं पर संवाद पहुँचा देंगे। मैं पहले लिख चुका हूँ कि धरणी को

पान खाना बड़ा अच्छा लगता था। वह हमेशा मेरी कुटिया में आकर पान खाता था। मैंने जाकर उससे कहा, 'हुज़ूर मैं जितने पान लाया था, वह सब समाप्त हो गए हैं। इस जगह तो पान मिल नहीं पाएंगे। भद्रक में मेरे फार्म के मैनेजर भोलानाथ की चिट्ठी लिखने से वह जल्दी ही पान और सुपारी भेज देगा। भद्रक में मेरी ईख की खेती थी, मैं तो चला आया था। पानी न पाकर ईख समाप्त हो गई होगी। अगर आज्ञा हो तो उसमें पानी देने के लिए मैनेजर को लिख दिया जाये।' आज्ञा हुई —'हां लिख दो, हां लिख दो।' मैंने जो चिट्ठी लिखी थी, उसकी नक़ल है—

मई मास 16 तारीख सन् 1891
मुक़ाम राइसुआं।

भोलानाथ मैनेजर को विदित हो······

महारानी पुत्र को बहुत ज़रूरत है—तुरन्त एक सौ पान और दो सौ सुपारी भेज दो। उत्तर की तरफ से ईख को शीघ्र पानी दिला देना अन्यथा ईख नष्ट हो जाएगी। इति

फकीरमोहन सेनापति

महारानीपुत्र के पास चिट्ठी पढ़ी गई। जाने वाले पत्र पर महारानी पुत्र ने दस्तखत किए। केउंझर के राजगढ़ से आनन्दपुर तक तीन चार जगह चौकियां थीं। महारानीपुत्र के दस्तखतों से मुद्रित पत्र न होने पर कोई भी आदमी आ-जा नहीं सकता था। फिर चौकियों पर बाहर के लोगों के कपड़ों आदि की अच्छी तरह जांच की जाती थी। चार बलवान् पैदल सैनिकों के हाथ में मैंने चिट्ठी दी। एक खण्डायत सैनिक के उपवीत में एक सोडा बोतल और छोटे-छोटे तार मैंने बांध दिए। पैदल सैनिक बन्दी थे, घर को जाएंगे, इसलिए दिन-रात न समझकर आनन्दपुर की तरफ को दौड़ पड़े। महाराजा आनन्दपुर में उपस्थित थे।

पैदल सैनिकों ने तार के तीन टुकड़े उनके हाथों में दे दिए। उन्होंने चिट्ठी पढ़कर और उसके तीन टुकड़े देखकर सब के सामने अर्थ किया—यह उन तीन टुकड़ों का अर्थ है—गवर्नमेण्ट, कटक सुपरिण्टेण्डेण्ट और दूसरे कुछ लोग, नन्दकिशोर बाबू या मधुबाबू—इन सब को उनकी खबर देने के विषय में मैनेजर से संकेत किया गया है। पान का अर्थ है सिपाही। सुपारी का अर्थ है बन्दूक की गोली, अर्थात् बन्दूकधारी सिपाही। ईख के खेत का अर्थ है क़िला। चिट्ठी का अर्थ है उत्तर की तरफ से अर्थात् चौंबसा की तरफ से सिपाही अगर तुरन्त न गये तो क़िला लूटपाट से नष्ट हो जाएगा।

इधर मैं सैनिकों की बाट जोहता हुआ समय काट रहा था। अनेक भुइयां सरदारों को मैंने अपने वश में कर लिया था। केवल महापात्र को अपनी ओर करने में मैं समर्थ नहीं हो सका था। वह हमेशा मेरी गतिविधियों और बातचीत पर निगाह रखता था। केवल मेरा उसके प्रति सन्देह था, मैंने यह भाव प्रकट नहीं होने दिया।

भाषा और देश-भक्ति

उत्कलमणि गोपबन्धु दास
(1876-1928)

आज सारे भारतीय देश-भक्ति के लिए व्याकुल हैं। समाचारपत्रों में आलोचना होती है, सभा-समितियों में भाषण होते हैं, काव्य, नाटक, उपन्यास आदि में रूपक के बहाने सूचना दी जाती है--कैसे भारत में देश-भक्ति की प्रतिष्ठा होगी। अनेक लोग भारत की देशभक्ति को एकदम असम्भव समझ कर हताश हो गए हैं। कुछ लोग केवल अतीत की ओर देखते हैं—प्रेरणा पाने के लिए दूसरे अनेक लोगों को केवल भविष्य की ओर ही आशा लगी हुई है। कुछ अपने भीतर की ओर देखते हुए प्राचीन सभ्यता का मन्थन करते हैं। फिर कुछ लोग दूसरों की ओर देखते हैं और केवल पश्चिम के ऊपर भरोसा रखते हैं। वास्तव में भारत में देश-भक्ति की समस्या विकट रूप में उपस्थित है। कितने ही प्रदेश हैं—फिर प्रत्येक प्रदेश में व्यवहारों की दृष्टि से बहुत से पार्थक्य हैं और फिर उसमें भी अनेक श्रेय स्वार्थों का विवाद है। इसी तरह कन्याकुमारी का हिमालय के साथ कोई सम्पर्क है ऐसा सोचने का समय-समय पर साहस ही नहीं हो पाता है। पहले भारत के प्रत्येक प्रदेश का अनेक विषयों में स्वातन्त्र्य था, यातायात की उतनी सुविधाएँ नहीं थीं, एक-एक प्रदेश, वन, जंगल, नदी आदि स्वाभाविक सीमाओं द्वारा घिरा हुआ था, इसलिए उस समय प्रत्येक प्रदेश के इतिहास, साहित्य, भाषा, लोक-व्यवहार आदि का स्वतन्त्र होना स्वाभाविक था। किन्तु विशेषता यह थी कि मूल आर्य-सभ्यता मेरुदण्ड के रूप में रहती थी। आर्य ऋषियों ने जान लिया था कि भाव और तदर्थ भाषा की एकता मानव-मानव के मिलन का एकमात्र मार्ग था। मानव आकृति एवं प्रकृति से भिन्न हो सकता है, भिन्न जलवायुओं में पल सकता है? तब उसका अन्य मानवों के साथ किस स्थान पर मिलन हो सकता है? भाव

में, विचार में स्थूलत: सभ्यता में, भारत में एक आर्य उपनिवेश का विकास हुआ था। क्रमश: शूरसेन या महाराष्ट्र के आर्य-जनों के साथ मगध के आर्यों के पार्थक्य का जन्म हुआ। प्रादेशिक स्वातन्त्र्य बढ़ता गया, केवल संस्कृत भाषा और वैदिक भाव ही इस सारे स्वातन्त्र्य में सुन्दर सुदृढ़ एकता रख सका और आज तक रखता है। द्रविड़ों के साथ आर्यों का संघर्ष हुआ। उन्होंने क्रम से आर्य भाषा, आर्य भाव और आर्य सभ्यता को ग्रहण किया। परिणाम-स्वरूप द्रविड़ आर्यों के साथ एकदम मिल गए।

आज भारत में प्रादेशिक स्वतन्त्रता का यह क्रम नष्ट हो गया है। नष्ट होने पर भी भारत की बड़ी-बड़ी जातियां एकता की ओर अग्रसर नहीं हुई हैं वरन् प्रत्येक प्रदेश में सैंकड़ों नए स्वार्थी तथा स्वातन्त्र्यों का सृजन हो गया है। यातायात की सुविधा हो गई है। प्रदेशों का एक दूसरे से सम्पर्क बढ़ गया है। अब एक प्रदेश में केवल एक ही जाति के लोग नहीं रह गए हैं। नाना वर्ण और नाना धर्म समाज के लोगों में एक ही स्थान पर विद्यमान हैं। वे सब अपनी-अपनी भाषा, भाव, व्यवहार, रीति-नीति, समाज, साहित्य, इतिहास सब को साथ ही लेकर आए हैं। उन सब को छोड़ने के लिए वे तैयार नहीं हैं। काम के कारण या घटनाचक्र से जिस स्थान या प्रदेश में आकर वह रहने लगे उस स्थान की सभ्यता, साहित्य, भाषा आदि को अपनी कह कर ग्रहण करने की उनकी इच्छा नहीं है। तब और किस प्रकार से प्रादेशिक एकता सम्भव हो सकती है? भारत की देश-भक्ति तो दूर की बात है। जिस रूप में भाषा, भाव और सभ्यता की एकता में प्रादेशिक स्वातन्त्र्य के रहते हुए भारतीय सभ्यता आज तक जीवित रही है, वर्तमान क्षेत्र में प्रादेशिक सभ्यता के व्यक्तित्व की रक्षा के लिए उसी मार्ग का अवलंबन ग्रहण करना होगा। थोड़ा सा नीचे की ओर देखने पर दिखाई देगा कि भाव और सभ्यता के मूल में भाषा ही है। भाषा की एकता होने पर भावों की एकता सुनिश्चित होती है। इसीलिए सभ्यता एक ही है अन्य किसी प्रकार से नहीं हो सकती। संसार के समस्त आधुनिक सभ्य देशों ने इसी नीति को ग्रहण किया है। संयुक्त राज्य अमरीका में नाना जातियों के लोग रहते हैं। अंग्रेज; जर्मन, पुर्तगाली, सभी जातियों के लोग हैं। प्रत्येक प्रदेश के कायदे-कानून और विधि-व्यवस्था भी अलग-अलग है। किन्तु उन सबने अंग्रेजी भाषा को राज्य की भाषा के रूप में ग्रहण किया है। जब तक अंग्रेजी भाषा को स्वीकार न किया जाए तब तक किसी को भी संयुक्त राज्य की प्रजा के अधिकार नहीं दिए जाते। सारे राज्य में एक राष्ट्रीय भाव निरन्तर जागृत रहता है। आजकल भारत के प्रत्येक प्रदेश में नाना प्रकार के लोग हैं। इन में धीरे-धीरे नवीन सम्प्रदायों तथा

समाजों के लोग मिलते जाते हैं। किसी भी स्थान पर पहले की सी अविमिश्रता नहीं है। इन नाना प्रकार के लोगों में एकता की रक्षा करने के लिए उन सब के लिए ही उस देश की भाषा का ग्रहण करना उचित है। यह होने पर उनके भाव और विचारों में सामंजस्य आ जाएगा। उस प्रदेश की स्मृति, साहित्य, इतिहास आदि को वे लोग अपना बना लेंगे और उस प्रदेश के प्रति तथा उसके अतीत और भविष्य के प्रति उन सब की आस्था और ममता बढ़ने लगेगी। जहां तक संभव है, एक भाषा-भाषी स्थानों के एक ही शासक के अधीन न आने पर यह उद्देश्य सिद्ध न हो सकेगा।

परजा

उपन्यास

•

श्री गोपीनाथ महन्ती
(1914—)

[एक अंश]

बाप की हथेली और मां की गोद भले ही सूख कर हड्डी-हड्डी ही रह जाये, किन्तु न जाने उनके स्पर्श में क्या है कि जिससे प्राण शीतल हो जाते हैं और मन का ताप मिट जाता है। कारण और फल—दोनों के विच्छिन्न होने पर बाहर के गठन में स्वतन्त्रता प्रस्फुटित होती है। अगर दोनों मिल जायें तो यमुना फिर से छलछलाते हुए प्रवाहित होने लगती है, रागिनी बजने लगती है, जो मरण की दास नहीं है, जो अमृत है।

उसी तरह सब लोग चुपचाप बैठे हुए थे, टिक्रा अपनी देह मल रहा था, सुकुजानि जोर-जोर से तम्बाकू पी रहा था। बड़बड़ाने के समान टिक्रा बोला—'मैं नाच देखने जा रहा हूं।'

'अच्छा जाओ, ज्यादा रात मत करना।'

टिक्रा चला गया।

कुछ समय व्यतीत हुआ, मण्डियाजानि बोला, 'बाबू।'

'क्या है ?'

'ब्याह की बात बाबू।'

'हां।'

'क्या सोचा ?'

'ऐं।'

'वही ब्याह के बारे में।'

अब बूढ़े ने कान दिया। मुंह में तम्बाकू को पैर की एड़ी के नीचे दबा कर बुझा दिया और कहने लगा—'बतला मैं क्या करूं ? तू सोच कर कह।' माण्डियाजानि पिता के मन की बात समझ गया—हूं, ठीक ही तो है, सब कुछ

एक तरफ है, पैसा दूसरी तरफ है। एक आदमी के पास तो गोति है।[1] उसकी अपनी देह तक गिरवी रखी हुई है और कहीं तो वह गिरवी रखने के लिए भी नहीं है, झोला (लड़की के लिए दिया जाने वाला सोना) न देने पर कौन बाबू लड़की देगा ?

पुत्र को निरुत्तर देख कर बूढ़े ने कहा—पुरिजानि कितना मांगेगा यह तो मुझे पता नहीं। मेरे पास तो कुछ है नहीं, ले-देकर ये दो खेत हैं। इनको या तो गिरवी रख दूंगा या बेच दूंगा। फिर घर में बहू आने पर उसको कहां से खिलाऊंगा ? घर में जो दो लड़कियां हैं, उनका किस तरह पेट भरा जाएगा ?'

सुकुजानि ने सोचा, तर्क की बात हृदय की बात से कितनी दूर की होती है। माण्डियाजानि इतना विरक्त हो गया कि वह खाली सोच रहा है, सोच रहा है, बूढ़े की तरह इधर-उधर की बात सोच रहा है।

युवक सोचता नहीं। वह तो अपने मन की इच्छा से किसी के द्वारा भी अब तक न चले मार्ग पर चल पड़ता है, और उसके पीछे-पीछे नया मार्ग बन जाता है।

उसकी इस अवस्था में—माण्डिया मां के गर्भ में आ गया था।

किसी को पकड़ कर लाने पर, बाद में कन्या के बन्धु-कुटुम्बी आते थे, प्रथा के अनुसार, उनको दो घूंसे लगाए जाते थे, फिर झोला लेने के बारे में बात तय हो जाती और वे झोला लेकर वापस चले जाते, यह हो सकता। इस तरह के ब्याह काफी चलते रहे जिनको कहते उदूलिया[2] ब्याह। माण्डिया के लिए एक बार जवान होने पर क्या करना होगा और क्या नहीं करना होगा, यह सब वह अपने लड़के को बता नहीं सकेगा।

इसी स्थिति में सीधे-सादे बेटे के लिए उसकी आत्मा रोने लगी मन हुआ कि गोद में उसका मुँह लेकर थपथपाकर उसको वह सुला दे। दया आ गई। विश्वास और उत्साह दिलाते हुए उसने कहा—'अब तो अगले चैत में मांगने के दिन आ रहे हैं। मुझ से इतना सब क्यों पूछ रहा है। तेरे घर में बहू लाने पर मैं कितना ख़ुशी होऊंगा। तेरी मां तो अब है नहीं खुशी होने को। तू जा, वहां तू जो कुछ भी करेगा उसमें मेरी राज़ी है।'

---

1. गोति का अर्थ है एक अनुबन्ध के अधीन एक निश्चित समय तक किसी के लिए श्रम करने के लिए अपना शरीर गिरवी रखना।
2. उदूलिया का अर्थ है किसी प्रकार मना कर ज़बर्दस्ती किया जाने वाला विवाह।

माण्डिया बोला—बाबू, नाच देखने को मैं चलता हूँ। एक अच्छी तम्बाकू का पत्ता, थोड़ा सा मेरी जेब में है, लो इसे पीते रहो।' पिता के प्रति उस का मन बहुत दब गया था, एक ही बीज के पेड़ का यह फल था, पिता की बात अच्छी तरह समझ गया था। पिता के प्रति कृतज्ञता से उसे अपनी मां की याद आ गई।

अंधेरे में पुत्र की आंखें और मुंह सुक्रु देख नहीं सका। हाथ फैला कर बोला—'तम्बाकू है ? है तो दे—।'

सब चले गए। अन्धेरे बराण्डे में बैठा रह गया बूढ़ा अकेला। ठण्डी हवा उसके मुंह पर लग रही थी। गांव की सड़क पर हो रहे नाच का कोलाहल मन के भीतर घुस कर जैसे एकदम ही पैरों को खींच रहा था। सामने के दो-चार पेड़ों पर दृष्टि डालते हुए तसल्ली पाने की बूढ़े ने चेष्टा की। वहां एक-एक पत्ते पर असंख्य जुगनू लिपटे हुए हैं। वह एक साथ ही जगमगा उठते हैं और एक साथ ही बुझ जाते हैं। भावना स्थिर न रह सकी।

मन स्थिर न हो सका। आने वाले चैत के नाच ने उसे बाहर ठेला, वह इन्द्रियों के साथ मिल गया, रक्त में मदिरा की तरह।

उसे शायद ख्याल आया—उसके हाथ हैं, पैर हैं, शरीर है, प्रत्येक अवयव का आयतन है, वज़न भी है।

बूढ़ा उठा, छड़ी को ठक्-ठक् करता हुआ अन्दाज़ से गांव के मार्ग की तरफ एक-एक कदम रखता हुआ चल पड़ा, नाच की तरफ को।

पिता और पुत्र

कहानी

•

श्री सुरेन्द्र महन्ती
(1920—)

ऊपर के भाग के एक छोटे से छिद्र के मार्ग से, आते हुए प्रभात के आलोक में अन्धकारमय पड़ी हुई कारागार थोड़ी थोड़ी आलोकित हो उठी। ऊपर से सुनाई देता है, राजगृह के राजपथ पर अपने रोजमर्रा के कामों में लगी हुई जनता का कोलाहल।

बन्दी ने क्षुधार्त दृष्टि से छिद्र मार्ग से आती हुई उस प्रकाश की रेखा की ओर देखा। प्रभात की शान्त, स्निग्ध, आलोकरेखा—जो कि महाप्रभु बुद्ध के आशीर्वाद सरीखी लग रही थी।

बुढ़ापे, अनशन और अत्याचार में बन्दी ऐसा दिखाई दे रहा है मानो प्रेतच्छाया हो। कभी का विशाल वक्षस्थल आज रूखे धूसरित श्मश्रुजाल से आच्छन्न। देह की खाल ढल चुकी है।

बन्दी है, मगधराज बिंबिसार।

पुत्र अजातशत्रु के आदेश से कारागार में बन्द होकर पड़े हैं, यहां जीवित ही समाधि के तले।

बिंबिसार की हत्या करने का अजातशत्रु ने प्रण किया है—तिल-तिल कर के बिना आहार किए।

क्लान्ति और अवसाद से घिरे हुए बिंबिसार की कोटरों में धंसी हुई आँखों के दोनों पलक फिर से मुंद गए। अनाहार और भूख से उसका प्रत्येक अंग-प्रत्यंग अवश एवं निश्चेतन हो गया है। प्यास के कारण फैली हुई जिह्वा

को शुष्क ओंठ के ऊपर थोड़ा सा फिरा कर बिंबिसार ने रुंधे हुए कण्ठ से आर्तनाद किया।

यह राजगृह उनके ही आदेश से उनके राजत्व-काल में निर्मित हुआ था। आज वही राजगृह अन्धकूप के भीतर हो गया है। संसार की आँखों से दूर वह मृत्यु की यन्त्रणा को भोग रहे हैं। कर्मफल ? पूर्व जन्म के कर्मों का फल।

पहली राजधानी कुशाग्रनगरी में एक बार भीषण अग्नि का खतरा हो गया था। ऐसा लगता था कि मानो सारी नगरी ही भस्म-स्तूप में परिणत हो जाएगी। बिंबिसार ने आदेश दिया कि जिनके घर में अग्निसंचार होगा उनको निर्वासित कर दिया जाएगा। किन्तु अदृष्ट का विधान विचित्र है। बिंबिसार के प्रासाद में ही अग्नि-संचार हुआ। बिंबिसार ने स्वेच्छा से शीतलवन में निर्वासन ग्रहण किया।

सर्पिणी नदी के द्वारा सेवित छाया-स्निग्ध विशाल पर्वत वैभारगिरि और गृध्रकूट की मेखला से आवेष्टित शीतलवन ने बिंबिसार को मुग्ध कर लिया था। इसलिए उसी स्थान पर उनके आदेश से निर्मित हुई, मगध की नई राजधानी-राजगृह।

उसी राजगृह के अन्तिम दर्शन करने के लिए बिंबिसार ने मानो अपनी दोनों क्लान्त आंखें पुनः खोलीं। प्राणहीन दृष्टिहीन दो आंखें मानो पत्थर की बनी हुई हों।

उस दिन—अजातशत्रु के बिंबिसार को कारागार में कैद करने के बाद। शोकातुरा, अस्त-व्यस्त केशों वाली, अश्रुमुखी कौशला देवी ने अजातशत्रु से प्रार्थना की—

'पुत्र अजातशत्रु !'

अजातशत्रु ने उपहास के स्वर में कहा—'आदेश दीजिए, काशी राजनन्दिनि।'

'माता कह कर सम्बोधन करना क्या इतना लज्जास्पद लगता है, पुत्र ?'

'पुत्र ! हाः—हाः—हाः—' अट्टहास कर उठा अजातशत्रु। तदुपरान्त रूखे निर्मम स्वर में बोला—'माता कह कर सम्बोधन करने में मुझको कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु क्या मैं कह सकूंगा माता, जिस नारी ने गर्भ में स्थित पुत्र भावी काल में कभी पिता का मारने वाला होगा ऐसी आशंका करके, एक दिन गुप्त रूप से सावधानी से अपनी कुक्षि का मर्दन किया, वही नारी अभी उस हतभाग्य के निकट जाकर यदि पुत्र कह कर सम्बोधन करे तो ऐसा होने पर उसका क्या प्रत्युत्तर हो सकता है ?'

कौशलादेवी ने असहाय स्वर से कहा, 'मैंने सैकड़ों बार कहा है, पुत्र, यह केवल एक झूठी जनश्रुति है।'

अजातशत्रु ने कहा—'सत्यता न होने पर श्रुति नहीं हो सकती, काशीराजनन्दिनी ! किन्तु वह प्रसंग ही क्यों ? केवल बिंबिसार की कारागार से मुक्ति को छोड़कर, तुम्हारे अन्य सभी अनुरोधों पर विचार करने के लिए मैं तैयार हूँ।'

कौशलादेवी ने मलिन रेशमी अंचल पर आंसू गिराते हुए कहा—'ठीक है, पिता के रक्त में यदि महाराज पद पर अभिषेक के मंगल घट को भरने की तुम्हारी कामना है तो उसका प्रतिरोध करने की स्पर्धा कौन कर सकता है। लेकिन मेरी केवल एक भिक्षा थी, महाराज ! इस हतभागिनी ने अपने हाथों द्वारा तैयार किए हुए खाद्य पदार्थों को छोड़ कर अन्य कोई भी वस्तु बिंबिसार को न भाती थी। आज उनको कारागार में अपने हाथ से भोजन परोसने के सौभाग्य से मुझे वंचित न करें, महाराज !'

अजातशत्रु ने कहा—'यह प्रार्थना स्वीकार है, काशीराजनन्दिनि !'

किन्तु कौशलादेवी के प्रस्थान के तुरन्त बाद ही, अजातशत्रु ने कारागार के रखवाले चण्ड को आदेश दिया कि जिससे कौशलादेवी के द्वारा भेजे हुए किसी भी खाद्य पदार्थ का बन्दी स्पर्श न कर पाए।

जल का पात्र रीता पड़ा है। बिंबिसार के दो शिथिल कांपते हुए हाथों से उसी जलशून्य पात्र को अपने मुख से लगाते-लगाते पात्र ही नीचे गिर कर चूर्ण हो गया। प्रभातकालीन सूर्य आकाश मार्ग में बहुत ऊपर को उठ गया। शिखर के छिद्रमार्ग से आती हुई क्षीण आलोक रेखा न जाने कितनी देर से समाप्त हो चुकी थी। नाक सड़ा देने वाली गन्ध से युक्त कारागार में केवल अन्धकार ही अन्धकार है—नीरन्ध्र, निरानन्द और निष्ठुर।

अब क्षुधा का भी कोई अत्याचार नहीं रहा है। केवल शेष है तो अतृप्त देह की 'तन्हा' और प्यास। इसके बाद उससे भी मुक्ति मिल जाएगी। उसके बाद सब कुछ शून्य हो जाएगा—बुद्धि के ध्यान-लोक के समान। निष्पलक, स्थिर-दृष्टि। शून्य-वृत्त की परिधि धीरे-धीरे जैसे बिंबिसार के निकट से निकटतर आती जा रही है। महाशून्य की पृष्ठभूमि में बिंबिसार को कुहेलिका से आवृत पथ में आभास हुआ। ध्यान-गम्भीर कार्योत्सर्ग मुद्रा में बैठे हुए भगवान बुद्ध की प्रशान्त मूर्ति। दोनों अर्धनिमीलित नेत्रों में उनकी शान्ति का मानों स्वस्त्ययन हुआ हो।

प्यास से बिंबिसार के जीभ और ओंठ फट गए थे उससे थोड़ा-थोड़ा काला रक्त निकल रहा था। उसी रक्त से बिंबिसार का शुष्क कण्ठ कुछ

सिक्त हुआ। रुद्ध कण्ठ से आहत पशु के समान बिंबिसार गर्जन कर उठा—

महाशून्य की पृष्ठभूमि में बिंबिसार के दृष्टिपथ में आभासित हो उठा। ध्यानावस्थित गृध्रकूट के शिखर का सप्तपर्णी गह्वर। शाक्य वंश में उत्पन्न राजपुत्र गौतम ने संन्यास लेने के बाद सप्तपर्णी गह्वर में चातुर्मास्य व्रत का पालन किया, लोगों के मुख से यह बात सुन कर बिंबिसार विस्मित हो उठा था।

उस दिन मेघहीन नीले आकाश में उदास गोधूलि थी। बिंबिसार पार्षदों के साथ गौतम के दर्शन करने के लिए गृध्रकूट पर्वत पर गया था। सप्तपर्णी की दक्षिणी वेदी पर गौतम अनुदात्त कण्ठ से बहुत से भिक्षुओं को 'प्रवज्जासूत' का व्याख्यान दे रहे थे। गृध्रकूट की तलहटी में मोरों के घूमने के स्थान पर मोर के पंखों के रंगों से चित्रित नृत्य मयूरिनी के न देखने से भग्न-छन्द हो उठा। और कितनी ही बार वह विह्वल हो उठता है उस कलापहीना के चंचु-चुंबन से। थोड़ी ही दूर पर मृगोद्यान की हरी-हरी दूब के ऊपर मृगों के झुंड के झुंड रोमन्थन करते हैं। समीप ही सुमागधी पुष्करिणी में कौए की चोंच जितने जल में अपने ही प्रतिबिंब को मुग्धा हरिणी आत्मविस्मृत हो कर देख रही है।

—आदरपूर्वक बातचीत के बाद बिंबिसार ने प्रश्न किया—'हे कुमार, आप किस दुःख के कारण ऐसी कष्टदायिनी साधना कर रहे है ?'

गौतम ने मुस्करा कर उत्तर दिया—'दुःख के लिए नहीं, महाराज, यह संन्यास और यह कष्टप्रद साधना दुःख के कारण और निदान के संधान के लिए है।'

बिंबिसार ने अट्टहास करते हुए कहा—'कारण तो बहुत सहज है। परन्तु सप्तपर्णी गह्वर में उसका निदान कैसे पा सकोगे, कुमार ? यदि ऐसा है तो आओ राजगृह की उत्सवशाला में। रोमांचित करने वाली फेनिल मदिरा और रमणीय मगध-नारियों के चंचल नृत्य में तुमको सब दुःखों का निदान मिल जाएगा कुमार।'

निर्दोष आनन्द में बिंबिसार फिर अट्टहास कर उठा। गौतम के दो अर्धनिमीलित नेत्रों में गोधूलि की उदास छाया सन्ध्या के मौन अन्धकार के समान गम्भीर से गम्भीर तर हो उठी।

आः······प्यास से बिंबिसार की कण्ठनाली ऐसी हो रही थी जैसे किसी ने खींच कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया हो।

कुछ क्षणों की नीरवता के बाद गौतम ने उत्तर दिया, 'कामना के जल में इस तृषा की शान्ति नहीं है महाराज।'

निभृत कारागार की प्राणहीन नीरवता जैसे उसी वाणी में प्रतिध्वनित हो उठी हो।

लास्यरता मगध की सुन्दर युवतियों के अलक्तक-रंजित घुंघरुओं के शब्दायमान चरण आज मौन हैं, काजल से शोभित नेत्रों में मरण की भृकुटी चढ़ी हुई है। आनन्दित करने वाले फेनयुक्त पान-पात्र में हलाहल के बुलबुले उठ रहे हैं। किसका? यह किस के नूपुरों का शब्द है? कौशला देवी? महारानी!

कारागार का पहरेदार बदल गया था। लौह कवच का शब्द। असह्य प्यास से बिंबिसार ने शराहत वश्य पशु के समान अपनी ही एक बांह में काट लिया।

। दो।

अजातशत्रु अपलक दृष्टि से प्रासाद के कमरे में वातायन से राजगृह की दिगन्तमेखला के समान स्थित गिरिमाला की ओर देख रहा था। पलंग पर आसन्नप्रसवा रानी वज्रा मरुस्थल की नदी के समान लेटी हुई है। कबूतरों के दरबों से झुंड के झुंड कबूतर उड़ जाते हैं और फिर वापस आ जाते हैं। उद्यान के तमाल के नीचे भवनशिखी उद्दाम नृत्य के उद्यम में अपने पंखों का विस्तार कर रहे हैं।

वज्रा ने क्लान्त कण्ठ से पुकारा—'महाराज।'

अजातशत्रु शैया के पास बैठ कर धीरे-धीरे वज्रा के मलिन सिर पर हाथ फिराता हुआ बोला, कहो, वज्रा।'

वज्रा अजातशत्रु का एक हाथ पकड़ कर बोली 'बतलाओ तो महाराज, सन्तान पुत्र होगी या कन्या।'

अजातशत्रु विचलित हो उठा।

वज्रा का फिर वही निष्ठुर प्रश्न—-बताओ महाराज, 'यह सन्तान पुत्र होगी या कन्या?'

अजातशत्रु वज्रा की शैया के पास से उठ कर अपने अकेले कमरे में चला गया। अचानक ही एक तीव्र यन्त्रणा से वज्रा चीत्कार कर उठी।

पुत्र! पुत्र! अजातशत्रु के अश्रुपूर्ण दृष्टिपथ में नाच उठा राजगृह का अन्धकारमय कारागार। हाथ-पांवों से बंधा हुआ, श्रृंखलाओं में जकड़ा हुआ अजातशत्रु अनाहार होने के कारण आर्तनाद कर रहा है।

उर्दू साहित्य

चयन :

श्री जिया उल हसन फारुकी

अनुवाद :

श्री गोपीनाथ 'अमन'

अनुक्रम

ऐतिहासिक समीक्षा		181
इस्मत चुग़ताई	• नन्हीं की नानी	188
डा० आबिद हुसैन	• हिन्दुस्तानी मुसलमान	194
मिर्ज़ा हादी रुसवा	• उमराव जान अदा	204
मीर अम्मान देहलवी	• बाग़ो बहार	209
नज़ीर अहमद	• तौबतुन्नसूह : एक उद्धरण	212
मीर	• शेरो सख़ुन	219
ग़ालिब	• दुनियां मेरे आगे	220
	• रंगभूमि	221
	• फिर बहार आई	222
	• जबकि तुझ बिन नहीं कोई	223
	• दो शेर	223
इक़बाल	• तारा	224
	• ग़ज़ल	225
	• समय	226
	• जिब्रील और इब्लीस	227
नज़ीर अकबराबादी	• वर्षा	228
	• होली	229

ऐतिहासिक समीक्षा

भाषा :—

उर्दू तुर्की शब्द है जिसका अर्थ है "गिरोह"। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरकाल में जाकर ही इसका प्रयोग एक विशेष भाषा के अर्थ में किया जाने लगा। इसका तात्पर्य यह नहीं कि उर्दू भाषा की उत्पत्ति इतने समय बाद जाकर हुई। वास्तव में इस नयी बोली की गठन की प्रक्रिया उस समय आरम्भ हो गयी थी जब फ़ारसी बोलने वाले सैनिकों अथवा सैन्य दलों ने ग्यारहवीं शताब्दी में उत्तर-पश्चिम सीमान्त से भारत में प्रवेश किया और विजेताओं के रूप में उन्होंने पहले उस क्षेत्र में जो आजकल पश्चिमी पंजाब कहलाता है, और तत्पश्चात् दिल्ली में, रहने-बसने का निश्चय किया। उर्दू मूलभूत रूप में भारतीय-आर्य वंश से सम्बद्ध है। हुआ यह कि भारतीय क्षेत्र में बोली जाने वाली बोलियों और फ़ारसी के परस्पर सम्मिश्रण ने एक नयी बोली के निर्माण का आधार उपस्थित कर दिया। यहाँ इस बात का ध्यान रखना होगा कि ये मुसलमान विजेता अपने साथ जो फ़ारसी जबान यहां लेकर आये उसपर अरबी ज़बान की छाप थी। भारत में मुसलमानों के शासन-प्रसार के साथ साथ बारहवीं शताब्दी के अन्त तक दिल्ली में राजनैतिक और व्यापारिक गतिविधि के केन्द्रित हो जाने पर यह बोली, जो तब तक उलझी हुई स्थिति में थी, दिल्ली के आस-पास बोली जाने वाली बोलियों-भाषाओं के सम्पर्क में आयी। चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में दक्षिण में पहुंचने तक यह (भाषा) अपने सुस्पष्ट रूपविधान में विकसित नहीं हो पायी थी। जैसा कि अभिलिखित छुट-पुट मुहावरों और वाक्यांशों से स्पष्ट है, उस समय के धर्मोपदेशकों द्वारा यह शैली बराबर व्यवहार में लायी जाती थी। दक्षिण में यह फूली-फली, क्रमशः बीजापुर और गोलकुण्डा के आदिलशाही और कुतुबशाही राजघरानों के संरक्षण में गद्य और पद्य में ग्रन्थ रचे गये। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक सारे दक्षिण प्रदेश में मुगलों का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। वहाँ पर रचा गया साहित्य दिल्ली तक पहुंचा जहां उन्नीसवीं शताब्दी

के प्रारम्भ तक राजदरबादी और सांस्कृतिक भाषा फ़ारसी रही। फिर भी दक्षिण में रचित इन उर्दू कृतियों से दिल्ली के शायर प्रभावित हुए बिना न रह सके और उन्होंने भी अपने विचार इस भाषा में व्यक्त करने शुरू कर दिये, जो यद्यपि पिछले 500 वर्षों से वहाँ पनप रही थी, फिर भी ऊंचे स्तर के साहित्यिक कृतित्व के योग्य नहीं समझी जाती थी। यहां इस बात का ध्यान रखना होगा कि यद्यपि इस समय तक इस शैली में उत्तर भारत में किन्हीं महत्वपूर्ण कृतियों का पता नहीं चल सका है, फिर भी यह निष्कर्ष तो आसानी से निकाला जा सकता है कि तब तक यह बोली धार्मिक संस्थानों, गली-बाज़ारों और "दरबार" तक में जनसाधारण की भाषा बन चुकी होगी। और यदि ऐसा न होता तो अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिन कवियों ने इस भाषा में अपनी बात कहनी और कविता करनी आरम्भ कर दी थी, उन्हें शासकवर्ग, कुलीनवर्ग, और जनसाधारण का आश्रय प्राप्त न होता, और मुशायरों की परम्परा (जो अबतक लोकप्रिय है) की नींव न पड़ती। इस भाषा में लोगों की रुचि इस हद तक बढ़ी कि "तज़किरात" अर्थात् इस भाषा के शायरों के जीवनचरित संकलित किये जाने लगे। मगर यहां ध्यान देने की बात यह है कि यह भाषा एकाधिक नामों से पहचानी जाने लगी थी। देहलवी (खुसरो मृ० सन् 1325 ई०) हिन्दी, हिन्दवी, रेख्ता, दक्खिनी जबान-ए-उर्दू-ए-मुहल्ला, जबान-ए-उर्दू और उर्दू आदि नामों से इसे पुकारा गया; यूरोपीय लोगों ने इसे एक दूसरा ही नाम दिया। उन्होंने इसे हिन्दुस्तानी अर्थात हिन्दुस्तान की भाषा कहा। उन्नीसवीं शताब्दी के पहले चतुर्थांश तक इस (भाषा) ने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बना लिया था और अन्ततः सन् 1832 ई० में इसने उत्तर भारत में राजदरबारी और प्रशासकीय भाषा के रूप में फ़ारसी का स्थान ग्रहण कर लिया।

मध्यकाल :—

(क) **काव्य :**—दक्खिनी साहित्य मुख्यतः रहस्यवादी है। वर्णनात्मक पद्य रचनाएं सराहनीय हैं। उर्दू पद्य की मुख्य साहित्यिक विधाएं अर्थात् गज़ल, मसनवी और कसीदा सुव्यवस्थित हो चुकी थीं। इनका उत्तरोत्तर विकास किया गया, परवर्ती उत्तरी भारत के शायरों द्वारा भाषा और अधिक बन-संवर गयी। सन् 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद से लेकर सन् 1857 तक उत्तर-भारत में भयानक दुःस्वप्न की तरह राजनैतिक और सामाजिक अस्थिरता बनी रही थी। समस्त जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरकाल के शायरों के लेखन में जिन में दर्द (मृ० 1786), सौदा (मृ० 1781), मीर हसन (मृ० 1786) और मीर (मृ० 1810)

प्रमुख हैं, हमें लाचारी, निराशा, कुण्ठा और "समय के रंग में रंगी अवसादमय भावना" के दर्शन होते हैं। उनके कृतित्व में उपदेशात्मक प्रवृत्ति आसानी से पायी जा सकती है। दिल्ली के अतिरिक्त फ़र्रुखाबाद, टांडा, अज़ीमाबाद, पटना और अवध भी साहित्यिक केन्द्र बन गये थे जहाँ अवध और बाद में रामपुर के शासकों ने उर्दू शायरों को, जो दिल्ली में वातावरण प्रतिकूल होने के कारण वहाँ चले गये थे, राज्याश्रय प्रदान किया। लखनऊ में भाषा के शुद्धिकरण पर बहुत अधिक ज़ोर दिया गया जिससे प्रायः ही वास्तविक कविता की हानि हुई। लेकिन मर्सिया (शोक-गीत) के लेखन में वहाँ जो प्रगति हुई उससे इस नुकसान की पर्याप्त क्षतिपूर्ति हो गयी। विशेषकर मीर अनीस (मृ० 1874) के मर्सियों में महाकाव्य और दुखान्त नाटक के लक्षण आसानी से खोजे जा सकते हैं।

यहां पर नजीर अकबराबादी (मृ० 1830) का विशेष उल्लेख जरूरी है। उन्होंने अपने आप को लखनऊ या दिल्ली-किसी एक शैली-का पाबंद नहीं रखा। स्वतन्त्र कवि के रूप में उनकी कविता में जनसाधारण के जीवन की झलकियां मिलती हैं। उन्होंने बड़े जोश के साथ साधारण आदमी, उसके दुख-सुख, खेल-तमाशे, प्यार-मुहब्बत, भूख और आर्थिक जरूरतों के बारे में लिखा। पेशे से एक मामूली अध्यापक होने के नाते वह सभी धार्मिक सम्प्रदायों के त्यौहारों में सम्मिलित होते थे और उनके बारे में लिखते थे। उर्दू शायरी में देशज तत्व मुहम्मद कुली कुतुब शाह (मृ० 1611) के ज़माने से ही मिलने लगते हैं, लेकिन नजीर अकबराबादी ने, एक तरह से, अपनी पद्य रचनाओं का ताना-बाना ही इन तथ्यों से बुना। उनकी भाषा यद्यपि बहुत परिष्कृत नहीं है लेकिन निस्संदेह इसमें जनता को आकर्षित करने की शक्ति है।

दिल्ली उजाड़ नहीं रह सकती थी। 1857 में पूर्णतः ध्वस्त होने से पहले इसने उर्दू के कुछ महानतम शायर पैदा किये। जौक (मृ० 1854), मोमिन (मृ० 1851) और गालिब (मृ० 1869) इसी ज़माने में हुए। गालिब मानव समस्याओं के प्रति अपनी दार्शनिक प्रवृत्ति, सन्तुलित भाव-बोध, नैराश्य में भी आशावादिता और कलात्मक अभिव्यक्ति के कारण उल्लेखनीय हैं।

(ख) गद्य:—

दक्षिण में कई गद्य-पुस्तकें लिखी गयीं। इनमें से लगभग सभी की प्रकृति धार्मिक है। "सब रस" अथवा मुल्ला वजही रचित "दिल और सौंदर्य की कहानी" (मृ० 1635) की गणना अब भी उर्दू गद्य की उत्कृष्टतम

प्रतीक-कथाओं अथवा लाक्षणिक कृतियों में की जाती है । अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक इस भाषा का महत्व यूरोपीय लोगों की समझ में आगया था । ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी इस बात को समझा और 1800 ई० में कलकत्ते में फोर्ट विलयम कॉलिज की स्थापना की । शोध-प्रबन्ध आदि लिखने के लिए सुप्रसिद्ध विद्वानों की सेवाएं अर्जित की गयीं ताकि कम्पनी के औहदेदार इस भाषा को सीख सकें । फ़ोर्ट विलियम कॉलिज के लेखकों ने उर्दू गद्य के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया । मीर अम्मान की "बाग-ओ-बहार" या "चहार दर्वेश" (चार भिक्षुओं की कहानी-1903) जो कॉलिज के प्रधानाचार्य डॉक्टर जॉन गिलक्राइस्ट के अनुरोध पर सरल शैली में लिखी गयी, अब तक लोकप्रिय बनी हुई है । यह राजाओं, रानियों और परियों की कहानी है किन्तु जो सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि यह हमारे सामने उपस्थित करती है, चारित्रिक-दृष्टि से वह पूर्णतः भारतीय है ।...गालिब द्वारा अपने दोस्तों और शिष्यों को लिखे गये पत्र अधिकतर सरल भाषा में लिखे गये थे । इनमें सामाजिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है । गालिब की शैली अब तक अनकुरणीय न बन सकी । दिल्ली कॉलिज देशी भाषा अनुवाद परिषद ने, जिसकी स्थापना उन्नीसवीं शताब्दी के पांचवे दशक में हुई, कानून, गणित, भौतिक विज्ञान आदि विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित करके वैज्ञानिक गद्य के विकास के लिए मार्ग प्रशस्त किया । सर सैयद अहमद खां, हाली, आजाद, नजीर अहमद और दिल्ली कॉलिज के अन्य विद्यार्थी आगे चलकर आधुनिक उर्दू गद्य के निर्माण में पथ-प्रदर्शक सिद्ध हुए । लेकिन आधुनिक उर्दू साहित्य की व्याख्या करने से पहले हम यहां पर यह बता दें कि मध्य-कालीन उर्दू साहित्य का मुख्य स्वर "व्यापक मानवतावाद, मनुष्य के नैतिक और चारित्रिक उत्थान तथा मनुष्य जाति की एकता पर बल देने का रहा है ।"

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रसार और संगठन के साथ-साथ उर्दू साहित्य का आधुनिक काल प्रारम्भ होता है । इस दौर से पश्चिमी विचारधारा, अंग्रेज़ी साहित्य और आधुनिक वैज्ञानिक विद्याओं से भारतीयों का साक्षात्कार होता है । इसका असर भारतीय विचारशील मस्तिष्क पर पड़ता है । इसके अतिरिक्त एक नयी सामाजिक श्रेणी अर्थात् मध्यवर्ग का विकास होता है और उसे तुरन्त समयानुसार समाजसुधार की आवश्यकता महसूस होती है । सर सैयद और उनके साथियों—हाली, नज़ीर अहमद, शिबली आदि—ने हिन्दुस्तानियों को पश्चिमी विचारधारा और आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतियों से अवगत कराने की भरसक चेष्टा की । उनका विश्वास था कि

भारतवासियों का उद्धार इसी में निहित है। उन्होंने इस बात को समझा कि साहित्य के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन सम्भव है, और उन्होंने साहित्य को इसी उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया। सर सैयद की धार्मिक मान्यताओं और इस्लाम के पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ लिखा गया जिससे उर्दू गद्य को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला।

नज़ीर अहमद (मृ० 1911) ने समाज-सुधार और धर्म के सम्बन्ध में अपने विचारों को अभिव्यक्ति देने की दृष्टि से अनेक उपन्यास लिखे जिनकी विषयवस्तु मुसलमान मध्यवर्गीय परिवारों में चल रहे सामाजिक द्वन्द्व पर आधारित है। शिबली (मृ० 1914) शायर और साहित्यिक आलोचक होने के अतिरिक्त इस्लाम के वीरपुरुषों की जीवनियां लिखने के लिए प्रसिद्ध हुए। हाली (मृ० 1914) और मुहम्मद हुसैन आजाद (मृ० 1910) ने आधुनिक उर्दू काव्य की नींव डाली। दोनों ही बड़े लेखक भी थे। इस संदर्भ में आज़ाद का उल्लेख विशेषतः आवश्यक है जिन्हें अतीत से रोमानी लगाव था। उनकी कविसुलभ काल्पनिक संवेदनशीलता यद्यपि उन्हें एक आदर्श गद्य-लेखक के रूप में स्थापित नहीं करती, फिर भी वह गद्य शैली के महानतम उस्ताद थे। हाली की लम्बी कविता "इस्लाम का चढ़ाव और उतार" अपने समय की छोटी-सी उत्कृष्ट कलाकृति थी।

समय बीतने के साथ-साथ पश्चिमी साहित्य-विधाओं का प्रभाव और अधिक बढ़ता गया। रतननाथ शरसार, अब्दुल हलीम शरर और मिर्ज़ा रुसवा इस दौर के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। रुसवा की 'उमराव जान अदा' लखनऊ की एक तवायफ़ द्वारा खरीदी गयी एक अपहृत लड़की के जीवन का विश्लेषण है। इसमें हमें उन्नीसवीं शताब्दी की ऐसी रियासतों से सम्बद्ध उथल-पुथल और पतन की तस्वीर मिलती है, उस समय की विभिन्न सामाजिक श्रेणियों से जुड़े हुए लोगों के सुनिर्मित चरित्र-चित्र मिलते हैं।

एक बड़े विद्वान् और ब्रिटिश राज्य कर्मचारी, अकबर इलाहाबादी (मृ० 1921) अद्वितीय उर्दू शायर थे। उनका नाम विशेषतः पश्चिमी जीवन-पद्धति के नक़लचियों की हास्य-व्यंग्य प्रधान कविता द्वारा कटु आलोचना के लिए प्रसिद्ध है।

अतीत का गुणगान, समाज-सुधार के लिए उमंग और स्वतन्त्रता के लिए जन-आन्दोलन की बढ़ती हुई जानकारी से इस शताब्दी की पहली चौथाई के उर्दू लेखक प्रभावित हुए। उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त चकबस्त (मृ० 1926) और इक़बाल (मृ० 1938) ने इस संदर्भ में विशेष योगदान दिया। काव्य में दार्शनिक तत्व, विश्वव्यापी दृष्टिकोण और उनकी काव्यात्मक

कल्पना-शक्ति और जोरदार अभिव्यक्ति ने उन्हें भारत में जन्म लेने वाले श्रेठतम कवियों में से एक बना दिया।

तेज़ी से चल रहे स्वातन्त्र्य संग्राम से सम्बन्धित जनता की भावनाओं को चित्रित करने से उर्दू लेखक कतराये नहीं। शायरी में जोश मलीहाबादी, जो पहले 'नौजवानों के शायर' कहलाते थे, अब 'शायर-ए-इन्क़िलाब के' नाम से पुकारे जाने लगे। उन्होंने युवकों को क्रिया-क्षेत्र के लिए प्रेरित किया।

पत्रकारिता में ज़फ़र अली खां, मौलाना मुहम्मद अली (मृ० 1930) और अबुल कलाम आज़ाद (मृ० 1958) ने दिशा-निर्देश किया। अबुलकलाम आज़ाद आलंकारिक भाषा का प्रयोग करते थे, फिर भी उनके द्वारा सम्पादित पत्र 'अलहिलाल' अत्यधिक लोकप्रिय था।

कथासाहित्य में कहानी-कला का परम्परागत रूपविधान (दास्तान) पहले ही टूट चुका था। उसकी जगह 'छोटी कहानी' अर्थात् लघु कथा ने ले ली। प्रेमचंद (मृ० 1936) इस विधा के प्रमुख लेखक थे। उनकी कृतियां (उपन्यास और लघुकथाएं) मुख्य रूप से मानवतावाद और भारतवर्ष की गरीब ग्रामीण जनता के प्रति उनकी सहानुभूति के लिए उल्लेख्य है।

इस शताब्दी के चौथे दशक में एक नया साहित्यिक आन्दोलन—प्रगतिवादी आन्दोलन चला। मोटे तौर पर कहें तो प्रगतिशील लेखकों ने साहित्य को सामाजिक क्रांति का माध्यम बनाना चाहा। उस काल की कुछ कामुकता-प्रधान कृतियों की कटु आलोचना हुई। फिर भी मार्क्स, फ्रायड और मोपासाँ के प्रभाव से एक नयी ही साहित्यिक प्रवृत्ति की नींव पड़ी। लघुकथा विधा को इससे बहुत लाभ हुआ। सज्जाद ज़हीर, अहमद अली, कृष्नचन्द्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, राजेन्द्रसिंह बेदी, इस्मत चुग़ताई और अन्यान्य इसी प्रगतिशील गुट के लेखक हैं।

प्रख्यात उपन्यास-लेखिका इस्मत चुग़ताई चरित्र-चित्रण के लिए प्रसिद्ध हैं। मुस्लिम मध्यवर्ग के सामाजिक जीवन का उनका ज्ञान, भाषा पर अधिकार और अपने कथा-शिल्प द्वारा उन्होंने उर्दू के प्रतिष्ठित-लेखकों में अपना स्थान बना लिया है।

कुछ कथाकारों ने 'चेतनाप्रवाह-प्रधान' कथाशिल्प का उपयोग भी किया। ऐसे कथाकारों में लेखिका कुर्रतुलऐन हैदर सर्व प्रमुख हैं। उनके बृहद उपन्यास "आग का दरिया" को पढ़ने से इस कथाविधा पर उनके अधिकार का आभास मिलता है।

नाटक और निबन्ध अन्य साहित्यिक विधाएँ हैं जो पश्चिमी साहित्य से सीधे साक्षात्कार के फलस्वरूप विकसित हुईं। राष्ट्रीय रंगमंच को सार्थक

रूप देने की योजनाओं और विभिन्न अव्यवसायी नाटक-मण्डलों, शिक्षण संस्थाओं और आकाशवाणी द्वारा नाट्यकला में बढ़ती हुई रुचि को देखकर आशा की जाती है कि नाट्य-लेखन को विशेष प्रोत्साहन मिलेगा।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से जब कि निबन्ध-लेखन की शुरुआत हुई, उर्दू ने बहुत से निबन्धकार पैदा किए। सर सैयद, मुहम्मद हुसेन आज़ाद, हाली और जका उल्लाह ने अच्छे निबन्ध लिखे। समकालीन निबन्धकारों में सबसे विशिष्ट निबन्धकार के रूप में आबिद हुसैन का नाम आसानी से लिया जा सकता है। उन्होंने हलकी-फुलकी विनोद-प्रधान शैली में भी लिखा है। किन्तु उनका नाम लेखन में वस्तुपरकता, ठोसपन, विवेकपूर्ण दृष्टि और उपयुक्त भाषा के प्रयोग के लिए खासतौर पर लिया जाता है।

जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में कहें तो "आज का भारत आशा और मनोव्यथा, असाधारण प्रगति और जड़ता, नवचेतना से ओतः प्रोत और साथ ही कतिपय लोगों के विशेषाधिकारों और मृत अतीत के शिकंजे में जकड़ा हुआ और बढ़ती हुई सर्वजनीन एकता एवं अनेक विघटनकारी प्रवृत्तियों के मौजूद होने की उलझी हुई तस्वीर उपस्थित करता है।" उर्दू साहित्य ने हमेशा समय-समय पर बदलते हुए भारतीय परिदृश्य का प्रतिनिधित्व किया है। समकालीन उर्दू साहित्य में भी आज के भारत की वास्तविक झलकियां मिलती हैं।

नन्हीं की नानी

•

इस्मत चुग़ताई

नन्हीं की नानी के मां बाप का नाम तो अल्लाह जाने क्या था, लोगों ने भी उन्हें इस नाम से याद नहीं किया। जब छोटी थी गलियों में नाक सुड़सुड़ाती फिरती थी तो वफातन की लौंडिया के नाम से पुकारी गई। फिर कुछ दिन वशीरे की बहू कहलाने लगी; फिर बिस्मिल्ला की माँ की पदवी से याद की जाने लगी और फिर जब बिस्मिल्ला छह महीने के भीतर ही नन्हीं को छोड़ कर चल बसी तो वह नन्हीं की नानी के नाम से अन्तिम दिनों तक पहचानी गई।

संसार का कोई ऐसा धन्धा न था जो नन्हीं की नानी ने अपने जीवन में स्वीकार न किया हो। कटोरा गिलास पकड़ने की आयु से वह तेरे मेरे घर में दोनों समय की रोटी और पुराने कपड़ों के बदले ऊपर के काम पर धर ली गई। यह ऊपर का काम कितना नीचा होता है यह कुछ खेलने-कूदने की आयु से काम में जोत दिये जाने वाले ही जानते हैं। नन्हें मियाँ के आगे भुनभुना बजाने की नीरस चाकरी से लेकर बड़े सरकार की मालिश तक ऊपर के काम की सूची में आ जाते हैं।

जीवन की भाग दौड़ में कुछ जलना भुलसना भी आ गया। जीवन के कई वर्ष मामागीरी में बीत गए पर जब दाल में छिपकली वधारी और रोटियों में मक्खियाँ पड़ने लगी तो विवश होकर सेवा निवृत्त होना पड़ा। इस के बाद तो नन्हीं की नानी बस लगाई बुझाई करने, इधर की उधर पहुंचाने के अलावा और किसी काम की न रह गई। लगाई-बुझाई का धन्धा भी बड़ा लाभप्रद होता है। मुहल्ले में खटपट होती रहती है। अगर विरोधी कैम्प में जाकर चतुरता के साथ कानाफूँसी की जाय तो बड़ा मान दान होता है; परन्तु यह धन्धा कितने दिन चलता। नानी लगाने-बुझाने वाली कहलाने

लगी और दाल गलती न पाकर नानी ने आखिरी और ज्यादा से ज्यादा फायदे का धन्धा सभ्यता पूर्वक भीख माँगना आरम्भ कर दिया। खाने के समय नानी नाक फैला कर सूँघती कि किस घर में क्या पका है। सब से अच्छी डोर पकड़ कर घर में आ बैठती। "ए बीबी घुइयां डाली हैं मांस में" वह निःसंकोच पूछती। "नहीं बीबी घुइयां निगोड़ी आजकल गलती कहाँ है, आलू डाले हैं। अल्ला जाने कैसी सुगन्ध है। अल्ला रक्खे बिस्मिल्ला के बाबा को आलुओं से बड़ा प्रेम था और बिस्मिल्ला की माँ को जब देखो आलू गोश, जब देखो आलु गोश (गोश्त)। अब तो महीना बीत जाय जो आलू गोश आँखों से भी देखा जाय—ए बहिन, कोथम्बर छोड़ दिया।" वह एक दम चिन्तित होकर कहती।"

"नहीं बुवा कोथम्बर निगोड़ा सब मारा गया, मुवा भिश्ती का कुत्ता कियारी में लोट गया।"

"है है, बिना कोथम्बर के भला गोश (गोश्त) क्या मजा देगा, हकीमजी के यहाँ मनों लगा है।"

"ए बहिन नहां" नानी हकीम जी के लौंडे ने कल शिब्बन मियाँ की पतंग में कुटकी लगा दी इस पर मैंने कहा 'खबरदार' जो छज्जे पर पाँव रक्खा तो——

'ए मैं कोई तुम्हारे नाम से थोड़े ही माँगूंगी'

नानी बुर्का सँभाल सिलीपरें सटपटाती हकीम जी के घर जा पहुंची। धूप खाने के बहाने खिसकती खिसकती कियारी के पास मुंडेर तक पहुंच गई। पहले एक पत्ती सूंघने के बहाने चुटकी में मसली, हकीम जी की बहू की आंख बची और मारा नानी ने कोथम्बर पर एक बकोटा, कोथम्बर ला देने के बाद दो कौर की अधिकारिणी तो हो ही गईं।

नानी अपने हाथ की सफाई के लिए मोहल्ले में मानी हुई थीं। खाने-पीने की चीज देखी और एक दो कौर सटक लिए। बच्चे के दूध की पतीली मुंह से लगाई और दो घूंट सटक लिये, शक्कर की फंकी मारी, गुड़ की डली तालू से चिपका ली, मज़े से धूप में बैठी चूस रही हैं, डली उठाई नेफे में उँड़ेल ली, दो चपातियां लीं, एक नेफे के इधर एक उधर, धीरे धीरे स्वभाववश कराहती काँपती खिसक गईं। सब जानते थे पर किसी को मुंह खोलने का साहस न होता था क्योंकि नानी के बूढ़े हाथों में बिजली की सी तेजी थी और वे दवाएँ निगल जाने को कुछ बुरा न समझती थीं, दूसरे ज़रा सी बात पर वह फैल मचाने पर तुल जाती थीं और इतनी सौगन्ध खाती थीं कि

कुरान उठाने की धमकियां देने लगतीं बस यह समझो कि तौबा भली अब कौन ऐसे से कुरान उठवा कर अपनी कब्र में भी कीड़े पड़वाए।

लड़ाका, चोर और बात बनाने वाली होने के अलावा नानी परले सिरे की झूठी भी थी। सबसे बड़ा झूठ तो उनका वह बुरका था जो हरदम उनके ऊपर सवार रहता था। कभी उसमें नकाब (घूंघट) भी था पर ज्यो ज्यों मौहल्ले के बड़े बूढ़े चल बसे या आधे अन्धे हो गये तो नानी ने इस नकाब को चलता कर दिया मगर कँगूरे वाली फैशनेबल बुरके की टोपी उनकी खोपड़ी पर चिपकी रहती थी। आगे चाहे महीन कुर्ते के नीचे बनियान न हो कर पीछे बुरका बादशाहों की झूल की तरह लहराता रहता और यह बुरक़ा केवल सर ढांपने के लिए ही नहीं था बल्कि दुनियां का हर सम्भव और असम्भव काम इसी से लिया जाता था, औढ़ने बिछाने और गुढ़ी मुढ़ी करके तकिया बनाने के अलावा जब नानी कभी सर से नहाती तो इसे तौलिया की तरह प्रयोग करती थी। पाँच वक्त की नमाज़ के लिए जानमाज़ (जो कपड़ा नमाज़ के समय आगे रखा जाता है) और जब मौहल्ले के कुत्ते भौंके तो उन से बचाव के लिए अच्छी खासी ढाल। कुत्ता पिंडली पर लपका और नानी के बुरके का घेरा उसके मुंह पर पड़ा। नानी को बुरका बहुत प्यारा था। सावधानी के समय बैठ कर बहुत करुण भाव से उसके बुढ़ापे पर बिसूरा करती थीं। जहां कोई भद्दी कत्तर मिली वहीं उसे चिपका लिया। वह उस दिन के विचार से काँप उठती थी जब यह बुरका भी चल बसेगा। आठ गज लट्ठा कफ़न को जुड़ जाए यही बहुत जानो।

नानी का कोई स्थायी हैड-क्वार्टर नहीं था, सिपाही जैसा जीवन आज उसके दालान में तो कल इसके आँगन में। जहाँ जगह मिली पड़ाव डाल दिया, जब दुतकार पड़ी कूच करके आगे चल पड़ी। आधा बुरका ओढ़ा और आधा बिछाया, लम्बी तान ली।

मगर बुरक़े से भी अधिक वह जिसकी चिन्ता में घुलती थी, वह थी उनकी इकलौती धेवती। कुड़क मुर्गी की तरह नानी पर फैलाये उसे पंखों के नीचे दाबे रहतीं, क्या मजाल जो आँख से ओझल हो जाए। परन्तु जब हाथ पैरों ने जवाब दे दिया और मौहल्ले वाले चौकन्ने हो गये। उनकी जूतियों की घिसन सुन कर ही सावधान होकर मोर्चे पर डट जाते। नानी संकेत से जो कुछ माँगती उसे सुना-अनसुना कर देते। अब नानी को इसके अतिरिक्त कोई और उपाय न रहा कि नन्हीं को उसके पारिवारिक धन्धे, ऊपर के काम में लगा दें। बड़े सोच विचार के बाद उन्होंने उसे डिप्टी साहब के यहाँ रोटी-कपड़ा और डेढ़ रुपया महीने पर छोड़ ही दिया पर वह हर दम परछाईं की

तरह साथ लगी रहतीं। नन्हीं ज़रा आंखों से ओझल हुई और वह बिल-बिलायीं, पर भाग्य का लिखा कहीं बूढ़े हाथों से मिटा है। दोपहर का समय था, डिप्टियाइन अपने भाई के घर बेटे का सन्देश लेकर गई हुई थीं। सरकर ख़स की टट्टी वाले कमरे में खाने के बाद आराम कर रहे थे। नन्हीं पंखे की डोरी थामे ऊंघ रही थी। पंखा रुक गया और सरकार की नींद टूट गयी। शैतान जाग उठा और नन्हीं का भाग्य सो गया।

कहते हैं कि बुढ़ापे के भूत से बचने के लिए हकीम वैद्य बहुत सी औषधियों और कुश्तों के साथ, मुर्गियों के बच्चों के मांस से तैयार किया गया सूप भी बताते हैं। नौ बरस की बच्ची नन्हीं मुर्गी तो थी ही।

जब नन्हीं की नानी की आंख खुली तो नन्हीं लोप हो चुकी थी। मौहल्ला भर छान मारा, मगर कोई पता न चला। हाँ, जब रात को नानी थकी माँदी कोठरी को लौटी तो कोने में दीवार से लगी हुई एक घायल चिड़िया की तरह भीगी-भीगी आँखों से घूर रही थी। नानी की घिग्घी बंध गई और अपनी दुर्बलता को छुपाने के लिए वह उसे गालियाँ देने लगीं "मालज़ादी ! यहां आन कर मरी है। ढूँढते-ढूँढते पिंडलियां सूज गयीं। ठहर तो जा सरकार से कैसी चार चोट की मार लगवाती हूँ।" परन्तु नन्हीं की चोट बहुत देर तक न छुप सकी। नानी सर पर दुहत्थड़ मार कर चिंघाड़ने लगीं। पड़ौसिन ने सुना तो सिर पकड़ कर रह गयीं। अगर किसी लड़के की हरकत होती तो कुछ डाँट डपट की जाती, मगर डिप्टी साहब······। मौहल्ले के मुखिया, तीन धेवतों के नाना, पाँचों समय नमाज़ पढ़ने वाले। अभी पिछले दिनों मस्जिद में चटाइयां और लोटे रखवाये थे। मुँह से फूटने वाली बात नहीं। लोगों की दया और करुणा की सुभावित नानी ने आँसू पीकर नन्हीं की कमर सेंकी। आटे और गुड़ का हलुवा खिलाया और अपनी जान पर सन्तोष कर के बैठ रही। दो चार दिन लोट पोट कर नन्हीं उठ खड़ी हुई और कुछ दिनों में सब कुछ भूल भाल गई; परन्तु मौहल्ले की कुलवधुएं नहीं भूलीं वह छिप-छिप कर नन्हीं को बुलातीं।

'नन्हीं······नानी मारेगी' नन्हीं यह कह कर टाल देती 'ले यह चूड़ियाँ पहन ले, नानी क्या जानेगी; बीबियाँ अधीर हो कर फुसलाती' क्या हुआ कैसे हुआ की व्याख्या पूछी जाती। नन्हीं कई-कई साधारण व्याख्याएं करती। बीबियाँ नाकों पर दुपट्टे रख कर खिलखिलातीं। नन्हीं तो भूल गई परन्तु प्रकृति न भूल सकी। कच्ची कली को समय से पहले तोड़ने पर सुखलाने से पंखड़ियाँ झड़ जाती हैं ठूँठ रह जाता है। नन्हीं के मुखड़े पर से भी न जाने कितनी निर्दोष पँखड़ियां झड़ गईं; मुँह पर फिटकार और रूखापन, नन्हीं बच्ची

से लड़की नहीं फलाँग मार कर एक दम स्त्री बन गई। वह प्रकृति के हाथ की सँवारी हुई स्त्री नहीं वरन् ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी स्त्री थी, जिस पर किसी निशाचर ने दो गज़ लम्बा पाँव रख दिया हो। ठगी हुई कचूरा सी, जैसे कच्ची भट्टी का खिलौना कुम्हार के घुटने तले दब गया हो।

मैले अंगोंछे से कोई नाक पोंछे या कूल्हे, कौन पूछता है। राह चलते उस की चुटकियाँ भरते। मिठाई के दोनों पर नन्हीं की आंखों में जैसे शैतान भड़क उठता परन्तु अब नानी उसे हलवे पराठे ठुसाने के बदले उस का धोबीघाट करती पर मैले अंगोछे की धूल कभी न झड़ती। जैसे रबड़ की गेंद, टप्पा खाया और उछल गई।

थोड़े वर्षों में नन्हीं की चौमुखी से मुहल्ला काँप उठा। सुना कि डिप्टी साहब और उनके सुपुत्र में ठन गई। फिर सुना मस्जिद के मुल्ला जी को रजवा कहार ने मारते मारते छोड़ा। फिर सुना सिद्दीक़ पहलवान का भाई स्थायी हो गया। आए दिन नन्हीं की नाक कूटते कटते बचती और गलियों में लट पोंगा होता। और फिर नन्हीं के तलवे जलने लगे। पाँव धरने की रत्ती भर जगह न रही। सिद्दीक पहलवान की पहलवानी और नन्हीं की जवानी ने मुहल्ले वालों की नाक में दम कर दिया सुनते हैं। दिल्ली बम्बई में इस माल की थोक में खपत है। शायद दोनों वहीं चले गए।

जिस दिन नन्हीं भागी उस दिन नानी के तो फरिश्तों को भी पता न चला। वह तीन दिन से निगोड़ी चुपचाप सी थी, नानी ने ज़बान भी न चलाई थी, चुपचाप आप ही आप बैठी हवा में घूरा करती।

'ए नन्हीं रोटी खा ले' नानी कहती।

'नानी भूख नहीं है'

'नन्हीं अब देर हो गई, सो जा'

'नानी जी नींद नहीं आती'

रात को नानी के पाँव दबाने लगी।

'नानी जी······ए नानी जी' सुबहात अल्लाह' सुन लो याद है कि नहीं।" नानी ने सुना फ़र-फ़र याद ?

'जा बेटी अब सो जा' नानी ने करवट ले ली।

'अरे मरती क्यों नहीं, नानी ने थोड़ी देर बाद उसे आँगन में खटपट करते सुन कर कहा। समझी कि खानगी (घर में रह कर बदचलनी करने वाली) ने अब आँगन भी दूषित करना आरम्भ कर दिया। कौन हरामी है जिसे आज घर में घुसा लाई है। फिर आँगन में देख कर नानी ठिठक कर रह गई। नन्हीं रात की नमाज पढ़ रही थी। और सबेरे नन्हीं गुम हो गई। कभी

कोई दूर देश से आता है तो सूचना मिल जाती है। कोई कहता है नन्हीं को बड़े नवाब साहब ने डाल लिया है, टमटम है, मनों सोना है, बेगमों की तरह रहती है। कोई कहता है हीरा मण्डी में देखा था। कोई कहता है फ़ोरास रोड पर किसी ने उसे सोना गाची में देखा था परन्तु नानी कहती है कि नन्हीं को हैजा हुआ था चार घड़ी लोट पोट कर मर गई। नन्हीं का सोग मनाने के बाद नानी कुछ पागल सी हो गई। लोग राह चलते छेड़कानी करते।

'ए नानी निकाह कर लो' भाभीजान छेड़तीं।

'किस से कर लूँ। ला अपने ख़सम से करा दे, नानीजान बिगड़ती।

'ए नानी मुल्ला जी से कर लो। अल्लाह क़सम तुम पर जान देते हैं और फिर नानी बाही तबाही बकने लगती। वह ऐसी-ऐसी गालियाँ निकालती कि लोग भौचक्के रह जाते।

'मिल तो जाय भड़वा, डाढ़ी न उखाड़ लूँ तो कहना' परन्तु जब कभी मुल्ला जी गली के नुक्कड़ पर मिल जाते तो नानी लजा सी जाती।

लड़कों वालों के अतिरिक्त असली बैरी तो निगोड़े बन्दर थे, जो पीढ़ियों से इस मुहल्ले में पलते बढ़ते आए थे; जो हर पुरुष को कच्चा खाना जानते थे। पुरुष तो फिर भयानक होते हैं और बच्चे शैतान होते ही हैं परन्तु स्त्रियाँ तो बड़ी डरपोक होती हैं। पर नानी जी इन्हीं बन्दरों में पल कर बुढ़ियाई थी। उन्होंने बन्दरों को डराने के लिये किसी बच्चे की गुलेल संभाली थी। सिर पर बुर्के का पग्गड़ बांध कर गुलेल तान कर जब उचकती तो बन्दर थोड़ी देर को चकित अवश्य रह जाते और वे बेपरवाही से टहलने लगते और बन्दरों से उन से आए दिन सूखे टुकड़ों पर चख़-चख़ चलती रहती। मुहल्ले में जहाँ कहीं शादी ब्याह या चालीसवाँ होता, नानी भूठे टुकड़ों का ठेका ले लेतीं। लंगर ख़ैरात बँटती तो भी झाँसा देकर चार चार बार हिस्सा ले लेतीं। मानों खाना बटोर लाने के बाद वह अभिलाषा से तकती क्यों न ऐसा हुआ कि अल्लाह पाक ने कुछ ऊँट जैसा प्रबन्ध किया होता तो कितने मज़े रहते। मज़े से चार दिन का भोजन पेट में भर लेतीं मगर अल्लाह पाक ने भोजन का इतना उटपटाँग प्रबन्ध करने के बाद पेट की नसें इतनी भद्दी बना डालीं कि एक दो समय के खाने से अधिक भण्डार जमा करने का ठौर ठिकाना नहीं। इसीलिए नानी टाट की बोरियों पर जूठे टुकड़े फैला कर सुखातीं फिर उन्हें मटकों में भर लेतीं, जब भूख लगे जरा से सूखे टुकड़े निकाले, पानी का छींटा दिया, चुटकी भर नमक मिर्च बुरका और मज़ेदार पकवान तैयार हो गया। परन्तु गर्मियों और वर्षा के दिनों में कई बार यह नुस्खा उनके लिए हैज़ा ला

चुका था, इसलिए जब यह टुकड़े बुस जाते तो वह अनमने दिल से इन टुकड़ों को औने-पौने बेच डालती ताकि लोग अपने कुत्तों और बकरियों आदि को खिला दें। परन्तु साधारण रूप से कुत्ते और बकरियों के पेट नानी के ढीट पेट की होड़ न कर पाते। लोग मोल तो क्या मुफ़्त भी उनको लेने को तैयार न होते। वह जान से प्यारे जूठे टुकड़े जिन्हें बटोरने के लिए नानी को हज़ारों बातें और ठोकरें सहनी पड़ती थीं और जिन्हें धूप में सुखाने के लिए उन्हें पूरी बन्दर जाति से संग्राम करना पड़ता था। जहाँ टुकड़े फैलाये गये और बन्दरों के परिवारों को जैसे तार से समाचार पहुँचा। अब क्या है झुण्ड के झुड दीवारों पर डटे बैठे हैं। खपरैलों पर घमा-चौकड़ी मचा रहे हैं, छप्पर खसोट रहे हैं और आते जाते पर खोखिया रहे हैं। नानी भी इस समय योद्धा पुरुष बनी सिर पर बुरके का ढाटा बाँधे हाथ में गुलेल लिए मोर्चे पर डट जातीं। सारे दिन लगे, लगे, करके शाम को बचा-खुचा कूड़ बटोर बंदरों की जान को कोसतीं। नानी अपनी कोठरी में थक कर सो रहतीं।

बन्दरों को जैसे उनसे कुछ व्यक्तिगत वैमनस्य हो गया था। अगर यह बात न होती तो क्यों दुनियाँ भर के व्यंजनों को छोड़ कर केवल नानी के टुकड़ों पर ही हमला कर देते और क्यों बदमाश लाल-पिछाड़ी वाला उन्हीं का प्राणों से प्यारा तकिया ले भागता। वह तकिया जो नन्हीं के बाद नानी का अकेला सम्बन्धी और प्यारा संसार में बच रह गया था। वह तकिया जो बुरके के साथ उनके प्राणों पर सदा सवार रहता था। जिसकी सीवनों को वह सदा टांका मारती रहती थीं। बहुधा वह किसी कौने-खुपरे में बैठी तकिये से ऐसे खेला करतीं जैसे वह नन्हीं से खेली रही हैं। और वह तकिया उनकी गुड़िया। वह अपने सारे दु:ख उस तकिये ही से कहकर जी हल्का कर लिया करती थीं। जितना जितना उन्हें तकिये पर लाड़ आता, वह उसके टक्के पक्के करती जातीं।

भाग्य का चक्र देखिए नानी मुँढेर से लगी बुरके की आड़ में नेफे से जुँएं चुन रहीं थीं कि बन्दर धम से कूदा और तकिया ले कर यह जा वह जा। ऐसा लगा कि जैसे कोई नानी का कलेजा दबोच कर ले गया हो, वह ठाड़ मार मार कर रोने लगीं और ऐसी चिल्लायीं कि सारा मोहल्ला इकट्ठा हो गया।

बन्दरों का यह नियम है कि आँख बची और कटोरा, गिलास ले भागे और छज्जे पर बैठे दोनों हाथों से कटोरा दीवार पर घिस रहे हैं। कटोरे का मालिक नीचे खड़ा चुमकार रहा है। प्याज़ और रोटी दी, जब बन्दर मियाँ का पेट भर गया कटोरा फैंक अपनी राह ली। नानी ने मटकी भर टुकड़े

लुटा दिये पर बदमाश बन्दर ने तकिया न छोड़ना था, न छोड़ा। सौ प्रयत्न किये गये परन्तु उसका जी न पिघला और उसने मज़े से तकिये के गिलाफ को प्याज के छिल्के की तरह् उतारना आरम्भ कर दिया। वह गिलाफ जिसे नानी ने चुंधी आँखों से घुट घुट कर पक्के टाँकों से गूथा था। जैसे जैसे गिलाफ उतरता जाता नानी की बौखलाहट और बिलबिलाहट भी बढ़ती जाती। जब अन्तिम गिलाफ़ भी उतर गया तो बन्दर ने एक एक करके छज्जे पर से टपकाना आरम्भ किया, रूई के गाले नहीं, शिब्बन की फतुई, बब्बू भिश्ती का अंगौछा, हसीना बीबी की अँगिया, मुन्नी की गुड़िया का गरारा, सुमत की ओढ़नी और खैराती का कच्छा, चरन के लौंडे का तमंचा, मुंशी जी का मफलर, इब्राहीम के कमीज़ की कफ़ सहित आस्तीन सिद्दीक की तहमद का टुकड़ा, आमिना बी की सुरमेदानी, वफ़ातीन की कजरोटी, सकिना बी की डिबिया, मुल्ला जी की तस्बीह् का इमाम, पाकर मियां के सिज्दे का कपड़ा, बिस्मिल्लाह् का सूखा हुआ माल और कलावे में बंधी हुई नन्हीं की पहली सालगिरह् की हल्दी की गाँठ, दूब और चाँदी का छल्ला और बशीर खाँ का गिलट का तमगा जो उसे लड़ाई से जीवित लौट आने पर बड़ी सरकार से मिला था, परन्तु किसी ने इन चीजों को न देखा बस देखा तो उस चोरी के माल को जिसे बरसों की छापामारी के बाद नानी ने जोड़ रखा था। "चोर-बेईमान-कमीनी।"

"निकालो बुढ़िया को मोहल्ले से"। "पुलिस में दे दो"

"अरे इसकी तोशक भी खोलो। उसमें न जाने क्या क्या होगा"। मतलब यह कि जो जिसके मुंह में आया कह गया।

नानी की चीखें एकदम रुक गईं। आँसू सूख गये। सिर नीचा हो गया, जुबान चुप हो गई। काटो तो बदन में लहू नहीं। रात भर ज्यों की त्यों दोनों घुटने मुठ्ठियों में दावे हिल हिल कर सूखी सूखी हिचकियाँ लेती रहीं। कभी अपने माँ बाप का नाम लेकर, कभी अपने पति को याद करके, कभी कभी बिस्मिल्लाह और नन्हीं को पुकार कर आहें भरतीं। दम भर को ऊंघ जातीं; फिर जैसे पुराने नासूरों में च्यूटे चलने लगते और वह बिलबिला कर चौंक उठतीं। कमी बहकी बहकी बातें, कभी अपने आपसे बात करने लगतीं फिर आप ही आप मुस्कुरा उठतीं और फिर जैसे अँधेरे में से कोई पुरानी याद का भाला खेंच मारता और वह रोगी कुत्ते की तरह आधी मानुषिक आवाज से सारे मोहल्ले को चौंका देतीं। दो दिन इसी दशा में बीत गये। मोहल्ले वालों को धीरे धीरे लज्जा सी आने लगी। किसी को भी तो इन वस्तुओं की विशेष आवश्यकता न थी। बरसों की खोई चीजों को कभी का रो

पीट कर भूल चुके थे। वे बेचारे स्वयं कौन से लखपती थे। तिनके का बोझ ही ऐसे समय पर मनुष्य को शहतीर की तरह लगता है। लोग इन चीजों के बिना जीवित थे। शिब्बन की फतुई अब जाड़ों से टक्कर लेने योग्य कहाँ थी, वह इसके मिलने की प्रतीक्षा में अपनी ठोड़ी टोक बैठा था। हसीना बी ने अँगिया चोली के महत्व को बेकार समझ कर उसे छोड़ ही दिया था। मुन्नी बी की गुड़िया का गरारा किस मतलब का, वह तो कभी भी गुड़ियों की आयु से गुज़र कर बंद कलियों की आयु को पहुंच चुकी थी। मौहल्ले वाले नानी की जान न लेना चाहते थे।

पुराने समय में एक राक्षस था, उसकी जान थी एक भौंरे में। जो सात पार एक सन्दूक में था। उस सन्दूक में एक डिबिया थी। जिसमें एक भौंरा था। एक बहादुर राजकुमार आया और उसने भौंरे की एक टांग तोड़ दी, उधर राक्षस की एक टाँग जादू के ज़ोर से टूट गयी। फिर उसने दूसरी टाँग तोड़ दी और राक्षस की दूसरी भी टूट गयी। फिर उसने भौंरे को मसल डाला और वह राक्षस भी मर गया। नानी की जान भी जैसे तकिये में थी और बन्दर ने जादू का वह तकिया दाँतों से चीर डाला और नानी के कलेजे में जैसे गर्म सलाख़ उतर गयी।

दुनिया का कोई दुःख, कोई अपमान, कोई बदनामी ऐसी न थी जो नानी के भाग्य में न आयी हो। अब सुहाग की चूड़ियों पर पत्थर गिरा था तो समझी थीं कि अब मैं कुछ दिन की मेहमान हूं। फिर जब बिस्मिल्लाह को क़फ़न पहनाने लगी तो यह विश्वास हो गया कि ऊँट की पीठ पर यह अन्तिम तिनका है और जब नन्हीं मुंह पर कालिख लगा ही गयी तो नानी यह समझी की बस यह अन्तिम घाव है। जन्म से इन्होंने संसार के सारे रोग भुगते थे। सात बार तो चेचक ने इनकी सूरत पर झाड़ू फेंक फेरी। हर वर्ष तीज-त्यौहार के अवसर पर हैजे का हमला होता।

तेरा मेरा गू मूत धोते-धोते अंगुलियों के पोरे सड़ गये। बरतन माँजते-माँजते हथेलियां छलनी हो गयीं। हर वर्ष अँधेरे उजाले, ऊँची नीची सीढ़ियों से लुड़क पड़तीं। दो चार दिन लोट पोट कर फिर घिसटने लगतीं। पिछले जन्म में अवश्य नानी कुत्ते की पिल्लिया रही होंगी तभी तो इतनी सख़्त जान थीं। मृत्यु इनके पास फटकने को तैयार न थी। लत्ते लगाये फिरती थी परन्तु मुर्दे का कपड़ा तन से न छू जाय कहीं, मरने वाला सिलवटों में मौत न छुपा गया हो। जो लाड़ चाव से पाली नानी को आन दबोचे। मगर कौन जानता था कि यों बन्दरों के हाथ नानी का अन्त होगा। सवेरे तड़के भिश्ती मश्क डालने गया तो देखा नानी खपरैल की सीढ़ियों पर उकड़ूं बैठी हैं, मुंह खुला

है । मक्खियां अधखुली आंखों के कोने में घुस रही हैं । नानी को सोता देख कर लोग उन्हें मुर्दा समझ कर डर जाया करते थे, मगर नानी सदा बड़बड़ा कर बलग़म थूकती जान पड़ती थीं और सोने वालों को हजारों बातें सुना डालती थीं । परन्तु इस दिन सीढ़ियों पर उकडूं बैठी हुई नानी दुनियां को एक स्थायी गाली देकर चल बसी थीं । उनके जीवन में कोई कल सीधी न थी, करवट-करवट काँटे थे । मरने के बाद भी कफ़न में नानी उकडूं लिटायी गयीं। हजार खेंच तान करने पर भी अकड़ा हुआ शरीर सीधा न हुआ ।

हिन्दुस्तानी मुसलमान

•

डा० आबिद हुसैन

इस पुस्तक के लेखक के मन में यह लालसा कि भारतीय मुसलमानों के भविष्य जीवन की भी एक झलक देखे और दिखाये इस तरह मचल रही थी कि चैन नहीं लेने देती थी। जागने की दशा में उसकी बुद्धि बराबर इस चाह को अर्द्ध-चेतन अवस्था की काल कोठरी में बन्द रखती थी, परन्तु निद्रा के समय जब बुद्धि के पहरे उठ जाते थे तो यह लालसा बहुधा चेतना का द्वार खटखटाया करती थी। एक रात भाग्यवश द्वार खुला पाकर वह स्वप्न के भेस में इस वर्जित कोठरी में घुस गई और उसने लिखने वाले की भावना पर अधिकार जमा लिया। उसे यकायक यह अनुभव होने लगा कि समय की धारा पलट गयी और भविष्य भूतकाल बन कर उसके विचार की तख्ती पर इस तरह छप गया है कि वह उसे एक खुली हुई पुस्तक की भाँति पढ़ सकता है। उसने इस लेख को बड़े चाव से पढ़ा और यह यत्न किया कि उसे कंठस्थ कर ले। आँख खुलने पर जो कुछ याद रह गया उसे संक्षेप में अपनी पांडुलिपि में लिख लिया। आइये, इस लेख को उसी भावना के साथ पढ़ने का प्रयत्न करें, जिसमें लिखने वाले ने इसे लिखा है।

बीसवीं शताब्दी में भारतीय मुसलमान एक अजब मानसिक और आत्मिक उथल-पुथल में पड़ा था। उसकी दृष्टि में जीवन अलग-अलग खानों में बंट गया था, जिन्हें वह साम्प्रदायिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय चक्र कहता था। वह फिर फिर कर हर चक्र के इर्द-गिर्द चक्कर लगाया करता था। और यह समझता था कि कहीं न कहीं इस केन्द्र की सत्यता को पा जायेगा जो जीवन और संसार को अर्थ और महत्व प्रदान करता है। वह इस वास्तविक ज्ञान को भूल गया था कि चक्र से केन्द्र तक पहुँचना सरल है परन्तु चक्र से केन्द्र को ढूँढना बहुत कठिन है और फिर अलग-अलग चक्रों के एक मिले-जुले केन्द्र को पा लेना

तो नितान्त असम्भव है। इसे खोजने का काम इस कारण से और भी दुःखप्रद लगता था कि उसकी आँखों के सामने एक धुंध सा छाया हुआ था जिसमें कोई चीज़ साफ नहीं दिखाई देती थी। उसका दुर्भाग्य यह था कि वह इस धुंधलके को प्रकाश समझ रहा था और इस विचार पर इतना जमा हुआ था कि उसे उस प्रकाश की जो स्वयं उसके ही भीतर विद्यमान था, कुछ परवाह न थी और वह कभी आत्म-निरीक्षण का कष्ट न उठाता था, यह दुहरा अज्ञान इतना रच गया था कि देखने में कोई मानवी शक्ति इसे दूर नहीं कर सकती थी। इसके लिये एक चमत्कार की आवश्यकता थी।

और यह चमत्कार हुआ; हिन्दुस्तानी मुसलमानों ने आत्म-निरीक्षण किया और धर्म की उस किरण को जो उसके अन्दर थी, देखा और पहिचाना। उस के प्रकाश में उसने जीवन और विश्व के सौन्दर्य और सत्य के स्रोत को ढूँढा और पा लिया। उसने भगवान को पा लिया।

यह तो नहीं हुआ कि उसे स्वतः प्रकाश पर्दा दिखाई दिया हो और यह हो भी नहीं सकता था इसलिये कि उसकी आँख स्वतः प्रकाश को देखने के लिये नहीं बनी थी उसने द्रव्य का प्रकाश गुणों के पर्दों में देखा। इन शाश्वत मूल्यों में जो हमें जीवन के पेचदार रास्तों में पथ प्रदर्शन के लिये मशालों का काम देते हैं। उस ने कैवल्य सत्य की झलक देखी; उसने शुद्ध अच्छाई, शुद्ध सौन्दर्य और शुद्ध न्याय की भी झलक देखी। उसे ज्ञान, शक्ति, प्रेम और संगीत पूरे नमूनों की झलकियाँ भी दिखाई दीं। उसका सिर इन शाश्वत मूल्यों के सामने, उस प्रेम-द्रव्य के सामने जो प्रेम के बोध से परे है, सम्मान और नम्रता से झुक गया और उसके मन में उनका प्रेम भर गया। इस घटना ने उस वास्तविक धार्मिक विश्वास को जो उसने अपने बाप दादा से पैतृक सम्पत्ति के रूप में पाया था जीता जागता विश्वास बना दिया। इससे पहले उसके अस्तित्व की गहराइयों से दो प्रश्न उठा करते थे जिनका उसे पूरी तरह ज्ञान न था, परन्तु उसकी कसक उसे बेचैन रखती थी। एक यह कि संसार क्यों बना ? दूसरे यह कि स्वयं वह क्यों उत्पन्न हुआ ? अब ईश्वर पर उसका विश्वास नए सिरे से हरा और पुष्ट हो गया तो उसकी यह कठिनाई आपसे आप सुलझ गई। पहले प्रश्न का उसे उत्तर तो नहीं मिला परन्तु इस विचार से कि संसार को उस परमात्मा ने जो स्वयं सर्वज्ञ है उत्पन्न किया है, उसके मन की कसक आपसे आप जाती रही क्योंकि उसने यह अनुभव किया कि इस प्रश्न का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है और इसे पूछने की कोई आवश्यकता भी नहीं। अब रहा दूसरा प्रश्न कि स्वयं उसके उत्पन्न होने का अभिप्राय क्या है ? इसका उसे सन्तोषजनक उत्तर मिल गया। उसको

अपने अस्तित्व की गहराइयों में जहाँ से यह प्रश्न उठा था ऐसा अनुभव हुआ कि वह इसलिये बनाया गया है कि जिन मूल्यों के भरपूर नमूने उसकी भावना की आँख को दिखाए गए उन्हें अपनी योग्यता के अनुसार अपने भीतर और अपने वातावरण के अन्दर पैदा करे। जो काम उसे इस जीवन में सौंपा गया है वह है सत्य की पहचान, सत्य की घोषणा, भलाई की ओर बढ़ना और भलाई का प्रचार करना, सौन्दर्य की प्रशंसा और सौन्दर्य की उपज, न्याय का पालन करना और न्याय को स्थायी रखना है। उसे ज्ञान, शक्ति और धन प्राप्त करने की आज्ञा दी गई; परन्तु इस शर्त के साथ कि ज्ञान को सत्य और भलाई के लिये बरतें और शक्ति को न्याय और प्रेम के आधीन रक्खे और धन को ईश्वर की राह में यानी भगवान के सर्जित संसार की सेवा के लिये अर्पण करे।

सत्य के केन्द्र विन्दु को पा लेने से उसे एक नया अनुभव, नई दृष्टि, नया इरादा और नया साहस मिला। उसे जीवन के कठिन और भयानक मार्ग से गुज़रने की राह भी मिल गई। और उस पर चलने का साहस भी। उस के बाह्य चक्षु को अपने चारों ओर तीन घेरे दिखाई दिये जिनका केन्द्र एक ही था। भीतरी घेरा साम्प्रदायिक जीवन का और उसके चारों ओर बाहरी घेरा अन्तर्राष्ट्रीय या संसार मात्र के मनुष्यों के जीवन का। परन्तु उस प्रकाशन दृष्टि से (जो उसे ईश्वरीय वाक् से मिला था) बीच के और अन्दर के दोनों घेरे केवल काल्पनिक हैं जो क्रियात्मक अवसर के अनुसार कल्पित कर लिये गये हैं। यह केवल दो प्रतीक है, इस बात के कि हर मनुष्य का निकट सम्बन्ध उसकी पाँति से होता है जिसके साथ उसका सारा जीवन सम्बन्धित है तत्पश्चात् अपनी जाति से जिसके साथ केवल उसका व्यक्तिगत जीवन सम्बन्धित है। और फिर मनुष्य मात्र से जिस से एक व्यक्ति होने के नाते उसका कम सामना होता है। नहीं तो सच्चा अस्तित्व केवल बाहर के घेरे का है जो सारे स्थित परिवेश को घेरे हुए है और यह बताता है कि मनुष्यमात्र परमात्मा का परिवार है और इस सम्बन्ध से सब एक दूसरे के सगे भाई हैं।

देखने में तो यह एक साधारण सीधी सादी बात थी परन्तु उसने भारतीय मुसलमानों के जीवन के पूरे लक्ष्य और पूरे दृष्टिकोण को बदल दिया। उस की दृष्टि में सम्प्रदाय मिट कर धर्म का अंग बन गया और वह भ्रांतियाँ जो संस्कृतियों को एक दूसरे से अलग रखती थीं गिर गई। उस को अनुभव हुआ और सच्चाई और जोर के साथ अनुभव हुआ, कि मनुष्य मात्रकी सभ्यता एक है और बँट नहीं सकती। उसे अपने आत्म सुधार और अस्तित्व की पूर्ति

के लिये हर चीज़ जिसमें उसे अपने धर्म के प्रकाश में किसी नैतिक उच्च मूल्य की झलक दिखाई दी, चाहे वह पूर्व से मिले या पश्चिम से, दक्षिण से या उत्तर से, लेनी है और अपनानी है। सच्ची लालसा ने उसमें सच्ची भावना उत्पन्न कर दी और विश्व संस्कृति का हर मूल्य खिंच कर उसके पास आने लगा। विद्या और ज्ञान दृष्टि उसकी ओर इस प्रकार दौड़ीं जैसे खोई भेड़ अपने ग्वाले की ओर दौड़ती है। स्वतन्त्रता और बराबरी का जनतान्त्रिक जीवन झपट कर उसे इस प्रकार गले मिला, जैसे बिछुड़ा हुआ मित्र मिलता है। आर्थिक न्याय की सच्ची भावना ने बढ़े प्रेम से उसे प्रणाम किया। जैसे वह युगों से उसकी खोज में थी, उद्योग कला और उसकी चित्रकारियाँ उसके चरणों पर पड़ीं जैसे उन्होंने अपने मालिक को जो उनका ठीक उपयोग जानता है पा लिया है। उत्तम कला और उसकी उपज झिझकती हुई, डरती हुई उसकी ओर बढ़ी जैसे बच्चे साहित्य सीखने वाले अध्यापक की ओर बढ़ते हैं। वह शक्ति जिसके पीछे वह बहुत दिन फिरता रहा स्वयं उसके पास आ गई। परन्तु वह घृणित नग्नता की दशा में नहीं वरन, प्रेम के रोचक भेष और सेवा भावना के जगमगाते गहने से सब्जी हुई। मतलब यह कि वह मूल्य जिन्हें वह उससे माँगता था और कुछ उससे माँगते थे उसके मन में ईश्वरीय धर्म के घेरे के रूप में एकत्रित हो गए, और एक सच्चे मुसलमान के तुलनात्मक व्यक्तित्व का अंग बन गए।

अब वह अपने जीवन के दो बड़े लक्ष्य समझता है: एक भक्ति दूसरा प्रचार। परन्तु अब उसके मन में भक्ति और प्रचार का भाव उससे कहीं अधिक लम्बा चौड़ा है। जो बीसवीं शताब्दी के मध्य में था, जब वह एक अँधेरे निराशाजनक चक्कर से गुजर रहा था। उस समय तक उसकी पूजा धरती की गोद में मिली हुई दण्डवत तक सीमित थी। अब वह इस प्रार्थना से आरम्भ होती है कि विश्व के हृदय में अल्ला और अकबर की ध्वनि पर समाप्त हो, यह ध्वनि अब उसका राजनैतिक नारा नहीं है। वरन उसके जीवन की आगे जाने वाली साँस बन गई है। अब वह उसे अपने विरोधियों के मन में भय उत्पन्न करने के लिये या अपने भय को छिपाने के लिये प्रयोग में नहीं लाता। वरन ईश्वर की शक्ति और सामर्थ्य याद दिला कर अपना और दूसरों का साहस बढ़ाने और उन्हें इस पर उभारने के लिये कि इस संसार को अपने पर्यटन और कार्य-कुशलता से ऐसा बना दे कि वह संसार के रचियता के महत्व की साक्षी दे। अब उसकी पूजा का अर्थ भी विशाल हो गया और वह कर्म को जो उनके नैतिक मूल्यों, ज्ञान और प्रज्ञान, भलाई और नेकी, न्याय और औचित्य, सौन्दर्य और प्रेम के लिये करता है, पूजा समझता है। और

वह इन मूल्यों को केवल अपने जीवन के लिये नहीं; अपने सम्प्रदाय, अपनी जाति और संसार मात्र के मनुष्यों के लिये प्राप्त करना चाहता है। इसलिये कि उस पर यह भेद खुल गया है कि व्यक्ति, जाति, सम्प्रदाय और मनुष्य मात्र जीवन के एक ही राग से उत्पन्न हुए हैं। और जीवन के एक ही घेरे में रहते हैं। आरम्भ में वह अपने जीवन को सुसंस्कृत और सभ्य बनाने से डरता है। परन्तु होश सम्भालते ही उसे यह अनुभव होता है कि उसके अतिरिक्त के जौहर मनुष्य मात्र की सेवा में चमके हैं। जब वह सेवा की उन राहों से जो उसके सामने खुली हुई है कोई राह पकड़ लेता है, चाहे वह विद्या और शिक्षा की हो या संशोधन और सुधार या राजनीति और शासन या सौन्दर्य के उपज की या धन पैदा करने की तो वह देखता है कि इस समय में जब पृथ्वी की डोरियाँ खिच गई हैं और दुनिया सिकुड़ कर इतनी सी रह गई है कि मनुष्य घंटों में उसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँच सकता है। और साम्प्रदायिक जीवन जातीय जीवन में और जातीय जीवन मनुष्य के सामूहिक जीवन के अंदर इस तरह बैठ गया कि जैसे एक छोटे दुरबीन की नलकियां एक दूसरे के भीतर बैठ जाती हैं। इन तीनों में किसी एक की सेवा को दूसरे से अलग करना असम्भव है हर अच्छे काम में जो किसी एक की भलाई की दृष्टि में रख कर किया जाये दो और की भलाई का पहलू अवश्य आ जाता है। इसलिये भारत में मुसलमान हर अच्छे काम को, जो उससे बन पड़ता है, अपने प्रभु की वन्दना और किसी भेद-भाव के बिना उसके सारे संसार की सेवा की भावना से करता है।

वन्दना के विचार की तरह उसके प्रचार का विचार भी बदल गया है। और वह इस्लामी मूल्यों को सांसारिक ज्ञान और बुद्धि और नैतिकता की भाषा में जो संसार की मिली-जुली भाषा है साधारण माननीय मूल्यों की तरह पेश करता है। कुछ लोग जो इन मूल्यों के साफ इस्लामी मन्तव्य को भी मान लेते हैं जो पहले में अपने बाप दादा के मन्तव्य और स्वयं सिद्धि के रूप में मानते हैं। और अधिक सच्चाई और उत्साह से मान्य लगते हैं। भारत में मुसलमान इन वर्ग वालों को भी चाहें वह किसी धर्म के हों, कर्म से मुसलमान ही समझता है। उन्हें जीवन के युद्ध में सच्चाई और न्याय यानी वैधानिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय का झण्डा ऊँचा करता है।

वह अपने मित्रों की सहायता से सत्य और झूठ की लड़ाई में, जो भारत में 20वीं शताब्दी के मध्य में आरम्भ हुई, अच्छी खासी सफलता प्राप्त कर चुका है। उसने स्थानीय, भाषाई और धार्मिक साम्प्रदायिक उथल-पुथल मचाने वाली शक्तियों को बुरी तरह हराया। भारत को एक सम्मिलित जाति और सांसारिक

जातियों के कुटुम्ब का एक प्यारा सदस्य बनाने में, अपने देश में निरक्षरता और द्वन्द्व को बन्द करके विद्या और प्रकाश फैलाने में, स्वयं सिद्धि को परस्पर के मुकाबले में बे-लगाम आर्थिकता को लगाम देकर सुसज्जित और योजनामय बनाने और कल्याणकारी राज्य स्थापित करने में देखने योग्य और महत्व-पूर्ण भाग लिया। उसने इस शकुन-पूर्ण विश्व-मात्र की लड़ाई को जो पूंजीवादी गणतंत्र और विध्वसकारक नास्तिक साम्यवाद में छिड़ने वाली थी, दूर करने और इन दोनों मुकाबले वालों को एक दूसरे से और बीच की लकीर के पास लाने में प्रशंसनीय सेवा की। वह भगवान के उन पुत्रों की प्रथम श्रेणी में था जिन्होंने पूँजीवादी गणतंत्र को समझाया कि उसने संसार की स्वतंत्रता को अनमोल नियामत दी परन्तु उन पर आर्थिक असमानता का दोष बिठा कर करोड़ों निर्धनों को स्वतंत्रता के फल से वंचित बना दिया। जो कुछ एक हाथ से दिया था वह दूसरे हाथ से छीन लिया और साम्यवाद के यह गले उतारा कि उसने मनुष्य मात्र को आर्थिक निश्चिंतता और संतुष्टता का जीवनप्रद भोजन तो दिया परन्तु उसे स्वतंत्रता और धर्म से वंचित कर के अधमरा कर दिया इसलिये कि मनुष्य केवल रोटी से जीवित नहीं रहता उसे स्वतंत्रता के लगन की भी आवश्यकता है, जो उसके जीवन की नाड़ी को तीव्र करे और धर्म की भी जो उसकी आत्मा को गरमाये और दिल को तड़पाए।

अब भारतीय मुसलमान अपने निकट स्वदेश भारत में, जो उसके लम्बे चौड़े संसार के वर्ग की एक खिली हुई क्यारी है और जिसको उसने अपने लहू और पसीने से सींचा है, इस प्रकार जीना और मरना है कि उसके जीवन और मौत पर दूसरों को ईर्ष्या हो। जीवन में उसके अपने देश के लोग और दूसरे देशों के रहने वाले जिनसे उनका साथ पड़ता है उस पर भरोसा, उससे प्रेम और उसका सम्मान करते हैं। और जब वह मरता है तो शोक मनाते हैं। उसे याद रखते हैं, और वह अपने सरजनहार के सामने निश्चितता और चिन्ता भय, और आशा की मिली-जुली भावनाओं से साथ जीता है। वह संतुष्ट तो इससे होता है कि जीवन में वह जो कुछ कर सकता था कर लिया और असंतुष्ट इसलिये कि जितना करना चाहिए था नहीं किया। डर इस बात का कि देखिये मरने के बाद क्या होता है। आशा यह कि भगवान दयालु और कृपालु है और उन कमियों की जो मजबूरी में उससे हुई हैं क्षमा कर देगा। उसके मरने के बाद संसार के वातावरण में एक आवाज गूँजती सुनाई देती है ईश्वर इसे क्षमा करें, विचित्र स्वतंत्र मनुष्य था।

उमराव जान अदा

•

मिर्ज़ा मुहम्मद हादी रुसवा

'वहेतू फिरने का कारण जंगलीपन का जोश है' हम तो यह बात समझ गए मगर समझाने वाले को क्या समझाएं। मैंने बहुत से लोगों को कहते सुना है कि जो रण्डी जाति की हैं उन का तो कहना ही क्या जो कुछ न करें कम है। क्योंकि वह ऐसे घर और ऐसी दशा में पाली जाती हैं जहाँ कुकर्मों के अतिरिक्त और कोई बात ही नहीं। उनमें से जिसे देखो इसी दशा में है परन्तु यह माँ बाप की बेटियाँ जो अपने घरों से निकल कर बिगड़ चुकी हैं इनको वहाँ मारे जहाँ पानी न मिले। मेरी दशा जैसा मैं बता चुकी हूं उतना ही कह कर छोड़ दूँ और इसके बाद यह कह दूँ कि बस···इसके पश्चात् मैं बदचलन हो गई इससे यह ख्याल पैदा होगा कि मैं अभागनी और माती थी। विवाह होने में देर हुई कि किसी से आँख लगा कर घर से निकल गई। उसने छोड़ दिया तो किसी और से जा मिली। उससे भी न बनी परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे यही मेरा धन्धा हो गया। बहुधा यही होता है। मैंने अपने जीवन में बहुत सी बहू बेटियों को बिगड़ते देखा और सुना। इसके कारण कई होते हैं एक तो यह कि जवान हो गई और विवाह नहीं हुआ और दूसरा करण यह है कि यदि विवाह हुआ भी तो उनकी पसन्द से नहीं हुआ। माँ बाप ने जहाँ चाहा झोंक दिया। न आयु देखी, न आकार देखा, न यह देखा कि स्वभाव कैसा है। जब पति से न बनी तो निकल खड़ी हुई या युवावस्था में सिर पर आसमान टूटा राँड हो गई। सह न सकी तो दूसरा घर बसा लिया बुरी संगत मिली बदचलन हो गई। परन्तु मुझ अभागिन को भाग्य और वातावरण ने परबस कर के ऐसे जंगल में छोड़ा जहाँ राह भूल जाने के अलावा और कोई राह न थी।

दिलवार खाँ, जिसका घर हमारे घर से थोड़ी दूर था, मुआ डाकुओं से

मिला हुआ था । लखनऊ में कई वर्ष जेल रहा । उन्हीं दिनों न जाने किस की सिफारिश से छूट कर आ गया । मेरे पिता से बड़ा बैर था । कारण यह था कि जब वह फैजाबाद में पकड़ा गया तो उसके चाल चलन की जाँच के लिए लोग बुलाए गए । उनमें मेरे पिता भी थे वह बिचारे यों भी दिल और जबान के सच्चे थे । और उस पर एक बात यह और हुई कि रानी वाले साहिब ने उनके हाथ में क़ुरान देकर पूछा;

'बोलो जमादार तुम सच सच कहो यह कैसा आदमी है' मेरे पिता ने जो उसका हाल था साफ साफ कह दिया, उनकी गवाही पर दिलवार खाँ को जेल हो गई । मैंने अपनी माँ से सुना कि वही ईर्ष्या उसके मन में चली आती थी अब की जो वह जेल से छूट कर आया तो उसने मेरे पिता की होड़ में कबूतर पाले । एक दिन उसने मेरे पिता का कबूतर मारा । यह लेने को गए तो न दिया । मेरे पिता चार आने दे रहे थे और वह आठ आने माँगता था । मेरे पिता नौकरी पर चले गए । झुटपुटे समय न जाने मैं क्यों निकली थी । देखती क्या हूँ कि वह इमली के पेड़ के नीचे खड़ा है । उसने कहा 'चलो बेटा तुम्हारे पिता पैसे दे गए थे कबूतर ले लो । मैं उसके झाँसे में आकर साथ ही चली गई । जाकर जो देखती हूँ तो घर में एक चिड़िया भी नहीं । अकेला सुनसान है । जैसे ही मैंने घर में पाँव रखा उसने भीतर से कुण्डी बन्द कर ली । मैंने चिल्लाना चाहा तो उसने मुंह में गूदड़ ठूंस दिया और मेरे दोनो हाथ रूमाल से कस दिये । इस घर का एक दरवाजा दूसरी ओर था मुझे पृथ्वी पर लिटा कर आप गया और दरवाजा खोला और परिबख्श कह कर पुकारा । परिबख्श अन्दर आया । दोनों ने मिल कर मुझे एक बैलगाड़ी पर सवार किया और गाड़ी चल पड़ी । मैं सांस साधे पड़ी थी । नीचे की सांस नीचे ऊपर की ऊपर, करूँ तो क्या करूँ । कोई बस नहीं बैरी के चंगुल में फंस गई थी परिबख्श गाड़ी हाँक रहा था । बैल थे कि उड़े चले जा रहे थे । थोड़ी देर में सांझ हुई चारों ओर अंधेरा छा गया । जाड़े के दिन थे, सनसनाती हवा चल रही थी । दम उखड़ा जा रहा था । आँखों से पानी बह रहा था । जाड़े के मारे मेरी बोटी बोटी काँप रही थी मन में सोचती थी कि हाय किस संकट में फँसी । पिताजी नौकरी पर से आए होंगे, मुझे ढूँढते होंगे । माँ सिर पीट रही होगी, छोटा भाई खेल रहा होगा, उसे क्या मालूम बहिन किस संकट में है । मां, बाप, बहिन, भाई, पर दालान, अंगनाई, रसोई सब कुछ मेरी आँखों के सामने और सब विचार एक ओर जान का डर दूसरी ओर दिलावर खाँ रह-रह के छुरी दिखाता था, मुझे ऐसा लगता था कि अब यह छुरी किसी दम में मेरे कलेजे के पार होगी । गूदड़ अब मेरे मुंह में न था

परन्तु डर के मारे मेरे मुंह से आवाज न निकलती थी इधर मेरी तो यह दशा थी उधर दिलावर खाँ और पीरबख्श में हँस-हँस कर बातें हो रही थीं। मेरे माँ बाप पर और मुझ पर बात बात पर गालियाँ पड़ रही थीं।

दिलावर खाँ : देखा भाई परिबख्श सिपाही का पूत १२ वर्ष बाद बदला लेता है अब कैसा तिलमिलाता होगा।

परिबख्श : भाई तुमने तो सचमुच इस कहावत को सिद्ध कर दिया बारह वर्ष ही तो तुम जेल में रहे होंगे।

दिलावर खाँ : पूरे बारह वर्ष। भाई लखनऊ में क्या क्या कष्ट झेले हैं खैर इसका बाप भी तो किसी दिन याद करेगा। यह तो मेरा पहला वार है अभी तो मैं उसे जान से मारूँगा।

परिबख्श : अच्छा यह भी ठान ली है ?

दिलावर खाँ : तुम समझते क्या हो जान से न मारा तो पठान का बीज नहीं।

परिबख्श : भाई तुम बात के धनी हो, जो कहोगे सो कर दिखाओगे।

दिलावर खाँ : देख।

परिबख्श : और इसे क्या करोगे।

दिलावर खाँ : करेंगे क्या यहीं कहीं मार के नाले में छोड़ दो, रातों रात घर चले चलेंगे।

यह सुन कर मुझे अपनी मौत का विश्वास हो गया, आँखों में आँसू थम गए, दिल में एक धक्का लगा। जो बैंठने लगा, हाथ पाँव डाल दिये। यह दशा देख कर भी मुंए को तरस न अया और एक घूंसा इतने जोर से कलेजे पर मारा कि मैं बिलबिला गई। बस गिरने वाली ही थी।

परिबख्श : इसे तो मार डालोगे और हमारा रुपया ?

दिलावर खाँ : गले गले पानी।

परिबख्श : कहाँ से दोगे हम तो कुछ और ही समझे थे।

दिलावर खाँ : घर चलो कहीं से हो सका तो कबूतर बेचकर दूंगा।

परिबख्श : यार तुम तो निरे बुद्दू हो, कबूतर क्यों बेचो, हम एक बात बताएँ।

दिलावर खाँ : कहो।

परिबख्श : अरे मियां। लखनऊ चलकर इस ठीकरी के कौड़े कर लें।

जब से मुझे अपने मरने का विश्वास हो गया था, इन दोनों की बातें कानों से अच्छी तरह न सुनाई देती थी। ऐसा लगता था जैसे कोई सपने में बातें कर रहा है। परिबख्श की बात सुन कर मुझे अपने जीवन की कुछ आस

बँधी मन ही मन पीरबख्श को दुआएं देने लगी परन्तु इसकी राह देख रही थी कि यह बैरी क्या कहता है।

दिलावर खाँ : अच्छा देखा जाएगा अभी तो चले चलो।

पीरबख्श : यहाँ जरा ठहरो वह पेड़ के नीचे आग जल रही है थोड़ी आग ले जाएँ तो हुक्का भर लें।

पीरबख्श तो आग लेने गया। मुझे यह खटका कि पीरबख्श के आते आते कहीं मेरा तीया पाँचा न कर दे। जान का डर बुरा होता है। मैं जोर से चिल्लाई तो दिलावर खाँ ने कस-कस कर दो तीन थप्पड़ मेरे मुंह पर मारे —"हरामजादी चुप नहीं रहती, छुरी भोंक दूंगा – नखरे करती है।" पीरबख्श अभी थोड़ी ही दूर गया था बोला; नहीं भई ऐसा काम न करना तुम्हें मेरे सिर की कसम, कोई अरमान है तो हमें आ लेने दो।

दिलावर खाँ : अच्छा जाओ आग तो ले आओ।

पीरबख्श गया और थोड़ी देर में आग ले आया। हुक्का भरा और दिलावर खाँ को दिया।

दिलावर खाँ : (एक घूंट मार कर) तो यह कितने तक बिक जायगी और बेचेगा कौन। कहीं ऐसा न हो कि हम धर लिए जाएं और लेने के देने पड़ जाएं।

पीरबख्श : यह तो हम पर छोड़ो हम बेच देंगे। अरे मियाँ क्या कहते हो ? पकड़ेगा कौन लखनऊ में तो दिन रात ऐसे खेल हुआ करते हैं। हमारे साले को जानते हो न।

दिलावर खाँ : करीम ?

पीरबख्श : हाँ उसकी तो रोटियाँ इसी धन्धे से चलती हैं। वे सारी लड़के लड़कियाँ पकड़ ले गया। लखनऊ जा के दाम खड़े कर लिये।

दिलावर खाँ : आजकल कहाँ है ?

पीरबख्श : है कहाँ, लखनऊ में गोमती पार उसकी ससुराल है, वहीं होगा।

दिलावर खाँ : भला लड़का लड़की कितने में बिकते हैं ?

पीरबख्श : जैसी सूरत शकल होती है।

दिलावर खाँ : भला यह कितने को बिक जाएगी ?

पीरबख्श : सौ डेढ़ सौ, जैसा तुम्हारा भाग्य होगा।

दिलावर खाँ : डेढ़ सौ, भाई की बातें, इसकी सूरत ही क्या है सौ भी बहुत हैं।

पारबख्श : अच्छा इसे ले तो चलो मार डालने से क्या मिलेगा ?

फिर पीरबख्श ने दिलावर खाँ के कान में कुछ झुक के कहा जिसे मैंने नहीं सुना ।

पीरबख्श : वह तो हम समझे ही थे । तुम कोई ऐसे बुद्धू थोड़े ही हो ।

रात भर गाड़ी चला की । मेरी जान सांसत में थी, मौत आंखों के सामने फिर रही थी । सारी शक्ति जाती रही थी, शरीर सुन्न हो गया था । आपने सुना होगा कि नींद सूली पर भी आती है । थोड़ी देर में आँख लग गई तरस खाकर पीरबख्श ने बैलों का कम्बल उढ़ा दिया । रात को कई बार चौंक चौंक पड़ी, आँख खुल जाती परन्तु डर के मारे चुपके पड़ी थी । आखिर एक बार डरते डरते मुँह पर से चादर सरका कर देखा तो यह लगा कि मैं गाड़ी में अकेली पड़ी हूँ फिर पर्दे से झाँक कर देखा कि सामने कुछ कच्चे घर हैं । एक बनिये की दुकान है जहाँ से दिलावर खाँ और पीरबख्श कुछ ले रहे हैं । बैल सामने बरगद के नीचे भूसा खा रहे हैं दो तीन गँवार अलाव के पास बैठे ताप रहे हैं । एक चिलम पी रहा है । इतनी देर में पीरबख्श ने गाड़ी के पास आकर थोड़े से भुने हुए चने दिये । मैं रात भर की भूखी थी खाने लगी । थोड़ी देर बाद एक लोटा पानी लाकर दिया । मैंने थोड़ा सा खाया फिर पानी पीकर पड़ रही ।

बड़ी देर तक गाड़ी यहाँ रुकी रही । फिर पीरबख्श ने बैल जोते । दिलावर खाँ हुक्का भर के मेरे पास आ बैठा । गाड़ी चल पड़ी आज दिन को मुझ से अधिक कड़ा व्यवहार नहीं हुआ । न दिलावर खाँ की छुरी निकली न मुझ पर घूँसे पड़े न घुड़कियाँ पड़ीं । दिलावर खाँ और पारबख्श दोनों जगह जगह हुक्का भर भर कर पीते थे, बातें करते जाते थे । बात करते करते तो कुछ गाने लगते । एक गा रहा है तो दूसरा सुन रहा है । सुन क्या रहा है सोच रहा है कि अब क्या बात निकालूं । फिर कोई बात निकल आती इस बातचीत में कभी कभी गाली गलौज होने लगी आस्तीनें चढ़ गईं । कमरे कसी जाने लगी । एक गाड़ी पर से कूद पड़ता है दूसरा वहीं गला घोंटने को तैयार है फिर किसी बात पर दोनों ढीले पड़ गए । बात आई गई । फिर मिलाप हुआ । मित्रता की बातें होने लगीं जैसे कभी लड़े ही न थे ।

एक : हमारे तुम्हारे बीच लड़ाई की क्या बात थी ।

दूसरा : बात ही क्या थी ?

एक : अच्छा तो फिर इस बात को जाने दो ।

दूसरा : जाने दो ।

बाग़ोबहार

मीर अम्मान देहलवी

यह सुनकर इसीलिये राजा ने बाग़ की नींव डाली और बहुत से घर अलग-अलग नक्शे के बनवाए। मेरे लिये तहख़ाने में पलने की आज्ञा दी। ऊपर एक कलश नम्दे का तैयार कराया तो धूप और चाँदनी उसमें से छने। मैं यदि दूध पिलाई और अन्ना छूछू और कई नौकरानियों के साथ इस सुरक्षा से उस विशाल भवन में पलने लगा और एक चतुर और अनुभवी अध्यापक मेरी शिक्षा के लिये लगाया गया जो हर एक विद्या सिखाए और सात प्रकार के लिखने का अभ्यास कराए और महाराजाधिराज सदा मेरा हाल जानते रहते। दिन प्रतिदिन घड़ी-घड़ी का हाल सरकार को बताया जाता। मैं इस घर को ही अपना संसार जान कर खिलौनों और रंग-बिरंग के फूलों से खेला करता, और सारे संसार के व्यंजन खाने के लिये उपस्थित रहते। जो चाहता दस वर्ष की आयु तक जितने उद्योग और योग्यताएँ थीं प्राप्त कर लीं।

एक दिन उस कलश के नीचे झरोखे से एक अचम्भे का फूल देखा जो देखते-देखते बड़ा होता जाता था, मैंने चाहा कि हाथ से पकड़ लूँ मैं ज्यों हाथ लम्बा करता था वह ऊँचा होता जाता था। मैं अचम्भे में उसे तक रहा था कि यकायक मेरे कान में एक ठट्ठे की आवाज आई। मैंने उसे देखने को गर्दन उठाई तो देखा कि नम्दा चीर कर एक चाँद सा मुखड़ा निकल रहा है। उसे देखते ही न मेरी बुद्धि ठिकाने रही न होश में। फिर अपने आप को सँभाल कर देखा तो एक जवाहरात का जड़ाऊ तख़्त परीपुत्रों के कन्धों पर अधर खड़ा है और तख़्त पर एक परी जवाहर का ताज सिर पर पहने और आँखों को चकाचौंध करने वाले कपड़े पहने हाथ में लाल जवाहरात का प्याला लिये मद्यपान किये बैठी है। वह तख़्त ऊंचाई से उतर कर धीरे-धीरे उस कंगूरे से नीचे आया। तब परी ने मुझे बुलाया और अपने पास बिठाया। प्यार की बातें

करने लगी और मुँह से मुँह मिलाकर गुलाब की शराब का एक प्याला मुझे पिलाया और कहा—

'मनुष्य जाति प्रेमहीन होती है परन्तु हमारा मन तुझे चाहता है । एकदम में ऐसी नाज़ नखरों की बातें कीं कि मन मुग्ध हो गया और ऐसा आनन्द आया कि जीवन का मज़ा आ गया और मन ने कहा कि आज तू दुनिया में आया है ।

मतलब यह है कि मैं तो क्या हूँ किसी ने ऐसा न देखा होगा न सुना होगा। हम दोनों मजे से निश्चित बैठे थे कि कुरयाल में गुलेला लगा। अब इस अकस्मात आघात का हाल सुना कि दो चार परीजादों (परियो के पुत्रों) ने आकाश पर से उतर कर कुछ उस प्रेयसी के कान में कहा। सुनते ही उसका मुँह उतर गया और मुझ से बोली कि 'ए प्यारे ! जी तो यह चाहता था कि कुछ देर तेरे साथ बैठ कर दिल बहलाऊँ और इसी तरह पेश आऊँ या तुझे अपने साथ ले जाऊँ पर यह आसमान दो व्यक्तियों को एक जगह चैन और सुख से बैठने नहीं देता, ले प्यारे भगवान् तेरी रक्षा करे ।' यह सुन कर मैं तो जैसे शिथिल हो गया और हाथों के तोते उड़ गए मैंने कहा 'अजी अब फिर कब मिलेंगे, यह क्या तुमने चिन्ताजनक बात सुनाई यदि जल्दी आओगी तो मुझे जीता पाओगी नहीं तो पछताओगी या अपना ठिकाना और अता-पता बताओ कि मैं ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अपने को तुम्हारे पास पहुँचाऊँ, तो यह सुन कर वह बोली—दूर चार शैतान के कान बहरे, तुम्हारी एक सौ बीस वर्ष की आयु होवे, यदि जीवित रहे तो फिर मिल रहेंगे । मैं जिन्नों के राजा की बेटी हूँ और काकाशस पहाड़ पर रहती हूँ । यह कहकर तख्त उठाया और जिस प्रकार उतरा था वैसे ही ऊँचा होने लगा। जब ओझल हो गया तो यह दशा हुई जैसे परी का साया होता है । अकस्मात उदासी दिल पर छा गई न बुद्धि रही न विवेक । दुनिया आँखों के नीचें अंधेरी हो गई । बिलखना, बिलबिलाना, फूट-फूट कर रोना, सिर पर धूल डालना, कपड़े फाड़ना, न खाने की सुध न बुरे-भले की बुध ।

इस प्रेम की बदौलत क्या-क्या बुराइयां हैं ।
दिल में उदासियाँ हैं और बेकारियाँ हैं ।

इस बुराई का पता दाईं ओर अध्यापक को लगा । डरते-डरते राजा के आगे गये और कहा कि राजकुमार की यह दशा है । न जाने अकस्मात क्या हो गया जो उसका सुख और खाना पीना सब छूट गया है । तब राजा और मंत्री, बड़े-बड़े गुणागर, रईस, विद्वान्, वैद्य, प्रबल ज्योतिषी, प्रसिद्ध मुल्ला सयाने (नाउत) सन्त, शान्त और अवधूत अपने साथ लेकर उस बाग़ में पधारे । मेरी

बेचैनी और रोना धोना देखकर वह भी विकल हो गए। आँखों में आँसू भर कर विह्वल हो गले से लगा लिया और उस के यत्न के लिये शासन किया वैद्यों ने हृदय की पुष्टी और मानसिक उथल-पुथल के लिये औषधि लिखी और मुल्लाओं ने यंत्र और ताबीज़ पिलाए और पास रखने को दिये दुआ पढ़-पढ़ कर फूँकने लगे। ज्योतिषियों ने कहा कि नक्षत्रों के विरुद्ध हो जाने से ऐसा हुआ है। इसका उतारा दीजिए। मतलब यह कि सब अपनी अपनी विद्या की बातें कहते थे। और मुझ पर जो बीत रही थी वह मेरा ही मन जानता था। किसी का यत्न या प्रयत्न मेरे दुर्भाग्य के काम न आया दिन पर दिन मैं और बौराता गया। खाने पीने के अभाव में मेरा शरीर भी शिथिल हो चला। रात-दिन चिल्लाना और सिर पटकना ही रह गया, इस दशा में तीन वर्ष बीते। चौथे वर्ष एक व्यापारी पर्यटन करता हुआ आया और एक देश के अनोखे उपहार राजा के लिये दिये। उसे नौकरी मिल गई राजा ने उसकी ओर बहुत ध्यान दिया और उसका हाल पूछा कि तुमने बहुत देश देखे हैं, कहीं कोई धन्वंतरी वैद्य भी देखा है या किसी से उसका हाल सुना है? उसने अर्ज की कि हे राजेश्वर इस दास ने बहुत पर्यटन किया है, परन्तु भारत में नदी के बीच एक पहाड़ी है वहाँ एक जटाधारी गोसाईं ने महादेव का बड़ा मण्डप और संग बाग बड़ी छटा का बनाया है उसी में रहता है और उसका यह नियम है कि वर्ष के वर्ष शिवरात्रि के दिन अपने स्थान से निकल कर नदी में तैरता है और आनन्द करता है। स्नान के बाद अपने आसन पर जाने लगता है तो देश विदेश के दूर-दूर के आये हुए रोगी और पीड़ित उसके द्वार पर एकत्रित हो जाते हैं, उनकी बड़ी देख-भाल होती है।

तौबतुन्नसूह : एक उद्धरण

नजीर अहमद

और कलीम के मन में स्वतः यह शैतानी-भरा विचार समाया हुआ था मानो तमाम हिन्दुस्तानी सरकारें उसके कल्याणकारी चरणकमल अपनी धरती पर पड़ते देखने के लिए इच्छुक और प्रतीक्षारत हैं कि जिस तरफ को चल खड़ा होगा वहां का शासक उसके आगमन से अपने आप को धन्य समझेगा। घर से तो वह खाली हाथ इस विचार में मग्न निकला कि अब क्षण भर वह दुनिया के खजाने का मालिक बनने वाला है। जूतियां खटखाता, इस धुन में मस्त चला मानो कोई विशालकाय हाथी सोने के हौदे सहित उसकी सवारी के लिए आ रहा है। यद्यपि रात की पोशाक के अतिरिक्त बदन पर कुछ न था, फिर भी सात कपड़ों वाली इनामी पोशाक की उम्मीद में घमण्ड में डूबी हुई उसकी निगाह कन्धों से उतरकर अपने ही सीने पर टिक गयी मानो वहां सचमुच जरी का लिबास झूल रहा हो।

तात्पर्य यह है कि कलीम शेखचिल्लियों के से इरादे बांधता हुआ अपने दोस्त मिर्जा के मकान पर पहुँचा। हालांकि अभी कुछ बहुत रात नहीं गयी थी लेकिन मिर्जा जैसे निकम्मे बेफिक्रे कभी के लम्बी तान कर सो चुके थे। कलीम ने जो दरवाजे पर दस्तक दी तो जवाब गायब।

यहां पर मिर्जा का थोड़ा-सा हाल लिख देना उचित जान पड़ता है। इस आदमी की असलियत यह थी कि शायद उसका नाना, वह भी असली नहीं, शासन के प्रारम्भ में रेजिडेन्ट साहब के अरदली का जमादार था। अव्वल तो इतनी बड़ी मान-मर्यादा वाली सरकार, दूसरे विश्वसनीय औहदा यानी अरदली का जमादार, तीसरे उन दिनों की दुर्व्यवस्था और इस पर खुद उसकी घूसखोरी। बहुत कुछ कमाया, यहां तक कि उसकी गिनती दिल्ली के

प्रतिष्ठित लोगों में होने लगी। मिर्जा की मां छोटी आयु में ही विधवा हो गयी। जमादार ने, यद्यपि उससे दूर का नाता था, उसकी जिम्मेदारी अपने सिर ले ली। जमादार अपनी जिन्दगी में तो इतना उपकार करता रहा कि मिर्जा को अनाथपन और उसकी मां को वैधव्य की याद भूलकर भी न आयी होगी। जमादार बहुत कुछ वसीयत कर मरे थे, मगर उनके उत्तराधिकारियों ने बड़ी मुश्किल से जनानखाने की बगल में एक छोटा-सा जमीन का टुकड़ा रहने को दिया और सात रुपये महीने किराये की दुकानें मिर्जा के नाम कर दीं। यह तो हाल था कि मिर्जा, मिर्जा की मां, मिर्जा की बीबी—तीन-तीन प्राणी और सात रुपये की कुल सम्पति। इस पर मिर्जा की शेखी और दिखावट। यह मसखरा इसी बिरते पर चाहता था कि जमादार के बेटों की बराबरी करे, जिन्हें सैंकड़ों रुपये महीने की स्थायी आमदनी थी। हालांकि जमादार वाले इसको मुँह नहीं लगाते थे मगर वह निर्लज्ज जबरदस्ती उनमें घुसता था। किसी को भाई, किसी को मामू तो किसी को मौसा बनाता, और वे लोग इसके बनावटी रिश्ते-नातों से जलते और तंग होते। ऊंची श्रेणी के लोगों में बैठना इसके लिए और भी बुरा सिद्ध हुआ। उनकी देखादेखी इसने अपनी सारी आदतें अमीरजादों की-सी बना ली थीं। मगर यह अमीरी निभे तो कैसे? दुकानें गिरवी होती जाती थी। मां बेचारी बहुतेरा बकती मगर सुनता कौन था? मिर्जा को जब देखो पांव से डेढ़ हाशिये की जूती, सिर पर दोहरी बेल की भारी कामदार टोपी, बदन में एक छोड़ दो-दो अंगरखे, ऊपर शबनम या हलकी-सी तनजेब, नीचे ढाके का कोई खूबसूरत नेनूं। जाड़ा हुआ तो बनात मगर सात रुपये गज से कम नहीं। खैर ये तो हुआ सुबह और शाम, तीसरे पहर काशानी मखमल की आसिफ खानी जिसमें रेशमी गोट के अतिरिक्त गंगा-जमनी किमखाब की उमदा बेल टंकी हुई। लाल रंग का नेफा, पजामा अगर ढीले पांयचों का हुआ तो कलीदार और इतना नीचा कि ठोकर के इशारे से दो-दो कदम आगे, और तंग मोहरी का हुआ तो आधी पिंडलियों तक चूड़ियां और ऊपर बदन की खाल की तरह मढ़ा हुआ रेशमी नाड़ा घुटनों बीच लटकता हुआ, और इसमें बिना ताले की कुंजियों का गुच्छा। तात्पर्य यह कि मिर्जा साहब इस आन-बान से छैला बने हुए बीच बाजार छम-छम करते चले जाते थे।

कलीम का मिर्जा मुशायरे की महफिल से परिचय हुआ। शनैः शनैः मिर्जा साहब कलीम के मकान पर पधारने लगे। यहाँ तक कि कुछ दिनों से तो दोनों में ऐसी गाढ़ी छनने लगी थी मानो एक जान दो शरीर थे। कलीम को मिर्जा के मकान पर जाने का भी अवसर नहीं मिला, मगर मिर्जा शाम को तो कभी-

कभी लेकिन सुबह-सबेरे नियमित रूप से आते और दिन भर कलीम के पास रहते। मिर्जा ने अपनी असलियत कलीम पर जाहिर न होने दी। कलीम यही समझता था कि जमादार की छोड़ी हुई सारी धन-सम्पति मिर्जा को मिली है और वह जमादार के जनानखाने को मिर्जा का जनानखाना, जमादार के दीवानखाने को मिर्जा का दावानखाना और जमादार के बेटे-पोतों के नौकरों को मिर्जा के नौकर समझता था। इस भ्रम में वह घर से निकला तो सीधा जमादार की हवेली की ड्यौढ़ी पर जा उपस्थित हुआ। बार-बार के पुकारने और कुंडी खटखटाने से दो लौंडियां चिराग लिये हुए भीतर से निकलीं और उनमें से एक ने पूछा, "कौन साहब हैं और इतनी रात गये क्या काम है ?"

कलीम : "जाओ मिर्जा को भेज दो।"

लौंडी : "कौन मिर्जा ?"

कलीम : "मिर्जा जाहिरदार बेग जिनका मकान है, और कौन ?"

लौंडी : "यहां कोई जाहिरदारबेग नहीं है।"

इतना कहकर लौंडी किवाड़ बंद करने ही वाली थी कि जल्दी से कलीम ने कहा, "क्यों जी क्या यह जमादार साहब का महलसरा नहीं है ?"

लौंडी : "है क्यों नहीं।"

कलीम : "फिर तुमने यह क्या कहा कि यहां कोई जाहिरदारबेग नहीं। क्या जाहिरदारबेग जमादार साहब के उत्तराधिकारी नहीं हैं ?"

लौंडी : "जमादार के उत्तराधिकारियों को खुदा सलामत रखे। मुआ जाहिरदारबेग जमादार का वारिस बनने वाला कौन होता है ?"

दूसरी लौंडी : "अरी कमबख्त, ये कहीं मिर्जा बांके के बेटे को न पूछते हों वह हर जगह अपने आपको जमादार का बेटा बताया करता है (कलीम को सम्बोधित करके) क्यों मियां वही जाहिरदारबेग न जिनकी रंगत पीली-पीली सी है, आँखें कंजी, छोटा कद, दुबला बदन, बहुत बने-ठने रहा करते हैं।"

कलीम : "हां-हां, वही जाहिरदारबेग।"

लौंडी : "तो मियां उस मकान के पिछवाड़े कंडों का टाल के बराबर एक छोटा-सा कच्चा मकान है, वह उसी में रहते हैं।"

कलीम ने वहां जाकर आवाज लगाई तो कुछ देर बाद मिर्जा साहब नंग-धड़ंग जांघिया पहने हुए बाहर निकले और कलीम को देखकर शर्माये, बोले—"आहा! आप हैं। क्षमा कीजियेगा, मैं समझा कोई और साहब हैं। बन्दे को कपड़ा पहन कर सोने की आदत नहीं, मैं जरा कपड़े पहन आऊँ तो आपके साथ चलूं।"

कलीम—"चलियेगा कहां ? मैं तो आप ही के पास आया हूँ।"

मिर्जा—"फिर अगर कुछ देर तशरीफ रखना मंजूर हो तो मैं अन्दर परदा करा दूँ ?"

कलीम—"मैं आज रात को आप ही के यहां रहने की नीयत से आया हूँ।"

मिर्जा—"खुदा का शुक्र है, तो चलिये उस मस्जिद में तशरीफ रखिये, बड़ी रौनकदार जगह है। मैं अभी आया।"

कलीम ने मस्जिद में आकर देखा तो पता चला कि एक बहुत पुरानी छोटी-सी मस्जिद है वह भी मस्जिद-ए-ज़रार (मदीने की एक पुरानी मस्जिद) की तरह उजाड़ और डरावनी। न कोई हाफ़िज़ है, न मुल्ला, न कोई विद्यार्थी न मुसाफ़िर! हज़ारों चमगादड़ें इसमें रहती हैं जिनके बेवक्त उड़ते रहने से कान के परदे फटे जाते हैं। फ़र्श पर इतनी बीट पड़ी है कि उसी से खरंजा बिछ गया है। विवश होकर मिर्ज़ा की प्रतीक्षा में कलीम को इसी मस्जिद में ठहरना पड़ा। मिर्ज़ा आये भी तो इतनी देर के बाद कि कलीम निराश हो चुका था। इससे पहले कि वह शिकायत करे, मिर्जा साहब सफ़ाई देते हुए कहने लगे कि बन्दे के घर में कई दिन से तबीयत ख़राब चल रही है। हृदय रोग अर्थात् दिल धड़कने की बीमारी है। मैं जो आप के पास से गया तो उन्हें (बीवी को) बेहोशी की हालत में पाया। इसी वजह से देर हुई। पहले यह तो बताइये कि इस वक्त बन्दे के ऊपर मेहरबानी करने का कारण क्या है ?"

कलीम ने बाप की मांग, अपना इन्कार, भाई का निवेदन और माँ की चिरौरी का सारा क़िस्सा कह सुनाया।

मिर्ज़ा—"फिर अब इरादा क्या है ?"

कलीम—"सिवाय इसके कि अब घर लौट जाने का इरादा तो नहीं है, और जो आपकी सलाह हो।"

मिर्जा—"ख़ैर, रात को किया गया निश्चय हराम होता है, सुबह होने दीजिये। आप बेझिझक आराम फ़रमाइये, मैं जाकर बिछौना वगैरह भेजे देता हूँ। और मुझको बीमार पत्नी की परिचर्या के लिए आज्ञा दीजिये कि आज उसकी बीमारी बहुत बढ़ गयी है।"

कलीम—"आख़िर मामला क्या है ? तुम तो कहा करते थे कि हमारे यहाँ दोहरी ज़नानी हवेलियाँ, अनेक दीवानखाने, कोठी के पिछवाड़े के बाग़, हौज़ और गुसलखाने, कटरे, गंज, दुकानें और सरायें हैं। मैं तो जानता हूँ इमारत की क़िस्म की कोई चीज ऐसी न होगी जिसे तुमने अपनी सम्पत्ति न बताया हो और कहां यह हाल है कि एक आदमी के वास्ते तुम्हारे पास रात भर के लिए जगह नहीं है। जो-जो बातें तुमने बतायीं उससे यह

सिद्ध होता था कि जमादार की छोड़ी हुई तमाम धन-सम्पत्ति पर तुम्हारा अधिकार है, लेकिन वास्तव में उस तमाम शान-शौक़त का लेशमात्र भी मैं नहीं देखता।"

मिर्ज़ा—"आपको मेरे बारे में झूठी बात बनाने की आशंका होना बड़े आश्चर्य की बात है। इतनी मुद्दत हम दोनों साथ-साथ रहे, खेद है आपने मेरी तबीयत और मेरी आदत को न पहचाना। यह बदली हुई हालत जो आप देखते हैं इसकी एक वजह है। बन्दे को दिवंगत जमादार साहब ने (खुदा ने जिनके सारे गुनाह बख्श दिये हैं) अपना दत्तक पुत्र बना लिया था और वे मुझे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करके मरे थे। शहर के तमाम रईस इस बात को जानते हैं। उनके निधन के बाद लोगों ने इसमें अड़चनें डालीं और झगड़ा किया। आप जानते हैं बन्दा झगड़े-बखेड़े से कोसों दूर भागता है। अयोग्य लोगों का साथ और कठिन परिस्थिति देखकर मैं पीछे हट गया। लेकिन किसी में इन्तजाम करने का ढंग, व्यवस्था बनाये रखने का हौंसला नहीं। उसी दिन से अन्दर-बाहर शोर मचा हुआ है, आपस में सलाह हो रही है कि बन्दे को मना ले जायें।"

कलीम—"लेकिन आपने कभी इसका ज़िक्र भी नहीं किया।"

मिर्ज़ा—"अगर मैं आपसे या किसी से ज़िक्र करता तो चारित्रिक दृढ़ता से वंचित और लाज-शर्म रहित ठहराता। अब आपको खड़े रहने में तकलीफ होती है, आज्ञा दीजिये कि मैं जाकर बिछौना भिजवा दूँ और बीमार पत्नी की देखभाल करूँ।"

कलीम—"खैर, मजबूरी है, लेकिन पहले एक चिराग़ तो भेज दीजिये। अंधेरे की वजह से तबीयत और भी घबराती है।"

मिर्ज़ा—"चिराग़ क्या मैंने तो लैम्प जलवाने का इरादा किया था, मगर गरमी के दिन हैं, पतंगे बहुत जमा हो जायेंगे और आप ज़्यादा परेशान हूजियेगा। और इस मकान में अबाबीलों की भी भरमार है। रोशनी देखकर गिरनी शुरू होंगी और आपका बैठना मुश्किल कर देंगी। थोड़ी देर सब्र कीजिये कि चाँद निकला जाता है।"

कलीम जब घर से निकला तो खाना तैयार था, मगर वह इस क़दर आवेश में था उसने खाने की ज़रा भी परवाह न की और बिना खाये निकल खड़ा हुआ। मिर्ज़ा से मिलने के बाद वह इन्तज़ार में था कि आखिर मिर्ज़ा खुद पूछेंगे ही, तो कह दूँगा। मिर्ज़ा को यूँ तो खाने के बारे में पूछना ज़रूर चाहिये था, क्योंकि पहले तो रात कुछ ऐसी ज़्यादा नहीं गयी थी, दूसरे यह उसे मालूम हो चुका था कि कलीम घर से लड़कर निकला है और तीसरे, दोनों में हद दर्जे

की बेतकल्लुफ़ी थी लेकिन मिर्ज़ा ने जान-बूझकर खाने की चर्चा नहीं की और कलीम बेचारे का भूख के मारे यह हाल कि मस्जिद में आने से पहले उसकी अंतड़ियों ने आयत कुल हू अल्ला पढ़नी शुरू कर दी थी, यानी वह बेदम हो रहा था। जब उसने देखा कि मिर्ज़ा किसी तरह इस विषय पर नहीं आता और जल्दी ही रात भर के लि वहाँ से चला जाना चाहता है, तो बेचारे ने बेशरम बनकर खुद ही कहा, "सुनो यार, मैंने खाना भी नहीं खाया।"

मिर्ज़ा—"सच कहो! नहीं, झूठ बहकाते हो।"

कलीम—"तुम्हारे सिर की क़सम मैं भूखा हूँ।"

मिर्ज़ा—"खुदा के बन्दे, तो आते ही क्यों नहीं कहा? अब इतनी रात गये क्या हो सकता है? दुकानें सब बंद हो गयीं, और जो एक-दो खुली है तो बासी चीजें रह गयी होंगी जिनके खाने से उपवास बेहतर। घर में तो आज आग तक नहीं सुलगी। मगर सचमुच ही तुम से भूख की बर्दाश्त मुश्किल मालूम होती है। भूख के राक्षस को परास्त कर देना बड़ी हिम्मत वालों का काम हैं। एक तरकीब समझ में आती है कि जाऊं छदामी भड़भूजे के यहां से गरमागरम खस्ता चने की दाल बनवा लाऊं। बस एक धेले की मुझको और तुमको दोनों को काफ़ी होगी। रात का वक़्त है।"

अभी कलीम कुछ कहने भी नहीं पाया था कि मिर्ज़ा जल्दी से उठ बाहर गये और पलक झपकते में चने भुनवा ला । मगर धेले के कहकर गये थे, या तो कम लाये या उन्होंने रास्ते में ही दो-चार फंकियां लगायीं, इसलिए कि कलीम के सामने दो-तीन मुट्ठी चने से ज़्यादा न थे।

मिर्जा—"यार हो बड़े खुशक़िस्मत, इस वक्त भाड़ मिल गया। वल्लाह जरा हाथ तो लगाओ, देखो तो कैसे गरम-गरम भुने हैं और सौंधी-सौंधी महक भी अजब दिल-लुभावनी है कि बयान नहीं हो सकता। हैरानी की बात है कि लोगों ने ख़स और मिट्टी का इत्र निकाला मगर भुने हुए चनों की तरफ़ किसी का ध्यान नहीं गया। किसी भी हुनर में कमाल हासिल करना माने रखता है। देखिये, इतनी तो रात गयी है मगर छदामी की दुकान पर भीड़ लगी हुई है। बन्दे ने सच ही सुना है कि हुजूर-वाला के खास महल से छदामी की दुकान का चना नियमित रूप से लगकर जाता है। सच, आप ज़रा ग़ौर से देखिये, क्या कमाल करता है कि भूनने में चनों को सुडौल बना देता है। भई तुम्हें मेरे सिर क़सम सच कहना, ऐसे खूबसूरत, बढ़िया तराश के, सुडौल चने तुमने पहले भी कभी देखे थे? दाल बनाने में इसको यह कमाल हासिल है कि टूटने-फूटने की बात तो दूर, किसी दाने पर खरोंच तक नहीं। और दानों की रंगत देखिये, कोई बसन्ती है, कोई पिस्तई, अर्थात् दोनों रंग सुन्दर। यूँ तो सैकड़ों प्रकार के

अनाज और फल धरती से उगते हैं लेकिन चने का स्वाद कोई नहीं पाता। आपने वह एक मसख़रे की नीतिकथा सुनी है ?"

कलीम : "फ़रमाइये ।"

मिर्ज़ा : "चना एक बार हज़रत मीकाईल की सेवा में, जिन्हें ख़ुदा के बन्दों के भरण-पोषण का भार सुपुर्द है, फ़रियाद लेकर पहुँचा कि या-हज़रत मैंने ऐसा क्या अपराध किया है कि जैसे ही मैंने ज़मीन से सिर बाहर निकाला अत्याचार के तीर चलने लगे। खाने की चीजें और भी हैं मगर जो ज़ुल्म मुझ पर होते हैं और किसी पर नहीं होते। उगने-बढ़ने के साथ-साथ ही मेरी काट-छाँट होने लगती है। मेरी कोंपलों को तोड़कर आदमी साग बनाते और मुझ कच्चे को खा जाते हैं। जब ज़रा वज़नदार हुआ तो ख़ुदा झूठ न बुलवाये, आदमी, बकरी, बैलों और भैंसों के पेट रूपी नरक का ईंधन हुआ। रहा दाना, उसको चक्की में दले, घोड़ों को खिलायें, भाड़ में भूनें, बेसन पिसाएं, खौलते हुए पानी से उबालकर घुंघनी बनाएं, मतलब यह कि मुझ पर शुरू से आख़िर तक तरह-तरह की आफतें आती रहती हैं।···चने का हज़रत मीकाईल के दरबार में इस तरह निडर होकर चटर-पटर बोलना सुनकर दरबार में उपस्थित लोग इतने नाराज़ हुए कि हर आदमी उसे खाने को दौड़ा। यह हाल देखकर बेचारा चना हज़रत मीकाईल का अन्तिम निर्णय सुने बग़ैर वहाँ से भाग खड़ा हुआ।···सो हज़रत ये चने ऐसे स्वादिष्ट बने हैं कि फ़रिश्तों के लोभी दांत भी इन पर तेज हैं। खेद है कि इस समय नमक-मिर्च उपलब्ध नहीं किया जा सकता, वरना मीर मद्दू के कबाबों में यह ख़स्तापन और सोंधापन कहाँ ?"

शेरो सख़ुन

मीर

मैंने कहा फूल का कितना अस्तित्व है,
कली यह सुन कर हँस पड़ी,
सन्ध्या से ही कुछ बुझा बुझा सा रहता,
मेरा दिल तो जैसे निर्धन का दिया है,
जुदाई का दर्द, मिलने की आकांक्षा, रुचि की अभिलाषा भोग
मैं अपने साथ धरती के नीचे बड़ी उथल-पुथल ले गया ।
यह तो मनोनीत कारख़ाना है,
यहाँ वही है जो मान लो ।
दिल्ली की गलियाँ क्या थीं चित्रित पन्ने थे,
जो भी सूरत देखी वह एक चित्र थी ।
हम प्रेम के आरंभ में आग थे,
और अब मिट्टी हो गए अंत यही है ।
मेरी दशा बदलने पर चिन्ता न कर,
यह तो संसार में हुआ ही करता है ।
तेरे वियोग में निर्धन के विचार की तरह,
मेरा उखड़ा उखड़ा चिन्तन कहाँ कहाँ गया ।
यह तो जैसे फूल की सुगन्ध या बुलबुल का गाना थी ।
हाय जीवन कितनी जल्दी चला गया ।

दुनिया मेरे आगे

ग़ालिब

दुनिया मेरे आगे बच्चों का खेल है,
रात दिन मेरे आगे तमाशा होता रहता है;
मेरे लिये तो सुलेमान का तख़्त एक खेल है,
और ईसा का नबियों वाला चमत्कार मेरे लिये एक बात है;
नाम के अतिरिक्त मुझे संसार का आकार स्वीकार नहीं,
मेरे आगे वस्तुओं का अस्तित्व माया है और कुछ नहीं;
मेरे होते मरुस्थल रेत में छिप जाता है,
और नदी मेरे आगे मिट्टी पर माथा घिसने लगती है।

रंग-भूमि

गालिब

ए मन की भावनाओं के क्षेत्र में नव-आगुन्तको,
सावधान, यदि तुम्हें व्यंजन और मनोरंजक की लालसा है,
यदि तुम्हारे पास ऐसी आँख है जो दूसरों की तबाही से,
सबक सीखती, मुझे देखो
और नसीहत सुनने वाले कान हों तो मेरी बात सुनो।
या तो रात को यह देखते थे कि रंग भवन का कोना कोना,
माली का दामन है या फूल बेचने वाले का हाथ है,
मदिरा पिलाने वाले का सौन्दर्य धर्म और ज्ञान का वैरी है,
और गाने वाले का गीत जैसे सन्तोष और चेतना छीने लिये जाता है,
मदिरा पिलाने वाले की चाल का मतवालापन और बाजे की मधुर ध्वनि,
आँखों के लिये जन्नत हैं तो कान के लिये स्वर्ग,
और सवेरे आकर उस महफ़िल में देखिये,
न तो वह आनन्द और हृदयस्पर्शी भावनाएं हैं, न वह उत्साह और उल्लास।
रात की रंग-रलियों के विरह से जला हुआ,
एक दीपक रह गया है वह भी बुझा हुआ है,
अदृश्य जगत से यह विचार मेरे लिये आते हैं,
ग़ालिब मेरी लेखनी की सरसराहट देवलोक की ध्वनि है।

फिर बहार आई

ग़ालिब

फिर इस ढंग से बहार आई
कि चाँद सूरज दर्शक बन गए।
ऐ धरातल के बसने वाले देख
संसार की सजावट इस को कहते हैं,
कि धरती इस सिरे से उस सिरे तक
मीनाकारी वाले आसमान का जवाब हो गई है;
जब हरियाली को कहीं और जगह न मिल सकी
तो वह पानी के ऊपर काई बन गई
हरियाली और फूल को देखने के लिये
नर्गिस नामक फूल को, जो आँख जैसा होता है, दृष्टि दे दी;
हवा में मदिरा जैसा प्रभाव है
पंखा झलना भी सुरापान जैसा है

ग़ालिब

जब कि तुझ बिन नहीं कोई

जब कि तेरे अतिरिक्त किसी और का अस्तित्व नहीं है,
फिर हे प्रभु यह हंगामा (आपाधापी) क्या है ?
यह परियों जैसे मुखड़े वाले लोग कैसे हैं ?
यह हावभाव यह नखरे और यह चुलबुलाहट क्या है ?
यह सुगंधित लटों में घुँघरालापन क्यों है ?
सुरमे वाली आँख की दृष्टि क्या है ?
यह हरयाली और यह फूल कहाँ से आए हैं ?
बादल क्या चीज़ है और हवा क्या है ?

ग़ालिब

दो शेर

[एक]

आयु रूपी घोड़ा दौड़ रहा है देखिये कहाँ थमता है;
न बाग पर हाथ है और न पाँव रकाब में हैं।

•

यदि मेरे किये हुए पापों का दण्ड मिलता है,
तो मुझे जिन पापों के करने की लालसा रह गई उसकी
शाबाशी मिलनी चाहिये।

तारा

इकबाल

तू चाँद से डरता है कि सवेरे से भयभीत है ?
क्या तू सौन्दर्य के परिणाम से परिचित हो गया है ?
तुझ को यह डर है कि प्रकाश-पुँज लुट जायगा ?
क्या तुम को मिट जाने का वैसा ही धड़का है जैसा चिंगारी को ?
नभ ने धरती से दूर कुछ तुझ को दिया है,
चाँद की तरह तुझे नई ओढ़नी उढ़ाई ।

गज़ब है फिर तेरी नन्ही सी जान डरती है,
कि सारी रात तेरी काँपते गुज़रती है !

चमकने वाले पथिक, कैसा है तेरा व्यक्तित्व !
जो एक का चढ़ाव है दूसरे का उतार है ।
एक सूर्य के जन्म से लाखों तारे मर जाते हैं,
मृत्यु की नींद जीवन हाला की मस्ती है ।
कली के बिना होने में फूल के जन्म का रहस्य है,
लोप लोप है कि व्यक्तित्व का दर्पण है ।

प्रकृति के कारखाने में ठहराव असम्भव है,
काल चक्र में परिवर्तन का ही अस्ति

गज़ल

इकबाल

फिर पहाड़ और जंगल लाल फूलों रूपी दीपकों से जगमगाए
बाग़ का विहंग मुझे फिर गाने पर उकसाने लगा;
जंगल में फूल हैं कि परियों की पांत है,
उन के रंग ऊदे-ऊदे नीले-नीले और पीले-पीले हैं;
सवेरे की हवा फूल की पँखड़ी पर ओस के मोती रख गई,
और इस मोती को सूर्य की किरण चमकाती है;
यदि सौन्दर्य बे पर्दा है और उसने ओढ़नी उतार रक्खी है,
यदि उसे नगरों से वन अधिक प्यारे हैं तो फिर नगर अच्छे कि वन;
अपने मन में डूब कर जीवन का पता चला,
तू यदि मेरा नहीं बनता न बन अपना तो बन,
मन की दुनिया ? मन की दुनिया जलन और मस्ती, भावना और चाव,
मन का धन हाथ आ जाए तो फिर जाता नहीं है;
मन की दौलत छाँव है, आता है धन जाता है धन,
मन की दुनिया में न तो अंग्रेजों का राज है,
और न वहां शेख और ब्राह्मण होते हैं;
मुझको एक अवधूत की यह बात पानी-पानी कर गई
कि जब तू औरों के आगे झुक गया फिर न तेरा मन है न तन ।

समय

इकबाल

जो था वह है नहीं जो है वह रहेगा नहीं यही एक भेद की बात है।
समय जिस की प्रतीक्षा में है वह प्रकट होने वाला ही है।
मेरी सुराही से बूँद-बूँद कर के नई घटनाएं टपक रही हैं,
मैं अपनी रात दिन की स्मरणी का एक-एक मनका गिनता हूँ,
जानता तो सब को हूँ परन्तु हर एक से मेरा व्यवहार अलग-अलग है;
किसी का सवार, किसी की सवारी, किसी को चेतावनी का कोड़ा,
यदि तू सभा में सम्मिलित नहीं हुआ तो यह मेरा दोष है या तेरा;
मेरा ऐसा सुभाव नहीं कि किसी के लिये मैं रात की मदिरा रख लूं,
मेरी वक्रता और चक्कर को ज्योतिषी की आँख नहीं पहचानती,
जिसकी दृष्टि ज्ञानपूर्ण नहीं, उसका तीर निशाने पर नहीं बैठता;
पश्चिम के क्षितिज पर यह उषा नहीं रक्त की नदी है।
आने वाले कल की सब प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कल और आज तो
कहानियां है।

वह चंचल बुद्धि जिसने प्रकृति की शक्तियों को नंगा किया है
उसी की बेताब बिजलियों से उसका नीड़ संकट में है;
उनकी समीर, उनका वातावरण, उनके सागर और उनके जहाज़,
भंवर की गाँठ कैसे खुले भँवर तो भाग्य का एक बहाना है;
नई दुनिया पैदा हो रही है पुराना संसार मर रहा है,
जिसको यूरोप के रहने वालों ने एक जुआघर बना दिया है;
हवा वही तेज़ है, झक्कड़ चल रहा है, परन्तु अपना दीपक जल रहा है,
वह संत पुरुष जिसको परमात्मा ने राजाओं के से ठाठ दिये हैं।

जिब्रील और इब्लीस

इकबाल

जिब्रील : ऐ मेरे पुराने साथी रंग और गन्ध की दुनिया कैसी है
इब्लीस : ताप और नाद, दर्द और दाग़, खोज और लालसा
जिब्रील : हर घड़ी आसमान पर तेरी बात होती है
क्या यह नहीं हो सकता की तेरा फटा हुआ दामन सिल जाय
इब्लीस : जा, ए जिब्रील तू इस भेद को नहीं जानता
मुझे मेरी मदिरा का मटका टूट कर मस्त कर गया
अब यहाँ मेरा गुज़ारा सम्भव नहीं, कभी सम्भव नहीं
यह बे-घर और बे-राह जगत कितना चुप है
जिस की निराशा के सारे मण्डल का अन्तर जलता है
उस के लिये निराश होना अच्छा है या निराश न होना
जिब्रील : तू ने नास्तिक होकर ऊँची-ऊँची जगहें खो दीं
खुदा की आँखों में अब फ़रिश्तों की क्या इज्ज़त रह गई
इब्लीस : मेरे साहस से मुट्ठी भर मिट्टी में उपज का धान है
मेरे उपद्रव बुद्धि और मेधा का ताना बाना हैं
तू तो केवल किनारे से ही अच्छाई बुराई का युद्ध देखता है
तूफान के थपेड़े कौन खा रहा है मैं कि तू ?
खिज्र भी अपंग है और इलियास भी
मेरे तूफ़ान नदियों नालों और नहरों में हैं
यदि कभी एकान्त में ईश्वर से मिलना हो तो पूछना
कि मानव कथा को किस के रक्त ने रंगीन कर दिया
मैं भगवान के हृदय में कांटे की तरह खटकता हूँ
तू केवल भगवान के नाम को रटता रहता है ।

वर्षा

नजीर अकबराबादी

काली घटाएँ आ कर मस्ती से तुल रही हों,
और भली भाँति लाल पगड़ियाँ खुल रही हों,
बहारें सब के मुखड़ों पर धुल रही हों,
ओस की बूँदें जैसे हर फूल पर तुल रही हों,
क्या क्या मची हैं यारों बरसात की बहारें !
सावन की काली रातें संकेत बिजलियों के,
जुगनू चमक रहे हैं जैसे कि नभ पर तारे,
लिपटे गले से सोतें पूरब के चाँद के टुकड़े,
गिरती है छत किसी की कोई खड़ा पुकारे,
क्या क्या मची हैं यारों बरसात की बहारें !
आकर कहीं मज़े की नन्हीं फुवार बरसे,
मुखड़ों का रंग छूटे हुस्नो निखार बरसे,
एक ओर ओलती की लम्बी क़तार बरसे,
छाजो उमँड के पानी मूसल की धार बरसे,
क्या क्या मची हैं यारों बरसात की बहारें ।
हर पहाड़ की कमर तक हरियाली लहलहाती है,
मेंह झड़ा-झड़ बरस रहा है, पानी बहा जा रहा है,
पशु पक्षी मिल-मिल के नहा रहे हैं,
मेंढक टर-टर कर रहे हैं और झींगुर अपनी बोली बोल रहा है,
क्या क्या मची है यारों बरसात की बहारें !
काली घटा से हर दम मेह की धारें बरस रही हैं,
और उसी में बगुलों की सौ सौ पातें उड़ रही हैं,
कोयल की कूक और पपीहे की हूक सुनाई दे रही है,
और मोर मस्त होकर कोकिल की तरह बोल रहे हैं,
क्या क्या मची हैं यारों बरसात की बहारें !

होली

नजीर अकबराबादी

जब आई होली रंग भरी सौ चंचलताओं और चपलताओं से मटक मटक;
और घूंघट के पट खोल दिये वह रूप दिखाया चमक चमक;
कुछ मुखड़ा करता दमक दमक, कुछ अपरन करता झमक झमक;
कुछ चंचलता से उछली कूदी कुछ कूदी बाहें थिरक थिरक—
यह रूप दिखा कर होली के जब नैन रसीले कुछ भटके,
मँगवाए थाल गुलालों के फिर डाले रंगों के मटके;
फिर स्वांग बहुत तैयार हुए और ठाठ खुशी के झुरमुट के,
मन मुदित हुए, हुरदंग हुआ और नाचने गाने के खटके,
मृदंगें बजीं ताल बजे कुछ खनक खनक कुछ धमक धमक ।

कन्नड़ साहित्य

चयन :

डा० आर० एस० मुगलि

अनुवाद :

डा० हिरण्मय

अनुक्रम

एतिहासिक समीक्षा		234
	• शिला लेख के पद्य	237
पंप	• द्रौपदी का मान भंग	239
रन्न	• वैशंपायन का सरोवर	242
दुर्गसिंह	• उस सास की कथा जिसने बहू की बात नहीं मानी	244
नागचन्द्र	• पतिव्रता सीता	247
जन्न	• मनसिज की माया	249
षडक्षर देव	• तिरु कोलविनाचि का प्रलाप	251
मुद्दण	• मुद्दण-मनोरमा	253
अल्लम प्रभु	• शिवशरणों के वचन	256
बसवेश्वर	• गज भारी गिरि भारी	257
महा देवि यक्का	• वन सब तुम हो	259
हरिहर	• कारण-पुरुष-बसव	261
राघवांक	• चण्डालिनियों का दुराग्रह	263
कुमार व्यास	• उत्तर कुमार की शेखी	265
पुरन्दर दास	• हरिदासों के कीर्तन	267
कनक दास	• अधीर न बनो	268
कनक दास	• ज्ञानी के लिए अति सुलभ	269
रत्नाकर वर्णि	• रत्नाकर का जीवन दर्शन	271
सर्वज्ञ	• अनुभव-वेद	274
	• लोक गीत	276

	• मायका	276
	• लोरी	277
	• बांझ	277
वी० एम० श्रीकण्ठय्या	• कन्नड़-कन्या	278
पंजे मंगेशराव	• दक्षिण पवन क्रीड़ा	280
डी० डी० गुण्डप्पा	• विहग-मार्ग	282
कुवेंपु	• बहार आ रही है	284
श्री निवास	• कब समझेगा मानव-कुल	286
द० रा० बेंन्द्रे	• प्रातः काल	287
पु० ति० नरसिंहाचार	• यदुगिरि की रात्रि	289
जी० पी राजरत्नम्	• मद्य की माया	290
श्री मुगलि	• मंदार फूला	292
वी० कृ० गोकाक	• सागर पूर्णिमा	293
गोपाल कृष्ण अडिग	• एक नूतन राज्य रचेंगे	295

ऐतिहासिक समीक्षा

इस संकलन में कन्नड के प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक काव्य के कतिपय अनूठे उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। स्थानाभाव के कारण इससे अधिक इस में शामिल करना संभव नहीं रहा।

कन्नड़ेतर पाठकों के उपयोगार्थ इस संकलन में जो काव्यांश दिए गए हैं उनके सन्दर्भों की विशेषताओं का थोड़ा-बहुत परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है। शिलालेखों से दिए गए पद्यों में प्रथम पद्य की वस्तु सरस्वती की प्रार्थना है जो इस संकलन के लिए भी उचित जँचती है। इस पद्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सरस्वती के स्वरूप की एक ऐसी मौलिक उद्-भावना है जो सारे भारतीय साहित्य में शायद ही अन्यत्र प्राप्त हो सके। विशाल ब्रह्माण्डों रूपी चमकदार मणियों से बनायी गयी जपमाला दिनरात फेरती हुई सरस्वती यहाँ पर वर्णित है। यह भाव एक उदात्त कल्पना ही नहीं है, वरन् समस्त विश्व की दृष्टि तथा शक्ति का प्रतीक है जिसके द्वारा वह अपने भक्तों की रक्षा करती है।

दूसरे पद्य में भारत के स्वरूप की कवि कल्पना निरूपित है जिस में मार्मिकता तथा अभिव्यक्ति की सहजता है। कलियुग विपरीतन सहज चरित्र चित्रण का एक ऐसा नमूना प्रस्तुत करता है जो शिला-लेखीय साहित्य में सामान्यता पाया जाता है।

'कविराजमार्ग' में ऐसे बहुत-से पद्य मिलते हैं जिनमें अभिव्यक्त-भाव उसके मूल आधार ग्रन्थ में नहीं पाये जाते। इस संग्रह में ऐसा एक प्रसंग शामिल किया गया है जिसमें धार्मिक तथा बौद्धिक सहिष्णुता का महान् तत्व प्रतिपादित है जिसको मनुष्य अपनी एकमात्र संपत्ति मानकर गर्व कर सकता है। उल्लेखनीय बात यह है कि एक हज़ार वर्ष पूर्व कन्नड राज्य के एक कवि तथा आलोचक ने इस तत्व का निरूपण किया था।

पंप के 'कविक्रमार्जुनविजय' से लिया गया उदाहरण उस गंभीर तथा नाटकीय प्रसंग से संबद्ध है जिसमें दुर्योधन की राज-सभा में द्रौपदी अशिष्टता

के साथ घसीटी जाती है जब कि पाण्डव असहाय प्रेक्षक बने रहते हैं। पंप की असाधारण क्षमता की यह विशेषता है कि जहाँ पात्र का विकास-क्रम बना रहता है वहाँ प्रसंग अत्यन्त गंभीर बनता जाता है।

रन्न के 'गदायुद्ध' से लिए गए 'वैशंपायन-प्रसंग' में भीम और दुर्योधन के व्यक्तित्व की आभा नाटकीय ढंग से प्रकट होती है।

नागचन्द्र की रामायण से लिए गए काव्यांश में वर्णित प्रसंग यह है कि रावण द्वारा सीता को अपने वश में करने के लिए ऐसे कुछ चमत्कारपूर्ण भव्य बिंब प्रस्तुत किये जाते हैं जो नागचन्द्र की प्रतिभा तथा काव्य-वैभव का परिचायक हैं। नागचन्द्र की कला उस समय निखर उठती है जिस समय सीता जहाँ, एक ओर रावण के प्रतिलोभन का स्पष्ट निराकरण करती है वहाँ दूसरी ओर, वह अपने पति राम के प्रति अटूट प्रेम प्रकट करती है।

जन्न के 'यशोधर चरित्र' से उद्धृत काव्य-खण्ड में सुप्रसिद्ध वह जैन-कथा, जिसमें अहिंसा और जीव दया का बोध कराया गया है, इतने सुन्दर तथा नाटकीय ढंग से कही गयी है कि पर-पुरुष के साथ अनुचित संबन्ध रखने वाली अपनी पत्नी की हत्या करने के प्रलोभन से राजा अपने को रोक लेते हैं।

कवि मुद्दण और मनोरमा के बीच का परस्पर संवाद रोचक ही नहीं, उपादेय भी है। साथ ही, इस बात का परिचय मिलता है कि निरीह व्यंग्यपूर्ण संवाद द्वारा किस तरह पारिवारिक जीवन को मधुर बनाया जा सकता है तथा साधारण जनता के उपयोगार्थ गद्य में साहित्य सृजन की कितनी आवश्यकता है। कन्नड के आधुनिक युग के संधिकाल में उपस्थित हो मुद्दण ने आधुनिक कन्नड की कुछ आवश्यकताओं और विद्याओं की ओर संकेत किया है।

कन्नड़ के वचन आध्यात्मिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के सुन्दर माध्यम बने हुए हैं। उनमें सर्वश्रेष्ठ वचन सहज तथा संयत कल्पना और भावाभिव्यंजना का सुन्दर परिचय प्रस्तुत करते हैं।

राघवांक विरचित 'हरिश्चन्द्र काव्य' के पद्य-भाग का दावा है कि इस उपादान के निरूपण में जो नूतन उद्भावना है वह संस्कृत या प्राकृत के मूल-ग्रन्थ में नहीं पायी जाती। हरिश्चन्द्र को गिराने के उद्देश्य से विश्वामित्र द्वारा तीन चाण्डाल-कन्याओं की सृष्टि की गई है। जब ये स्त्रियाँ मधुर गाना गाती हैं तब राजा प्रसन्न होकर उन्हें पुरस्कार देना चाहते हैं। वे राजदण्ड माँगती हैं, पर राजा इनकार करते हैं। तत्पश्चात् वे राजा से विवाह करने का साहस करती हैं। इस अवसर पर राजा और स्त्रियों के बीच में जो संभाषण चलता है वह बड़ा ही चित्ताकर्षक है। अंत में राजा हरिश्चन्द्र यह निर्णय

करते हैं कि उन से विवाह करने की अपेक्षा राज्य का त्याग करना ही श्रेयस्कर है। इस प्रकार, राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्र के जाल में फँस जाते हैं।

हरिदासों के जो गीत यहाँ दिए गए हैं उनमें पुरन्दरदास का एक गीत है जिसमें महात्मा गान्धी द्वारा प्रतिपादित सत्य और अहिंसा की विजय की महत्ता घोषित की गई है। रत्नाकरवर्णि के 'भरतेश-वैभव' से उद्धृत पद्य में इस बात का परिचय मिलता है कि किस प्रकार भरतेश ने बाहुबलि को स्नेह से समझा-बुझा कर संभावित संघर्ष को दूर किया और विजय पायी।

काव्य-संकलन

शिलालेख के पद्य :

सरस्वती की प्रार्थना :

वह भारती (सरस्वती) हमारी जिह्वा पर निरन्तर निर्मल निवास करे जो अपनी शरण में आने वालों के हितार्थ ब्रह्मा द्वारा विस्तारित ब्रह्माण्ड-रूपी मणिमाला अपने हाथ में लिए दिन रात फेरती हुई जपती रहती है ।

भारत का वर्णन :

जब प्रेमियों के कोमल हृदयरूपी नगाड़े बजते हैं तब रमणीय भ्रमरदल गा उठता है; मंदमारुत लालकिसलय रूपी हाथों से ताल देता है; अंतरंगरूपी रंगमंच पर मन्मथ रति को नचाता है । यह तो पृथ्वी का उत्साहवर्धक भरत-नाट्य है जो सहज ही भारत का नाम है ।

कलियुग विपरीतन :

साधु के लिए साधु, माधुर्य के लिए माधुर्य
सताने वाले के लिए कलियुगविपरीतन,
यह और कोई नहीं, माधव हैं ।
भलाई करने वाले की भलाई, वैसे ही बुराई करने वाले
की बुराई करने में समर्थ हैं कलियुगविपरीतन;
पुराकृत ही यहां आ मिलता है ।
हमारा क्या बिगाड़ सकता है, ऐसा समझकर

बँधे हुए शेर को छोड़ देने से जो हालत होती है
वैसे ही कलियुगविपरीतन का अहित करने वाले
मर मिटते हैं, इसमें संदेह नहीं ।

रहस्य-वाणी :

अमात्य लक्ष्मीधर ऐसे सहज गुण संपन्न हैं कि उनकी माता ने उन्हें दूध पिलाते हुए उनके कानों में तालाब बनाओ, कुंआ खुदवाओ, मंदिर बनवाओ, मुसीबतों में पड़ने वाले अनाथों का उद्धार करो, मित्रों को सहारा दो, विश्वास करने वालों को आश्रय दो, शिष्टों का पालन करो— इत्यादि बातें फूँक दी थीं ।

कन्नड-राज्य का वर्णन :

कानेरी से गोदावरी तक फैला हुआ कन्नड का राज्य वह निवसित जनपद है जो वसुधावलय में विलीन विशद विशिष्ट राष्ट्र है ।

उस राज्य के लोग ऐसे चतुर हैं कि वे उचित पद प्रयोग करते हैं; विचारकर बोलने की सामर्थ्य रखते हैं, बिना पढ़े ही सहज ही काव्य-सृजन में परिणतमति हैं ।

वे सुभट हैं, कवि हैं, सुप्रभु हैं,
सुंदर हैं, अभिजात हैं, गुणी हैं,
अभिमानी हैं, अत्युग्र हैं, गंभीर हैं,
विवेकी हैं ।

दूसरों के प्रति सहिष्णुता:

धर्म का वरविचार कर सहने की
जो सामर्थ्य है वही तो कंचन है;
जो विवश हो कष्ट सहते हैं उनके
लिए जैसा कतवार वैसा ही कंचन ।

द्रौपदी का मान-भंग

पंप

दुःशासन ने मेरी केश-राशि को पकड़ कर घसीटा है यह सोचते हुए लज्जा के मारे द्रौपदी उस सभा में यों बोली :—

जिसने मेरी केश-राशि को पकड़ कर मुझे घसीटा है उसका वध करा कर, उसकी अंतड़ियों की माल से अपनी इस केश-राशि को उसी तरह बंधवाऊँगी जिस तरह वह पहले बँधी थी।

द्रौपदी की ये बातें सुनकर भीमसेन अपने को संभाल नहीं सके:—

"मैं अपने दादा के सत्य का उल्लंघन करूँगा, इस उल्लंघन शब्द में पिशाच सवार होगा। इस तरह नव मेघ-गर्जन की भाँति वायुपुत्र भीमसेन यों बोले मानों उनकी प्रबल कोपाग्नि के लिए द्रुपद-सुता की बातें धूप का काम देने लगीं।

तुम्हारी क्रोध-भरी एक बात से ही कौन कहता है कि मेरा कोप महा प्रलय का रूप धारण नहीं करेगा ? मैं अपनी गदा के प्रहार से भयंकर युद्ध में खल दुःशासन को पछाड़ कर, उसके उदर के दो टुकड़े करके, उसकी अंतड़ियों से, हे द्रौपदी, तुम्हारे जूड़े को बाधूँगा।

दुःशासन की छाती को फाड़कर गरजते हुए लाल रक्त को पिऊँगा। दुर्योधन की जांघों को रत्नों की कांति से चमकने वाले किरीट सहित गदाघात से चूर चूर करूँगा। दुश्मनों को देख कर मेरी आँखों से अंगारे निकल रहे हैं-हे द्रौपदी, देखो।

हम लज्जित हुए, हमारे मन में क्रोध भी आया, फिर भी ये कौरव अब भी जीवित हैं, इनके मुण्ड रुण्ड पर लगे हुए हैं। अब मैं कभी क्रोध न करने वाले दादा के सत्य की परवाह नहीं करूँगा और कौरवों को पकड़ कर चीर कर खाऊंगा। नहीं तो क्या मैं भीमसेन कहलाने योग्य हूँ ?

इस प्रकार पांचाल राज-सुता को सान्त्वना देते हुए भीमसेन फिर यों बोले:—-

हे भीष्म सुनो, हे द्रोण सुनो, कृप सुनो, मंदर पर्वत से समुद्र को हिलाने वाले राक्षसों का नाश करने वाले देवताओं की भाँति मैं अपनी बाहु-रूपी मंदर से समुद्र रूपी बैरी सभी कौरवों का संहार करूँगा। यही मेरी प्रतिज्ञा है। आप लोगों की सभा में मैं बोल रहा हूँ।

प्रलय काल के मेघ-गर्जन से जिस तरह पर्वत हिलने लगते हैं, भूमि काँपने लगती है, उसी तरह महा प्रतिज्ञारूढ़ भीमसेन गरज कर जब बोले तब कौरव समुद्र के बीच में स्थित पर्वत की तरह बन गये। कुरुवृद्ध, बुद्धिवृद्ध, गांगेय धृतराष्ट्र से बोले:—

भरत, ययाति, कुत्स, पुरु कुत्स, पुरूरवा-इत्यादि के क्रम से जो चन्द्र-वंश चला आया है वह अब तुम्हारे पुत्र के कारण से उसी तरह नष्ट हो रहा है जिस तरह एक छोटे से कील से आग निकल कर भभकते हुए जलती है।

जब वे अत्यन्त दुख के साथ धृतराष्ट्र से बोले तब द्रोण अश्वत्थामा, कृप, विदुर आदि यह कहते हुए कि जिस तरह हाथी का दांत झुकाया नहीं जा सकता उसी तरह आपके समझाने पर भी न दुर्योधन अपनी उद्दण्डता को छोड़ेगा, न भीमसेन अपनी महान प्रतिज्ञा को त्यागेगा, बिगड़ा घर नहीं बनेगा, ये सब अपनी अपनी करनी का फल भोगेंगे, यह कह कर अपने अपने घर की ओर चले। उसके बाद भीमसेन ने धर्मराज से कहा कि हम लोगों की निष्क्रियता ही इसका कारण है। चलिए, हम चलेंगे। जब वे राजमहल से निकल पड़े तब धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को नाना प्रकार से समझाया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। तदनंतर उन्होंने यह समझ कर कि परस्त्री को अपने घर में रखना उचित नहीं है, द्रौपदी को भेज दिया। द्रुपदराज-पुत्री के साथ जब पाण्डव चुपचाप वहाँ से चल पड़े तब उनके वियोग-दुख से पीड़ित उपस्थित पुरजन आपस में यों बोलने लगे:—

कितने बड़े राजा हैं यमनन्दन !
कितने बड़े राजा हैं भीमसेन !
कितने बड़े राजा हैं अर्जुन !
कितने बड़े राजा हैं जुड़वाँ भाई !
हाय ! ऐसी दशा हुई इनकी !
अपनी ही खुशी से जुआ खेल कर,
उसमें हार कर अपने राज्य को

गँवा कर ये पाण्डुनंदन
चले गये तो क्या हुआ ?
उन्हें इसकी चिंता न सतायेगी ?
जुए की जीत से प्राप्त इस राज्य के
लोभ में पड़ कर न जाने
दुर्योधन अपने कर्तव्य को
क्यों भुलाकर पागल हुआ !
हाय ! 'दूध को ही देखा, पर दण्ड को नहीं देखा।'
जुआ खेल कर किसी न किसी प्रकार
द्रुपद-सुता को प्राप्त करने के हेतु ही
दुःशासन तथा शकुनि की प्रेरणा से
इतना सारा बखेड़ा हुआ है।

—'विक्रमार्जुनविजय'
(पंप भारत)

वैशंपायन का सरोवर

•

रन्न

"जब तक मेरी आवाज़ नहीं सुनेगा तब तक यह कायर बाहर नहीं आएगा। इसको मैं भली भाँति जानता हूँ।"—इस प्रकार सोचते हुए भीमसेन उद्दाम कोपाटोप से भ्रकुटि तान कर—

"मैंने तुम्हारे अनुज के रक्त का स्वाद देखा, तुम्हारे बलरूपी जलनिधि का स्वाद देखा, अब इस सरोवर के जल को पीकर तुम्हारा स्वाद देखूँगा।

मेरी आवाज़ को सुनकर, मेरे उग्र रूप को खड़े होकर देख न सकने के कारण युद्ध भूमि को छोड़कर तुमने सरोवर में प्रवेश किया है। हे पगले, क्या तुमने इस प्रकार जीने की सोची है? पानी में रहनेवाली मछली की तरह हाय! तुम सरोवर में डूब कर सर्दी के शिकार बने हो! तुम अपने 'दुर्योधन' नाम को लज्जित कर रहे हो! हाय छिः, तुम्हारी ऐसी दशा! क्या मरने वाले फिर पैदा नहीं होते? बाहर आ जाओ, हथियार लो कौरवेन्द्र! कुरुकुल का मंथन करने वाला चलता हुआ वज्रस्वरूप भयंकर भीमसेन आया है। समझौता करने के लिए आये हुए हरि का तिरस्कार करनेवाला तुम्हारा वह अहंकार कहाँ गया? कृष्णा के अंबर और केश को पकड़ कर घसीटने वाला तुम्हारा वह मद कहाँ गया? कुन्ती के पुत्रों को ईर्ष्या के वश हो, जंगलों में मारा मारा फिरने के लिए मजबूर करने वाला वह घमण्ड कहाँ गया?"

इस प्रकार उद्दाम वीर भीमसेन कुरुवंशाधीश दुर्योधन को ललकारने लगा। फिर चुप न रह कर—

जटासुर तथा हिडिंबासुर वैरी भीमसेन ने ऐसा सिंहनाद किया कि ब्रह्मांड फटने लगा, महापर्वत हिलने लगा, भूमि चकराने लगी और देवता काँपने लगे।

अनिलपुत्र के सिंहनाद को सुनकर भयभीत हो, सरोवर के सभी पक्षी इस प्रकार उड़ गए मानों सरोवर का वक्षस्थल ही ऊपर उठ गया हो।

जब भीम की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुई तब सरोवर का पानी ऐसा दिखाई देने लगा मानों चूल्हे पर रखा हुआ पानी उबल रहा हो और पानी की मछलियों की ऐसी दशा हो गई, मानों चूल्हे पर चावल उबल रहा हो।

इस प्रकार उत्तुंगसिंहकेतन भीम जब सिंहनाद करने लगे तब पानी में वास करने वाले प्राणियों के प्राण-पखेरू उड़ने लगे जो इस तरह दिखाई पड़ने लगे कि पानी में उबलने वाले गोल-गोल चावल के दाने हों।

कोपारुण-नेत्र हो, जब भीमसेन अजित कंठीरव की तरह और अनभ्र घनत्व की तरह गरजने लगे तब आवाज़ को सुनकर पानी में छिपे हुए दुर्योधन के शरीर से पसीना छूटने लगा।

जब गदाधारी फणिराजकेतन दुर्योधन अपने ऊपर फैले हुए नील कमलों के बीच से बाहर निकले तब उनकी उन्नत दो भुजाएँ तोरण की तरह दिखाई देने लगीं और उनके मुकुट की उज्ज्वल मणियों की छवि से उत्पन्न इन्द्रधनुष मन को मोहित करने लगा।

जिस प्रकार भूमि से कालाग्नि निकलती है उसी प्रकार साहस-गर्वालंकृत दुर्योधन उस सरोवर के बीच में से फुर्ती के साथ बाहर निकले और लाल लाल आँखों से आठों दिशाओं की ओर भीम के हेतु देखने लगे तथा अपनी भुजाएँ रूपी गदा हिलायीं।

—साहसभीमविजय (गदायुद्ध) से

उस सास की कथा जिसने बहू की बात नहीं मानी

•

दुर्गसिंह

सालिग्राम नामक एक महा अग्रहारमें ग्रामाधिपति की पत्नी कुमति नामक स्त्री ने किसी दिन अपनी बहू सौमित्री को लक्ष्य करके यों कहा—

मैं पड़ोस के गाँव हो आऊँगी। तुम तब तक घर की देखभाल करती रहो। जब सास ऐसा कह कर चली तब सौमित्री के यहाँ एक ब्राह्मण आकर बोला—"बेटी, यदि तुम बारह ब्राह्मणों को क्षीर सहित स्वादिष्ट भोजन कराओगी तो तुम्हें कनकलाभ, पुत्रलाभ होगा और तुम्हारी मनोकामना की सिद्धि होगी"। यह सुन कर वह सुमति अपने मन में यों सोचने लगी—

श्लोक—ब्राह्मणान्नावमन्येत नावमन्येत देवताः।
सर्वदेवमयो विप्रो न तद्वचनमन्यथा॥

भावार्थ—ब्राह्मणों और देवताओं की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। सर्वदेवतास्वरूप ब्राह्मणों की बात असत्य नहीं होती।

यह शास्त्रों का मत है। ब्राह्मणों की बात सच होकर ही रहेगी। इस की मैं परीक्षा करूँगी—

भूसुरों को निमंत्रण देकर उसने बड़ी भक्ति से उनकी विधिवत् पूजा की और नवघृत मिलाकर आनन्द से खीर पकायी।

इस भाँति ब्राह्मणों से आशीर्वाद पाकर सौमित्री ने बहुत आनन्द पाया। इतने में उस की सास कुमति घर लौटी। जब उसे सारी बातें मालूम हुईं तब वह बहू से यों बोली—"ए लौंडी, तुमको किसने इतना अधिकार दिया? मेरी अनुपस्थिति में तुमने घर की सारी चीजें काक भोजन में खर्च कर दीं।"

इस प्रकार सास ने अपनी बहू को खूब डांटडपट कर घर से निकाल

दिया। वह रात का समय था। अतः भय के मारे वह दूर जा नहीं सकी। वहीं टूट कर पड़े हुए इमली के पेड़ के कोटर में वह छिपी रही। इसी समय आठ शाकिनियाँ माया रूप धारण करके पेड़ पर चढ़ आयीं और मंत्रोच्चारण के साथ यह कहती हुई कि तुम स्वर्णद्वीप चले जाओ, वे मांस खाने के लिए चली गयीं। जिस ओर शाकिनियाँ गयीं उस ओर देखते हुए सौमित्री ने मन ही मन में कहा—"धर्म ही मेरी रक्षा करे।"

उसके बाद वह पेड़ के कोटर से जब बाहर आयी तब सामने चूहों के बिल के पास लाल-लाल चमकती हुई स्वर्ण-धूलि दिखायी दी। उसने मन में कहा कि "विप्र-प्रसाद प्राप्त हुआ।"

उसके बाद सौमित्री उस स्वर्ण-धूलि की गठरी बाँध कर पुनः इमली के पेड़ के कोटर में जा छिपी। राक्षसिनियाँ पेड़ पर चढ़ कर जैसे ही मंत्र जपने लगीं, वह पेड़ अपने पूर्वस्थान पर आगया और शाकिनियाँ अपने घर चली गयीं।

इधर सौमित्री ने अपने घर लौटकर स्वर्ण-धूलि को सास के सम्मुख रख कर नमस्कार किया। सारी बातें जानकर सास बहुत प्रसन्न हुई और अपनी बहू से बोली—"मैं आज ही जाऊँगी और वहाँ का सब सोना ले आऊँगी। सूर्यास्त होने के पहले ही पेड़ के कोटर में प्रवेश करने के लिए जब सास तैयार हुई तब सौमित्री बोली—

"सासजी, राक्षसिनियों के मन को समझना बहुत कठिन है। यदि आप जाना ही चाहती हैं तो राक्षसिनियाँ जो कुछ कहें और जो भी करें, उस पर चुप रहना चाहिए ऐसा करना आपको स्वीकार न हो, तो आप न जावें।" बहू की बातें सुनकर वह प्रचण्ड स्त्री बोलने लगी—

"तुम मुझे उपदेश देती हो ?
क्या मैं मूर्खा हूँ ? क्या मैं
स्त्रियों के कपट से परिचित
नहीं हूँ ? तुम कुछ न बोलो।"

इस तरह वह बहू का अपमान करके सास घर से निकल पड़ी। बहू के मना करने पर भी सास घर से निकल कर उस पेड़ के पास गयी। सोना प्राप्त करने के मोह से कुमति ने गाढांधकार में पेड़ के कोटर में इस प्रकार प्रवेश किया मानों मृत्यु को न चाहते हुए मृत्यु मुख में प्रवेश किया हो।

सोने का नाम लेते ही सुव्रती व्यक्तियों के मन भी झुक जाते हैं, पेड़

तक झुक जाते हैं, दीप-शिखा भी झुक जाती है। ऐसी हालत में साधारण चंचल मन के व्यक्तियों की क्या दशा हो सकती है?

इतने में आधी रात के समय में शाकिनियाँ आयीं और पेड़ पर चढ़कर कहने लगीं कि अब हम कड़ार द्वीप जायें। यह सुनकर कुमति ने सोचा कि अब मैं चूप रहूँ तो काम नहीं चलेगा। वह शाकिनियों से यों बोला—

"कडार द्वीप में रहने वाले मनुष्यों का मांस नमकीन तथा सारहीन है। वहाँ मत जाओ। सुवर्ण-द्वीप के मनुष्यों का मांस अमृत की भाँति है, वहीं जाओ।" कुमति की ये बातें सुन कर "वाह! हमारा स्वर्ग ही सम्मुख है, जिसकी खोज करे वही पैरों तले पड़ा है! यह कहावत सार्थक है।"

इस प्रकार कहते हुए शाकिनियों ने कोटर में बैठी हुई कुमति के पैर पकड़ कर उसके शरीर को दो टुकड़ों में फाड़ कर खा डाला।

—'पंचतंत्र' से

पतिव्रता सीता

नागचन्द्र

अनंतर रावण जानकी के वदन पर दृष्टि लगाए जब बोलने लगे तब उनके दांतों की फैली हुई कांति इस तरह दिखाई पड़ी मानों कमलिनी को चाहने वाली हिमकर की किरणें फैली हुई हों।

जब नूपुरों से चरणों की, मणिमेखला से कमर की, कुंकुम लेपन से कुचों की, हरे कंकणों से कोमल बाहुओं की, पत्र-लेखा से कपोलों की शोभा बढ़ेगी, तब हे सीता, मेरा मन काम-पीड़ा से उद्विग्न हो उठेगा।

हे सरोजानना सीता, जब तुम हाथी पर स्थित श्वेत-छत्र की शीतल छाया में विराजमान होगी और तुम्हारे चारों ओर अंतःपुर की विलासिनियाँ रहने लगेंगी तब जहाँ तुम्हारे स्मित नयन परितुष्ट होंगे वहाँ लंकानगरी के बाहरी प्रदेश के विलासवन फीके पड़ेंगे।

हे जानकी, खेचरियों के तिलक स्वरूप पुष्पक विमान पर मेरे साथ चढ़ कर महान नदियों, विराट-पर्वत शिखरों, दिव्य सरोवरों, मलय-गिरि के सानुप्रदेशों और लवणार्णव की वज्रवेदिकाओं को अपने दृष्टि-पथ के अतिथि बनाओ।

हे सीता, मेरे साथ इन्द्र के युद्ध करते समय ऐरावत के जो दांत टूट गये थे उनसे बनाए गये पलंग पर स्थित उस कोमल तल्प पर सोओ जो प्राचीन काल में ब्रह्मा के राजहंस के पंखों तथा पराजित दिक्पालकों द्वारा दिये गए चीनांबरों से बनाया गया था। जब तक निद्रा से जागोगी नहीं तब तक अप्सराओं के मंगल गीत सुनायी पड़ते रहेंगे।

मैंने अस्ति-रत्न, चक्र-रत्न, नवनिधिफल इत्यादि विद्याओं में परिणत दिक्पालकों को भयभीत करके बाँध दिया था, इन्द्र को खेल ही में हराया था, कैलाश को हिला दिया था और अपने चक्र से दक्षिण भारत धरा-चक्र को जीत लिया था। हे जानकी, युद्ध में कौन मानव मुझे मात कर सकेंगे ?

हे वैदेही, जंगलों—पहाड़ों में मारा मारा फिरने वाला राघव भोगोप-भोगों में तुमको क्या तृप्ति पहुँचा सकेगा ? विद्याधर के क्रीड़ा-भवन में अंग-राग तथा वस्त्राभरणों से अंलकृत हो, मन्मथ-क्रीड़ा-सुख को प्राप्त करके मनो-विनोद के साथ मौज उड़ाओ।

इस प्रकार पर-निन्दा तथा आत्म-प्रशंसा में तत्पर हो खेचरेन्द्र रावण ने जनकसुता को अपने वश में लाने के लिए सैकड़ों अनुनय विनय की बातें सुनायीं। लेकिन वे उसी तरह व्यर्थ हुईं जिस तरह आसमान पर स्याही का लेपन नहीं लगता।

रावण ने सीता को मोहित करने के लिए अपनी संपत्ति तथा शारीरिक सौन्दर्य का प्रदर्शन किया। सुवर्ण की कांति-रूपी कसौटी से साधारण दीपों की कांति कसी जा सकती है, किन्तु क्या रत्न की कांति कसी जा सकती है ?

इस प्रकार दुष्ट रावण की बुरी बातें सुन कर बहुत क्रोधित होने पर भी सीता अपने चेहरे पर ज़रा भी क्रोध प्रकट न करके बोली :—

पाप का भय न मान कर, अपकीर्ति से न डर कर और औचित्य की पर-वाह न करके इस प्रकार निंदा करना क्या ठीक है ? परस्त्री, दूसरे का शयन-स्थान, स्नान किया हुआ पानी, पहना हुआ कदंब फूल, त्यक्त अंगराग, जूठा अन्न, मुँह से गिरा हुआ पान—आदि क्या अस्पृश्य नहीं हैं ?

गुण की हानि से अधोगति होती है, गुण से स्वर्ग और अपवर्ग बनते हैं। गुण रहित व्यक्ति की संपत्ति की अपेक्षा गुणियों की गरीबी ही अधिक भली है।

—रामचन्द्रचरित पुराण (पंपरामायण) से

मनसिज की माया

जन्न

जब उस देवी के मन में अष्टावक्र के साथ रति-सुख भोगने की लालसा जगी तब उसका मन अपने पति से उसी तरह उचट गया जिस तरह नीम को चाहने वाले कौवे का मन आम से उचट जाता है।

किसी दिन यशोधर ने शय्या पर लेटे लेटे इस बात का अनुभव किया कि अमृतमती के चाल-चलन की पूर्वस्थिति में परिवर्तन हो गया है।

अतः राजा किसी दिन नींद का बहाना करके लेटे रहे। अमृतमती यह समझ कर कि पति सो रहे हैं, धीरे से पति के बाहु पाश से अपने को छुड़ा कर उसी तरह अपने प्रेमी के पास चली गयी जिस तरह दिन के बीतने पर भ्रमरी कमलिनी में फँस कर फिर दूसरे दिन निकल जाती है।

तब क्रोधित होकर राजा अपने हाथ में नंगी तलवार छिपाये उस नीच की तलाश में उसी तरह चल पड़े जिस तरह दोष के पीछे ही दण्ड लग जाता है।

जब अमृतमती विलम्ब से पहुँची तब वह प्रेमी इतना क्रोधित हुआ कि उसने उसके लाये पुष्पहार, चन्दन, ताम्बूल आदि को फेंक दिया। उसके बाल पकड़ कर घसीटते हुए उसकी पीठ पर कोड़े से ऐसा पीटा कि राजहंस पर बाज टूट पड़ता है।

उस नीच ने उसकी चोटी को पकड़ कर अपने पैरों से ऐसी लात जमायी कि वह स्त्री उसके पैरों पर सांप की भांति लोटने लगी।

हे प्यारे, विलम्ब हो गया, गुस्सा न करो! उस पापी राजा ने अपनी जाँघों पर मुझे चढ़ा कर जब क्रीड़ा करनी चाही तब मैं लाचार हो पड़ी रही।

तुम्हारी मधुर वाणी मेरे कानों को मधुर लगती है, तुम्हारे सुन्दर रूप को देख कर मेरी आँखें शीतल होती हैं। यदि तुम मुझे तज दोगे तो मेरे

प्राण निकल जाएँगे। बाकी सब पुरुषों को मैं अपना भाई समझती हूँ। मेरा विश्वास करो।

उस समय राजा की तलवार तन गई, उसकी भुजाएँ फड़कने लगीं, मन क्रोध से उद्विग्न हुआ, उन्हें लगा कि दोनों के दो टुकड़े कर दिए जायँ। लेकिन इतने में विवेक ने समझाया कि ऐसा नीच कार्य नहीं किया जाय।

क्या मैं अपने हाथ की तलवार को वैरी राजा पर न चलाकर कीड़े पर चलाकर कलंकित करूँ? क्या हाथी, हाथी को छोड़ कर चींटी पर हमला करेगा? शेर, हाथी को छोड़ कर गीदड़ पर आक्रमण करेगा?

मैं अपनी तलवार को रण-स्नान न कराकर क्या इस कालिख लगे जीव को मार कर, अपवित्र करूँ? सर्वत्र फैली हुई अपनी कीर्ति कड़वी लौकी की बेल की तरह हो जाय?

जब स्त्री बुरी राह चलती है तब उसे मार डालने से क्या उस की बुराई मिट सकती है? क्या बुद्धिमान व्यक्ति उसे मारकर कीड़ों से भरे नरक में पड़ेगा?

इस तरह विचार करके राजा उसे बिना मारे ही लौट आये और बिस्तर पर पूर्ववत् लेट गए। वह स्त्री भी लौट आयी और सोने का बहाना करके लेटे हुए राजा की बगल में लेट गई।

उस नीच की बाहुओं का स्पर्श करके आयी हुई उस स्त्री का स्पर्श, बिस्तर पर लेटे हुए राजा को वैसा ही लगा जैसा कि खटाई पड़ने पर शहद का होता है।

उस समय राजा ने मन में ही कहा—जिस विधि ने पति की बाहुओं का आलिंगन करने वाली स्त्री का आलिंगन उपपति के द्वारा कराया है उसकी नाक काट कर उसे ईंटों से रगड़े बिना नहीं छोड़ूँगा।

यह सुन कर अभय-रुचि ने मारिदास नामक राजा से कहा—"विधि विलास का सहयोग पाकर मनसिज की माया क्या मनुष्यों का सर्वनाश नहीं करेगी?"

—'यशोधरचरित' से

तिरु कोलविनाचि का प्रलाप

षडक्षरदेव

उस समय ऐसा गाढ़ांधकार सर्वत्र फैला मानों तिरुकोलविनाचि की शोकाग्नि का प्रबल धुँआ ही फैला हो। वह अपने पुत्र के मृत-शरीर को अपनी छाती से लगाए वहाँ से चल कर अपने घर पहुँची और रुण्ड तथा मुण्ड को जोड़ कर देखते हुए कहने लगी :—

क्या मेरा सोना छिप गया ?
क्या मेरा अदृश्य हो गया ?
क्या मेरा इक्षु समुद्र में जा मिला ?
क्या कल्पवृक्ष विधिवश काटा गया ?
हे प्रभु, तुम्हें भूख नहीं लगी है ?

तुम्हारा पेट सूख गया है।
चेहरे की शोभा मंद पड़ गयी है।
आँखों की काँति उठ गयी है !
बिना खाये पिये, हे सुकुमार,
इस तरह विकल होना तुम्हें उचित है ?

तुम्हारे समवयस्क बच्चे आकर यह पूछें कि शंकर
कहाँ गया है—उन्हें क्या उत्तर दूं ?
क्या यह कहूँ कि राजा के घोड़े से मारा गया है ?

हे पुत्र, जिस जगह में तुम खेलते थे, जिस बिस्तर
पर तुम सोते थे, जिस जगह तुम उमंग से खाते थे,
अब उन्हें कैसे देखूँ ? हे पुत्र, यह सब मैं कैसे सहूँ ?
गाड़ी में बैठ कर बच्चों के साथ खेलते हुए जब तुम आँगन

में पहुँचते तब मैं अपने आंचल से तुम्हारे बदन की धूलि को
पोंछती, नहा कर खिलाती और दुलारते हुए तुम्हें सजाती
थी। तुम जो कुछ माँगते उसे देकर प्रसन्न होती थी।
हे पुत्र, अब तुम मुझ अकेली को छोड़ कर चले गये ?

हे सुकुमार, चुप क्यों हो ? मुझे सान्त्वना देते हुए यह
क्यों नहीं कहते—'माँ, रो ओ मत, दुःख मत करो।'
मेरे आँसू पोंछे बिना रूठ कर चुप क्यों बैठे हो ?

हाय ! हे पुत्र, तुम्हारी मृत्यु के कारण देखने वाली
मेरी आँखें फूट गई हैं; बोलने वाली जीभ सिकुड़
गई है ? तुम्हें खिलाने वाले हाथ टूट गए हैं;
गाने वाला मुँह झुलस गया है।

अपना दुःख मैं किसे सुनाऊँ ? हे पुत्र, अब मेरे
अपने कौन हैं ? जब मनोजारि की हम पर कृपा
नहीं रही तब क्या कोई तुम्हें दिखा सकेंगे ?

—'राजशेखरविलास' से

मुद्दण-मनोरमा

●

मुद्दण

इस प्रकार एक दिन वर्षा-काल की गोधूलि-वेला में क्या शहर, क्या जंगल — सर्वत्र मनोहरता छायी हुई थी, रोज की तरह दरबार समाप्त हुआ, कवीश्वर मुद्दण छोटी गली में अपने घर की ओर चलने लगे तब उनकी पत्नी मनोरमा ने उन्हें दूर से ही देखा, उठ खड़ी हुई, आगे बढ़ कर स्वागत किया, हाथ-पैर धोने के लिए पानी दिया, तदुपरांत हाथ पकड़ कर अंदर के बैठकखाने में ले जाकर बिठाया, फौरन ही मीठे मीठे फल खिला कर मीठा दूध पिलाया। इस प्रकार उपचार से उनकी थकावट जब दूर हुई तब पत्नी कोमल पान खिलाने लगी। उस समय दोनों में जो सुखमय संभाषण चला वह इस प्रकार था :—

मनोरमा : (धीमी आवाज से) देखते नहीं, दिन कितना लंबा हो रहा है। दिन रात वर्षा की झड़ी लगी है। मन बहुत ऊब-सा गया है ऐसे समय में कोई एक सरस कहानी सुनाओ न ?

मुद्दण : प्राणेश्वरी, इस में क्या बाधा है। जब इतनी इच्छा पैदा हुई है तब इसमें कठिनाई ही क्या है ? फिर भी, बताओ तो कौनसी सरस कहानी सुनाऊं ? क्या भोज प्रबन्ध ? क्या विक्रमार्जुन विजय ? या महावीरचरित ?

मनोरमा : छि, इनमें मेरी कोई रुचि नहीं है। कोई एक ऐसी कहानी हो जो सदा के लिए सबका मार्गदर्शन कर सके।

मुद्दण : किस रस में तुम्हारी रुचि है। शृंगार रस ? वीर रस ? अथवा हास्य रस ?

मनोरमा : जल्दी में क्या बताया जाय ?—-नवरसों में।

मुद्दण : तब तो कहानी कौनसी हो ?

मनोरमा : रामायण में से कोई एक कहानी ।

मुद्दण : ऐसा ही हो । सीता स्वयंवर सुनाऊंगा ।

मनोरमा : उसे मैंने सुना है ।

मुद्दण : सीतापहरण की कहानी तुम्हें पसन्द है ?

मनोरमा : ऊ हुँ ! नहीं चाहती ।

मुद्दण : और कौनसी अच्छी कहानी सुनाऊँ !

मनोरमा : इतनी कठिनाई ! देश में न जाने कितनी रामायणें हैं । उनमें से कोई एक, जिसे तुम ने सुना है, प्रेम से सुनाओ ।

मुद्दण : तुम ही एक चुन लो ।

मनोरमा : सुना है कि श्रीराम ने अश्वमेध यज्ञ किया था । उसी को सुनाओ ।

मुद्दण : अब समझा; शेष रामायण सुनाऊँ ?

मनोरमा : हाँ, हाँ : सबसे पहले इसे किसने सुनाया था ।

मुद्दण : पहले महाशेष ने इसे वात्स्यायन को सुनाया था । उसी को तुम्हें सुनाऊँगा । पर ध्यान रहे, कहानी बड़ी लम्बी है । दो-एक दिनों में समाप्त न होने की ।

मनोरमा : होने दो । रोज थोड़ी थोड़ी सुनायी जाय ।

मुद्दण : ऐसा ही हो । किस रूप में सुनाऊँ ? पद्य में सुनाऊँ या गद्य में ?

मनोरमा : पद्यं वध्यम्, गद्य हृद्यम् । जो हृद्य है, उसी गद्य में सुनाओ ।

मुद्दण : (मुस्कराकर) इस बात को रहने दो । यदि ऐसी सुन्दर कहानी राजमहल में सुनाई जाय तो प्रसन्न होकर रत्नकंकण और सोने के हार दिए जाते हैं । तुम क्या दोगी ?

मनोरमा : और क्या दूँ ? अपने को ही दे दूँगी ।

मुद्दण : बड़ी चतुर हो तुम ! नहीं जानती कि तुम्हारे माँ-बाप ने इसके पहले ही तुम्हें मुझे सौंप दिया है ।

मनोरमा : वह कैसी बात ! जाने दो । मैं पराधीन हूँ न ! पुराण सुनाने पर ही तो दक्षिणा दी जाती है । राजमहल के लोग भी काव्य सुनने के बाद ही पुरस्कार देते हैं । कहानी सुनने के बाद, यदि वह अच्छी लगे, तो अपनी शक्ति भर मैं भी पुरस्कार दूँगी ।

मुद्दण : अच्छी बात है ! कहानी सुनने के उपरांत यदि यह कहोगी कि कुछ नहीं दूँगी तो आड़े हाथों लूंगा ।

मनोरमा : मैं भी देखूंगी कि कहानी में कितना सत्व है !

मुद्दण : तब तो सुनो । स्वस्ति श्रीमत्सुरासुरेन्द्र नरेन्द्र मुनीन्द्र फणीन्द्र मणि-मुकुटतटघटित—

मनोरमा : ओ, ओ, ! बंद करो, बंद करो । वसुधा के राजा रामचन्द्र की कहानी सुनाने को कहा जाय तो जिन मंदिरों में सुरेन्द्र चरित्र सुनाने लगे ? बस करो, बस करो । ऐसी चिताकर्षक कहानी के लिए क्या इनाम दिया जाय ?

मुद्दण : अच्छी बात है रमणी कचों की कसम । ऐसा ही हो । यह जैन-देवता की कहानी नहीं है। रामचन्द की वह सुंदर कहानी सुनाऊंगा जो संस्कृत की शोभा है ।

मनोरमा : ठीक ठीक ! यह तो ऐसा ही है कि जिस गले में पानी नहीं उतरे उसमें मोदक ठूँसा जाय । कन्नड़ की सरसता से ही मैं परिचित नहीं हूँ, तब संस्कृत की सरसता सुनाने लगे !

मुद्दण : ऐसी बात हो तो और कैसे सुनाऊँ ?

मनोरमा : सरस कन्नड़ में । कन्नड़ तो कस्तूरी ही है ।

मुद्दण : ऐसा ही हो, ऐसा ही हो । फिर भी सोने में जड़ी मणि की भाँति, काली मणि की हार में लाल मूंगे की भाँति संस्कृत के मेल से कन्नड़ की सरसता की वृद्धि होती है । बीच-बीच में संस्कृत के सरस शब्दों का समावेश करते हुए सरल कन्नड़ में कहानी सुनाऊंगा ।

—रामाश्वमेध

मध्य कालीन कन्नड़

शिवशरणों के वचन

पत्थर में जो आँच है क्या वह जल सकती है ?
बीज में जो वृक्ष है क्या वह बोल सकता है ?
देखा नहीं गया, जाना नहीं गया,
हे गुहेश्वर, आपको वही जानता है
जिसने अनुभव-सुख पाया है ।

धरती में छिपी निधि की तरह,
बादल में छिपी बिजली की तरह,
गगन में छिपी मरीचि की तरह,
नयनों में छिपी कांति की तरह,
हे गुहेश्वर, है आपकी स्थिति ।

अमृतसागर में रह कर गाय की क्यों चिंता ?
मेरु मंदिर में रह कर स्वर्ण-धूलि छानने की क्यों चिंता ?
श्रीगुरु के पास रह कर तत्व विद्या की क्यों चिंता ?
प्रसाद पा कर मुक्ति की क्यों चिंता ?
हे गुहेश्वर, जब हाथ में लिंग है तब और क्या चिंता ?

पर्वत को सर्दी लगे तो क्या ओढ़ाया जाय ?
आकाश नंगा हो तो क्या पहनाया जाए ?
भक्त संसारी हो जाए तो क्या किया जाए ?
हे गुहेश्वर !

राई जैसे सुख के लिए सागर जैसा दुःख, पल भर की रति
की रीति कैसी ? आत्मार्पण से जब निधि पायी,
तब बीत गयी सब उलझन, हे गुहेश्वर !

देह के भीतर है जब देवालय, तब दूसरा देवालय कैसा ?
बताया गया है कहाँ द्वय ? हे गुहेश्वर, यदि तुम पत्थर
हो तो मैं क्या हूँ ?

शून्य नामक शिशु को मक्खन खिलाकर किसने पुकारा
नाम लेकर ? हाय ! हाय ! ऐसी है हया शब्द की !
जिन अनुभवियों ने गुहेश्वर को नहीं समझा उनकी हुई
विकट दशा ।

—अल्लम प्रभु

गज भारी, अंकुश छोटा कहा जाय ? ना भैया !
गिरिभारी, वज्र छोटा कहा जाय ? ना भैया !
तमंध भारी, ज्योति छोटी कही जाय ? ना भैया !
विस्मृति भारी, तुम्हारा स्मरण करने वाला मन
छोटा कहा जाय ? ना भैया !
कूडलसंगमदेव ।

उपजाऊ धरती में प्रलय की एक घास उगी है,
समझने नहीं देती, जानने नहीं देती,
मेरे दुर्गुण रूपी घास को उखाड़ कर मेरी रक्षा करो,
हे प्रभो, निराकार फसल उगाऊँगा,
कूडलसंगमदेव ।

घर में घर का मालिक है कि नहीं ?
देहली पर घास उगी है, घर में धूलि जमी है,
घर में घर का मालिक है कि नहीं ?
तन में असत्य भरा है, मन में विषय भरा है,
घर में घर का मालिक नहीं है—
कूडलसंगमदेव ।

लोक का टेढ़ापन आप क्यों सुधारने चले ?

अपने-अपने तन को सँभालिए, अपने-अपने मन को सँभालिए,
रोनेवाले पड़ोसियों के साथ रोनेवालों को
नहीं चाहते हमारे कूडलसंगमदेव ।

मर्त्य लोक कर्तार की टकसाल है, जिसका निर्वाह
यहाँ हो जाय तो वहाँ भी होगा;
जिसका निर्वाह यहाँ न हो तो वहाँ भी न होगा,
कूडलसंगमदेव ।

चोरी न कर, हत्या न कर, झूठ न बोल, गुस्सा न कर,
औरों से घृणा न कर, अपना बखान न कर, सम्मुख
दूसरों की निंदा न कर, यही अंतरंग शुद्धि, यही बहिरंग
शुद्धि; यही अपने कूडलसंगमदेव को रिझाने की रीति ।।

प्रभो, दया रहित धर्म कैसा ? दया चाहिए सब प्राणियों
के प्रति, प्रभो, दया ही धर्म का मूल है;
जो ऐसा न हो उसे नहीं चाहते
हमारे कूडलसंगमदेव ।

प्रभो, हम पर जो रूठते हैं उन पर हम क्यों रूठें ?
चाहे हमारा, चाहे उनका, तन का क्रोध अपने
बड़प्पन का नाश; घर की आग घर को ही
जलाए बिना पराये घर को जलाएगी ?—
कूडलसंगमदेव ।

मुझ से बढ़कर कोई छोटा नहीं; आपके चरण ही साक्षी,
मेरा मन ही साक्षी :
प्रभो, कूडलसंगमदेव, यही मेरी परीक्षा है ।

मेरे अपने लोगों ने मेरी प्रशंसा कर करके मुझे सोने के
शूल पर चढ़ा दिया है, मेरी प्रशंसा ने मेरे तन को
ग्रस लिया है; हाय ! आपका दिया मान चुभ
रहा है, तलवार की पैनी धार की तरह ।
हाय ! आप मेरे हितू हो तो मेरी प्रशंसा में बाधा
बन कर आवें—हे कूडलसंगमदेव ।

प्रभो, मेरे तन को बीन बनाइए !

प्रभो मेरे सिर को तूंबी बनाइए !
प्रभो मेरी नसों को तार बनाइए !
प्रभो मेरी उंगली को मिज़राब बनाइए !
प्रभो, बत्तीस राग गाइए !
मेरी छाती से लगाए बजाइए—
हे कूडलसंगमदेव ।

कौन क्या बिगाड़ेगा हमारा, हम से रूठ कर ?
हमारा क्या बिगड़ेगा यदि सारा गांव रूठ जाय ?
हमारे कुत्ते को कोई कुत्तिया न दे, न सही,
हमारे श्वान को कोई थाली न परोसे, न सही;
हाथी पर जो सवार हैं उन्हें कुत्ता कैसे काट सकेगा ?
जब तक कूडलसंगमदेव की कृपा हो ।

वचनों में नामामृत भर कर, नयनों में आपकी मूर्ति भर कर,
मन में आपकी स्मृति भर कर, कानों में आपकी कीर्ति भर कर,
हे कूडलसंगमदेव, आपके चरण-कमलों में गुनगुनानेवाला
मैं हूँ भ्रमर ।

—बसवेश्वर

वन सब तुम हो,
वन के सब देवतरु तुम हो,
पेड़ों पर विचरने वाले सब खग-मृग तुम हो,
हे चेन्नमल्लिकार्जुन, सबमें भरपूर होकर
अपना मुँह दिखाओ ।

हे साईं, पहाड़ पर घर बसाकर मृगों से डरना क्यों ?
हे साईं, सागर तट पर घर बसाकर, लहरों-फेनों से डरना क्यों ?
हे साईं बाजार में घर बसाकर शोरगुल से डरना क्यों ?
हे साईं, चेन्नमल्लिकार्जुनदेव सुनो,
जगत में जन्म लेने पर स्तुति-निन्दा सुननी पड़े तो
मन में क्रोध न करके शांति बरतनी चाहिए ।

सांप का दांत निकाल कर सांप से खेला जाय
तो सांप की संगति भली है, भैया ।

वैसे ही काय की संगति भली, भैया।
काय-विकार ऐसा ही है जैसा कि माता का राक्षसी बनना।
हे चेन्नमल्लिकार्जुन, यह कहा न जाय कि वे
कार्य सहित हैं जिन पर आप प्रसन्न हुए हैं।

प्रभो, तुमको जानने पर बनता है नरक भी मोक्ष।
प्रभो, तुमको न जानने पर मोक्ष भी नरक है।
प्रभो, तुम जो सुख नहीं चाहते वह दुःख ही है।
प्रभो, तुम जो दुःख चाहते हो वही सुख है।
हे चेन्नमल्लिकार्जुन, तुम्हारा दिया बंधविमोचन ही
मेरे हितबंधन है।

यदि भूख लगे तो भिक्षान्न है।
यदि प्यास लगे तो ताल-तलैये, कुएँ हैं।
सोने के लिए उजड़े देवालय हैं।
हे चेन्नमल्लिकार्जुन, तुम हो मेरी आत्म-संगति के हित।

यदि आग की लपटें बढ़ती हैं तो समझूँगी भूख-प्यास बुझ गई।
यदि बादल बरस पड़ते हैं तो समझूँगी स्नान के लिए पानी
मिल गया।
यदि पहाड़ टूट पड़ते हैं तो समझूँगी, फूल हैं।
हे चेन्नमल्लिकार्जुन, मेरा सिर कटकर गिरा तो समझूँगी
कि मेरे प्राण तुम पर अर्पित हो गए।

मैंने अनंत काल से तपस्या की थी कि हे हर, तुम ही
मेरे पति बनो। विवाह की वेदिका पर बात पूछने के लिए
भेजी गई तो शशिधर के पास भेजी गई;
भस्म लगाकर, कंकण पहनाकर,
हे चेन्नमल्लिकार्जुन —तुम मेरे हो जाओ॥

नीलमणि की फर्श बिछाकर, कनक-तोरण लगाकर,
मूंगे का चप्पर लगाकर, मोती चांदनी बिछाकर,
मेरा विवाह कराया, हमारे लोगों ने मेरा विवाह कराया,
कंकण पहनाकर, अक्षत चढ़ाकर,
चेन्नमल्लिकार्जुन नामक पुरुष से मेरा विवाह कराया।

—महादेवियक्का

कारण-पुरुष बसव

●

हरिहर

लिंग-जंगम प्रसाद हृदय बसवराज शरणों के साथ सद्गोष्ठी करते हुए यों बोले:—

"देव, देव, मैं आपका प्रिय सेवक हूँ। आप ही ने मेरी प्रशंसा की है कि जो कुछ मुझ से मांगा जाता है उसे अर्पित करता हूँ। आपका नयन तारा हूँ। तरह-तरह की बातें असत्य हैं, भिन्न-भिन्न आचार गलत हैं। नियम न जानने वाला नीरस, पूजा न जानने वाला पुण्यरहित, गाना न जानने वाला अबोध बालक हूँ। मुझमें अच्छाई न ढूँढ कर, मेरे अपराध को न देखकर कृपा कीजिए" इस प्रकार प्रार्थना करने वाले बसव पर प्रसन्न हो कर, माहेश्वर कुल (शिवशरण) तुरंत आशीर्वाद प्रदान करते हुए, उत्साह सहित प्रसन्नता से आसीन होकर उमड़ते हुए आनंद के साथ यों बोले:—

"हे बसव, बसवण्ण, बसवय्य, बसवराजा, बसवदेव सुनो तुम जैसे नेमी कहाँ मिलेंगे ? गुरु-लिंग में द्वैतभाव नहीं रखते हो। शरणों को साक्षात् शिव मानते हो। आगत भक्तों का सदा आदर करते हो। आनेवाले भक्तों का सानंद स्वागत करते हो। शरण, जो माँगते हैं उसे नाही न कह कर प्रदान करते हो। जो नहीं माँगते अपरिग्रही हैं उनकी अधिक सेवा करते हो। जाग्रति, सुषुप्ति, निद्रा इन तीनों अवस्थाओं में शरणों को तुम शिव ही समझते हो। प्रतिदिन उत्साह के साथ शिवरात्रि मनाते हो। जंगम ही तुम्हारे प्राण हैं। जो शिव-लिंग पर अर्पित नहीं होता उसे नहीं सूँघते, नहीं देखते, नहीं छूते, नहीं सुनते। शिव धर्म का उद्धार करते हो; पर-धर्मों का निवारण करते हो। लिंग में बुराई नहीं देखते। जंगमों की जात-पाँत नहीं विचारते, प्रसाद में अपवित्रता नहीं परखते, पर-स्त्रियों को माता के समान मानते हो, पर-धन को छूना पाप समझते हो। आचरण में गलती नहीं करते, असत्य नहीं बोलते। जिसे ग्रहण करते हो उसे नहीं त्यागते, जिसे त्यागते हो उसे स्वीकारते नहीं। देकर नहीं

पछताते, बो कर नहीं उखाड़ते, छू कर नहीं हटाते, मिल कर नहीं बिछड़ते, देख कर निराकरण नहीं करते, स्मरण करके नहीं भूलते । मन में परदा नहीं रखते । बुद्धि में भेद-भाव नहीं, स्वाभिमान में घमण्ड नहीं, चित्त में भारीपन नहीं, काम नहीं, क्रोध की बात नहीं, लोभ की हवा नहीं, मोह के लिए स्थान नहीं, मद की गंध नहीं, ईर्ष्या के लिए जगह नहीं । हे बसवराज, तुम्हारे गुणों का वर्णन करना शक्ति के बाहर की बात है । ईश्वर पर सर्वार्पण करने वाले भक्त तुम हो, तुम्हारी समता कौन कर सकता है ? इस निरीश्वर भूमि पर शिव-भक्ति चलाकर, उसमें भक्ति भर कर, उसे अर्वर बनाकर सुफल प्रदान करने के लिए अवतरित तुम कारण-पुरुष हो बसव । तुम्हारे कारण हमारी भक्ति में नया रंग चढ़ा है—" इस प्रकार बारंबार कहते हुए प्रसन्नता से नाचने वाले गणों के चरणों को छाती से लगाए बसवराज, प्रशंसा पर विचलित हो, झुककर, दुःखी होकर जब नये-नये गीत सुनाने—लगे—

—'बसवराजदेव-रगळे' से

चाण्डालिनियों का दुराग्रह

•

राघवांक

चाण्डाल स्त्रियों ने हाथ जोड़ कर अनुनय-विनय करते हुए राजा हरिश्चन्द्र से यों कहा:—

"हे धरती के स्वामी हरिश्चन्द्र, यह जानकर कि आप जगत के महान दानी हैं, हम आपको चाह कर, तीव्र कामना के साथ आप से प्रार्थना करती हैं कि हमारी इच्छा को आप निष्फल न करें, हमें खिन्न न होने दें, रोने-बिसूरने न दें। आप हमारे पति बनकर हमारी बेचैनी को दूर करें।"

चाण्डालिनियों की बातें सुन कर राजा हरिचश्न्द्र क्रोध के मारे लाल-लाल आँखें करके बोले:—

"सुन्दर पृथ्वी के साथ ही जिस सूर्यवंश का उदय हुआ है; उसके राजाओं की कीर्ति, पराक्रम के अनुरूप ऐसा कोई राजा अब तक पैदा नहीं हुआ है जो अपनी कन्याओं का विवाह सूर्यवंश के राजाओं के साथ कर सके। अब चाण्डाल स्त्रियाँ स्वयं आकर पत्नी बनने का प्रस्ताव करें तो यही कहना पड़ेगा कि या तो यह काल की महिमा है या हम जिस जमीन पर खड़े हैं उसकी महत्ता है।"

राजा की बातें सुनकर चाण्डालिनियाँ बोली :—

"पवित्र दूध देने वाली गाय के थन का मांस कौन श्रेष्ठ है ? मधुर शहद देने वाली मक्खी कौन बड़ी है ? कस्तूरी देने वाले मृग की नाभि का कौन महत्व है ? क्या उत्तम गुण भगवान स्वीकार नहीं करते ? हे राजन, जब हमारे पास रूप और यौवन मौजूद हैं तब कुल के दोष की बात क्यों की जाय ?"

चाण्डालिनियों की बातें सुनकर राजा बोले:—

"हाँ हाँ, मोरी का पानी क्या स्नान करने लायक है ? कुत्ते का दूध क्या पीने लायक है ? श्मशान का फूल क्या पहनने लायक है ? तुम चाण्डालिनियाँ हो, तुमको अपने यौवन और रूप का घमण्ड है। तुम्हारी चतुराई पर मुग्ध

होकर क्या तुम्हारे साथ भोग किया जाय ? हाय शिव ! शिव ! ऐसी बात तक करना हेय है ।"

राजा की बातें सुन कर चाण्डालिनियाँ बोलीं :—

"जिन कानों ने गाने का रसास्वादन किया है उन कानों को दोष नहीं लगता ! जिस मुँह ने बातें सुनीं और सुनायी हैं उस मुँह को दोष नहीं लगता ! जिन आँखों ने रूप को देखा है उन आँखों को कोई दोष नहीं लगता ! शरीर और कबरी का स्पर्श करके जो शीतल तथा सुगंधित हवा बहती है उस सेवन करने वाली नाक को कोई दोष नहीं लगता ! किन्तु हमारे स्पर्श मात्र से दोष लगता है ! क्या पंचेन्द्रियों में चार अधम हैं और एक उत्तम है ?"

फिर राजा हरिश्चन्द्र बोले :—

"आँखों ने दूर से देख कर समझा है, नाक ने दूर से सूँघ कर समझा है, कानों ने दूर से सुन कर समझा है, न कि स्पर्श किया है। तुम्हारा तर्क दुराग्रह मात्र है जिसकी कोई समता ही नहीं है। अंगार को छूने से ही तो चीजें जलती हैं न कि सुनने से या सूँघने से। अविलंब तुम लोग अपना रास्ता नापो।"

उसके बाद चाण्डालिनियों ने कहा—

"हम लोगों ने शाप के कारण नीच कुल में जो जन्म पाया था उसका दोष सत्कुल में उत्पन्न आपकी संगति पा करके दूर करने की अभिलाषा लिए यहाँ पर आयीं।" यह सुनकर राजा ने कहा—"क्या तुम लोगों के लिए मैं अपने कुल को कलंकित करूँ ?" चण्डालिनियों ने उत्तर दिया—"क्या पाप को धोनेवाली गंगा को पाप लगेगा ? आप ही बतावें।" राजा ने उत्तर दिया—"यह तो कुल धर्म की बात नहीं। एक घड़े भर के दूध को बिगाड़ने के लिए कितनी खटाई की जरूरत है ?"

चाण्डालिनियों ने फिर कहा—

"तर्क के लिए तर्क करना कठिन है ! आपकी कीर्ति, पराक्रम, रूप, गुण, यौवन, धन पर मुग्ध होकर, मति भ्रांत कर आपसे मोहित हो गयी हैं। जो प्रेम से आयी हैं उनका उपचार न करना आपको शोभा नहीं देता। आप जो चाहे कीजिए, आप जब तक हमारे पति नहीं बनेंगे तब तक हमारी बेचैनी नहीं जाएगी, आप जो चाहें कीजिए आपका पीछा नहीं छोड़ेंगी"।

—'हरिश्चन्द्र काव्य' से

उत्तरकुमार की शेखी

•

कुमार व्यास

जैसे-जैसे उत्तरकुमार युद्ध के मैदान के पास आने लगे वैसे ही वैसे उसका शरीर भारी बनने लगा, रोमांचन होने लगा, गर्मी चढ़ने लगी, अवयव बार-बार कांपने लगे, अत्यधिक भय के मारे जीभ से पानी बहने लगा, अधर सूखने लगे, कोमल पलकें झुलसने लगीं—उसने अपने हाथों से मुँह को ढाँप लिया।

"हे सारथी, रथ को आगे बढ़ाकर क्यों मेरा गला घोंट रहे हो ? बंद करो, मेरी आँखें फूट रही हैं। इस महाबल का सामना करना देवताओं के लिए भी दुश्वार है। तुम में ज़रा भी विवेक नहीं है। लगाम संभालो, घोड़ों को पीछे मुड़ाओ।"

उत्तरकुमार की बात पर ध्यान न देकर जब अर्जुन ने सात-आठ पग रथ को आगे बढ़ाया तब उसके हाथ से धनुष-बाण फिसल पड़े, हाथ की नाड़ियाँ ढीली पड़ गयीं। उसने अर्जुन से कहा—"घोड़े को रोको सारथी, क्या बोलने वाला मैं तुम्हारा दुश्मन हूँ ? मैं तुम्हारा प्रभु नहीं हूँ ? यह कैसा स्वामीद्रोह ?"

यह सुनकर अर्जुन ने हँसते हुए जब रथ को और भी सात-आठ फुट आगे बढ़ा दिया तब उत्तरकुमार यह कहते हुए—"इस सारथी ने मुझे मार ही डाला"—रथ के सामने आकर कूद पड़ा। 'हाय रे, मैं बच गया ; ऐसे कहते हुए नंगे सिर ही तेजी से भागने लगा।

नीचे उत्तरकुमार को नंगे सिर ही ज़ोरों से भागते हुए देख कर वीर अर्जुन यह कहते हुए—यह पापी अब भाग जाएगा—फुर्ती के साथ जब उसका पीछा करने लगे तब धरती हिल गयी और महाशेष डोलायमान हो लुढ़कने लगा। उसके बाद धमकी देते हुए उन्होंने कहा—"भरी सभा में नारियों के बीच में तुम अपनी शेखी बघारते रहे। फिर युद्ध के मैदान में ऐसा क्यों बने ? दुश्मनों की सेना का सामना न करके गाँव के सियार की भाँति दाँत दिखा रहे हो। तुम्हें लड़ना ही पड़ेगा, जाने नहीं दूँगा।

युद्ध में जो पीठ दिखाएगा उसे कदम-कदम पर पाप लगेगा। जो आगे-आगे कदम बढ़ाएगा, उसे पग-पग पर अश्वमेध-यज्ञ का फल मिलेगा। यदि मर जाओ तो स्वर्ग की ललनाएँ सेवा करेंगी; सुरेन्द्र मनुष्यों की प्रशंसा करेंगे और वीर-स्वर्ग प्राप्त होगा''।

यह सुनकर उत्तरकुमार बोला—''युद्ध में पीठ दिखाने का जो पाप होगा उसको ब्राह्मण दूर करेंगे। अश्वमेध तो यहाँ पर प्रत्यक्ष किया जा सकेगा। हमें देवता स्त्रियों की आवश्यकता नहीं है, अपने राजमहल की स्त्रियाँ ही पर्याप्त हैं। जब मेरी अपनी राजपदवी है, तब इन्द्र पद की क्या आवश्यकता है? कृपा करके मुझे छोड़ दो''।

उसके उपरांत उत्तरकुमार ने अर्जुन से कहा—इस दृश्य को देख कर कौरव सेना हँसी रूपी सागर में लोटने लगी—

अरे अरे, लड़ने के लिए आये हुए इस वीर की बहादुरी को तो देखो! शिव शिव! उसका पीछा करने वाला यह वीर कौन है? ऐसा कहते हुए सिपाही परस्पर बोलने लगे कि यह कोई बड़ा व्यक्ति है जो रूप और बल में अर्जुन के समान दिखाई देता है।

एक सौ कदम उसका पीछा करके अर्जुन ने उसे पकड़ लिया और कहा—''हाय महादेव, तुम क्षत्रिय वंश में पैदा हुए हो। यह क्या किया तुमने? स्त्रियों के सामने तुम अपनी डींग हांकते रहे, पर दुश्मनों का सामना न करके भागे जा रहे हो! हे नीच, तुम ने विराट वंश को डुबो दिया''

अर्जुन की बातें सुनकर उत्तरकुमार ने दाँत निकालते हुए मुँह में उंगली दबाये सिर झुकाया और कहा—''हे सारथी, मुझे छोड़ दो मुझे अपना बेटा समझो। युद्ध में इतनी बड़ी सेना का मुकाबला करने की ताकत मुझमें कहाँ है। लोगों से मेरा वध न कराओ। चाहे तो तुम स्वयं अपनी तलवार से मेरा सिर काट डालो''।

यह सुन कर अर्जुन पेट छाती फटने तक हंस-हंस कर लोट-पोट हो गये। और उसको उत्तर दिया, ''तुम्हें मैं अच्छे घोड़े, हाथी, मोती, गहने, सुन्दरियाँ आदि राजभवन में दिलाऊँगा। हे ब्रहन्नले, हमारे पिता ने जो तुम्हारी रक्षा की उसका यही बदला दे रहे हो? तुम तो बड़े ओछे मन के हो।''

—'कुमारव्यास कृत भारत'

1. धर्म ही जय है

'धर्म ही जय है'—इस दिव्य मंत्र का मर्म समझ कर
आचरण करना चाहिए ।।टेक।।

विष खिलाने वाले को षड्रस पिलाना चाहिए ।
झूठ कह कर जो घर खरीदता है हमसे
सराहना करके उसे आशीर्वाद देना चाहिए ।।
जो हमें मारता है तलवार से उसके नाम से
हमें अपने पुत्र को पुकारना चाहिए ।।1।।

जो हम से कभी नहीं मिलता उसका
गुण-गान करके आशीर्वाद देना चाहिए ।
खून करने वाले से मित्रता करनी चाहिए ।
पीछे से निन्दा करने वाले को सदा नमस्कार करना चाहिए ।
जो हमें बंदी बनाता है उसका विमोचन करना चाहिए ।।2।।

भगा ले जाकर जो हत्या करता है उसकी
सदा सराहना करनी चाहिए ।
जिसे हम नहीं चाहते उसकी सदा सराहना करनी चाहिए ।
पुरंदर विठल की अखण्ड-महिमा समझकर
उनका सदा भजन करना चाहिए
और उनकी महिमा जान कर भी अनजान रहना चाहिए ।।3।।

—पुरंदरदास

2. अधीर न बनो

अधीर न बनो, सब्र करो हे मन,
वह सब का रक्षक है इसमें संदेह नहीं है ॥
पहाड़ की चोटी पर पैदा होने वाले
वृक्ष के लिए क्यारी बनाकर
पानी सींचता है कौन ?
जिसने जन्म दिया है उसकी ज़िम्मेदारी है अपनी ।
वह अवश्य ही रक्षा करेगा इसमें संदेह नहीं है ॥1॥

मोर के पंखों पर रंग चढ़ाने वाला कौन ?
मूंगे की लता में ललाई भरनेवाला कौन ?
मधुर बोलनेवाले तोते पर हरा रंग लगानेवाला कौन ?
हमे रचनेवाला हरि नहीं भूलेगा, इसमें संदेह नहीं है ॥2॥

पत्थर में पैदा कर टरटर करनेवाले
मेंढक को वहीं आहार देनेवाला कौन ?
कागिनेलेयादि केशव सब कुछ जानते हैं,
वे करेंगे सब की रक्षा, इसमें संदेह नहीं है ॥3॥

—कनकदास

3. ज्ञानी के लिए अति सुलभ है

उनके लिए अति सुलभ है हरिपूजा जो ज्ञानी हैं ।
अति अभागे हैं वे जग में जो अज्ञानी हैं ।।टेक।।

मण्डप है ब्रह्माण्ड, पीठ है भूमण्डल, दीप हैं सूर्य चन्द्र,
वृक्ष हैं चामर; छत्र है अति विमल व्योम-मण्डल,
आठ याम हैं अष्ट दल-कमल ।।1।।

वर्षा है मज्जन, दिग्वलय है वसन,
मलयजानिल हैं धूप-चन्दन, धरती में उपजे
सब अनाज हैं भोजन, कर्पूर की आरती है
बिजली-नर्तन ।।2।।

लक्षदीपावली है नक्षत्र-मण्डल, दक्षिण-उत्तर
अयन है सब वन, वृक्ष-लता सुफल सुमनों में
भोग करते हैं स्वयं भगवान ।।3।।

वाद्य-घोष हैं सप्त-समुद्र घन-गर्जन,
भूपतियों को दिया जाने वाला कर ही अर्चन,
सूर्य चन्द्र मण्डल हैं सुन्दर दर्पण,
पद-विन्यास ही हरि का अविरल नर्तन ।।4।।

चार-युग हैं पर्यंक के चार चरण,
अब्द हैं लगी उसकी पट्टियाँ,
गगन है चाँदनी, संक्रमण,
षट् ऋतुएँ हैं भगवान का तकिया ।।5।।

तांबूल ही हैं दिवस, सुपारी है करण,
योग ही है चूरन, और कत्था, कुल्ला करने
का जल है गंगा-जल, विराट् का पादोदक
है सागर-जल ॥6॥

शातकुंभोधराण्डांतस्थ रूप का जो करे प्रीति से
यजन और करे तुष्ट वीतरागी नर,
जगन्नाथ विट्ठल होते हैं सदा प्रसन्न उन पर ॥7॥

— जगन्नाथदास

रत्नाकर का जीवनदर्शन

रत्नाकर वर्णि

आदर्श राजा

करना चाहिए भोग-विचार,
करना चाहिए नृपति को आत्म-योग-विचार,
बनना चाहिए राग-रसिक भी,
और बनना चाहिए समझ कर वीत-राग रसिक ।

करना चाहिए इहलोक का सुख-भोग,
राजा को दिखाना चाहिए धर्म में मनोयोग;
बहुत आकांक्षाओं में फँसा रहना चाहिए;
पर हृदय में निस्पृह बना रहना चाहिए ।

गान, वाद्य, ताल, लय, पर नर्तन
करने वाली नर्तकी जिस तरह रखती है ध्यान
सिर पर धरी गगरी का;
उसी तरह राज्य में रहते हुए सदा,
करना चाहिए स्मरण तुम्हारा करते हुए मुक्ति का सन्धान ।

गुड्डी उड़ाने वाला जब लिये रहता है डोरी
अपने हाथ में, तब गुड्डी रहती है गगन में;
लीन होती है आत्मा तुम में कुटिलता तजकर
बुद्धि लगती है मुक्ति के संघटन में ।।

राजेन्द्र गुण वाक्य :

न मैंने तुम्हारी ली है कोई वस्तु,
न तुम ने ही ली मेरी कोई वस्तु
इसके पूर्व हमारे पिता ने जो हमको
बनाया था 'राज-युवराज'
हम करते आये हैं उसी का निर्वाह ।

न मैं तुम्हारा हूँ दुश्मन—
बताओ, न तुम हो मेरे दुश्मन;
इस पर जिन-पुत्र होकर हम जब
विचार करते हैं, मालूम होता है तब
यह कि हम भावी पीढ़ी के लिए
लिख रहे हैं द्रोह का शासन।

युद्ध से डर कर आया हूँ तुम से करने वाद
ऐसा तुम कभी न समझो अपने मन में;
यदि मैं युद्ध करने लग जाऊँ
तो समझो सब करेंगे मेरी वाहवाह;
फिर भी, लगे न किसी को
युद्ध का कलंक, यही है मेरी बड़ी चाह।

यदि कोई पराया व्यक्ति मेरा सामना करे
तो कुचल डालूँगा उसे पैरों तले;
भैया, भाई-भाई लड़े परस्पर
पसन्द नहीं करता यह संसार।
हमें करना चाहिए युद्ध का विचार।

मैं तुम से बड़ा हूँ, इसलिए
तुम्हें बुलाया है मैंने अपने पास,
यदि तुम बड़े होते तो मैं स्वयं
निःसंकोच आ जाता तुम्हारे पास।

बड़े के पास छोटे का आना
जगत का रवैया तो है,
पर इसमें भैया, हार की कौन सी बात है?
क्या पिता जी ने इस प्रकार का कोई
निरूपण किया है?

जगत के राजाओं को परस्पर लड़ाकर,
उसे देख कर खुशी मनाये बिना बचा?
नहीं बिता सकेंगे हम अपना समय?
यदि राजा ही ऐसा करेंगे तो
क्या वे परिहास के कारण नहीं बनेंगे?

मुझे जीतने से क्या तुम्हें कीर्ति मिलेगी ?
तुम्हें जीतने से क्या मुझे कीर्ति मिलेगी ?
सुर, नर लोक के सब उत्तम जन
क्या नहीं कहेंगे 'छिः' इसे देख कर, सोचो ।

इसलिए क्या तुम युद्ध करने आये हो ?
युद्ध में जय होगी किसी की अंत में,
नीचों की भाँति क्यों लड़ा जाय,
तुम्हारी ही हो जीत, हो मेरी ही हार ।

यह देख कर राजा, मंत्री, मित्र सब
कान बंद कर सोच में पड़े,
क्या हमारे प्रभु की हो हार ?
बाहुबलि से क्यों कर हार मानेंगे ?
विजय-लक्ष्मी को हम क्यों कर जाने देंगे ?
सब तैयार हो जाओ, शीघ्रता करो ।

मैं इस ऐश्वर्य को पुण्य का फल
समझ कर उसके प्रति उदासीन हूँ;
मेरे मन में कोई लालसा नहीं, तुम स्वीकार
करो, तुम ही भावी राजा बनो ।

तुम्हारे मन में यह ममता नहीं कि
तुम्हारा मैं बड़ा भाई हूँ; पर
मेरे मन में यह ममता है कि
तुम मेरे छोटे भाई हो ।
हे भाई, मैं देखूँ तुम्हारे भाग्य को आँखों भर,
राजपद स्वीकार करो सत्वर ।

गरुड मंत्र से विष उतरता है जिस तरह,
राजा भरत की बातें सुन कर
बाहुबलि का कोप दूर हुआ उसी तरह,
और शीतल हुआ उसका हृदय ।

—'भरतेश-वैभव' से

अनुभव-वेद

सर्वज्ञ

सर्वज्ञ जो कहलाता है, क्या गर्व से बना है ?
सब से एक न एक बात सीख कर,
विद्या का पर्वत बना है—सर्वज्ञ ॥

चाहे बता दे कोई गाँव का रास्ता,
गुरु ही बताएगा तत्व-सार
वह चाहे हो कोई भी—सर्वज्ञ ॥

धागा ही कल्प-लता है, भिखारी है सुरपति,
शिव का दिया हुआ पंख ही पर्वत है
जब तक बनी रहेगी गुरुकृपा—सर्वज्ञ ॥

गिन रही हैं उंगलियाँ, गुन रही है जिह्वा,
ध्यान कर रहा है जो मन अनेकों का
वह श्वान-सा है उजड़े गाँव का—सर्वज्ञ ॥

एक ही है, दो कहाँ से आये ?
एक सर्वज्ञ है कर्तार सारे जग का
एक ही है दैव—सर्वज्ञ ॥

पत्थर पर पत्थर जोड़ कर
पत्थर से घर बना कर
पत्थर पर पत्थर रखने वाले मानव सब
पत्थर से हैं—सर्वज्ञ ॥

अनमना हो मंदिर की परिक्रमा
करना उसी तरह व्यर्थ है जिस तरह

घाने में जुता बैल सदा
चक्कर काटता रहता है—सर्वज्ञ ॥

जो दिया सो अपना, जो छिपाया
सो पराया, मत समझो उसे
बुरा जो दिया, है वही तुम्हारा
भावी पाथेय—सर्वज्ञ ॥

जिस पर चलते हैं वह थल एक,
जिसे पीते हैं वह जल एक,
जलाने का अनल एक,
जब है बात ऐसी, गोत्र कुछ
की बात कैसी ? —सर्वज्ञ ॥

हीन जात के लोगों के घर की
जात क्या हीन है ?
जाति-विजाति मत कहो,
जिन पर प्रसन्न होते हैं
भगवान, वे ही हैं सुजात—सर्वज्ञ ॥

झूठ बोलनेवाला मंदिर की ओर
देखते हुए हाथ उठा कर ऊँचा
ललाट तक चाहे करे नमस्कार,
उसका झूठ बोलना होगा उतना ही लंबा—सर्वज्ञ ॥

जैसा देखा वैसा कहने पर
रूठ जाता है सारा संसार;
दूसरों की इच्छा की जो करे सराहना,
उसकी सराहना करता रहेगा
निरंतर सारा संसार—सर्वज्ञ ॥

लोक गीत

नाम-महिमा :

हे नारायण, तेरे नाम रूपी बीज को
कहाँ बोऊँ ? कहाँ फसल उगाऊँ ?
अपनी जीभ पर तेरा नाम लगाऊँ ।

शिव शिव कहने पर
चाहे आसमान से वज्रपात हो,
चाहे पड़े पत्थर सिर पर
हे मन, शिव शब्द को छोड़ो नहीं ।

मानव क्या देगा ? मन क्या शीतल होगा ?
हिम-गिरि के प्रभु जब देंगे ।
तब घर भरेगा, मन भरेगा ।

छिपा है फूलों में, सोया है माला में
खोलेगा नयन कलियों में,
प्रभु-लिंग को देखा तो निद्रा भागी दूर ।।

मायका :

पुत्रियों को बिदा दे कर, आँखें भर आयीं,
छोटी चादर से मुंह ढाँप कर
बाप कहने लगा बस हो लड़की ज़िंदगी भर ।।

दूध पिया था जिस मायके का
उसका यश क्या गाऊँ ?
नदी-किनारे लगी बेल के जैसे
रस-लता फूले-फले ।।

काशी जाने के लिए न जाने लगेंगे

कितने ही दिन, घंटे भर में मायके
पहुँच कर देखा तो, बैठी हैं माँ-काशी ।।

लोरी :

क्यों रो रहा है मुन्ना,
पूछ रहे हैं सब;
माँग रहा है वह कच्चे दूध की मलाई
हठ कर के, नहीं उतरता नीचे गोद से ।

उस मुन्ने का अधर, जो रोता है
मूँगा है नोकदार,
टेढ़ी भौंहें हैं मानो नीम-दल;
दृष्टि ऐसी है मानों शिव के हाथ के
त्रिशूल की चमक ।

जिस घर में बच्चा हो,
उसमें पंखे की है ज़रूरत क्या ?
जब बच्चा खेलता है बाहर भीतर
मानों पंखे की हवा ही चलती है ।

बाँझ :

बच्चे नहीं हैं जिसके
उसका जन्म और जीवन
उस बैल की तरह है,
जो करता है मेहनत भाड़े पर;
अथवा उस केले के पत्ते की तरह है,
जो भोजन के बाद फेंका जाता है बाहर ।।

अंजीर का पौधा लगा है बाँझ के द्वार पर
जिसकी डली डली पर,
बैठे तोते बोलते हैं यों—'ऐ बाँझ,'
परायों के लिए बनी है तुम्हारी सम्पत्ति ।।

कन्नड़-कन्या

बी. एम. श्रीकण्ठय्या

जिस में पहले माँ का दूध पीकर,
    ललक से जिस में तुतला कर,
मित्रों सहित जिस में बड़ा हुआ,
    वह भाषा कौनसी है ?
जिसने प्रिया के प्रेम का द्वार खोल दिया,
    वह भाषा कौनसी है ?
वह भाषा कौनसी है
    जिसके मधुर गीत ने
कानों में बह कर, हृदय का स्पर्श किया है,
    जिसने यह अभिमान जगाया है
कि यह हमारी जनता है,
यह हमारा देश है और ये हमारे कवि हैं ।

कन्नड़-भाषा हमारी कन्या है,
मानों वह हमारे बाग़ का मीठा फल है;
अब दूसरी कन्या जो और कहीं पली है,
हमारे यहाँ आयी है वह मानों
नई बेल का रस-भरा फल हो ।

वह पश्चिम सागर की स्वर्ण-बाला है
अब बनी हमारी सांसों की नयन-तारा है ।

वह सरसाती, मनभावती हमें रिझाती है ।
दो प्रियाओं को रिझाता हुआ मैं
मना रहा हूँ सदा समारोह ।
एक का गहना दूसरी को

पहनाकर मैंने चाहा देखना;
एक का बाना दूसरी को पहना कर
चाहा मैं ने गाना ।
जो जाननेवाले हैं उन्हें क्या अचरज ?
वे बहुत थोड़े हैं जो अनजाने हैं ?
जब कला की छटा छिटकने लगी,
तब मन तृप्त हुआ,
समझ अपनी गिलहरी-सेवा, मैं धन्य हुआ ।

दक्षिण-पवन-क्रीड़ा

पंजे मंगेशराव

आ रहा है ! आ हा ! दूर से आ रहा है !
मानों पाताल का फुफकारता साँप हो,
चीत्कारता हुआ भूख रूपी भूत हो,
या काल रूपी भैंसे की चीख हो,
साँस जैसा सूसू करता आ रहा है,
भर-भर करता आ रहा है,
बार-बार शोर मचाता,
सागर जल में ज्वार जगाता,
ऊँची लहरों को तट पर उछालता,
ज़ोर-ज़ोर से भोर-भोर करता, आ रहा है ।
लुक-छिप कर आ रहा है, अंगड़ाई लेता,
नाव के पाल को फाड़ता, जहाज को उलटता—
पलटता, नाव को उड़ाता थिरकाता
आ रहा है ।
आ रहा है ! आ रहा है !
चिड़ियों की आँखों में धूल की काजल लगाता,
गाय बैलों को गो-शाला में पहुँचाता,
जलती आग को फैलाता ।

आ रहा है, आ रहा है, हाँ हाँ, आ रहा है ।
नारियों की तनी वेणी को ढीला करता,
बूढ़ों की ताड़ की छत्री को तोड़ता,
बालकों की टोपी को गिराता, उड़ाता
दड बड करता, बाग-बगीचा उलटता-पलटता
नारियल के पेड़ झुकाता,

सुपारी के पेड़ चीरता, झोंपड़ों की
छत उड़ाता-उड़ाता, आ रहा है।

आ रहा है, आ रहा है! आ हा! आ रहा है!
पेड़-पौधों के फूल गिराता, कच्चे पके फल लुटाता,
ऊपर नीचे दायें बायें
पछमी बादल, पछमी घाट उड़ाता-उड़ाता,
बिजली चमकाता, केले के पेड़ों पर
वज्र गिराता, वर्षा की झड़ी की भाँति,
आ गया है, बहता-बहता, आ गया है,
दक्षिण—पवन, कोंकण देश में
आ गया है! आ गया है!

विहग-मार्ग

डी. डी. गुण्डप्पा

विघ्न-बाधाओं की करते हो क्यों चिंता ?
जो बन पड़े तुम से सुलझाओ ;
श्रम करो अपनी शक्ति-भर
झेलो जो आवे कष्ट;
शेष सब छोड़ दो भाग्य-पर
तजो नहीं शांति, विमोचन का मार्ग यही —

—मंकुतिम्म !

अपनी यात्रा की मंजिल क्या जाने विहग ?
कौन देता है उसे भिक्षा निमंत्रण दे कर ?
जाता है वहां, ले जाते हैं उसके पंख जहां,
खाता है उसे जो लगे हाथ ;
ऐसा ही हो तुम्हारा व्रत—

— मंकुतिम्म !

देखता है कुछ उधर, घबराता कुछ सोचकर
फिर उड़ता है सरपट सत्वर,
आसमान में खेलता पाता है विहग
कुछ ऐसा अनुभव प्रतिदिन;
क्या तुम हो उससे बढ़कर ?

—मंकुतिम्म !

किधर उड़ता है ! किधर घूमता है !
कब किधर मुड़ता है विहग !
वैसे ही हम हैं सृष्टि के कृत्रिम कठ-पुतले
जीव का मार्ग है अकल्पनीय—

मंकुतिम्म !

आम का पौधा लगाकर तैयार रहो नीम खाने के लिए,
जगत के विषयों की होगी रस में परिणति;
इसका क्यों करते हो तुम विचार ?
बागवान पर छोड़ दो—तुम हो केवल सेवक—
—मंकुतिम्म !

तुम हो सिपाही, ज्ञात नहीं, है कहाँ सेनापति ?
पर जान लो कि वह भेज रहा है आदेश;
लड़ो धीरज के साथ; हार-जीत का विचार
करे वह, चलता है जिसका गुप्त शासन—
—मंकुतिम्म !

चाहते हो यदि चुकाना किसी समय
अपना पूर्व ऋण तो करो प्रारम्भ अभी,
अपनाओ दूसरों को, कर अपना हृदय विस्तार
और प्राप्त करो विश्वात्मा को—
—मंकुतिम्म !

स्वयं न पाकर जब पुत्र पाता है लाभ,
उसे अपना ही मान पिता सुख पाता है;
उसी तरह लोगों में कोई सुख पावे तो
उसे अपनाने वाला ही ज्ञानी ।
—मंकुतिम्म !

सू:—अ. डी. वी. गुण्डप्पा ने अपने प्रसिद्ध मुक्तक-काव्य 'मंकुतिम्म कग्ग' के प्रत्येक छंद के अंत में 'मंकुतिम्म' शब्द का प्रयोग किया है ।

'मंकुतिम्म' का अर्थ है—'भोंदू'

बहार आ रही है

कु० बें० पुट्टप्पा

पायल बजाती, पग धरती आ रही है
हुलसित धरती स्वर्ग-सुख ला रही है;
घाटियाँ उतरती चढ़ती,
तरुओं पर किसलय लादती,
नव-जीवन छवि छिटकाती,
बहार आ रही है,
वन-विनोद मधु-निनाद मन में जगा रही है,
भ्रमरदल मकरंद पीकर उड़ता गा रहा है,
मत्तमधुमास का स्वागत करने सब को बुला रहा है ।

शिशिर की सर्दी जा रही है,
कुसुमित बेलों पर
मदमत्त भ्रमर गा रहे हैं
मुक्त जीवियों जैसे ।
कलरव करने लगे शुक पिक,
आई सरस बहार ।

आम्रतरुओं पर कल कलरव कर रहा है खगकुल
किसलय-कांति, सुमन-सुरभि से है सुखद वन-प्रदेश ;
हरित वसन धारणकर,
कुसुमित सुमनों से सज कर,
हिम-मणि-माला पहनकर,
तन-मन-नयन से मोहित हो कर,
वनदेवी अपने प्रियतम माधव का
सप्रेम स्वागत कर रही है ।

उछलती कूदती कलकल करती सरिता के
तट पर, जब भानु थिरक रहा है ऊपर,
पेड़ के तले बैठ कर
मैं लहरों की शोभा देख रहा हूँ,
उस पर गीत गा रहा हूँ,
डूबता तैरता पिघल कर
सुन्दरता में उसी तरह समा रहा हूँ,
जिस तरह कोई कोमलांगिनी अपने
बिछुड़े प्रिय पति का स्वागत कर रही हो।
गायें चर रहीं हैं।
बरगद की छाया में बैठ मधुर मुरली
बजाते हुए ग्वाला मधुमास को सुला
रहा है। उस समय गायें खड़ी-खड़ी,
दोनों कान उठाए, ग्वालों की ओर दृष्टि
लगाए, मुरलीनाद का रसास्वादन कर रही हैं।

हे गिरिवृंद, हे सरितवृंद हे विहगवृंद, हे वृक्ष,
सुमन-वन—सब मिल कर घोषित करो—
सौन्दर्य ही सत्य है;
सत्य ही सौन्दर्य है;
और आनंदामृत जग में बहाओ;
घोषित करो, प्रेम—सौन्दर्य—सुख में ही परमपुरुष
का विमल—आनंद निहित है।

मधुमास आओ; पर की चिन्ता कोई नहीं भूले,
इसीलिए विधाता तुमको भेजते हैं।
जगत को सजाते आओ,
पर का प्रकाश जग में लाओ;
घोषित करो—सौन्दर्य ही शिव है;
हे शक्तिदायक आओ, हे ऋतुनायक, पुरातनता में
नूतनता को मिला कर आओ।

कब समझेगा मानवकुल ?

श्रीनिवास

कब समझेगा मानवकुल—हम सब एक हैं ।
गोरे कालों को कुचलते हैं पैरों तले;
यहूदी यह कहते फूले नहीं समाते
कि हमारी बाध्यता अधिक है ईश्वर के प्रति;

और कुछ लोग ऐंठ कर यह कहते हुए
दूसरों का तिरस्कार करते हैं
कि ब्रह्मा के मुँह से हम निकल आये हैं
और हमारी कौन समता कर सकता है;
इस प्रकार हम एक न एक दंभ में पड़े सड़ रहे हैं
जिसे हम कब तजेंगे जगन्नाथ की कृपा पाकर !

धूप में सोई हुई एक कुतिया के थन के पास
पहुंचे उसके कुछ बच्चे-जिन में से
एक की दोनों आंखें खुलीं थीं, दूसरे की
एक आंख खुली थी, और तीसरे की दोनों
आंखें बन्द थीं । जन्म के दूसरे ही दिन ये आपस में
एक दूसरे पर टूट पड़े ।
चलो, हटो, हराम भिखमंगे, तुम कुत्ते नहीं
सूअर हो । इसी तरह परस्पर जूझ रहे हैं ज़ग के जन ।

प्रातःकाल

द. रा. बेंद्रे

पूर्व दिशा रूपी घर के मुक्ता-जल का
हुआ छिड़काव, हुआ मृदुल छिड़काव;
खुला द्वार, फैला प्रकाश,
भीग गया सारा जग, गया भीग सारा जग।

रत्न-रस का झरना,
झर झर झर कर, सहज ही झर झर कर,
महक महक कर खिली कली,
कल कल खिल कर सहज ही खिली कली।

पत्तों पर फूलों के भीतर,
अमृत की बूँदें,
बिखरी अमृत की बूँदें;
आसमान से उतार लाकर धर दी यहाँ,
अब—धर दी यहीं लाकर।

शीतल—पवन के हाथों में धर कर
सुमन दल—चामर,
सुमन दल—चामर,
डला दिया है, भ्रमर दल ने
अपने तन पर मल कर,
सुगंधि तन पर मल कर।

पेड़-पौधों के कंठों से
चिड़ियों का गाना

निसृत हुआ चिड़ियों का गाना;
बना वन प्रदेश गंधर्वों का देश,
पल में वन-प्रदेश ।

आँखों ने देखा, रसना ने स्वाद लिया ।
इस देह ने पाया स्पर्श, इस देह ने पाया स्पर्श;
कानों ने सुना, नासिका ने सूंघा,
तन्मय बना यह लोक ।

ग्रहण न कर सकी बुद्धि,
समझ न सका मन,
दिखाई न पड़ा रंग
आँखों को दिखाई न पड़ा रंग;
शांति रस ही प्रीति से
साकार हुआ,
नहीं यह केवल प्रातःकाल ।

यदुगिरि की रात्रि

पु. ति. नरसिंहाचार

रवि दृष्टिरूपी मंत्र के प्रभाव से मुक्त धरणी ने अपने सहज-तत्व को प्राप्त कर विश्रान्ति पायी है । यह रात्रि विश्व के अस्तित्व का वह सहज रूप है जिसमें जगत का जीवन अपने नाना रूप-रंग-कार्यों से विरति पा चुका है। अब यह धरती एक नटी की तरह दिखाई दे रही है। विश्वात्मा ने जाग्रत हो नक्षत्ररूपी अपनी आँखें खोल दी हैं, पल-पल जो हवा बह रही है जो उसके निःश्वास की तरह है अथवा चिन्मय के मन में उठने वाले स्वप्न की तरह है।

तरु लेखा, गिरि-सीमा-लेखा, मौन नगर, मंदिर, कुटीर, प्रासाद आदि वास्तविकता के स्वप्नों की छाया की तरह हैं। क्या यह स्वप्न है ? क्या यह जागृति है ? यह कैसा आश्चर्य है । सप्तर्षि मण्डल जो घूम रहा है वह प्रश्न की तरह मानों विश्व-कवि के मन में उत्पन्न रहस्य है ।

मद्य की माया

जी. पी. राजरत्नम्

छोड़ चला मद्य वहाँ
सीधा आया यहाँ,
अरे ! अरे ! यह कैसा रास्ता !
बड़ी अव्यवस्था !
हाथ पैर सिकोड़ कर
ऐ घोड़े, क्यों नाच रहा है उछलकर ?
दिया, रे दगा !
मद्य पी गया रास्ता !
चाँद का टेढ़ा मुखड़ा
उसकी दायीं आँख फूटी
बची बायीं आँख
मानों वह नींबू का कटा टुकड़ा
क्यों रे चाँद-मूसरचंद !
बेहया कहीं का !
गये गुज़रे पियें तो
तुम पर भी मद्य की माया ?
देखो वहाँ सड़क का दीप
पलटी मार रहा है !
घिर घिर घिर घूम रहा है,
जो भी हैं यहाँ
उनको अपना होश कहाँ ?

सब खड़े हैं मद्य पीकर,
अपना ताँता लगा कर।
छोटे बड़े सब के सब यहाँ
जो दिखाई पड़ते हैं अब
खूब पिये हुए ऐसे
दीखते हैं जैसे मस्त हाथी;
इन पियक्कड़ों के बीच में
हमारा जायेगा मान;
हम लौटेंगे इसलिए
और बनेंगे मैखाने के मेहमान।

मंदार फूल

र. श्री. मुगलि

इन्द्र के नंदन की फूलवाली बालाएँ
ले आयी हैं मंदार-फूल;
'ले लो, ले लो इक मंदार फूल'
कह रही हैं इन्द्र के नंदन की
फूलवाली बालाएँ ।
सज आयी हैं मिल जुल कर,
खड़ी हो सुंदरियां उठती हैं
सरस स्वरलहरियां;
'ले लो, ले लो इक मंदार फूल'
कहती खड़ी हैं इन्द्र के नंदन की
फूलवाली बालाएँ ।
छोड़ देते हैं सब फूल सूँघ सूँघ कर,
लेने वाला कोई नहीं जग में इन्हें चाह कर।
मन में रूठ गईं दांत पीस कर
मंदार फूल वाली बालाएँ;
ले आयीं सब सुन्दर मंदार फूल
फेंक गईं नंदन के सर में
फूलवाली बालाएँ ।
गयी तब कोई इन्द्र के यहाँ दौड़कर,
कहा—'लिया नहीं किसी ने जग में
एक भी मंदार फूल,
क्योंकि पड़े हैं लोक में विपुल फूल'।

सागर पूर्णिमा

वी. कृ. गोकाक

कैसे उठता गिरता है देखो यह सागर विस्तार ?
वे देवता कहाँ हैं जिन्होंने किया था इसका मंथन ?
दिखाई पड़े बिना इन आँखों के वे लीन हुए आसमान में;
दिखाई दे रहा है एक मंथन, उसमें उदित एक चन्द्रमा—
वह पूर्ण-चन्द्रमा जो उदित हुआ सागर तल से।

जिस रत्नेन्दु को आकाश ने चुराया था
उसे देख कर फिर उसे अपने अन्तराल में
छिपाने के लिए सागर बड़ी उमंग के साथ
उमड़ रहा है जो ऐसा लग रहा है मानों
सारे आसमान को छिपाना चाहता हो;
अपने बंदी नायक को मानो सेना छुड़ाना चाहती हो;
शत्रुओं को भगा कर मानो साम्राज्य चक्रवर्ती को पाना चाहता हो;
अपने बंदी नायक को छुड़ाने के लिए मानों देश की जनता मचल रही हो;
खीज रहा है, गरज रहा है, धमकी दे माँग रहा है सागर देखो।

नहीं, यह सागर नहीं, सूनेपन का जन्मस्थान, नश्वरता की खान;
विश्व को रचनेवाले पंच भूतों का यह मूलभूत है;
ऐसा कतवार जो रस नहीं बनता, अविद्या, अंधतमस्;
जिस आसमान ने उसकी छाती को चीरकर चन्द्रमा को
उठा लिया है उसे डुबोने के लिए पुनः सागर ने अपना
तरंग-जाल फैलाया है, यह स्पष्ट है।

महाभूत नाच रहे हैं, लहरों के फनों पर,
मशाल भूत चीख रहे हैं काले जल की कंदरा में,
प्रलय को निमंत्रण दे रहा है ब्रह्मराक्षस का शंखनाद;

नहीं, यह सागर नहीं, है भीषणता की खान;
आकाश को कौन नापे ?
अपने हृदय मण्डप में मण्डित चन्द्रमा की रक्षा के हेतु
आकाश ने नक्षत्रों का रखा है फहरा;
हमले का साहस न करके, नरम हो कर, पड़ा है
यह सागर गरीब की तरह, चन्द्रमा की विनती पर।

आकाश को कौन नापे;
पूर्ण चंद्रमा की किरण-राशि परिधान की तरह नील
उदधि को वेध डाला है प्रकाश-सरिता ने;
आदि अंत में भरा है अंधकार, केवल बीच में है प्रकाश।

अपने प्यारे चन्द्रमा को न पाकर
उसकी छाया को छाती से लगाए
करोड़ों उपायों से अपने को ढाढ़स बँधा रहा है
यह सागर द्युतिमान हो कर।

एक नूतन राज्य रचेंगे

एम० गोपालकृष्ण अडिग

नये रक्त के उमड़ कर सूख जाने के पहले,
यौवन जादूगर के जादू का असर उठ जाने से पहले,
उत्साह-साहस की उत्तुंग लहरों के
क्षुब्ध सागर के सूख जाने के पहले,
एक नूतन राज्य रचेंगे हम ।

हमारे हृदय के स्वप्न हैं कामधेनु
जो दुहेगी वांछितों को,
दुहने वाले हाथों में दिव्य-दर्शन का आशीर्वाद
लक्ष्य-प्राप्ति में जो एक-मुखी इच्छा का संबल ।

जाति-मत भेद के कंदक हैं चारों ओर,
दुर्भेध हैं दुर्ग-प्राकार,
रूढ़ि राक्षस कर रहे हैं शासन
ताल ठोंक कर, भुजाएँ उठा कर,
दे रहा है युद्ध के लिए आह्वान ।

क्या हम पीछे हटेंगे ?—वीर तरुण हैं हम
एक ही छलांग में जायेंगे खाई के उस पार,
दुर्ग तोड़-फोड़ कर चकना-चूर करेंगे,
छाती पर लात मार कर असुरों की मांस पेशियों को तोड़ देंगे ।

हमारे मुर्दे बनेंगे किले की दीवार के लिए सोपान,
नए राज्य के भूले बनेंगे हमारे मरण-दुख, छुएगा नहीं
हमको भय, हार वीरों की रीति नहीं, अनीति है ।

पार कर बाधाओं का पारावार,
घोर निराशा के अग्नि-मुख में

प्रवेश कर आगे बढ़ेंगे हम,
उलझन-अटकाव सुलझा कर,
एक नूतन राज्य रचेंगे हम ।

आज का जीवन है अन्न-समर,
मानव-जीवन का केन्द्र बना है उदर;
अन्न के अन्याय की दावाग्नि में
जल रही है मानवता, संस्कृति, प्रीति, दिव की कामना ।
सब कुछ सबके लिए खुला रख कर,
समता, सम-सुख, सम-दुख,
समरसता की सामगान-लहरी पर,
थिरकता आ रहा है हमारा नूतन राज्य ।

यहीं, इसी जगह, हमारे सम्मुख
दु:ख के फनों पर,
हारों की जाँघों पर
खिलेगा हमारा राज्य,
हमारे हृदय में भरी सुगंधि
फूट निकलेगी—राह देखो उसकी ।

उत्साह, उद्वेग, उद्रेकपूर्ण
वीर नवयुवकों का राष्ट्र-ध्वज
फहरेगा, आसमान ही उसकी सीमा है;
उसमें बाधा पड़ने नहीं देंगे हम ।

रोकनेवालो आओ, मारनेवालो आओ,
अहित बोलनेवालो, अहित चाहनेवालो,
दुर्जनो आओ
हमने यही बीड़ा उठाया है—
तुम सब को काट कर, तुम्हारे श्मशान पर
एक नूतन राज्य रचेंगे हम—
एक सुखी आवास रचेंगे हम ।

कश्मीरी साहित्य

चयन :

प्रो० जे० एल० कौल

अनुवाद :

श्री शंभुनाथ भट्ट 'हलीम'

अनुक्रम

ऐतिहासिक समीक्षा		300
लल-द्यद	• वाख (वाक्य)	310
नंद रिशि	• श्रूख (श्लोक)	312
खवाजा हबीब	• वचन (गीत)	313
हब्बा खातून	• वचन (गीत)	314
अरणीमाल	• वचन (गीत)	315
अज्ञात	• प्रीति गीत	317
पहमूद गामी	• फरहाद का अपने सिर पर तेशा चलाना	320
वली उल्लाह मुतू	• सुपत्नी और कुपत्नी	322
परमानन्द	• बाल कृष्ण	323
	• सहज-विचार	325
मक़बूल शाह	• नोशलब का विरह-विलाप	326
	• किसान और पीर	328
लछमन रैना 'बुलबुल'	• साँम और मुकूकाल की लड़ाई	329
नाम साहब	• सूफी कलाम	
वहाब खार	• वही	331
अज़ीज़ दरवेश	• वही	
रसूल मीर	• वचन (गीत)	334
कृष्ण राज़दान	• लीला	335
अज्ञात	• चमन के माली आ	337
महजूर	• कृषक बाला (ग्रीसकूर)	338
ज़िन्द कौल	• मनुष्य रो देता	340
नन्द लाल अंबारदार	• झुमके (कनदूर)	342
गुलाम हसन बेग 'आरिफ'	• पर्वतीय नदी (आरः)	343
	• साथी	344
दीनानाथ 'नादिम'	• चन्द्रमा (जून)	345

अमीन कामिल	• शाश्वत प्रसन्नता	346
रहमान राही	• ज्वाला और नृत्य	348
गुलाम नबी 'ख़याल'	• सीमान्त चौकी	351
गुलाम रसूल 'नाज़की'	• कितअे (चौपद)	353
अख़्तर मुहिउद्दीन	• दांता किल किल	354
	• डल की सैर (दो दग उपन्यास)	360
रहमान राही	• ललवाख (समालोचना)	361
'पुष्कर भान'	• हीरो मचामा (नाटक)	365
अख़्तर मुहिउद्दीन	• पनघट (पत्र)	368
अवतार कृष्ण 'रहबर'	• कश्मीरी इतिहास पृष्ठ भूमि	369

ऐतिहासिक समीक्षा

कश्मीरी, काश्मीर घाटी के निवासियों की भाषा है जो उत्तर में दरदी उपपरिवार की 'शीना' भाषाओं, पूर्व में बौद्ध लद्दाखों की भाषा 'बोधि', दक्षिण में 'डोगरी' और 'पहाड़ी' तथा पश्चिम में 'पहाड़ी' तथा 'पश्चिमी पंजाबी' से घिरी हुई है। इसकी एक बोली किश्टवारी है जो किश्टवार के भागों से पीर पंतसाल के उस पार इस घाटी के दक्षिण पूर्व तक फैली हुई है। कश्मीरी का जन्म शीना या भारत-ईरानी भाषाओं के दरदी समूह से हुआ जो शीघ्र ही भारत-आर्य संस्कृत से और बाद में इसकी प्राकृतों से और चौदहवीं शताब्दी के आसपास मध्ययुगीन फारसी से अत्यधिक प्रभावित रही। अतः कश्मीरी भाषा में भाषायी एवं साहित्यिक महत्व के अनेक लक्षण उपलब्ध हैं; इसमें घोष महाप्राणों का अभाव है; इसमें कम-से-कम ऐसे छः स्वर तथा तीन व्यंजन-स्वनिम हैं जो आर्य-परिवार की अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में नहीं पाए जाते; इसकी अपनी विशिष्ट स्वर-योजना एवं व्यंजन-प्रणाली है और यदि ग्रियर्सन के शब्दों में कहें तो यह भाषा "किसी आर्यभाषा की विश्लेषणात्मक भाषा से एक संश्लेषणात्मक भाषा में परिवर्तित होने की अवस्था का एकमात्र उदाहरण है।

II

चौदहवीं शताब्दी कश्मीर में आंधी और तूफ़ान का काल था जिसने भयंकर नूतन सामाजिक एवं राजनीतिक चुनौतियों का साक्षात्कार किया। यह वह समय था जब मुस्लिम शासन की जड़ें मज़बूत होने लगीं और जिसके फलस्वरूप पुरातन परम्परा और नवीन चुनौतियों का टकराव अनिवार्य हो गया। लगभग इसी समय, जबकि संस्कृत का प्रभाव शिथिल हो रहा था और हिन्दू समाज विघटित होता जा रहा था किन्तु फारसी ने अभी इसका स्थान नहीं

ले पाया था, कविता को वास्तविक जन-भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होने का अवसर मिला।

सन् 1947 तक के कश्मीरी साहित्य को चार प्रमुख कालों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथमकाल का, जिसका अन्त 1555 के लगभग होता है, सबसे अधिक प्रसिद्ध नाम ललद्यद का है। ललद्यद त्रिक नाम से अभिहित स्वदेशी नीतिवादी शैव सम्प्रदाय की योगिन थीं। शैव-दर्शन के गूढ़ सत्यों किंवा आत्मिक खोज के नियमों के निर्देशन के कारण ये जन-कवयित्री नहीं बनी अपितु इन्हें जन-कवयित्री का स्थान इसलिए प्राप्त हुआ क्योंकि इसके वाख (संस्कृत वाक्य) में हिन्दू हो अथवा मुसलमान, विद्वान् हो अथवा किसान सभी को समानरूप से प्रभावित करने की शक्ति है। उन्हें महान् पद प्राप्त होने का एक कारण यह भी था कि उनकी गूढ़ अनुभूति में निष्ठा की छाप है; रूपकों और उपमाओं में व्यक्त उनके साक्षात्कार और अनुभव में दुर्लभ तीव्र अनुभूति, भव्यप्रयोगों की ऊर्जा एवं क्लिष्ट कल्पना की ऐसी उज्ज्वल दीप्ति है जो सम्पूर्ण कश्मीरी काव्य में अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं। उनकी कविता में न तो कोरी भावुकता है और नहीं कोरी उपदेशकता जो कि अनेक हीनतर एवं क्षीण-तर रहस्यवादी योगियों में बहुधा दिखाई देती है। अपरञ्च, उसकी कविता में वाह्याडम्बर और तत्कालीन रूढ़ कर्मकाण्ड के ऊपरी विधि और निषेधों के विरुद्ध विद्रोह की भावना दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार ये केवल एक सिद्ध योगिन ही नहीं; किन्तु कश्मीरी साहित्य की निर्मात्री भी है जिन्होंने कश्मीरी भाषा को ऐसी स्मरणीय उक्तियों से भर दिया जो आज भी यहां की वाणी में प्रचलित हैं। इससे भी अधिक, इस कवयित्री ने कश्मीरी साहित्य को प्रदान की—"ऐसी दृष्टि जिससे वाक्‌शक्ति की श्रीवृद्धि होती है ऐसी भावना-प्रसूत वाणी जिससे दृष्टि और अधिक गहरी उतर जाती है।"

शेख नूरुद्दीन भी इन्हीं के समकालीन थे जिनके श्रूख (संस्कृत में श्लोक) उपदेशात्मक हैं और कविता के रूप में घटिया होते हुए भी जिनकी सूक्तियाँ और सरस कहावतें भाषा की समृद्धि का कारण बनीं।

यहां शितिकन्था के 'महानय प्रकाश' का जिसमें रहस्यवादी नीतियों का विवेचन है; भट्टावतार की 'वाणासुर-कथा' का जो ऊषा और अनिरुद्ध के रोमांस पर आधारित ऐतिहासिक दृष्टि से प्रथम धर्मनिरपेक्ष काव्य है; गणक प्रशस्त के 'सुखदुख चरितम्' का जो सुखी जीवन की कला पर एक उपदेशात्मक कविता है उल्लेख करना उचित होगा—ये अन्तिम दो कविताएँ जैन-उल-आबि-दीन बादशाह (1420-1470) के शासनकाल में लिखी गई जब कि साहित्यिक गतिविधियों को काफी बढ़ावा मिला।

यह, प्रथम काल, अधिकांशतः रचनात्मक था। इस काल में जन-भाषा को जो काव्य प्रयोग की प्रारम्भिक अवस्था में थी, नये मुहावरे, विशेषण एवं व्यापक अर्थ-गरिमा प्राप्त हुई। इस समय जो साहित्य बना वह रहस्यात्मक और उपदेशात्मक, सूत्रमय सुभाषित पद्यों के रूप में है। ये पद्य चार-चार पंक्तियों के हैं और प्रत्येक पंक्ति में चार-चार यतियां हैं।

III

दूसरा काल (1555 से लगभग अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक) कुछ दृष्टियों से, कश्मीरी कविता का विशेष काल है। इस काल में रहस्यात्मक कविता लिखी जाती रही। विशेष रूप से हबीबुल्लाह नौशेहरी ने (1555-1617) लम्बी पंक्तियों और छन्दों और स्थायी टेकों वालों गीतों में और रूप भवानी (1625-1720) ने अपनी गूढ़ वाख (संस्कृत में वाक्य) में ऐसी रचनाएं प्रस्तुत कीं। परन्तु यह भाषा कुछ-कुछ अस्पष्ट और अब अप्रचलित है। ऐसा होने पर भी एक नवीन प्रकार की कविता जिसमें धर्म निरपेक्ष मानव-प्रेम की बात कही गई है, इस काल की मुख्य देन है। इसे लोल-गीत कहते हैं, यह संगीतबद्ध है।

इसमें कवि अपने लोल (एक कश्मीरी शब्द जिसमें प्रेम का वह रूप पाया जाता है जिसका यहाँ अनुवाद नहीं किया जा सकता) का उल्लेख करता है जो सीधे हृदय को छूता है। लोल-गीत एक छोटी कविता है जो केवल एक ही भाव को व्यक्त करती है। इसमें किसी प्रसंग का वर्णन नहीं होता और भाव को संगीत से पृथक नही किया जा सकता जो—

"......सीधे हृदय में, पैठ जाता है जहाँ प्रेम सिंहासनारूढ़ है।" यहाँ प्रायः स्त्री को प्रेमिका के रूप में दिखाया गया है। वह कई मनोभावों में संगीतमय प्रेमाभिव्यक्ति करती है: "बसन्त आया है, फूल खिले हैं, कोयल बोल रही है, परन्तु तुम कहाँ हो?"

इनमें से बहुत-से गीतों के रचियता अज्ञात हैं, परन्तु दो प्रसिद्ध लेखक जो ज्ञात हैं निस्सन्देह स्त्रियां ही हैं। हब्बा खातून की देन हैं गीत (या वचन)। ये विभिन्न छन्दों एवं तुकों में हैं, जिसके प्रत्येक एकक में तीन-तीन पंक्तियों के बन्द के बाद टेक है। ये गीत शीघ्र लोकप्रिय हो गए और, आगे चल कर, उन्नीसवीं शताब्दी में ये लील गीतों और लम्बी वृत्तात्मक कविताओं के भी अग्रगामी बने। अरणीमाल ने जिसका काल लगभग अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है, अपने कोमल और मर्मस्पर्शी गीतों में इस परम्परा को बनाए रखा।

इन गीतों में घरेलू सुख या दुःख, "किसी नैसर्गिक दुःख, हानि या पीड़ा", का वर्णन है, और कुछ गीतों में प्रभु-दर्शन की अभिलाषा व्यक्त की गई है। इस रहस्यात्मकता में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों को मिलन-हेतु एक समान क्षेत्र प्राप्त हुआ; और ऐसे भी कवि हैं जो ईश्वरीय साम्राज्य में दैवी प्रेम के गीत गाते है "जहाँ न कोई हिन्दू है न कोई मुसलमान हैं ।" यहाँ श्रीकृष्णावतार-लीला का भी उल्लेख उचित होगा, जिस के रचियता का पता नहीं है, और जो भागवत पुराण के दशम स्कंध पर आधारित, श्री कृष्ण का जीवन वृत है। यह वचन शैली में चार-चार पंक्तियों के कविता में है, जिसकी चौथी पंक्ति सारी कविता में समान है। यह सुगम कश्मीरी में रचित अपने प्रकार की प्रथम वर्णनात्मक कविता है।

IV

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में एक नई हलचल दृष्टिगोचर होती है जो उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम बीस वर्ष समाप्त होते होते फैल गई और वर्तमान शताब्दी के प्रथस 25 वर्षों में खूब तेजी से बढ़ी। यह, तीसरा काल (लगभग अठारहवीं शताब्दी के अन्त से 1925 तक) साहित्य का समृद्धिशाली काल है। फारसी का प्रसार ग्रामीण क्षेत्रों में भी हो गया था और इसने शिक्षितवर्ग की साहित्यिक भाषा के रूप में दृढ़ता से पैर जमा लिए थे। नए विकास को फारसी भाषा और उसके साहित्यि के शक्तिशाली प्रभाव से बढ़ावा मिला। कवियों ने फारसी की विविध साहित्यिक कला शैलियों—जैसे, मसनवी और गज़ल आदि का मुक्त रूप—से प्रयोग करना शुरू किया।

इसके अलावा, अनुवाद भी खूब हुए, और कश्मीरी कवियों ने पौराणिक कथाओं और इतिहास की पुरानी फारसी के विषय, यूसुफ और जुलैखा, शीरीन तथा फरहाद, लैला और मजनूँ, सोहराब और रुस्तम और बहुत-सी अन्य कथाओं को अपना लिया। ये दोहा शैली में लिखी गई हैं, जिनमें फारसी छन्द, प्रायः बहारे-हजाज, का प्रयोग हुआ है। इसके शलावा फारसी शब्दों, कहावतों और वाक्यों की भी भरमार रही जो कश्मीरी की प्रकृति से मेल नहीं खाती, तथा जो अधिकतर मृतप्राय फारसी कविता की बासी और जीर्ण प्रकल्पना से लिए गए।

फिर भी कुछ कवियों ने स्थानीय परम्पराओं जैसे 'हीमाल' और 'ना ग्राई' या अकानन्दन से, या रामायण, महाभारत (सुदामा चरित, नलदमयन्ती कथा) भागवत पुराण (श्री कृष्णावतार-लीला) —से विषय-वस्तु का चुनाव किया।

शताब्दी के पूर्वार्ध के मुख्य कविगण हैं : महमूद गामी (मृत्यु 1855 ई०) और वलीउल्लाह मुतू (मृत्यु 1858 ई०)। महमूद गामी नवीनतात्मा प्रवर्तक था; और उसने कश्मीरी मसनवी और गज़ल को फारसी के रूप में ही ढाल दिया। उसने रोह्‌व (नाच) गीत, जो उससे पहले केवल लोक-गीत के रूप में प्रचलित था, लिखना भी सम्मानित कार्य बना दिया। उसने आठ मसनवियां लिखी, जो अधिकतर निजामी, जामी और अन्य रचियताओं के फारसी की मूल रचनाओं के अनुवाद या संक्षिप्त रूपान्तर हैं। ये सब प्रेम-रोमांस हैं और ये एक अलंकारमय शैली में प्रणयोन्माद के सच्चे काव्यमय गुण को प्रकट करते हैं। परन्तु वाक्य-विन्यास और कल्पना में एक प्रकार की असंगति का आभास मिलता है जबकि, कुछ अंशों को छोड़कर वे वस्तुतः कृत्रिम और नक़लमात्र हैं। और धरती के अनुरूप ऐसे सरस नहीं जैसे वे वचन शैली में लिखे उसके गीतिकाव्य बन पड़े हैं।

वलीउल्लाह मुतू की भाषा अधिक सरल और लोकप्रिय है और वह अपनी मसनवी 'हीमाल', व 'ता-ना-ग्राई' को स्थानीय रंग देने में सफल हुआ है फिर भी उसने स्थानीय कथा से विषयान्तर करके न केवल कथा के प्रभाव को नष्ट कर दिया है अपितु काव्य-सौन्दर्य को भी क्षति पहुँचाई है। अगले उप-काल (1859-1885) में कश्मीरी भाषा के कुछ सर्वोत्तम कवि हुए जैसे परमानन्द और प्रकाशराम, मकबूल शाह और लछमन रैना, रसूल मीर और शम्स फ़क़ीर।

V

परमानंद (1791—1885) ने वृषभ लगन, राधा स्वयंवर और सुदामाचरित नामक तीन लम्बी वर्णनात्मक कविताए लिखीं। परमानन्द किसी भी भाषा में एक उल्लेखनीय कवि रहेगा। इन कविताओं का प्रधान विषय है प्रतीक और शील अन्योक्ति रूपक गर्भित कविता में व्यक्त परमात्मा के लिए मानव की और मानव के लिए परमात्मा की खोज। ऐसा ही उनकी बहुत सी छोटी कविताओं में मिलता है जिसे लीला-गीतकाव्य कहा जा सकता है। कवि मुख्यतः राधाकृष्ण के प्रेमी-पुजारी के रूप में व्यक्तिगत ईश्वर के गुण गाता है। इन सब में एक प्रकार के समर्पण हर्ष और आनन्द की झांकी मिलती है जो कि कश्मीरी कविता में विरल है।

लीलासमूह के कवि संसार का अस्तित्व मानते हैं; उनके लिए यह सत्य है और शिव है; लीलाधर की एक लीला है—सृष्टा के ओजस्वी परमानन्द का आप्लावन, नटराज का नृत्य है। वर्णनात्मक काव्य के रूप में उसका 'सुदामा

चरित्र' अपने साधु प्रारम्भ, अल्पाक्षरता एवं कथा की उदात्तता के लिए बेजोड़ है। और फिर अलौकिक रूपक का क्या कहना जिस से इसे एक विशेषता प्राप्त होती है। उसका 'राधा-स्वयंवर' उसकी कविताओं में सबसे अधिक संगीतमय है।

प्रकाशराम द्वारा रचित 'रामावतार चरित्र' तथा 'लवकुश चरित्र' परमानन्द की वर्णनात्मक कविताओं की तुलना में घटिया है। इनमें उस का उद्देश्य कहानी कहने की बजाए धर्मनिष्ठा और भक्ति का पाठ सिखाना अधिक लगता है। सम्भवतः यह हमारी प्रथम रज़मिया (द्वन्द्व) मसनवी है जिसकी रचना अधिक सरल भाषा में हुई तथा जो संस्कृत या फारसी-अरबी के अपरिचित शब्दों की प्रचुरता से बोझिल नहीं है।

मकबूलशाह गुलरेज के छन्दोबद्ध रोमांस के लिए प्रसिद्ध होने का अधिकारी है। यह उन इनगिनी मसनवियों में से एक हैं जो जीवित रहेंगी और जो केवल संकलनमात्र नहीं। गुलरेज़ में सर्वत्र गुणशालिता प्रायः समान रूप से व्याप्त है और इसमें हमें प्रेम का प्रबल चित्रण प्राप्त होता है जिस का प्रभाव कहीं-कहीं प्रकृति के दृश्यों के वर्णन से और अधिक तीव्र हो जाता है हमारी पहली हज़लिया (हास्य व्यंग्यात्मक) मसनवी के रूप में उसका ग्रीस्ट-नामा अपनी किस्म का एक उत्तम व्यंग्य है।

लछमन रैना (मृत्यु-1897 ईसवी) को अपनी रज़मिया (द्वन्द्वात्मक) मसनवी 'साम नामा' और अपनी हजमिया (प्रेमात्मक) मसनवी—'नल दमयन्ती' के लिए जो अधिक प्रसिद्धि मिली वह उसका पात्र है। इन दोनों में वह फारसी को कश्मीरी की प्रकृति के अनुकूल बना कर प्रयोग करने में सफलता प्राप्त करता है। यही गुण हमारे सर्वोत्तम गीत-लेखक रसूल मीर की गज़लों और गीतों की भी एक विशेषता है। इन में प्रेमी को मनुष्य माना गया है और कवि बे-रोक-टोक प्रचुरता से उसकी सुन्दरता का वर्णन करता है। इन में प्रणयोन्माद और सहजता की ध्वनि है।

सब मिलाकर इस काल के गीतों और गज़लों के बारे में भी कुछ बताना ठीक होगा। वे अधिक शिष्ट, अनुकरणात्मक और कृत्रिम हैं, उन में पहले के काल के गीतों की सी लय, ऋजुता और कोमल तीक्ष्णता का अभाव है; परन्तु उनमें अन्तर्कथा, ऐन्द्रिकता और आलंकारिकता की प्रचुरता है। अबभी कविइसी गीत (वचन) या गज़ल शैली में अपनी रहस्यात्मक कविताएं लिखते हैं और इन में भी हम मुहावरे और शब्दावली का परिवर्तन पाते हैं, फारसी पद्धति का अनुसरण करते हुए रहस्यात्मक कवि मद्यशाला और मदिरापात्र वाले मत का प्रतिदान करते हैं और पुरानी धार्मिक रीतियों के प्रति वे उदासीन हैं। इस

सारे काल के सब से प्रसिद्ध रहस्यात्मक कवियों में से शुकुर रिशि, शाह कलंदर, मोमिन साहब, अजीज दरवेश, नाम साहब, स्वाचकरात शम्स फकीर वहाबखार, रहमान दार, अहमद कतवारी और वजा महमूद उल्लेखनीय हैं। उन में से कइयों में हमें हिन्दू और सूफी परम्परओं का समन्वय मिलता है और वे कुछ इस प्रकार की बातें करते हैं— जैसे "शास्त्र कहता है" (शास्तुर हिऊ), और उनकी सर्वोत्तम कविताओं में ऐसे गुण हैं जो रहस्यवाद को कविता में रूपान्तरित कर देते हैं।

कश्मीरी कविता के क्षेत्र में रहस्यवादी कवियों से भिन्न, धार्मिक कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध नाम अब्दुल अहद नादिम का है जिस ने गीत शैली में पवित्र पैगम्बर पर 'न अत' (स्तोत्र) की रचना की जो श्रद्धा और भक्ति से ओतप्रोत है। वह अन्तिम उप-काल (1885-1925) में हुआ। हाजिन का वहाब पारे भी इसी उपकाल (1846—1909) में हुआ। वहाब पारे प्रेम तथा युद्ध (रोमांस) दोनों की मसनवियों गीतों और गजलों और 23,491 पद्यों के 'शानामा' का दीर्घायाम लेखक है। अन्य उल्लेखनीय कवि अज़ीज़ अल्लाह हक़्क़ानी (1854-1929) हैं, जिसने रहस्यात्मक तथा धार्मिक दोनों प्रकार की मसनवियां एवं गजलें, तथा सैलाब नामा (बाढ़ की कहानी) आतिश नामा (प्रचण्ड अग्नि की कहानी)—जैसी प्रांसगिक कविताएं लिखीं। बहुत से और भी कवि हैं जो मसनवियां और रहस्यात्मक तथा अन्य कविताएं व गजलें और शहरे—अशोब कविताएं लिखते हैं जिन में प्राकृतिक विपत्तियों एवं भ्रष्ट नौकरशाही के अत्याचारों का वर्णन है, परन्तु इस संक्षिप्त समीक्षा में यहां उनका उल्लेखमात्र काफी है।

इस अन्तिम उप-काल का अन्य प्रसिद्ध कवि था कृष्ण राजदान (1850-1925) जो **शिव-परिणय** और बहुत-से **लीलागीतों** का लेखक है। इसके गीतों की भाषा सरल तथा मधुर है। ये प्रभाव-हीन नहीं, लय बद्धता एवं हर्षातिरेक इनकी विशेषता है।

शताब्दी के बदलते बदलते कश्मीरी साहित्य पर उर्दू, हिन्दी और अंग्रेजी का भी प्रभाव अनुभव होने लगा। पक्की सड़कों और डाक व तार के माध्यम से घाटी का सम्पर्क अन्य जगत से विकसित हुआ; प्रशासन के उच्चतर स्तर पर अंग्रेजी को सरकारी भाषा के तौर पर अपनाया गया; और फारसी का प्रभाव क्षीण होने लगा। कश्मीरी में इसी समय गद्य का आरम्भ हुआ। बाईबल तथा युक्लिड के अनुवाद हुए; तफसीरेकुरान और मिसाल जैसी रचनाएं जिनमें इस्लामी प्रथाओं का वर्णन है, कश्मीरी में दिखाई देने लगीं;

और ईश्वर कौल ने, 'कश्मीरी शब्दामृत' नाम से भाषा का एक व्याकरण लिखा। हिन्टन द्वारा संग्रहीत कहावतें और लोक कथाएं और सर ओरेल स्टेन द्वारा 'हातिम की कहानियां प्रकाशित हुई। इस लम्बे काल की लगभग समाप्ति पर, 1925 में, नन्दलाल कौल ने अपने नाटकों (जो अधिकांश उर्दू से अनूदित थे) उदाहरण के रूप में सतच कहावत सत्य की कसौटी रामुन राज (श्री राम राज्य) और प्रहलाद भगत आदि, द्वारा एक हलचल पैदा कर दी।

VIII

चौथा काल (1925-1947) गुलाम महजूर अहमद का है। उसने कश्मीरी को संक्रमण काल में जीवित रखा जब कि साहित्यिक रचना का अवनतिकाल था। वह, उसी के साथ रसूल मीर, दोनों ही गजल और गीत के सर्वोत्तम लेखक के नाते लोक प्रिय हुए। महजूर ने भाषा के अपने स्वभावानुकूल संगीत का उद्धार किया और तकली रेखता एवं, मसनवियों की अलंकृत फारसी-गर्भित शैली से उसकी रक्षा की। उसने काफी कुछ किया। उसने स्वरचित **ग्रामीण बाला**', '**आ, ओ माली**' (उद्वेलित कर देने वाली देशभक्ति पूर्ण कविता) और स्वतन्त्रता पर लिखी अपनी ग़ज़ल—जिसमें बड़ी तीक्ष्ण व्यंग्योक्ति द्वारा स्वातन्त्र्योत्तर अभ्रान्ति का वर्णन है, तथा ऐसी बहुत-सी कविताओं में एक आधुनिक स्वर का प्रवर्तन किया है। उनसे कनिष्ठ समसामयिक अब्दुल अहद आजाद ने नज़में लिखीं। उनकी कविताओं में विषय और प्रभाव की एकता थी। यही नही, उसने शिकवा-ए-इब्लीस (शैतान की शिकायत), दरिया (नदी) और पान्तसादर (जलप्रपात) जैसी इन्कलाबी विषय वाली कविताएं लिखीं। रीतिवादी कवि मसनवियां और ग़ज़लें ही लिखते रहे, परन्तु युवा कवि देश के अन्य भागों में हो रही सामाजिक एवं राजनैतिक गतिविधियों से प्रभावित होने लगे।

गुलाम हसन बेग आरिफ ने चौपदे लिखने आरम्भ किए और गुलाम महमूद फाज़िल और नंदलाल अम्बारदार ने रोमांटिक कविताएं लिखीं जिसमें उसने पुरानी निर्जीव लेखनशैली का बहिष्कार किया जैसा कि काला कूर (कुम्हार की बेटी) और 'कनदूर' (कान के बुन्दे) में देखा जा सकता है।

जिन्द कौल ने अपनी कृति 'सुमरन' नामक 35 कविताओं के संग्रह में आधुनिक स्वर को अधिक स्पष्टता से ध्वनित किया है। यद्यपि उसकी कविताएं रहस्यात्मक हैं परन्तु एक विशेष बात उनमें यह है कि उनमें एक जिज्ञासापूर्ण सन्देह एवं प्रश्नात्मक स्वर व्याप्त है। उसकी कविताओं में अगाध तल्लीनता

की झलक है। कुछेक में जैसे लोलस कुन (प्रिय के प्रति) वनन मंजु लाल (गुप्त रत्न), मातावा'री (असन्नद्धता) आदि में दीर्घ-दृष्टि का विरल गुण है। उसने कुछ नई तुकों तथा सम एवं विषम दोनों प्रकार के नए पद्य रूपों का प्रवर्तन भी किया।

IX

अक्तूबर 1957 में उत्तर पश्चिम की ओर से कश्मीर पर आक्रमण हुआ, और पाकिस्तान-आयोजित इस आक्रमण से हमारे सम-सामयिक साहित्य का उदय हुआ। देखते ही देखते नए नाटककार, गद्य लेखक और कविगण प्रकट हुए, और पिछले युग के युवाकवि भी इस जीवन-मरण-संघर्ष से सम्बद्ध अपनी नई विषयवस्तु के साथ इनके स्वर में अपना स्वर मिलाने लगे। जो कुछ भी रचा गया उसमें से बहुत-सा प्रासंगिक था, परन्तु कुछ कविताओं और लघु नाटकों में अलंकारपूर्ण वाक्‌पटुता, प्रणयोन्माद एवं देशभक्ति, एक विस्तृत समाजवादी सहानुभूति तथा नवीन प्रभावी लयों एवं छन्दों की ध्वनि परिलक्षित है। इस पुनरुत्थान के नेता थे, दीनानाथ नादिम, नूर मोहम्मद, रोशन अमीन कामिल आदि जिन्होंने अंग्रेजी और उर्दू साहित्य का प्रभाव बढ़ाया। उनके बाद के कुछ और युवा कवि रहमान राही, गुलाम नबी फिराक, मुजफ्फर आज़िम, मोहनलाल बक्स, चमनलाल चमन, गुलाम रसूल, सन्तोष और गुलाम नबी खयाल; लघुकथाओं एवं उपन्यासों के लेखक, अख्तर मुहि-उद्दीन, अमीन कामिल, दीपक कौल, बंसी निर्दोष, औतार किशन, बेखबर, हृदय-भारती, उमेश कौल, सूफी गुलाम मोहम्मद, अली मोहम्मद लोने, शंकर रैना आदि हैं। दीनानाथ 'नादिम' ने कविता में दीप्त भावावेश एवं नई-नई विधाएं—जैसे, आपेरा और सॉनेट की सृष्टि की तथा भाषा को मोहक शब्दा-वली का असंदिग्ध भण्डार प्रदान किया, जबकि राही ने एक आधुनिक विचार सामग्री से गज़ल को बौद्धिकता प्रदान की। हाल ही में गुलाम रसूल नाजकी के चौपदों में 'नमरूदनामा' नामक रचना उसकी बहुत ही बहुमूल्य देन है। नाटकीय क्रिया-कलाप भी सामने आए परन्तु कुछेक लघु नाटकों-जैसे—सोमनाथ जुत्शी का **मो'दुरमास** (आकर्षक मदिरा) या **विजी वाव** (उत्तरी झंझा) और अली मोहम्मद लोने का **'ताजी बातुन कान'** से भिन्न पुष्कर भान द्वारा रचित मचामा पुस्तकमाला की भांति उनमें से कुछ, अपने हास्यरस के प्रभाव के कारण प्रसिद्ध हैं। इधर कुछ विदेशी श्रेण्य साहित्य एवं टैगोर के नाटकों के अनुवाद भी हुए हैं। यही नहीं; लघुकथाओं में सामान्य रूप से; अख्तर मुहीउद्दीन

के लघु उपन्यास 'दोद दग' में गुलाम मुहिउद्दीन हजनी, रहमान राही, जे० एल० कौल और कुछ अन्य समीक्षकों द्वारा रचित समालोचनात्मक निबन्धों में तथा स्किट, रेखाचित्र, निबन्ध और रेडियो फीचरों एवं नाटकों में श्रेष्ठतर स्तर बनाया जा चुका है ।

—जे० एल० कौल

वाख (वाक्य)

लल द्यद

1. मैं (गोया) कच्चे धागे के सहारे नैया को सागर में खेती जाती हूं। काश मेरा दैव, मेरी पुकार सुन ले और मुझे पार उतार दे। मेरी दशा माटी के उस कच्चे बर्तन की-सी है, जिसमें जल पच-पच कर अकारथ जाता है। मेरी आत्मा अपने (वास्तविक) घर को लौटने के लिए तरस रही है।

2. पताशों (नबात) के भार की रस्सी की गांठ ढीली पड़ गई। मेरी कमर कमान की तरह झुक गई। बताइये, यह भार क्योंकर वहन करूं। गुरुवाणी का ऐसा प्रभाव पड़ा कि जो कुछ मुझे प्रिय था, वह खो गया। मेरा रेवड़ चरवाहे (गड़रिये) बिना तितर-बितर हो गया। भार-वहन करूं तो कैसे।

3. हे लल्, मैं स्वयं धीरे-धीरे दुःखपूर्ण स्वर में तुम्हारा सोग मनाऊंगी। ए चित्त मेरे, तुझे मोह-माया ने घेर लिया। तेरे लोह-लंगर (सांसारिक विभव) की छाया तक तेरा साथ नहीं दे सकती। हाय, तू निज स्वरूप को भी भुला बैठा।

4. आकाश-भ्रमण करने वाला मन-रूपी अश्व निमिष मात्र में लाखों योजन नापता है। जो इस (मन) को चेतना व बुद्धि-बल की लगाम से नियंत्रित करे और प्राण-व-अपान के अभ्यास से जीवन की गाड़ी को संभाल कर रखे, वही लक्ष्य पा लेता है।

5. मैं 'लली' उसकी ढूंढ-खोज करते-करते थक-हार गई। (इस दिशा में) न केवल भरसक यत्न किया, अपितु सीमा से भी आगे बढ़ गई। उसकी ओर जब (जिज्ञासा पूर्वक) दृष्टिपात किया, तो देखा, द्वार पर कुण्डी लगी थी। इससे मेरी उत्सुकता और बढ़ गई और मैं वहीं ताक में बैठी रही।

6. जिसने लोम, मन्मथ (काम) और मद (अहंकार) रूपी चोरों को मारा, इन बटमारों का वध करके जो सेवाकारी बना, उसी ने सहज ईश्वर की जिज्ञासा की और उसी (साधक) ने (ईश्वर के बिना) अन्य सब कुछ राख (नश्वर) मानकर त्याग दिया।

7. शिव का पवित्र नाम जपते हुए जो हंस की चाल को मन में धारण

करे। दिन और रात सांसारिक व्यवहार में व्यस्त रहते हुए भी निस्संग रहे, जो मन को द्वित्व (दुई) भाव से दूर रखे। उस पर देवताओं के देव (महा-देव) सदा प्रसन्न रहते हैं।

8. रात के पिछले पहर चन्द्रास्त के समय जागकर मैंने अपने मतवाले मन को झिंझोड़ा, बहुत समझाया। यह मनोव्यथा मैंने दैव की प्रीति के निमित्त सहन की। 'में लली हूं, मैं लली हूं'—बार-बार कह कर मैंने प्रियतम को जगाया और उसके साथ मन एकाकार क्या हुआ कि मेरी दसों इन्द्रियां स्वच्छ व शुद्ध हो गईं।

9. मैं भीतर-ही-भीतर (अन्तर्मुख होकर) चन्द्र (इष्टदेव) को ढूंढ़ती रही। इस तलाश में मुझे मालूम हुआ कि एक-सी गुण-रूप की वस्तुएं आपस में मिलती हैं। हे नारायण, यह सब जब तुम-ही-तुम हो, तो मुझे आश्चर्य है कि इस विश्व में यह रूप-रंग की विविधता क्यों और कैसी है।

10. जब योग के अनवरत अभ्यास से सृष्टि का सम्पूर्ण विस्तार लय हो जाता है जब सगुण ब्रह्माण्ड गगन (आकाश) में विलीन हो जाता है, तो शून्य भी मिट जाता है और मात्र अनामय बचा रहता है अर्थात् ईश की सत्ता ही शेष रहती है। हे ब्राह्मण, यही सच्चा उपदेश है।

11. वहां न शब्द शेष रहता है, न मानसिक विचार; नीरवता की मुद्रा का भी वहां प्रवेश नहीं। वहां शिव-शक्ति के तत्व भी बचते नहीं। जो कुछ शेष रहे, वही उपदेश है।

12. जब मैं 'लल' मन-रूपी पुष्पोद्यान के द्वार से प्रविष्ट हुई तो आहा, मैंने शिव को शक्ति के साथ मिला हुआ देखा। वहीं पर मैं अमृत-सरोवर में विलीन हो गई। मैं जीते-जी ही मर गई अर्थात् जीवन की कोई लालसा न रही। मुझे कोई क्या करे।

13. चित्त नया, चन्द्र नया और यह जलमय (भव-सागर) भी हर क्षण नया-ही-नया है। जब से मैं (लल) ने अपना तन-मन स्वच्छ व निर्मल बनाया, मैं भी तब से सदा एक नया ही जीवन पाती हूं।

श्रूख (श्लोक)

नन्द रिशि

1. वही पुरुष स्वर्ग प्राप्त करेगा, जो दूसरों के साथ मिल-बांट कर भोजन करे, जो दिनों-महीनों के रोजे (व्रत-उपवास) रखे,निश्शंक होकर जो नमाज़ पढ़ता हो। लोभ, मोह, मद और अहंकार का त्याग करे। ऐसे ही पुरुष को मुसलमान कहा जाता है।

2. न ही जाड़ा (हेमन्त) रहेगा और न ग्रीष्म ही। सावन के उपरान्त कस्तूर (पक्षी विशेष) भी कूजन नहीं करता। सुख-सम्पति भी रहने वाली नहीं और दुख-विपत्ति भी स्थायी नहीं। प्रतिदिन साज व सन्तूर (नृत्य-गान) भी नहीं रहने का।

3. (क) सत्य वादन मानो अग्नि से परखा हुआ सोना है, पुष्प को विकसित होने के लिए प्रकाश प्यारा होता है। असत्य-वादन निरर्थक हंसने-जैसा है, जिसने बीज ही न बोये, उसको फल मिले तो कैसा।

3. (ख) जो अपने उचित अधिकार को छोड़ कर दूसरों का अधिकार छीनने की चेष्टा करे, समझो, उसके सूत की ढेरी (कार्यकलाप) में अव्यवस्था आ गई, अर्थात् वह उलझनों में फंस गया।

4. (दुर्जनों की संगति की आलोचना करते हुए नन्द रिशि कहते हैं) — पत्थरों से अटे हुए वीरानों में तू चश्मे की तरह खो गया। साधु होते हुए भी चोरों में मिल कर गुम हो गया, मूढ़ों के घरों में रहकर पण्डित होते हुए भी खोया रहा। कौओं की टोली में राजहंस होकर भी खो गया।

5. बुलबुल पुष्पवाटिका की टोह में रहती है। उल्लू वीरान और उजड़ी बस्तियों को ढूंढते हैं। शेर और सियार जंगलों की तलाश में फिरते हैं और गधे गोबर, लीद और राख के ढेरों को ढूंढते फिरते हैं।

6. इश्क (सच्चा प्रेम) मां के इकलौते पुत्र के मरने-जैसा है, बताओ वह (मां) आराम की नींद करे तो कैसे। प्रेम भिड़ का छत्ता कोख में भरना है, ऐसा व्यक्ति सुख भोगे तो कैसे। इश्क है, पैनी तलवार की चोट सहन करना —वह घाव को सहन करे तो कैसे।

वचन (गीत)

ख्वाजा हबीब

इश्क के क्षेत्र में (आत्मा को) छोड़ आया। अरे ! इसीलिये दैव मुझ से अपने आप सन्तुष्ट हुआ।

जिस नदी (दरिया) से हम पैदा हो गये। उसी के अनुकूल (प्रवह्यमान) रह, उसी की लौ रख, मद्य (आत्मज्ञान का रस) पान करा दूंगा। सब जीवनमय सृष्टि पानी में सृष्ट की है मैं (अल्लाह) ने। इसी से दैव मुझ पर राज़ी हैं।

कइयों ने लगातार मधु के प्याले (आत्मज्ञान के चषक) पिये। कइयों की सिद्धि पीते-पीते ही हो गई। कुछ तर गये और कुछ इस आस में बैठे हैं (कि तर जायेंगे)। इसीलिए दैव मुझसे खुश हैं।

वचन (गीत)

[एक]

मुझ से मेरे दिल को छीन कर कहाँ चले, ऐ मेरे फूलों के मतवाले साजन आ। ऐ सखी आ, जूही के फूल चुनें। मर गये तो यह जीवन फिर कहां मिलेगा। मैं तो उसकी सम्पन्नता की कामना करती हूँ। ऐ मेरे फूलों के मत-वाले साजन, आ!

ऐ सहेली। आ सलाद की साग चुनने जायें। भाग्य का यह पचड़ा कहां सुलझ पाये। मुझे तो जग-हंसाई ने कहीं का न रखा। ऐ मेरे फूलों के मतवाले साजन आ।

हे सखी। आ, 'ऋछ' के पत्ते चुनने जायें। नासमझ लोग मेरी खिल्ली उड़ाने लगे हैं। उन पर भी ऐसे ही बन आये, तो उन्हें मालूम हो। ऐ मेरे फलों के मतवाले साजन, आ।

सखी मेरी! आ, बन को जायें। न जाने लोगों ने उसे मेरा क्या कहा-सुनाया। उस नादान ने उनकी बातों पर कान धर लिया। ऐ मेरे फूलों के मतवाले साजन, आ।

ऐ सहेली। आ, पनघट पर जल भरने जायें। देख कि दुनिया नींद और सपनों में खो गई है। मैं उनके जवाब की बाट जोह रही हूं। ऐ मेरे फूलों के मतवाले साजन, आ।

मेरे प्रियतम, मुझ से यह घृणा करना छोड़। मेरे मन में बस एक तेरी ही कामना है। अन्त में यह दुनिया नाशवान है। हे मेरे फूलों के मतवाले साजन! आ।

[दो]

कौन-सी मेरी सौत ने तुझे भरमाकर मुझसे छीन लिया। मुझसे यह घृणा क्यों, ऐ मेरे प्रियतम, क्या तेरा हृदय यह क्रोध और मनोमालिन्य छोड़ना पसन्द नहीं करता? मुझसे यह घृणा क्यों, मेरे प्यारे।

आधी रात को मैंने तेरे निमित्त द्वार खुला छोड़ा; काश, तू क्षण भर के

लिये ही आता। हम तुममें कोई भेद नहीं, पर तू है कि दुई पैदा करता है। मुझसे यह घृणा क्यों, मेरे महबूब।

प्रिय मेरे, तूने मेरा जी जलाकर रख दिया, मुझे तो बस एक तेरी चाह है। बादाम जैसे नयनों से मैं तेरे निमित्त खून के आँसू बहा रही हूँ। मुझ से यह घृणा क्यों मेरे प्रिय।

(तेरे वियोग में) मैं श्रावण की बरफ जैसी पिघल गई, मैं उपवन में जूही पुष्प जैसी खिल आई, आ कि यह बाग तेरा है, तू ही इससे लाभ उठा। मुझ से यह नफरत क्यों मेरे प्यारे।

तेरे लिये मैं तन-बदन धो कर साज-शृंगार कर रही हूँ और तेरी सौगंध कि यह मैं सच कहती हूँ किन्तु तू है कि मुझसे निर्लिप्त होकर अपने आप पर भी गर्वित है। मुझसे यह घृणा क्यों मेरे प्रियतम।

देख, मैं अविरल धारा से कितने अश्रु बहा रही हूँ। मुझ अबला को बस तेरी ही कामना है। न जाने, तू मेरी राहें क्यों भुला रहा है? मुझसे यह घृणा क्यों मेरे प्रियतम।

हब्बा खातून अब हाथ मल रही है कि उसने कभी तेरी बन्दगी (सेवा) न की। उसे अपनी खोई हुई जवानी याद आ रही है। मेरे प्रिय, मुझसे यह घृणा क्यों।

—हब्बा खातून

वचन (गीत)

[एक]

श्रावण की खिली मुझ जूही (सी) का रंग (वियोग से) पीला पड़ गया। कब मेरा प्रिय आये और मुझे दर्शन दे। मिठाई-पकवान मैंने उसके लिये सजा कर रखे। न जाने छलकर वह कहां चला गया। लोगों के सामने उसने मेरी हंसी की, मेरा प्रिय कब आकर मुझे दर्शन दे।

(सखियो) भोर होते ही जाग जायें, और वन-पर्वतों में प्रियतम को खोजें। मैं उसके निमित्त प्रतीक्षा कर रही हूं। कब आये वह और दर्शन दे।

[दो]

2. मैंने, साजन के प्यार की खातिर मधु के प्याले भर-भर रखे, कोई उन्हें बुलाये तो।

कोई वनों में, चरागाहों को पार कर रहा हो या पर्वतों की ढाल से जा रहा हो तो (वह) मेरी शुभकामना मेरे उस प्रियतम तक ले जाये। क्या करूं, हिरन की तरह वह कुलाचें भरता हुआ चला गया। कोई उसे बुलाये तो।

पताशे और तरह-तरह की मिठाइयों से भरे हुए थाल मैंने रखे हैं, कोई

उन तक वे पहुंचा दे। प्रेमी मुझ पर जादू कर गया है, यह व्यथा मैं कैसे सहन करूं। कोई उन्हें बुलाये तो।

[तीन]

बचपन के मेरे साथी, आ। तेरे चरणों पर मैं अपने नेत्रों की पुतलियां वार दूं।

ओ निशानेबाज शिकारी, तब (बालपन में) मैं अनजान थी। मैंने यौवन की कद्र न जानी। तुम्हारे लिये तरस रही हूं, दर्शन दे, बालपन के मेरे साथी आ। नदियों के पुलिनों पर मैं तेरे साथ मारी-मारी फिरी। मेरा मन द्विधा में पड़ गया। तेरी चाह में हर कोई आवाज़ मुझे तेरी ही पुकार प्रतीत हुई। बचपन के मेरे साथी आ।

सर-सरिताओं के तटों पर बसन्त के फूल खिले, समझ तो जा, अब मुझे आशा है कि तू आयेगा। यदि तू दर्शन दे, तो अपना शीश तेरे चरणों पर वार दूं। मेरे बालपन के साथी, आ।

—अरणीमाल

प्रीति गीत (लोल नग्मः)

[एक]

वसन्त आया, नव वसन्त आया, सुरभि लाया, ऐ मेरे दिल, रंज और मलाल छोड़। रंग-बिरगे फूलों का अवलोकन कर। वसन्त आया, नव वसन्त आया।

ही (जूही) सम्बुल (पुष्प-विशेष) से कहती है, कि मैं विरह की मारी हूँ। गुलाल सीने में दाग लिये बैठा है और स्वर्ण-पुष्प चाव से भरा है। सदा-बहार की छव भी कितनी प्यारी है, फिर-फिर लौट आती है। वसन्त आया, नव वसन्त आया।

[दो]

रंग-बिरंगे सभी फूल आ गये। साजन, तुम कहाँ हो। सुन्दर, सुगन्धित गुलाब खिल आये, रात की रानी, मेंहदी के फूल निकल आये, लाजवन्ती और सम्बुल झूमने लगे। साजन, यह बता, तुम कहाँ हो।

[तीन]

पर्वतों के आँचल में भर-भर फूल खिल उठे। बादाम के पेड़ों की कलियां निकल आईं। उस मदमाते ने छेड़खानी की, यह संदेश कौवा मेरे लिये लाया। क्या वह मेरे गिले-शिकवे नहीं सुनेगा। बादाम की कलियां निकल आईं।

[चार]

जब मुझे अपना यौवन याद आता है, तो मैं पागल हो जाती हूँ। प्रेमी भौंरा बाग में घूम-फिर कर ढूंढते-खोजते पराग का संचय करता है। जब उसके पंख थक जाते हैं और वह गिर पड़ता है तब मैं पगला जाती हूं।

[पांच]

मैं जो हूर हूं, अप्सरा—ज्योंही मैंने कटोरे पर घिसा हुआ चंदन तन पर मल लिया, अर्थात् मैं सज-संवर कर बैठी, तभी मेरा साजन मुझसे दूर भाग गया।

कहा था मैंने आका (स्वामी) से कि मैं चुपके-चुपके उसकी बाट-जोहूँगी और उसके शीश पर जूही के फूल चढ़ाऊँगी। मन के उपवन में एक फूल खिला नहीं कि मेरा साजन मुझसे रूठ कर चला गया।

[छ]

सारा विश्व अरफा (विशेष-त्यौहार) मना रहा है। आशिक की ईद है, पर साजन के बिना ईद कैसी ! मैं किस चाह पर जीती रहूं ? वह तो मेरा नाम तक नहीं लेता, पूछता तक नहीं। भीतर-ही-भीतर झुलसी जा रही हूँ, तंदूर के साथ मानों चिपकाई गई हूँ। बरफ की डली की तरह नद-नदियों में पिघलाई गयी हूँ।

[सात]

दूर के वन-उपवनों में फूल खिल आये, क्या तुम्हारे कानों ने मेरी पुकार न सुनी ?

कृष्ण सरोवर में कमल मुस्काये, चलो हरे-भरे जंगलों की ओर जायें। दूर वनों में चमेली खिल उठी है, क्या तुमने मेरी पुकार नहीं सुनी।

[आठ]

बालम मेरे, आ, आ। मुझे तेरी आस है, आ और मुझे दर्शन दे। आरम्भ में ही तेरे साथ मैं वचन-बद्ध थी, प्रिय मेरे, वचन से क्यों मुकर गये। मुझे तुम्हारी ही कामना और प्रीति है।

[नौ]

जो कभी तांबा हो तो कभी कांसा अर्थात् जो एकनिष्ठ और निश्चित न हो—ऐसे बेवफा से कोई सम्बन्ध रखना ठीक नहीं।

मैं उसके पीछे मारी-मारी फिरी। यहाँ तक कि मेरे बाल भी पक गये। न जाने, वह मेरा हरजाई कहाँ गया।

उसके केश-पाश शाम की तरह काले और उसका मुख सुबह की तरह उजला है। बेवफा से कोई नाता न रखे।

[दस]

बालपन का साथी अंगना में आया, दृष्टि भर डालकर चला गया। आता तो गिले-शिकवे करती, न जाने इतना भी क्या अभिमान है उसे। जल्दी में ही आया और उतावली में ही चला गया। मात्र देखकर गया ! जाने इतना क्या चाव है उसे।

[ग्यारह]

(उसके) पंकज-से बदन पर स्वेद-बिन्दु उभर आये, मैं उन्हें चाँद-तारे न समझी। मेरे मन में था कि मोतियों की इस माला से मैं खेलूं, मन रिझाऊं। पर कोई मेरी सुने तो। भवें तरेरकर काहे को वह मेरा रोम-रोम कसे जा रहा है। मैंने उन्हें चाँद-तारा तो नहीं समझा।

[बारह]

वन की मैना! क्या सारिका को तोता नहीं मिलेगा। मैं प्रियतम पर वारी जाऊं, फाख्ता की पुकार मैं सुनती रही, गुलाल ने उम्र भर अपने सीने पर दाग़ पाल लिया, मेरे साजन ने रंग मेरा फाख्तई कर दिया। मैं उसकी बलैया जाऊं।

[तेरह]

ऐ सखी, बालपन के चाव में हम तुम्हारे अंगना खेलने आईं। यह जवानी आखिर ढल जाती है, बुढ़ापे का कंटक-जाल इसको अपनी लपेट में ले लेता है। ऐसे ही कंटक-जाल ने मुझे घेरा है। सखी, हम तुम्हारे अंगना खेलने आये थे कभी।

[चौदह]

बाग में सुमन खिले, फूल खिले वन में। भौंरे, क्या तुम्हारे कानों तक यह खबर न पहुंची? सुन्दरियों के मन का रोष पशम धुनते हुए मिट गया, तभी तो वे पशमीने की महीन तार कातने लगीं। भौंरे, क्या तुमने यह नहीं सुना?

[पन्द्रह]

हे प्रिय, हमारे यहाँ आ, जूही के फूल निकल आये हैं, यहाँ से हम अपने पीहर जायें, वहां फूलों की बहार है। अपने नातेदारों में मुझे बदनाम कर दिया कर्म की गत मेरे बस में न आई। कोई भी भाग्य के लेख को बदल न सका। मेरे प्रियतम, हमारे यहाँ आ।

[सोलह]

हे सखी, कुछ कह तो दे, प्रीत मेरी कितनी घनी हो गयी है। मुझ अबला की मनोकामना कब फलेगी। सोने की थलिया में मैं उसके लिए प्यार की हाला भर देती। उसे सजाती-संवारती। दूर सरोवर में मैं कस्तूर-सी विकस आई हूं। मुझ बाला का मनोरथ कब पूरा होगा।

फरहाद का अपने सिर पर तेशा चलाना

●

महमूद गामी

कहते हैं जब खुसरो के पास यह समाचार पहुँचा कि फरहाद और शीरीन एक दूसरे से मिले हैं और दूसरी बात यह कि फरहाद ने पर्वत से दूध की नहर निकालने का मार्ग प्रशस्त किया, तो वह अपने मंत्रियों से कहने लगा कि अब क्या न्याय किया जाये। शीरीन के उस प्रेमी से मैं वादा कर बैठा हूँ और शीरीन की जान उसी के साथ अटकी हुई है। (यदि कहीं वह उससे न मिलने पाये तो) वह भीतर ही-भीतर घुल जायेगी। तब मेरा जीना दूभर होगा और अगर कहीं वह चली गई तो मेरे जी पर बन आयेगी। उन्होंने यह सलाह दी कि उसका उपाय केवल यह है कि हम यह प्रचार करें—शीरीन मर गई।

वे ढूँढ़कर एक सयानी बुढ़िया को ले आये। उसकी कमर कमान की तरह झुक गई थी। बेसतून पर्वत की ओर वह फरहाद के पास भेज दी गई। वहाँ पहुंचकर वह बहुत जोर से चिल्लाई—'अरे, बेचारे फरहाद, यह खबर सुन कि तुम्हारी प्रियतमा शीरीन मर गई। वहां जा।' फरहाद बोला—'अरे, यह मैं क्या सुन रहा हूँ। मेरा ऐसा कोई मित्र नहीं, जिसको मैं वहाँ भेजूं। यौवन के आने वाले दिन कितनी जल्दी लौट गये। मैं पहाड़ों-पर्वतों में से जल निकाल लाया, पर मेरी जवानी मेरे हाथ से निकल गई। यह शाहबाज (पक्षी) आकाश मार्ग से उड़ चला। किसने मुझे वियोग बन यह दुस्सह दु:ख दिया।' वह रोता रहा। उसकी आँखों के सामने शीरीन का चित्र था। विरह-व्यथा में वह तड़पता रहा तब उसने अल्लाह का नाम लेकर तेशा हाथ में ले लिया और अपने सिर पर दे मारा, कहता रहा—मेरे प्राण, अब तू शीरीन के साथ ही मीठी नींद सो जा! यह खबर शीरीन और खुसरो के पास पहुंची। शीरीन सुनते ही अत्यन्त दु:खी हो गई। वह पत्थरों की राह चलते-चलते

दौड़ी-दौड़ी आई । उसकी आँखें खून के आँसू बहा रही थीं । रोती-बिलखती वह फरहाद को पुकार रही थी । दूर से उसने पर्वत पर मृत फरहाद को देखा । सरो-जैसे क़द वाला वह फरहाद मिट्टी पर गिरा था और उस सुन्दर मुख वाले प्रेमी का सिर फट गया था । शीरीन ने अपने घुटनों पर उसका सिर रखा और रोने लगी । उसकी पग-धूलि अपने शीश पर चढ़ाते हुए कहती रही, मेरे मीत, मेरे फरहाद कह दे, किसने तुम्हारा यों हनन किया है । फरहाद, किससे तूने मरते समय ग़म की शर्बत का पान करते हुए पानी मांगा । 'मेरे फरहाद, उठ, और सुन कि मैं तुम्हारे विरह में कैसे चीख-पुकार कर रही हूं । फरहाद मेरे, मैं तुम्हारी दूरी सहन नहीं कर सकती । तुम्हारे बिना मैं रात और दिन कैसे बिताऊं । कितने भोले बने हो फरहाद, शत्रुओं ने छल करके तुमसे दाव खेला । मेरे यार तुम्हारे साथ प्रलय तक रहने का मेरा वचन है । मैं तुम्हारी हूं, और तुम्हारी ही रहूँगी ।'

सुपत्नी और कुपत्नी

•

वली उल्लाह मतू

किसी की पत्नी आराम करके भी अपने पति का एहसान नहीं मानती। (पति) उसकी मानता है, पर (पत्नी) उसका आदर नहीं करती। किसी को ऐसा बाग मिला कि उसका हृदय खिल उठा और दूसरे को ऐसा दाग़ दिया कि घर भर में कलह मच गया। किसी की पत्नी उसकी सेवादार रहती है और कोई पत्नी पति के पीछे प्यादे (पुलिस वाले) लगवा देती है। एक पत्नी है कि पति की दासी बनी रहती है और पीहर उस पर वार देती है और दूसरी है जो सदा ही तलाक़ मांगती है, मोहरें और धन-सम्पत्ति की लालसा रखती है और धमकी देती है कि बदनसीब, उठ। तुझे कोतवाल ढूँढ़ रहे हैं। एक पत्नी मान बढ़ाती है तो दूसरी राक्षसी प्रवृत्ति अपनाकर दु:ख देती है। एक की पत्नी सब-कुछ होते हुए भी लज्जित करती है, पर दूसरी दरिद्रता में भी पति पर न्यौछावर होती है। किसी की पत्नी सायादार चनार-सी होती है, पर किसी की पत्नी द्वार पर की कुतिया के समान भौंकती रहती है। कोई पत्नी चूहे की तरह धोखेबाज़ होती है जो दान-दाना लेकर घर खाली कर देती है। किसी की पत्नी रोते-रोते पति का जीवन दूभर कर देती है, बीमार बनकर वह पति का कूंडा कराती है। किसी की पत्नी भिड़ बनकर डंक मारती है और झूठ-मूठ की नरमी बरतकर अपना मतलब साध लेती है।

बाल कृष्ण

तेरे जन्म लेने पर अन्धकार में उजाला हो गया है; हे, देवकीनन्दन, तेरी बार-बार जय हो। नित्य-शक्ति से तू नाना रूप धारण करता है। क्षीर-सागर में तू श्वेतदीप है। वासुदेव एवं संकर्षण देवकीनन्दन, तेरी बार-बार जय हो।

प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, शुद्ध निर्मल, सिद्ध, बुद्ध शुभ मंगल वेद-निधि, हे निरंजन तुझे जन (लोग) कैसे जान सकते हैं। देवकी नन्दन तेरी बार-बार जय हो।

हे वसुदेव की हंसती हुई सन्तान, उसे तेरे बहुत से करिश्मे बार-बार देखने पर भी इस बात का विचार कहाँ आता (कि तू कौन है)। हे नन्द ग्वाले के इकलौते लाड़ले पुत्र कहलाने वाले, तूने जन्म लिया है। हे देवकीनन्दन, तेरी जय हो!

यमुना की अभिलाषा है कि वह तेरे चरण चूमे। हे निस्पृह, निष्काम, बालगोपाल, इसीलिए उसका जल ऊपर-ऊपर चढ़ता जा रहा है, देवकी-नन्दन, तेरी बार-बार जय हो।

देशकाल को सीमा से परे तू अपने उस देश से बाहर निकल आया, जहाँ तक मन की भी पहुंच नहीं। यशोदा ने पुष्प-वर्षा करके तेरा स्वागत किया। देवकीनन्दन तेरी बार-बार जय हो।

एक-एक ने बारी-बारी से गोद में लेकर तुझे लाड़-प्यार किया। भावातिरेक के कारण तेरा नाम कृष्ण (सांवला) रखा। ऐ माखनचोर, उन्होंने आंखों की पुतलियों में तेरा पालना बनाया। हे देवकीनन्दन, तेरी बार-बार जय हो।

गोपियां यशोदा की पुत्रोत्पत्ति पर उसे बधाई देने आईं। (तुझे) देख-देख कर कहा, कृष्ण जीता रहे, सखियाँ और बांदियाँ हर्ष मनाने लगीं। हे देवकीनन्दन, तेरी बार-बार जय हो।

यशोदा मैया ने तुझ पर दूध चुराने का आरोप लगाया। वह यह न समझी कि यह तो स्वयं जगत का राजा आया है, फिर तूने अपना मुख खोलकर उसको त्रिभुवन के दर्शन कराये। हे देवकीनन्दन, तेरी बार-बार जय हो।

भोला कृष्ण (बुद्धि का स्वामी) दूध चुराने के लिये घुटनों के बल चला, गोपियां चारों ओर दौड़ने लगीं और कहती जा रही थीं कि वह बर्तन तोड़ता है, लो मेरा भी और मेरा भी। हे देवकीनन्दन, तेरी बार-बार जय हो।

यशोदा ने कहा—यह तो मुझे बदनाम कर रहा है। पराई औरतों के सम्मुख लज्जित करता है, मेरे इस पेटू का तो पेट भरता ही नहीं है देवकीनन्दन, तेरी बार-बार जय हो।

दूध पीते ही वह यशोदा से भागने लगा। वह हाथ में गाय बाँधने की रस्सी लेकर उसके पीछे-पीछे थरथराई हुई दौड़ पड़ी ताकि उसे रस्सी से बाँध रखे। हे देवकीनन्दन, तेरी बार-बार जय हो।

जिसका चित्र चित्रकार न खींच सके, योग-ध्यान से भी जो कल्पना के घेरे में नहीं आ सकता, उसका ध्यान केवल वही कर सकता है, जिसको उसका सान्निध्य प्राप्त हो। दे देवकीनन्दन, तेरी बार-बार जय हो।

(यशोदा) उस बलवीर के पीछे दौड़ते-दौड़ते और उसके भागने के छल-बल का सामना करते-करते थक कर हार गई। वह तो आंगन-ही-आंगन में अनेकों योजन चलकर भाग गया। हे देवकीनन्दन, तेरी बार-बार जय हो।

मां के थक जाने पर पुत्र को तरस आया, जिस प्रकार भगवान को भक्तों पर दया आती है। अन्ततः उसने पकड़े जाने के लिये आत्म-समर्पण किया। हे देवकीनन्दन, तेरा बार-बार जय हो।

जिसके कंठ की कौस्तुभ-मणि माला अखण्ड और अविछिन्न ब्रह्माण्ड है, उसके बांधने के लिये गाय की रस्सी छोटी पड़ गई। हे देवकीनन्दन, तेरी बार-बार जय हो।

वह रस्सी से रस्सी जोड़ते-जोड़ते थक कर चूर हो गयी, कौन जाने, वहाँ ऐसी रस्सियां कितनी थीं, फिर भी वह सब छोटी पड़ती गई। दे देवकीनन्दन, तेरी बार-बार जय हो।

तुम्हारे चरित अनन्त हैं। उनका कोई पार नहीं पा सकता। सबमें तू ही व्यापक है।

सहज विचार

•

परमानन्द

जीते-जी मर जाना एक बाजी लगाना है, एक खेल खेलना है। अहम् तज कर आत्मतत्व का चिंतन करना, (यही) सहज विचार है।

नव-द्वार के इस महल में हर ओर मन दौड़ता है उसका हर द्वार बन्द करना ही सहज विचार करना है।

शुद्ध चेतना का विचार कर, जो आकाश की तरह निर्मल है, उसमें सूर्य स्वतः प्रकाशमान है। उसका उदय होता है न अस्त, न भाव है न अभाव, यही सहज-विचार है।

प्रेम-स्वर दहकती हुई अग्नि की तरह तेरे अस्तित्व के कण-कण को प्रज्वलित करेगा और जल भी तेल का काम देगा, सहज-विचार करना है।

इस मन्दिर (पवित्र-स्थान) को ध्यान से देख, वहीं न रुक जा। भगवान सर्वव्यापक है, वहीं तक सीमित नहीं, सहज-विचार करना है।

फिर मन के सब झरोखे खोल दिये जायें, ताकि वह अपनी इच्छानुसार जिधर चाहे उस ओर जाये। (ईश्वर के बिना है ही क्या) जो उसको मलिन कर सके, सहज-विचार करना है।

नोशलब का विरह विलाप

•

मकबूल शाह

भोर हुई ! बुलबुलों ने गुल मचाना आरंभ किया । मैं जाग गई और मैंने नींद की माती अंखियाँ खोलीं ।

मेरा विचार था कि अपने प्रियतम के द्वार पर हूँ । बहार के मौसम में भारी नींद अवश्य आती है ।

देखा तो न वहाँ बाग था न फूल । नाही उपवन से बुलबुल की कोई आवाज सुनाई दी ।

न मैंने यार देखा, न गुलज़ार और न ही बाग । न कहीं उस आराम का कोई चिन्ह था, जो रात को मिला था । था तो केवल सीने पर (विरह का) दाग ।

मेरी आँखों में अन्धकार छा गया । सुबह दु:खमयी शाम बन गई । मुसीबत आ पड़ी । दु:ख के आँसू पीने पड़े ।

उस प्रितयम को मैं यत्र-तत्र आगे-पीछे ढूंढने लगी ।

कहीं भी उस प्रेमी के सुन्दर मुखड़े की कोई झलक नजर न आई । सुमन के बदले सीने पर मुझे कांटा दिखा । धन की निधि ढूँढने चली थी कि सांप कुण्डली मारे दिखाई दिया ।

अश्रुपूर्ण नेत्रों से मैं दिल से कहने लगी कि रात की वह मुलाकात कहीं सपना ही तो नहीं थी ।

वह ऐश व आराम (सुख-वैभव) दोनों के लिये भ्रम-मात्र था । उसको हर्ष कहना शोभा नहीं देता, वह तो मातम था ।

मैं बौराई । मेरा तन-बदन तपने लगा । रोते-रोते मैंने साजन को पुकारना शुरू किया ।

हे मेरे निर्दयी कठोर बालम, हे सुन्दर मुख वाले चन्द्र-बदन ।

निरीह बनकर नींद में ही मुझे छोड़ कर चला गया। विरह की व्यथा देकर भाग गया।

मुक्तामणि मेरे, किस कोने में छिप कर बैठ गये। क्या मेरी फरियाद तूने सुनी नहीं। प्यार तज कर गये कहाँ।

प्रात: की सुरभिमय पवन के झोंको, मेरे उस पुष्पवदन (साजन) तक मेरे गिले-शिकवे पहुँचा दो।

शिष्टता के साथ ही धीरे-धीरे उसको आवाज़ देना और मीठी तान से मेरी सूचना उसे देना।

ओ कठोर-हृदय, मुझ बेबस को किसके सहारे छोड़ गया? यह क्या किया कि मुझ निर्दोष को उलाहनों के लिए बन्धन में डाले रखा।

मोह लिया इसको, अब किसी से कुछ कह नहीं पाती। हे प्रियों के प्रिय, तेरे कारण (विरहाग्नि में) जल कर (भाप की तरह) उड़ गई।

(मैं) नरगिस भौरे के प्यार में उलझ गई। फड़कती हुई चिड़िया को तपते हुए तवे पर भून डाला...।

यह किस शत्रु ने मित्र बन कर मेरा उपकार किया। भरे थाल में (तूश) पशमीना धरा था, उसमें दीमक लग गई।

ऐसे मदमाते बालम के बिना मैं भला जीवित रह सकूँगी? उसको तजकर मैं कहीं गैरों (परायों) के साथ रह सकूँगी क्या?...

किसान और पीर

•

मकबूल शाह

यदि सरकारी कर्मचारी (सज़ावल) इनके पास आये तो उसके स्वागत को आगे निकलेंगे। उसके पैर दाब लेंगे, आदर से बिठायेंगे।

हाथ जोड़ कर उसकी आज्ञा पालने को तैयार रहेंगे, कहेंगे—घोड़े पर से उतर आइये, थोड़ी देर सुस्ता लीजिए मारिये मत।

हमारे पुत्री-पुत्र आपके आधीन हैं। कल ही हम देख रहे थे कि कहीं आप आ जाएं तो कितना अच्छा हो।

और अगर (किसानों को) दूर से पीर आता हुआ दिखाई दे तो यदि (घर के) बाहर होंगे, दौड़कर गौशाला में घुस जायेंगे।

अपने बाल-बच्चों को कहेंगे—'ठीक से देखो, यहीं है या कि सीधे निकल गया है। देखना कहीं कोई देख न ले।'

(अगर) पीर आंगन में सीधे ही दाखिल हुआ तो बच्चे कहते हैं,—यहां, मां और बाबा हैं ही नहीं।

बाप अन्न ढूंढने गया है और मां वन चली गई है। सुबह (मां को) पिताजी ने कहा था कि जंगल से थोड़ी लकड़ी ले आ।

छः दिन से खाने अन्न का दाना नहीं। बस साग-पात ही खाते हैं, (बल्कि) पिता जी की कल शाम भूख से बुरी हालत हुई।

आज एक जगह आशा लेकर गया हुआ है। वह अभी तक आता दीखता नहीं और हम व्याकुल हो गये हैं।

खुदा से मांगता था कि आज पीर आ जाये, उससे कोई पुराना कपड़ा मांगता; क्योंकि बदन नंगा है।

यह जवाब पाकर पीर की आशा समाप्त हो जाती है। वह सोचता है, मैंने यह क्या किया, कहाँ दौड़ा आया।

अगर कहीं यह फेरन (चोगा) ही ले उड़ा तो मैं उसको क्या कहूंगा। कुछ तो नहीं कह सकूंगा। वह मानेगा थोड़ी।

मन्नत है, कहीं राह में वह न मिल जाये। इसके अतिरिक्त मुझे अब उस से कोई अपेक्षा न थी।

सॉम और मुकूकाल की लड़ाई

लछमन रैना 'बुलबुल'

इतना ही सुनकर मुकूकाल दौड़ा आया। उसके माथे पर बल आ गये और उसने बहुत गुल मचाया।

तेज़ी के साथ उसने हिन्दी तेग (तलवार) चलाई और साम ने फुर्ती के साथ सिर पर ढाल रखकर उसका वार बचाया।

ढाल कट गई और तलवार तनिक एक ओर जा लगी। अज़ाब को छाती पर गहरा घाव लगा।

उसके दो टुकड़े हुए और वह तड़पता हुआ मर गया । सॉम जमीन पर पैदल ही रहा।

उसको बहुत गुस्सा आया। कन्धे पर गदा लेकर उसने बहुत ही जोश के साथ दोनों हाथों के बल से गदा चलाई ।

गदा की वह चोट मस्त हाथी के मस्तक पर जा लगी और वह धराशायी हो गया। धरती इससे कांप उठी।

(साम ने) मुकूकाल को अपने जैसा ही प्यादा बनाया। वह बहुत लज्जित हुआ और हाल-बेहाल हो गया।

मस्ती में उस पर दुहत्थे गदा का वार किया। धरती और आकाश इस युद्ध से कराह उठे।

इस तरह देर तक गदा-युद्ध चलता रहा। निहंग के साथ निहंग जूझ पड़ा। कोई भी बलवान रहा न कमजोर। अन्त में मुकूकाल ने चीखना शुरू किया। जिस तरह मस्त मेंढ़ा सींगों से भिड़ने के लिये पीछे जाकर आगे आता है और सींग मारने का निशाना साध लेता है, ऐसे ही वह दौड़ा आया। पहलवान ने छलांग लगाई, उसके सींग पकड़ लिए और मरोड़ कर ऐसे तोड़ दिये जैसे पेड़ से टहनी तोड़ी जाती है।

वाँह उठाये वह उसके मुंह को नोचने लगा था कि साम ने तलवार निकाली और उसका कन्धा ही काट फेंका।

दूसरी बाँह उठाने लगा था कि उसके सिर पर वार करे, पर बहादुर ने फुर्ती से उसकी बांह झपट ली ।

बांह समूल उखाड़कर मैदान में फेंक दी । तब मुकूकाल का अपना बदन ही कैदखाना बन गया ।

बाँहों के बिना मुकूकाल माँस का लोथड़ा भर रह गया । मानों शिकार फदे में फंस गया था और उसकी आँखों पर जाला पड़ गया ।

अब वह मुंहबाये दौड़ा आया कि साम को काट खाए । सामने गदा की चोट लगाकर उसका मुंह बन्द कर दिया ।

टाँगें पकड़कर सामने उसको धरती पर गिरा दिया और खंजर से उसकी छाती चीर डाली ।

मिट्टी पर वह खून में लथपथ तड़पता रहा और रक्त-प्रवाह में वह ऐसा डूब गया कि उसकी हड्डियां और मांस दिखाई न दिए ।

सूफी कलाम

1—जिसने आत्मा का तत्वबोध प्राप्त किया, वह मधुपूर्ण बर्तनों (आत्मा के रहस्यों) को अनावृत कर सका।

(आत्मबोध का) स्पर्श लगते ही (साधक की) चेतना (इन्द्रियजनित प्रवृत्ति) नष्ट हो जायेगी, उसे आत्मविस्मृति होगी। (फिर) वह हिन्दू और मुसलमान को अलग-अलग नहीं समझेगा। —अज्ञात

2—(यदि मैं फिदा हो जाऊँ अर्थात् लोकोपचार पर मर मिटूं) तो मुझे (आत्मबोध का) रास्ता कहां मिल सकेगा। यदि (आत्म-चिन्तन की) अनुरक्ति न उपजी तो (अध्यात्म का) ठिकाना मुझे कैसे मिलेगा।

मेरे अन्तर (अन्तःकरण) ने चन्द्रमा की प्रीत अपनाई। चन्द्र-दर्शन के बाद ही ईद मनायेंगे। (यदि) चंद्र का साक्षात्कार न हो तो ईद भी न होगी। प्रीत न उपजी तो ईश्वर का पता कैसे चले।

वन से मैं बांसुरी काटकर ले आया। उसमें छेद-ही-छेद कर डाले। बांसुरी नयस्तान (अव्यक्त प्रकृति) का ज्ञान है। प्रीत न हो तो दैवगति का पता ठिकाना कैसे मालूम हो। —अज्ञात

3—मेरे साहिब (स्वामी), यह एकता (अद्वय भाव) है क्या? इसी को आश्चर्यावस्था (अनिर्वचनीय स्थिति) कहा गया है।

जिसपर कोई आपत्ति न आई, या जिसने स्वयं कोई संकट न झेला, वह क्या जाने, यह (साधना) क्या है। वह जैसे आया, (जन्म लिया) वैसे ही चला गया (मर गया) अर्थात् वह ज्ञान व तत्वबोध से हीन ही रहा। इसी को आश्चर्यमय दशा का नाम मिला।

जब खुदा का नाम लिया तभी खुदा बन गया। वहां पर (आध्यात्म-जगत में) खुदी (अहं) की कोई गुंजायश नहीं।

खुदाशनास (परमात्मा को जानने वाले) बन जाओ। आश्चर्ययमय दशा यही तो है।

समझो इस (पदार्थमय विश्व) से इतर (ईश की) शक्ति मौजूद है।

वहाँ सत्ता (जीवत्व) और साक्षी सभी कुछ पीछे रह जाते हैं। और वहीं पर आशिक (साधक) एकाकार हो जाते हैं। यही है वह अवस्था, जिसको आश्चर्यमय कहा गया है।

पगले मन्सूर ने अपनी वाणी रोकी क्यों नहीं। (वह 'अहं ब्रह्माऽस्मि' कहता गया) यहां तक कि उसका सारा भेद (जो गोपनीय था) खुल गया। वह यह न जान पाया कि जो बात व्यक्त नहीं करनी थी, वह जाहिर हो गई। यही आश्चर्य की बात है।

जबसे आदम (आदि-मानव) का जन्म हुआ। भगवान जाने, तबसे वह (परमात्मत्व) कहाँ गया। अनादि-अनन्त का वह विधि-तत्व सदैव ताजा और नित्य-नूतन है। यही आश्चर्य की बात है।

—नाम: साब

4—आशिक (ब्रह्म) ने ईक्षा की कि माशूक (इह-लीला) पैदा किया जाये तो लौह और कलम (भाग्य पट्टिका एवं लेखनी) का जन्म हुआ। तब कलम रब (परमात्मा) का आदेश लिखने लगी। कह सकी, प्यार-ही-प्यार है जीवन-सार। शेख सना ने रामनाम का जाप किया, हिन्दी प्रेमिका के रूप में उसको अपना यार (प्रीति-भाजन) मिला। वह मुसलमानों का दीन छोड़कर मूर्ति-पूजक बन गया। प्यार-ही-प्यार है जीवन सार।

हजरत मन्सूर ने 'अना' (अहं ब्रह्मोऽस्मि) का पाठ किया। मन से ही (अन्तर्मुख होकर) उसका निस्तार हुआ। रहस्य की बात कहना बारीक धागे-जैसा है (तनिक-सी असावधानी से इसका विच्छिन्न-होना निश्चय है)। प्यार-ही-प्यार है जीवन-सार।

आदम के वजूद (मानवोत्पत्ति) के रहस्य को सुनने-गुनने की चेष्टा की मैंने, तो मैं सज्दे का विषय बन गया। सभी मुझी को सज्दे का पात्र मानने लगे। तभी से फरिश्ते (देवगण) वज्द में आये अर्थात् उनकी दिव्यदृष्टि खुल गई। प्यार ही है जीवन-सार।

—वहाब खार

स्वर्ग (विग्निबल) में अप्सराएं गा रही हैं। मेरी जान (आत्मा), सुन- उस सुल्तान (परमात्मा) की स्वर लहरी को सुन !

सागर गहरा है, इसकी थाह नहीं और लूला-लंगड़ा तट पर बैठा हाथ

मल रहा है। भला अन्धा तीर कमान क्या जाने ! सुन, अल्लाह की स्वर-लहरी सुन।

इस सागर में तूफान आया है। इसमें अनगिनत नौकाएं तिर रही दिखती हैं। इनमें से कुछ डूब गईं और कुछ बही चली जा रही हैं। सुन, दैव की तान सुन।

मंझधार में मुझे फेंक दिया। मैंने उसका आर देखा न पार। (हे गुरुवर्य) मुझे राह दिखा, मैं अनजान हूं। सुन, विधि का विधान सुन।

इस पुल (संसार-सागर से तरने वाले साधन) की बेड़ी बना। इसके पार ईश्वर में लय होने का समारंभ है। वहाँ न कोई हिन्दू है न कोई मुसलमान। सुन परम-तत्व की मीठी तान सुन।

अजीज म्वँत (दर्वेश) दीवाना बन गया है। वह प्रेम से भाइयों को सुखन (तत्वज्ञान की बातें) समझाता है। उसके समझाने का तरीका नेक पुरुषों-जैसा है। सुन ऐ मेरी जान, सुलतान (विधाता) की मधुर तान सुन।

—अज़ीज़ दरवेश

वचन (गीत)

•

रसूल मीर

1—प्यार के मारे हम दौड़े-दौड़े आये, ओ मेरी सजनिया।

इश्क (प्रीत) की राह दिखाने वाले तेरे साथ-साथ हैं। ओ सजनिया।

ज़रा ठहर, मैं कुछ निवेदन करने आया हूं। मेरी कामना क्या है सुन! जब पहले ही थक-हार कर चुक गये हैं, हमें और थकाकर चूर न कर दे। कितने ही थके-हारे प्रेमी एक ओर जा गिरे हैं। नींद के इन मारों को मत जगा, ए सजनी।

तेरे घुंघराले बाल मरवाह (रैहात) के गुच्छे हैं या रजनी-गंधा के गुल्म। लाजवन्ती-से ये कितने शोभायमान हैं। ओ सजनी।

तेरे मृगनयनों ने कितने ही (चाहने वाले) मार दिये। तेरे लोचन जादू-भरे हैं।

उन्हें देखते ही हिरन भागकर वन-प्रदेशों में जा छिपे। ओ मेरी सजनिया।

इस संबुल (पुष्प) वन को मैंने भरपूर छान मारा। सब दिन वहीं गंवा दिये। और प्रीत की (यह) चिन्गारी मुझ पर वहीं आ गिरी (जिसने मुझे जला डाला) ओ सजनिया मेरी!

2—मैंने जूही के फूलों की माला गूंधी। तेरे प्यार के कारण, खनकती हुई सोने की चूड़ियां घड़ी; तेरे प्यार के कारण ईद आ गई, कहां जाओगे। खेलने में ही इतने मस्त क्यों हुए। मतवाले, ठहर जरा, मैंने रोज (व्रत) धरे हैं तेरे प्यार के कारण।

तेरे लिए मैंने रातों की नींद गंवा दी। कितनी बेकल हुई मैं। नूर के (प्रातः) समय मैंने कुरान-शरीफ का पारायण किया तेरे प्यार के कारण।

लीला

•

कृष्ण राज़दान

आओ, हाथ-से-हाथ मिलायें। मिल बैठें और रास रचायें। छः महीने इक रात हुई (जब) गोपीनाथ नाचने लगे। (ऐसा लगा) वर्ष और मास दिन और पहरों में बदल गये। हिल-मिल चलें, रास रचायें। इस बालपन में खुशियां मनायें। ऐसा दिन, गनीमत है। सहस्रों युगों को स्वाह करें। आओ, हिल-मिल रास रचायें।

बाल-बच्चों को एक ओर सुलाकर, सद्य:जात शिशुओं को छाती से अलग करके निकलेंगी हम। अपने साथ बहनों, फूफियों, माओं और मौसियों को लेकर रास रचायेंगी।

(घरों के) द्वार-दरीचे खुले छोड़ चल पड़ेंगी। राह मिल गई तो (क्यों न) मस्तानी चाल से घूमें-फिरें। ईश्वर-भक्ति के बिना मूल्यवान अतलस की क्या कद्र। चलो, मिलके रास रचायें।

बोलो, किसी को कृष्ण की प्रीति है। (वह) प्राणों का भी प्राण है। किसी को (उसके साथ) लौ लगा कर क्या सहन करना पड़ा अर्थात् क्या हानि हुई। (वह तो) मन मोहकर विकास देने वाला है। चलो, रास रचायें।

हमारी जैसी दशा कब हुई तुम्हारी ! तो फिर नन्दलाल को कहां जान पाओगे। भला हम सजी-संवरी न निकलीं तो क्या करेंगी ! रास जो मिलकर रचना है।

हम भला त्याग क्यों करेंगी ? हमें तो कृष्ण का अनुराग चाहिये। (हमारे लिए) वही जप-तप और योगाभ्यास है। आओ, हम सब रास रचायें।

हमारी बातों को महामंत्र जानो। हमारी दृष्टि को उत्तम ध्यान समझो। हमारा खान-पान महाव्रत (बड़ा उपवास) है। आओ, हम रास रचायें।

हमारी वाक्शक्ति मौन-मुद्रा में परिणत हुई, हाथ हमारे धरे-के-धरे रह गये।

उसके बिना कान और कुछ सुन नहीं सकते। हमने संकल्पों से भी सन्यास लिया। आओ, रास रचायें।

हर्षोल्लास के इन प्रकारों ने सभी शोकों का क्षय किया। ऐसा आनन्द लोक-लोकान्तरों में कहां मिलेगा। हमें न अप्सरायें चाहियें न वैकुण्ठ का वास। हम तो रास रचायेंगी।

ऊषा नृत्य (रास) को देखकर वशीभूत हुई। वह सुध-बुध खो बैठी। गीतों का उसका भण्डार कम पड़ गया। यह देखकर स्वर्बालाएं वनवास को चली गई। चलो रास रचाएं।

काया धारण करके भी (ईश्वर) मायातीत है। योग का स्वामी है; किन्तु भोग का बहाना करता है। भोग कर भी वह निर्मल निरभ्यास है। चलो चलें, रास रचाएं।

उधर पुकार है और इधर-प्रतिज्ञा। जिधर देखो, उधर राधाकृष्ण हैं। प्रत्येक के साथ (कान्हा) हाथ-से-हाथ मिलाये रास कर रहा है। चलो, रास रचायें।

रात को दिन हुआ और दिन को रात। सांध्यवेला के साथ प्रभात नृत्य कर रहा है। काल का स्वतः ही ग्रास हो गया। चलो, रास रचायें।

चमन के माली आ

1—चमन के माली ! आ, नये बहार की शान पैदा कर ! (ताकि) फूल खिलें ।

(उनपर) बुलबुले वारी जायें—ऐसा सामान जुटा ले । चमन उजाड़ है, शबनम आंसू बहा रही है । फूल है कि आंचल फाड़ कर अकुला रहा है । तू आ और गुलों और बुलबुलों में नवजीवन का संचार कर दे ।

उपवन में बिच्छू-बूटी को पनपने न दे । यह फूलों के लिए विनाश की जड़ है । देख, संबुलें (पुष्प-विशेष) एक के बाद एक आ रही है । ऐसे फूलों को जन्म दे, जो हंस रहे हों, मुसका रहे हों ।

ए बुलबुल, तू जो पिंजड़े में चीख रही है, चिल्ला रही है, कौन तुम्हें आजाद करेगा ! तू अपने ही हाथों अपनी कठिनाइयों को सुलझाने का उपाय सोच । उद्यान में पंछी बोल तो रहे हैं, मगर उनकी बोली अलग-अलग है । हे भगवान । इनके आह्वान में एकता का प्रभाव पैदा कर ।

अगर तुझे फूलों की इस बस्ती को जगाना है तो मधुर लयताल को छेड़ । भूकम्प ला, आंधी उठा, बिजली बनकर गरज और तूफान पैदा कर ।

कृषक बाला (ग्रीसकूर)

गुलाम अहमद 'महजूर'

2—सदाबहार पुष्पवन की कुसुमावली कृषक बाला, तू सुन्दरी है, नाजनीन (आकर्षक भाव-भंगिमा वाली) है।

स्वर्ग की ही-माल[1], काफ़ पर्वत की परी, हे किसान लड़की तू नाजों-भरी सुन्दरी है।

स्वच्छन्द वन-प्रदेश की पुष्पवल्लरी, तेरी ये कलियां किसने सुरभित की हैं। किस रंगरेज ने तुझे सतरंगी रूप-लावण्य प्रदान किया। हे कृषक बाला, कितनी सुन्दर और आकर्षक है तू।

ओ सुन्दर सांवरी ! तेरे वस्त्राभूषण कितने सीधे-सादे हैं। न इनमें गोटा है न किनारी। हे कृषक बाला, ऐसा लगता है कि शरद के चांद को काले मेघों ने अपनी ओट में ले लिया है। नाजनीन, तू सुन्दरता की प्रतीक है।

ओ कबूतरी। 'याहू' बोलती हुई निकल। ओ सोन-चिरैया, इस बाग की सैर कर। ओ सुन्दर नाजनीन किसान लड़की, तू चश्मे पर की हरियाली में मरवाह के बूटे-जैसी है। (तू जब) पर्वतों की ऊंचाइयों से लोक-गीत गाती हुई निकली—तो परियों ने मुझे शाबाशी दी। हे कृषकबाला, तू दिदरी[2] है, कितना अच्छा चंग (वाद्य-यंत्र) बजाती है।

तेरी और अभिजात वर्ग की नारियों की भला समता क्या ! तू है गुलों से प्यार करने वाली और रईसजादियां हैं कि द्वार-झरोखे बन्द करके भीतर-ही भीतर बैठी रहती हैं। हे किसान-बाला, तू नाजनीन है, सुन्दरी है।

तेरी आंखें लज्जा (व्रीड़ा) के जल से आप्लावित हैं और गैरत (आन)

१—कश्मीरी लोककथा की प्रसिद्ध नायिका

२—पक्षी-विशेष

की दिलावरी से तू संपन्न है। हे कृषकबाला, नाजों वाली सुन्दरी अप्सराएं भी तेरे शर्मीलेपन की प्रशंसा करती हैं।

आस्तीन चढ़ाये हुए तुझे मैंने खेत पर देखा। ओ, प्रेम की मस्तानी, गुड़ाई करते-करते तू 'लोलो' (लोकगीत) गा रही थी। हे किसान-बाला, परिश्रम करते-करते कहीं तेरी बाहें थककर चूर तो न हुई?

ये तेरी स्वेदसिक्त कमानीदार भवें कितनी शोभा देती हैं। जो भी देखता है, दिल हार कर बैठ जाता है, मानो लुट गया। हे सुन्दर नाजनीन कृषक-कन्या, तू जो रस की गगरिया है, कहीं तू अपनी सुध-बुध न खोना।

ओ पुष्पवदनी, लालच न कर। हर चीज को पाने के लिए लालायित न हो।

कहीं आलस्य तुझ को न घेरे। किसान लड़की ओ, सुन्दरी नाजों भरी, कहीं अपनी ही इच्छा-अभिलाषा तुझे असंयत करके पथभ्रष्ट न कर दे।

मनुष्य रो देता……

•

जिन्द कौल

मनुष्य रो देता और अपने आंसू पी न जाता, (किन्तु) उसने देखा कि रोने का असर क्या और आंखों से खून के आंसू बहाने का क्या लाभ। पत्थरों से सिर पटकना बेकार। यदि वह समझता है कि मेरी कोई सुनता नहीं, तो फिर शिकवे-गिले करने का यह क्रम क्यों ? (शून्य) आकाश में तीर मारना किसलिए ? आः, यह सब बेबसी हे, मजबूरी है।

देह (भौतिक) क्षण-क्षण मरती जाती है, भूख, प्यास और ठंड ने उसको मरणासन्न कर दिया है। रोग, विषमता, बाल-बच्चों, चिन्ता और दुखों ने उसको निराश और स्तब्ध बना रखा है। यदि कहीं ये चिन्ताएं नहीं, तो अनेकों तृष्णाओं और कामनाओं ने उसको बौरा दिया है, व्याकुल बना दिया है। कहीं पर उसका मन टिकता नहीं, कुछ है जिसकी कमी वह अनुभव कर रहा है। कुछ शुभ देखे – जाने बिना ही वह कुछ ढूंढता है, कोई चीज़ खो गई है। उसकी भरी नींद में इच्छा और चाह की मदिरा मिला दी गई है। बुरा हो इस अतृप्ति और शोक (चाहना) का।

कहा जाता है कि कभी किसी ने दूर से ही (प्रीतम की) पिछली छाया मात्र देखी है। यह बात हमने (परम्परा से) कानों सुनी है और मन में घर कर गई है। उसी की दूरी से हम दुखी हैं और मान बैठे हैं कि वह हमसे रूठा है। मानो अनजाने कुंजों-कोनों में गुप्त बैठा है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रीत को बीमारी लगी है तो अपने ही कारण।

और जिसने चोरी छिपे दूर रह कर कानों में रुई ठोंस कर रखी है, वह भला कभी हमारी सुध लेता है क्या। क्या कभी सोचता है या यह कहता है (कि) जिन्हें मैंने ही मृत्यु के अन्धकार में धकेल दिया, जिनको मैंने वन-पर्वतों और गली-कूचों में दर-दर की खाक छानने को भटकाया, भला उनका क्या हाल है। नहीं, सौन्दर्य को किसी से कोई सहानुभूति नहीं।

अब हम मनुष्य को यह कह कर परामर्श देते हैं, कि "जिसमें तेरे लिये तनिक भी स्नेह नहीं, वह तुम्हें क्या फल देगा। बैंद के पेड़ से फल की आशा करना व्यर्थ है। तू उसे पहचानता तक नहीं। उसका ठौर-ठिकाना तुझे मालूम नहीं। भला उसको पाने का क्या उपाय है तेरे पास।" फिर भी उसका मन बाज आने को तैयार नहीं। भला पवन भी बेड़ियों में बांधा जा सका है। सोचें तो उसका भी कोई दोष नहीं। क्योंकि प्रीति कोई साधारण खेल नहीं।

कस्तूरी मृग आत्म-संगीत ही अपने कानों सुनता है और जिस कस्तूरी की सुवास के लिए वह मारा-मारा फिरता है, वह उसके अपने ही अन्दर निहित है। फिर भी मृग वन-पर्वतों के ओर-छोर नाचता है। ऐसे ही मन आँखें मूँदे और हाथ-पैरों का ध्यान रखे बिना ही इधर-उधर दौड़ता रहता है। उसे प्रेमी की सुवास आती है और (यही सुरभि) उसको दर-दर की खाक छानने पर विवश करती है। यदि एक वस्तु में यह सुवास खो जाती है तो यह किसी दूसरी वस्तु में से फूट निकलती है। जिस पतंगे को जलते दीप ने दूर ही से आत्मदर्शन दिया, वह भला आंचल समेट कर चुप बैठा रह सकता है? क्या वह उसके पीछे पागल हुआ बुद्धि के सभी बन्धन काट कर नहीं निकलेगा? क्या हुआ, यदि वह उसकी आंखों से छिपा हुआ है। सौन्दर्य क्या मात्र जादूगरी है?

विस्मय है, बेबसी है,
लालसा और कामनाओं की विषमता है;
प्रीत आत्मजात व्याधि ग्रस्त है
सौन्दर्य को कोई समवेदना नहीं।
भला प्रीति मात्र खिलवाड़ है क्या?
क्या रूप-लावण्य कोई जादूगरी है?

झुमके (कनदूर)

नंदलाल अंबारदार

मैं आज सुन्दरियों के लिए बाजार में झुमके ले कर आया हूं ।
इनमें से कुछ लाल हैं, कुछ नीले, कुछ गुलाबी और कुछ अनारी रंग के ।
झुमके पहनकर कानों की शोभा बढ़ाओ । सौन्दर्य और प्रीत का आनन्द लो ।
जल्दी आओ, कुछ ले लो, कुछ दे दो, सौदा खरीदो ।
(मेरे ये झुमके) शोभा वाले, कोमल और नाजुक हैं । केशपाश के भीतर दमकने वाले हैं ।
तुम्हारे प्रेम के निमित्त लाया हूं । मधुर-मुस्कान है इनका मूल्य ।
सत्वर आओ, जैसे उद्यान में रैहान (मरवाह) की डाली पर जलचिरैया दौड़ी आती है ।
शीघ्र आओ, कुछ लो, कुछ दो—सौदा खरीदो ।
जिस-जिस को (झुमके खरीदने की) चाह हो वे खरीदेंगी । जल्दी-जल्दी समाप्त कर दूंगा ।
आओ ले लो, यह बालपन के लिए प्रीति की सौगात है ।
जल्दी आओ, कुछ लो-कुछ दो, सौदा खरीदो ।
क्या बताएं, कुदरत (प्रकृति) ने झुमकों में क्या प्रभाव रखा है ।
दो अनजानों के दिल छीन लेते हैं । एक झटके से मन व्याकुल हो उठता है ।
झुमके ले लो, तरह-तरह के झुमके हैं । झुमके हैं झुमके ।।
जल्दी आओ । कुछ ले लो, कुछ दे दो, सौदा खरीदो ।
आजकल तनिक निकट आकर झुमके खरीदने का अवसर है, (क्या मालूम) पतझड़ आने—
पर बुलबुलों को किलकारियां भरने का यह चाव रहे न रहे ।
प्रीत की अग्नि को चुपके-चुपके ही सुलगने दो । बातें करो, पताशे खाओ ।
जल्दी आओ, कुछ ले लो, कुछ दे दो, सौदा खरीदो ।

पर्वतीय नदी (आरः[1])

गुलाम हसन बेग 'आरिफ'

पर्वतीय नदी ने मुझसे कहा, 'मैं दौड़ रही हूं। यह यौवन दिन-चार का मेहमान है। मैं मन की शान्ति तलाश रही हूं। यह जोबन रहने वाला नहीं।'

मैंने आदि सोत तज कर दौड़ लगाई। मेरी चाह और उत्सुकता कम होती नहीं। इन पुलिनों में जीवन की उमंग मौजूद है। यह जोबन दिन चार की बात है।

मुझे (किसी की) राह नहीं देखनी। मैं ढूंढ़ने चली हूं। पत्थरों से (टकरा-टकरा कर) मैंने लहू के आंसू बहाने हैं। जो चतुर-सयाने हैं, उन्हें चैन नहीं मिलता। यह जोबन चार दिन की चांदनी है।

मुझ में त्रुटि है, जवानी है। मैं घमण्ड करती हूं, डींगें मारती हूं। जो दमदार (गहरे) हैं, उन्हीं में मोती पैदा होते हैं। यह जोबन दिन-चार की बात है।

सर्वव्यापक के साथ एकाकार हो जा। मन की शान्ति (तभी) प्राप्त होगी। 'आरिफ' का दिल मोती बिखेरता है। यौवन दिन चार की बात है।

---

1. पर्वतीय नदी का पत्थरीला पुलिन

साथी

अज्ञात

साथी हमारे। क्या तेरे कानों तक नये गीतों की धुन नहीं पहुंची ?
थक क्यों गये। साथी हमारे। बीच राह ही क्यों सुस्ताने की ठानी।
अभी तो सारा काम बाकी है, नींद की यह कैसी मनमानी।
बाग को खून से सींचा, इसके फूलों की बहार क्यों न लूटी,
नया युग आ रहा है, इसका आरंभ तो देखा होता।

जिसके जिम्मे कार्य है, प्यारे साथी, उसे मारना शोभा नहीं देता। साथी हमारे—

जो तुझे कहना है, वह मैंने सब सुन लिया, छिपी थोड़ी है बात—मुझे खबर है।
मुझे मालूम है तू दवादारू के अभाव में अस्त हो गया।
मुझे मालूम है, तुझे फूटी कौड़ी के अभाव ने ग्रस लिया;
तूने जान दे दी, मगर कभी पीछे न मुड़ा, (इसी में) समाप्त हो गया।
नई कामनाओं पर तू अपने आप को न्यौछावर करके अस्त हो गया;
मुझे (इस बात की) तसल्ली है कि तू जीवित है हमारे साथी।
संगी हमारे॥

तू बुझ गया तो क्या ? यह अग्नि लुप्त नहीं रहने की।
तू बुझा; पर तेरी चिंगारी कभी न बुझेगी।
चिंगारी अग्निकण बनेगी, बढ़ेगी, कभी नहीं बुझेगी
अग्निकण अंगार का रूप ले लेगा और सुलगता जायगा, बुझेगा नहीं—
अंगारे ज्वाला बनेंगे। आग फैलेगी। उसका शमन नहीं होगा।
इसीलिए, साथी प्यारे, मैंने नये गीतों की तान छेड़ी है
—साथी हमारे।
क्या तेरे कानों में नये गीतों की आवाज़ न आई ?

चन्द्रमा (जून)

दीनानाथ 'नादिम'

पर्वत की ओट से एक दिन उदय हुआ;
रोटी-ऐसे चन्द्र का ।
(उसकी) गिरेबां के (धागों के) बंधन फटे हुए—
छाती खुली;
रुपहले तन पर दाग हैं इधर-उधर,
उघाड़े हुए—
या कोई बढ़िया ऊनी पट्टी
तार-तार हुई-सी
मानो किसी मजूरिन को किसी ठेकेदार ने—
छल कर थमाया हो, खोटा एक रूपया—
भरी रेज़गारी में ।
रोटी-ऐसे चन्द्र का उदय हुआ ।
पर्वतों की भूख बढ़ी;
मेघ फिर एक बार
चूल्हा बुझाने लगा ।
वन-परियों ने (तब) आग सुलगाई मानों,
गतिशील चूल्हे की ।
पर्वतों के शिखर पर जैसे पेड़ अन्न के
भर-भर उग आये ।
मैं भी समझाने लगा—
अपने फाका-मस्त को ।
आकुल नयनों से मैं भी देखने लगा
अम्बर का ओर-छोर

शाश्वत प्रसन्नता

अमीन कामिल

दूर तक, उस ओर तक
अम्बर जहां पर सिल गया है—भूमि के संग;
शून्य है, वीरानियां हैं—अन्त है कोई नहीं।
युग-युगों का है उजाड़।

खाइयां, टीले, असम निष्फल धरा
माघ-सी ठंड, मरघट की स्तब्धता;
आदम-न-आदमज़ाद
कहीं कोई नहीं—

हाँ, अगर भौंके नहीं कोई सियार
(तो) नीरवता के चेहरे पर मानों कोढ़ बढ़ गया।
झुलसे, वज्रनिपातित पेड़ों की खोह में,
उल्लू ने—
(जैसे विकास की सीढ़ियां तय करते हुए)
क्रोधावेश में अगर कर्णकटु चीख मारी तो मारी;
आगे पीछे यदि कोई रक्तपिपासी नागिन दौड़ी तो दौड़ी—
काल है अपाहिज, बिना सांझ-सकारे
पीले सायों की मात्र एक पीलिया बीमारी—जो असाध्य हो।

आसमानो, कोई स्वर दो, हे धरा तुम ही कहो,
कौन थी वह शक्तिशाली राक्षसी, जिसने मुझे इस द्वीप में ला पटका,
एकाकीपन ने मुझे नीचे गिरा दिया,
डस लिया,

मेरा बदन रक्तरंजित हो गया।

मेरे भाग्य में न किसी आबाद शहर की ज़िन्दगी थी—
न कोई खुशी—विविधता की
फिर भी कोई सजातीय सुन्दरी ला दो, बातचीत ही हो जाय।
अपना मन, आंचल में थाम कर उसको भेंट करता;
एकाकीपन का फंदा चीर-फाड़ कर तार-तार कर देता।
उसकी एक नजर विष के इस प्याले को फिर मधुर बनाती;
एक मुस्कान पीले सायों को तितर-बितर करके समाप्त कर देती—
ऊष्ण तन का कोमल स्पर्श
इस शून्य में मेरे लिये,
ओस से भरे गुलाब सुरभिमय कर जाती,
(यह) उदासीनता छिन्न-भिन्न हो जाती,
यह भय मिट जाता, कजरा जाता
तब कोई शिकवा मेरे अधरों का मुंह तक कभी न देखता;
हाय, इस वैराग्यपूर्ण वीरान में जीवन कैसे बिताया !
(जहां) आदमी है आदमी का निशान;
प्यासा अकेला मृग (मैं)
कोई चश्मा तलाश कर रहा हूं।

आह, मैं आदम फिर उसी अनादि ईप्सा (जिज्ञासा) के लिए
तरसर हा हूं,
उसी प्रसन्नता, प्यार की मतवारी सनातन हवा के लिए—
जो मुझे कोई गुप्त बात कान में कहकर भरमाती;
फिर किसी नये जगत को जन्म देती।

ज्वाला और नृत्य

रहमान राही

हुस्न[1] की ठंडक इश्क की आग ।
सपने में भी रहना जाग ।
जलन दिखी क्या आह भरी,
लाला[2] से लाली निखरी ।
शब्दों के अन्तर में खो,
भोले छन्द को मत मारो ।
ऐसे में रूह कराह उठी,
घाव खिला मल्हम खोई ।
क्षण वियोग का लम्बा माघ,
मेल बसन्ती भागम-भाग ।
मौत विवशता जानी-मानी,
जन्मा, किसने की मन-मानी ।
शिकवों में मत समय गंवा,
है कोई सुनने वाला ?
विधि तक पहुंची मानव-छाया,
जन का सज्दा काम न आया ।
सुधामधु और स्वर्ग की हूर,

1—सुन्दरता
2—पुष्प-विशेष

अरमानों का एक जहूर[1] ।
सागर में लहरों से खेल,
बाल-सुलभ फंवारे ठेल ।
फूल हंसाकर व्रण दिखलाते,
काँटे आंचल फाड़ दुलराते ।
कड़वा मद्य, मगर मस्ती है,
आग यह शबनम शीतमयी है ।
क्रोध करोगे, दिल सकुचेगा,
नेत्रोन्मीलन भार लगेगा ।
नफ़रत रखना, काल-विनाश,
फूलों में सांपों का त्रास ।
निशि में प्रात की आशा पाली,
जिसने, दुनिया की थाह पा ली
निश्शंक होकर छेड़ ले तान,
शायद लौटे बाल-विहान ।
दो का मिलना शुभ आधार,
खुलकर करले बातें चार ।
अबाबील की वसंत भली,
पतझड़ बुलबुल से संभली ।
सावन-जूही सखि भोली,
माघ भरेगा हिम-झोली ।
अल्प समय, पर कितनी चाह,
व्यर्थ है तकते रहना राह ।
चौसर खेल है जीवन-सार,
हार के जीत है, जीत के हार ।
सोच सैर की, भली उमंग
चढ़े शिखर पर मेघ-तुरंग ।
स्निग्ध अधरों में डाल नजर,
जंग मिटेगी इधर-उधर ।
वाणी की सुन रसमय तान,
वन्य कुसुम भी करते गान ।

1—आविर्भाव

मेरे सपनों की ताबीर[1]
तब केशों की सुरभ समीर ।
उसके वश है अश्व समय का,
जिसने यार मना कर लाया ।
रूह मेरी पुष्पित हो आई,
जग में सुन्दरता मन-भाई ।
आज निशा को चमकें तारे
रूप-प्रेम के मिलन नज़ारे ॥

1—फल

सीमान्त चौकी

गुलाम नबी 'खयाल'

जिसकी मिट्टी तक बारूद से उड़ी होगी,
जिसपर मानव-रक्त का छिड़काव-सा हुआ होगा,
दूर सीमान्त के ऐसे ही निर्जन कोने में—
कल,
रक्त से भरा मेरा तन,
मेरे दोस्त दफ़न कर देंगे;
मेरा तन—जिससे मेरे वतन ने प्यार किया,
जिसने रोम-रोम में अनेक वर्षों से,
इस सरोवर के अभिनव प्रेम (और) उस पठार की मुहब्बत ने
वास किया,
मेरा यौवन, जिसका यहां की फ़िज़ा ने अपने हाथों लालन-पालन किया
जिसकी प्रतिदिन की इन मेरे सांझ-सबेरों ने दीर्घायु चाही ।
उस एकान्त कोने की ओर यदि तेरा कभी जाना हुआ,
शालिमार के चनारों की ठंडक वहां तेरा स्वागत करेगी—
जैसे दो पहर को डलके किनारे पर सुस्ता रही हो,
(अपने) पैरों से जो धूलि स्पर्श करोगे, उसमें गुलाब खिले होंगे,
जो पग धरेगी, वह फूलों पर पड़ेगा
एक क्षण वहां बैठकर सोचेगी—
मौत, अगर क्रोध-भरी यहाँ भी आ पहुंची,

यह धरा भी यदि रक्त से सन गई,
इस दूब को भी यदि आग लग गई;
इस हवा में भी अगर बारूद मिल गया,
फिर भला इस उजाड़ में कैसे बहार आ गई है ?
ज़िन्दगी यहां कैसे फिर मुसका रही है ?
पक्षियों ने इस वातावरण में फिर डैने भरना शुरू किये हैं,
सुरभिमय समीर फिर मस्ता-सी गई है ।
उठकर जब वहीं मेरी ओर अंतिम दृष्टि डालोगी,
(तो) एक बे निशान पुरानी कब्र तेरे पैरों का चुंबन करेगी –
ऐसे उजाड़ में तू देखेगी—
एक नया कश्मीर जन्म ले चुका है ।

कितओ (चौपद)

गुलाम रसूल 'नाज़की'

1—धरा को, धन को, उपवन को, भवन को,
सुखों, कष्टों, दुखों के घोर वन को,
अयाल[1] और माल को, भाई-बहन को,
हज़ारों ईश हैं मेरे नमन को !

2—रहा दिन भर यहीं, खिलवाड़ देखो,
छिपा दिन, चल पड़ा जाने कहां वो ?
सुना, पिछले पहर फिर लौट आया—
मुझे सुप्त देखकर चलता बना वो ।

3—फंसा था रंज में तुम याद आये,
कोई कांधों से बोझा-सा हटाये,
बदरिया चीर कर ज्यों अग्नि निकले,
जैसे कमरे में छिपकर नूर आये ।।

1—परिवार

दांता किलकिल

•

अख्तर मुहिउद्दीन

ब्रीस्तू चमार ने आव देखा न ताव, झट खड़े होकर जूता हाथ में लिया और अश्मी के सिर पर दो-चार जड़ दिये। इतना ही नहीं, चुटिया पकड़ कर उसे सारे कमरे में घसीट भी लिया। यह तो खुदा की मेहर हुई कि चूल्हे की लपटों से अश्मी के कपड़ों में आग नहीं लगी, अन्यथा वह सिर से पैर तक आग से झुलस गयी होती। चूल्हे पर पायों[1] से भरी हंडिया पक चुकी थी और खूब उबल रही थी।

अश्मीकी सहसा चीख निकल गई, 'अरे, कहीं कोई है। मुझे बचाओ। यह मुझे जानसे मारे डाल रहा है। इसका सर्वनाश हो जाये।'

"सर्वनाश हो उन सबका, जो तेरे हैं और जहां हैं;" ब्रीस्तू चमार दायें-बायें थूकते हुए बोला, "तूने मुझे कोई मुरदा समझा है क्या ? तूने......।"

"उन्हें क्या कोस रहा है ?" अश्मी पहले से भी ऊंचे स्वर से चीखने लगी, "वे क्या तेरा चूल्हा फोड़ने आते हैं।"

चूल्हे का नाम सुनते ही ब्रीस्तू को पायों-भरी हंडिया याद आ गयी और उसका मन डाँवाडोल हो गया। सोचने लगा, 'देखो तो, कितने दिनों बाद आज शोरवा पीने-खाने को मिला था, सो वह भी इस डायन ने राहतसे पचने न दिया।' तब वह झुंझलाकर अश्मी पर और भी बरसा—"तू देखना, सवेरा होते ही जो तुम्हें तलाक न दिया तो अपने बाप का न हूंगा।"

"जा-जा, मेरी जूती सदके।" अश्मी भवें तरेरकर और हाथ हिला-हिला कर बोली, "मैं लोगों की पायगिरी करके अपना पेट पालूंगी। मैं कोई लूली-लंगड़ी थोड़ी हूं ?"

यह कोलाहल सुनकर मुहल्ले-का-मुहल्ला वहां उमड़ आया। इनमें सलाम

2—भेड़-बकरी की टाँगें। लोग इनको उबालकर शोरबा बनाते हैं। मांस की अपेक्षा सस्ते दामों मिलती हैं इसलिए निम्न वर्ग में इसका प्रयोग अधिक किया जाता है।

डूम, गुल बदमाश, नूरकमाल और मुहल्ले के अन्य बच्चे-बूढ़े सभी शामिल थे। खोरशी छाती पीटती हुई आयी और कहने लगी, "अरे ब्रीस्तू ! तुझे क्या हो गया। देखो तो, बेचारी की चुटिया से खून की धार कैसे फूट रही है। अबे, तनिक दया भी तुझे नहीं आयी।"

अश्मी का साहस बढ़ गया और वह बोली ? "इसका दिमाग तो सातवें आसमान-पर चढ़ गया है। भला पच्चीस रुपल्ले भी कोई कमाई है क्या ? समझता है फंस गयी है यह बेबस मार। मगर भोर होने दे, अपने भाइयों से दिमाग इसका ठिकाने न लगवाया तो कहना। सात भाइयों की बहन हूं, सात भाइयों की।"

"हूं...फर्रर्......।" ब्रीस्तू के मन में अश्मी की यह घुड़की न समायी। और वह मुंह बना-बना कर और उंगलियां नचा-नचाकर उसे चिढ़ाने लगा।

"अरे भई। आखिर बात क्या है।" नूरकमाल बड़ी अक़्लमन्दी से पूछताछ करने लगा, "भला, हमें भी कुछ कहोगे या लड़ते ही जाओगे ? अरी अश्मी, तू ही तनिक चुप रह।"

"मैं···मैं चुप रहूं। मैं तो इसको दुनिया-जहान में ज़लील करके छोड़ूंगी।"

"अरी, किसको...।" ब्रीस्तू चमार फिर गुस्से हुआ और उसे पीटने के लिए फटा जूता हाथ में उठाने लगा। इस पर नूरकमाल और गुलबदमाश ने बीच-बचाव करके उसका क्रोध ठण्डा किया।

ब्रीस्तू हांफ रहा था। उसका चेहरा केसर की तरह पीला पड़ गया। रोम-रोम-से पसीना फूट पड़ा। उसके हाथ कांपने लगे। क्रोधातिरेक से वह भीतर-ही-भीतर कुढ़ रहा था। दीया अगर ऊपरी आले पर न होता तो वह भी सम्भवतः पैरों के नीचे रौंदा गया होता। हुक्के की नय (नली) नदारद, चिलम टूटकर चकनाचूर हो गयी थी। छोटे-छोटे बच्चों ने तूफान का शोर मचा रखा था। कोई किसी की बात तक सुन नहीं पाता था। सुनने में अगर कोई शब्द आते भी थे तो वे थे ब्रीस्तू के मुखसे गालियां और अश्मी के मुख से अपशब्दों की बौछार ;

आखिर ब्रीस्तू नूरकमाल से सम्बोधित हुआ, "भई, तुम ही मेरे मुंह पर थूक दो और कह दो कि अबे नामुसलमान, तू जो कहता है झूठ बकता है।"

"अरे भई, कुछ कहोगे भी या नहीं ?" गुल बदमाश मूंछों को ताव देते हुए कहने लगा। वह सम्भवतः खड़े-खड़े ही आले पर के दिये की चिकनाहट उंगलियों पर मलता और मूंछों को ताव देता रहा। हां, शायद यही कुछ कर रहा था, नहीं तो वह दिये के पास ही खड़ा क्यों रहता। जैसे और सब लोग बैठे थे, वह भी बैठा होता।

"अरे, क्या कहूं।" ब्रीस्तू हसरत-भरी हंसी हंसकर कहने लगा, "थोड़ी देर पहले जब हमने पगार ले ली, मैंने तुमसे नहीं कहा कि सुलतान कसाई से मैंने पाये मांगे हैं ? अभी...अभी भई...?"

"हां भई, हां, याद है।" गुल बदमाशने गवाही दी।

"अच्छा, तो तेरी जानकी खैर हो, रुपये मिले पच्चीस। वहीं पर जमादार साहब था, उसको दो रुपये दे दिये। सोचा था, कमेटी के पिछवाड़े से निकल जाऊं और पुलिस लाइन के अहाते से होते-होते तहसील के पीछे से घर पहुंच जाऊं। वहां पर गफार बानी के दस रुपये चुकाने थे सौदा-सलफके। महीना-भर उधार जो लेते रहे...।"

"अरे यार सच पूछो तो", नूरकमाल बोला, "मैंने सोचा था, इस महीने मैं भी उसे कुछ न दूं और पिछवाड़े से भाग आऊं। देख लेते, महीना भर फिर क्या करते...।"

"हां...तो यह कही ना बात। खुदा की तुम पर मेहर हो।"

"लेकिन यार, वह सूअर तो कमेटी के अहाते में ही मौजूद था। ज्यों ही मैंने पगार ली, उसने पीछे से हांक लगायी," कमाल, अरे ओ नूरकमल। ला मेरा हिसाब चुकता कर दे।"

"खुदा तुम्हारा भला करे।" ब्रीस्तू चमार की एक-एक बात सत्य सिद्ध हो रही थी और वह खुश हो रहा था।

"अच्छा तो अब मैं अपनी आंखें फोड़ता, जो उससे मुकर जाता। मैंने कहा, ले लो जी।"

"हां तो, अल्लाह मेहर करे तुमपर।" ब्रीस्तू ने उसकी बात काटते हुए कहा, "खुदा रसूल की कसम, ऐसे ही मुझे भी उसने घेर लिया। मैंने रुपये दस निकाले और उसकी हथेलीपर थमा दिये। भई, सच पूछो तो महीना-भर उसी से मांगते रहना है। उस बेचारे ने भी कौन-सी चोरी की।"

सबने हामी भरी; पर अश्मीका दिल बुरी तरह जल रहा था। उसकी चलती तो वह उस समय ब्रीस्तूका कलेजा बाहर निकाल लेती और उसको तल-भुन लेती। उसका सिर दुख रहा था। फिरन (चोग़ा-सा कश्मीरी पहरावा) की आस्तीन सिरहाने रखकर वह लेटी रही। वह बिलख-बिलखकर रो रही थी। उसकी आंखों से सावन की झड़ी-सी लग गयी थी।

'हां तो, यह हुए दस।" ब्रीस्तू फिर ऊंचे-ऊंचे बोलने लगा, "सात रुपये नूर गल्लादार के पिछले महीने के देने थे।"

"अरे, मुझीसे क्या कहता है ! पर भई, वह आदमी नेक है। मैंने कहा,

"हाजी साहब, इस महीने मुझे पैसों की दरकार है ।" बस, दो-चार गालियां सुनायीं और कह दिया, "अच्छा जा, अगले महीने जरूर चुकाना ।"

"पर यार, मेरे तो पीछे ही पड़ गया । न जाने क्या बात हुई । वैसे तो आदमी है भला । और फिर चोरी भी क्या की । सात रुपये लिये हुए भी तो दो महीने बीत गये ।"

अचानक आले पर से दिया गिर पड़ा और कमरे में अन्धकार छा गया । कुछ लोग उठ खड़े हुए और कुछ नीचे बैठ गये । सब लोग अश्मीसे पूछने लगे, "अरे, दियासलाई की डिबिया कहां है ।" वह बोली न चाली, बस रोती रही आखिर खोरशी उठी और उसने कांगड़ी (सिगड़ी) पर दो-चार कोयले फूंककर दीया जला दिया ।

"अरे, गुल बदमाश कहां गया ?" अनायास नाबिर शेख के बेटे रसूल के मुख से ये शब्द निकल गये; परन्तु इस पर किसी का ध्यान नहीं गया । और ब्रीस्तू फिर अपनी बातें कहने लगा, 'ये हो गये सत्रह । ना-ना-उन्नीस, दो जमादार के दस गफार वानी के और सात किसके...।"

"नूर गल्लादार के ।" रसूल ने याद दिलायी ।

"सदके जाऊं खुदाके ।" ब्रीस्तू बोला, "तो हो गये ना उन्नीस । अच्छा तो ये उन्नीस (रुपये) ऊपर से ही चुक गये । अब बताओ, मैंने अगर खाया तो क्या । बस इसकी लड़की के लिए मैं एक ज़ोड़ा फिरन नहीं ले आया ।"

"हमारी बारी जब आयी तभी तुझे टोटा पड़ गया ।" लेटे-ही-लेटे अश्मी बोल उठी, "तुझे तो जूआ खेलने को पैसा चाहिए । जा, साबिर टुण्डा आया होगा...।"

"अरे, भई बताओ, लोगों का नाम लेने से इसे क्या वास्ता ।" ब्रीस्तू क्रुद्ध होकर कहने लगा, "इससे कह दो, जबान को लगाम लगाये । मैं सबेरे ही इसका फैसला कर लूंगा ।"

"अरे, बाकी छह रुपये कहां गये ?" नूरकमाल पूछ बैठा । इतने में बाहर सुलतान डूम हुक्का गुड़गुड़ाते हुए आया ।

"खुदा तुम्हारी उमर बढ़ाये ।" नूर कमाल के मुख से स्वतः यह आशीर्वचन निकला । सुलतान डूमने हुक्का ब्रीस्तू के सामने रखा और कहने लगा, "अरे, ले तम्बाकू पी ले । आज मैं यह (तम्बाकू) अमीराकदल से लाया हूं, उसी जवार तमाकू से यार, बाखुदा, उसकी तम्बाकू का कहीं जोड़ नहीं ।"

ब्रीस्तू ने हुक्का थामकर एक कश लगा लिया और बोलता गया, "रह गये पांच । तीन इसी ने थोड़ी देर पहले खोरशीको दे दिये । उससे उधार लिये थे ।"

"हाँ-हाँ ।" खोरशी वहीं पास बैठी थी । उसने हामी भरी, "सच है । मैं कैसे ना करूं, आखिर मरना है । थोड़ी देर पहले ही मुझे तीन रुपये दे आयी ।"

"समझा भई ।" ब्रीस्तू खोरशीके हामी भरने से प्रसन्न हुआ और कहने लगा, "बाकी बचे थे दो रुपये । उसमें से एक रुपये के पाये लाया था...।" यह कहते ही उसने चूल्हे की ओर देखा और उसके मुंह से हठात् चीख निकल गयी, "अरे, हंडिया कहां गयी ?"

अश्मी चीख सुनकर झट उठ खड़ी हुई । लगी चूल्हे के आगे-पीछे ढूंढ़ने । आले देखे, देहरी देखी । घर का कोना-कोना छान मारा, जैसे कोई सुई खो गयी थी । सब मुहल्ले वाले लज्जित हुए । कई तो इसलिए हक्के-बक्के से रह गये कि कहीं उनपर ही सन्देह न किया जाये ।

ब्रीस्तू चमार इसी सोच में डूब गया कि कौन अदृष्ट चूल्हेपर-से हंडिया उठाकर ले गया । वह सब तकरार भूल गया और अश्मीसे पूछने लगा, "अरी ! चूल्हे पर ही तो थी ना ?"

अश्मी ढूंढ़-खोजकर थक हार गयी थी, "देखी नहीं, वहीं तो थी । अरे, यह कौन खड़े-खड़े ही झड़ गया, जो शोरबे की भरी हंडिया ले भागा । हाय, उसका सत्यानाश हो जाये ।"

नूरकमाल भी सोच में पड़ गया कि यह ठगी किसने की ! भला ऐसी कुचेष्टा कौन करेगा ? तभी वह चीख पड़ा, "अरे जरा इस गुल बदमाश को तो ढूंढ निकालो ।"

नाबिर शेख का रसूल बोला, "मेरा तो तभी माथा ठनका था...।"

उनका इतना ही कहना था कि सब गुल बदमाशके घर दौड़े और बाहर होहल्ला मचाने लगे । गुल बदमाश की मां खिड़की से झांकते हुए कसमपर कसम खाने लगी कि हंडिया गुलने नहीं चुरायी । परन्तु अश्मी भला कैसे विश्वास करती । उसने भरे चौक में अपशब्दों का तूमार बांधा, "अरी जो तू हमारी पायोभरी हंडिया खाये तो समझना, अपने अकेले पुत्रको ही खाया ।"

गुलबदमाश भीतर चुप साधे बैठा रहा और ब्रीस्तू चमार बाहर से चीखते अनाप-सनाप गालियां देते-देते फेन उगलने लगा । उसको रह-रहकर शोरबेकी तरी और मज्जा का स्वाद आ रहा था । अन्त में जब वह थक-हार गया तो उसने अश्मी की बांह थाम ली और उसे अपने घर की ओर ले जाने लगा—

"चल चलें। खाने दें इन्हीं को। हमपर तो उसकी फिर मेहर होगी; पर इनका ही दीन-ईमान नहीं रहा।"

—देर बाद जब सब लोग अपने-अपने घरों में सोये पड़े थे, क्रीस्तू चमार अश्मी के सिर पर गरम-गरम हल्दी का सेक दे रहा था और कह रहा था, "री। मैं कोई झूठ कह रहा था, घर में दांता किलकिल नहीं होनी चाहिए। इससे दुर्गत हो जाती है।"

अश्मी बोली, "अरे, यह गुलबदमाश कैसे शोरबे की हंडिया चट कर गया मेरा बस चले तो बलि के बकरे के स्थान पर मैं इसी को तुम पर कुरबान करती।"

डल की सैर ('दोदग')

•

अख्तर मुहिउद्दीन

राजि और फ़ातिमा के जीवन में यह पहला दिन था, जब वह बहनें अपने विचार से दुनिया के सभी बड़े-बूढ़ों की आज्ञा का पालन किये बिना सैर को निकली थीं। शिकारे में वे इससे भी कहीं अधिक आनन्दित होतीं यदि अब्दुल गनी की कृपा का भार उनके सर न होता। फ़ातिमा ने लज्जा और शर्म एक ओर उतार फेंकी और स्वच्छ वायु से अपने घाव-भरे फेफड़े की बीमारी दूर करने की ठानी।

सूर्य आकाश के मध्य में था और उसकी किरणें डल के तल तक रुपहली सीढ़ी के समान उतरतीं थीं। नीले जल में छोटी-छोटी मछलियां पंक्तिबद्ध चल रही थीं और काई के नीचे कभी छिपतीं कभी दीख पड़तीं, मानों पाठ-शाला के आंगन में लाड़ले लड़के लुका-छिपी खेल रहे हों। दूर के कमल नील-गगन पर नक्षत्र जैसे प्रतीत होते थे और कमल पत्तों की थालों में प्रकृति ने मानों ऐसे मोती बांटने के लिये रखे हों, जो अभी बिंधे न हों। बेदों के पेड़ों में लम्बे और घने पत्ते लगे थे और उनकी डालियां सुरभित पवन-झकोरों से ऐसे हिलतीं थीं मानो हरि चुनरियां धारे कुंवारी लड़कियां डाल के किनारे पर 'रोफ' नृत्य कर रही हों। इधर-उधर चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पर्वत-शिखर मेघ-खण्डों से घिरे हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो कबीलों के मुखिया अपने बाल-बच्चों का विकास देखकर हंस रहे हों—मुस्करा रहे हों।

फातिमा को यह सब रूप-लावण्य देखकर एक ही विचार मन में फिर-फिर आता था कि काश! खुदा मेरी सुने और मैं स्वस्थ हो जाऊं। मगर राजि छोटी और स्वस्थ थी। आस-पास के रूप-सौन्दर्य ने उसके भीतर का बालपन जगा दिया। उसके सर में अपने आप चुनरी ढलक गई और काक-पंख से उसके केश-पाश खुल गये। आज वह जान पाई कि उसका पति ढलती आयु का है और वह स्वयं छोटी है और भोली है—अब्दुल गनी की जोड़ी—इस विचार से उसका मुँह लाल हो गया और उसके चेहरे पर ललायी की छटा उभर आई। अब्दुल गनी उसके सामने बैठा बीच-बीच में पलकें उठाये देखता था और राजि को उसका यह देखना अच्छा लगता था।

लल वाख

रहमान राही

कश्मीरी कविता की समीक्षा करने वालों में साधारणतः यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि वह अपना अधिकतर ध्यान इस कविता की पृष्ठभूमि, इसकी बाह्य-विशेषताओं और इसकी कच्ची-पक्की बातों की ओर देते हैं। उदाहरणतः 'ललवाखों' पर अपनी लेखनी उठाते हुए वे उन विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों, घटनाओं अथवा वैयक्तिक प्रवृत्तियों की चर्चा करते हैं जो उनके विचार में इस काव्य-रचना की पृष्ठभूमि में कार्यान्वित रही हैं। वे हमसे कहते हैं कि 'लल-वाखों' की रचना पद्धति क्या है अर्थात् उसमें कितने पद हैं या उसमें कौन से छन्द आदि प्रयोग में लाये गये हैं। 'लल-वाखों' के अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए विभिन्न विचार प्रवृतियों और दार्शनिक प्रेरणाओं के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ने की कोशिश की जाती है। विवाद का विषय यह होता है कि वास्तविक जीवन में इनकी उपयोगिता क्या है, या फिर इसकी प्रसिद्धि और लोकप्रियता पर प्रसन्नता व्यक्त की जाती है ···। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गवेषणा और व्याख्या का यह काम अपने स्थान पर बहुत आवश्यक है और किसी साहित्यिक रचना का मूल्यांकन करते समय इस प्रकार का अन्वेषण भी काम आता है, मगर जिसको यथार्थ में समीक्षात्मक अध्ययन कहा जाता है, वह न तो इन बातों से आरम्भ होता है और न ही मात्र इन्हीं बातों पर समाप्त होता है। समालोचक का पहला कार्य यह देखना है कि जिस चीज का वह अध्ययन करता है वह सीधा-सादा साहित्य है कि नहीं और यह बात केवल साहित्यिक और सौन्दर्यबोध की कसौटी से परखी जा सकती है। असाहित्यिक कसौटियों पर चढ़ाकर अच्छे और बुरे पद्य में भेद करना सम्भव नहीं। राजनीतिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि के न्यूनाधिक समान होने के बावजूद चासर और गोवर, ग़ालिब और ज़ौक अथवा ललपद एवं शेख-उल-आलम के काव्य में आकाश-पाताल का अन्तर है। एक ही

व्यक्ति की रचना होते हुए भी महमूद गामी या महजूर की लिखी हुई सभी कविताएं साहित्य के क्षेत्र में सम्मिलित नहीं की जा सकतीं...।

कश्मीरी-शायरी की प्रतिनिधि कृतियों का अधिकांश भाग पद्यमय है। पद्य-मय काव्य से अभिप्राय है वह रचना, जिसमें कवि अपने किसी आंतरिक अनुभव या स्थिति को कभी-कभार ही अभिव्यक्ति देता है। यह अभिव्यंजन सीधे भी हो सकता है और लक्षणा से भी होता है। कभी कवि अपने किसी भाव या अनुभव को सीधे व्यक्त करता है और कभी अपने भावाभिव्यंजन के लिये बाह्य दृश्य या परिस्थिति के प्रतिबिम्ब का सहारा लेता है और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वह अपने विभिन्न व्यक्तिगत अनुभवों का नवीनीकरण करके अपनी कल्पना को उड़ाकर अपने से इतर किसी और के भाव या अनुभूति को काव्य का रूप प्रदान करता है...। पहली स्थिति में चूंकि कवि का तात्कालिक उद्देश्य विशुद्ध रूप से अपने किसी भाव या अनुभूति का अभिव्यंजन करना होता है और चूंकि यह अभिव्यंजन कम-से-कम बाह्य आधार ढूंढता है इसलिए काव्यमय रचना साधारणतः छोटी और संक्षिप्त होती है और इसमें कवि को ध्वनि के उतार-चढ़ाव, शब्दों की बू-बास और इनकी छाया-माया का एवं उनकी लय-ताल का अत्यधिक ध्यान रखना पड़ता है।

वर्तमान से पूर्व की पद्यबद्ध कविता में प्रेरणाएं प्रधान रही हैं—धर्म और प्रेम। कश्मीरी काव्य के प्रथम-युग की सर्वश्रेष्ठ रचना 'लल-वाख' गिनी जाती है। 'लल-वाखों' की मूल प्रेरक स्थिति वह है जिसको हमने धर्म या मज़हब का नाम दिया है और जाति एवं प्रकार की दृष्टि से हम इसके अधिकांश भाग को काव्यमय कह सकते हैं तथापि 'लल-वाखों' की कविता और उदाहरणतः अरनीमाल की कविता में एक विशेष अन्तर है और अगर उसकी उपेक्षा न की जाए तो 'लल-वाखों' का ठीक-ठीक मूल्यांकन अत्यन्त कठिन है...।

वियोग की बेचैनी का एक भाव और मिलन की एक उड़ान भरती हुई उत्सुकता जिसका सीधा-सादा अभिव्यंजन हुआ है—एक भाव है, जो सीधे-सादे तरीके से और नाम लेकर व्यक्त किया गया है। 'लल-वाखों' में भी भावनाओं और अनुभूतियों का अभिव्यंजन हुआ है और बड़ी शिद्दत के साथ गहरे तत्व-चिन्तन से हुआ है; परन्तु हम जिस विशिष्ट विशेषता की ओर ध्यानाकर्षण करना चाहते हैं वह यह है कि 'लल-वाखों' में अपने आप ही किसी अनुभूति या भावना का प्रतिनिधित्व नहीं होता, बल्कि उसमें अनुभूति का महत्व एक सर्जित भाव है, एक घनिष्ठतम एवं चमकदार दार्शनिक विचार-प्रणाली जिसमें अनुभव का जोश और सान्निध्य, करामात एवं स्वप्न का सरूर होता है। अर्थ की दृष्टि से यदि देखा जाय तो 'लल-वाख'

शैवमत नामक एक विशेष दर्शन का, तर्क एवं साधना की वास्तविकता व विशेषता तथा कुछ सूफियाना सच्चाइयों का वर्णन प्रतीत होता है; परन्तु इस संकलन के अच्छे वाखों में यह दर्शन और यह सत्य अनुभूत भावों का रूप धारण करता है, मात्र विचार के क्षेत्र मे इसके सही या गलत होने के बारे में मतभेद हो सकता है; परन्तु 'लल-वाखों' में जब वही विचार काव्यानुभूति बनता है, तो इसकी सत्यता पक्की हो जाती है, बल्कि एक दृष्टि से सत्य और असत्य का प्रश्न ही लगभग असंगत और अनावश्यक बन जाता है।

इन पद्यों में बुद्धि एवं अनुभूति, भावना एवं विचार एक दूसरे में ऐसे मिल जाते हैं कि ख्याल को उपमाओं द्वारा पाया, पहचाना और वर्णित किया जा सकता है। यह भावना और दर्शन की वह सामर्थ्य है, जो एक दार्शनिक विचार को भी ज्वाला की आंच या शबनम की ठंडक की तरह अनुभव करती है। 'लल-वाखों' की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनमें मानसिक स्थिति या अनुभूति वर्णन नहीं की जाती बल्कि शब्दों के रूप में उस अवस्था की जैसी स्थिति सृष्ट की जाती है...। वाखों में कोई विचार, मात्र विचार की स्थिति में प्रस्तुत नहीं किया गया है, बल्कि उस विचार से जिस मानसिक स्थिति का अनुभव रचनाकार को हुआ है, वही मानसिक स्थिति आलंकारिक ढंग से रचना के रूप में आ गई है। ऐसी रचना को हम भी पढ़ते समय वैसी ही मानसिक स्थिति—बेचैनी और तड़प का अनुभव करते हैं...। इसलिए हम 'लल-वाखों' में उपमाओं, लक्षणाओं और अलंकारों की बहुलता पाते हैं...।

सूफियाना अनुभवों और विचारों को काव्यरूप देने की कोशिशें 'लल-वाखों' तक सीमित नहीं रही हैं, जिस प्रकार पहले ही कहा गया है धार्मिक प्रेरणाएं कश्मीरी शायरी के एक बहुत बड़े भाग के आधार का नाम करती हैं। चुनांचे 'यह आवाज चौदहवीं सदी की 'लल' से चलकर उन्नीसवीं सदी के कवियों एवं बीसवीं सदी के कुछ कवियों तक भी विविध ध्वनियों तथा अनुमानों से सुनने में आती हैं, मगर 'लल-वाखों' और उनके बाद की अधिकांश सूफियाना शायरी में अनेक विशेषताओं के कारण अन्तर हो सकता है। सर्वप्रथम जो सत्चेतना एवं भावना— जो एकता एवं शिद्दत 'लल-वाखों' में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है, बाद की कविताओं में उसका अभाव प्रतीत होता है और सत्य यह है कि मौलिक त्रुटि के कारण बाद के किसी सूफी कवि की रचना को 'लल-वाखों' जैसी प्रधानता एवं लोकप्रियता नहीं मिली।

शेख-उल-आलम के नाम पर जो 'श्रूख' प्रसिद्ध हैं, बाह्य रूप-रंग से वे भी 'लल-वाखों' से मिलते-जुलते हैं। विषय की दृष्टि से भी दोनों में पर्याप्त समानता है, अगर भेद है तो केवल यह कि एक दहकता हुआ अंगारा है और

दूसरा राख से लिपटी चिंगारी...। 'लल-वाख' और शेख-उल-आलम के 'श्रूखं' की दार्शनिक एवं अनुभूतिपूर्ण पृष्ठभूमि में कितनी समानता क्यों न हो, मगर पृष्ठभूमि के विषय साहित्यिकता की पर्व भूमि तक पहुंचते-पहुंचते दोनों के अभिव्यंजन में बड़ा अन्तर उत्पन्न हो गया है...।

'लल-वाखों' के मुकाबले में शेख साहब के 'श्रूख' कोई जीदन्त अनुभव रचने के स्थान पर उससे सम्बोधित मानों एक संस्मरणात्मक या अनुभवजन्य कोई शिक्षाप्रद नुकता प्रस्तुत करते हैं...। शेख-उल-आलम के अधिकांश 'श्रूख' हमारी बुद्धि को तो अवश्य छू लेते हैं; परन्तु मन में घर नहीं कर सकते। इन श्लोकों में जो उपमा या लक्षण हैं, अनेकों का कार्य सर्जनात्मक से अधिक व्याख्यात्मक है। वे दृष्टांत तो प्रस्तुत करते हैं; परन्तु प्रतीक नहीं बन सकते।

नाटक (एक अंश)

हीरो मचामा

•

पुष्कर भान

मचामा—(स्वागत) मचामा। हिम्मत रख, वास्तव में यह जलते हैं। हँह, क्या हुआ है हमें, (दर्पण ढूंढता है) मैंने किसी जेब में रखा था। ओ, यह रहा, और यह रहा कंघा। (गाना गुनगुनाता है) हूंह, (अपनी सूरत देखकर) हीरो मुझ से बढ़िया क्या होता है। दांत तो बाई फादर फर्स्ट-क्लास हैं, रही आंखें, माना दायीं आँख जरा बायीं ओर टेरती है, पर पहचानना बड़ा मुश्किल है, और फिर किसी के मुंह की ओर ही देखना जरूरी है, कल एक मफलर लाना पड़ेगा। फिर यह देखेंगे कि हीरो किसे कहते हैं, ही—रो।

माचामा—(बायें विंग की ओर देखकर) हिश—हिश

खतिजी—हंह, आ गये ?

मचामा—अब्बा कहां हैं ?

खतिजी—पार वहस कर रहे हैं। तुम्हारी ही बातें हो रही थीं।

मचामा—अम्मी कहां हैं ? अम्मी, अरे अम्मी !

खतिजी—रसोईघर में।

मचामा—इधर आ, दौड़ कर आ (खतिजी को कुर्सी पर बिठाता है और खुद गाता है) क़सम है ख़ुदा की और इन घुटनों की कसम है, कह, क्या मैं एक्टर जैसा लगता हूं ? खतिजी, मैंने अब फिल्मों में काम करना है, इस तरह (खतिजी के कन्धे दबाता है) मानो तू बैठी है (थोड़ी दूर जाकर) मैं एक्टर इधर से गाते-गाते आता हूँ—सुन, बैरी बलम कुछ बोल (निर्देश देते हुए) ऐसे न देखो मेरी ओर, यूं देखो। गर्दन ज़रा ऊँची रखकर, और ऊँची, बस गाते गाते—सुन बैरी बलम कुछ बोल अब क्या होगा..."

खतिजी—(गर्दन सीधी करके) मेरी गर्दन थक गई।

मचामा—क्यों, तेरी गर्दन थकी, ऐ खतिजी ! मुझे तुझ से इतनी मुहब्बत है, घनी मुहब्बत है; पर आज भी तेरे बाप को पीटूंगा और कल भी।

खतिजी—मेरे परवरदिगार ! उन्होंने क्या बिगाड़ा तुम्हारा ?

मचामा—तकसीर—तकसीर, अरे मैं एक्टिंग कर रहा था। तुझे क्या हो गया ?

खतिजी—हाय, हाय; यह क्या हुआ।

मचामा—मुझे प्रेक्टिस करने दे। फायदे में तुम ही रहोगी। मोटर होगी, बंगले होंगे, नौकर होंगे, लाखों रुपये होंगे, तुम हो कहाँ। समझ में आयेगा किसी एक्टर की बीबी हो।

खतिची—सच ! क्या सच कह रहे हो ?

मचामा--यकीन नहीं आया। तू सिर्फ खुदा से मेरे लिये एक चांस मांग। एक आदमी ने कहा, दो-चार दिन तक यहां अखबार में एक्ट्री की सूचना छपेगी। बाकी खुदा जाने। अच्छा, मुझे तू अभ्यास करने दे। मुझे मालूम है, अब्बा जान कहेंगे (मुंह बनाकर) अरे, क्यों दरबदर हो गये, कर अपना काम ! अम्मी कहेंगी (नकल करके) पुत्र, बुढ़ापे में यह तू हमें कैसे-कैसे रंग दिखाता है। देख तुम्हारे अब्बा का चेहरा कैसा उतरा हुआ है।' खैर एक्टर बनने के लिए ऐसी सब बातें सहन करनी पड़ती हैं। (भावुक बनकर) वह घड़ी जब आयेगी, इस कूचे से बैंड बाजा बजता हुआ निकलेगा। (बैंड बजाने की नकल करता है) वहीं पर बोर्ड वाला चिल्लाता होगा—आज रात को जोरदार फिल्म। पहला शो डेढ़ बजे, दूसरा शो साढ़े चार बजे और तीसरा साढ़े नौ बजे रात। आइये, महशूर हीरो मचामा को देखिये। फिल्म जबर्दस्त रश ले रही है—निकलेगी खिड़की से अम्मी, निकलेंगे अब्बा, सभी रिश्ते-नातेदार निकलेंगे। मेरा चित्र बोर्ड होगा। नहीं आया यकीन (बैंड बजाने की नकल करता है)।

खतिजी—हाय, हाय, तू आज यह क्या कर रहा है ?

मचामा—एक्टर, एक्टर। तू भला एक्टिंग क्या जाने।
हमें कुदरत ने यह हुनर बख्शा है। हर एक के हिस्से की यह चीज़ नहीं। ऐ खतिजी। तेरे दांत हैं बताशे, तेरी आँखें हैं खरबूज, तेरे बाल हैं पतला साग, तेरी नाक है बाग का खीरा, तेरे कान हैं गोल

बैंगन और तेरी भौंहें हैं राजमाश की फलियां। ऐ खतिजी, तू अपने मां बाप से साफ कह दे कि मैं हीरो मचामा से ब्याह करूँगी।

खतिजी—नहीं तो, मैंने किसके साथ ब्याह किया है ?

मचामा—चुप रह, जाने यह कैसी है। मैं तो यह एक्टिंग कर रहा था। तुझे उधर से रोते-रोते कहना था (जनाना आवाज में)—मैं तेरी खातिर दुनिया छोड़ दूंगी, ऐ मेरे मचामा।' उसके बाद तुझे यह गीत गाना था—न यह चांद होगा न तारे रहेंगे, मगर हम हमेशा तुम्हारे रहेंगे—इसको कहते हैं एक्टिंग। नहीं समझी। उसके बाद तुझे रोना था।

खतिजी—मैं भला क्यों रोती ?

मचामा—मेरे लिये।

खतिजी—(रुआंसे गले से) हाय-हाय, क्या तुम्हारे दुश्मनों को कोई बीमारी है ?

मचामा—यह कौन—सी बला मेरे गले पड़ी।

अब्बा—(खांसता हुआ स्टेज पर आता है)

मचामा—अल्लाह ! (घबराकर) 'बैरी बलम कुछ बोल रे, अब क्या होगा।' अम्मी भी आ गई।

अब्बा—क्यों ? यह क्या हंगामा है ?

मचामा—अम्मीं, क्या होगा, हे अब्बा, क्या होगा। सुन बैरी बलम...। अरे ओ क्या होगा, अब क्या होगा।

अब्बा—मुझे क्या हो गया है ?

मचामा—वही तो और क्या। अब क्या होगा, अरे जी, क्या होगा, अम्मी क्या होगा। सुन बैरी बलम...।

अम्मी—अरे, सदके जाऊँ तुझ पर (अब्बा की ओर) शायद इसका भेजा फिर गया है।

अब्बा—मैं भी यही समझता हूं।

मचामा—अल्लाह। अब क्या होगा।

(दूर से) अरे ओ मचाम—...।

पनघट

मेरे भाईयो ।

कहते हैं पत्र आधी मुलाकात है। यह सच है। हम भी आपस में पनघट परमिलते रहेंगे (मुझे यह शब्द, 'मित्रों के मिलने की जगह' मधुर प्रतीत होता है) और मिलकर हम न सिर्फ यह पूछा करेंगे—क्यों भई, ठीक हो, सकुशल हो' और चलते बनेंगे। और यह भी नहीं—शीराजा अच्छा है या बुरा, मेरी नज्म क्यों नहीं छापी, अमुक व्यक्ति कलाकार नहीं, क्योंकि मुझे उससे दुश्मनी है...।'' नहीं।

हम कुछ साहित्यिक समस्याएँ छेड़ा करेंगे। उनकी संक्षिप्त व्याख्या करेंगे और वर्तमान काल की नई-नई बातों की ओर एक-दूसरे का ध्यानाकर्षण करेंगे। उदाहरणतः मैंने जेम्स जायस की 'यूलिसीज' दो बार पढ़ीं; पर समझ न आई। अब क्या करूँ कोई मुझे राह दिखा दे। अथवा उदाहरणतः अमुक ने शेक्सपियर के एक नाटक का अनुवाद किया; शायद वह कभी छपे। उसपर तुम्हारी कोई राय होगी। कश्मीरी में किताबें छपती हैं, मगर कोई खरीदता नहीं, इसका क्या किया जाये। शायरी में इबहाम (संदेह) का सौन्दर्य बढ़ने लगा है। समझना जरा कठिन होता है। उसका क्या इलाज है?

ये और ऐसी ही बातें। पर एक बात याद रखने की है और वह यह कि पत्र अपने आप में एक साहित्यिक विधा है। इसकी आत्मा है संक्षिप्त वर्णन। हमें यह भी ध्यान में रखना है। जो बात पत्र में नहीं आये वह प्रबन्ध में आ सकती है। ज्यों ही लगे कि कोई बात पत्र के परिमाण से लम्बी होगी, तो फिर लेख लिख दिया।

ओ, अब बात चल पड़ी है। अभी ऐसे अनेक लेखक हैं, जो लिपि को ठीक तरह से प्रयोग में नहीं लाते। यह शर्म की बात है। लेखक के भी यदि अक्षर ठीक न हों तो उसको चाहिये—चलो......। इसके अतिरिक्त हम भी तो तंग पड़ते हैं। अगर लेख की पांडुलिपि पढ़ी ही न गई तो प्रकाशित क्या करेंगे।

तुम्हारा साथी

—अख़्तर मोहिउद्दीन

कश्मीरी इतिहास : पष्ठभूमि

•

'अवतार कृष्ण रहबर'

तब कश्मीर एक स्वाधीन राज्य था। इसमें झगड़े-जंजाल जोरों पर थे। वास्तव में 950 ई० से ही कश्मीर की दशा बिगड़ गई। उन दिनों कश्मीर के शासक क्षेमगुप्त थे। वह बड़े विलासी और बेपरवाह थे। दिन-रात खून-तमाशों, नाच-गान और सुरापान व जुए में व्यतीत करते थे। जगह-जगह जुआरियों की टोलियां बैठती थीं। शासक के विचित्र ही शौक थे। वह अपने आप और मित्रों को ज़नानी पोशाकें पहनाता था और फिर उनके साथ बर्बर मानवों की तरह सुध-बुध खो देता था। चापलूस लोग उसको कंचन-वर्ष अर्थात् सोना बिखेरने वाला मेघ कहते थे। इस शासक के मरणोपरान्त 'छदरानी' बड़ी देर तक कश्मीर की कर्त्ता-धर्त्ता बनी रहीं। वह आने वाले शासकों (राजा अभिमन्यु, राजा नन्दगुप्त और राजा भीम गुप्त) का पथ-प्रदर्शन करती रही। परन्तु यह युग भी झगड़ों-कलहों से मुक्त न रहा। मन्त्रियों के षड्यन्त्र निरन्तर होते रहे। आग और क्रांतियां अनवरत चलती रहीं। लगभग 1015 ई० से 1021 ई० के बीच महमूद गज़नवी के आक्रमण हुए। उनके आक्रमणों ने यद्यपि कश्मीर के शासकों को किंचित सचेत किया, तथापि स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। हालात दिन-प्रतिदिन बदलते गये और कश्मीर की जनता दिन-ब-दिन आकुल और व्याकुल होती गई। इस समय की दुर्दशा का अंकन क्षेमेन्द्र की रचना में भी मिलता है। राज्याधिकारियों की लूट-खसूट और बेईमानी, शराबियों और लफंगों के दुराचरण, आशिकों की तड़प और कुलटाओं की धोखेबाज़ी, जनता की बेचैनी—यह सब बातें एक विशेष रूप से दृष्टिपथ में आतीं हैं। 12वीं सदी में हालात और भी बिगड़ जाते हैं। समस्त जनता भिन्न-भिन्न वर्गों में बंट गई। ऊंच-नीच की बहुत बड़ी खाई ने विभिन्न गुटों में बहुत दूरी पैदा की। अनेक जातियों ने खड्ग-तलवार हाथ में लेकर ही एक-दूसरे से प्रतिशोध लिया……। डामर, खश, तान्त्री और ठाकुर स्थायी वर्गों में बंट गये थे। वे निरंकुश होकर एक-दूसरे को मारने के लिये तत्पर रहते थे। वे गांव के गांव जला डालते थे और खून-खराबा करते थे।

गुजराती साहित्य

चयन :

श्री चन्द्रकान्त मेहता

अनुवाद :

श्री राजीव सक्सेना

अनुक्रम

ऐतिहासिक समीक्षा (गुजराती कविता)		373
नरसिंह मेहता	• मैं जागा तो···	378
अखौ	• पद	379
प्रेमानन्द	• कृष्ण-सुदामा	380
	• कृष्ण-सुदामा वार्ता	381
दयाराम	• सन्त पुरुष	382
कान्त	• अतिज्ञान	383
कलापी	• आपकी याद	386
नन्हा लाल	• दही	388
बलवंतराय ठाकौर	• पीहर का पुराना घर	389
सुन्दरम्	• प्रभु वर दो	390
झबेरचन्द मेघाणी	• आखिरी कटोरी	391
राजेन्द्र शाह	• पुण्य भारत-भूमि	393
निरंजन भगत	• चिड़िया घर में एक सिंह देखकर	394
प्रियकान्त मणियार	• कृष्ण-राधा	395
हंसमुख पाठक	• राजघाट पर	396
नलिन रावल	• स्मृति	396
चन्द्रकान्त मेहता	• गुजराती गद्य-साहित्य : संक्षिप्त सर्वेक्षण	397
आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव	• एक चांदनी रात	403
रमणलाल बसंतलाल देसाई	• रुद्रदत्त की मृत्यु	407
गांधी जी	• कन्या कुमारी का दर्शन	411
काका कालेलकर	• भुवनगिरि	414
किशोरलाल मशरूवाला	• गांधीवाद और साम्यवाद	417
दर्शक (मनुभाई पंचौली)	• डा० ज़िवागो : प्रथम परिचय	425
महादेव देसाई	• महादेव भाई की डायरी से	430
कु० धीरू बहेन पटेल	• प्रार्थना	433

ऐतिहासिक समीक्षा (गुजराती कविता)

भारत के अन्य सभी क्षेत्रों की कविता की तरह गुजराती कविता भी मध्ययुग में धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के साधन के रूप में जन्मी थी। पहला गुजराती काव्य था "भारतेश्वर बाहुबली रास।" इसकी रचना सातवीं शताब्दी में एक जैन मुनि शालिभद्र सूरी ने अहिंसा के सिद्धान्त का प्रचार करने के लिए की थी। उनके बाद जैन साधुओं की एक श्रृंखला मिलती है जिन्होंने अठारहवीं सदी के अंत तक रास नामक कथा-काव्य लिखे। प्रारम्भ में ये रास नृत्य-गीत होते थे, जिनको नाच के साथ गाया जाता था। बाद के काल में रास ने कथा-काव्य का रूप लिया जिनको सुना जाता था, यद्यपि इनका मुख्य उद्देश्य था जनता में धार्मिकता का प्रचार करना, फिर भी विषय का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया जाता था कि श्रोतागण का पूरी तरह मनोरंजन हो। यद्यपि कथा में विभिन्न मानव-भावनाओं को गूंथा जाता था, तथापि प्रेम-भाव की प्रमुख भूमिका होती थी। प्रारम्भिक काल में जैन मुनियों ने कविता की पताका ऊँची रखी।

पन्द्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में नरसी मेहता ने, जिनके गीत "वैष्णवजन" को अपनी प्रार्थना सभाओं में गाये जाने वाले गीतों में शामिल करके गांधी जी ने गुजरात से बाहर भी विख्यात बनाया, वैष्णव कविता का युग प्रारम्भ किया। वे कृष्ण के परम भक्त थे और उन्होंने अपने इष्ट देवता को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया, जिनमें से हर रूप अपने ही ढंग से गौरवमय है। उनकी कविताओं में हम कृष्ण को कहीं क्रीड़ारत नटखट बालक के रूप में, कहीं प्रेमी के रूप में, कहीं कृपालु और स्नेही मित्र के रूप में और कहीं विपत्ति में याद किये जाने पर कवि के सहायक के रूप में देखते हैं। नरसी ने दार्शनिक कविता की रचना भी प्रारम्भ की जिसमें ईश्वर सम्बन्धी औपनिषदिक धारणा को सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है। वे दोनों ही प्रकार की कविता की रचना में कुशल थे और वे अपने बाद आनेवालों के लिए प्रेरणा-स्रोत बन गये। मीरा ने—जिन्होंने अपने जीवन के अंतिम दिन द्वारका में बिताये—

कृष्ण-गीत गुजराती में रचे । नरसी और मीरा से गौरवशाली आरम्भ पाकर कृष्ण-कविता आगामी युग में बसन्त के पुष्पों की तरह प्रस्फुटित हुई । राजा, रघुनाथदास, प्रीतम, रत्नो, मुक्तानन्द उन कुछ कवियों में थे जिनका भक्ति-काव्य में योगदान उच्च काव्यात्मक स्तर का रहा। पिछली शताब्दी के कवि दयाराम अंतिम वैष्णव कवि थे । नरसी की भांति वे भी कृष्ण के परम भक्त थे और चूंकि वे स्वयं श्रेष्ठ संगीतज्ञ थे, इसलिए उनकी कृष्ण कविता की लोक-प्रियता व्यापकतर थी ।

रामभक्त कवियों में केवल भालण हैं जिनकी कविता स्मरण योग्य है । लेकिन उन्हें बाण की "कादम्बरी" के अनुवाद के लिए अधिक याद किया जाएगा क्योंकि उस प्राचीन श्रेण्य कृति के पद्यबद्ध सफल अनुवाद का यही एक-मात्र प्रयत्न था ।

अठारहवीं शताब्दी में मां-शक्ति के भक्त वल्लभ ने विभिन्न कविता रूपों का उपयोग करते हुए भक्ति-गीत रचे । इनमें मुख्य थे गरबो और गरबी—ये दोनों ही नृत्यगीत हैं, उनके गीत आज भी लोकप्रिय हैं । यद्यपि उनके पूर्ववर्ती भंडस जैसे कवियों ने इन काव्य-रूपों में प्रयोग किये, किन्तु उनको कलात्मक रूप वल्लभ ने ही दिया था ।

यूं दार्शनिक कविता का प्रारम्भ नरसी मेहता ने कर दिया था, किन्तु सत्रहवीं सदी के कवि अखो ने गुजरात के दार्शनिक कवि होने का गौरव प्राप्त किया । वे दर्शन के अत्यन्त जटिल सूत्रों की अत्यन्त बोधगम्य रीति से व्याख्या करने में सक्षम थे ।

प्रेमानन्द—जो मध्ययुग के महानतम कवि थे—आख्यान विधा के जनक थे । वे जनता को पौराणिक कथाएं संगीत के साथ नाटकीय रूप से सुनाते थे । विषय का आधिकारिक विवेचन, भाषा पर उनका अधिकार, मानव-प्रकृति के बारे में उनकी समझ और उसका कलात्मक प्रस्तुतीकरण, पौराणिक कथाओं तक के सम्बन्ध में समसामयिक सामग्री का उपयोग और जनता की अभिरुचि को संतुष्ट करने की उनकी कला के कारण वे अत्यन्त लोकप्रिय हुए ।

इसका यह अर्थ नहीं कि समस्त मध्ययुगीन कविता धार्मिक आग्रहों से सिक्त थी ।

जैन और गैर-जैन दोनों ही प्रकार के कवियों ने कथा प्रधान कविताएं लिखीं । उन्होंने संस्कृत और प्राकृत कथाओं के अलावा लोक-कथाओं का भी उपयोग किया । जैनियों में न्यायसुन्दर और गैर-जैनियों में सामल लोकप्रिय कथा गायकों में थे । उनकी कहानियां श्रोताओं को एक ऐसे लोक में ले जाती

हैं, जहां धार्मिक और नैतिक नियमों का कोई प्रभाव नहीं है और इसलिए उनका मनोरंजन की दृष्टि से अधिक महत्व था।

19वीं सदी में ब्रिटिश शासन के आगमन के बाद कविता-साहित्य ने नयी प्रगति की। नर्मद और दलपत ने, जो नयी कविता के अग्रदूत थे, अनगिनत प्रकृति-सम्बन्धी, उपदेशात्मक, देशभक्तिपूर्ण, प्रेमाश्रित कविताएँ लिखीं और इस प्रकार कविता का क्षितिज विस्तृत बनाया। दोनों ने सामाजिक सुधारों का प्रचार करने के लिए कविता विधा का उपयोग किया। यद्यपि उनकी कविताएँ कलात्मक दृष्टि से कमज़ोर हैं, फिर भी उन्हें कविता क्षेत्र को व्यापक बनाने का श्रेय दिया जाना चाहिए।

1886 में नरसिंहराव का "कुसुममाला" प्रकाशित हुआ। वह प्रगीतात्मक कविताओं का संग्रह था। यह प्रथम प्रगीत-संग्रह था, जो अंग्रेज़ी कवियों के सीधे प्रभाव में रचा गया था। यह इस बात का संकेत था कि कविता का रसास्वाद एक प्रबुद्ध वर्ग तक सीमित होने लगा था और कविता उच्च वर्गों का खेल बनने लगी थी। यही कारण था कि गांधी जी ने 1920 में अहमदाबाद के गुजराती साहित्य सम्मेलन में नरसिंहराव आदि सम-सामयिक कवियों का आह्वान किया था कि वे जनता के लिए कविता लिखें। नरसिंहाराव पश्चिमी ढंग की प्रगीतात्मक विधा से परिचित कराने वालों में अग्र-दूत थे।

एक देशी रियासत के राजा 'कलापी' अन्तर्मुखी कवि थे और उन्होंने व्यक्तिगत समस्याओं को रूपक शैली में प्रस्तुत किया। वे अत्यन्त लोकप्रिय हुए। उन पर सूफ़ी और ग़ज़ल काव्य रूपों का भी प्रभाव था।

कान्त (मणिशंकर भट्ट) ने खण्डकाव्य नामक एक नया रूप प्रारम्भ किया जिसमें कथा-तत्व, प्रकृति-चित्रण मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व तथा विभिन्न भावों का सुखद सम्मिश्रण था। वे पहले गुजराती कवि थे जिन्होंने कविता के माध्यम से मानव-नियति निर्धारित करने वाली शक्ति के विरुद्ध विद्रोह किया।

दलपत के पुत्र नानालाल अपने समय के प्रमुखतम प्रगीतकार थे। उनके शब्दों की लय, उनके बिम्ब, एक नये रूप में पुरानी गरबी को पुनर्जीवित करने में उनके सफल प्रयास, और सौन्दर्य, जीवन के रोमांस तथा लालित्य गौरव विषयक उनकी दृष्टि से उनकी काव्य-गरिमा को योगदान मिला। वे पहले कवि थे जिन्होंने गांधी जी की राष्ट्र-सेवाओं की सराहना करते हुए एक कविता लिखी। उन्होंने मुक्त-छंद में भी प्रयोग किये।

बलवंतराय ठाकौर विषय-वस्तु और अभिव्यंजना दोनों के ही क्षेत्रों में अपने प्रयोगों के लिए प्रसिद्ध हुए। उन्होंने ऐसे विषयों पर कविता लिखकर, जिनको तुच्छ समझा जाता था, कविता-रचना के विषयों का क्षेत्र विस्तृत

किया। उन्होंने नये कविता-रूपों को विकसित किया जो अगली पीढ़ी के कवियों के लिए प्रेरणाप्रद बन गये।

1915 में महात्मा गांधी दक्षिणी अफ्रीका से भारत लौटे और उन्होंने साहित्य समेत सभी क्षेत्रों में नये जीवन-मूल्य विकसित किये। उन्होंने साहित्यकारों का आवहान किया कि वे जनता के लिए लिखें और इसके फलस्वरूप गुजराती साहित्य में एक नये युग का उदय हुआ जिसको गाँधी युग कहा जाता है। इस युग के कवियों ने दीनहीनों की दुखद अवस्था के विषय में लिखा, समाज-व्यवस्था में परिवर्तन की माँग की, भारतमाता की मुक्ति के संघर्ष के गौरव-गीत गाये और महात्मा गांधी केन्द्रीय शक्ति बन गये। न केवल गांधी जी के विषय में कविताएँ लिखी गयीं, बल्कि चूंकि बुद्ध और ईसा भी अहिंसा के प्रचारक थे, इसलिए वे भी पूज्य बन गये और उनके विषय में भी कविताएं लिखी गयीं। उमाशंकर, सुन्दरम्, शेष, स्नेहरश्मि, मेघाणी, श्रीधराणी, मनसुख लाल झवेरी, बेटाई आदि इस युग के प्रमुख कवि थे। गांधी जी के जीवन की अनेक घटनाओं जैसे उनके दांडी अभियान, अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन, गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए जाना, उनकी नौआखली की तीर्थयात्रा और उनके बलिदान आदि पर अच्छी कविताएं रची गयीं। चूंकि गांधी जी आस्तिक थे और उनकी शिक्षाएं भी ऐसी ही थीं, इसलिए इस काल में गुजराती कविता ने भक्ति की ओर मोड़ लिया। नयी भक्ति धारा के अग्रदूत 'सुन्दरम्' को माना जा सकता है...वे अब श्री अरविन्द आश्रम में रहते हैं।

इस सदी के चौथे दशक में प्रगतिशील साहित्य के लिए एक कम्युनिस्ट प्रेरित आन्दोलन अस्थायी रूप से चला और मेघाणी, भोगी लाल गांधी स्वप्नस्थ आदि ने वर्ग संघर्ष तथा धर्म के प्रति घृणा-भाव प्रतिपादित किया। दूसरा महायुद्ध छिड़ने के बाद यह प्रभाव पीछे पड़ गया।

उमाशंकर जोशी ने टैगोर की संवाद कविताओं से प्रेरणा प्राप्त कर, अपनी दो कृतियों, "प्राचीन" और "महाप्रस्थान" की संवाद-कविताएं रचकर गुजराती कविता को समृद्ध किया। उन्होंने इन कविताओं में पौराणिक घटनाओं की नयी व्याख्या की, जो यद्यपि मूल से संगत हैं, फिर भी मिथकों के पात्रों पर नया प्रकाश डालती हैं।

सन् 30 के बाद के दशक में गुजराती विद्यापीठ के कुछ छात्रों को उच्च शिक्षा के लिए शान्तिनिकेतन भेजा गया और जब वे लौटे तो उन्होंने गुजराती कविता को टैगोर के रहस्यवाद, बिम्ब-विधान, काव्यात्मक लय और विचार धारा से पुष्ट किया। टैगोर ने जिनको प्रभावित किया, उनमें हैं राजेन्द्रशाह, स्नेहरश्मि, मेघाणि, प्रह्लाद पारिख, कृष्ण लाल श्रीधराणी आदि।

स्वातंत्र्योत्तर काल में कविता की अवधारणा में आमूल चूल परिवर्तन दृष्टि-गोचर होता है। आज का कवि अधिक अंतर्मुखी है, उसने खिड़कियां बन्द कर ली हैं, बाह्य जगत पर वस्तुगत दृष्टि डालना स्वीकार कर लिया है और या तो छिन्नाशा के कारण, या स्वतन्त्र भारत की अपनी धारणा के चकनाचूर हो जाने के कारण, या अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव के कारण, या अति-यथार्थ-वादी दृष्टिकोण के कारण या टी० एस० इलियट आदि पश्चिम के साहित्यिक चिन्तकों की कविता सम्बन्धी अवधारणाओं के प्रभाव के कारण उनकी कविता अधिकाधिक दुरूह होती जा रही है। नये कवियों ने पुराने बिम्बों और प्रतीकों को तिलांजलि दे रखी है और उनके स्थान पर ऐसे नवीन प्रयोग किये हैं जो अपरिचित, अरुचिकर और असह्य प्रतीत होते हैं। कभी-कभी कविता ज्यामितीय आकार में लिखी जाती हैं। इसमें छिन्नाशा और उपचेतन स्थिति में अकेलेपन की भावना व्यक्त की जाती है, भगवान को, परम्पराओं को, नैतिक और सौंदर्य-परक तथा सामाजिक मूल्यों का मुंह चिढ़ाया जाता है, और शाश्वत के विपरीत क्षणजीवी तत्वों को प्रधानता दी जाती है। वह आदर्श से अधिक यथार्थ के निकट पहुंचती है। स्वातंत्र्योत्तर काल की इस नयी कविता के प्रकाश-स्तम्भ हैं सुरेश जोशी, गुलाम मुहम्मद शेख, हरीन्द्र दवे, चिनू मोदी, ज्योतिष जानी, सीतांशु, नलिन रावल, आदिल मंसूरी आदि।

किन्तु स्वातंत्र्योत्तर काल में परम्परावादी कविता धारा भी उतनी ही सशक्त है जितनी की नयी धारा। भगवान के प्रति भक्ति, प्राकृतिक सौन्दर्य, नैतिक मूल्यों का गौरव-गान, आदर्शवाद, प्रेम-भाव की अभिव्यंजना के लिए राधा और कृष्ण के प्रतीक आदि भी आज की कविता प्रवृत्तियों में बहुल हैं। इस धारा के कवियों में राजेन्द्र शाह अत्यन्त अग्रगण्य हैं। उन्होंने नये प्रतीकों और बिम्बों के सहारे उपनिषदों का दर्शन व्यक्त किया है और सिद्ध किया है कि कविता दर्शन को कितना सौन्दर्यवान बना सकती है। उनका दृष्टिकोण सार्वभौमिक है और वे शब्द-शिल्पी हैं। उनका ग्राम-गीतों और प्रकृति-गीतों पर भी अधिकार है। अन्य परम्परावादी कवि हैं निरंजन भगत, उषनस्, जयन्त पाठक, बालमकुन्द दवे, प्रजाराम रावल, उमाशंकर जोशी, करनदास मणेक, मकरंद देव आदि।

इस प्रकार नरसी मेहता से लेकर आदिल मंसूरी तक गुजराती कविता विषय-वस्तु और शिल्प में समृद्ध होती गयी है। उसने नये विचारों को स्वीकार किया है, परन्तु पुरातन में जो कुछ श्रेष्ठ है, उसको तिलांजलि नहीं दी है। भक्ति-कविता से अति-यथार्थवादी कविता तक उसका अभियान सौन्दर्य से अधिक सौन्दर्य तक बढ़ता रहा है।

मैं जागा तो……

नरसी मेहता

मैं जागा तो, पाया सब निस्सार जगत में,
बड़े चटपटे, लगे ऊंघ में, सारे हास-विलास ।
सभी चित्त-चैतन्य-क्रियाएं मात्र उसी की,
स्वयं ब्रह्म हंसता है, करता स्वयं ब्रह्म परिहास ।
पंचभूत परब्रह्म-जनित प्रकटे हैं जग में,
वे हैं मात्र अभिन्न अंग अणु-अणु के निश्चित ।
फूल और फल होते हैं वृक्षों की संतति,
शाखें नहीं तने से अलग कहीं से निष्कृत ।
वेदों ने गाया, श्रुति-स्मृति ने किया प्रामाणित,
नहीं कनक और कुंडल में कोई भी अंतर ।
साज-संवार कर नाम रूप दे दिया अलग से,
किन्तु मूलतः हेम हेम ही रहा निरंतर ।
हरि इच्छा से जीव ब्रह्म हो गये अलग हैं,
किया चौदहों लोकों का उसने ही सर्जन ।
कवि नरसिंह कहें, केवल तू ही है जिसके,
आराधन से संत मुक्ति करते हैं अर्जन ।

पद

अखौ

अगोचर को गोचर कर प्राप्त हुआ मुझको आनन्द अपार,
प्रपंचों-परे पूज्य महाराज, वही हैं, ब्रह्मा करुणागार,
वहीं हैं मेरे शिव भुवनेश, विष्णु हैं सबके पालनहार,
किया श्रुतियों ने जिनका गान, वही हैं जीवन के शुभ सार।
वही हैं चेतनता धनराशि शून्य में सौहें रूप निखार,
न वाणी उनके वर्णन योग्य, न लघु विराट उनके आकार;
पूर्ण सुस्थिर अविनाशी रूप, कि वे काल-स्थिति-सीमा से पार,
न वे हैं अंग-भंग भयभीत, गगन हैं वे अनन्त आगार।
उन्हें जानो छूटे जंजाल आत्म से पाओ साक्षात्कार,
न कोई क्रिया, न कोई फल, सर्वव्यापी हैं वे साकार;
असीम में ससीम कर लोप चेतना होती उनमें लीन,
उन्हीं का तन-मन बनता अंग न कोई दाता, कोई दीन।
प्राप्त करता बहु सुख कल्याण सभी कुछ खोकर आत्मावंत,
उदय होता है स्थायी सूर्य, प्रात-संध्या क्रम का कर अंत;
अखो कवि कहता है सानन्द यही अनुभव है केवल साध्य,
नित्य पाऊं यह परमानन्द साध है मेरी, ओ आराध्य

कृष्ण - सुदामा

प्रेमानन्द

(कृष्ण के सहपाठी सुदामा बड़ी दीन-हीन अवस्था में हैं। जीवनोपार्जन का कोई साधन नहीं, और कई बच्चे हैं जिनका पेट भरना भी दूभर है। उनकी पत्नी उन्हें भगवान कृष्ण के पास जाने का और उनसे कुछ धन लाने का आग्रह करती है ताकि परिवार अपने दिन काट सके।)

ज्ञान तुम्हारा मैं क्या जानूं, मैं क्या बूझूं, ओ ऋषिराज हमारे।
रोते हैं ये बालक उनको अन्न चाहिए, लागूं पाँव तुम्हारे ॥ 1 ॥
अन्न बिना कोई जी सकता है क्या जग में, ओ ऋषिराज हमारे।
योगीश्वर हरि भक्त तपस्वी सबको देखा, लागूं पाँव तुम्हारे ॥ 2 ॥
अन्न बिना तो नहीं सूझता भजन-भाव भी, ओ ऋषिराज हमारे।
जीव अन्न से ही सुस्थित है इस दुनिया में, लागूं पाँव तुम्हारे ॥ 3 ॥
शिव के यहाँ अन्नपूर्ण का शुभ निवास है, ओ ऋषिराज हमारे।
अक्षय पात्र सदा रखते हैं सूर्य-देवता, लागूं पाँव तुम्हारे ॥ 4 ॥
कामधेनु तत्पर करती ऋषिराज की सेवा, ओ ऋषियों हमारे।
फिर हैं आप कहां के कोई अजब निराले ? लागूं पाँव तुम्हारे ॥ 5 ॥
सब देवता भोगते सेवा कल्पवृक्ष की, ओ ऋषिराज हमारे।
पाते हैं वे मनवांछित आहार सदा ही, लागूं पाँव तुम्हारे ॥ 6 ॥
अन्न बिना सूझता नहीं है धर्म किसी को, ओ ऋषिराज हमारे।
अन्नाधार टिका है यह संसार हमारा, लागूं पाँव तुम्हारे ॥ 7 ॥
उद्यम निष्फल नहीं जायगा, मैं कहती हूँ, ओ ऋषिराज हमारे।
जाओ हरि के पास, कामना पूरी होगी, लागूं पाँव तुम्हारे ॥ 8 ॥
मिट जायेगा यह चिर दारिद्र्य हमारा, ओ ऋषिराज हमारे।
वे धरणीधर अन्तर्यामी सब कुछ दानी, लागूं पाँव तुम्हारे ॥ 9 ॥
वे समूल ही नष्ट करेंगे दुख-दरिद्रता, देंगे हमें सहारा।
प्रभु, तुम शीघ्र द्वारका जाओ, मैं मानूंगी चिर आभार तुम्हारा ॥ 10 ॥

कृष्ण - सुदामा वार्ता

प्रमानन्द

(सुदामा द्वारका पहुँचते हैं और वहां श्रीकृष्ण उनका राजसी स्वागत करते हैं। श्री कृष्ण उनके पारिवारिक जीवन के विषय में अनेक प्रश्न पूछते हैं और उनकी क्षीणकाय अवस्था का कारण जानना चाहते हैं।)

प्रारम्भ की गोविन्द ने यूं बात, "मेरे मित्र प्यारे।
मैं जानने को हूं बड़ा आतुर तुम्हारे हाल सारे ॥ 1 ॥
तुमको हुआ है क्या, व्यथा क्या है, तुम्हें चिन्ता कहां की ?
सब साफ कहना, मत छिपाना तुम सनेही हो हमारे ॥ 2 ॥
सद्गुरु मिला है क्या तुम्हें कोई कि जिसने कान फूंका।
कुछ मंत्र ऐसा, जो लिया वैराग्य तुमने, त्याग धारे ॥ 3 ॥
क्यों कर रहे हो क्षय यह तन विकटतम साधना में।
तुम क्षीण होते जा रहे हो क्यों बताना ओ दुलारे ॥ 4 ॥
क्या है तुम्हारा शत्रु कोई जो तुम्हें संत्रस्त करता।
या चोर है जिसने सभी कुछ छीनकर सब दुःख उभारे ॥ 5 ॥
क्या बात है जो धातु का सद् पात्र बिन, लेकर कमण्डल।
आये यहां तुम ओ पुराने मित्र क्यों नंगे-उघारे ॥ 6 ॥
पिछले जन्म के कर्मवश क्या सुख नहीं जग-सुलभ तुमको।
या सूखते ही जा रहे हो तुम असह गृह-कलह मारे ॥ 7 ॥
या पेट भरने के उचित साधन नहीं जो क्षीण काया
तुम हो रहे हो, क्लेश क्या है ओ पुराने मित्र प्यारे ॥ 8 ॥
इस प्रकार सुदामा ने नवाकर शीश उत्तर दिया सादर।
"तुमसे नहीं कुछ भी छिपा है हृदय-वासी तुम हमारे ॥ 9 ॥
प्रभु से बिछुड़, दर्शन बिना मैं था दुखी व्याकुल व्यथित मन।
तन पुष्ट अब हो जायगा हरि दर्शनों ने दुख निवारे" ॥ 10 ॥

सन्त पुरुष

दयाराम

सन्त पुरुष बस उसे जानिए जिसमें सद्गुण खान रे,
निन्दास्तुति ना करे किसी की सब पर दृष्टि समान रे। सन्त समा······
जिसके दर्शन मात्र हरें सब छल प्रपंच का भान रे,
स्मरण कराये सदा कृष्ण का मेटे सब अज्ञान रे। सन्त पुरुष······
सकल चराचर में जो देखे सदा बसा भगवान रे,
सर्व जगत का मंगल माने लेश न हो अभिमान रे। सन्त पुरुष······
गुण गाये जब गोविन्द का पुलकित तन हो जाय रे,
आंखों बहे प्रवाह प्रेम का हरखै हृदय सँधाय रे। सन्त पुरुष······
पर दुख से जो सदा पसीजे करे न कोई द्रोह रे,
इन्द्रियजित हो सदा, न बांधे उसको माया मोह रे। सन्त पुरुष······
नन्दलाल की लीला में जो सदा लगाये लगन रे,
पर उपकार प्रीत में पगकर रहता प्रसन्न बदन रे। सन्त पुरुष······
नटवर झलके उनके दृग में करुणा-कांति प्रकोष रे,
शांतचित्त, सन्तोषी, देखे नहीं किसी के दोष रे। सन्त पुरुष······
प्रेम करे जो सदा सभी से, अति उदार हो चित्त रे,
भजे अनन्य भाव से हरि को लोभे कभी न वित्त रे। सन्त पुरुष······
हरि गुरु वैष्णव जन के प्रति जो रखे भक्ति का ख्याल रे,
दृढ़ विश्वास, दीनता से जो बोले बचन रसाल रे। सन्त पुरुष······
सेवा स्मृति बस सत-संग की और न कुछ आसक्ति रे,
लेश कपट ना कभी हृदय में बस हरिपद की भक्ति रे। सन्त पुरुष······
विट्ठलेश का स्मरण व्यसन हो, मुख पर हरि का नाम रे,
दास सदा ऐसे सन्तों का दयाराम बेदाम रे। सन्त पुरुष······

अतिज्ञान

कान्त

(पांच पाडंवों में चौथे सहदेव भविष्य ज्ञानी थे, किन्तु यह ज्ञान उन्हें वरदान के बजाय अभिशाप बन गया, क्योंकि कृष्ण ने उनसे वचन ले लिया था कि जब तक उनसे पूछा न जाय, वे भविष्य के घटना-ज्ञान को प्रकट न करें। कविता में उनके अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त किया गया है।)

अवलोका उदग्रीव दृष्टि, नभ, दिखा शून्य का लास,
कालिख पुती दिशाएँ देखीं, लगा अमंगल पास,
धरती पर छा गयी अजब विकराल भयावह रात,
नगर-डगर फैली अफवाहें फुस-फुस फैली बात,
सिर खुजलाते इन्द्रप्रस्थ-जन करते सोच-विचार,
एक बात के विषय सभी पर शंका हुई सवार।

दुर्योधन प्रेषित आया था दूत एक इस काल,
लगी दुष्टतापूर्ण सभी को उसकी दुलकी चाल,
अंधी घनी रात में बढ़ता चला गया वह दूत,
गुप्त रीति से राजमहल की ओर, न था आहूत।
शीश हिलाकर सब करते थे निज आशंका व्यक्त,
अटकल सभी लगाते, जागे थे संदेह सशक्त।

नगर-वासियों के मन में थे जो सन्देह असाध,
वे निर्मूल न थे, उनके पीछे थे तर्क अगाध,
यदि आया था धर्मराज को वह करने आहूत,
एक अनिष्ट प्रयोजन से ही प्रेषित था वह दूत,
किया निमंत्रण ज्येष्ठ यशस्वी पाण्डव ने स्वीकार,
बुला बंधुओं को वे बैठे करने सोच-विचार।

गिने गये शिशु के समान, सहदेव, उपेक्षा योग्य
उन्हें बुलाया नहीं, न बूझी वार्ता उनके योग्य,
अन्य तीन भाई जा पहुँचे धर्मराज के कक्ष,
परम दुखी थे वे अन्तर में भारी उनके वक्ष,
बैठे थे तब कनिष्ठ भ्राता द्रुपद-सुता के पास,
सती नारि ने देखा उनका मुखड़ा घना उदास ।।

था कुमार को भूत-भविष्यत् वर्तमान का ज्ञान,
निरख रहे थे अंत : दृग से वे सब नियति विधान,
उन्हें दिखी उस द्यूत-पटल पर निजी पक्ष की हार,
होगा मान द्रौपदी का क्षय, नियति यही इस बार ।
देख समझ कर सब कुछ, फिर भी विवश मौन थे बैन ।
पाबंदी के द्वन्द्वों से थे वे आहत बेचैन ।

"हाय ! नहीं मैं कुछ कह सकता, कर ना सकूं बचाव,
बस अशक्त की भाँति सहूंगा आँखों का जल-श्राव,
वचन दिया जो वही बन गया पीड़ा प्रद अभिशाप ।
भूत भविष्यत् देखूं, भोगूँ केवल अपने आप,
हा धिक् ! हा धिक् ! मैं कृतघ्न हूं, बंधु हुए हैं गौण,
घटा घिर रही है अनिष्ट की, इस क्षण मैं हूँ मौन ।"

इस विचार के आघातों से फूटी लोचन धार,
संज्ञाहीन शरीर हो गया सब चेतना बिसार,
तभी उन्होंने कम्पित कर से गहा प्रिया का हाथ,
आलिंगन में बाँध, वक्ष पर टिका दिया निज माथ,
क्षण भर बाद छुड़ाकर बंधन बोले वे सुकुमार,
"प्रिये, मुझे है नहीं तुम्हें अब छूने का अधिकार ।"

"जो हो ज्ञान सर्वथा निष्फल, उसका क्या उपयोग,
टाल नहीं सकता मैं होनी, फिर मैं हूँ किस योग्य,
चिन्ता सदा सताती रहती मुझ को केवल एक,
एक मात्र मैं ही दु:ख —भोगी यद्यपि बंधु अनेक ।

"रजनी भर सजनी ! मैं तड़पूं काटूं सारी रात,
फूली पलकें, किन्तु न देती नींद घड़ी भर साथ,
तब मैं सहलाता हूँ बैठा तेरे केश-कलाप,
निरख सुखद मुख-चन्द्र निरंतर बिसराता हूँ ताप ।"

इतना ही कह पाये थे, वे बिंधा शीश में शूल,
दाबा मस्तक, पर हो पायी नहीं पीर निर्मूल,
हृदय विदारक चीख मारकर बोल पड़े वे, "हाय।
कोई नहीं विकल्प, करूँगा अंतिम एक उपाय" ।।

कुछ पग बढ़कर हाथों में ली सुरा-सुराही थाम,
ओंठ दबाकर, ढाल उन्होंने लिया सुरा का जाम,
झटपट डाल कंठ में प्याला खाली किया तुरंत,
होश-हवास गँवा कर बैठे चेतनता का अंत,
सती गिरी शय्या पर, उसको गंध मात्र थी गाज,
जाम लगाये छाती से थे पड़े ज्योतिषी राज।

आपकी याद

कलापी

मेरी नज़र जाती जहां भी याद आती आपकी,
आँखें बहातीं अश्रु, यादें उमड़ आतीं आपकी ।1।
लाली कपोलों पर प्रिया के, लालिमा है आपकी,
हर गुल चमन पर शुभ निशानी जगमगाती आपकी ।2।
मैंने जहां भी उमगती देखी चपल मीठी लहर,
उस पर मुझे नाज़ुक सवारी लगी आती आपकी ।3।
देखी सितारों की भरी महफिल गगन में दमकती,
मुझको लगी थी कचहरी-सी दमदमाती आपकी ।4।
हर रात मेरे रक्त में जो तार से झनझन हुए,
उसकी लयों को मधुरतम वीणा गुंजाती आपकी ।5।
काली घटा छा ले, उठा ले शत्रु भी तलवार को,
मैं हूँ निडर जब ढाल बनकर याद आती आपकी ।6।
डरता नहीं हूँ मैं बुराई से, जगत के पाप से,
जब याद-गंगा की लहर पावन बनाती आपकी ।7।
बेज़ार था जब मैं सितम से, आस खो बैठे सभी,
जिसने दिया जीवन मुझे वह मधु सुरा थी आपकी ।8।
जब-जब मिलाते हाथ प्रेमी प्रेम की सौगन्ध खा,
अहसान-रहमत आपकी, वह प्रेम पाती आपकी ।9।
घर छोड़कर मुँह मोड़कर जाने लगे जब प्रिय सफर पर,
आँसू बहे तो उस समय बिछुड़न सताती आपकी ।10।
मैं अकेला ही सही रोऊँ नहीं इस राह में,
जब आशिकों की राह की है राहदारी आपकी ।11।

नूतन-पुरातन, दुःख-सुख की बदल जाती हैं छटाएँ,
बस बदलती ही नहीं रंग याद प्यारी आपकी ।12।
सब अनुभवों को भूल जाऊँ, पुस्तकों को बाँध दूं ।
कुछ भी नहीं है चाह, मुझ को याद काफ़ी आपकी ।13।
किस्मत कराती भूल तो भूलूं सकल संसार को,
आखिर अकेली ही बहुत है याद थाती आपकी ।14।

दही

नान्हालाल

हलके हाथों दही बिलोना,
बात नहीं यह दही बिलोने की, ओ मेरे लाल ।
ढरक जायगा घड़ा, छटक से झोली भीगेगी,
टूट जायेगी मुक्ता-माला गुरियाँ बिखरेंगी,
व्यर्थ जायगा गोरस यदि यह गगरी टूटेगी,
ढब करते हो चीर भिगोने की, ओ मेरे लाल ।
हलके हाथों दही बिलोना············

छलक रही है लघु गगरी में सारी जमुना जी,
इतनी दूर मथानी की अब डोर न रखना जी,
नन्हीं गगरी अमृत भरी हौले उघारना जी,
खा लो जी भर, तृप्ति न होने की, ओ मेरे लाल ।
हलके हाथों दही बिलोना·········

पीहर का पुराना घर

बलवन्त राय ठाकोर

बैठी पलंग पर चक्कर दे सब कोठों और अटारी के,
खुल गये पटल मृदु स्मृतियों के, वे दिन भी थे मुझ नारी के।
वह माँ की चिर मुस्कान, मधुर ओजस्वी मूर्ति पिता जी की,
सुनती दादी से परी-कथा वार्ताएं संझा-बाती की।
गूँजे अतीत के स्वर मुझ में निर्जन स्थल फिर आबाद लगे,
दृग-रंजक रीति-रिवाज मधुर साकार हुए, साक्षात जगे।
नन्हें से बहिन और भाई प्रकटे, अदृश्य फिर हुए अरे,
बदले उनके कद और आयु ज्यों परी बदलती रूप धरे।
पर सौ स्मृति-चित्रों के ऊपर व्यापी बस एक मूर्ति सुन्दर,
जो छाई हुई सदा रहती है मेरे मन-मस्तिष्क चक्षु पर।
वेदी के फेरों के क्षण से जो आज तलक मुझ पर छाया,
मेरे कौमार्य दिनों में भी वह बाल रूप धर कर आया।
बैठी पलंग पर देख रही मैं चित्र फलक बीते दिन के,
ओ नाथ ! तुम्हीं से रंजित हैं सब पल-छिन मेरे जीवन के।

प्रभु वर दो ।

सुन्दरम्

मेरी अँधियारी रातों में प्रभु भर दो तारों का उल्लास
चंदा सी हों रातें उज्ज्वल, दिन पायें सूरज का प्रकाश ।
भर जाय सुगन्धों से मेरे
प्रभु ! उपवन की हर पुष्प-डाल,
भर जायँ वृक्ष मेरे वन में, धरती पाये नभ का प्रभास ।
प्रभु ! प्रजा पाय खलिहान भरे,
नदियाँ हों पूरित शुचि जल से,
सागर में हों लहरें अपार, जीवन में हो कल्लोल लास ।
बस्ती बाहर पोखर शोभे,
गायें हों प्रचुर दूध वाली
प्रभु ! मेरे आँगन में चंचल बालक भर दें निज धवल हास ।
प्रभु ! मेरा मन कर दो समृद्ध
प्रेयसि का मधुर प्यार देकर,
मेरा दिल पाये दिल उदार, आत्मा में हो राम का वास ।

आखिरी कटोरी

झवेरचन्द मेघाणी

(यह कविता उस समय लिखी गयी थी जब गांधी जी 1931 में गोलमेज़ परिषद् में भाग लेने के लिए लन्दन जा रहे थे।)

यह आखिरी कटोरी विष की पीना आह ! उदार, ओ बापू !
सागरपायी ! अंजुरि भर है लेना गले उतार, ओ बापू !
हर जन का विश्वास किया तुमने जीवन भर,
धूर्त दगाबाज़ों का तुमने दर्प लिया हर,
दुश्मन के सामने शीश कर देना हँसकर,
यह अन्तिम तकिया, जिस पर सिर रखना है चुपचाप, ओ बापू !
गला भले कट जाय किन्तु रिपु-मन लेना भाँप, ओ बापू !
यह नवयुगी असुर-सुर का है सागर-मन्थन,
वे अन्धे हैं रत्नमात्र के जो कामीजन,
ओ शिव ! सिवा तुम्हारे कौन करे विष-मर्दन ?
गरल गले तक आया, तब भी जाओ तुम तत्काल, ओ बापू !
जाओ, तुम हो सौम्य-रौद्र औ' कोमल और कराल, ओ बापू !
कह ले जग, क्यों हुआ योग योगी का निष्फल ?
कैसे सूखा सिंधु, जलद क्यों खो बैठा जल ?
खो बैठे हैं सूर्य-चंद्र क्यों आभा उज्ज्वल ?
दुखी देख हमको, न ठिठक कर करना सोच विचार, ओ बापू !
हमने सहा बहुत, सह लेंगे अभी और दुख-भार, ओ बापू !
डंडे-कोड़े सह लेना ज़ब्ती जुर्माना,
जीवित कब्रिस्तानों सी जेलों में जाना,
कभी गोलियों की खूनी बौछारें पाना.

इनके हम अभ्यस्त हो गये हमें न भय अब ज्ञात, ओ बापू !
हम फूलों से कोमल, तुमने बना दिया इस्पात, ओ बापू !
भले वहां से तुम कुछ लाओ या ना लाओ,
पद चूमेंगे, चाहे खाली हाथों आओ,
तुमको गले लगायेंगे, तुम निर्भय जाओ,
दुनिया का सामना करो तुम विजय अभी है शेष, ओ बापू !
देना हार्दिक हमदर्दी का जनगण को संदेश, ओ बापू !
जग उलाहना देगा : बड़ा आत्मज्ञानी है,
नहीं गुमानी ने निर्बलता पहचानी है,
जग-प्रेमी ने जग की कुगति नहीं जानी है,
आज तुम्हारे लिए विकल है रोगी मनुज समाज, ओ बापू !
वह तुमसे उपचार माँगता, बड़ा तुम्हारा काज, ओ बापू !
तुम जाओ, मदमस्त जान बुल को जा नाथो,
मरनहाल जगती पर अमृत जल बरसा दो,
सात सागरों के ऊपर सशक्त पुल बांधो,
घने वनों के पथ को देना अपनी आभा-कांति, ओ बापू !
पीठ थपथपा हिंस्र सिंह को करना बस में शांत, ओ बापू !
बढ़े चलो, शुभ पंथ प्रदर्शक अपना है भगवान, ओ बापू !
पी लेना आखिरी कटोरी विष की, यही विधान, ओ बापू !

पुण्य भारत भूमि

राजेन्द्र शाह

जयति जय जय पुण्य भारत भूमि, सागर, शुभ्र अम्बर।
जयति जय जय ऋतु नियंता, जय विधाता, शंभु शंकर।

जय उदयगिरि पर मनोहर तेजपूरित
उदित स्वर्णिम सूर्य हे।
जय समुज्ज्वल चाँदनी से धवल यामिनि
विधु सुधारस पूर हे।

जयति जय जय दिव्य सज्जन, सन्त द्युतिधर, मुदित किन्नर।
जयति जय जय पुण्य भारत भूमि, सागर, शुभ्र अम्बर।

सत्य, पावन चित्त, धार्मिक वृत्तियाँ
निर्मल निरालस कर्म हे।
सत् समन्वित बुद्धिमन, निश्शंक
संग-निसंग, प्रेमी मर्म हे।

जयति जय जय पूर्ण मोहोन्मुक्त जीवन, सुगति मंथर।
जयति जय जय पुण्य भारत-भूमि, सागर, शुभ्र अम्बर।

जयति जय-जय निम्न-उन्नत, क्षुद्र और
विराट संतति सर्व हे।
जयति भूत-भविष्य-अनुक्षण मोदपूरित
नित्य नूतन पर्व हे।

जयति जय जय गत-अनागत, क्षण विवर्तन नित निरन्तर।
जयति जय-जय पुण्य भारत-भूमि, सागर, शुभ अम्बर।

चिड़ियाघर में एक सिंह देखकर

निरंजन भगत

वही छलांग, वही नख हैं,
वही तेज इसकी आँखों में, वही ओज है,
वही जनून भरा है ।
इसके वही दाँत पैने, वैसी ही प्यास खून की,
रोम-रोम वैसे ही पौरुष से परिपूर्ण
किन्तु है कहाँ, आह, इस जगह वन्य विस्तार ।
पिंजड़े में करके बंद तुम्हें हम सिखलायेंगे ।
इस समाज की कला-चातुरी, सुसभ्य जीवन,
तुम्हें देखकर मानव सारे
सीखेंगे पाशविक वृत्तियाँ सुसभ्य-वेश में ।

कृष्ण राधा

प्रियकान्त मणियार

यदि व्यापक आकाश कृष्ण है,
शुभ्र चांदनी राधा रे।
यदि अगाध जल ताल कृष्ण है
प्रमुद कुमुदिनी राधा रे।
यदि पुष्पित उद्यान कृष्ण है
मृदु समीर-वात राधा रे।
यदि पर्वत का शिखर कृष्ण है
उस तक का पथ राधा रे।
यदि पथगामी चरण कृष्ण हैं
चरण लेख है राधा रे।
यदि घन केश कलाप कृष्ण है
माँग रेख है राधा रे।
यदि आभामय दीप कृष्ण है
लौ प्रशस्त है राधा रे।
यदि मेरे ये नयन कृष्ण हैं
दृश्य वस्तु है राधा रे।

राजघाट पर

हसमुख पाठक

न तो पुष्प-गुच्छ के नीचे, न इतने दीर्घकाल तक
गाँधी जी कभी सोया करते थे ।

स्मृति

नलिन रावल

देखकर खिड़की की नक्काशी पर सांध्य किरणों का बुनाव
ऊन बुनती हुई बूढ़ी उंगलियां अचानक रुक गयीं,
चेहरे की झुरियों के जाल में यकायक कुछ मनोभाव राह खो बैठे,
पलकों के पहले झँपने और फिर ऊपर उठने के साथ-साथ
कांपती और सिहरती हुई आँखों की पुतलियां.. ...
आंखें अभी जमी ही थीं कि
पूछने लगी :
यह कौन है ?
किसने रख लिये हैं अंगार अपने ओठों पर ?
किसका रक्त यूं मुसकुराता है ?
नक्काशीदार खिड़की पर अँधेरा और उलझ गया,
ऊन बुनती हुई उँगलियाँ
यकायक कांप गयी,
और फिर जुट गयीं अपने काम में ।

गुजराती गद्य साहित्य : संक्षिप्त सर्वेक्षण

डा० चन्द्रकान्त मेहता

यद्यपि मध्ययुगीन गुजराती साहित्य में हमें माणिक्य सूरि कृत "पृथ्वी चन्द्र चरित्र" या स्वामी सहजानन्द कृत "वचनमृत्त" जैसी अच्छी गद्य कृतियां उपलब्ध हैं, फिर भी, उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से ही गद्य-साहित्य का वास्तविक अर्थ में जन्म माना जा सकता है। जो अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने वाले लोग पश्चिम के गद्य-साहित्य के सम्पर्क में आये, उन्हें स्वयं अपने गद्य-साहित्य को समृद्ध करने का ध्यान आया, जो अविकसित था।

नर्मद ने, जो इस क्षेत्र में अग्रगामी थे, ऐसे निबन्ध लिखना प्रारम्भ किया जिनको श्रोतागण के सामने पढ़ा जाना अभीष्ट था। उनके लिए निबन्ध एक साधन था और साध्य थी सामाजिक क्रांति। उन्होंने साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक विषयों पर निबन्ध लिखे। उनके निबन्धों में ओज और शक्ति थी, किन्तु उनमें शैली की दुर्बलता थी—शैली शिथिल और बिखरी हुई थी। उन्होंने आत्म-कथा और साहित्य का इतिहास अपरिपक्व रीति से लिखे। चूंकि उनके समय में कोई सुनिश्चित गद्य-मान नहीं था, इसलिए उन्हें नये शब्द और मुहावरे गढ़ने पड़े और पुराने शब्दों तथा मुहावरों को नये अर्थों से संपृक्त करना पड़ा। जीवन के अंतिम वर्षों की उनकी कृतियों में विषय-निरूपण और शैली दोनों में ही काफी सुधार दृष्टिगोचर होता है और ये दोनों ही पहले से अधिक स्पष्ट, सुगठित और तर्कसंगत तथा पहले से कम भावुकता-पूर्ण हो गयीं। उन्होंने नाटकों के क्षेत्र में भी हाथ डाला, मगर असफल रहे। उनके समकालीन दलपत भी निबन्धकार और नाटककार थे। दलपत का गद्य सीधा-सादा, सुगठित और तर्कपूर्ण था।

नर्मद से जो युग प्रारम्भ हुआ, वह समाज-सुधार युग कहा जाता है

क्योंकि लगभग सभी लेखक समाज-सुधार के आग्रह के साथ लिख रहे थे। नवलराम ने, जो श्रेष्ठ कोटि के आलोचक थे, साहित्यिक निबन्धों के अतिरिक्त पुस्तक समीक्षाएँ भी लिखीं। उनकी समीक्षाएँ विद्वत्तापूर्ण, निष्पक्ष और स्पष्टोक्तिपूर्ण होती थीं। उनसे उनके विचारों की स्पष्टता और भाषा पर अधिकार प्रकट होता है। उन्होंने साहित्यिक समालोचना के कुछ मानदण्ड भी स्थापित किये। नन्दशंकर अपने युग के प्रथम उपन्यासकार थे। "करण घेलो" उनका एक ऐतिहासिक उपन्यास है। उन्होंने उपन्यास विधा को सामाजिक सुधार का साधन बनाया। उनकी शैली दुरूह और बिखरी हुई थी और अनेक स्थानों पर वह अनावश्यक रूप से विस्तारपूर्ण और उपदेशात्मक थी। समाज-सुधारक महीपतराम विदेश यात्रा करने वाले पहले गुजराती थे। उन्होंने यात्रा-सम्बन्धी पहली पुस्तक की रचना की। इस प्रकार समाज-सुधार युग में गद्य की नींव डालने की दिशा में अच्छा काम हुआ।

1858 में बम्बई विश्वविद्यालय स्थापित हुआ और जिन लोगों ने वहां शिक्षा प्राप्त की, उन्होंने ज्ञान-गंगा में गहरे अवगाहा और जो साहित्य रचा, वह पांडित्यपूर्ण था। इसलिए इस युग को 'पण्डित-युग' नाम दिया गया। इस युग के विद्वानों द्वारा लिखे गये निबन्धों में दर्शन, धर्म, समाजशास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, साहित्य, शिक्षा आदि विषयों को लिया गया। उनकी गद्य-शैली बोझिल और आडम्बरपूर्ण थी। पूर्ववर्ती युग में रचे गये लोकप्रिय ढंग के साहित्य की तुलना में इस युग में रचा गया साहित्य अधिक गम्भीर, और गुण तथा परिमाण की दृष्टि से श्रेष्ठतर था। लेखकों का दृष्टिकोण अधिक व्यापक तथा विषय-प्रवेश अधिक तार्किक था। उन्होंने नये क्षितिजों को स्पर्श किया। इस युग के विद्वानों ने नाट्यकला, काव्यकला, हास्य, मैस्मरिज़्म, धर्म तथा शिक्षा पर कृतियाँ प्रस्तुत कीं। इस युग के लेखक दो विशेष खेमों में विभक्त थे। एक खेमा था उनका जो अतीत की श्रेष्ठ परम्पराओं का पुनरुत्थान करने का समर्थन करते थे। इनमें आनन्दशंकर, नान्हालाल, मुनिलाल नाभूभाई, मनसुखराम, इच्छाराम, नर्मदाशंकर आदि लेखक थे। दूसरा खेमा था जो पश्चिम की अच्छी बातों का अनुकरण करने का समर्थन करते थे, उनमें मुख्य थे रमणभाई, नरसिंहराव, बलवन्तराय आदि। वे एक-दूसरे से जूझते थे और कभी-कभी एक-दूसरे पर व्यक्तिगत प्रहार करने के लिए भी अपनी कलम का उपयोग करते थे। एक तीसरी प्रवृत्ति भी थी जो दोनों संस्कृतियों के संयोग का समर्थन करती थी, उसमें मुख्य थे गोवर्धनराम।

गोवर्धनराम विशेष उल्लेख योग्य है अपने महान उपन्यास "सरस्वतीचन्द्र" के कारण। वह एक क्लासिक कृति है जिसको न केवल गुजराती

साहित्य में बल्कि भारतीय साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त होना चाहिए। यह पहला उपन्यास था जिसमें सभी समसामयिक समस्याओं को स्पर्श किया गया और उनका हल भी प्रस्तुत किया गया। चूंकि उपन्यासकार विचारक थे, इसलिए उनकी यह कृति दार्शनिक बन गयी है। वे गद्य के धनी थे। संस्कृत-बहुल होने के कारण उनकी शैली बहुत बोझिल थी। किन्तु वे स्थानीय बोली के प्रयोग में भी कुशल थे। अपने परवर्त्तियों के लिए वे प्रेरणा-स्रोत बने। इस युग में कहानी-विधा का भी जन्म हुआ और वह काफी विकसित की गयी। लेखक अधिकांशतः सुशिक्षित श्रेणी के थे और उनका कथा-केन्द्र नगर होता था, इसलिए उनके पात्र इस सीमा के शिकार होते थे। ग्रामीण वातावरण छुआ ही नहीं गया। इस समय के कुछ कहानीकारों में हैं घनसुखलाल मेहता, मलयानिल, राममोहन सेन, हरगिरदास कांटावाला और रमणभाई।

1915 में महात्मा गांधी भारत आये और उन्होंने साबरमती आश्रम तथा गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की। कुछ समय बाद उनका प्रभाव सभी क्षेत्रों में पड़ने लगा और साहित्य पर भी पड़ा। उनके प्रभाव से रचा गया साहित्य गांधीवादी साहित्य और इस युग को गांधीवादी युग माना जाता है। इस काल में साहित्य शहरों से उठकर ग्रामों में, कल्पनालोक से हटकर यथार्थ जगत में और शिक्षित श्रेणी से हटकर आम जनता में पहुंच गया। पिछले युग में साहित्य एक विशिष्ट वर्ग के लिए होता था और अब वह जनता के विषय में और जनता के लिए होने लगा। पिछले युग में साहित्य पर विश्वविद्यालय की बड़ी छाप थी। इस युग में गुजरात विद्यापीठ साहित्यिक कार्यवाहियों का केन्द्र बन गया। नये मूल्यों का जन्म हुआ और भारतीयकरण पर और अधिक बल दिया जाने लगा। उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, नाटक, साहित्यिक आलोचना, यात्रा-विवरण, नदियों, संस्कृति, और दर्शन पर पुस्तकें, डायरियां, पत्र, लोक-साहित्य और जीवन-चरित्र प्रकाशित होने लगे और सारे गुजरात में अच्छे साहित्य की बाढ़ सी आ गयी।

यद्यपि कन्हैयालाल मुंशी इसी युग के हैं किन्तु वे उसके नये वातावरण से अछूते रहे और हालाँकि उनकी "ब्रह्मचर्याश्रम" जैसी पुस्तकों में गाँधीवादी सिद्धान्तों का मज़ाक उड़ाया गया है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि वे आंतरिक रूप से गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित हुए थे। यद्यपि वे इतने चतुर हैं कि उसको छिपा लेते रहे। अपनी "लोपामुद्रा" "विश्वार्थ" "भगवान परशुराम" जैसी कृतियों में उन्होंने पौराणिक और ऐतिहासिक परिवेश की आड़ में अस्पृश्यता-निवारण और सत्याग्रह के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। वे रोमांटिक हैं और इसलिए उन्होंने पुराने नैतिक मूल्यों को

ठुकराया और मुक्त प्रेम का समर्थन किया। उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों द्वारा एक नयी विधा 'नाटकीय उपन्यास' को जन्म दिया। वे सजीव चरित्र-चित्रण, आवेगपूर्ण घटनाक्रम और रूमानी शैली के जन्मदाता हैं। उन्होंने नाटक, निबन्ध, आत्म-कथा, जीवनियाँ, कहानियाँ और साहित्यालोचनाएँ भी लिखी हैं। उनके योगदान से गुजराती गद्य एक बड़ी हद तक समृद्ध हुआ है।

रमणलाल देसाई, जो उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, और समालोचक थे, गाँधीवादी युग के सच्चे प्रतिनिधि थे। उनकी "दिव्यचक्षु" और "भारेलो अग्नि" जैसी प्रतिनिधि कृतियों में अहिंसा, सत्याग्रह, अस्पृश्यता निवारण और बुराई पर अन्ततः भलाई की विजय का प्रचार किया गया है। वे अत्यन्त लोकप्रिय थे।

महात्मा गाँधी स्वयं प्रमुख लेखक थे। उन्होंने संस्कृत-बहुल गद्य के स्थान पर सरल गद्य दिया। उनकी गद्य-शैली सहज, सुगठित, ओजवान, मुहावरेदार और सन्तुलित थी। उन्होंने आत्मकथा, निबन्ध और पत्र लिखे। उन्होंने अपने "नवजीवन" और "हरिजन" साप्ताहिकों द्वारा पत्रकारिता का स्तर ऊंचा उठाया और पत्रकारी लेखन को साहित्यिक बनाया।

काका कालेलकर इस युग के विराट ग्रन्थकार हैं। वे यात्रा, प्रकृति, संस्कृति और समाजशास्त्र सम्बन्धी पुस्तकों के निबन्धकार हैं और जीवनी-लेखक भी हैं। कलात्मक रीति से वे गाँधीवादी दर्शन का प्रचार करते हैं। उनकी गद्य-शैली स्पष्ट, सहज, सन्तुलित और सशक्त है। उन्होंने दोपहर की धूप और कीचड़ के सौन्दर्य के विषय में लिखकर गुजरात को प्राकृतिक सौन्दर्य का निरीक्षण कर सकने वाली सक्षम आंखें दीं। उनका यात्रा-साहित्य गुजराती गद्य में अन्यतम योगदान है।

किशोर लाल मशरू वाला, जो गाँधी जी के आश्रम के निवासी थे, एक महान चिन्तक थे। उन्होंने जीवन-चरित्र और विभिन्न विषयों पर निबन्ध लिखे। उनका दृष्टिकोण क्रांतिकारी था और उन्होंने समसामयिक, सामाजिक, आर्थिक, शिक्षात्मक और दार्शनिक विचारों तथा परिस्थितियों पर कस कर चोट की। वे स्पष्टवक्ता थे और हमारे चिन्तन को शुद्ध करने के प्रयत्न में वे हमें मानसिक आघात पहुंचाने से भी नहीं हिचकते। वे अपने प्रस्तुतीकरण में अत्यन्त तार्किक और वैज्ञानिक थे।

रामनारायण पाठक इस युग के अत्यन्त प्रमुख लेखकों में से एक थे। उन्होंने कहानियां, हलके-फुलके और गम्भीर निबन्धों, साहित्यालोचन सम्बन्धी कृतियों और कला-सम्बन्धी कृतियों की रचना की। कहानियों के क्षेत्र में

उन्होंने समस्या-प्रधान, मनोवैज्ञानिक, प्रतीकात्मक और घटना-शून्य कहानियाँ दीं। उन्होंने साहित्यालोचन को भी ढाला और उसको रचनात्मक साहित्य का रूप दिया।

'दर्शक' भी गाँधीवादी युग के नाटककार और उपन्यासकार हैं। वे गाँधी-वादी विचारधारा में डूबे हुए हैं और इसी को उन्होंने अपने उपन्यासों, नाटकों और निबन्धों में कलात्मक रीति से बुना है।

'धूमकेतु' कहानियों को गाँवों और अभाव-ग्रस्तों में ले गये। उनकी कहानियां अधिकांशतः दुखान्त हैं क्योंकि उन्होंने समाज की सही प्रकृति प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। यद्यपि वे स्वयं भावनाओं में बह जाते हैं, फिर भी उनमें अपने साथ पाठक को भी बहा ले जाने की शक्ति है।

झवेरचन्द्र मेघाणी ने हमें अपने शोधकार्य द्वारा लोक-साहित्य का समृद्ध भण्डार उपलब्ध कराया। वे क्रांति के साहित्यिक संरक्षक थे। अपनी कहानियों, उपन्यासों, निबन्धों, एकांकियों और साहित्यालोचनाओं में उन्होंने सदा शक्ति-शाली वामपन्थी दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने गद्य-साहित्य में लोक-शैली के सौन्दर्य को प्रतिष्ठित किया। उनकी कृति 'सौरठ, तारा बहता पाणी' ने आंचलिक उपन्यास की सशक्त धारा का द्वार खोल दिया। परवर्ती लेखकों ने उपन्यास की इस प्रवृत्ति को और सँवारा, जैसे चुन्नीलाल मड़िया ने सौराष्ट्र क्षेत्र का चित्र दिया, पन्नालाल पटेल ने उत्तरी-पूर्वी गुजरात के पर्वतीय क्षेत्रों का चित्रण किया, ईश्वर पेटलीकर ने मध्य—गुजरात की झांकी दी और ये सभी लेखक उपन्यास के अतिरिक्त कहानी-लेखन में भी सफल रहे। इन सभी ने अपने-अपने क्षेत्रों के गाँवों से सामग्री चुनी और इसलिए उनकी कृतियों के प्रति व्यापकतर दिलचस्पी जागृत होती है।

गुलाबदास ब्रोकर और जयन्ती दलाल लाल ने कहानियों और एकांकियों के क्षेत्र में अच्छे प्रयत्न और सफल प्रयोग किये हैं।

ज्योतीन्द्र दवे बहुत उच्च कोटि के हास्यकार हैं। उनके हास्य में स्वाभा-विकता की सुगन्ध है। वे हास्य पैदा करने के लिए विभिन्न विधियां अपनाते हैं : कभी श्लेष और यमक, कभी भ्रष्ट तर्क-पद्धति, कभी मानवीय दुर्बलताओं का उद्घाटन, जो सार्वभौमिक तत्व हैं और कभी-कभी जीवन की असंगतियों के रूप में भी।

स्वातंत्र्योत्तर गद्य साहित्य में दो स्पष्ट प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं : एक, परम्परावादी और दूसरी, आधुनिकतावादी। परम्परावादी प्रवृत्ति में हमें नैतिक मूल्यों की पूजा, प्रचलित कला-रूपों का पालन और विषय-वस्तु को दिया गया महत्व दिखाई देता है। ये लेखक प्रस्थापित करना चाहते हैं कि

व्यक्ति-कल्याण समाज-कल्याण से भिन्न नहीं होता और जो लोग अपने को समाज से अलग कर लेते हैं, वे अन्ततः दुख भोगते हैं। परम्परावादी लेखकों में जिन्होंने विशिष्टता प्राप्त की है, वे हैं गुलाबदास ब्रोकर, मनसुखलाल झवेरी, शिवकुमार जोशी, धीरू बेन पटेल, विष्णुप्रसाद त्रिवेदी आदि।

आधुनिकतावादियों पर अस्तित्ववाद, अतियथार्थवाद और प्रतीकवाद का प्रभाव पड़ा है। वे हताशा, समाज में व्यक्ति के अकेले पड़ने की स्थिति और विभक्त व्यक्तित्व की चर्चा करते हैं। वे नैतिक मूल्यों और धार्मिक विश्वासों का भंजन करना चाहते हैं। वे विद्या-रूपों में प्रयोग करते हैं और अप्रचलित प्रतीकों तथा बिम्बों को ग्रहण करते हैं। इस प्रकार के साहित्य में अवचेतन धारा और यौन-वृत्ति प्रधान भूमिका अदा करती है। यह साहित्य बहिर्मुखी से अधिक अन्तर्मुखी है। काल्पनिक से अधिक यथार्थवादी है। आधुनिकतावादी प्रवृत्ति के प्रमुख लेखक हैं: चन्द्रकान्त बक्षी, सुरेश जोशी, मधु राय, रघुवीर चौधरी, मोहम्मद मानकड, सरोज पाठक आदि।

इस प्रकार एक सौ बीस वर्ष पुराने गुजराती गद्य की प्रगति और उपलब्धियों का जो गर्वोचित इतिहास है; उसको एक मधुर रूप देने में गाँधी जी का बड़ा योगदान है। जिस प्रकार टैगोर ने बंगला गद्य को समृद्ध करने में योगदान दिया था, उसी प्रकार गाँधी जी ने गुजराती गद्य को समृद्ध किया और इस पर हर साहित्यकार को गर्व है, और उचित ही है।

एक चांदनी रात

●

आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव

कल संध्या समय में अपने एक मित्र के साथ खेतों में घूम रहा था। पहले तो पश्चिम दिक्मण्डल में जो चित्र-विचित्र रंगों की समृद्धि उभर रही थी, उसके अवलोकन में ही हमारा समय कट गया।

"देखो तो ! पश्चिम आकाशे प्रगटी ज्वाला रे।
फैली है सब ओर ज्योति की स्वर्णिम माला रे।
रक्तवर्ण मेघों से दिशि-दिशि हैं रंगराती रे।
खिले हुए दाड़िम कुसुमों-सी छटा सुहाती रे।"

(कुसुम माला)

इन पंक्तियों को याद करते-करते हम अभी घूम ही रहे थे कि इतने में ये रंग धीमे-धीमे फीके पड़कर विलुप्त हो गये और उनके बदले कितने ही तारा-गण और ग्रह एक के बाद एक उगते गये और अंत में सम्पूर्ण आकाश में इन ज्योति-पुंजों का तेज छा गया। शरद ऋतु होने के कारण आकाश का रंग गहरा नीला था और तारों के तेज से वह खूब जगमगा रहा था। आकाश-गंगा आड़ी पड़ी फैलती दूध की धारा जैसी बढ़ती जा रही थी। और इस सब रमणीयता को परिपूर्ण करवाने के लिए कुछ ही देर में बादलों से घिरा और अलौकिक सौंदर्य से आवृत चन्द्रमा आकाश-सरणी की सीढ़ियां चढ़ने लगा। समस्त सृष्टि ने कितना अलौकिक स्वरूप धारण कर लिया !

यह चंदा की ही विश्वव्यापी विभूति है रे !!"

चन्द्र संदेह तेजोमय, आकाश-समुद्र में एक नाव के सदृश नक्षत्र मंडल में होकर तिरता चला जा रहा था; मैं उसको अपलक देखता ही रह गया।

इतने में मेरे मित्र ने मानो मेरे हृदय का भाव समझ कर उसका खण्डन करने के विचार से अपने हाथ की पुस्तक में से नीचे लिखा अंश पढ़कर सुनाया यह अंश इस प्रकार था :

"यह खगोल यदि किसी की महिमा गाता है तो वह परमेश्वर कहे जाने वाले किसी कल्पित पदार्थ की नहीं, वरन् हिपर्कस, केप्लर, न्यूटन, भास्कराचार्य आदि प्रख्यात खगोल-शास्त्रियों की है, जो आकाश में विचरने वाले जड़ पदार्थों की कार्य-कारण-भाव संबधी भाषा समझ सके थे ।"

जिस क्षण मेरा हृदय भक्ति एवं ध्यान के रस में डूबा हुआ था उस क्षण आया यह तर्क पहले तो अत्यन्त दुःखकर प्रतीत हुआ । परन्तु तर्क और हृदय दोनों में से एक का भी अनादर करना मुझे पसन्द नहीं था और क्योंकि मैं दोनों में ही सामंजस्य लाना चाहता था, इसलिए मैं कुछ ही देर में स्वस्थ हो गया । इसके बाद अपने मित्र से मैंने कहा, "भाई, इस दलील का जो अर्थ है क्या उसे तुमने देखा ? इस प्रकार तो उनकी "प्रिंसिपिया" न्यूटन की महिमा नहीं दर्शाती बल्कि मेरी-तुम्हारी "प्रिंसिपिया" के पाठकों की महिमा दर्शाती है । साथ ही, यह भी समझ लो कि प्रकृति-लेख उसके लेखक की अर्थात् परमात्मा की महिमा दर्शाते हैं, न्यूटन की नहीं । इसके अतिरिक्त, जिस प्रकार न्यूटन ने हम सबसे अधिक बुद्धि-सम्पन्न होने के कारण ऐसे सत्य खोज निकाले जो हमारे लिए अगम्य थे, उसी प्रकार जगत के महात्माओं – ऋषियों को जो परमात्मा की विभूति को उत्पन्न करने वाले न होकर मात्र उसके बांचने वाले, ऋषि और उनका दृष्टा, कहा गया है क्योंकि उन्होंने इस प्रकृति-लेख में परम सत्य का वेद लिखा देखा था । इस परमात्मा द्वारा रचित ब्रह्माण्ड को ही पुराणों में वर्णित ब्रह्मा की संज्ञा दी गई है । इनके चारों मुखों से चारों दिशाओं में, चारों तरफ वेद की ध्वनियां निकलती रहती हैं जिसको श्रवण करना ही हमारा परमसुख, कर्तव्य और भाग्य है" ।

इस उत्तर से मेरा मित्र तो संतुष्ट हो गया । परन्तु परमात्मा के दर्शन के निमित्त ध्यान-योग से हट कर मेरे मन में जो तर्क परम्परा चल पड़ी थी उसके फलस्वरूप यह दूसरा प्रश्न उठ खड़ा हुआ । यह ब्रह्माण्ड परमात्मा की महिमा का सूचक है, यह तो ठीक है, परन्तु इस विशाल ब्रह्मण्ड में मनुष्य की क्या गिनती ? प्रकाश की एक किरण एक सेकण्ड में एक लाख छियासी हजार मील की दूरी तय कर लेती है और अनेक तारों का प्रकाश पृथ्वी तक पहुँचाने में बीस हजार वर्ष लग जाते हैं और हुई गैलियॉस नामक खगोल वेत्ता का कथन यदि सत्य हो तो अनेक तारों का प्रकाश तो अब तक पृथ्वी तक पहुँच भी

नहीं पाया है । ये तारे अन्य खगोलों में सूर्य के स्थान पर हैं, और अपना यह सूर्य-चक्र यदि नष्ट भी हो जाये तो इस विश्व में ऐसा माना जायेगा जैसे समुद्र तट पर बालू का एक कण नष्ट हो गया है । ऐसे में मनुष्य की क्या स्थिति होगी ? परमात्मा को उसकी क्या दरकार ? यह विचार मेरे मन के लिए बड़ा ही दु:खद सिद्ध होता, परन्तु भाग्यवश उसी क्षण अंग्रेजी के एक कवि की कुछ पक्तियाँ याद आ गयीं ।

"देखो, सूर्य चलता ही रहता है; यह न तो रुका रह सकता है और न अपने मार्ग से हट ही सकता है, परन्तु हमारी अमर आत्मा तो यह भी कर सकती है और केवल मुझमें ही यह शक्ति है कि मैं सूर्य के बिना प्रकाशमान बना रहूं ।"

अहो ! कितने भव्य विचार हैं !! इससे एक तरफ मुझे जहां अपनी महत्ता का आभास मिला, वहीं दूसरी तरफ अपने महत् उत्तरदायित्व का भी भान होने लगा । इस वृत्ति ने मेरे हृदय को आकुल-व्याकुल कर दिया : इसके मुझे बड़े गंभीर अर्थ प्रतीत हुए : विश्वतंत्री में से छूट पड़ा एक तारा होऊँ जैसे, अथवा हरिणों के झुण्ड से बिछुड़ा हुआ एक बाल हरिण होऊं, ऐसी अपनी स्थिति प्रतीत हुई । मुझे ऐसा लगा कि प्रभु-कृपा बिना क्षण भर भी अपना कर्तव्य पूरा कर सकने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है । कई लोग यह समझते हैं कि आत्मा के स्वातंत्र्य के बिना आस्तिकता संभव नहीं परन्तु यह सिद्धान्त मुझे अत्यन्त शुष्क और अहं के अभिमान से भरा प्रतीत हुआ । मैं जो कुछ भी करता हूँ वह परमात्मा की प्रेरणा से ही करता हूँ । मैं नहीं करता वरन् जो करता है परमात्मा ही करता है, यदि बात शुद्ध भाव से मनुष्य के मन में आये तो मानव हृदय से पाप का समूल नाश होकर पुण्यवृत्ति स्वाभाविक और सरल रीति से—जैसे पुष्प में से सुगंध फैलती है-प्रसारित होगी, इसमें संदेह नहीं यह ठीक है कि इस बात से एक बार समाधान हो गया था । प्रभुको तुम्हारी क्या दरकार कि तुम्हारे ऊपर कृपा करके तुम्हें सन्मार्ग की प्रेरणा दें ? यह प्रश्न बाद में कई एक बार—बिना हटे—आता रहा . परन्तु जैसे इतना शुभ विचार लाने के कारण सशक्त बन गयी हो, मेरी आत्मा जल्दी से उठी : है क्यों नहीं ? क्या उसका प्रेम सर्वव्यापक नहीं ? प्रभो ! मैं तुम्हारा हूँ । अंतिम वाक्य मेरी आत्मा के अंतरतम से निकला प्रतीत होता था और बिना प्रयत्न मेरे मुख से निकल गया था । मेरे मित्र ने इसे सुन लिया और मुझ से पूछने लगा, "यही तुम्हारा शंकर-अद्वैत-वेदान्त है" ? मैं इस वाक्य में छिपा उपालम्भ समझ गया । फिर भी मैंने दृढ़ता से उत्तर दिया, "हाँ, हमारे शंकराचार्य कह गये हैं :

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।।
सामुद्रो हि तरंग : क्वचन समुद्रो न तारंग : ।।

हे प्रभो मैं तुम्हारा हूं, तू मेरा (आविर्भाव) नहीं। तरंग समुद्र की (विकार-आविर्भाव) है, समुद्र तरंग का (विकार आविर्भाव) नहीं।

इस उत्तर से सगुण-निर्गुण के संबंध का विचार हमारे सामने आ गया। इस चर्चा में पड़ने का समय न होने के कारण हमने उसको भविष्य के लिए छोड़ दिया।

अब तक चन्द्रमा आकाश के मध्यभाग तक पहुँच चुका था। समस्त विश्व उसके धवल उज्ज्वल आलोक में नहाया हुआ था, परन्तु मेरी अन्तरात्मा की चन्द्रिका प्रातः कालीन चन्द्रिका के समान निष्प्रभ एवं शुष्क पड़ती जा रही थी।

रुद्रदत्त की मृत्यु

•

रमणलाल वसंतलाल देसाई

भीड़ जरा शान्त पड़ी । रुद्रदत्त की निर्भयता और उनकी दलीलें उत्तेजित मानव समूह पर असर करती दिखाई दीं । उनका नाम तो यहां काफी जाना पहचाना था और ऐसा लगा कि उनके प्रभाव से भीड़ छंट जायेगी । भीड़ के पीछे से आवाज आई :

"पंडित जी ! आप बीच में मत बोलिए । एक फिरंगी एक लाख आदमियों से भी ज्यादा भयंकर होता है । इसे तो मार ही डालना चाहिए ।"

"यह कौन बोल रहा है शंकर ? यहां तुम कहां से आये ?"

"चाहे जहां से आया सही । आप फिरंगियों का साथ देना छोड़ दीजिये ।"

"असहाय, निरस्त्र, स्त्रियों और बच्चों का साथ तो देना ही पड़ेगा ।"

"पंडित जी ! मैं पैर पकड़ कर कहता हूं कि इन नागदेवताओं को आप उनके भाग्य पर छोड़ दें ।"

"और अगर न छोड़ूं, तब ?"

"बड़ा बुरा नतीजा होगा ।"

"जो होना है, हो ।"

"बापू जी ! फिर कह रहा हूं कि आप खेल मत बिगाड़िये ।"

"तुम्हारा खेल तो पहले ही बिगड़ चुका है ।"

"ये शब्द आप कह रहे हैं ? विप्लव को तो आपका आशीर्वाद प्राप्त है ।"

"जिस विप्लव में इतना उतावलापन हो कि किसी तिथि-तारीख का सम्मान न किया जाय, जिस विप्लव में वैर भाव और जहर-भरे व्यक्तियों जैसी स्वार्थ-साधनों की तरकीबें की जायें, जिस विप्लव में अनुशासनबद्ध सैनिकों के साथ अनुशासन हीन गुण्डे मिल जायें, उस विप्लव को मेरा आशीर्वाद नहीं ।

स्वार्थी, ध्येय-रहित विप्लव पुआल की ऐसी आग है जो घास जल चुकने पर आपसे आप बुझ जायेगी।"

"देखते क्या हो ? बढ़ो आगे, इस बुड्ढे की मति तो भ्रष्ट हो गयी है।" शंकर छलांग मारकर आगे बढ़ आया और उछल कर बोला। उसमें कभी न दिखने वाला चांचल्य रुद्रदत्त को आज दिखा। "मारो, मारो" की आवाजें फिर सुनाई पड़ीं। ओसरी के ऊपर से बांस उठाकर त्र्यंबक नीचे उतरने लगा। रुद्रदत्त बोला :

"त्र्यंबक ! शांत रहो !"

"मेरे पीछे चले आओ, पंडित को पकड़ लो और गोरों को घेर लो !" शंकर बोला और दो कदम आगे बढ़ा। रुद्रदत्त की आंखों में एकाएक बिजली चमकी। वर्षों से दबा सोया उनका क्षत्रियत्व एक क्षण के लिए जाग उठा। श्वेत केशावली सिंह की केशावली सरीखी हिल उठी। शस्त्र-रहित परशुराम की तरह उनके अंगों में चापल्य फूट पड़ा। उनकी देह दृढ़, ऊंची और हिमगिरि सदृश सबको दहलाने वाली और भयप्रद लगने लगी। उसके मुंह से गंभीर नाद सुनाई पड़ा।

"शंकर। जब तक मैं जिंदा हूं, इन निहत्थों को हाथ लगानेकी किसी की मजाल नहीं।"

"तब तुम भी जिन्दा नहीं रहोगे !" शंकर के ये शब्द पूरे नहीं सुने जा सके। तभी धड़ाम की आवाज सुनकर सब सिहर उठे।

रुद्रदत्त ने ओम् का उच्चारण किया, छाती पर एक हाथ रखा और कल्याणी व ल्यूसी की बाहों में ढह गये, जैसे उषा की बेल पर धवलगिरि ढल जाये।

पूरी धर्मशाला निःशब्द बन गयी। अप्रत्याशित, कल्पनातीत दुर्घटना अकस्मात घट गयी थी। भीड़ में आये लोगों में से किसी को ख्याल तक न था कि प्रत्येक विप्लववादी की पूज्य मूर्ति रुद्रदत्त पर भी कोई हाथ उठा सकता है। सभी को ऐसा लगा मानो महाभारत के युद्ध में कृष्ण आहत हो गये हों। असहायता का वातावरण स्थिर हो सके, इसके पहले ही दो क्षण में—तीन क्षण में—त्र्यंबक की लाठी घूमी। एक फलांग में वह नीचे उतरा और देवालय के चौक में जमा क्रान्तिकारियों पर जबर्दस्त प्रहार करने लगा। बहुत से लोग भागने लगे और मंदिर की संकरी गलियों में से निकलने लगे। त्र्यंबक ने शंकर को बंदूक उठाते देखा, और जब तक वह बंदूक साधे-साधे, त्र्यंबक ने शंकर के हाथ पर लाठी मार कर बंदूक नीचे गिरा दी। शंकर ने पीछे घूमकर भागने का प्रयत्न किया। लेकिन त्र्यंबक ने उनको धर पकड़ा और उसको बालों से पकड़-

कर दबोच लिया और अपनी वज्र-मुष्टि के प्रहारों से उसको बेहोश कर दिया। त्र्यंबक का क्रोध शान्त होता नजर नहीं आता था। नीचे गिरे हुए शंकर को संबोधित करके वह चीख उठा :

"चांडाल ! हत्यारा !"

और पैर बढ़ाकर उस पर प्रहार करने को त्र्यंबक अभी तैयार ही हुआ था कि रुद्रदत्त की परिचित, स्वस्थ एवं गंभीर आवाज़ सुनाई पड़ी।

"त्र्यंबक !"

त्र्यंबक ने पीछे मुड़कर देखा। रुद्रदत्त ल्यूसी के सहारे से बैठे थे। जानसन तथा उसकी पत्नी रुद्रदत्त की छाती से बहते हुए रक्त को कपड़े से साफ कर रहे थे। त्र्यंबक थम गया। रुद्रदत्त ने कहा :

"भाई, लौट आओ। मेरी मृत्यु को खून से मत रंगो।"

गुरू पर हुए आघात से पागल त्र्यंबक को अब होश आया कि गुरु को लगा घाव प्राणलेवा है। गुरु की मृत्यु ? त्र्यंबक की देह जैसे बेजान हो गयी। उसे चक्कर आ गये। लिथड़ते पैरों वह पीछे घूमा और गुरु के चरणों के समीप जाकर निढाल सा बैठ गया।

"मैं मरहमपट्टी की पेटी ले आऊं—उसमें दवा है।" कहकर जानसन साहब जाने लगा। उसके पीछे-पीछे उसकी मैडम भी चल पड़ी।

"अभी मत जाओ। लोग अभी उत्तेजित हैं। रुद्रदत्त ने कहा।

"हमारे कारण आप घायल हुए और हम यहीं बैठे रहे। यह नहीं होगा। ल्यूसी वहीं सेवा-सुश्रुषा करेगी, और हम जाकर सब साधन लेकर फौरन लौटते हैं," कहकर साहब और मैडम धर्मशाला से बाहर निकले।

"नाहक जा रहे हैं" रुद्रदत्त बोले।

"क्यों ?"

"मर्मस्थल के ऊपर घाव लगा है। यह देह तो अब थोड़ी ही देर टिकेगी।"

"क्या ?" कल्याणी चौंक कर बोली। घायल पितामह की सेवा में तल्लीन कल्याणी को तो इस बात का ख्याल ही नहीं आया था कि रुद्रदत्त की मृत्यु हो जायगी। वह कांप उठी।

"इतना शोक करने का कोई कारण नहीं, इस देह से मैंने बहुत काम लिया है। अब यह देह आराम करेगी" रुद्रदत्त बोले परन्तु उनकी दृष्टि एक सिसकी की आवाज सुनकर दूसरी ओर घूम गयी—त्र्यंबक की आंखों से अश्रु-धारा निरन्तर प्रवाहित हो रही थी। उसे रोकने के प्रयास में ही उसके होठों से सिसकी की आवाज निकल गयी।

"त्र्यंबक ! मर्द की आंखों में आंसू क्यों ?" रुद्रदत्त बोले ।

"मैं मर्द नहीं हूं मैं तो आपका बालक हूं ।" त्र्यंबक ने बिलखते हुए कहा ।

"बेटा ! इस लम्बी जिन्दगी में अनेक शिष्यों ने मेरे प्रति गुरुभाव दिखाया लेकिन त्र्यंबक, तुम्हारी जोड़ का कोई नहीं था ।"

"भूल की—क्षमा—मांगता हूं ।"

"तूने भूल की ही नहीं । तूने तो मेरे लिए अपने स्वत्व का ही होम कर दिया । तू यदि आश्रम के बाहर गया होता तो गौतम सरीखा योद्धा बनता—मेरे मन में तो तू सब योद्धाओं से बड़ा है । एक गुरु-दक्षिणा देगा ?

त्र्यंबक से बोला नहीं गया, इसलिए उसने गुरु के चरण पकड़ लिए ।

"बेटे ! यह प्रण ले कि कभी भी हथियार हाथ में नहीं लूंगा ।"

('भारे लो अग्नि' से)

कन्याकुमारी का दर्शन

•

महात्मा गाँधी

कश्मीर से कन्याकुमारी और कराची से आसाम तक हिन्दुस्तान की सीमा है···इन्हीं से हिन्दुस्तान की चारों दिशाएं पूरी होती हैं। भाल पर हिन्दूकुश के शिखर हिन्दमाता को सुशोभित व सुरक्षित रखते हैं। नीचे अरब सागर और बंगाल के उपसागर का शुद्ध जल हिन्दमाता का पद-प्रक्षालन करता है। कन्याकुमारी, जहां पार्वती ने शंकर सरीखे अवधूत, परन्तु साक्षात देवरूप से विवाह के निमित्त तपश्चर्या की थी। यह हिन्दुस्तान का छोर है जो तीन ओर से घिरा है और दो समुद्रों का पानी यहीं आकर मिलता है परन्तु उनके दो रंगों से अनेक रंगों का भास होता है। अपना मुँह यदि बिल्कुल दक्षिण की ओर हो तो एक ही जगह से हम सूर्य को अपनी बायीं बाजू से उगता और अस्त होता देख सकते हैं। यह दृश्य देखने के लिए समय तो हमारे पास नहीं था। लेकिन सूर्य को सबेरे के पहर में तारों को निस्तेज करके बंगाल की महोदधि में स्नान कर उगते हुए और साँझ के सुवर्णमय आकाश में से उतर कर पश्चिम के समुद्र में शयन करने के लिए छिप जाने की कल्पना हम भली प्रकार कर सकते थे : वहाँ रहने वाले सरकारी अतिथि-गृह के रक्षक ने तो सूर्यास्त का भव्य दृश्य देखने के लिए रुक जाने के हमको बड़े लालच दिये, परन्तु हम घोड़े...नहीं मोटर पर...चढ़ कर आये थे और हमें लौटने की भी जल्दी थी, इसलिए हम रुक कैसे सकते थे ? मैंने तो हिन्दमाता के पद-प्रक्षालन से पवित्र हुए समुद्र की लहरों में अपने पैरों को पवित्र करके ही संतोष कर लिया।

ऋषियों की कैसी रचना थी। पुराणों के रचयिताओं के कितने उच्च विचार थे। यहाँ हिन्दुस्तान के सीमान्त पर अमनी दुनियाँ के छोर पर ऋषियों ने कन्याकुमारी के मन्दिर की स्थापना की और पुराणों के रचनाकारों और

उनके साथियों ने उसको सजाया। मन में उसके सृष्टि-सौन्दर्य का रस लूटने की अभिलाषा नहीं रही-क्योंकि वहाँ तो इस रस का अगाध भण्डार भरा पड़ा है। मुझे तो वहाँ धर्म के रहस्य का अमृतपान करने का अवसर मिल गया। मैं तो वहाँ के सुन्दर घाट पर अपने पैर समुद्र के पानी में धो रहा था, मेरे सभी साथियों में से एक ने मुझसे कहा, उस शिला पर विवेकानन्द जाकर समाधिस्थ होते थे। यह बात सच हो या न हो, परन्तु संभव तो थी ही। कोई भी तैराक वहाँ तक तैरकर जा सकता है। उस शिला द्वीप पर तो शान्ति का पार नहीं मिलेगा। समुद्र की तरंगों का मंद और मधुर वीणागान तो समाधि का पोषक होता है अतः यहाँ मेरी धर्म जिज्ञासा और भी तीव्र हो गयी। सीढ़ियों की बाजू में एक चबूतरा बना हुआ है। उसके ऊपर सौ एक लोग आसानी से बैठ सकते हैं। मेरा तो वहाँ बैठ कर गीता जी का पाठ करने का मन हो आया। परन्तु जल्दी के कारण इस पवित्र इच्छा को दबाना पड़ा, और मैं गीता के रचयिता की मूर्ति को हृदय में ध्यान लगाकर देखता हुआ मन को शान्ति देने लगा।

इस प्रकार पवित्र होकर मैं मंदिर में गया। मैं तो अस्पृश्यता निवारण का हिमायती हूं और अपने आपको भंगी कह चुका था। इसलिए मुझे उसमें प्रवेश क्योंकर मिल सकेगा, इस विषय में मेरे मन में ज़रा भी शंका नहीं थी। मैंने मंदिर के अधिकारी से कह दिया कि उनकी दृष्टि में यदि मुझे मंदिर में जाने का अधिकार न हो तो मुझे न ले जायें। मैं तो प्रतिबंध को मान देता हूँ। उन्होंने कहा, माता का दर्शन तो साढ़े पाँच बजे के बाद नहीं होता और आप तो चार बजे आ गये हैं। पर मैं आपको दूसरी बात बता दूं। आपके ऊपर सारे प्रतिबंध तो जहां देवी विराजती है वहाँ जाने की बाबत हैं...लेकिन ये तो विलायत हो कर आये हरेक आदमी के बारे में है। मैंने कहा, इस प्रतिबंध का मैं पूरी तरह पालन करूँगा। इतनी बात के बाद वह अधिकारी, मुझे भीतर ले गया और मुझे मंदिर की बाजू से प्रदक्षिणा करा दी।

मुझे मूर्तिपूजक हिन्दुओं के अज्ञान के ऊपर दया नहीं आई वरन् उसके ज्ञान का विशेष रूप से भान हुआ। मूर्तिपूजा का अर्थ करने में वह एक ईश्वर को अनेक की संज्ञा नहीं देते। परन्तु मनुष्य एक ईश्वर को उसके अनेकानेक रूपों में पूज सकता है, इस बात की शोध करके उसने जगत को बताया है। संभव है कि मसीही और मुसलमान अपने आपको मूर्तिपूजक न मानें परन्तु अपनी कल्पना को पूजना भी तो मूर्ति-पूजा ही है। मस्जिद या गिरजाघर भी एक प्रकार की मूर्तिपूजा है। वहाँ जाकर मैं अधिक पवित्र हो जाता हूँ। इस

कल्पना में मूर्तिपूजा है, इसमें कोई दोष नहीं। कुरान में, या कि बाईबल में ईश्वर से साक्षात्कार होता है, इस कल्पना में ही मूर्तिपूजा तो है परन्तु यह निर्दोष है। हिन्दू इनसे भी आगे जाकर कहते हैं कि जिसको जिस रूप में अच्छा लगे, वह उसी रूप में ईश्वर को पूज ले। पत्थर या सोने-चांदी की मूर्ति बनाकर उसमें ईश्वर का आरोपण करके, उसमें ध्यान लगाकर जो मनुष्य चित्त-शुद्धि करता है, उसको मोक्ष प्राप्त करने का पूरा अधिकार है। यह बात प्रदक्षिणा करते समय मेरे मन में बिल्कुल स्पष्ट हो गयी।

परन्तु यहाँ भी सुख में दुःख तो था ही। मुझे तो प्रदक्षिणा कर लेने दी गई। मूर्ति के निकट मुझे नहीं जाने दिया गया, वह इसलिए कि मैं विलायत हो आया था, परन्तु अस्पृश्यों पर तो प्रतिबंध उनके जन्म के कारण था। इसे किस प्रकार सहन किया जा सकता है? क्या पुरातन काल से ही यह प्रथा चली आ रही है ऐसा नहीं हो सकता, यही अन्तर्नाद आया, और यदि ऐसा ही चलता आया हो तो यह पुरातन परम्परा भी पाप ही होगी। पाप हमारे पुरातन काल से चला आ रहा है, इसी कारण वह पाप मिटकर पुण्य नहीं बन जाता। इसलिए इस कलंक को दूर कराने का महायज्ञ करना प्रत्येक हिन्दू का फर्ज है। यह विश्वास मन में विशेष रूप से दृढ़ हो गया।

('धर्ममंथन' से)

भुवनगिरि

काका कालेलकर

काज़ी पेट से हम निज़ाम हैदराबाद की तरफ़ जा रहे थे रास्ते में बायीं बाज़ू पर एक बड़ी पहाड़ी नज़र पड़ी। हिन्दुस्तान में पहाड़ियों की कमी नहीं, परन्तु इस पहाड़ी ने विशेष रूप से ध्यान खींचा। पहाड़ी का पत्थर एक ही ओर गोलमटोल था। उसके ऊपर किसी का मन्दिर होगा।

पत्थर देखकर उस पर प्रहार करके उसके टुकड़े ले जाना ही मनुष्य का स्वाभाविक काम होता है। परन्तु इस पहाड़ी का पत्थर इतना गोलमटोल व चिकना था कि जैसे रूपवान एवं प्रसन्न मुख बालक के चिकोटी काटने की किसी की इच्छा नहीं होती, उसी प्रकार इस पहाड़ी पर भी हथौड़ी चलाने की किसी की इच्छा नहीं हुई होगी। इसीलिए यह पहाड़ी प्रकृति माता ने जैसी बनायी, वैसी ही खड़ी है। पहाड़ी को अभी मैं ध्यानपूर्वक देख ही रहा था कि भोंगीर स्टेशन आ गया। प्रयत्न करके तेलुगु लिपि में स्टेशन का नाम पढ़कर आनन्द हुआ क्योंकि इसका मूल नाम भुवनगिरि है। इतना सुन्दर नाम छोड़कर लोगों ने उसका इतना भोंड़ा नाम भोंगीर क्यों रख दिया होगा ? जो भी हो, इस पहाड़ी की भी इतनी दुर्दशा नहीं कर डाली, इसी का उपकार मानना चाहिए।

गाड़ी स्टेशन पर पहुंची ही थी कि याद आया कि सबेरे की प्रार्थना के बाद वाला गीतापाठ तो रह ही गया है। रविवार का दिन था। अपना प्रिय ग्यारहवां अध्याय पढ़ने के उत्साह में पुस्तक हाथ में ली। अध्याय शुरू करते-करते गाड़ी चल पड़ी। सामान्यतया में गीता शुरू करने के बाद पढ़ने में व्यवधान पड़ने नहीं देता। चाहे जितने दूसरे आकर्षण आयें फिर भी उन पर ध्यान नहीं देता और एकाग्रभाव से गीता पूरी करता हूं। परन्तु आज तो

गीता की शुरूआत में ही दिमाग में भुवनगिरि का विचार भरा हुआ था। स्टेशन आने से पहले तो इस पहाड़ी को मैं एक बाजू से ही देखता आ रहा था, और वहाँ से गाड़ी आगे जाने पर दूसरी बाजू से यह पहाड़ी कैसी दीख पड़ती है, ऊपर चढ़ने का मार्ग सुन्दर है अथवा गंदा बनाया हुआ, ये सब बातें देखने का मन था। आंखें इस तरफ दौड़ना चाहती थीं। उपासना में एकाग्र होने का आग्रह होने के कारण इन सब बेकार की बातों को छोड़ देना चाहिए, ऐसा एक मन कह रहा था, दूसरा मन कहता था कि गीता-पाठ तो रोज़ चलता रहता है, इस पहाड़ी को देखने के लिए कोई रोज़-रोज़ तो यहां आना नहीं है, अधूरा दर्शन पूरा ही क्यों न कर डाला जाये? दो मिनट इसमें ही लगा देने में कोई नुकसान नहीं है। पहला मन फिर कहता, परन्तु उपासना अखण्ड बनी रहनी चाहिए। इस आग्रह को भी कैसे छोड़ा जाये? गीता पाठ की शुरुआत न की होती तो बात दूसरी थी। यों भी, गीता-पाठ देर में तो शुरू किया ही था। पाँच मिनट और देर से शुरू करते तो भी कोई बात नहीं थी। परन्तु शुरू करने के बाद बीच में विक्षेप नहीं आना चाहिए। तर्क करने का आदी दूसरा मन बोला, पहाड़ी को देखने का काम आंख और हृदय से एकाग्रता पूर्वक करता आ रहा था। उसमें गीतापाठ का विक्षेप कहां से आ पड़ा? यदि अखण्डता का आग्रह ही है तो विक्षेप रूप गीता पाठ को छोड़ देना चाहिए और सृष्टि निरीक्षण रूपी ध्यान-योग अखण्ड रूप से चलता रहना चाहिए।

दोनों मनों के झगड़े का लाभ उठाकर आंखों ने कनखियों से पहाड़ी का निरीक्षण शुरू किया। परन्तु निग्रही मन ने उनके साथ सहयोग करने से इंकार कर दिया। उसने आंखों पर अपनी लगाम खींच ली और उनको गीता श्लोक पर बांध दिया।

इतने में एक भारी चमत्कार हुआ। गीता-पाठ ग्यारहवें अध्याय के पांचवे श्लोक पर पहुंचा। उसमें कहा गया था, 'पश्येमे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्त्रशः:'। हृदय में चलने वाला युद्ध एक दम बन्द हो गया। दोनों मनों के बीच सुलह होकर एकरूपता आ गयी। यह भुवनगिरि और कुछ नहीं विश्व-रूप की ही एक विभूति है, इस बात का साक्षात्कार हो गया। भुवनगिरि को देखने में गीताभ्यास से द्रोह नहीं था, अब जी भर के देखो। 'पश्येमे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्त्रशः'।

पहले तो केवल कला-सिक्त आंखें ही देख रही थीं, परन्तु गीता के श्लोक ने धर्मपूत दिव्य-दृष्टि प्रदान कर दी। जैसे भगवान ने स्वयं कहा हो : 'दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्यमं रूपमेश्वरम्'। कला की नज़र से प्राकृतिक रूप देखते देखते

श्रद्धा-भक्ति की नजर से ईश्वरीय-रूप देख लिया, यह कितना धन्य भाग्य है ? चित्त का समाधान हो गया। भुवनगिरि ने नया ही रूप धारण कर लिया था। अब यह पाषाण नहीं रह गया था। यह परमात्मा की एक विशाल मूर्ति बन गया था। स्थूल काया होते हुए भी अब यह स्थूल न रह कर चैतन्य बन गया था। 'नमो पुरस्तादथ पृष्ट दस्ते', कह कर मैंने उसको अनेक प्रणाम किये, और गीतापाठ आगे बढ़ाया। जैसे गीता के एक श्लोक से भुवनगिरि के दर्शन में फेर पड़ा, उसी प्रकार भुवनगिरि के दर्शन से गीता-पाठ में नये अर्थ निकल आये। सखा भुवनगिरि ! गुरु भुवनगिरी ! तुमको मैं कैसे भूल सकता हूं ? जब-जब पाठ का ग्यारहवां अध्याय आयेगा तब-तब तुम्हारा भी स्मरण आयेगा, और वह भी विक्षेप रूप में नहीं वरन् विश्वरूप के एक प्रतीक के रूप में। तुमने मेरे हृदय में प्रवेश कर लिया है। मेरी प्रार्थना इतनी ही है कि मैं तुम्हारे हृदय में प्रवेश कर सकूं।

('जीवन के आनन्द' से)

गांधीवाद और साम्यवाद

किशोरलाल मशरूवाला

बहुत बार ऐसा कहने में आता है कि साम्यवाद में से हिंसा को निकाल दिया जाये तो गांधीवाद और साम्यवाद एक ही हैं, अथवा, गाँधीजी अहिंसक साम्यवादी थे, अथवा गाँधी जी और साम्यवादियों दोनों के साध्य भिन्न नहीं। मात्र साधन भिन्न हैं। गाँधी जी का आग्रह साधन की शुद्धता, सत्य एवं अहिंसा पर था। यही बात यदि साम्यवादी भी स्वीकार कर लें तो गाँधीवाद और साम्यवाद एक ही हैं।

इन वचनों की पुष्टि खुद गाँधी जी के शब्दों द्वारा की जा सकती है। अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने में अनुकूल होने वाले अथवा अपने विचारों की प्रशंसा में कहे जाने वाले इन वाक्यों का समर्थन स्वीकार कर लेने में गाँधी जी को बाधा नहीं लगती थी। कोई कहता था गाँधी जी पूंजीवादियों, जमींदारों, राजाओं, अंग्रेजों वगैरह के मित्र थे तो वे इस बात को मान लेते, और कोई कहता कि वे दरिद्र-नारायण के सच्चे सेवक थे, शुद्ध साम्यवादी थे, तो इसको भी मान लेते। कोई कहता कि वे कट्टर सनातनी थे, वैष्णव थे, तो यह भी उनको मंजूर होता, और कोई कहता कि वे सुधारक थे, सच्चे ब्राह्मण, क्षत्रिय या शुद्र थे तो यह भी स्वीकार था। कोई जैन खुश होकर कहता था कि सच्चे जैन तो गाँधी जी हैं, कोई ईसाई कहता गाँधी जी ही यीशु क्राइस्ट के खरे अनुयायी हैं, कोई मुसलमान कहता कि गाँधी जी सच्चे मुस्लिम हैं, तो सराहना के रूप में कही गयी ये तमाम बातें अपने सीमित अर्थों में मान्य थीं; कारण कि इन सब कथनों से उनके सिद्धान्तों को समझ सकने में मदद मिलती थी।

ऊपर आई उपमाओं को ऊपरी सराहना की हद में यदि रखा जाय तो कोई हर्ज नहीं। परन्तु वास्तविक सिद्धान्तों का सावधानी से विश्लेषण करते समय इन सरल प्रतीत होने वाली व्याख्याओं के भुलावे में आना उचित नहीं। इन व्याख्याओं में सिद्धान्त का खरा रूप छिप जाता है और सच्चा रूप प्रगट नहीं हो पाता। गाँधीवाद को हिंसा-रहित साम्यवाद की संज्ञा देने से मन पर यही छाप पड़ती है कि साम्यवाद में हिंसा का थोड़ा ही मेल है जिसको साफ कर देने से गाँधीवाद और साम्यवाद एक बन जाते हैं। यह तुलना यदि ठीक भी हो तब भी यह याद रखना चाहिए कि हिंसा-रहित होने की शर्त कुछ छोटी नहीं, वरन् बहुत बड़ी बाधा है। इस शर्त में इतना बड़ा भाव समाया हुआ है कि इसके कारण यह तुलना प्रायः बिल्कुल व्यर्थ सिद्ध होती है। यह बात उतनी ही निरर्थक है जितना यह कहना कि यदि हरे में से पीला और नीला रंग निकाल दिया जाय तो वह लाल रंग हो जाता है कि कीड़ा विष-हीन नाग होता है।

इस प्रकार की सरल व्याख्याएँ प्रस्तुत करने का लालच इस कारण आता है कि ऐसा बोलने वालों के मन में स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप से यह धारणा बस गयी है कि लोगों को मार्क्स अथवा समाजवाद की कल्पना पसन्द आ गयी है और दलित मानवों के दुःख का इलाज उसी से हो सकता है और गाँधीवाद को उससे अधिक लोकप्रिय बनाना हो तो उसकी व्याख्या साम्यवाद की भाषा में की जानी चाहिए। यह बात कहने वालों के मन में भीतर ही भीतर यह बात भी बसी हुई है कि साम्यवाद है तो सच्ची चीज परन्तु उसकी स्थापना में उतावलापन नहीं आना चाहिए, किसी भी प्रकार गाँधीवाद में इस गति को धीमे करवाने और उसकी स्थापना का मार्ग सरल कर देने की क्षमता है इसलिए समाजवाद की स्थापना में गाँधीवाद को साधन बनाना ठीक रहेगा। इसी से गाँधीवाद को मार्क्सवाद का हथियार बना लेने की वृत्ति का जन्म हुआ है।

परन्तु मन में लगता है कि यह वृत्ति ठीक नहीं है। ऐसा करने से अपने आध्यात्मिक, धार्मिक तथा नैतिक सिद्धान्तों, मतों एवं आचारों में जो महत्व-पूर्ण परिवर्तन किये जाने चाहिए उन पर से ध्यान हट जाता है। व्यक्तिमात्र के जीवन में जो महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारी राजकीय, सामाजिक या आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन होते हैं, वे अंततोगत्वा इसी क्रान्ति में से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सिद्धान्तों पर प्रजा का ध्यान केन्द्रित हुआ देखकर इस दृष्टि से विचार किया जाय तो मार्क्स एवं गांधी के बीच लाल और हरे का अन्तर दीख पड़ेगा। अंधों की एक बीमारी ऐसी भी होती है जिसके फलस्वरूप लाल और हरा रंग

एक सरीखा दीखने लगता है। इसी प्रकार यदि लाल और हरे रंग में भेद करने की क्षमता हो तो गांधी-मार्क्स का अन्तर भी समझ में आ सकता है।

परन्तु इन दोनों के संबन्ध में एक बात विचारणीय है। गांधी व मार्क्स दोनों में अहिंसा के साधन की बाबत मतभेद है। और कांग्रेस के गांधीवादियों का आखरी ध्येय समाजवादी विश्व की रचना करना हो तो इसके बारे में अहिंसक रीति से सिद्ध कराने का पूरा अवसर भी उनको ही मिल सकता है क्योंकि भारत में सर्व सरकारी शासन-तंत्र में गांधी जी को राष्ट्रपिता मानना और रोजबरोज गाँधी जी के नाम और सिद्धान्तों की दुहाई देते रहना भी इनके ही हाथ में है। साम्यवादियों के हाथ में सत्ता जाने पर वे जो कुछ भी करना चाहें, उस सबको व्यर्थ कर वे साम्यवादियों की चाल नाकाम कर दे सकते हैं और उनके पैर डगमगा दे सकते हैं। हिंसात्मक क्रान्ति का प्रश्न तो तब उठेगा जब सरकारी शासनतंत्र में साम्यवादी सिद्धान्त मानने वाले न हों और वैध उपायों द्वारा सत्ता पर कब्जा करने की साम्यवादियों को आशा ही न रहे। परन्तु यदि गाँधीवाद और साम्यवाद में किसी भी प्रकार का भेद हो ही नहीं तो यह कहा जा सकता है कि आज की सरकार साम्यवाद की स्थापना कर रही है, और यह सरकार और साम्यवादी लोग साथी बने जा रहे हैं। हाँ, केवल 'क' के हाथ में सत्ता रहनी चाहिए या 'च' के हाथ में, यही झगड़ा हो तो दोनों के बीच में झगड़ा बढ़ जायेगा. परन्तु वैसी स्थिति में कदाचित् प्रजा ही साम्यवादियों से कह देगी कि "हमें तुम्हारी पद्धतियों की जरूरत नहीं है, कारण कि तुम जिस अर्थ-व्यवस्था का प्रचार करते हो यह तो हमें मिल ही गयी है।" परन्तु ऐसा कभी होता नहीं और इसका कारण यही है कि गाँधी और मार्क्स के बीच का भेद गणित के सीधे-सादे चिन्हों द्वारा दर्शाया नहीं जा सकता; वह उससे कहीं अधिक ऊंचा है।

इसको और अधिक विस्तार से समझाने की जरूरत है और यही अगले कुछ अध्ययाओं का प्रयोजन है।

एकमात्र चैतन्य सत्ता

गांधी जी और मार्क्स के बीच आधारभूत अंतर जीवन और जगत की ओर देखने वाली दृष्टि का है। साध्य और साधन के विषय में उनके बीच राजकीय, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि व्यवस्थाओं में जो थोड़ा बहुत अंतर नजर आता है, वह इसी दृष्टि-भेद के कारण ही पैदा होता है। वास्तविकता यह है कि गांधी जी का यह दृष्टि-भेद मात्र मार्क्स के साथ ही नहीं है वरन् पूँजीवाद या यंत्रोद्योगवाद के साथ भी है। पूँजीवाद और साम्यवाद के

बीच चाहे जितने भी मतभेद मौजूद क्यों न हों, परन्तु अनेक महत्व की बातों की बावत दोनों की मान्यताएं एक सी ही हैं। उदाहरण के लिए, दोनों ही यंत्रोद्योगों की और धन की पूजा करते हैं। दोनों का ही पूँजी और जमीन के केन्द्रीय नियंत्रण पर और बड़े पैमाने पर खेती और उद्योगों पर विश्वास है, और दोनों ही धन की अर्थव्यवस्था को मानने वाले हैं। उनका झगड़ा पूँजी व यंत्रोद्योगों के स्वामित्व और उत्पादन के वितरण के बारे में है। दोनों का ही प्रयत्न अपने-अपने वर्ग का अधिकार और भाग बढ़वाने का होता है।

एक रास्ता जब दो शाखाओं में बँट जाता है तब उसकी दोनों शाखाओं के बीच का अन्तर शुरुआत में तो दो चार अंक ही होता है, परन्तु आगे चलने पर एक दूसरे के बीच में सैकड़ों मील का अन्तर पड़ जाता है। कन्याकुमारी के पास अंग्रेजी अक्षर y लिखकर उसके ऊपर की शाखाओं को लम्बा किया जाय तो एक रास्ता पेशावर ले जायेगा और दूसरा नेपाल में चला जायेगा। इस प्रकार जीवन और जगत को मनुष्य चेतन का आविर्भाव समझें या प्रकृति का विकास समझें। व्यवहार में दोनों के बीच का अन्तर इतना थोड़ा होता है कि मालूम नहीं पड़ता। लगता है मानो एक आने को चार पैसा कहने का झगड़ा हो रहा हो। इसी कारण अनेक ऊपरी बातों में गाँधी और मार्क्स दोनों एक ही निर्णय पर पहुँचते नजर आते हैं। लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। दोनों के विचारों पर जब अमल किया जाता है, उस समय उनका भेद सामने आता है।

गाँधी और मार्क्स में जो समान बात है वह यह कि दोनों के दिल में मानव-वंश के करोड़ों अन्न-वस्त्रहीन दलित-शोषित साधनहीन, ज्ञानहीन लोगों को जंगल के जानवर की तरह हांके जाते और मार खाते देख उनके प्रति घोर सहानुभूति और चिन्ता है। मानव समाज का अधिकांश भाग ऐसे ही लोगों का है, और विचित्रता यह है कि इनकी बुरी हालत ऐसी दुनिया में है जिसमें सुख के साधनों की कोई न्यूनता नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति आराम से रह सके और अपना उत्कर्ष कर सके, इतनी संपत्ति उसमें इतनी महान संस्कृतियां पिछले जमाने में विकसित हो चुकी हैं और आज भी मौजूदा है कि उसमें वारंबार समृद्ध और उच्च एवं उमदाकोटि के साहित्य, कला, विज्ञान, हुनर, उद्योग, राजकारबार, भव्य संस्थाओं, शहरों और मकानों की रचना हो चुकी है, आत्मा एवं प्रकृति के गूढ़ रहस्यों के विषय में इतना विशद व उच्च शोध हो चुका है, काम और आराम के ऐसे ऐसे साधन पैदा किये गये हैं जिनकी एक जमाने में केवल परियों की बातों और कथाओं में ही केवल कल्पना की जा सकती थी। गाँधी और मार्क्स दोनों के ही दिल में यह इच्छा थी कि समाज की एक ऐसी व्यवस्था

कायम की जानी चाहिए जिससे कुदरत और मानव बुद्धि की इन बक्शीसों का हरेक को एक सरीखा लाभ मिल सके।

परन्तु जहां गाँधी जी साध्य की सिद्धि के लिए सत्य और अहिंसा का आग्रह करते थे, वहां मार्क्सवादी (अथवा मार्क्स और मार्क्सवादियों के बीच यदि उतना अंतर हो जितना गाँधी जी और गाँधीवादियों के बीच है, तो मार्क्सवादी) साधनों के गुण दोष के संबंध में किसी भी प्रकार का आग्रह नहीं रखते। जैसे भी साधक को जल्द से जल्द सिद्धि प्राप्त होती प्रतीत हो उस साधन को काम में लाने में उनको कोई बाधा नहीं प्रतीत होती।

यहीं एक सवाल यह उठता है कि इतनी विशाल बुद्धिवाले, उदारमना, एक सरीखे महान और पवित्र ध्येय की प्रेरणा देने वाले दोनों महात्माओं के बीच मानव-जीवन से संबंधित इतने महत्व की बात के बारे में इतना मतभेद क्यों हुआ होगा ? इस मतभेद का असली कारण खोज निकाला जा सकता है या नहीं, यह तो अलग बात है; परन्तु इससे यह निष्कर्ष तो निकले बिना नहीं रहता कि किसी एक या कदाचित दोनों के तर्क में कुछ न कुछ दोष अवश्य है अथवा जिन चीज़ों को ये लोग सच मानकर चले हैं, उनकी सत्यता में संदेह है।

सैकड़ों वर्षों से दुनिया के तत्वज्ञानी और वैज्ञानिक इस बात की चर्चा करते आ रहे हैं कि इस जड़-चेतन दुनिया के मूल में क्या चीज़ है ? इसमें मूल तत्व एक है, दो हैं, या अधिक हैं ? चेतन में से जड़ पैदा हुआ या जड़ में से चेतन ? चेतन को स्वीकार किया जाये तो यह सवाल उठता है कि आत्मा एक है या या अनेक ? इस चर्चा का कहीं अंत भी होगा या नहीं, यह कह सकना मुश्किल है। और हरेक युग में कोई न कोई व्यक्ति ऐसा मिल ही जाता है जो इस विषय पर तरह-तरह के वाद रच देता है। यह मतभेद मात्र 'काव्यशास्त्र-विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्'—पंडितों में अपना समय काटने और घड़ी भर रसिक चर्चा का आनन्द लूटने का विषय होता तो दूसरी बात थी। परन्तु ऐसा नहीं है। इसका असर मानवमात्र के पूरे व्यवहार पर पड़ता है। एक दृष्टि को स्वीकार किया जाये तो दुनिया की रचना और उसमें व्यक्ति का स्थान एक प्रकार का बनाने की कोशिश की जाती है, दूसरी दृष्टि से दूसरे प्रकार की, तीसर दृष्टी से तीसरी प्रकार की। इन वादों की संख्या घटवाने में विज्ञान की प्रगति से कुछ न कुछ मदद अवश्य मिल सकती है और मिलनी संभव भी है। परन्तु अमुक सहायता अवश्य मिल सकती है और मिलनी संभव भी है; परन्तु अमुक सीमा के बाद विज्ञान का आधार केवल कल्पना और तर्कशास्त्र ही रह जाता है। जड़-चेतन का संबंध जोड़ने की सच्ची कड़ी आज भी मानव की दृष्टि से परे है। परन्तु जो कुछ विचारधाराएँ प्रचलित हैं वे सब वाद-थियरी-मात्र हैं।

परन्तु दुराग्रही मनुष्य किसी एक वाद पर अपनी पूरी श्रद्धा और आस्था समर्पित करके उसी को सोलहों आना सच मानकर नहीं चलता। परन्तु दुनिया की तमाम व्यवस्थाएँ इस सिद्धान्त में से निकलने वाले निष्कर्षों के आधार पर निर्णय कराने का आग्रह करती हैं, और इसके लिए असत्य और बल का उपयोग भी करती हैं।

इन तमाम वादों में दो वाद ऐसे हैं जो मानते हैं कि जगत के मूल में एक ही तत्व है, दो या अधिक नहीं। गाँधी और मार्क्स दोनों को एक-तत्ववादी कहा जा सकता है। परन्तु यह एक क्यों, इस संबंध में दोनों में तीव्र मतभेद है। गाँधी की दृष्टि में मूल तत्त्व चैतन्य-रूप है। जिसे जड़ सृष्टि कहा जाता है वह केवल चैतन्य के लिए ही है। उसकी स्वतंत्र हस्ती नहीं। मोटी बात है यह कि चेतन के अभाव में उसकी हस्ती का कोई प्रमाण नहीं मिल सकता। जड़ चेतन जगत की उत्पत्ति, स्थिति और विलय चैतन्य से ही है और चैतन्य में ही होती है। यही एकमात्र चिरन्तन और सदा रहने वाली हस्ती है, और दूसरी शक्तियाँ व उनकी किरणें अथवा मात्राएँ जितनी भी हैं और जो कुछ भी हैं वे सब परिवर्तनशील हैं, तथा पल-पल बदलती रहती हैं। चैतन्य ही तीनों काल में एकरूप रहने वाला सत्य है और यह एक ऐसा अनुभूत गूढ़ तत्त्व है जिसका हरेक से सदैव परिचय होता रहता है। फिर भी यह नज़र नहीं आता और अधिकांश लोग तो ज़िन्दगी भर इससे अनजान रहते हैं। इतना ही नहीं, कितने ही तो इसके अस्तित्व के संबंध में ही शंका करते हैं। जो इसको स्वीकार भी करते हैं, उनमें से अधिकांश भी केवल श्रद्धा के कारण ही स्वीकार कर सकते हैं। जिस प्रकार पानी की एक बूँद में जल के वे सब सम्पूर्ण तत्त्व मौजूद होते है, जितने विशाल महासागर में होते है, उसी प्रकार एक सूक्ष्म से सूक्ष्म जन्तु में भी उतना ही चैतन्य होता है जितना एक विशालकाय सिंह, हाथी अथवा महाबुद्धिमान मनुष्य में होता है। प्रगट रूप में उनकी शक्तियों में चाहे जितना भी अंतर हो, परन्तु मूल में सभी में रहने वाली चीज एक ही होती है और समान होती है। सोये हुए सिंह की शक्ति देखने में तो आती नहीं, परन्तु नज़र से छिपी रहती है, इसका अर्थ यह नहीं कि वह है ही नहीं। इसी प्रकार हमारी पूरी शक्ति प्रगट हुई हो या न हुई हो, परन्तु अणु-अणु में चैतन्यता पूरी-पूरी छिपी रहती है। साथ ही चैतन्यता का दूसरा अद्भुत रहस्य यह है कि कीटाणु से लेकर बड़े से बड़े प्राणी तक प्रत्येक अलग-अलग हस्ती में यह अलग, स्वतंत्र और संपूर्ण प्रतीत होती है हालाँकि सभी में एक ही अखण्ड आत्मा होती है। नन्हा जन्तु बड़े प्राणी या पामर और पापी मनुष्य महात्मा से असल तत्व की दृष्टि से अलग पदार्थ नहीं होता जिस प्रकार

कोयले और हीरे में रूप, कीमत, गुण आदि में अन्तर होता है, हालांकि दोनों एक ही कार्बन के दो रूप होते हैं; उसी प्रकार जीवमात्र के संबंध में होता है। यह भेद कुछ गूढ़ रचनाओं के कारण पैदा होता है, जिसके फलस्वरूप हम सब में पूरी तरह समानता नहीं होती, परन्तु सभी में एक ही मूलतत्व है इस विषय में गांधी जी के विचार से शंका के लिए कोई स्थान नहीं। जड़-चेतन, गुण-दोष, छोटा-बड़ा जैसी अनेक विचित्रता से भरे इस विश्व में एक ही चैतन्य सत्ता है, परम सत्य कहो, परमात्मा कहो, ब्रह्म कहो, यह सब एक ही मूल चैतन्य वस्तु है, हरेक मनुष्य, पशु, पंछी, बनस्पति, कीट एवं कीटाणु की अपने में और दूसरों में अनुभव भी इसी विश्व-चैतन्य के ऊपर ही आश्रित है। ऐसा उसकी अनंत शक्ति के अलग-अलग आविर्भाव के परिणामस्वरूप है। सभी, में मूल तत्व तो यही आत्मा है जिसमें मैं, तुम और मेरे-तेरे का भेद कर सकने का अवकाश नहीं।

जिस रूप में मैं समझ सका हूं उसके अनुसार जड़ चैतन्यमय विश्व के संबंध में गांधी की यह भूमिका थी। इसके साथ ही एक दूसरी महत्व की बात समझ लेनी ज़रूरी है।

गांधी जी एक आत्मा को मूल और एकमात्र तत्व मानते थे और इस मान्यता के लिए गीता, उपनिषद् आदि ग्रंथों को इसका प्रमाण मानते थे; परन्तु कुछ वाद ऐसे हैं जो इस सिद्धांत में गांधी से बिल्कुल उल्टा और कई एक बातों के बारे में साम्यवाद से मिलता-जुलता निष्कर्ष निकालते हैं, उसके साध्य एवं साधनों को स्वीकार करते हैं।

जड़ चेतनमय समग्र सृष्टि को एक ही आत्मतत्व का आविर्भाव मानकर गाँधी जी ने इसमें से जो बोध ग्रहण किया था वह इस प्रकार था :

"अब हौं कासो बैर करौ ?" जो सब प्रकार से ईश्वर का ही रूप है, और मैं भी मूलतः वह ही हूँ, तब फिर मैं किसके साथ वैर करूँ ? किसको खराब कहूँ ? किससे द्वेष करूँ ? किससे डरूँ ? किसको डराऊँ ? किसको अपना, किसको पराया लिखूं ? किसको छोटा, तुच्छ और बलिदान करने योग्य समझूं ?

असल में मैं उसका हूँ तब भी उसका ऐसा कोई कानून है जिसने अपने शरीर के साथ मुझे ऐसे बंधन में बाँध लिया है कि इसके प्रति मोह और इसको स्वस्थ और जीवित रखने की इच्छा एकदम छोड़ी नहीं जाती। मैं अपने भीतर दोष रहते हुए भी आत्म-हत्या नहीं करता; इतना ही नहीं, वरन् ऐसा काम करना अनुचित मानता हूँ। तब फिर किसी अन्य में दोष देख कर मैं उसे मरवाने योग्य कैसे कहूँ ?

यह सच है कि समग्र विश्व भगवान का रूप है और मैं कुछ नहीं, यह निष्ठा भी अभी एक श्रद्धा के रूप में ही है; यह स्थिति भेदभाव, रागद्वेष हिंसा वगैरह से भरी हुई है, और जाने-अनजाने हम इसी प्रकार व्यवहार करते रहते हैं। परन्तु अपनी यह दृढ़ श्रद्धा है कि यदि यह निष्ठा ही सत्य है, तो अपना प्रयत्न ठीक इसी स्थिति तक पहुँचने का होना चाहिए। यह तो हो ही सकता है कि अहिंसा को ही अपना परम धर्म मानकर अपनी जीवन-साधना करें। इसकी मदद से जीवन के तमाम व्रतों तथा धर्मों और समाज-रचना आदि विचारों और साधनों के संबंध में शोध करें। मैं इसमें यदि हिंसा करूँ, दुष्टों को दण्ड देने आदि की व्यवस्था में योग दूं, और इस प्रकार के कार्य करना अपना अधिकार मानूं तो निष्ठा केवल खाली पंडिताई ही बनी रहेगी।

भगवान और आत्मा का तत्वज्ञान मानने वाले दूसरे वादों और गाँधी के बीच मोटे तौर पर यही मतभेद, है। अधिकार-भेद, संप्रदाय-भेद, जाति-भेद, धर्म-निष्ठा, देश-निष्ठा आदि के आग्रह में किसी न किसी रूप में दण्ड, हिंसा, द्वेष आदि कराना तथा असुरों एवं अधर्म का प्रचार करने वालों का नाश, संतों की रक्षा आदि करना अपना अधिकार मान लिया जाता है। और आत्मवाद से इन सबका समर्थन प्राप्त किया जाता है। गांधी जी ने आत्मनिष्ठा से इस प्रकार का बोध नहीं लिया।

डाक्टर ज़िवागो : प्रथम परिचय

'दर्शक' मनुभाई पंचौली

प्रिय भाई,

बम्बई एक सप्ताह रह सका। मेंज़बान के यहां "डा० ज़िवागो" दिखी। चलते वक्त साथ ले ली। ट्रेन में पूरी पढ़ने के बाद जो उसकी प्रथम छाप पड़ी वह लिख रहा हूँ।

पास्टरनाक ने स्वयं इसे अपनी गम्भीरतम कृति कहा था, इसलिए इसके सम्बन्ध में जो विवाद उठा, यह ठीक ही है। कला को किसी वाद या विचार का पक्ष नहीं लेना चाहिए, बल्कि अपने सौन्दर्य-धर्म से ही बँधे रहना चाहिए। आमतौर पर यह माना जाता है कि यदि लेखक अपने इस धर्म से चूक गया तो भारी क्षति का अनुभव उसको स्वयं होगा। इस सामान्य मान्यता में कितनी सचाई है यह वाद-विशेष के प्रचार के लक्ष्य से लिखी गयी कृतियों से ही सिद्ध हो जाता है। खुद रस में ही वाद-प्रचार के लिए ही अन्य देशों की तुलना में कहीं अधिक पुस्तकें लिखी गयी हैं, इसलिए विवेचकों के मतानुसार पिछले कुछ अर्से में वहां उत्तम कला-कृतियों का सर्जन कहाँ हो पाया है? स्टालिन-पारितोषिक प्राप्त "रेनबो" का जो अनुवाद हुआ है उसको पढ़कर इस कथन की पुष्टि की जा सकती है। यहाँ दैवदुर्विलास यह है कि स्वयं जिन लोगों ने कला को गौण और वाद-महिमा को मुख्य मानकर अपनी रचनाओं का सृजन किया है, वे भी पास्टरनाक की इस कृति पर विकृत प्रचार-साहित्य होने का आक्षेप करने का प्रयास करते हैं। प्रचार के लिए किसी कलाकृति का रूप विकृत कर देने का आक्षेप यदि आ सकता है तो रूसी लेखक-मण्डल पर ही अधिक आ सकता है। लेकिन जहाँ सरस्वती की बेड़ियों को उनके आभूषण और आभूषणों को बेड़ियों के रूप में माना जाये, वहां वाद-विवाद निरर्थक ही होगा।

क्या पास्टरनाक की कृति प्रचार-साहित्य की श्रेणी में आयेगी ? क्या इसमें मातृभूमि की निन्दा की गयी है ? या किसी का पक्ष लिया गया है ?

रूस के प्रति पास्टरनाक का प्रेम तो उनके रूस छोड़ने से इन्कार कर देने से ही प्रगट हो जाता है। इससे भी बड़ा प्रमाण यह है कि उन्होंने अपनी प्रियतमा लारा को रूस की प्रतिमूर्ति के रूप में माना है। उपमा और उपमेय में साम्य होना चाहिए—इस नियम के अनुसार लारा की रूस के साथ तुलना करने की बात रूस के प्रति पास्टरनाक के गाढ़े प्रेम को प्रगट करने वाली है। देश और उसके राज्यकर्त्ता वर्ग या उसकी राजव्यवस्था एक ही चीज़ नहीं। देश के प्रति उत्कट प्रेम ही अनेक बार राजकर्त्ता वर्ग अथवा राज-व्यवस्था के सम्बन्ध में विरोध करने की प्रेरणा देता है। नन्हें से विकर्ण ने इसी कारण अपने भाई दुर्योधन का विरोध किया था और विभीषण ने लंका को बचाने के लिए अपने बड़े भाई रावण की भर्त्सना की थी। परन्तु विभी-षण ने ही लंका का त्याग किया था, पास्टरनाक को तो रूस में रहना ही इष्ट था। इनमें से किसने अधिक ठीक काम किया ?

अदूरदर्शी लोग ही यह मानते है कि अपनी हाँ में हाँ मिलाने वाले ही हमारे मित्र हैं और हमसे अलग बात कहने वाले सब लोग हमारे दुश्मन हैं। एक वक्त ऐसा भी आयेगा जब रूस वाले भी यह मान लेंगे कि "डा० ज़िवागो" लिखकर पास्टरनाक ने हमारी सेवा की है।

अपने देश के प्रति पास्टरनाक की ममता विशेष रूप से प्रगट होती है रूस की भूमि के प्राकृतिक वर्णनों में; रूस के विशाल मैदानों, उसकी नदियों और प्रपातों, उसके जंगलों, उसके चन्द्रोदय, उसके कुहरे, उसके हिमपात, उसकी बर्फीली हवाओं, उसके सूर्योदय, इन सभी ने पास्टरनाक के कवि हृदय को इस प्रकार जकड़ रखा है कि बारम्बार जिस प्रकार विरही को प्रिय जन की छवि का ही स्मरण होता रहता है, उसी प्रकार वह उसका वर्णन करता रहता है। इसका इतना विस्तार यहाँ हो गया है कि कथा प्रवाह में भी कभी-कभी (सामान्य रूप से नहीं) व्यवधान आ जाता है। फिर भी "डा० ज़िवागो" में काव्य की ताज़गी लाने में प्रकृति वर्णन का बहुत बड़ा योग है। अपने पात्रों की आकृति उनकी आदतों और रूप-रंग के वर्णन द्वारा टाल्स्टाय जिस कौशल से खड़ी करते हैं, वह यहाँ नहीं मिलती। टाल्स्टाय की कृति "युद्ध और शान्ति" में दर्जनों पात्र आते हैं। परन्तु उन दर्जनों पात्रों की सुस्पष्ट छवि पाठकों के मन में उभर आती है। टाल्स्टाय वर्णनों में भी इतने ही सिद्ध हस्त हैं। बोरोडिनों के युद्ध से पहली बात का वर्णन छोटा होने के बावजूद इतनी ही चोटदार भाषा में किया गया है। ऐसे बहुत से वर्णन मिल जायेंगे।

फिर भी यह कहना पड़ेगा ये सब वर्णन उन्होंने अपने आपको बिल्कुल तटस्थ रख कर किये हैं। इस प्रकृति-शोभा में वे बिल्कुल लीन नहीं हुए। पास्टरनाक अपने वर्णनों में स्वयं तल्लीन हो गये हैं, ऐसा प्रतीत होता है। ये वर्णन ऐसे लगते हैं जैसे उन्होंने काव्य-रचना की हो।

"युद्ध और शान्ति" के साथ 'डा० ज़िवागो" की तुलना की जा चुकी है। दोनों ही कृतियों में कथा-पट का विस्तार काफी लम्बा है, और हमदर्दी का एक नाद दोनों में चलता है जिससे दोनों के बीच साम्य का पता चलता है। लेकिन एक कलाकृति के रूप में "डा० ज़िवागो" और "युद्ध और शान्ति" के बीच बड़ा अन्तर है। इनकी तुलना करना तो दुःस्साहस माना जायेगा। स्वयं लेखक के मन में ऐसी ही कुछ बात प्रतीत होती है, क्योंकि उन्होंने भो टाल्सटाय की "युद्ध और शान्ति" में की गयी इतिहास की गणना पर टीका की है और उसमें कुछ बातों की पूर्ति होनी चाहिए, यह भी कहा है। पर यहां उन्होंने इतिहास का जो अवलोकन प्रस्तुत किया है वह न तो गहरा है और न व्यापक।

मेरा विनम्र मत तो यह है कि सागर को जिस प्रकार सागर की ही उपमा शोभा देती है उसी प्रकार "युद्ध और शान्ति" की शोभा भी "युद्ध और शान्ति" की उपमा से ही हो सकती है। "डा० ज़िवागो" की उसके साथ तुलना करना आवश्यकता से अधिक उत्साह दिखाने के बराबर होगा। "डा० ज़िवागो" का मुख्य उद्देश्य तो व्यक्ति के मूल्य की फिर से प्रस्थापना करने का नजर आता है, भले ही कोई किसी वाद को माने या न माने। क्रान्ति की धुन, क्रान्ति के सूत्रों और योजनाओं में व्यक्ति दब ही न जाय, वे यह चेतावनी देते हैं। बहुत से उसमें दब ही चुके हैं, बहुत से उनके इशारों पर नाचने लगे हैं, लेकिन वे स्वयं और लारा दोनों ही किसी के इशारे पर नाचने को तैयार नहीं हैं। परन्तु क्या यह भी ठीक है कि उन दोनों का व्यक्तित्व, उनकी सही आकृति उनके इस कार्य के फलस्वरूप उभर कर आती है? इसके फलस्वरूप उनके साथी अथवा विरोधी आमने-सामने हमें कभी मिल जायें तो हम उनको ठीक से पहचान भी सकेंगे? या पास्टरनाक यह जताना चाहते हैं कि इस सामूहिक युग के धुँधले वातावरण में अलग व्यक्तित्व बनाकर क्या करना है? सभी एक जैसे ही हैं। यह बात अगर हो भी तो गले से उतरने वाली नहीं है। इस जोर जबर्दस्ती के सामने इन दोनों व्यक्तियों का आक्रोश ही है, साथ ही अन्य लोगों की चीखें भी इसमें हैं। इन सबको पास्टरनाक हमारे सामने उपस्थित नहीं कर सका है—इसे एक समर्थ कलाकृति के लिए क्या साधारण बात कहा जा सकता है? ज़िवागो को रूसी क्रान्ति और आज की

व्यवस्था के विषय में बहुत कुछ कहना है । परन्तु क्या ज़िवागो अपने जीवन के कार्य से कुछ भी स्पष्ट कर सकता है ? हरेक व्यक्ति की कीमत होनी चाहिए । उसे चल सम्पत्ति अथवा तृणवत् नहीं समझना चाहिए । यह तो नकारात्मक बात हुई । उसे सकारात्मक किस बात का प्रतिपादन करना है ? अपने जीवन से उसने क्या संदेश दिया है ? उसने और उसके समर्थकों ने प्रतिकार स्वरूप क्या किया है ? उसने दूसरों के साथ मिलकर दूसरा रास्ता दिखाने के लिए क्या कोशिश की है ? कम्युनिस्टों या राज्यकर्त्ता वर्ग का ठीक रास्ता न होने के कारण लोगों को अपार कष्ट उठाना पड़ रहा था, यदि ऐसा था तो ज़िवागो ने लोगों के साथ एक रूप होकर क्या किया था ? लोग तो वहाँ थे ही, वह खुद जिस प्रकार कुटुंबियों से बिछुड़ गया था, नारेबाजों के पंथ में था, उसी अवस्था में और लोग भी तो थे या कुछ अंतर था ? रूसी क्रान्ति और गृह-युद्ध ने ज़मींदारों व निहित स्वार्थों के विरुद्ध इस काल में जो चेतना फैलाई, उसकी इसमें अवहेलना क्या न्याय है ? परन्तु यह बात जाने दीजिये । ज़िवागो रूदन ही करता है, रचना क्या करता है ? टाल्सटाय का पीयरे अपने यहाँ के अमीरों से त्रस्त था और लड़ाई चालू रखने वालों से परेशान था परन्तु उसका काम रुकता नहीं था—वह नैपोलियन का खून करने जाता है; सैनिक जब लोगों को यातनाएं देते होते हैं, उस समय उनको बचाने के लिए बीच में पड़ता है और फिर सामान्य नज़र-कैदियों के साथ चल कर उनके जीवन से कुछ ग्रहण करने का प्रयास करके ही चैन लेता है ।

ज़िवागो का क्या है ? क्या उसे जीवन-सार मिला ? पाठकों को वह क्या दे जाता है ? परिस्थितियों के सामने पड़कर वह टूट जाता है । यह तो कहा जा सकता है कि उसमें निर्णय-शक्ति पहले ही काफ़ी कम थी जो अन्त में तो और भी कम रह गयी । इसके अलावा, लारा के जाने के बाद उसने क्या अपने नौकर की लड़की मरीना से शादी की ? यह सब क्यों हुआ ?

"युद्ध और शान्ति" के महत्वपूर्ण पात्रों के लिए युद्ध किसी न किसी प्रकार मोक्ष का साधन बन गया है । मेरी निकोलस, एण्डी, पीयरे, नताशा, सभी की कोई न कोई समस्या हल हो गयी थी और ये सभी कुछ हलके होकर युद्ध के ध्वंसावशेषों पर से उठे थे । क्या पास्टरनाक की कृति भी हमें व अपने पात्रों को रूसी कम्युनिस्टों की ग़लतियों के ध्वंसावशेषों से उभार पायी है ? अंत तो विशेष रूप से बड़ा ही असंबद्ध और काफ़ी कृत्रिम लगता है ।

ज़िवागो क्रान्ति, गृह-युद्ध और विश्वयुद्ध तीनों में से होकर गुज़रा है । परन्तु उसकी समस्याएँ हल नहीं होतीं । उसके प्रति अपनी दया अवश्य उत्पन्न

होती है, परन्तु यह केवल उसकी प्रतिभा का तेज समाप्त हो जाने के कारण, उसके तेजस्वी पुरुषार्थ या वैचारिक मूल्यांकन के लिए नहीं।

पढ़ते-पढ़ते ऐसा ज़रूर लगा कि लारा ने ऐसा कोई गुनाह अथवा षडयन्त्र नहीं किया था कि उसे इस प्रकार भागना पड़ जाये। या शायद उसे विभिन्न शक्तियों का सही आभास नहीं था। फिर भी यह बात सच है कि "डा० ज़िवागो" में महान् रूसी गद्य-लेखकों की महाकथा शैली में सामान्य मानव के अधिकारों का चित्रण करने की कोशिश की गयी है और क्रान्ति का सही मूल्यांकन करने की हिम्मत भी दिखाई गयी है। इस विस्मृत परम्परा की याद दिलाई गयी है कि साहित्यकार का लीलास्थान, प्रेरणा—भूमि, व्यक्ति है और मानव को पीड़ा पहुँचाने वाली बात अथवा वाद की चीरफाड़ करने का साहित्यकार को पूरा हक है। इसलिए नहीं कि वह अमुक वाद की तरफ़दारी अथवा अमुक वाद का विरोध करना चाहता है, बल्कि इसलिए कि उसने मानव, अखण्ड मानव, की पैरवी करने का बीड़ा आप उठाया है। बुलन्द स्वर में हमेशा उसे कहना है कि पगड़ी सिर के लिए होती है, सिर पगड़ी के लिए नहीं होता।

विविध प्रकार के समूहवादों और तानाशाहों के संघर्ष के बीच यह बात कहने के लिए असाधारण प्रतिभा होनी चाहिए।

तुम्हारा
मनुभाई

महादेव भाई की डायरी से

•

महादेव देसाई

2-8-32 आज सवेरे जरा सूरज निकला ही था कि वापू ने तमाम चादरों आदि को हवा लगवा देने की सूचना भेजी। बाद में एक किस्सा भी सुनाया। यह सूचना भेजते समय उनको डरबन में डाक्टर नानजी की स्काटिश पत्नी की याद आई जो कपड़े बड़े अच्छे धोती थी। वह रोज़ कपड़े न धोये या उनमें साबुन भले ही न लगावे, परन्तु उनको हवा खूब अच्छी तरह लगाती थी। उन्होंने कपड़ों को हवा में डालने के गुण समझाये थे, वह भी बापू ने कहा। यह बताने के बाद डा० नानजी के यहां बा को रखने और उनका आपरेशन करने की बात बतायी; बा की सहनशक्ति का उसे अच्छा नमूना कहा जा सकता है।—बा का हृदय कमज़ोर था, इसलिए क्लोरोफार्म शायद बरदाश्त न कर सकें इसलिए क्लोरोफार्म दिये बिना आपरेशन किया गया। बापू दूर खड़े थे, वे खुद थर-थर कांप रहे थे—बा की भौंहें कष्ट से सिकुड़ गयीं लेकिन उन्होंने जरा भी दर्द की आवाज़ नहीं निकलने दी। बापू बोले, "मैंने कहा, 'तो जाऊँ; देखना हिम्मन मत हारना', लेकिन खुद मैं तो काँप रहा था, मुझ से वह सब देखा नहीं जा रहा था।" मैंने बापू से कहा, "इसे तो सहनशक्ति का चमत्कार कहना पड़ेगा।" बापू बोले, "हां उसमें वक्त काफ़ी लगा; और टीसें उठती होंगी, लेकिन बा ने अजब सहनशक्ति दिखायी। यही हिम्मत उन्होंने बीफ-टी न लेने में दिखाई; उन्होंने कह दिया, "मुझे मरना होगा तो मर जाऊंगी लेकिन इसको लेकर जीऊंगी नहीं।"

साँझ को बापू ने पूछा, "···की 61वीं जन्मतिथि कब है भला ?

वल्लभभाई : क्यों, क्या काम है ? आपको क्या पत्र लिखना है ?

बापू : हां,। सबको लिखता हूं तो उसने क्या खता की है ?

वल्लभभाई : कोई आपसे पूछे. आपके पास संदेश मँगावे तो लिख भेजना दूसरी बात है, लेकिन आप तो यहाँ जेल में बैठे हैं, आपको लिखने की क्या जरूरत ?

बापू : ऐसा कैसे हो सकता है ।······की रचनाओं में······को बहुत ऊंचा स्थान दिया गया है । लेखकों में उसकी गणना पहले-दूसरे स्थान पर की जाती है ।

वल्लभभाई : (कुछ देर चुप रहे । फिर बोले) गणना की जाती होगी ।

बापू : होगी क्यों ? है ।

वल्लभभाई : इससे क्या ? इतने डरपोक आदमी के बारे में लिखकर उसे प्रोत्साहन देने की क्या जरूरत है ? देश में दावानल सुलग रहा है और वह बैठा-बैठा वहाँ लेख लिख रहा है ।

बापू : उसके लेखों से सेवा नहीं होती, यह कैसे कह सकते हो ?

वल्लभभाई : विद्वानों के लेखों से जरा-सी भी सेवा नहीं होती । विद्वान जन पढ़ने-लिखने का चक्कर लगाये रखते हैं और ऐसा करके उल्टा नुकसान पहुंचाते हैं । इन्सानों को पढ़ने-लिखने के मोह में डाल कर किसी काम लायक नहीं छोड़ते जो बेकार कर दे ऐसी विद्या और लेखन से क्या लाभ ?

बापू : ···के लेखन के बारे में यह कहना क्या उचित होगा ? मैंने उनका लिखा······का जीवन चरित्र नहीं पढ़ा है, लेकिन यह जीवन-चरित्र क्या मानव को बेकार कर देने वाला है ?

वल्लभभाई : लोग उनका लिखा जीवन-चरित्र पढ़ेंगे या उनका चरित्र देखेंगे ?

बापू : उनके चरित्र में क्या खोट है ? तुमको खबर है, 1916-17 में विलिंग्डन ने लड़ाई के संबंध में टाउनहाल में मीटिंग बुलाई थी और उसमें सबसे लड़ाई में मदद करने की अपील की थी ? तिलक के पक्ष वालों की ओर से यह संशोधन प्रस्तुत करने का निश्चय किया गया था कि अमुक शर्तों पर मदद की जा सकती है, नहीं तो सभा छोड़ के चले जाने का निर्णय किया गया था । उस पक्ष की ओर से······खड़े हुए । सभी ने खूब हंसी उड़ाने का प्रयत्न किया, पर वे अडिग खड़े रहे और जो कहना था, सब कुछ कह कर सब सभा त्याग कर चले गये ।

वल्लभभाई : ओ हो । ये नाटक तो उनको करना आता ही है ।

बापू : तो फिर तुम चाहते क्या हो उनसे ?

वल्लभभाई : क्या कोई त्याग नहीं करना चाहिए उन्हें ?

बापू : क्या जेल जाना ही त्याग माना जायेगा ?

वल्लभभाई : मैं यह नहीं कहता। पर मैं उनको जानता हूँ और आप उनको नहीं जानते, इसलिए क्या कहूं ? वे तो छोटे से छोटा त्याग करने और अधिक लाभ प्राप्त करने में विश्वास रखते हैं।

बापू : हां, यह तो उसकी फिलासफी है।

वल्लभभाई : यही तो बात है। धिक् है ऐसी फिलासफी पर। अपनी तरफ से थोड़े से थोड़ा त्याग किया जाय, लोग चाहे जितना ख्वार हो जायें और ज्यादा से ज्यादा लाभ आप उठायें।

बापू : ध्यान रखना। यह सब मैं उनको बताने वाला हूँ।

वल्लभभाई : उन्हें मैं ही यह सब बताने को तैयार हूँ, और बता भी चुका हूँ······में सब लोग जमा हुए थे। वहां सभी कहने लगे,······ निवृत होने वाले हैं। मैंने कहा : वे निवृत्त नहीं होने के। उनको निवृत्त होने का क्या हक है ? सार्वजनिक जीवन में वे झख मारने के लिए आये थे ? सार्वजनिक जीवन में आने के बाद कोई निवृत्त नहां हो सकता।

बापू : इसमें उनकी क्या गलती ? वे तो बिचारे काम करते ही होते, पर उनके काम के बीच में मैं आ गया और उनकी बाजी उलट गयी। उनकी मेरे प्रति श्रद्धा नहीं हो इसलिए वे चुप बैठ जायें और निवृत्त होने का विचार करें तो इसमें क्या आश्चर्य।

वल्लभभाई : ठीक है, उनको लिख दीजिये। आप तो 'सत्यमपि प्रियं वदेत' सिद्धान्त के मानने वाले हैं।

बापू : महादेव, यह वाक्य इसने सीख लिया है क्या ?

मैं : हां बापू, और कल से तो गीता-प्रवेश होगा। और ये तो गीता पढ़ने के बाद उसमें से ऐसा अद्भुत अर्थ निकालेंगे कि सब चक्कर में पड़ जायेंगे। सोने जाते समय मैंने उनसे पूछा : आप कल से गीता का पाठ करेंगे न ? तो उन्होंने कहा : "आदौ वा यदि वा पश्चात् वा वेदं कर्म मारिष"। उस दिन जब मैं जेल सुपरिंटेंडेंट के बारे में कुछ टीका-टिप्पणी कर रहा था तो उन्होंने मुझसे कहा : 'नेनत्व-य्युपपद्यते'। और 'सैक्स' के लिए 'कृतार्थोऽहं' बारंबार कहते हैं।

प्रार्थना

कु० धीरू बहेन पटेल

घर में हम तीन जन रहते हैं। मैं अक्षय और तीसरा एक जन। कौन है यह तीसरा व्यक्ति इसका पार मुझे नहीं मिल सका। अक्षय चिढ़ जाता है, मैं चुप रहती हूं। कई बार रो लेती हूं।

आकाश में एक पर्वत है

दोनों ओर बराण्डों के चौरस, सकरे, लम्बे-लम्बे मार्ग में मैं श्वास भर कर दौड़ती रहती हूं। इस अंधकार में, इस हवा में, क्या खोजना है, इसका भान अस्पष्ट होकर बिखर जाये, फ़क़त इतनी तन्मयता से मैं दौड़ती हूं। इसके दूसरे सिरे पर शुभा नहीं थी। मैं और शुभा एक ही तो हैं। पानी में से बरफ का आकार जैसे ऊपर आ जाता है, ऐसे ये अलग से आ गयी—मेरी शुभा।

इसका नाम उदय है

इसके बाद दिन पर दिन हम दोनों का एक अलग ही जीवन हो गया। उफान और आत्मीयता से भरा, सारी दुनिया से स्वतंत्र। वाणी से बंधे पुल से हमें आना-जाना नहीं पड़ता तो हमारे दो अलग-अलग घर न होते। हमारी इस निकटता से अक्षय की खीझ बढ़ती। वह चाहता था कि मैं फिर लौट कर झट-पट अपनी विशाल दुनिया में आ जाऊं; जहां हम दोनों मिल सकें, खो जा सकें, झगड़ा करें, प्रेम करें, गलतफहमियां पैदा कर सकें......जहां हमारी दोनों की एक संतान हो······शुभा।

इसके किनारे से जो झांकता है

आखिर उसकी इच्छा फली। वसंत के बाद शरद की इच्छा कभी निष्फल नहीं जाती। इनके लिए ही वसंत आता है।... . बाद में हम तीनों साथ-साथ रहने लगे। मैं, अक्षय और शुभा। वास्तव में तो शुभा ही वहां रहती थी।

हम दोनों फ़कत इसके लिए ही थे कि शुभा वहां रह सके। पहले यह हमारा घर था। बाद में यह शुभा का घर बन गया। कितने सुख के दिन थे ये। आनन्द पद्म की पंखुड़ियां एक के बाद एक खिलती चली जाती थीं। लगता था कि विधाता ने सहस्त्र दल नहीं, अनन्त दल पद्म रोप दिया है हमारे घर में।

उसका प्रकाशमय हाथ है
इस हाथ में एक कमल है

शुभा के साथ-साथ हमने भी नया जीवन जिया। सफेद कबूतर की गर्दन थपथपायी, खारे पानी में पैर डुबोये। पारिजात के फूल बीने, और लम्बी-लम्बी मालाएं पिरोईं। शाला के घंटों की टन-टन फिर अनुभव की और मैत्री के पंख फैलाकर उड़े। जो हम भूल चुके थे, वह सब शुभा ने याद करा दिया। तन्दुरुस्त देह की थकान......शुद्ध परिपूर्ण एक अनुभव, जहां चेतना पल भर के लिए स्थिर हो जाती है। और आघात सहन करने की मन की शक्ति, जिसमें से दूर्वांकुर की तरह लक्ष्य सहस्त्र स्थलों की चेतना जाग उठती है।

सचराचर जगत के ये नयन हैं।

फिर एक सबेरे देखा कि शुभा बड़ी हो गयी है। घड़ी भर में हम तीन हो जाते हैं और घड़ी भर में दो, विच्छिन्न हम लोग, पास खड़े होने के कारण स्पर्श करते दो खण्ड जैसे हम दोनों, मैं और अक्षय। शुभा आती है, जाती है। हर बार उसके जाने से उत्पन्न होने वाली रिक्तता बढ़ती ही जाती है, अनेक बार तो शुभा उसमें ही खो जाती है, बचने के लिए किसी को पकड़ना चाहती है। कहती है, मां तू मुझे बड़ी प्यारी लगती है।

मेरे सामने का चौरस, अंधेरा मार्ग दिन पर दिन लम्बा होता जाता है। सभी कमरे बन्द हैं और मैं अकेली हूं। मुझे दौड़ लगानी है परन्तु मेरे पैरों में शक्ति नहीं है। डर कर मेरे पैर उठते हैं और फिर नीचे आ जाते हैं...फिर भी मेरी दौड़ निःशब्द है। इस निर्जनता में यदि प्रतिध्वनि उठे तो सही नहीं जायगी, उसी क्षण मैं खो जाऊंगी, बिखर जाऊंगी। अभी तो दौड़ती हूं, देखती हूं। कदाचित शुभा भी कहीं दौड़ रही है, लेकिन मेरी खोज में नहीं। मेरी खोज में तो हरगिज़ नहीं। खबर नहीं, इस मदोन्मत्त जगत का हृदय-स्थल चीरकर कौन सा मुक्ताफल ले आना चाहती है।

अत्यन्त तेजोमय रत्न की तुलना इसके साथ ही होती है।

अक्षय खीझ उठता है। उसे यह सब अच्छा नहीं लगता। उसे यह अच्छा नहीं लगता कि शुभा रोज रात को घर लौट कर आये। उसे नहीं अच्छा लगता

कि शुभा के इतने सारे, जाति-जाति के, हम सब से अनजाने, मित्र हों। उसे नहीं अच्छा लगता कि शुभा हमें तो न चाहे और किताबें पढ़ती रहा करे, और समझ में न आ सकने वाली बातें किया करे। परन्तु शुभा तो यह सब कुछ ही करती है। और अक्षय मानता है कि मैं मां का फर्ज पूरा करने में पूर्णतया निष्फल हो गयी हूं। वह मानता है कि शुभा की आंखों के नीचे पड़े गड्ढे मुझे नहीं दिखाई पड़ते।

परन्तु मैं यह सब देखती हूं। देखती तो हूं। साथ ही दूसरी कितनी ही ऐसी चीजें देखती हूं जो अक्षय को नहीं दिखाई पड़तीं। मैंने यह देखा है कि शुभा की इस दौड़ में जो बीच में आयेगा, वह ठोकर से दूर क्षितिज में फेंक दिया जायेगा। मैं तो निर्बल हूं। क्षितिज से मुझको डर लगता है, एकाकीपन से मन को डर लगता है। इस सबसे ज्यादा मुझे यह डर लगता है कि यदि एक बार ऐसा हो गया......तो शुभा को पुचकारने के लिए मैं वहां नहीं होऊंगी। यह नहीं हो सकता। अक्षय का क्रोध सह सकती हूं, निष्क्रियता की इस लाचारी में बैठे रह सकती हूं। संभावना की कल्पना भी कठिन है।

मेरी शुभा प्रवाही सीमाओं के एक जगत में खो गयी है। उसके आसपास का अंधकार उसके अकेले के हाथों का सृजा हुआ नहीं है। वह असहाय है ......मेरी जितनी ही असहाय।

अंधकार के हाथी पर वह सिंह
की तरह छलांग लगाती है

आखिर यह मेरी शुभा ही है, मेरी लाड़ली, नन्ही शुभा। कठोर निर्मल चेहरे की रेखाएं कुछ हलकी पड़ती हैं तो मैं उनमें यही देखती हूं कि हमारे साथ रहने वाले उस व्यक्ति के भीतर क्योंकर हमारी शुभा समाई हुई है। किसी समय वह आंखें खोलेगी, बाहर आयेगी, फिर लौटकर हम दोनों से मिलेगी। भले ही घड़ी भर को सही।

कमल के फूलों को वह स्नेह स्पर्श से जगाती है

इस अनजाने व्यक्ति के साथ अक्षय ने अनेक बार झगड़ा किया है, दोनों का क्रोध मौन धुआँ बनकर सारे घर का दम घोट देता है। वह कहती है, मैं चली जाऊंगी ! कहां चली जायगी तू शुभा ? मुझे खबर नहीं, तू जितने मानती है, उतने सारे खण्ड-विखण्ड यहां हैं ही नहीं। आखिर तो समस्त जगत का अधिष्ठान एक ही है।

देवताओं में वह श्रेष्ठ है

शुभा, मेरे निकट भय की, एकाकीपन की सृष्टि में मुझे तो एक उसका ही आधार है। कभी-कभी उसकी जब याद आ जाती है तो उसकी वजह से मेरे पग थम जाते हैं। मेरा अपना चौरस मार्ग वर्तुलाकार बन जाता है। मुझे कितने ही ऐसे अनुभव हो चुके हैं⋯⋯मेरी इच्छा है कि तुझे भी ये अनुभव प्राप्त हों।

मैं जिसके समक्ष नमन करती हूं, वह
सुन्दर है, हम सबके वंदन के योग्य है।

तमिल साहित्य

चयन :

श्री आर० रंगाचारी

अनुवाद :

डाक्टर न० वी० राजगोपालन

अनुक्रम

ऐतिहासिक समीक्षा	440
संघकालीन कृतियां—प्रथम वर्ग	
—एट्टु-त्-तोहै	453
संघकालीन कृतियां—द्वितीय वर्ग	
—पत्तु-प्-पाट्टु	461
संघकालीन कृतियां—तृतीय वर्ग	
—अठारह लघुनीति-ग्रन्थों से	463
संघकालोत्तर-युगीन काव्य	
1. शिलप्पधिकारम्	466
2. मणिमेखलै	469
3. 'अह—प्—पोरुल्' पर नक्कीरर् कृत व्याख्या	470
भक्ति-युगीन कविता	
1. तेवारम्	473
2. तिरुवाचकम्	474
3. तिरुवेम्बावै	475
नालायिर दिव्य प्रबन्धम्	
1. तिरुप्पल्लाण्डु	476
2. तिरु—प्—पावै	476
3. नाच्चियार तिरुमोलि	477
4. पेरुमाल तिरुमोलि	"
5. पेरिय तिरुमोलि	"
6. तिरु अन्तादि	478
7. तिरुवाय् मोलि	"
भक्तियुग की अन्य रचनाएं	
—तिरुमन्तिरम्	479
—सिद्धों के गीत	"
जीवक चिन्तामणि	
—जीवक-जन्म वृन्तान्त	482
कम्ब-रामायणम्	
—अयोध्या काण्ड—श्री राम और गुह का मिलन	485
— " " गंगा तट पर भरत और गुह का मिलन	487

—सुन्दर काण्ड—हनुमान का सीता-अन्वेषण
और श्री राम के पास आकर उसका वृत्तान्त बताना 491
—युद्ध काण्ड—कुम्भकर्ण-वध 493
पेरियपुराणम्
—बारहवाँ सर्ग—पूशलार्नायनार् कथा का अंश 495
कन्दपुराणम्
—उत्पत्ति-काण्ड—कामदेव-दहन पटल 497
विल्लि भारतम् (महाभारत)
—युद्ध पर्व—सत्रहवें दिन का युद्ध 499
विविध :
1. कुट्राल-क्-कुरवंजि 501
2. गीत संग्रह ,,
3. तिरु-वरुट्-पा ,,
4. तनिप्-पाडल् तिरट्टु 502
नन्दनार् चरित्र-कीर्तनै 504
महाकवि सुब्रह्मण्य भारती के गीत
1. भारत समुदायम् 505
2. ऊलि कुत्तु 506
3. चेन्तमिष् नाडु 507
कविमणि देशिक विनायकम् पिल्लै की कविता
—शूली पर ईसा 509
क्रान्तिकवि भारतिदासन् की कविता
—संजीवि पर्वतत्तिन् चारल् 511
तमिल के लोक-गीत
1. पानी को छूत नहीं 513
2. लोरी ,,
3. मुक्कूडर् पल्लु 514
वीर काव्य
1. देशिंगु राजन् कदै 516
2. अल्लियरशाणि मालै 517
आधुनिक गद्य
—गली का चिराग 519
पिट्टिन-प्-पालैकी
(क) समीक्षा का कुछ अंश 521
(ख) श्री वी० कल्याणसुन्दरम् के निबन्ध का कुछ अंश ,,
नीम की तपस्या 523

ऐतिहासिक समीक्षा

तमिल-साहित्य की अपनी एक स्वतन्त्र तथा अक्षुण्ण परम्परा रही है, जो 2200 वर्षों से भी अधिक पुरानी है। किन्तु अब बहुत प्राचीनकाल की कृतियां अनुपलब्ध हो गई हैं। वास्तव में, 'संघम काल' (अंतिम तमिल-संघ के युग) से सम्बद्ध अतिप्रसिद्ध कृतियां भी काल-कवलित होने से हाल ही में, महाविद्वान् उ० वी० सामिनाथ अय्यर जैसे कुछ शोधकर्त्ताओं के द्वारा बचा ली गई हैं। इन कृतियों का रचना काल अभी विवादास्पद बना हुआ है। अपेक्षाकृत कम प्राचीन कृतियों के भी रचयिताओं के बारे में हमें कुछ ही प्रामाणिक विवरण प्राप्त हुए हैं।

तमिल साहित्य-परम्परा के आविर्भाव के समय से ही काव्य (और गीत) के अतिरिक्त गद्य और नाटक भी साहित्य में सम्मिलित माने गये हैं; किन्तु पुराने गद्य और नाटक के जो कुछ नमूने अब तक बचे हैं वे मुख्यतया व्याख्या के रूप में और काव्यात्मक रचनाओं के मध्य प्राप्त होने वाले नाटकीय संलाप के रूप में हैं।

गद्य और नाटक का स्पष्ट विकास इधर उन्नीसवीं शती के आसपास होने लगा था; और यह मुख्यरूप से अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव तथा मुद्रण की सुविधा के उपलब्ध हो जाने के कारण हुआ।

कुछ विद्वान् मानते हैं कि इन (अनेक) शताब्दियों के दौरान, यद्यपि परिनिष्ठित साहित्यिक तमिल (भाषा) में बहुत कम परिवर्तन हुए हैं, तथापि 1000 ईसवी के आसपास लिपि (तथा वर्तनी) में कुछ परिवर्तन हो गया होगा; उच्चारण में परिवर्तन तो और भी बाद में हुए होंगे, और अब प्राप्त प्राचीन साहित्य का रूप संशोधित रूप है। यह संशोधन 500 ईसवी के आसपास, उससे पूर्व

की और ईसवी संवत के प्रवर्तन के पश्चात् की मौलिक कृतियों में किया गया होगा।

तमिल लिपि के विकास की समस्या तो बहुत ही विवादास्पद बनी हुई है। अतः तमिल् साहित्य का निश्चित इतिहास अभी लिखा ही जा रहा है। यहां केवल सामान्य काल-विभाजन के आधार पर एक सरसरी भूमिका लिखने का प्रयत्न किया जा रहा है।

1 संघकालीन कृतियां

तमिल काव्य की एक विशिष्टता—जो कि विलक्षण मानी गयी है—यह है कि काव्य की वर्ण्य वस्तु का दो प्रकार से वर्गीकरण किया जाता है—जैसे

(अ) 'अहम्' (अर्थात् आंतरिक शृंगार-भावना) और (आ) 'पुरम्' (अर्थात् बाह्य-विषय-युद्ध, राजतंत्र आदि)

प्रथम ('अहम्') का विस्तृत विवेचन प्रकृति की विविध भावानुकूल पृष्ठ-भूमि के साथ किया जाता है; प्राकृतिक प्रदेश (जिसे तमिल में 'तिणै' कहा गया है) छह प्रकार का माना गया है; जैसे (1) पर्वत प्रदेश ('कुरिंजि') (2) बन-उपवन प्रदेश ('मुल्लै') (3) खतों और जलाशयों से पूर्ण समतल प्रदेश ('मरुदम') (4) समुद्र-तट प्रदेश ('नेय्दल') और (5) इन चारों से भिन्न और इनके मध्यस्थित उजाड़ या मरुभूमि ('पालै')।

प्राकृतिक देश के जैसे ही काल के भी दो प्रकार से विभाजन किये गये हैं; एक तो छह ऋतुओं का विभाजन है (जिसे 'बड़ा काल-विभाजन' कहा गया है और दूसरे एक-दिन के छह भागों का विभाजन है (जिसे 'छोटा काल-विभाजन') कहा गया है। उक्त देश और काल की पृष्ठभूमि के अनुसार प्रेम और शृंगार की विभिन्न दशाओं का वर्णन' अहम्' (या आंतरिक भावात्मक वर्ण्य विषय) में होता है।

'पुरम्' (बाह्य वृत्त प्रधान वर्ण्य विषय) के अन्तर्गत युद्ध आदि का वर्णन करते समय, उपर्युक्त छह प्राकृतिक प्रदेशों के अनुसार उपयुक्त घटनाओं का वर्णन होता है और तमिल प्रदेश के लिए विशिष्ट विभिन्न पुष्पों का विशिष्ट घटना-द्योतक प्रतीकों के रूप में वर्णन होता है।

'अहम्' और पुरम् की इस परम्परा (अथवा 'कवि-समय') का प्रतिपादन अब उपलब्ध प्राचीनतम लक्षणग्रन्थ 'तोलकाप्पियम्' में (ग्रन्थ का यह नाम ग्रन्थकर्ता के नाम के आधार पर है) किया गया है।

यह एक विस्तृत तथा स्पष्ट विवेचन युक्त ग्रन्थ है जिसमें क्रमशः तमिल ध्वनि (या वर्ण) विवेचन, पद-विवेचन तथा वाक्य-विन्यास एवं काव्य की

वर्ण्य वस्तु (इतिवृत, अभिव्यक्ति शैली, भावानुभाव इत्यादि) का विवेचन किया गया है। यह सारा विवेचन उस समय प्रतिष्ठित साहित्यिक मान्यताओं के आधार पर हुआ है जिससे यह प्रमाणित होता है कि 'तोलकाप्पियम्' की रचना के बहुत पूर्व ही पर्याप्त साहित्य का प्रणयन हो चुका था। प्रसंगात् यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि इस लक्षण ग्रन्थ में संस्कृत तथा अन्य भाषाओं के शब्दों का तमिल में समीकरण करने के कुछ नियम दिये गये हैं और इसमें यह भी कहा गया है कि काल-क्रम में भाषा के प्रयोग में परिवर्तन होना अनिवार्य है (बारहवीं शती में 'पवणन्दि मुनिवर्' विरचित 'नन्नूल' नामक लक्षण ग्रन्थ में इस बात पर और ज़ोर दिया गया है)। 'तोलकाप्पियम्' के रचना-काल के सम्बन्ध में विद्वानों में ऐकमत्य नहीं है। इसकी अनेक व्याख्याएं उपलब्ध हुई हैं; कुछ पूरे ग्रन्थ की और कुछ आंशिक। इन व्याख्याओं में मुख्य हैं—'इलम्पूरणर्' के द्वारा विरचित एक व्याख्या (जो दसवीं शताब्दी ईसवी से प्राचीन नहीं है) और 'नच्चिनार्क्किनियर' के द्वारा विरचित एक व्याख्या (जो पन्द्रहवीं शताब्दी ईसवी से प्राचीन नहीं है)। इन दोनों व्याख्याओं में विस्मृत अतीत की ज्वलन्त झलकें प्राप्त होती हैं।

जहां तक लक्ष्य-वाङ्मय का सम्बन्ध है, अब उपलब्ध प्राचीनतम रचनाएं संघकालिक काव्य हैं; ये विभिन्न समयों के भिन्न-भिन्न कवियों के द्वारा विरचित कविताओं के संकलन हैं। ये संकलन दो वर्गों में प्राप्त हैं—एक वर्ग है—अष्ट-संग्रही ('एट्टु-त्-तोहै') और दूसरा वर्ग है—'गीतदशी' ('पत्तु-प्-पाट्टु' या दस गीत)। इनमें से प्रथम वर्ग' अष्टसंग्रही' के अन्तर्गत दो संकलन' 'पुरम्' (या बाह्य वर्ण्य विषय) से सम्बद्ध ग्रन्थ है; वे हैं:

(1) 'पुर नान्रू'—अर्थात् 'पुरम्' से सम्बद्ध चार सौ पद्य—जोकि लगभग 150 कवियों के हैं,

(2) 'पदिट्रु-प्-पत्तु'—दश दशक-इसमें दस-दस पद्यों के दस भाग हैं और कुल 100 पद्य हैं। इनमें से प्रथम और दशम-दशक लुप्त हो गये हैं। विभिन्न कवियों के द्वारा चेर वंशीय राजाओं की प्रशस्ति में ये गीत लिखे गये हैं। बाद के काल में यो राग-रागिनियों में बांधकर गेय बनाये गये।

इस प्रथम वर्ग के शेष छह संकलन 'अहम्' (आतंरिक श्रृंगार भावना-प्रधान वर्ण्य) विषयक हैं। वे हैं:—

(1) 'अहनान्रु' अर्थात् 'अहम्' या आंतरिक श्रृंगार भावना से सम्बद्ध चार सौ पद्य; इसी का दूसरा नाम 'नेडुन्-तो-है' (अर्थात् दीर्घ संकलन) भी है।

इसमें 142 कवियों (3 अज्ञातनामा कवियों को छोड़कर) के द्वारा विरचित चार सौ पद्य हैं जिनमें से 9 से 13 तक के चरण हैं।

(2) 'नट्रिणै' (अर्थात् 'सुन्दर प्राकृतिक पृष्ठभूमि') इसमें 9 से 12 तक के चरण वाले 400 पद्य हैं; 56 पद्यों के कवि अज्ञात हैं और शेष पद्य 92 कवियों के द्वारा विचरित हैं।

(3) 'कुरु-न्-तोहै' (अर्थात् 'लघु पद्य-संग्रह') इसमें से 8 तक के चरण वाले 400 पद्य हैं; इनमें दस पद्यों के कवि हैं; शेष पद्य 205 कवियों के रचित हैं।

4. 'ऐङ्-कुरू-नूरू' (अर्थात् 'पंच लघुशती') वाले 500 पद्य हैं जिन्हें सौ-सौ के पांच भागों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक विभाजन में एक-एक कवि के द्वारा विरचित पद्य हैं।

5. 'परिपाडल्' (अर्थात् 'परिपाडल्' नामक छन्द में लिखित गीत) इस छन्द में लिखित 70 पद्य इस ग्रन्थ में लिखित थे; किन्तु अब 22 पद ही प्राप्त हैं जो तेरह कवियों के द्वारा विरचित हैं और दस अन्य व्यक्तियों के द्वारा रागबद्ध किये गये हैं। ये विष्णु, 'मुरुग', काली जैसे विभिन्न प्राकृतिक प्रदेशों के अधिष्ठाता देवता या देवी की प्रशंसा करने वाले गीत हैं और मदुरा नगर तथा 'वैगै' नदी का वर्णन भी इनमें हुआ है; अंतिम विषयक पद में 'अहम्' की अभिव्यक्ति है;

6. कलित्-तौहै (अर्थात् 'कलि' नामक छन्द में लिखित गीतों का संकलन)

'कलि' छंद में लिखित 150 नाटकीय गेय पद इसमें हैं और तमिल-काव्य-शास्त्र के अनुसार पांच प्राकृतिक प्रदेशों के विभाजन के अनुसार विभाजित हैं; प्रत्येक विभाग एक-एक कवि की रचना विदित होता है।

इन सभी संकलनों में यही एक ऐसा ग्रन्थ है जो समग्र रूप में प्राप्त हुआ है और व्याख्या सहित है; शेष ग्रन्थ कम या अधिक मात्रा में खिल हो गये हैं।

इस युग की दूसरे वर्ग की रचनाएं गीतदशी या 'पत्तुप्पाट्टु' नाम से संकलित हैं। तमिल की एक प्रसिद्ध कृति 'तिरुमुरुगाट्रुप्पडै' (अथवा श्री 'मुरुग' के स्थान के लिए पथ-प्रदर्शन) इसी संकलन में अन्तर्भूत है; इसमें 317 चरण हैं। एक और गीत 'नेडुनल्वाडै' (अर्थात् अतिशीतपवन) नामक है जिसमें 188 चरण हैं और पांड्यराजाओं के अभियानों तथा शीतऋतु का वर्णन अत्यन्त मनोहर है। ये दोनों 'नक्कीरर्' नामक कवि की कृतियां हैं।

शेष आठ गीतों में तीन गायकों तथा नर्तकों को आश्रयदाता राजाओं के पास जाने के लिए किये जाने वाले पथ-प्रदर्शन का वर्णन है और पांच में

तमिल देश के विभिन्न स्थानों का वर्णन है। इनमें सबसे बड़ा गीत, जिसमें 782 चरण हैं, "मदुरै-क्कांजि" नामक है, जो कि "मांगुडि मरुदनार्" के द्वारा विरचित है। यह मदुरै प्रदेश से सम्बद्ध है और तत्कालीन सामाजिक जीवन का विवरण प्रस्तुत करता है; साथ ही इसमें आदर्श शासक के स्वभाव का चित्रण हुआ है। एक और गीत, 'पट्टिण-प्-पालै", जिसमें 301 चरण हैं उस समय के प्रसिद्ध नगर 'पुहार' का चित्रण करता है। इस संकलन का सबसे छोटा गीत "मुल्लै-प्-पाट्टु" शीर्षक वाला है जिसमें 103 चरण हैं।

उपरि-विवेचित दोनों वर्गों के संघकालीन ग्रन्थ-संकलनों में अब उपलब्ध रूप में—2400 पंक्तियाँ हैं। इनमें से अधिकतर कृतियों की "नच्चिनार्-क्-किनियर्" कृत व्याख्या प्राप्त हुई है। अन्य मुख्य व्याख्याओं में कुछ अज्ञात-नामा व्याख्याताओं के अतिरिक्त 'पेरॉशिरियर्' और 'परिमेल्-अल्कर' है (अंतिम व्याख्याता ने 'परिपाडल' की व्याख्या की है)

'अहम्' या आंतरिक भावपरक कविताएं जो कि परम्पराबद्ध शृंगारिक घटनाओं पर आधारित हैं, अपनी मनोहर तथा सरल शैली के लिए प्रसिद्ध हैं; यह शैली अतिरंजना से रहित है। इसमें प्राकृतिक दृश्यों का, तादात्मय-अनुभूति से प्रेरित यथातथ्य और मुक्त वर्णन, सूक्ष्म कल्पना और वर्ण्य वस्तु का विविधतापूर्ण आदर्शात्मिक एवं निर्वैयक्तिक उपस्थापन अत्यन्त प्रभावशाली हुए हैं। 'पुरम' या बाह्य घटनाप्रधान कृतियां उस समय के तमिल समाज तथा सभ्यता का स्पष्ट चित्र उपस्थित करती हैं।

2. संघकालोत्तर कृतियां

इसके पश्चात्, 'पदिनेन्-कील्-कणक्कु' (अठारह लघुनीति-ग्रन्थ) नाम से वर्गीकृत रचनाएं आती हैं, जिनमें ग्यारह नीति-उपदेश परक और सात 'अहम्' या प्रेमपरक कृतियां हैं।

इनमें अग्रगण्य हैं 'तिरु-क्-कुरल्' जो तिरु-वक्कुवर् के द्वारा विरचित हैं। इसमें दो-दो चरणों के 1330 पद्य हैं जिसे 'वेण्बा' छन्द कहते हैं; इसमें प्रथम चरण की अपेक्षा दूसरा चरण छोटा होता है। पूरा ग्रन्थ तीन भागों में विभक्त है; प्रथम भाग में धर्म (गृहस्थ तथा संन्यासी के धर्म), द्वितीय भाग में अर्थ (शासन, राजनीति तथा अर्थ व्यवस्था) और तृतीय भाग में काम (या प्रेम) का विवेचन हुआ है। यह कृति एक 'विश्व-कृति' मानी जाती है जो उपयुक्त ही है।

इसके अनेक भाषाओं में कई अनुवाद हुए हैं और अब भी नये अनुवाद हो रहे हैं। इसमें सार्वभौमिक या विश्वजनीन धर्म का इस प्रकार प्रतिपादन

हुआ है जो विभिन्न मत-सम्प्रदायों के संकीर्णतापूर्ण संघर्ष से परे है। यह उत्तम ज्ञान का महान् भंडार है। इसमें जो सूक्ष्म गम्भीर हास्य और समुचित बिम्बात्मक विधान है, वह तमिल भाषा की अपनी विशिष्ट शैली है; गम्भीर प्रभावपूर्ण और नियंत्रित अभिव्यक्ति-भंगी इस कृति के काव्यात्मक सौन्दर्य को बहुत ऊंचा उठा देती है। इसमें काम (या प्रेम) का जो विवेचन हुआ है, वह प्राचीन परम्परा के अनुकूल होने पर भी अत्यन्त परिष्कृत तथा किसी भी प्रकार की अश्लीलता से मुक्त है।

इस ग्रन्थ की अनेक व्याख्याएं प्राप्त हैं। इनमें जो अत्यन्त प्रख्यात हैं 'परिमेल्-अलहर्' विरचित हैं। आज भी इसकी नवीन दृष्टि से व्याख्याएं लिखी जा रही हैं।

इस महान् कवि के बारे में, जो कदाचित् व्यक्ति के रूप में और भी महान् था, कुछ किंवदन्तियों के अतिरिक्त, निश्चित जानकारी अप्राप्य ही है। सामान्य विश्वास यह है कि यह आधुनिक मद्रास नगर के मइलापूर नाम से प्रसिद्ध स्थान में लगभग 2000 वर्ष पूर्व जन्मे थे।

इस कृति के बाद, परिगणनीय मुख्य कृतियाँ हैं 'नालडियार्, (चतुष्पदी), जो कि जैन कवियों के विरचित पद्यों का संकलन है और 'पल्-पोल्गिक्' (अर्थात् सूक्तियां) जो एक ही कवि की रचना हैं। इन दोनों कृतियों में से प्रत्येक में 400 'वेण्बा' छन्द हैं जो नीति सम्बन्धी हैं।

अन्य उपदेशात्मक कृतियां इसी शैली की हैं, किन्तु छोटे आकार की हैं।

सात 'अहम्' परक कृतियां भी लघुरूप की हैं; ये एक-एक कवि के द्वारा ही विरचित हैं। इनमें संघकालीन रचनाओं जैसी भावस्फूर्ति नहीं है, प्रयत्नपूर्वक परम्परा की लीक पीटने की बात है। फिर भी एक अनुपम कृति है 'कल-वल्नार्यपदु' जिसमें युद्धरंग का वर्णन है।

3. प्राचीन प्रबन्ध-काव्य

मुख्य प्रबन्ध काव्य हैं (अ) युगल प्रबन्ध काव्य अर्थात् (1) शिलप्पदिकारम्' (नूपुर काव्य) जो 'इलंगो अडिगल' विरचित है और (2) मणिमेकलै (मणिमेखला चरित) जो बौद्ध कवि 'शीत्तलै-य्-चात्तनार्' विरचित है।

(आ) चिन्तामणि (जीवक चिन्तामणि) जो जैन कवि तिरु-त्-तक्क देवर् विरचित है। दो अन्य प्रबन्ध 'वलयापति' और कुंडलकेशि' अब अनुपलब्ध हैं; पेरुन्तेवनार् विरचित 'भारतम्' भी खो गया है।

'शिलप्पदिकारम्' (नूपुरकाव्य) तमिल्-साहित्य का एक अमूल्य रत्न है;

गद्य, गीत और नाट्य—तीनों विधाओं के लिए यह उदाहरणप्राय है। इस प्रबन्ध काव्य की विशिष्टता यह है कि इसके कथानायक और नायिका 'कोवलन्' और 'कण्णकी' सामान्यजन-जीवन से लिये गये हैं और उस समय के तमिल प्रदेश के तीन बड़े राजा (चेर, चोल और पांड्य) के सम्बन्ध में तथा तत्कालीन समाज के आचार-विचारों, ललितकलाओं के शुद्ध वस्तुपरक चित्रण मिलते हैं और यहां तक कि इसमें लोकगीतों का भी उल्लेख है। इस प्रकार यह काव्य अतीत की झलक पाने में एक विशाल झरोखे का काम देता है; इस कार्य में इसकी 'अडियार्-क्-कुलनललार्' द्वारा विरचित व्याख्या अत्यन्त उपयोगी है।

तरुण व्यापारी 'कोवलन्' की विषादान्त प्रेम कहानी, दरबारी नर्तकी 'माधवी' के प्रति उसका सामयिक मोह, बाद में उसका मोहभंग, अपनी साध्वी पत्नी 'कण्णकी' के साथ पांड्य राजधानी मदुरानगर में जाकर नव-जीवन आरम्भ करने का यत्न, वहां उसके द्वारा कण्णकी के एक नूपुर को बेचने का यत्न करने पर एक सुनार के कपटाचरण के कारण चोर समझकर बन्दी किया जाना, पांड्यराजा के अविचारित आदेश से उसका मृत्यु-दंड पाना और वध किया जाना, उसकी साध्वी पत्नी का शोक और उग्रतेज, मदुरानगर का कण्णकी के शाप से जल जाना और कण्णकी का सतीदेवी के रूप में पूजा जाना—इत्यादि घटनाएं अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ही। 'इलंगो' ने जिस ढंग से इन घटनाओं का चित्रण उपस्थित किया है वह अत्यन्त मार्मिक और शाश्वत महत्व का है।

दूसरा महाकाव्य 'मणिमेकलै', जो 'शात्तनार्' विरचित है, 'शिलप्-पदिकारम्' काव्य की अनुवृत्ति ही है। क्योंकि 'मणिमेकलै' काव्य में कोवलन् और माधवी की पुत्री 'मणिमेखला' का, जो एक बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है, जीवन-वृत्त वर्णित है। जहां तक इनकी काव्यात्मकता का प्रश्न है, इनमें कवि का बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के प्रति अभिनिवेश अधिक प्रकट होता है। इस कृति का रचना-काल अभी निश्चित नहीं हो पाया है।

'चिन्तामणि' एक संस्कृत काव्य के कथानक पर आधारित तमिल महा-काव्य है जिसकी रचना बहुत बाद में—नवीं या दसवीं शताब्दी ईसवी में हुई। तमिल-साहित्य में पहली बार इस काव्य में (वर्ण) वृत्तों का प्रयोग किया गया है और विविध अलंकारों की छटा भी दर्शनीय है। अतः तमिल विद्वानों के बड़े आदर का पात्र हुआ है। 'नच्चिनार्-क्-किनियर्' ने इसकी एक व्याख्या लिखी है।

यहां पर 'पेरुङ्गादै' (बृहत्कथा) का उल्लेख करना उचित होगा, जो

'कोंगुवेलिर्' नामक राजा के द्वारा विरचित हुआ। (कुछ विद्वान् इस कवि को संघकालीन व्यक्ति मानते हैं।) इसमें उत्तर भारत के उदार महाराजा उदयन और राजकुमारी वासवदत्ता की प्रेम कहानी है। इसके कुछ अंश अब लुप्त हो गये हैं। इसमें अनेक उपयोगी बातों और तथ्यों का उल्लेख हुआ है, अतः यह बड़ा मूल्यवान काव्य है।

इसी कोटि के कुछ और लघुकाव्य भी लिखे गये जैसे तोलामोलि देवर्-कृत 'चूड़ामणि' काव्य।

4. भक्तिकाव्य का विकास

छठी या सातवीं शती ईसवी के आसपास भक्ति काव्य का उद्गम हुआ। यह वैष्णव (आल्वारों) और शैव (नायन्मार)—सन्तों का युग था, जिन्होंने जनता में धार्मिक पुनर्जागरण उत्पन्न किया। इस युग की लगभग 250 वर्ष की अवधि में इस पूर्व की सभी धर्मेतर काव्यों की उपेक्षा-सी हुई। शैव सन्तों अप्पर् या तिरुनावु-क्-करशर् (श्रीवागीश), ज्ञान सम्बन्ध, सुन्दर मूर्ति, माणिक्यवाचक, तिरुमूलर् (श्रीमूलदेव) कारैक्काल् अम्मैयार् (कारैक्काल की देवी) इत्यादि के द्वारा अनेक पद विरचित हुए जिनका संकलन 'नम्बि आण्डार् नम्बि' नामक व्यक्ति के द्वारा ग्यारहवीं शताब्दी में ग्यारह भागों में किया गया; इन संकलनों को 'तिरुमुरै' (अर्थात् श्रीक्रम) कहते हैं।

वैष्णव सन्तों—सरोयोगी, भूतयोगी, पिशाचयोगी नाम से विख्यात प्रथम आल्वार-त्रय तथा उनके बाद कुलशेखर, विष्णुचित्त ('पेरियाल्वार' या बड़े आल्वार), गोदादेवी (आण्डाल्) परांकुश ('नम्माल्वार्) परकाल ('तिरुमंगें आल्वार') इत्यादि बारह भक्त कवियों ने 4000 पद रचे हैं। इनका संकलन ग्यारहवीं शताब्दी में ही आचार्यनाथमुनि के द्वारा 'दिव्यप्रबन्धम्' नाम से किया गया।

यह सारा वाङमय पुरानी काव्यपरम्परा के अनुसार विरचित है और प्रादेशिक विचार-पद्धति का द्योतक है। यह साहित्य अत्यन्त काव्यात्मक प्रभाव से युक्त है। इसके द्वारा लौकिक जीवन से ध्यान को हटाकर आध्यात्मिक भावना में केन्द्रित किया गया, जिससे साधारण मानव-भावना उदात्त होकर एक उच्च धरातल पर पहुँच जाती है। ये पद रागताल बद्ध करके 'गेय' बनाये गये और मंदिरों तथा धार्मिक संस्थाओं में गाये जाने लगे; इस प्रकार इन गीतों की रक्षा हुई है। इधर हाल के कुछ वर्षों में गोदादेवीकृत 'तिरु-प्-पावै' और माणिक्यवाचकर् कृत 'तिरु-एम्-पावै' विशेषतया लोकप्रिय हो गये।

5. साहित्यिक पुनरुत्थान

ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दियों का समय एक महान् साहित्यिक पुनरुत्थान का युग था। इस युग की रचनाओं में 'आत्तिशूडि' इत्यादि नामों के नीति-उपदेशों के ग्रंथ 'औवै' आदि (यह 'औवै' इसी नाम की संघकालीन कवयित्री से भिन्न व्यक्ति है) द्वारा रचे गये जो अत्यन्त लोकप्रिय बने हैं। 'जयङ्कोण्डार्' नामक कवि का 'कलिंगत्-तु-परणि' अत्यन्त सुन्दर युद्ध-वर्णनात्मक वीरकाव्य है; प्रसिद्ध शैव भक्त शेक्लिलार् ने 'पेरियपुराणम्' (महापुराण) की रचना की जिसमें शैवसन्तों नायन्मार्—के जीवन-वृत्त हैं और जो शैव तिरुमुरैं गीतों के बारहवें भाग के रूप में सम्मिलित किया गया। महाकवि कम्बन् ने विश्व-महाकाव्य कहने योग्य अपनी कृति रामायण (या रामकथा) की रचना की। महाकवि 'ओट्ट-क-कूत्तन्' की 'तक्क-याक-परणि' (दक्षयज्ञ भणिकाव्य), और 'कुलोत्तुंग-पिल्लै-त्-तमिल्' 'पुह्लेन्दि' की 'नल-वेण्बा' आदि इसी युग की रचनाएं हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि महाकवि कम्बन् इससे पहले के (अर्थात् नवीं शताब्दी के) समय में रहते थे। चाहे किसी भी समय के हों, कम्बन् की कृति-रामायण एक अत्युत्तम प्रबन्धकाव्य प्रमाणित हुई है। इसका मुख्य कथानक यद्यपि बाल्मीकि रामायण का ही है तो भी यह तमिल् काव्यपरम्परा का अनु-सरण करती है, और इसका अनुपम शब्द-गुम्फन और अभिव्यक्ति सौन्दर्य, वर्णन-चातुर्य, कल्पना की अद्भुत छटा, विद्वत्तापूर्ण विषय-प्रतिपादन तथा उत्तम आदर्श का प्रदर्शन—इसको विशिष्टतम बनाते हैं। किन्तु यह स्पष्ट है कि अब प्राप्त कम्बरामायण में अनेक प्रक्षेप भी हो गये हैं। (तो भी इन्हें पह-चानना कठिन नहीं है)। इस रामायण का प्रामाणिक संस्करण अभी प्रकाशित होना है।

यह विश्वास किया जाता है कि महाकवि कम्बन् ने कुछ अन्य छोटी-मोटी रचनाएं भी की थीं—जैसे 'शठकोपर्-अन्तादि'। इसी प्रकार पुहलेन्दि नामक कवि, जिनकी प्रसिद्ध रचना का ऊपर उल्लेख हो चुका है, कुछ लोक-गीतों के—अल्लि अरक्षाणिमाले जैसी रचनाओं के—रचयिता समझे जाते हैं।

समय-समय पर विभिन्न जैन कवियों के द्वारा उपदेशपरक कृतियाँ, व्याकरण और लक्षणग्रन्थ तथा शब्दकोश (या निघण्टु) लिखे जाते रहे।

तेरहवीं शती और उसके पश्चात् आधुनिक काल तक की अवधि अनेक विद्वत्तपूर्ण-व्याख्या ग्रन्थों और विविध दर्शनविषयक सिद्धान्त-ग्रन्थों का रचना-काल रही है। कुछ संघकालीन रचनाओं की व्याख्याओं का पहले उल्लेख किया जा चुका है जो इसी अवधि में लिखी गयी थीं। 'मेय्कण्डार' के द्वारा

विरचित शैव सिद्धान्त ग्रन्थ—'शिवज्ञान बोधम्' तथा शिवज्ञान स्वामी के द्वारा लिखित उसका भाष्य इस युग के हैं। आल्वार-भक्तों की कृतियों पर लिखित ज्ञान और भक्ति से परिपूर्ण भाष्य जो मणिप्रवाल शैली (अर्थात् तमिल संस्कृत के विशिष्ट मिश्रण की शैली) में हैं, वैष्णव सम्प्रदाय का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ हैं।

वैष्णव आचार्यों में अन्यतम प्रसिद्ध कवि तथा दार्शनिक श्री वेदान्त देशिक विरचित लगभग 400 तमिल-पद्य भी उल्लेखनीय हैं जो मुख्यतया दर्शन-विषयक होने पर भी तमिल काव्य परम्परा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

'सिद्ध' नाम से विख्यात अठारह रचयिताओं की गीतात्मक कृतियाँ उपलब्ध हैं जो रहस्यवादी शैली में हैं और योग (हठयोग) वैद्यक आदि विषयों से सम्बन्धित हैं। (यह साहित्य हिंदी के आदिकाल में हुए नाथ-पन्थी और वज्रयानी सिद्धों के साहित्य से मेल रखता है)

पश्चात् के समय के ग्रन्थों में परंजोतिमुनिवर् कृत तिरुविलैयाडर पुराणम्' (लीलापुराण), विल्लिपुत्तूरार् (विल्लिपुत्तूर ग्रामवासी) कृते 'महाभारत' जिसने बड़ा लोकादर प्राप्त किया तथा 'अरुणगिरिनायर' की तिरुप्पुकल्' (श्री कार्तिकेय का 'यशगान')—जो अपने नादात्मक सौन्दर्य और गेयता के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हुआ, उल्लेखनीय हैं। इनमें संस्कृत का प्रचुर प्रभाव दिखाई पड़ता है। संस्कृत के अनेक पुराणों और व्याख्याओं के अनुवाद तथा विभिन्न क्षेत्रों के मंदिरों पर 'स्थल-पुराण' प्रभूतमात्रा में प्रस्तुत हुए: यह क्रम उन्नीसवीं शती तक चला। कच्चियप्प 'शिवाचारियर' के द्वारा विरचित 'कन्दपुराणम' (स्कन्दपुराण) जो कि संस्कृत की कृति पर ही आधारित है तमिल का बृहत्तम पुराण है और गहन पांडित्य और विलक्षण वर्णन-पटुता का द्योतक है। 'नैषध' नामक प्रबन्ध काव्य अपनी काव्य-गरिमा के लिए प्रसिद्ध है जिसका कवि है अतिवीर राम पांड्य, जिसकी एक नीतिपरक कृति 'वेट्रिवेट्कै' नामक भी विख्यात है। अन्य कुछ प्रसिद्ध कवि तथा कृतियाँ ये हैं:—

(1) कुमर गुरुपरर्—की नीतिनेरी-विलक्कम्, काशिकलम्बुकम्, मीनाक्षिपिल्लैत्-तमिल् आदि कृतियां
(2) शिवपिरकाशर्—की 'नान्मणिमालै'
(3) पिल्लैपेरमाल् अय्यंगार की 'अष्ट प्रबन्धम्'
(4) तायुमानवर् की भक्ति तथा दर्शन सम्बन्धी भावनापूर्ण कविताएँ
(5) रामलिंगस्वामी की 'तीरु अरुट्पा' (श्री कृपागीत)
(6) गोपाल कृष्ण भारती की 'नन्दनार् चरितम्'

(7) महाविद्वान् मीनाक्षिसुन्दरम् पिल्लै की अनेक कृतियाँ तथा स्थल-पुराण आदि ।

जैन और बौद्ध धर्मानुयायियों के समान ही कुछ अन्य हिन्दू भिन्न सम्प्रदायवालों ने अपनी दार्शनिक, भक्तिपरक और अन्य प्रकार की रचनाओं के द्वारा तमिल-साहित्य की श्रीवृद्धि की है; जैसे :—

इस्लामी (1) शीरा पुराणम् (पैगम्बर मुहम्मद की जीवनी) जिसमें 12,000 पद्य हैं । इसके कवि हैं उमरु-प्-पुलवर्

(2) पिल्लै-त्-तमिल् (यह भी मुहम्मद से सम्बन्धित है) कवि शक्करै-प्-पुलवर्

(3) रहस्यवादी और भक्तिपरक गीत—रचयिता भस्तान साहब

ईसाई (4) रक्षण्य यात्तिरिकम् (उन्नीसवीं शती) यह अंग्रेजी की प्रसिद्ध रचना बन्यान कविकृत 'पिल्ग्रिम्स् प्राग्रेस' पर आधारित है । इसमें 4000 पद्य हैं । इसके रचयिता हैं श्रीकृष्ण पिल्लै । इसी कवि के अनेक भक्ति-गीत भी हैं ।

(5) नीति, सामाजिक शिष्टाचार, भक्ति आदि विषयों पर लिखे गीत—कवि वेदनायकम् पिल्लै (इनका एक उपन्यास 'प्रताप मुदलियार चरित्रम्' भी प्रसिद्ध है)

विदेशी लेखक (6) 'तेम्पावाणि' (ईसा मसीह की जीवनी पर आधारित प्रबन्ध काव्य) इसके कवि हैं वीर 'मामुनिवर्' (या 'वीर महामुनि') जो इटली से सत्रहवीं अठारहवीं शतियों में तमिल्नाडु आये; ये ईसाई धर्म प्रचारक थे । इनका असली नाम 'कान्स्टेन्शियस् बेस्ची' था । इनकी और भी अनेक रचनाएं हैं; जैसे 'तोन्नूल' नामक तमिल—व्याकरण, पाश्चात्य शब्द-कोश के समान तमिल-कोश 'चतुरकरादि', कथाएं इत्यादि ।

(7) ईसा की जीवनी और उनके सिद्धान्त—यह गद्य ग्रन्थ सत्रहवीं-अठारहवीं शतियों के एक इटलीय ईसाई धर्म प्रचारक 'रावर्ट नोबिली' के द्वारा लिखा गया । इधर डा० जी० यु० पोप् और बिशप् काल्डवेल ने तमिल-भाषा तथा साहित्य की व्याप्ति तथा व्याख्या के लिए बड़ा योगदान किया है । विभिन्न देशों के अनेक विद्वान अब भी इस प्रकार के कार्य में संलग्न हैं ।

मध्ययुग में अनेक ऐसे कवि हुए हैं जो कल्पना की उड़ान के लिए और चित्रमय कविता तथा चाटूक्तियों के लिए प्रसिद्ध हैं जैसे कालमेघ कवि,

शत्ति-पुत्तु-प्-पुलवर्, पडिक्काशुतम्बिरान् आदि। इनके फुटकल पद्य हैं जिनका संकलन अभी किया गया है।

बीसवीं शताब्दी में अग्रगण्य कवि हैं स्वर्गीय श्री सुब्रह्मण्य भारती जिनकी राष्ट्रीय कविताएं सबके लिए परिचित हैं। वास्तव में ये राष्ट्रीय कवि थे जिनकी अद्भुत भविष्य दृष्टि थी। इनकी कण्णान्पाट्टु, पांचाली शपथ, कोयलगीत आदि कृतियां तमिल साहित्य के उत्तम रत्न हैं और इनके देशभक्ति के गीतों की अपेक्षा उक्त रचनाओं का साहित्यिक महत्व चिरकालिक होगा। भारती ने, अपने पूर्ववर्ती एक भक्त कवि रामलिंग स्वामी के जैसे ही जनसामान्य की व्यावहारिक भाषा शैली को ही अपने गद्य और पद्य-दोनों रचनाओं से अपनाया। सुब्रह्मण्य भारती की परम्परा अब भी वर्तमान है। भारतीदासन, कविमणि देशिक विनायकम्पिल्लै, एस० डी० एस० योगी जैसे कवि-इन सबका हाल ही में निधन हो गया—इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं।

6—लोकगीत वीरगाथा आदि

सामान्य जनता की अभिरुचि लोकगीतों, वीरगाथाओं जैसी रचनाओं में अधिक होती है। ऐसी कुछ रचनाओं का प्रकाशन हुआ है। राजादेशिंग कथा, 'अल्लि अरशाणिमालै' 'मुक्कूडल् पल्लु' तथा हरिजनों के गीत, लोरियां, शोक-गीत, खानाबदोश लोगों के गीत, आदि ऐसी कृतियां हैं। कुह्राल-क्-कुरवंजी' खानाबदोशों के गीत की कोटि की प्रसिद्ध रचना है जिसके रचयिता हैं—तिरुक्ट रासप्प-क्-कविरायर् (सत्रहवीं शती) 'पल्लु', 'कुरवंजि' आदि नाट्य गीत होते हैं।

7—गद्य, निबन्ध, नाटक, उपन्यास आदि

अठारवीं शती के अरुणाचल कविरायर् का विरचित रामनाटक (गेय पद) अत्यन्त प्रसिद्ध है। आधुनिक नाटक के विकास में प्रथम मार्ग दर्शन का काम श्री सुन्दरम्पिल्लै विरचित (उन्नीसवीं शती) मनोनेमणीयम्' ने किया जो एक अंग्रेजी ग्रन्थ पर आधारित है। इस शताब्दी में स्वर्गीय श्री सम्बन्ध मुदलियार् का इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान हुआ; श्री मुदलियार् ने शेक्सपियर के नाटकों के आधार पर और स्वतन्त्र रूप में अनेक नाटक लिखे हैं। वर्तमान युग में उत्तम साहित्य का स्तरीय नाटक उल्लेखनीय रूप में नहीं हुए हैं।

जैसे पहले कहा जा चुका है; गद्य का विकास आधुनिक युग में हुआ। वैसे गद्य में पूर्वग्रन्थ 'नक्कीरर्' के द्वारा लिखा गया था। ये सातवीं शती या

कुछ बाद में हुए थे। इनकी कृति इरैयनार्कृत 'अहप्पोरुल्' नामक लक्षणग्रन्थ की व्याख्या है। इसी शैली के व्याख्याकार अद्यतन युग में भी हुए हैं जैसे 'मरैमलै अडिकल्' (स्वामी वेदाचलम्)

सुब्रह्मण्य भारती, डा० उ० वे० सामिनाथ अय्यर, तिरुवी० क० (कल्याण-सुन्दरम्), कल्कि आदि के द्वारा सरल गद्यात्मक निबन्ध लिखने की परम्परा प्रवर्तित हुई और आज भी अनेक विषयों पर वैज्ञानिक शोधात्मक तथा अन्य प्रकार के निबन्ध लिखे जाते हैं। इधर कुछ समय से एक विशिष्ट अनुप्रासात्मक नादप्रधान गद्य शैली प्रचारित हुई है। उपन्यासों में पहले उल्लिखित 'प्रताप मुदलियार् चरित्र' (वेदनायकम् पिल्लै कृत) के अतिरिक्त राजम् अय्यर का कमलाबाल् और माधवय्य का 'पद्मावति' प्रारंभिक उपन्यासों में अन्यतम हैं।

स्वर्गीय 'कल्कि' ने अनेक लोकप्रिय ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। अब अनेक उपन्यासकार उपन्यास लेखन के क्षेत्र में आये हैं।

लघुकथा का विकास बीसवीं शती में आकर ही हुआ और वी० वी० एस० अय्यर, 'पुदुमें-प्-पित्तन' (नवीनता-मोही) 'कु-प-रा' आदि इस क्षेत्र के अग्रगामी लेखक हुए। राजाजी (चक्रवर्ती राजगोपालाचारी) की कथाएं भी प्रसिद्ध हैं जो विशेषतया शिक्षाप्रद होती हैं।

8—निगमन

यह स्पष्ट हुआ होगा कि भूमिका विशेषतया प्राचीन कालिक तमिल-कविता के सम्बन्ध में विवरण देती है। इधर आधुनिक युग में जो विविध प्रकार की रचनाएं होती रही हैं, जैसे—अनुवाद, बाल-साहित्य, शोध, साहित्य समीक्षा, पत्र-साहित्य, विश्वकोश इत्यादि। इनका विवेचन इस भूमिका की निश्चित सीमाओं को दृष्टि में रखते हुए संभव नहीं रहा।

संघकालीन कृतियां—प्रथम वर्ग

एट्टु-त्-तोहै (अष्ट संग्रही)

प्रथम वर्ग अष्ट संग्रही या 'एट्टु-त्-तोहै' नामक संकलन से :—

1. "मेरी मां और तुम्हारी मां (एक दूसरे के)
क्या होती थीं ? (कुछ नहीं)
मेरे पिता और तुम्हारे पिता किस प्रकार
के सम्बन्धी थे ? (किसी प्रकार नहीं)
मेरा और तुम्हारा (इससे पहले)
क्या परिचय था ?
(किन्तु) अहो ! लाल मिट्टी की
भूमि पर गिरे
वर्षा-जल (की दो धाराओं) के समान (हम दोनों के)
प्रेम-युक्त हृदय परस्पर कैसे
(अभिन्न हो) मिल गये हैं !"

(मिलने के पश्चात्, नायिका को विरह की सम्भावना से आशंकित देखकर नायक के द्वारा यह कहा गया)

[कृति—कुरून्तोहै (लघु पद्य संग्रह)
कवि—शेम्-पुल-प् पेयनीरार् (लाल मिट्टी पर गिरे वर्षा जल वाला कवि[1])]

---

1. कवि का यह नाम प्रस्तुत कविता की ही एक पंक्ति के आधार पर है। कवि के वास्तविक नाम का पता नहीं है। तमिल के संघकालीन कवियों में से अनेक के नाम उनकी किसी अतिलोकप्रिय काव्योक्ति के आधार पर उपनाम जैसे विख्यात हो गये हैं और उनके वास्तविक नाम लुप्त हो गये हैं।

2. 'जमा हुआ दही माडने के पश्चात्
(अपनी) 'कान्-दल' पुष्प (स्थलपद्म ?) समान मृदुल अंगुलियों को (अपने पहने हुए) वस्त्र में ही (तुमने) पोंछ दिया है और उसी वस्त्र को धारण किये हुए हो।
तुम्हारे कुवलय-समान नयन ध्वोंक (देते समय उमड़े) धुएं से भर गये तुम्हारा स्वयं रांधा हुआ यह मधुर-अम्ल (या खटमीठा) पाक[1] बड़ा स्वादिष्ट है।'——
यह कह कर पति ने (अपनी नव विवाहिता पत्नी का बनाया हुआ भोजन) खाया ! इसे देखकर तुम्हारा मुख, जो उज्ज्वल ललाट से शोभित है, कैसी गहरी प्रसन्नता से चमक उठा है।"[2] (167)
(नवोढा वधू की माता के प्रति धाई की यह उक्ति है)[3]

[**कृति—वही**
कवि—कूडलूर् कीज़ार]

3. (हे सखि ! मेरे प्रियतम······)
स्थिर वचन वाले हैं, चिरकालिक मधुरिमा से पूर्ण (गुण वाले) हैं, कभी मेरी भुजाओं का वियोग न जानने वाले हैं। ऐसे उत्तम व्यक्ति का स्नेह उस मधुर मधु के समान ऊंचा है जो (मधु) कमल के शीतल मकरंद और उन्नत चंदन के मकरंद को मिलाकर उस चंदन के वृक्ष में संचित किया गया है।

जिस प्रकार जल के बिना संसार का अस्तित्व नहीं हो सकता उसी प्रकार उनके बिना मेरा अस्तित्व नहीं हो सकता, ऐसी मुझसे पहले से अत्यन्त प्रेम करने की कृपा की है, फिर बिरह में मेरा कांतिपूर्ण ललाट मलिन पड़ जाएगा, इसका उन्हें डर होता है, अब क्या वे कर्तव्य भूल कर व्याकुल होंगे। (नहीं)

---

1. तमिल में 'तीम्-पुलि-प्पाकर' कहा गया है। यह ताड़-गुड़, इमली का फल और दही मिलाकर फिर छोंक देकर बनाया जाने वाला एक पाक है।
2. यह नवोढा वधू मुग्धा है, रसोई बनाने के लिए अभ्यस्त नहीं है। इस तथ्य की व्यंजना है—दही लगी उंगली को अपने पहने वस्त्र में ही पोंछ देने में और धुए से आँखों के पीड़ित होने में।
3. नव-विवाहित वधू की माता यह सोचकर चिंतित होती है कि मेरी बेटी के व्यवहार से उसका पति प्रसन्न होगा या नहीं। प्रस्तुत प्रसंग से यह ध्वनित है कि अपनी बेटी के प्रति वर का यह मधुर व्यवहार देखकर वधू की मां आश्वस्त होती है।

(प्रियतम के दूर चले जाने की आशंका करने वाली अपनी सखी से नायिका का यह कथन है)

[**कृति—नऱ्ऱिणै (नट्रिणै)**
कवि—कपिलर्]

4. जैसे मधु मिश्रित हो—इस प्रकार स्वादिष्ट, मीठे श्वेत दुग्धान्न को कांतिमय स्वर्ण पात्र में रखकर उसे एक हाथ में लिये हुए, पुष्प के समान गुच्छ से युक्त नोकदार छोटी डाल को (दूसरे हाथ से) हिला हिला कर (बुलाते हुए) 'खा लो' कहते रहने पर भी—(वह लड़की अपने पैरों में पड़े) स्वच्छ कांति वाले मोतियों से भरे स्वर्ण-मंजीर बजाते हुए लड़खड़ाकर पग बढ़ाती हुई दूर भाग जाती (इधर) पके हुए श्वेत केशों वाली अति वृद्ध धाइयां उसके पीछे-पीछे दौड़-दौड़ाकर थक जातीं (लेकिन वह लड़की) स्वयं आंगन के पंडाल के नीचे दौड़ जाती और कहती 'मैं नहीं खाऊंगी'। ऐसी शैशव क्रीड़ा करती थी कभी वह बेटी ! किन्तु वह अब क्या हो गयी है !)

न जाने कहां से ऐसा ज्ञान और व्यवहार-कौशल सीख गयी है ! अपने पति का घर निर्धन है, तो भी उसे (अपने) धनी, समृद्ध पिता का अन्न कभी याद नहीं आता है।

जैसे बहती धारा के मध्य कहीं कहीं छोटे-छोटे सिकता कण मिल जाएं—इस प्रकार प्राप्त (अर्थात् परिश्रम से प्राप्त) अन्न को एक वक्त छोड़कर दूसरे वक्त में खा लेती है। इतनी कठोर हो गयी है।' (110)

(बेटी का गार्हस्थ्य-जीवन किस प्रकार है—यह देखने के लिए धाई उसके घर गयी। फिर वापस लौटकर वह उस बेटी की मां से यह वचन कह रही है)

[**कृति—वही;**
कवि पोदनार्]

5. 'जुही की नुकीली कलियां प्रकट हुई हैं,
'इल्ल' वृक्ष की कलियों के साथ हरी डंठलवाले 'कोन्रै' (वृक्ष) की कलियों के मृदुल दल खुलने लगे हैं;
जैसे लोहे को ऐंठकर बनाये गये हों
—इस प्रकार के काले और लंबे दृढ़ सींगों के हरिण कंकरीले गर्तों में उछलते हुए कूदने लगे हैं;
विशाल धरती पर जलाभाव का कष्ट दूर हो गया।

इस प्रकार (करते हुए) बिजली आदि से संकुल, मेघ बड़ी
ध्वनि के साथ वेगवान जल-बिन्दुओं को चारों ओर बिखेर-
बिखेर कर रमणीय कानन-भूमि में वर्षा करने लगे......
(नायिका के प्रति उसकी सखी का यह कथन है)

[कृति—'अह नानूरू (अन्तरंग जीवन विषयक पद्य चतुश्शती)
कवि—कुरुगुंडि मरुदनार् (कुरूगुंडिग्रामवासी मरुद नामक)]

6. "मैं सांत्वनापूर्ण वचन कहने लगा था (लेकिन वे वचन मेरी प्रियतमा के लिए सह्य नहीं थे, अतः उन्हें) न सहकर उसका मुख बदल सा गया। वह मेरे संबोधन को अनसुना करके रह गयी थी। (फिर अपने सहज) लज्जा-संकोच के भाव को भी दूर करके वह धीरे-धीरे मेरी ओर यों आयी कि उसके कोमल और अत्यंत अरुण चरण धरती पर अपने बिंब बिछा रहे थे। (वह मेरे निकट आकर खड़ी हुई और) अपने पैने दांतों की किंचित् झलक दिखाती हुई झूठी हंसी हंस पड़ी।

मेरे प्रवास जाने की बात (मेरे कहने पर पूरा) जान ले, इससे पहले ही वह (प्रियतमा) मेरे गमन को न चाहने वाले मन से (अर्थात् मेरा चला जाना पसन्द न करते हुए) बोल उठी (कि)···शुष्क 'औमै' (नामक) वृक्षों के निबिड़ बन में, जहां स्फटिक-समान असंख्य आंवले (के फल) विशाल प्रस्तर पर इस प्रकार बिखरे पड़े रहते हैं जैसे (बालकों के खेल में) गोटियां पड़ी हों।

जहां सूर्य-किरणों से चमकती हुई पर्वतों की ढालों पर सजाकर रखे हुए-से (लगने वाले) पैने पत्थर ऐसे होते हैं कि मानो सान पर उनकी धार चढ़ायी गयी हो और (मार्गगामियों के पैरों की उंगलियों को क्षत-विक्षत कर देते हैं···

ऐसे (अन्न) जल-रहित अरण्य से होकर यदि आप जाने का विचार कर रहे हों तो'···इतना तो (स्पष्ट रूप में) कहा, फिर मानो यह भी कहने वाली हो कि मुझे छोड़कर चला जाना धर्म नहीं, लेकिन वह बात भी रहने दो··· (तुमसे अब मुझे क्या कहना है।)···(स्पष्ट शब्दों में इतना सारा न कहा) मुँह से कुछ न कहा, कुछ संकेत से बताया, फिर चित्रवत् (निश्चल रूप में) कुछ सोचती हुई खड़ी रही और (अंत में) कुछ निर्णय पर आई हुई-सी (लगी) (फिर) पुतलियों को ढक कर उमड़ने वाली अश्रु-धारा से अवरुद्ध दृष्टि के साथ (प्रियतमा ने) अपने वक्ष पर चिपटे हुए शिशु के कोमल लघु सिर पर स्थित, स्वच्छ जलोत्पन्न रक्तकमल की माला को सूंघा···तब उसके उष्णश्वास के स्पर्श से उस माला की अतिरमणीय उज्ज्वल अरुण कांति एकदम अदृश्य हो गयी।

यह दृश्य देखकर (मैंने अपने प्रवास-गमन का विचार त्याग दिया और) रह गया। 'मैं जब निकट हूं, (अभी प्रवास गया नहीं), तभी मेरी उस रुचिर कंकण-धारिणी (प्रियतमा) की यह दशा है! अगर मैं उसे छोड़कर प्रवास चला ही जाऊंगा तो उसके प्राण नहीं बचेंगे' (धनार्जन के लिए प्रवास-गमन का विचार करने वाले नायक का अपने ही मन के प्रति यह कथन है)

कृति—वही;

कवि—पेरुङ्ध्कडुङ्-गौ (1)]

7. ('सज्जन लोग ऐसे होते हैं कि) अगर इन्द्र का अमृत भी उन्हें प्राप्त हो जाय तो भी उसे 'यह बहुत मधुर है' कहकर (दूसरों को न देते हुए स्वयं) अकेले नहीं ग्रहण करते (किन्तु औरों को देना अच्छा समझते हैं) वे क्रोध नहीं करते, औरों को त्रस्त करने वाले संकट कहीं उत्पन्न न हो जाय···यों डरते रहते हैं और उन्हें रोकने के लिए सदा जागृत रहते हैं।

पुण्यकर्म (और उससे उत्पन्न होने वाला यश) हो···तो उसके लिए अपने प्राण भी देने को सन्नद्ध रहते हैं। पापकर्म हो···तो उससे चाहे सारा जगत भी उन्हें प्राप्त होता हो तो भी नहीं अपनाते। उनमें मोह नहीं होता। इस प्रकार के महान गुणों से भरित (सज्जन) स्वार्थ के लिए कोई यत्न नहीं करते; परार्थ के लिए निरंतर परिश्रम करते रहते हैं। ऐसे लोगों के रहने के कारण ही यह संसार टिका हुआ है। (182)

[कृति—पुरनानूरु (बहिरंग जीवन विषयक पद्य चतुश्शती)

कवि—इलम्-पेरुवाहुदि (कुमार महापांड्य)[2]]

8. "सब हमारे गांव हैं, सभी (लोग) हमारे बंधु (जन) हैं (किसी के) हित-अहित दूसरों के लिये नहीं होते; (किन्तु अपने ही लिये होते हैं)
दु:ख और सुख भी वैसे ही होते हैं। मरण कोई नयी (बात) नहीं।
'जीवन मधुर है'—कहकर हम हर्षोत्फुल्ल नहीं होते;

---

1. यह चेरवंशीय राजा था। इसके नाम के साथ 'विरह और मरु का वर्णन करने वाला' विशेषण जुड़ा रहता है; क्योंकि ऐसा वर्णन करने में यह कवि अपनी समता नहीं रखता था।
2. यह एक पांड्य राजा था। एक बार समुद्र मार्ग से यवद्वीप (ज़ावा) जाते हुए आंधी के कारण इसकी नौका समुद्र में डूब गयी और यह मर गया। इसलिए इसके नाम के साथ' समुद्र में मृत' विशेषण जुड़ा रहता है। मूल की इस पंक्ति का यह भी अर्थ निकाला जा सकता है। अथवा उस सम्राट के हाथी का चारण करने वाला हाथीवान हो।'

'जीवन अच्छा नहीं—कहकर अप्रसन्न भी नहीं होते।

विद्युत-भरे वेग की शीतल वर्षा से बह निकलने वाली, निरन्तर शिलाओं से टकराती हुई चलने वाली, गंभीर विशाल नदी की बाढ़ में पड़ी हुई नाव के समान ही यह अमूल्य जीवन कर्म-परम्परा (या भवितव्यता) के मार्ग में बहता रहा है—इस सत्य को हमने ज्ञानियों के अनुभव (और उनके उपदेश) से स्पष्टतः जाना है। अतः प्रभावशाली महान व्यक्ति को देखकर हम विस्मयाविष्ट (अभिभूत) नहीं होते। और छोटे (पामर) व्यक्तियों का तिरस्कार तो—उससे भी बढ़कर नहीं करते। (192)

[कृति—वही;
कवि—कणियन पूङ कुन्रू नार् (पुष्पशैल ग्रामवासी कणियन्)]

9. पृथ्वी-मंडल पर अनन्य प्रभुत्व रखते हुए अपने श्वेतछत्र की छाया में (सारी धरती को रखकर) शासन करने वाला कोई सम्राट हो—

या कोई ऐसा पामर हो जिसे दिन में अथवा अर्द्ध-निशा में भी सोने का अवसर नहीं मिलता हो। और जो गाय-बकरी चराने में लगा हो—दोनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए आवश्यक खाने का अन्न पाव भर का होता है; और पहनने का कपड़ा दो टुकड़ों का। दूसरी सारी बातें भी दोनों प्रकार के मनुष्यों में समान होती हैं। अतः (किसी को) सम्पदा (प्राप्त हुई है तो उस) का प्रयोजन दान करना है; (इसके विरुद्ध यदि सम्पदा का) स्वयं ही भोग करने की सोचें तो उससे अनेक दोष उत्पन्न होंगे। (189)

[कृति—वही;
कवि—नक्कीरर्]

10. "……जो तुम्हारे गुणों को मानते हैं वे ही धर्मवान होते हैं—

अत्यन्त गुणी, महान् तपस्वी और वंदनीय होते हैं इनको छोड़कर ऐसे व्यक्ति जिनके हृदय में दीर्घकालिक क्रोधाग्नि जलती रहती है जो अधर्म-भूयिष्ठ और गुणहीन होते हैं जो कष्टमय तपोव्रत से आलस्य करने वाले हैं 'जो जन्मान्तर नहीं है'—ऐसा कहने वाले अज्ञानी हैं : वे तुम्हारी छाया में नहीं आ पाते।

वैसे लोगों को छोड़ ऐसे लोग ही तुम्हें पाते हैं, अतः हम तुमसे जो मांगते हैं वह धन, स्वर्ण या भोग नहीं है, किन्तु तुम्हारी कृपा, प्रेम और धर्म—ये तीनों हैं।

हे कदंब के वर्तुल पुष्पों की (भ्रमर) गुंजित माला धारण करने वाले मुरुग ! ……"

[कृति—परिपाडल—गीत संख्या 5 (पंक्ति-71-77)
कवि—कडुवन् इलवेयिननार्]

11. "पिता पुत्र के आलिंगन में हैं;

मृदुल बोली वाले (उस) पुत्र की मां तो दोनों के (अर्थात पुत्र और पिता के) आलिंगन में है।

निश्चय ही उनका वह संसार मधुर है ! इस अत्यन्त विशाल जगत की समता करने वाला है।"

(वधू के गार्हस्थ्य-जीवन को देखने के पश्चात् उसके पारिवारिक सुख पर प्रसन्न धाई की यह उक्ति है)

[कृति—ऐङ्कुरुनूरु (पंच लघुशती)—पंचमशतक, प्रथम देशक, नवम पद्य
कवि—पेयनार]

12. "तुम्हारी समृद्धि की जय हो; तुम्हारे जीवन की जय हो, सत्य वचन वाले (तपस्वी या कवि) तुम्हारा यश गायें, तुमने शत्रुओं के भोगने के लिए कष्ट दिये; मित्रों के अनुभव के लिए अच्छे आमरण दिये। हे (संपदा से) परिपूर्ण ! विनम्रता से दबकर, दोषों से रहित हो रहने वाले प्रभु ! …"
(51)

(ये कवि के द्वारा राजा के गुणों की प्रशंसा में कहे गये वचन हैं)

[कृति—पदिट्रु-प् पत्तु (दश-दशक)
कवि—काप्पियाट्रु—काप्नियनार्]

13. "हे चमकते कंकण धारण करने वाली (सखी) ! सुनो ! उस समय, जब मैं (छोटी थी और) गली में मिट्टी के घरोंदे बनाकर खेला करती थी तब वह निरंकुश (नटखट) लड़का (आता और) अपने पैरों से घरोंदे रोंद देता, मेरे केशों में अलंकृत पुष्पों को छीन लेता, मेरे गेंद को ले भागता, इस प्रकार मुझे क्लेश देता; वही लड़का एक दिन, जब मैं अपनी माँ के संग बैठी थी, आया और कहने लगा; 'ऐ घरवालो पीने को कुछ जल दो।' तब मां ने (मुझ से) कहा '—कांतिमय आभरण (या वस्त्र) धारण करने वाली (बेटी) ! जाओ 'स्वर्णकलश में जल भरकर इसे पिलाकर' आओ !"

मैं यह न जान सकी कि वह कौन है; मैं (उसे जल पिलाने के लिए) गयी। सखी ! जानती हो—तब उसने क्या किया। वह मेरी चूड़ियों से अलंकृत कलाई को पकड़कर क्लेश देने लगा ! मैं घबराकर चिल्ला पड़ी 'ओ

मां ! यह क्या कर रहा है ! देखो' : मां घबराकर दौड़ी आयी : (इतने में मैं जान गयी कि वह कौन है) तब मैंने कह दिया कि 'जल पीते-पीते यह हिचकी लेने लग गया' तब मां तुरंत उसकी (हिचकी को मिटाने के लिए उसकी) पीठ पर हाथ फेरने लगी : तब उस चोर ने अपनी कनखियों से मुझे यों देखा मानो मुझे मारनेवाला हो, और आनन्दमय मिलन का उपाय कर दिया।"

[कृति—कलि-त्-तोहै-पद्य संख्या 51
कवि—कपिलर्]

2. संघकालीन कृतियां–द्वितीय वर्ग

पत्तु-प्-पाट्टु (गीतदशी)

1. ······(मुरुग भगवान—अर्थात् कार्तिकेय के)

अरुण-चरणों में लग्न सद्हृदय के साथ, यदि तुम परहितकारी कार्य करने के उद्देश्य से इस (मुरुग के क्षेत्र) स्थान को छोड़कर (अन्यत्र कहीं) जाना चाहते हो—तो तुम्हारे सद्हृदय की यह मधुर इच्छा अन्य अभीष्टों के साथ पूर्ण होवे ! तुम्हारा विचारित कार्य इसी क्षण पूर्ण होवे ! ······

(कवि के द्वारा किसी दूसरे को भक्ति की प्रेरणा देते हुए यह कथन हुआ है।)

[कृति—तिरुमुरुगु-आट्रुप्पडै (अथवा श्री कार्तिकेय के आश्रय में प्रेषण'
कवि—मदुरै के अध्यापक के पुत्र—नक्कीरर्]

2. ······उज्ज्वल घण्टे की लम्बी जिह्वा जब बज उठती हो—ऐसे मध्याह्न में—

जैसे पुष्पित वन-मल्लिका-लता का मकरन्द पवन के झोंके से फैल गया हो—इस प्रकार के फड़फड़ानेवाले महीन) वस्त्र धारण किये हुए गुरु-गम्भीर पद-गति से चलने वाले बड़े योद्धाओं का झुंड घिरा रहता और·········वह राजा भेरी गर्जन से पूर्ण खेमें में (अपनी वियोगिनी प्रियतमा को अचानक स्मरण कर) आतुर हो जाता·········" सेना-शिविर में राजा की स्थिति का वर्णन है)

[कृति—मुल्लै-पाट्टु (वन-प्रदेश की पृष्ठभूमि पर बिरह—विषयक गीत)
कवि—'काविरि-प-पूम्-पट्टण' नामक नगर के स्वर्ण व्यापारी का पुत्र नप् पूदनार्]

3. "जैसे अमोघ मेघ-संघ विजय (गर्व) के साथ उमड़-घुमड़कर धरती को आप्लावित करते हुए बरस पड़े हों—यों

ग्वालों के झुंड, जो हाथों में घोर दंड (या लाठी) रखे हुए थे अपने गो-गणों को दूसरे स्थानों पर ले जाने के लिए हांकते हुए कोलाहल-ध्वनि के साथ निकल पड़े; विशाल तथा झुकी पंखुड़ियों वाले पुष्पों की कांति बिखर गयी (क्योंकि) बड़ी सर्दी पड़कर सता रही है। जब ऐसा हो रहा है।

तो उल्काहस्त प्रेतों के झुंड (लुआठे ले चलने वाले प्रेत या अगिया-बैताल) भी कांप उठे……"

[कृति—बेहु-नल्-वाडै ('अतिशीत पवन')
कवि—नक्कीरर्]

3. संघकालीन कृतियां–तृतीय वर्ग

अठारह लघुनीति-ग्रन्थों से

(1) तिरुवल्लुवर विरचित 'तिरु-क्-कुरल' का अंश

धर्म :—

मन में कलंक (या दोष) से रहित होना—यही धर्म है; शेष सब आडंबर मात्र है।

(पद्य सं० 34)

जो प्रेम से रहित हैं वे सभी वस्तुओं को अपने ही अधिकार में रखते हैं। प्रेमी व्यक्ति तो अपनी हड्डियों (अर्थात प्राणों) को भी दूसरों का बना देते हैं।

(पद्य सं० 72)

(कोई चाहे) मारने समान कोई अहित भी कर दे, तो भी यदि उसका (पहले कभी) किया हुआ उपकार स्मरण करें तो वह (अपराध) सारा लुप्त हो जाता है।

(पद्य सं० 109)

यदि (दूसरों के दोषों की शिकायत करने वाले व्यक्ति) दूसरों के दोषों के जैसे अपने दोषों को भी देख सकें तो इस स्थिर जीवन को क्या पीड़ा हो सकेगी ?

(पद्य सं० 190)

अर्थ :—

अध्ययन करने योग्य (ग्रंथों) को निर्दुष्ट रूप में सीखना चाहिए और सीखने के पश्चात् उस शिक्षा के अनुसार आचरण करना चाहिए।

(पद्य सं० 391)

जिस विषय को जिस किसी के भी मुंह से सुनें, उस विषय के सत्य तत्व को पहचानना ही विवेक होता है।

(पद्य सं० 423)

स्पृहणीय दाक्षिण्य भाव से युक्त सज्जन (ऐसे होते हैं कि) अपने परिचित व्यक्तियों को अपने प्रति विष देते हुए देखकर भी उसे पीकर शान्त रहते हैं।

(पद्य सं० 580)

वही देश (या राष्ट्र) होता है जहां बड़ी भूख न हो, असाध्य रोग न हों और बाहरी देशों की विनाशकारी शत्रुता नहीं हो : यों अच्छे ढंग से संचालित हो।

(पद्य सं० 734)

मनुष्य जब अपनी (उन्नत) स्थिति से गिर जाते हैं तो वे शिर से गिर गये केश की समता करते हैं।

(पद्य सं० 964)

सभी मनुष्यों का जन्म एक समान होता है : किन्तु उनके किये जाने वाले कर्मों के कारण उनकी विशिष्टता (उच्चता या नीचता) एक समान नहीं रहती।

(पद्य सं० 972)

सृष्टिकर्ता ने यदि (कुछ लोगों के लिए) भीख मांगकर अपना जीवन रखने का विधान किया हो तो वह (सृष्टिकर्ता) भी (इन भिखमंगों के जैसे ही) भटक-भटक कर मिट जाए।

(पद्य सं० 1062)

काम :—

वह (नायिका) जब मैं उसे देखूं तो धरती को देखती रहती है; (जब मैं उसे) न देखूँ तो स्वयं मुझे देखती हुई (मन ही मन) मंदमंद हंसती है !

(पद्य सं० 1094)

अरुण आभरण भूषित इस (नायिका) की ज्यों-ज्यों मैं घनिष्टता प्राप्त करता जाता हूं त्यों-त्यों इसके प्रति प्रेम यों प्रकट होता रहता है जैसे उत्तम ग्रन्थों का ज्ञान बढ़ते-बढ़ते (अपने) अज्ञान का पता लग जाता है।

(पद्य सं० 1110)

जब मैंने छींक दी तो वह (नायिका) मेरे आयुष् की कामना करती (हुई) बोल उठी कि चिरकाल जिये रहो (फिर तुरन्त) वह छोड़कर, यह

कहती हुई रो पड़ी कि किस (अन्य प्रिय व्यक्ति) के याद करने से तुम छींक देने लगे ?"

(पद्य सं 1317)

(2) **किन्हीं अज्ञातनामा जैन साधुओं द्वारा विरचित "नालडियार्" "(चतुष्पदी)" नामक नीति-ग्रन्थ का अंश :—**

"लकड़ी से बजाये जाने वाले नगाड़े की ध्वनि एक कोस दूर तक के लोगों को सुनाई पड़ती है : मेघ-गर्जन की ध्वनि एक योजन दूर तक के लोगों का सुनाई पड़ती है (किन्तु) जब कोई किसी सत्पुरुष को कुछ दान देता है तब वह बात तीनों भुवनों में सुनाई पड़ती है।"

(पद्य सं० 100)

संघ कालोत्तर युगीन काव्य

1. शिलप्पधिकारम् (नूपुर महाकाव्य)

कवि—इलंगो अडिगल्

बीसवां अध्याय—अभियोग कथन से :—

(पूर्वकथा-संक्षेप--कावेरी नदी के मुहाने पर एक नगर बसा था जो 'पुहार', 'पूम्पुहार' और 'कावेरि-प्-पूम् पट्टिणम्' नामों से विख्यात था। वह चोल देश की वैभव-नगरी थी। उसके निवासी एक धनाढ्य वणिक् का पुत्र 'कोवल्न' है। वह माधवी नामक एक अति सुन्दरी नर्तकी के प्रेम में मग्न रहता है और अपनी साध्वी पत्नी कण्णकी की उपेक्षा करता है। एक दिन दैववशात् वह आशंकित हो जाता है कि अपने प्रति माधवी का प्रेम अनन्य नहीं है।

कोवलन् माधवी से विमुख होकर घर लौटता है। उसकी संपदा नष्ट हो चुकी है, यहां तक कि कण्णकी के शरीर पर पैरों में पड़े रत्नमय नूपुरों के जोड़े के अतिरिक्त, अन्य सभी आभरण अब नहीं रहे। कोवलन् गार्हस्थ्य का निर्वाह करने और पुनः व्यापार कर धनार्जन करने का संकल्प लेकर पत्नी सहित पांड्य राज्य में जाता है और उसकी राजधानी मदुरै में पहुंचता है। कण्णकी अपना एक नूपुर उतार कर कोवलन को देती है और उसे बेचने के लिए कोवलन् मदुरै के बाजार में जाता है। वहां एक सुनार कोवलन् को देख लेता है और उसे निस्सहाय परदेसी जानकर संकट में डाल देता है। उस सुनार ने पांड्य राज-पत्नी के एक अमूल्य नूपुर को किसी बहाने से चुरा लिया था। अब कोवलन् के हाथ में वैसा ही एक बहुमूल्य नूपुर पाकर उसकी दुर्बुद्धि जागृत होती है। वह राजा को यह खबर देता है कि राजमहिषी का नूपुर मिल गया; चोर पकड़ा गया है। अपनी महिषी को संतुष्ट करने के लिए आतुर पांड्य राजा बिना सोचे समझे सिपाहियों को आज्ञा दे देता है कि चोर को मृत्युदण्ड देकर नूपुर ले आवें। राजाज्ञा का पालन हो जाता है।

किसी प्रकार यह समाचार सुनकर कण्णकी भागी हुई वध्यस्थान में पहुंचती है। पति को रक्त-प्रवाह के मध्य धराशायी देखकर शोक-विह्वल होती है। पति को राजा ने अपराधी घोषित किया – इस बात पर उसका करुणामय सतीत्व उग्र रूप धारण कर लेता है। वह अपना दूसरा नूपुर हाथ में लिए न्याय मांगने के लिए राजद्वार पर जा पहुंचती है।) आगे की घटना है :—

"ऐ द्वार के पाल ! ऐ द्वार के पाल !
विवेक से भ्रष्ट, धर्म-चिन्ता मुक्त
राज-नय से रहित (पांड्य राजा) के
ऐ द्वार के पाल ! ऐ द्वार के पाल !
'उपल-मुखरित युगल नूपुर से एक
(नूपुर) हाथ में लिए, मृत-पतिक वह
द्वार पर खड़ी है—जाकर बता दो
बता दो ! बता दो अभी राजा से—
(दौड़कर गया तब) द्वार का पाल वह..........
(कहा) जय जय हो ! जय हो पांड्य प्रभो !
....
....
....
रोष से उद्विग्न, क्रोध ज्वालामयी
स्वर्णमय सुन्दर नूपुर, कर लिए—
पति को खोयी हुई, द्वार पर आई है !
पति को खोयी हुई, द्वार पर आई है !
पांड्य ने कहा—
आने दो उसे अभी यहां
....
....
सौध के भीतर वह आयी राज-समीप
"अश्रुवर्षी नयन लिये, मेरे पास
मुग्धे आयी ! तुम कौन हो बताओ
बोली (तब कण्णकी) कि सुनो मैं कहती हूं
हे विचारहीन प्रभु ! 'पुहार' मेरा नगर
जहां का राजवंश जगत विख्यात है !
अनिंद्यकीर्ति जिसने रक्षा की पक्षी की

देव गण विस्मित थे उसी का नगर वह !
द्वार पर न्याय का घंटा बज उठा और
गाय के नयन की अश्रुधारा बही
देख जिसने तप्त हृदय से अपने ही
दुर्लभ पुत्र को मारा रथ-चक्रों से
उसका नगर वह पुहार मेरा नगर ।

उत्तमकीर्ति वणिक 'माशात्-तुव' महावश्य
पुत्र (कोवलन्) —
हा वह दुर्दैव प्रेरित हो
जीवन की कामना से हे वीर वलयधारी !
तुम्हारे नगर आया । मेरे नूपुर को
विक्रय करने (जब विपणि-वीथी) गया
तुमसे पाया मरण— हाय उसी की पत्नी
'कण्णकी' है मेरा नाम—
बोला सुन पांड्य तब—
तस्कर-वध हे रमणी ! अनय नहीं होता है ।
वेत्रदंड की तो वह विजय पवित्र है !

रुचिराभरणा वह रोषभरी बोल उठी—
सद्-विवेक शून्य अहे ! 'कोरकै' के हे नरेश !
मेरे पद-नूपुर में भरे माणिक्य हैं !
पांड्य ने सोचा 'सुभाषिनी ठीक कह रही
हमारे नूपुर में मुक्ताफल हैं भरे !
और कहा— लाओ वह नूपुर (अभी यहां)
ले नूपुर राजा ने रखा सम्मुख ज्यों ही
कण्णकी ने उठा उसे

धरती पर दे तोड़ा ।
छिटक गये लाल रत्न राजा के मुख ऊपर
देख उसे (भ्रांत हुआ) राजा बोल उठा
हाय झुक गया मेरा राजछत्र, वेत्रदंड
शिथिल हुआ ! स्वर्णकार— वचन
सुना मैंने भी
मैं भी क्या राजा हूँ ! मैं ही तो तस्कर हूँ
जनता का रक्षक यह दक्षिण दिग् का शासन

मुझ से अब नष्ट हुआ ! दुष्ट हुआ नष्ट क्यों न
हो मेरा जीवन भी ! कहकर सम्राट तभी
चेतना शून्य बन गया गिउ (आसन से) ।
साम्राज्ञी कांप गयी, आतुर व्याकुल हो
"प्रिय पति न रहा जब, कुछ न रहा मेरा
कह पति—पद छू, निष्प्राण हुई गिर भूपर ।"

2. मणिमेखलै (मणिमेखला)

कवि—शात्तनार्

सोलहवां अध्याय—साद्वनकृत धर्मोपदेश

(मणिमेकलै महाकाव्य में वर्णित एक उपाख्यान का अंश है ।

सादुवन नामक व्यापारी अनुचित आचार से अपनी सारी सम्पति खो देता है और देशान्तर में जाकर व्यापार करके धन कमाने की इच्छा से समुद्र मार्ग से जाता है । जाते समय बड़ी आंधी आती है जिसमें उसकी नौका डूब जाती है । सादुवन किसी प्रकार लकड़ी का एक तख्ता पकड़े एक द्वीप में पहुंचता है जहां दिगंबर नाग लोग रहते हैं । आगे की कथा है :—)

वह (सादुवन) मेघावृत्त महासमुद्र में पड़े रहने के कारण उत्पन्न पीड़ा के बढ़ने से निद्रामग्न हो गया । तब, उस घोर पर्वत के निवासी कठोर और दिगंबर लोग वहां आ पहुंचे और यह सोचकर कि यह अधिक पीड़ित है, अकेले आ पहुंचा है, दीन है, इसका यह मांसल शरीर भोजन बन सकता है, उसे जगाया । तब उसने, चूंकि उनकी उस भाषा को भली भांति सीखा था (उनकी बात समझकर) वह बोल उठा । तब (उसकी बात सुन कर) वे कठोर कृत्य करने वाले लोग उसे घेरना छोड़ हट गये, उसे नमस्कार किया, उससे बात की और वह कह उठे कि 'हे समर्थ सुनो ! यहां हमारे गुरु हैं । उनके पास आने की कृपा करो ।' तब वह (सादुवन) उनके साथ गया ।

मधु के घट, अन्यन्त दुर्गन्धित श्वेत अस्थियों के सूखे मांस से भरे एक आसन पर वह नाग यों अपनी स्त्री के साथ बैठा था जैसे कोई भालू अपनी मादा के साथ बैठा हो । सादुवन ने उसकी···वह दशा देखी । उस (अरण्य-वासी) को उसकी भाषा बोलकर अपने वश किया; फिर ऊँचे वृक्ष की शीतल छाया में विश्रांति पाकर बोलने लगा । नाग-गुरु ने पूछा कि तुम किस उद्देश्य से यहां आये हो ! तब सादुवन ने तरंगपूर्ण समुद्र में घटित घटनाएं कहीं । तब

नाग-गुरु बोला--'बिना भोजन के उस समुद्र में अनुभूत कष्टों से यह पीड़ित है, दया के योग्य है, आओ ! ऐ लोगो ! इस युवक को एक तरुणी युवती दो और आवश्यक मद्य और मांस दो।' वह वचन सुनकर सादुवन-विस्मित होकर—(घबराकर) बोला 'कैसा कठोर वचन मैंने सुना—मुझे यह सब नहीं चाहिए ?' तब नागगुरु क्रोधी होकर बोल उठा—'अगर स्त्री, और भोजन नहीं हों तो मनुष्यों को जगत में रहने का फल भी क्या कुछ मिलेगा ? अगर ऐसा कुछ है तो दिखाओ सही, हम भी देखेंगे'। तब सादुवन कहने लगा—'मादक मधु और जगत के जीवों की हिंसा को निष्कलंक व्यक्तियों ने मना किया है सुनो—जिसने जन्म लिया है, वह मरेगा, जो मरता है वह जन्म लेगा ही। यह सोने-जागने के समान है। सद्धर्म करने वाले व्यक्ति पुण्य लोक में पहुंचते हैं। पापकर्म करने वाले, नरक लोक में पहुंचते हैं; इसकी स्थिति जानने के कारण ज्ञानी लोगों ने (ऐसे कृत्यों को) मना किया है इसे समझ लो'—

नागगुरु अट्टहास कर हंस पड़ा और बोला—'तुम कहते हो कि शरीर को छोड़ कर निकलने के बाद जीव कोई रूप धारण करके किसी स्थान पर पहुंचता है। वह जीव किस प्रकार जा पहुंचता है ?—-वह क्रम हमें बताओ।'

तब सादुवन ने कहा—'क्रोध न करके सुनो जब तक प्राण रहते हैं तब तक यह शरीर इसको होने वाली बातें जानता रहता है। जब प्राण निकल जाते हैं तो वही शरीर काटकर जलाने पर भी कुछ जानता नहीं। अतः यह जान लो कि शरीर के भीतर की कुछ वस्तु है, जो चली गयी। मृतकों का कोई गम्य स्थान है—यह क्या मैंने ही जाना है ? सभी जानते हैं। जब शरीर यहां पड़ा रहता है तब जीव अनेक कोस दूर जाकर पहुंचता है, ऐसा स्वप्न में भी होते हुए देखते हो। इस प्रकार जाने वाला जीव अपने किये कर्मों के कारण प्राप्त हुए (दूसरे) शरीर में प्रवेश करता है यह तुम जान लो।'

3. 'अहप्पोरुल'

कवि—इरैयनार

उपर्युक्त काव्य की नक्कीरर् कृत व्याख्या से :—

'प्रेममिलन' माने—नायक और नायिका का एकान्त में एक उपवन-मध्य साक्षात्कार होने पर अपने अन्तर की भावना के आधिक्य के कारण मिलन प्राप्त करना है। तो इस सूत्र में 'किसी कार्य से वहां आये नायक और नायिका'—कहने से यह सिद्ध होता है कि—

वह (नायक)--पत्थर के (हाथी बांधने के) खंभों को भी उखाड़ने वाले, कठोर नयन वाले, नर हाथियों की तथा निर्मम वराह, महान् पर्वत, विशाल धरती तथा विस्तृत आकाश की समता करता है; सिंह-सदृश बलवान है तथा हिरण सदृश फुर्तीवाले सैंकड़ों तीक्ष्ण शूलधारी युवकों से घिरा हुआ चल रहा है।

यह (नायिका) भी ऐसी सैंकड़ों सखियों से घिरी हुई है जो साथ में जन्म लेकर, साथ में पलकर, साथ में स्नान करती हुई साथ ही सुख से बढ़कर, साथ में खिलाये जाकर, साथ ही दूध पीकर, साथ में जागकर, साथ में शिक्षा पाकर उसके साथ रहती आयी हैं, जो (उत्तम) परम्परा और अभ्यास (अर्थात् व्यवहार), सभ्यता और स्नेह, शालीनता, सद्व्यवहार और महत्ता से युक्त है और जो नेत्र और मन को हरनेवाली उज्ज्वल ललाट युक्त है (वह नायिका) तारों के मध्य शीतल चन्द्र के समान चली आती है। यह सिद्ध होने पर यदि यह प्रश्न हो कि एक एकान्त मिलन पाने का कथन विरुद्ध होगा तो (कहना है कि) विरुद्ध नहीं होगा। क्योंकि उस नायिका की सखियां उपवन में प्रविष्ट होते ही क्रीड़ा की इच्छा से अलग-अलग बिखर जाती हैं।

यदि यह पूछा जाय कि क्या इस प्रकार सखियां उस (नायिका) को अकेली छोड़ देती हैं तो समाधान है कि वह (नायिका) ऐसे (सामान्य) कुल की नहीं है कि (सदा) साथ रखकर, (कोई बात) दिखा दिखाकर सिखायी जाय। अतः देवकृत स्थिति भी (अब) उपयुक्त है; अतः सखियां अन्यथा न सोचकर उससे बिछुड़ जाती हैं;

तब--यह प्रश्न होता है कि सखी-समुदाय से पहले वह (नायिका) कभी बिछुड़कर अभ्यस्त नहीं है; अब क्या अकेली रह सकती है? इसका समाधान है (कि) रह सकती है; वह प्रदेश (ही) उसकी सखी के समान है। प्रश्न है कि (वह प्रदेश) कैसे (सखियों के) समान (हो सकता) है। (समाधान है) चन्दन, चम्पक, रसमय आम्र, मधुर पनस, सान्द्र पनस, अशोक 'कोंगु' 'वेगै' कुरवक, वृन्द, नाग, तिलक, 'वराय', नन्दी, माधवी, मल्लिका, जुही (आदि) पुष्पों से (वह उपवन) सुगन्धित हो रहा है। 'पादिरि', 'पावै', कुंकुम, हरित', 'कोन्रै' (वहां) विकसित हो रहे हैं। (वहां) पुंग और पुन्नग (वृक्ष) कलियों से लदकर इठला रहे हैं। भ्रमर मधुपान कर मस्त हो रहे हैं और कोमल संगीत गा रहे हैं। शीतल मलय पवन इसी मध्य चलकर एकाकी अर्थात् विरही व्यक्ति का कोप बढ़ा रहा है। ऐसे उपवन के मध्य एक कृत्रिम पर्वत पर माणिक्यमय, मत्त करनेवाले, मधुपूर्ण, पुष्पवान 'वेगै' वृक्ष को देखा। देखकर एक तीव्र कामना से पूर्ण होकर अपने अरुण पुष्प सम सुन्दर पद पर नूपुर के

गिर कर आख करते समय उसने पद बढ़ाकर मधुमरित 'वेगै' पुष्प तोड़ा; तोड़ते समय —

निम्नगामी निर्झर, हाटक शिला पर मुखर भेरी की ध्वनि कर रहा था, भ्रमर मधुर वीणा का स्वर निकाल रहा था; कोयल गायन कर रहे थे। पुष्प-मकरंद के बिछौने से आवृत एक स्फटिकशिला के मणिमय तल पर, जैसे नीले पंखे को बिछा रखा था, अपने रमणीय कलाप को फैलाकर उदीयमान बाल-रवि के कोमल आतप की कांति में एक तरुण मयूर नृत्य कर रहा था—यह देखकर वह (अपने में) खो-सी गयी।

उधर नायक भी अनेक शताधिक तीक्ष्ण शूलधारी युवकों के साथ शीतल पर्वत-सानु पर आखेट खेलने गया; वहां प्रकट हुए एक सिंह का पीछा करते हुए अंगरक्षक युवकों से बिछुड़कर, साकार मन्मथ के समान चलकर, उस विशाल उपवन में पहुंचा जहां वह (नायिका) खड़ी थी। यह कैसे हो सकता है ? यों संभव है जैसे उत्तरी समुद्र में डाला गया कोई अर्गल (पानी में बहता) गया हो और उसके रन्ध्र में दक्षिणी समुद्र में डाली गयी एक लकड़ी जाकर मिल गयी हो; जैसे तीक्ष्ण तेज रवि और शीतकिरण चन्द्रमा अपनी गति से हटकर सम्मिलित हो गये हों— यो निकटता पाकर परस्पर संदर्शन के निमित्त वे अकेले पड़ जाते हैं।"

तेवारम् (देवहार)

1. कवि तिरुजान सम्बन्दर् द्वारा

1. जहां (सर्वत्र) शुभ वस्तुएं ही दृष्टिगत होती हैं, ऐसे 'तिरु-क-कलुमल' नामक नगर में उत्तम (उमा) देवी के साथ विराजमान प्रभु का स्मरण करने पर इस संसार में नित्य सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं और सुगति पाने में कोई बाधा नहीं होगी।

2. (शास्त्रों) कथित चौरासी लाख योनियों के भेद की एक साथ सृष्टि करके, उन (योगियों में स्थित) प्राणियों के प्राण बनकर, उन प्राणियों के साथ जो स्थित रहता है, ऐसे भगवान का मंदिर यह 'मिक्ले' नामक स्थान है जहां पर्वतों पर विश्राम करने वाले मेघ मर्दल बजाते हैं तो मोर नृत्य करते रहते हैं; भ्रमर गाते हैं; 'कोनरै' वृक्ष अपने पुष्प रूपी स्वर्ण बरसाते हैं और मृदुल 'कान्दल' अपने पुष्परूपी हाथों में (उन्हें) भर लेते हैं।

2. कवि तिरु-नावुक्-करशर 'अप्पर' द्वारा

1. हम किसी की (शासित) प्रजा नहीं है, हम यम से नहीं डरते, नरक में पड़कर कष्ट भोगने वाले हम नहीं हैं; हम असत्य रहित हैं (अतः) हम गर्व करते हैं, हम रोग नहीं जानते (अथवा विविध 'मल' नामक बन्धन से रहित हैं।[1]) हम किसी से नहीं झुकते; हमें सर्वदा आनन्द है; कभी दुःख नहीं है। स्वयं किसी के अधीन नहीं रहने वाले, स्वच्छ शंख के श्वेत कर्णा

---

1. त्रिविधामल हैं—अहंकार, कर्म और माया।

भरण से भूषित प्रभु शंकर के हम नित्य अवियुक्त दास होकर उनके पुष्पालंकृत अरुण पद-युग्म की शरण में पहुँचे हैं।

2. ऐ 'तिरुओत्तिप्र (नामक स्थान में) स्थित भगवन् ! जैसे (सत्) फल मैंने पाये, वैसे और कौन पा सकता है ? हे वदान्य ! वंचक वचन कह कर अपराध करने पर भी (तुम अपनी कृपा से) उन्हें गुण मानकर स्वीकार करते हो। इससे साहस पाकर (या धृष्ट हो) मैंने बहुत चूक की है। (संसार को) ताप देकर भ्रमण करने वाले त्रिपुरों को जलाने वाले हे 'तिरुमुल्लै' नामक स्थान में स्थित भगवन ! (मैं तुम्हारा) दास हूँ, अशरण्य हूँ। हे पशुपते ! परंज्योति ! मेरे दुख हरण करो।

3. कवि श्री सुन्दरमूर्ति द्वारा—

1. इस कलंकित शरीर को लेकर मैं तुम्हारे श्रीचरण की शरण आया हूँ, अपने पापों के लिए दंड भोगने योग्य तो हूँ, लेकिन हे नाथ ! दूध में गाय का गोबर कभी गिर जाय तो भी उसे निकाल कर दूध को लेते हैं; मैंने यद्यपि भूलें की हैं; किंतु कभी मैंने तुम्हारे चरण नहीं भूला हूँ। कभी फिसलकर गिर गया अर्थात् सन्मार्ग से भ्रष्ट हो गया तो भी तुम्हारे नाम को छोड़कर और कुछ नहीं जाना; खोई हुई दृष्टि को पुनः प्राप्त करने के लिए डालने योग्य कोई दवा की बूंद हो तो बताओ।

4. कवि श्री माणिक्यवाचक कृत 'तिरुवाचकम' से—

1. (अपने शिशु को उपयुक्त समय पर) स्वयं स्मरण कर दूध पिलाने वाली मां से भी अधिक प्रेम के साथ तुमने मुझ, पापी की देह को (प्रेम से) द्रवित कर, (मेरे) हृदय में ज्ञान-दीप जलाकर, नित्यानंद रूपी मधु बरसाया और मैं जहां-जहां चलता रहा, वहां-वहां मेरे साथ ही चलते रहे। हे मेरी संपदा ! शिव भगवान ! मैंने तुम्हारा अनुसरण कर तुम्हें दृढ़ता से पकड़ लिया है। अब तुम कहां पधारोगे ?

2. अब तुमने कृपा की, (अज्ञानरूपी) अंधकार को दूर किया, मन में उदीयमान सूर्य के समान हो रही तुम्हारी इस प्रकृति को मैंने अनायास ही स्मरण किया।

तुम—इस प्रकार कि तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ न रहे—चल चल कर, अणु रूप में घिसघिसकर 'एक' बने रहते हो।

'तिरुप्पैरुन्तुरै' के निवासी हे शिव !

तुम कोई भी पदार्थ नहीं हो, तुम्हारे बिना और कोई पदार्थ भी नहीं है, तुम जो हो उसे कौन जान सकता है ?

मेरे प्रभु ईश्वर के युगल पद की छाया निष्कलंक वीणा, संध्याकालीन राका चंद्रिका, प्रसरणशील दक्षिणपवन, सुखद वसंत तथा भ्रमर कुल के गान से मुखरित सरोवर के समान है।

3. देहरूपी मंदिर में हृदय को दीप बनाकर अज्ञान रहित भावना नामक तेल डालकर (जीव या) प्राणरूपी बत्ती रखकर—वर्द्धमान ज्ञान ज्योति को जलाकर, ध्यान मग्न हो देखने पर कदम्ब मालाधारी प्रभु (मुरुग या कार्तिकेय) के पिता (शिव) के वीरवलय भूषित चरण के दर्शन कर सकते हैं।

4. (नायिका ने) पहले उस (पुरुष) का नाम सुना। फिर उसके रूप का ढंग सुना। फिर उसके निवासस्थान के बारे में सुना। फिर उस (पुरुष के ध्यान) में मग्न हो उसी के लिए पागल हो गयी। उसी दिन अपनी माता और पिता को छोड़ दिया। पड़ोसियों या (अपने कुल) के आचार को और अपने को भूल गयी। अपने नाम को बदनाम किया। इसी प्रकार वह सुन्दरी प्रभु (या भगवान) के चरणों की ही कामना करने लगी।

5. उपर्युक्त कवि कृत तिरु-एम् बावै से—

1. कुक्कुट बोल उठे, विहग सर्वत्र कलरव कर रहे हैं, (प्राभातिक) राग सुनाई दे रहे हैं, श्वेत शंख बज रहे हैं असमान परमज्योति, असमान परम करूणा और असमान महान वस्तुओं (या गुणों) का हमने गान किया। क्या तुमने (यह सब) सुना ? हे सखी ! जीती रहो, (तुम्हारी) यह कैसी निद्रा है ? जरा मुंह तो खोलो (अर्थात् कुछ बोलो तो !) क्या भगवान इस प्रकार तुम्हारा प्रेमी हो जाएगा ? हे सुंदरी ! सृष्टि के आदि बने एक (परमात्मा) दीन-बंधु की स्तुति करो।

2. हे प्राचीन वस्तुओं से प्राचीनतम सत्ता ! पश्चात् की नवीन वस्तुओं से नवीनतम ! तुम्हें अपने प्रभु के रूप में पाकर हम तुम्हारे उत्तम दास हुए हैं ! तुम्हारे दासों के चरणों को नमस्कार करेंगे। हम उन्हीं के साथी बनेंगे। वे ही हमारे प्रभु होंगे। उनकी इच्छा के अनुसार, उनके कहे अनुसार ही हम दास-कृत्य करेंगे। हमारे प्रभु ! यदि तुम इसी प्रकार हमें बरदान दोगे तो अब हमें और कोई कमी नहीं होगी।

नालायिर दिव्यप्रबंधम् (वैष्णवभक्त आलवारों की कृतियां)

1. कवि पेरिय आलवार (बड़े आलवार या श्री विष्णुचित)

आशीर्वाद

········ मल्लों को जीतनेवाली बलिष्ट भुजाओं वाले हे नीलरत्न समकांति पूर्ण ! अनेक वर्ष, अनेक वर्ष, अनेक सहस्रों वर्ष, अनेक कोटि शत-सहस्रों वर्ष तक—अनन्त काल पर्यन्त तुम्हारे अरुण चरणों की शोभा का मंगल हो—रक्षा हो ।

(तिरुपल्लाण्डु से)

2. कवयित्री आण्डाल्

1. (हम) अतिप्रातः आकर, तुम्हें नमस्कार कर, तुम्हारे चरणकमल की स्तुति कर रही हैं; इसका उद्देश्य क्या है—सुनो ! तुम गाय चराकर जीविका करने वाले (ग्वालों के) कुल में अवतीर्ण हुए, अतः हमारी की जाने वाली क्षुद्र सेवाओं का (तुम्हें) ग्रहण करना ही होगा (इन्हें) स्वीकार किये बिना (कुछ) चलेगा नहीं; (अर्थात् तुम्हें अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा) हे गोविंद ! यह (स्तुति) इसलिए नहीं कि आज के लिए कुछ फल पाकर हम चली जायं, (किंतु) सदा, सात सात जन्मों में भी हम तुमसे ही सम्वद्ध हों । हम तुम्हारी ही सेवा करती रहे । हमारी अन्य सब कामनाओं को तुम दूर कर दो ।

(तिरु-प्-पावै से)

2. क्या कर्पूर (वैसा) ही महकता है या कमल वैसा ही गंध देता है ? श्रीकृष्ण का सुन्दर प्रवालसम अरुण अधर ही मधुर है ? (या और कोई वस्तु ऐसी है ?)

(कुवलयापीड नामक) हाथी का दांत उखाड़ने वाले माधव के उस अधर का रस और गंध कैसे होते हैं ? उसका अनुभव करने की कामना से मैं पूछ रही हूँ । हे श्वेत शंख ! बताओ !

(नाच्चियार तिरुमोलि से)

3. कवि कुलशेखर आलवार

(मटके में भरे) सारे मक्खन को (उंगली से) विलोड़ित कर उठाकर खाने वाले, अविकसित छोटी कोमल कमल-कली समान वे कर—(यशोदा के) दृढ़ रस्सी निकालकर मारने के लिए आने पर (मार से सहमकर) देह को झुकाने की वह दयनीय स्थिति—श्वेत दही लगा वह लाल (अरुण) मुंह, रोदन करने का वह ढंग—, समझकर देखने की वह दृष्टि—, मनोहर और लाल मुँह को टेढ़ा करने की वह रीति—, (डर के मारे मां के) पैरों से वह लिपट जाना—उन सबको देख देखकर यशोदा सनातन ब्रह्मानन्द की पराकाष्ठा पर पहुंच गयी ।

(पेरुमाल तिरुमोलि से)

4. कवि तिरुमंगै आलवार

1. सिंहराज का यह पर्वत (अहोबल नामक पुण्यक्षेत्र जहां नृसिंहरूपी भगवान प्रकट हैं) उस भगवान का स्थान है जिसने (अपने आकार के) उपयुक्त विशाल मुँह और तीक्ष्ण दंतों वाले सिंह के रूप में प्रकट होकर हिरण्यकशिपु नामक असुर के विशाल वक्ष को पैने नखों से चीर डाला था, जहां थके हुए वन्य मृग, टूटे पर्वत और अग्नि से जलकर (ठूंठ हो) खड़े रहने वाले बांस—इनके अतिरिक्त और कोई पदार्थ नहीं हैं ।

"जहां काटने (के स्वभाव) वाले श्वान और गिद्ध मध्याह्न वेला में तीक्ष्ण धूप में चक्कर खाकर भगवान के अतिरिक्त अन्य कोई गन्तव्यस्थान नहीं पाते ।"

(पेरिय तिरुमोलि से)

5. कवि बूत-त्-तालवार

(मेरा) प्रेम ही दीपक है; (मेरी) अभिलाषा ही घृत है, आनन्दानुभूति में द्रवीभूत (मेरा यह) चित्त वर्तिका है। इस प्रकार मैंने ज्ञानप्रद तमिल (काव्य) रचकर नारायण की भक्ति से द्रवित होकर ज्ञान-ज्योतिमय दीप जलाया है।

(तिरुअन्ताति से)

6. कवि नम्मालवार

अगर (कोई जगत की आसक्ति से रहित हो जाने से) स्वच्छ बन जाय; बाह्य जगत के ज्ञान से परे पहुंच जाय; सभी इंद्रियों को बाह्य विषयों से हटा ले; उन प्रकृति-तत्त्वों का, जो (आत्मा के साथ) एकाकार हो स्थित हैं, पार करने को दुःसाध्य हैं, (महत् अहंकार आदि भेदों से) विस्तृत हैं और मृत्यु या विनाश बने हुये हैं—जो स्वरूप है उसे आत्मज्ञान के द्वारा भलिभांति पहचान ले; उस प्रकृति से परे जाकर पुण्य-पाप कृत सुख-दुख को समूल उच्छिन्न कर दे; उनकी रुचि या वासना से भी मुक्त हो जाए; तभी, उसी क्षण मुक्ति है, वही मुक्ति है, वही मुक्ति है।

(तिरुवायमोलि से)

भक्तियुग की अन्य रचनाएं

1. कवि तिरूमूलर श्रीमूल

1. (सभी मानवों का) एक ही कुल है। (सभी का) एक ही परिवार है। (यदि) हम नित्य हित ही सोचते रहें तो यमदेव (का डर) नहीं होगा (मुक्ति कहीं बाहर] जाकर प्राप्त करने की गति नहीं होती। तुम अपने चित्त में स्थिर रहो और शाश्वत सत्ता प्राप्त करने का उपाय सोचो! इस प्रकार उद्धार प्राप्त करो।

2. मैंने जो आनंद पाया है उसे यह सारा जगत भी प्राप्त करले कहा जाय तो— उस लोक [मुक्ति लोक] के बारे में कहने वाले वेदों का जो तत्त्व है, वह—अगर कोई इस देह से प्राप्त होने वाले मंत्र का अवलंब लेकर चलेगा तो उसे—अपने आप प्रकट हो जाएगा।

3. ज्ञानहीन व्यक्ति कहेंगे कि प्रेम और शिव—ये दो भिन्न तत्व हैं। कोई नहीं जानता कि प्रेम ही शिव है। प्रेम के ही शिव होने की बात कोई जान ले तो वह प्रेम और शिव बन जायगा।

सिद्धों के गीत—(तिरुमन्तिरम् से)

1. कवि शिववाक्कियर

तूने किसी स्थापित शिला को 'दैव' मान लिया; चार पुष्प रख दिये, फिर शिला का चक्कर करके गुनगुनाते हुए क्या मंत्र बोल रहा है? [यह] धरा हुआ पत्थर भी बोलेगा क्या?
जब नाथ [भगवान] भीतर हैं?
साग का स्वाद क्या होता है—इसे पकाने की बटली
और कलछी (कहीं) जानती है क्या?

2. कवि कोंकण सिद्धर

न बंधने वाले सांड को बांधना है, कामना को काटना है और ऊपर (की स्थिति) तक पहुंच पानी है।
पहुंच से बाहर की डाल को झुकाना है, [यह] काया न जाने कब मर जाय, हे रमणि !

3. कवि अकुहणिसिद्धर

मलिन शरीर है यह ! हे मेरी प्यारी ? यह नमक का मटका है री।
इसे बदलकर जन्म लेने की कोई दवा मिल जाए तो मलिन शरीर से मेरी प्यारी !
छोड़ तुम्हारे चरणों में
क्यों न पहुंच जाऊंगा ?

4. कवि अहं-प्-पेय्सिद्धर

आपके मिटने पर जहाँ खड़े रहो [तुम]
हे अहं के पिशाच !
वही है शिव देखो !
देह के मिटने पर जो खड़े रहेंगे, हे अहं के पिशाच !
उनकी क्या हानि हो सकती है ?

5. कवि इडै-क्-काट्टु-सिद्दर

मन का यह स्थान शांत हो तो
[या-मन का यह सांड बस में आ जाय तो]
हे तांडव राय
मुक्ति मिल गयी है मानो !
हे तांडव राय !

6· कवि कुदम्बै-स्-सिद्दर

सत्य जान रहे

खड्ग क्यों चाहिए उन्हें

तरौनावाली ! री !

खड्ग क्यों चाहिए उन्हें :

जीवक चिन्तामणि

कवि तिरु-त्-तक्क देवकर

जीवक-जन्म वृत्तान्त

1. पैनी धार से चमकती हुई तलवारों के समुद्र में जैसे अमृत प्रकट हो — इस प्रकार वह (सुंदरी) क्षीण शक्ति होकर एक आम्रवन में जहां सुन्दर मयूर विचरण कर रहे थे — यशस्वी राजा की विजय-भेरी के बजते समय भाले से आकृत हरिणी के समान निकल पड़ी और मूर्च्छित गिर पड़ी।

2. वैभव पूर्ण नगर से हटकर वह श्मशान या जहां वट वृक्ष निबिड़ रूप में फैले थे,
जहां जाकर धीर व्यक्ति भी डर जाते थे,
जहां चारों ओर अनेक शव पड़े थे,
जिसकी सीमाओं में गिद्ध विश्राम करते थे और
उनकी छाया में मयूर के मनोहर पंख श्यामल वर्ण
फैलाते हुए पड़े थे।

3. (जलते) शवों के धुएं ऐसे फैले थे जैसे बादल छाया हो जिसे देखकर भूत भी डर जाए। उस श्मशान में असंख्य बिन्दियों से युक्त सिर और शिखा वाले बड़े मयूर पड़े पड़े टागें समेटे हुए यों दिखते थे जैसे अगरु-धूम के मध्य कोई सुन्दरी पर्यंक पर पड़ी हो।

4. (संक्षेप) वह सुन्दरी उस श्मशान में भयभीत हो अश्रुधारा से स्तन-तट को भिगोती हुई अपने पति की स्मृति करती हुई अपने जोड़े से बिछुड़ी सारसी के समान थी।

5. (संक्षेप) कपालों से आवृत श्मशान-भूमि में अकेली वह सुन्दरी वहां स्थित एक ऊंचे देव-मन्दिर में प्रविष्ट हुई।

(तब) अप्सराएं करुणापूर्ण हृदय के साथ आपस में होड़ सी करती हुई सुन्दर दीप लिए नम्रता से खड़ी हो गयीं जिससे अन्धकार दूर हो गया। बींचोपूर्ण समुद्र से जैसे सूर्य उदित हो रहा हो यों स्वर्णमय कांतिवाला बालक जनमा तब उस सुन्दरी की मूर्च्छा दूर हो गयी।

7. (उस राज्ञी ने) पुष्प समान कोमल चरणों वाले उस शिशु को प्रशंसा भरी दृष्टि से देखा फिर जैसे अमृतमय चन्द्रमा अपनी धवल किरणें बरसाता हो—यों (उसके) पीनस्तन उमड़कर स्तन्यधारा बहाने लगे तो उसने शिशु को उठाकर संवारा और तिलक सजाया—

8. (संक्षेप) वह कहने लगी हे कुमार! ओह! तुम्हारा जन्म क्या इस प्रकार होना था? तुम्हारे जन्म के समय राजा आदेश देता कि बारह वर्ष तक का कर माफ कर दें, कारागृह के बन्दियों को मुक्त कर दें। सात दिन तक खाज़ना खोल दें जिससे जो, कोई भी वस्तु चाहे ले जाय।

9. (संक्षेप) 'विशाल राज प्रसाद में तुम्हारा जन्म होना था, लेकिन गीदड़ों की पुकार की मर्दल ध्वनि और नीपवृक्षों के दीपक से युक्त इस श्मशान रंग पर पिशाचों के नृत्य करते समय क्या इस प्रकार ही तुम्हारा जन्म होना था? क्या यही राजोचित जन्म है?

10. शत्रु राजा का नगर प्रान्त है, अर्ध-दग्ध शवों से पूर्ण श्मशान है। बन्धुजन से अलग मैं अकेली हूं, अवारणीय गाढ़ान्धकार छाया है, हे पृथ्वी-पति! मैं नहीं जानती कि तुम्हारा पालन किस प्रकार होगा? यह सब देखती हुई अब भी जीवित हूं इस प्राण के रहने से क्या लाभ है, यह क्यों नहीं मिटता!

11. (इस प्रकार) उत्पन्न तुम पुष्पमय अशोक (के तल में आसीन) अर्हत देव के चरण तथा उत्तम धर्म भी मुझे शरण नहीं दे पाये और दु:खसागर को पार करने के लिए नौका और पतवार नहीं बन पाये, अब बताओ और कोई महात्मा कहां है? हे चिन्तामणि! तुम यों पड़े हो। उस युद्ध वीर राजा के वचन के अनुसार मैंने किया और मूर्च्छा पीड़ा से दुखित हो रही हूं।

12. (संक्षेप) वहाँ के वृक्ष ओसकण बरसा रहे थे जो ऐसे लगते थे मानों अश्रुधारा बरसाते हुए यह सोच कर रो पड़े कि हाय! मत्तगज पर सवार राजा विजयी नगर पर चढ़ आया, लेकिन उसके चले जाने से यह राणी नगर के बाहर इस अरण्य में आकर पीड़ित हो रही है।

13. (संक्षेप) वह राणी जिसने वैभव और समृद्धि से भरा राज्य खोया था और जो सुन्दर शिशु को पाकर वहां विपदाग्रस्त हो रही थी, उस संध्या

के समान थी जो सूर्यास्त होने से सर्वत्र अन्धकार छा जाने पर भी शीतल चन्द्र नामक शिशु पाकर उज्ज्वल होती हो।

14-15. (संक्षेप) वह राणी अपने पुत्र के प्रभाव से अनभिज्ञ थी, और यह सोचकर दुखी हो रही थी कि मैं क्या करूँ ? तब वहां स्थित "चम्पक-माला" एक देवी एक कुबड़ी के आकार में प्रकट हुई और दुःख प्रकट करती हुई निःश्वास भरकर राणी से कहने लगी ! 'मेरे आवास में आकर भी तुम यों अकेली इतनी विपदा सहती रही, यह मेरा किया हुआ पाप है।"

16. 'कमल जन्मा देव के समान यह पवित्र है, सारा संसार इसकी आज्ञा के अधीन चलेगा। अब (कुछ क्षणों के बाद) एक राजा अपने शिशु राजा से युद्ध करने आयेगा और यहां आकर इस शिशु को ले जाएगा। हे कमल नेत्रि ! हमें अब छिपना चाहिए।'

17. तब वह राणी शिशु को विविध रत्नमयदीप की कांति में रखकर धीरे से वहां से हटकर चलने लगी तो क्षुद्रघंटिकाओं से पूर्ण उसकी किंकणी और मंजीर मीठी बोली बोलने लगे (वह दृश्य ऐसा था) जैसे मोती को जन्म देकर दक्षिणावर्त शंख समुद्र में पहुंच जाए।

18. 'शत्रु जन तुम्हें हज़ारों संकट उत्पन्न करें, तो भी उनसे कोई हानि न हो— यह आर्शीर्वाद देती हुई वह राणी स्तन्य पान कराने के लिए, वात्सल्य से भरकर, लौट आने लगी।

रत्नमय वीणा समान और दीर्घकेशनों' से सुन्दरी उस राणी को पुनः चम्पकमाला नामक अप्सरा ओट में ले गयी और वहीं खड़ी रही।

19. 'हे पुत्र ! सुकृत न करने के कारण तुम यों अकेले घातक हिंस्रनरों से घिरे हुए पड़े हो। यह कह कर फूट-फूट कर रोती हुई वह राणी पुष्पित' करुविलै वृक्ष के समान लड़खड़ाती हुई एक शाखा का अवलम्ब लेकर खड़ी रही।

(नामकल्-इलम्बकम' या वाग्देवी लम्बक' अध्याय के पद्य 299 से 319 तक।)

श्रीराम और गुह का मिलन

तब लक्ष्मण गुह से वहीं ठहरने को कहकर अपने ज्येष्ठ भाई के पास पहुंचे और निवेदन किया—'हे विजयशील ! पवित्र चित्तवाला, माता से भी अधिक प्रेम से युक्त, वीची भरी गंगा में नाव चलानेवाला निषाद-पति, अपने बड़े परिवार के साथ आपके दर्शनार्थ आया है।'

उदार (राम) ने आदेश दिया—'उसे मेरे पास ले आओ।' सद्गुण वाले लक्ष्मण ने जाकर गुह को वह आदेश सुनाया, तो गुह प्रेमाधिक्य से तुरन्त भीतर प्रविष्ट हुआ और सुन्दर नेत्रों वाले राम के दर्शन कर नेत्र-लाभ पाया; फिर काले केशों से युक्त शिर पर कर जोड़कर, शरीर झुकाकर, नमस्कार करके, कर से अपना मुंह बंद किये खड़ा रहा।

राम ने गुह से कहा--बैठो। किन्तु गुह बैठा नहीं। असीम प्रेम से युक्त होकर उसने कहा—'हे देव ! आपके भोजन के लिए अत्युत्तम मधु और मछली लाया हूं। आपका चित्त कैसा है ?' यह सुनकर वीर (राम) वृद्ध तपस्वियों की ओर देखकर मुस्कराये[1] और फिर बोले-—

'ये वस्तुएं मन में स्थित प्रेम के आधिक्य को प्रकट करने वाली हैं और बड़े आदर के साथ लायी गयी हैं। अतः दुर्लभ अमृत से भी ये अधिक उत्तम हैं। प्रेम से लाये जाने के कारण ये पवित्र हैं; अतः मुझ जैसों के लिए ये योग्य ही हैं। अब जैसे मैंने इन वस्तुओं को स्वीकार कर लिया है (तुम इनको स्वयं स्वीकार कर लौटा कर ले जा सकते हो)।'

सिंह-सदृश वीर राम ने पुनः कहा—आज यहां रहकर हम कल गंगा पार

1. कम्ब ने मांसाहार की काफी निन्दा की है। रामचन्द्र भी, इस रचना में, मांसाहारी नहीं हैं। यही कारण है कि गुह के लाये भोजन को, उसके प्रेम को और उसके भोलेपन को देखकर राम मुस्कराये।

करेंगे। अतः, तुम अपने परिवार के लोगों के साथ अपने नगर में जाकर सुख से वास करो और प्रभात के समय नौका लेकर गंगा-तट पर आ जाओ।

मेघ के जैसे काले रंगवाले राम के यह कहने पर प्रेम-भरे गुह ने निवेदन किया—'हे सारे संसार के स्वामी ! आपको इस वेष में देखकर भी अभी तक मुझ चोर ने, अपनी इन आंखों को नोचकर फेंक नहीं दिया। अब आप को छोड़ कर मैं अपने आवास में नहीं लौट सकता। हे प्रभु ! अपनी शक्ति-भर मैं आपकी सेवा करता रहूंगा।'

विजयमाला से भूषित कोदंड-धारी पुरुषोत्तम ने गुह की बात सुनकर अपने भाई और देवी सीता की ओर दृष्टि फेरी और कहा—'यह अपार भक्ति-युक्त है।' और फिर, करुणा-पूर्ण मन से कहा—'सबसे उत्तम स्नेह-गुण से सम्पन्न हे मित्र ! तुम यहीं रहो।'

गुह ने लक्ष्मण से प्रश्न किया—'हे मनुकुल में उत्पन्न ! सुन्दर अयोध्या नगर को छोड़कर यहां आने का कारण बताओ।' तब राम के बनवास से दुःखी लक्ष्मण ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। (राम की) भक्ति से पूर्ण गुह ने अत्यन्त दुःखी होकर कहा—'विशाल भूदेवी ने, तपस्या से सम्पन्न होकर भी, (तप के) फल को प्राप्त नहीं किया। यह कैसा अनर्थ है ?' और अपनी आंखों से अश्रु बहाता हुआ खड़ा रहा।

जिन्होंने अंधकार के जैसे सर्वत्र फैले हुए शत्रुओं को पराजित करके भगाया, सब दिशाओं में अपना अधिकार स्थापित किया, अत्युन्नत स्थान में रहकर अनुपम आज्ञा-चक्र चलाया, श्रेष्ठ कीर्ति को स्थापित किया, अपने शासन-काल में इन विशाल संसार के सब लोगों के मन में रहकर सब पर कृपा की, और अब जो मृत हो गये हैं, ऐसे युद्ध-वीर दशरथ के समान ही अरुण किरणवाला सूर्य भी अस्त हो गया।

संध्याकालीन नित्य कृत्यों को यथाविधि समाप्त करके वीर (रामचन्द्र) और क्षीर-समुद्र में उत्पन्न अमृत समान (सीता) देवी ने धरती पर बिछाई गयी 'नाणल' घास की बनाई चटाई पर विश्राम किया; कनिष्ट (लक्ष्मण) दृढ़ धनुष हाथ में लिये प्रभात होने तक अपलक खड़े रह कर पहरा देते रहे।

गंगा तट पर भरत और गुह का मिलन

मनोहर, स्वर्ण-निर्मित वीर-कंकण से भूषित तथा अनुपम सेनावाहिनी से युक्त भरत, कावेरी नदी से सिंचित चोल देश की समता करने वाले और उपजाऊ खेतों से भरे कौशल देश को छोड़कर गंगा नदी के तीर पर ऐसे दुःख के साथ आ पहुंचे कि उनको देखकर स्थावर और जंगम—सब वस्तुएं द्रवित हो उठीं।

जब वह सेना गंगा के (उत्तरी) किनारे पर पहुंची, तब गुह उसे देखकर और यह सोचकर कि यह विशाल समुद्र के जल से भरे मेघ-समान प्रभु [राम] से युद्ध करने के लिए ही जा रही है, अत्यन्त क्रोध से भर गया।

उस (गुह) ने अपनी कटि में कटार बांध रखी थी। अपने ओंठ चबा रहा था। कठोर शब्द कह रहा था, उसकी घूरने वाली आंखों से अग्नि-कण निकल रहे थे। उसकी सेना में डमरू बज रहे थे, शृंगी बज रहे थे और उसकी भुजाएं यह सोचकर कि अब मुझे युद्ध करने का मौका मिला है (हर्ष से) फूल उठी थीं।

उस (गुह) ने यह कहते हुए कि 'यह सेना चूहों का झुंड है और मैं उनके लिए विषधर सर्प हूं—बड़े कोलाहल से भरी अपनी सेना को पुकारा। वह सेना ऐसी थी, मानो तीक्ष्ण नखों वाले समस्त घोर व्याघ्रों को एकत्र कर दिया गया हो।

अपने सैनिकों को देखकर गुह ने कहा—'मैंने इस षड्यंत्रकारी सेना को स्वर्ग पहुंचाने तथा अपने प्यारे मित्र (राम) को महिमामय महान् राज्य देने का निश्चय किया है। तुम सब सहमत हो न ?

क्या ये (भरत आदि), गंभीर विशाल और वीचियों से भरी इस (गंगा)

नदी को पार करके जा सकेंगे ? क्या मैं ऐसा धनुर्वीर हूं कि इसकी बड़ी गज-सेना को देखकर (डर से) भाग जाऊंगा ? उन (राम) ने मुझसे मित्रता की जो बात कही थी, वह भी तो एक बात थी—(अर्थात्, राम का वह वचन आदरणीय है और मुझे मित्रधर्म का पालन करना है। (यदि मित्रधर्म का पालनन करूँ, तो) क्या लोग मेरी निन्दा यह कह कर नहीं करेंगे कि यह क्षुद्र निषाद मरा क्यों नहीं ?

आह ! इस (भरत) ने यह नहीं सोचा कि वे (राम) हमारे ज्येष्ठ भ्राता हैं। यह भी नहीं सोचा कि उनके साथ अति बलिष्ठ व्याघ्र-समान उनका भाई भी है। यदि उन्होंने ये बातें न सोची हों, तो न सही, किंतु इसने मेरी उपेक्षा कैसे की ? जो हो, इसका पराक्रम इस सीमा को पार करने पर ही तो ज्ञात होगा। क्या निषादों के द्वारा प्रयुक्त बाण राजाओं के वक्ष में नहीं लगते ?

क्या धरती पर राज्य करने वाले ये क्षत्रिय,—पाप, स्थिर रहने वाला अपयश, शत्रु, मित्र, (दूसरों को) दुःख देने वाले कार्य—इनके बारे में विचार नहीं करते ? जो हो, सो हो, मेरे अपूर्व प्राण-तुल्य मित्र (राम) पर इनका आक्रमण तभी हो सकता है, जब ये अपनी सेना तथा अपने प्राण को (हमसे बचाकर) अपने साथ ले जा सकें।

'निषादों ने फहरानेवाली पताकाओं से युक्त (भरत की) सेना का विध्वंस करके धर्मरूपी राम को ही शासन करने के लिए राज्य दे दिया'—ऐसा यश क्या हम नहीं पायेंगे ! जिन प्रभु (राम) ने अपना राज्य तक भरत को दे दिया था, वही भरत आज हमारे निवास-भूत इस अरण्य को भी देना नहीं चाहता और देखो, यहां भी चढ़ाई करने आया है'।

दृढ़ तथा बड़े धनुष से युक्त, मल्ल-युद्ध में निपुण भुजाओं से युक्त तथा युद्ध में प्रवीण, प्रभु (राम) के प्रति भक्ति से पूर्ण गुह ने लोह के जैसे शरीर वाले अपने साथियों के प्रति ये वचन कहे। उसको वहां खड़ा देखकर, दढ़ रथ को चलाने वाले सुमंत्र ने सिंह-समान बली भरत के निकट आकर कहा—

'यह गंगा के दोनों तटों का नायक है। असंख्य नावों का स्वामी है। तुम्हारे वंश में उत्पन्न अनुपम पुरुष राम का प्राणप्रिय मित्र है। उन्नत भुजाओं वाला (वीर) है, मत्त गज-तुल्य है। धनुर्धारी सेना-युक्त है। मधुस्रावी प्रफुल्ल पुष्पों की माला से भूषित है। इसका नाम गुह है।'

अपने पिता के मित्र सुमंत्र के द्वारा दूर पर अपने सामने खड़े गुह के विषय में सुनकर, कलंक-रहित भरत के मन में बड़ी उमंग उत्पन्न हुई फिर, वे यह

कहकर आगे बढ़े कि यदि यह प्रभु के आलिंगन का पात्र, प्रिय मित्र है, तो उनके यहां आने के पहले ही मैं स्वयं उसके पास जाकर (उससे) मिलूंगा।

यह कहकर वे उठे और अपने अनुज तथा उमड़ते हुए प्रेम के साथ गंगा के किनारे पर ऐसे जा पहुंचे, जैसे कोई पर्वत चला हो। किनारे पर आये हुए भरत को घने तथा काले केशों वाले गुह ने देखा और उनकी दशा को पहचान कर वह चौंका।

सम्मुख (राम की दिशा में) खड़े रहकर प्रणाम करते हुए (भरत) के चरणों पर गुह नत हुआ। तब उत्तम स्वभाव वाले, सज्जनों के मन एवं शिर पर धारण किये जानेवाले, पवित्र यशवाले तथा कमल-पुष्प पर आसीन ब्रह्मा के लिए भी वंदनीय उन (भरत) ने अपने चरणों पर पड़े (गुह) को उठाकर, (पुत्र से मिलनेवाले) पिता से भी अधिक आनन्द के साथ उसका आलिंगन किया। (तब गुह ने भरत से कहा—)

'हे यशस्विन् ! (तुम्हारी) माता के वचन मानकर (तुम्हारे) पिता ने जो राज्य (तुमको) दिया, उसे पाप-कृत्य के समान मानकर तुमने (उसे) त्याग दिया और अपने मन में चिन्ता रखकर इस प्रकार यहां आये हो। तुम्हारे, इस समय का यह भाव देखने पर, क्या सहस्त्र रामचन्द्र भी तुम्हारी समता कर सकते हैं ?

'हे उत्तम गुणशील तथा बलिष्ठ भुजाओं आले ! मैं अज्ञ किरात तुम्हारी क्या प्रशंसा करूं ? जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों के पुंज से अन्य ज्योतियों को मंद कर देता है, उसी प्रकार क्षत्रिय-समुदाय के द्वारा प्रशंसित तुम्हारे कुल के सब पूर्वजों की कीर्ति को भी तुमने अपनी कीर्ति में अंतर्भूत कर लिया।'

करुणा के समुद्र-जैसे, सन्मार्ग पर चलनेवाले मन से युक्त भरत ने उस समय रामचन्द्र की दिशा की ओर देखकर नमस्कार किया और गुह से पूछा— 'हमारे ज्येष्ठ (राम) ने किस स्थान पर विश्राम किया था' ? तब किरातपति ने कहा—'हे वीर ! मैं (वह स्थान) तुम्हें दिखाऊंगा, चलो इस ओर।'

तब भरत मेघ के समान चलकर अतिशीघ्र वहां गये और पथरीली भूमि पर उस घास की शय्या को देखा, जिस पर रामचन्द्र ने विश्राम किया था। उसे देखते ही भरत तड़पकर गिर पड़े और अपने अश्रुजल से धरती को मंगल-स्नान कराया और शोक-समुद्र में डूब गये।

स्तंभ-समान दृढ़ भुजाओं वाले भरत ने आगे कहा—'यदि उन (राम) के विश्राम करने का स्थान यह था, तो कहो कि उन पर अत्यन्त भक्ति रखकर उनके साथ आये हुए अनुज (लक्ष्मण) ने कहाँ विश्राम किया ?' तब किरात-पति ने उत्तर दिया।

'हे पर्वत-समान ऊंचे कंधों वाले ! रात्रि के समान मनोहर वर्ण वाले वे प्रभु तथा वह देवी यहां विश्राम करते रहे और वह वीर (लक्ष्मण) कर में धनुष लेकर निःश्वास भरते हुए और आंखों से अश्रु बहाते हुए रात्रि के व्यतीत होने तक, एक पलक भी मारे बिना, (पहरे पर) खड़े रहे।'

यह सुनकर भरत ने कहा—'राम के अनुज बनकर एक समान उत्पन्न हुए हम लोगों में से एक मैं हूं, जो (राम के लिए) अपार कष्ट का कारण बना। और, एक वह (लक्ष्मण) भी है, जो मेरे उत्पादित कष्टों को दूर करने के लिए सहायक बना ! अहो ! प्रेम की भी कोई सीमा हो सकती है। मेरा दासत्व भी खूब रहा।'[1]

---

1. अंतिम वाक्य का यह भाव है—प्रेम का क्रियात्मक रूप ही दासत्व है; यह वैष्णवों का सिद्धान्त है; वात्सल्य, दाम्पत्य, सख्य आदि का प्रेम भी क्रिया रूप में दास्य ही है। अतः भरत यह कहते हैं कि मैं राम के प्रति प्रेम रख कर भी उनका कुछ दास्य नहीं कर सका, जब कि लक्ष्मण दासोचित कार्य कर रहा है।—अनु०

हनुमान का सीता-अन्वेषण और श्री राम के पास आकर उसका वृत्तांत बताना

हनुमान ने रामचन्द्र से निवेदन किया—'मैंने अपनी आंखों से सतीत्व के अलंकार स्वरूप उस देवी को देखा, जो अब स्वच्छ तरंगों से भरे समुद्र से घिरी हुई लंका में (बंदिनी बनकर) रहती हैं। हे देवों के देव ! आप अपनी आशंकाओं से मुक्त हो जायं और दुख का त्याग करें'—यह कहकर वह आगे कहने लगा—

'प्रभो ! मेरे लिए पूज्य वह आपकी देवी, आपकी पत्नी बनने योग्य है। आपके पिता की पतोहू कहलाने योग्य है तथा मिथिलापति जनक महाराज की पुत्री होने अनुकूल महिमा से पूर्ण हैं। और भी सुनिये···

'स्वर्ण के समान स्वर्ण ही है, अन्य कुछ नहीं। वैसे ही वह क्षमामयी देवी अपने समान स्वयं ही है। उसका उपमान अन्य कोई नहीं है। उन देवी ने आपको ऐसा यश दिया है कि उनके पति होने के कारण अपनी समानता करने वाले आप स्वयं ही हैं, अन्य कोई नहीं। मुझे भी उन्होंने ऐसा महत्व दिया है कि मेरे समान दूसरा कोई नहीं है।

मेरी माता, उन देवी ने आपके कुल को आपके योग्य रखा है (अर्थात्, आपके कुल को कलंकित नहीं किया है) ! स्वयं महान् यश का भागी बनकर अपने कुल की प्रतिष्ठा को बढ़ाकर उस (कुल को) भी उपकृत किया है। अपने को (पति से, अर्थात्, आपसे) अलग रहने वाले (रावण) के कुल को यम के लिए प्रदान किया है। देवी के कुल को जीवित रखा है एवं मेरे कुल की भी प्रतिष्ठा बढ़ने का कारण बनी हैं। अब उन्हें और क्या करना शेष रह गया है।

धनुर्धारी विशाल बाहुओं से सुशोभित हे वीर ! मैंने त्रिकूट-गिरि पर स्थित, समुद्र से घिरी लंका में महान् तपस्या करने वाली स्त्री को नहीं देखा; किन्तु कुलीनता, क्षमा और पातिव्रत्य नामक तीनों गुणों को एक साथ आनन्द-नृत्य करते हुए देखा ।

आप उन देवी के नयनों में रहते हैं, उनके मन में रहते हैं, उनकी वाणी में रहते हैं, उनके स्तन पर मन्मथ के बाणों से उत्पन्न अमिट घावों में रहते हैं, तो यह वचन कैसे सत्य हो सकता है कि आपसे वह देवी बिछुड़ी है ।

हे स्वामिन् ! समुद्र-मध्यस्थित लंका नामक नगर के एक कोने में, गगनोन्नत, स्वर्णमय कल्पवृक्षों के घने उद्यान में जहां उदय और अस्त नहीं दिखाई पड़ता, आपके भाई द्वारा निर्मित पवित्र पर्णशाला में वह देवी रहती हैं ।[1]

हे मेरे प्रभु ! मैंने जो अभिज्ञान बताये, उन सबका उन्होंने ठीक-ठीक विचार किया । उन्होंने यह पहचान लिया कि मेरे मन में कुछ भी छल नहीं हैं अंत में मैंने आपकी दी हुई अंगूठी उन्हें दी । वह (उनके लिए) मरणकाल में जीवन-दान करने वाली संजीवनी के समान थी ।

हे ऐश्वर्ययुक्त ! एक ही क्षण में मैंने दो विस्मयकारी दृश्य देखे । उन देवी ने उज्ज्वल रत्नांकित अंगूठी को अपने स्तनतट पर ज्योंही रखा, त्यों ही उनके तन के ताप से तपकर वह अंगूठी पिघल गयी । किन्तु, तुरन्त ही आनन्द के कारण जो शीतलता बढ़ी, उससे वही (अंगूठी) ठंडी होकर यथारूप बन गयी' ।

---

1. पहले कवि ने यह कह दिया है कि रावण पंचवटी से सीता को पर्णकुटी-सहित ही उठा लाया था । अशोक-वन में भी लक्ष्मण-निर्मित उसी पर्ण-शाला के भीतर सीता रहती हैं ।—अनु०

कुम्भकर्ण-वध

जो अपनी शरण में आये हुए कपोत की रक्षा के लिए स्वयं तुला पर चढ़ गया था और जो वीर मेघ-समान मत्त हाथियों एवं करवाल से युक्त था, वैसे शिवि के वंश में उत्पन्न हे वीर (रामचन्द्र) ! तुम भी वैसी करुणा से युक्त हो । विभीषण हमारे साथ संबंध तोड़कर तुम्हारे पक्ष में गया है, इसलिए तुम उस विभीषण के प्राणों को बचाना ! यही मेरी प्रार्थना है ।

हे आदिदेव ! हे क्षत्रिय के रूप में प्रकट हुए वेद-प्रतिपाद्य मरम-पुरुष ! मेरा भाई (विभीषण) अनुपम धर्म-मार्ग पर चलने वाला है । अपने जातिगत अधर्म को उसने कभी नहीं अपनाया ! वह तुम्हारी शरण में गया है । मैं अब पुनः उसकी रक्षा करने के लिए प्रार्थना कर रहा हूं ।

हे नीति से विचलित न होने वाले ! विजय की कामना से भरा हुआ रावण इस (विभीषण) पर यह सोचकर अत्यन्त क्रुद्ध है कि 'यह उसको निर्मूल करने पर तुला हुआ है ।' वह (रावण) भ्रातृत्व की भी परवाह नहीं करने वाला है । यदि संभव होगा, तो वह अवश्य इस (विभीषण) को मार डालेगा । अतः तुम इसकी सब प्रकार से रक्षा करना ।

सद्गुणों से हीन वह रावण, इसे अपना भाई मानकर कभी दया नहीं करेगा । हे सद्गुण-समुद्र ! यदि इसे वह देख लेगा, तो मार डालेगा, किंचित् भी दया नहीं करेगा । अतः, ऐसी कृपा करो कि मेरा भाई (विभीषण) तुमको, या तुम्हारे भाई को या हनुमान को छोड़कर कभी पृथक् न रहे । यही मेरी प्रार्थना है ।

मुनि और देवता नासिका-हीन मेरे मुंह को न देखें, अतः तुम अपने बाण से

मेरी ग्रीवा को काट दें और मेरे सिर को काले समुद्र में डाल दें। यह भी मेरी एक प्रार्थना है···यों कुम्भकरण ने कहा।

तब राम ने यह सोचकर कि इसने मुझसे यह वर मांगा है इसकी उपेक्षा करना उचित नहीं, अपने दृढ़ धनुष पर एक उत्तम बाण को चढ़ाकर उससे कुम्भकरण का सिर काट लिया और वायव्यास्त्र से उसे बहाकर पाताल तक गहरे समुद्र के मध्य डुबो दिया।

देवता नाच उठे। अप्सराएं गा उठीं। तपस्वी एवं वेदज्ञ भयमुक्त हुए। वानर सेनापति विजयी राम के निकट आ पहुँचे। बलवान राक्षस भय से विकल होकर रावण को समाचार देने को दौड़ पड़े।

पेरिपुराणम् (महापुराण)

•

कवि—शेक् किल्लार्

बारहवाँ सर्ग—पूशलार्नायनार् कथा का अंश

1. मन से (शिव जी का मंदिर बनवाने का) विचार करके उन्होंने (उस कार्य के लिए आवश्यक) महानिधि को बड़े परिश्रम के साथ ढूँढा, किन्तु कहीं भी उन्हें धन नहीं मिला, वे चिन्तित हुए कि क्या करूं। तब उन्होंने निर्णय किया कि मैं संकल्प (चिन्तन) से ही मंदिर का निर्माण करूंगा, उसके लिए तिनके (भर की वस्तु) से लेकर सारी आवश्यक सामग्री चिन्तन से ही एकत्रित कर ली।

2. आवश्यक साधन और बढ़ई आदि शिल्पकारों को मन से ही ढूंढ कर पा लिया। नाथ का मंदिर बनाने के लिए शुभ दिन का निर्णय किया, आगमों में कही विधि के अनुसार नींव डाली, फिर रात को भी नींद न करते हुए बड़ी श्रद्धा और प्रेम के साथ मंदिर का निर्माण करने लगे।

3. नींव से लेकर ऊपर की बनावट तक के सारे शिल्पकार्य मन से पूर्ण किये, फिर अंतिम रूप में शिखर को एक सुचिन्तित शुभ मुहूर्त में बनवा कर दीर्घकाल से बनने वाले मंदिर को पूरा करने का संकल्प किया।

4. शिखर बनाया, सुधा (चूने और गारे) से सुंदर कलात्मक आकृतियां बनायीं, गुंबद बनाया, चारों ओर से मंदिर को घेरकर प्राचीर बनाया, बावली खुदवायी, अन्य सभी आवश्यक कार्य किये, फिर उस मंदिर में शिव भगवान की प्रतिमा के लिये एक शुभ दिन निश्चित करके उस दिन की प्रतीक्षा करते रहे।

5. इतने में कांची नगर के पल्लव राजा ने शिव जी की प्रतिमा के हेतु एक शिलामय मंदिर, आंगण, प्रकार आदि निर्मित करने का संकल्प किया और

उनके लिए बड़ी धनराशि निश्चित की, तब भगवान की प्रतिमा स्थापित करने के पहले दिन उस राजा के स्वप्न में शिव जी प्रकट हुए;

6. (और राजा से कहा) 'तिरुनिन्रऊर' नामक स्थान में 'पूशलन्' नामक वक्त ने जो सुंदर और विशाल मंदिर अनेक दिन तक चिन्तन करके निर्मित किया है, उसमें हम कल प्रवेश करने वाले हैं, अत: यहां पर तुमने जो (भगवान की प्रतिमा का) कार्य (करने को) निश्चित किया है, उसे कल न करके आगे कभी कर लेना।' यह कह कर शिव जी अपने भक्त 'पूशलन्' के मंदिर में पधारे।

7. अपने भक्तों को ज्ञान प्रदान करने के लिए पवित्र (भगवान) ने यों कृपा की, तो वीर राजा निद्रा से जागा और यह सोच कर कि इस प्रकार उत्तम सेवा करने वाले उस भक्त के दर्शन कर उन्हें मैं नमस्कार करूंगा... उस 'तिरुनिनरऊर' में आ पहुंचा जो शीतल उपवनों से आवृत था।

8. उस नगर में पहुंच कर राजा ने वहां के लोगों से पूछा कि भक्त पूशलन का निर्मित मंदिर कहां है ? उन लोगों ने कहा–ऐसा कोई मंदिर यहां नहीं है। तब राजा ने आदेश दिया कि यहां के सभी महान वेदज्ञ (ब्राह्मण) आएं।

9. तब सभी ब्राह्मण राजा से मिलने आये। राजा ने पूछा 'वे निष्कलंक 'पूशलन' नामक भक्त कौन है ? तब उन्होंने उत्तर दिया वह भक्त इसी गांव का है। राजा ने उस भगवद् भक्त को अपने पास बुलाना न चाहा। किंतु स्वयं ही उस भक्त के निकट जा पहुंचा।

10. उस भक्त के दर्शन करके राजा ने प्रणाम किया और कहा 'आपने यहां जो मंदिर स्थापित किया है जिसकी प्रशंसा आठों दिशाओं में हो रही है, वह कहां है ? ललाटनेत्र (शिव) की कृपा से ब्रह्माण्डनायक को प्रतिष्ठित आज के शुभदिन में मैं आपके दर्शन करने और आपके चरणों को नमस्कार करने आया हूं।

(पद्य संख्या 5 से 14 तक)

कन्दपुराणम् (स्कन्दपुराण)

कवि—कच्चियप्प शिवाचारियार

उत्पत्ति-काण्ड—कामदेवदहन पटल

शिव ने ललाट नेत्र से काम देह को जला दिया, काम की पत्नी रति देवी पीड़ित होकर रो उठी।

1. हे स्वर्णमय प्रतिमा समान सुन्दर कुमार ! मुझ, एकाकिनी के प्रिय प्राण ! हे विष्णु-पुत्र ! शम्बासुर के शत्रु ! हे इक्षु-धनुष को धारण करने वाली विशाल भुजा वाले ! हाय ! प्रवाल पर्वत समान शिव की दृष्टि से तुम्हारी देह भस्म हो गयी, और तुम विनष्ट हो गये। क्या देवताओं के नेत्र अब सो गये हैं, ब्रह्मा भी निद्रामग्न हो गये ?

2. पहले, उस दिन मैंने कहा कि त्रिपुरों को जलाने वाले शिव पर आक्रमण करने के लिए जाना क्या उचित है ? मेरा वचन तुमने माना नहीं, देवों की सेवा करने का निश्चय किया। तुम्हारा वक्ष चूर हो गया। यह देखकर रक्षा करने वाला कौन है ? तुम मेरे प्राण ही जब चले गये तो अब क्या मैं अकेली जीवित रहूं ?

3. शिव की दृष्टि तुम्हारे विरुद्ध हुई तो तुम्हारा बल मिट गया, तुम्हारी देह भस्म हुई, गगन में आग छा गयी, स्वर्गस्थ देवों के मन में अग्नि सुलग गयी, अवारणीय बड़ा दुःख मुझे मिला। तुम कहाँ जाकर छिप गये ? बोलो, हे ! मेरे पति, क्या मेरा कोई अपराध हो गया है ?

4. (यह अपयश) देवों के भाग में (होगा) या इंद्र के भाग में ? या तुम्हें जन्म देने वाले दिशा मुख (ब्रह्मा) के भाग में होगा जो तुम देवों से यह कह कर आये कि 'भगवान के (तपः) कार्य को भंग करूंगा' ऐसे तुम्हारे

दुर्भाग्य में होगा ? शिव के ललाट-नेत्र से भस्म होकर तुम्हारे मरने का यह अपयश किसके भाग में होगा ?

5. त्रिपुरों को धनुष से जलाने वाले भगवान के योग को भंग करना हो तो क्या (इसके लिए तुम्हीं मिले) देवता सब मर गये थे ? हे मेरे पति ! क्या तुम्ही इसका लक्ष्य बने रहे ? हाय: तुम्हें बिना मारे ही वैसे ही मार डाला ! मेरी प्राणों की भी मृत्यु बन गये । दुर्जनों का उपकार करना अपने प्राणों की हानि के लिए ही है।

6. न जाने मैंने क्या पाप किया है । मुझ जैसी पत्नियों ने क्या अपकार किया है ! न जाने किसी पूर्व कर्म का परिणाम इस प्रकार हुआ ? तुम्हारा यों अंत हुआ ! हे इक्षु-धनुषधारी रक्षक ! मुझ, एकाकिनी को बचाओ ! अग्नि नेत्र वृषभारुढ़ शिव को पीड़ा देने पर अब और क्या शिकायत हो सकती है ?

7. तुम्हारा स्वर्णमय किरीट नहीं देखती हूं, सौंदर्य पूर्ण वदन की कांति नहीं देखती हूं, चमकते आभरणों से अलंकृत भुजाएं नहीं देखती, विशाल बक्ष की शोभा नहीं देखती, प्रतापपूर्ण पुष्पबाण नहीं देखती, धनुष नहीं देखती, नृत्य करने का दृश्य नही देखती । अब मैं क्या करूं ? हे मेरे पति ! मुझे छोड़कर तुम कहाँ जाकर रह गये हो ?

8. यह सोचकर कि 'यह मेरा दामाद ही तो है', दक्ष ने जब शिव का अपमान किया तब शिव ने उसके यज्ञ का विध्वंस कर दिया, ऐसे शिव से जाकर लड़ो कह कर देवों ने तुम्हें भेजा, उनसे तुम भस्म हो गये, अदम्य वेदना से मैं तुम्हारे समान ही जल रही हूं, मैं भी वहां आ रही हूं, आ रही हूं, मेरे प्राण ! कह कर (रतीदेवी) रो रोकर पीड़ित हो रही है ।

(पद्य संख्या 99 से 105 तक और 110)

विल्लिभारतम् (महाभारत)

युद्ध पर्व—सत्रहवें दिन का युद्ध

(अर्जुन के बाण से आहत होकर कर्ण रक्त-धारा बहाता हुआ गिर जाता है ! किंतु उसके पुण्यकर्म उसके प्राणों को रखते हैं । तब कृष्ण ब्राह्मण रूप धारण करके कर्ण के पास आते हैं और उसके पुण्यों का वरदान मांगते हैं । कर्ण प्रसन्नता पूर्वक देता है)

1. मैंने सुना है कि कल्लोल-तरंगों से पूर्ण समुद्र से आवृत्त धरणी में जो भी दीन हो उसे उसका मांगा हुआ (कोई भी) पदार्थ तुम देते हो ! मैं मेरु पर्वत पर तपोमग्न रहता हूँ । दारिद्र्य से पीड़ित हूँ । इस क्षण में तुम्हारे लिए सम्भव कुछ दान दो । हे वेगगामी तुरंग जुते विशाल रथ वाले सूर्य के पुत्र !

2. जब उस ब्राह्मण ने यह कहा तो विजयी अर्जुन के तीक्ष्ण बाण से आहत शिथिलदेह होकर रथ पर गिरे हुए कर्ण ने वे वचन अपने दोनों कानों से अमृत के समान सुने और हंस कर कहा—"ठीक है ! क्या देना है, बताओ !" तब चतुर्वेदों के प्रतिपाद्य भगवान ने कहा—"तुम अपने सारे पुण्य मुझे दे दो ।" कर्ण यह सुनकर प्रसन्न हुआ ।

3. (मेरे) प्राण अपने स्थानों से विचलित हो गये हैं । वे शरीर के भीतर हैं, या बाहर हैं नहीं जान पा रहा हूँ । मैं ऐसा पापी हूँ कि तुम ऐसी स्थिति में नहीं आये कि मैं सभी अभीष्ट वस्तु दे सकूं । (तुमने केवल मेरे पुण्य माँगे यह अच्छा हुआ) मैं तुम्हें अपने समस्त पुण्यों को दे देता हूँ, तुम लो ! जब भू-निवासी ब्रह्मा भी तुम्हारी समता नहीं कर सकता तो इससे क्या मेरे पुण्य बड़े (या अधिक मूल्यवान) हैं ?

4. यह कहकर कर्ण हाथ जोड़े विनीत हो रहा । तब वाचकों के लिए मेघसमान (दाता) भगवान कृष्ण ने प्रसन्नचित से कर्ण को देखकर कहा—"तुम कर से जल-धारा बहाकर दान दो" तब उस वीर (कर्ण) ने (अपने) हृदय में लगे वाण की नोक की (रक्त) धारा देकर दान दिया तो पूर्व एक असुर (बली) के अरुण कर से (दान) जल स्वीकार करके तीनों भुवनों को आक्रान्त करने वाले (भगवान विष्णु) ने अपने करतल से स्वीकार किया ।

5. उस सुन्दर पुष्पमालाधारी वंचक मुनि (कृष्ण) ने प्रसन्न हो कहा—"अपने अभीष्ट वर मांगो। कहो, क्या चाहिए, मैं दूंगा।" तब वह महावीर बोला--"यदि मैं दुःखद कर्मों के परिणाम-स्वरूप पुनः संसार में जन्म पाऊं तो, सात-सात जन्मों तक भी 'मेरे पास नहीं है, तुम दो' कहकर मांगने वालों को 'नहीं' न कहूँ—ऐसा वर दो।"

6. अपने स्यालक (साले) के कथित ये वचन सुनकर प्रभु का हृदय प्रसन्नता से भर गया। उस (कर्ण) को अपने कर-पुष्पों से अपने वक्ष पर लगा लिया, अपने नयन-पुष्पों की करुणाश्रुधारा में नहलाया। त्रिमूर्तियों के सम्मिलित उस एक रूपी (विष्णु) ने कहा 'चाहे तुम जितने भी जन्म लोगे, उनमें तुम अपार संपदा और दान वीरता प्राप्त करोगे, फिर अन्त में मुक्ति पाओगे।'

7. प्रशंसाशील कर्ण प्रत्यक्ष देखकर नेत्रानन्द प्राप्त करे यों—समुद्र जल को भर कर उड़ने वाले प्रावृट्-कालिक मेघ के समान रूप धारण करके वे अन्तहीन रूप वाले तुलसीधारी भगवान कृष्ण पंचआयुध तथा उनसे शोभायमान चतुर्भुजाओं के साथ इस प्रकार प्रकट हुए जैसे पूर्वकाल में तालाब में स्थित मगर के मुंह में फंसे गजराज के बुलाने पर उसके सम्मुख प्रकट हुए थे। (तब कर्ण बोल उठा—)

8. 'नीलवर्ण' का ऊंचा पर्वत, वर्षाकालिक मेघ समुद्र का गम्भीर जल, अतसीपुष्प,— इनकी समता करने वाला यह आकार—गदा, खड्ग, शंख, चक्र, कोदंड—ये शस्त्रमकरकुंडल शोभित कर्ण, बनमाला से विराजित वक्ष, वर्तुल भुजाएं, मनोहर कंठ, अरुण अधर, प्रभात में विकसित कमल समान वदन-बिंब ज्योतिमय किरीट—यह सब इसी जन्म में मैंने प्रत्यक्ष पा लिया।

9. मैंने अपने प्राण-मित्र (दुर्योधनादि) के लिए धर्मराज आदि प्रिय भाइयों का सामना करके गर्व के साथ युद्ध किया और उसमें मैंने अन्नदाता के ऋण से मुक्ति पायी, देवराज को अमूल्य कवच और कुंडल दान दिये, अपने किये समस्त महान पुण्य तुम्हें दिये। अहो! हे (बालक के रूप में) (यमनार्जुन नामक) अर्जुनवृक्षों के मध्य जाने वाले, हे अरुण नयन विष्णो! महान तपस्या के परिणाम-स्वरूप केवल मुझ, एक व्यक्ति का ही जीवन ऐसा रहा! (और किसी का ऐसा जीवन नहीं रहा)

(पद्य संख्या 236 से 244 तक और 247 से 249 तक)

विविध : 1. 'कुट्रालक् कुरवंजि' नामक कृति से :—

वानर वानरियों को फल देकर प्यार करते हैं। वानरियों से गिराये गये फलों के लिए विहगगण याचना करते हैं। अरण्य-रमणियां अपनी सुन्दर दृष्टियां फेंककर स्वर्ग के निवासियों को बुलाती हैं।

ध्यान के सिद्ध पुरुष आ आकर कार्यसिद्धि प्राप्त करते हैं। मधुमय धारा लहराती हुई उठती और गगनमार्ग से आकर बरसती है।

अरुणकिरण (सूर्य) के घोड़ों के खुर, रथ के चक्र उस पर्वत शिखर पर आकर फिसलते हैं।

रमणियां अपनी वेणी में चंद्रकला को (पकड़कर) पहन लेती हैं। ऐसा है वह कुट्राल (नामक स्थान पर स्थित) त्रिकूट पर्वत—जो हमारा पर्वत है। (पद्य संख्या 67)

2. सन्त तायुमानस्वामी (मातृभूतस्वामी) कृत 'गीत संग्रह' नामक कृति से :—

करुणागीत—(परमशिव की वंदना)

यहीं है, वहीं है—यों अवाच्य होकर सर्वत्र प्रकाशमान आनन्दपूर्ण तथा करुणापूर्ण है—जो अन्तरिक्ष के भीतर अखिल अंडकोटियों में अपनी करुणा प्रसारित हो जाय—इस प्रकार की इच्छा करके समस्त जीवों के प्राण बन कर रहता है जो—मन से और वाक् से अस्पृश्य है जो—असंख्य मत-सम्प्रदाय 'मेरा देव' 'तेरा देव' कहते हुए निरन्तर वाद-प्रतिवाद करते रहें--इस प्रकार स्थित है जो—सर्वत्र विद्यमान अस्तित्व होकर और सबसे अधिक प्रभावशाली चित्र (स्वरूप) होकर नित्य आनन्द बना रहता है, जो—रात्रि-दिन से रहित हो (काल की) सीमा से परे स्थित है जो—वही (हमारे) ध्यान का विषय है, दृश्यमान सब (वही है) मौन (स्थिति) (वही हैं) रूप (वही है) शून्य वही है—यह समझकर हम उसके प्रति अंजलि करते हैं। **(पद्य संख्या—1)**

3. सन्त श्री रामलिंग स्वामि कृत 'अरुया' (करुणा-गान) से :—देवमणिमाला

ऐकांतिक रूप में तुम्हारे श्रीचरण कमलों का ध्यान करने वाले उत्तम (व्यक्तियों) का संग (प्राप्त) होना चाहिए।

ऐसे व्यक्तियों का जो अन्तर में कुछ रखकर बाहर से कुछ बोलते हैं, संग मुझे नहीं मिलना चाहिए।

तुम, महिमामय का ही यश कहना चाहिए, असत्य नहीं बोलना चाहिए।
उत्तम (मुक्ति) मार्ग का अनुसरण करते रहना चाहिए
मद नामक पिशाच से ग्रस्त नहीं होना चाहिए
संगमशील स्त्री की कामना भूलनी चाहिए

इस प्रकार रहना चाहिए कि तुमको कभी न भूले (सन्—) मति चाहिए, तुम्हारी करुणा चाहिए, (भक्ति की) विधि चाहिए।

रोग रहित हो मुझे जीवन व्यतीत करना चाहिए हे। धर्म भूमिष्ठ 'चेन्न' नगर में स्कंद नामक समृद्ध स्थल में विराजमान हे स्कन्दप्रभु ! हे शीतल वदन वाली कोमल मणि ! हे सत्य प्रेमपूर्ण शैवों की मणि ! हे षण्मुख देव-मणि !

4. 'तनिप्-पाडल् तिरट्टु (मुक्तक पद्य-संकलन) से—

(कवित-कालमेघ)

1. आगे आगे लगाम पकड़ कर तीन तीन जने खींचते हैं, पीछे से दो जने ढकेलते हैं, जिस मुँह से सदा वेद निकलता रहता है ऐसे मुँह वाला 'विकटरामन' का घोड़ा महीने भर में कोस दूर चलता है।

(शत्तिमुत्तम् के कवि)

2. हे सारस ! हे सारस ! हेलाल रंग की टाँगों वाले सारस ! जैसे पका हुआ ताड़ का कन्द चिरा हुआ हो वैसे ही प्रवाल समान (लाल) नुकीली चोंच से युक्त हे लाल रंगों के सारस।

तुम और तुम्हारी पत्नी दक्षिण की (कन्या) कुमारि में स्नान करके उत्तर दिशा की ओर जायेंगे तो हमारे गाँव 'शत्तिभुत्तम्' की वावड़ी में जरा ठहर जाना और गीली दीवाल (के झोंपड़े) की छत में रहने वाली और (हिन-हिनाती-सी) ध्वनि करने वाली छिपकली की वोली पर ध्यान लगाये बैठी हुई मेरी पत्नी को देखकर कह देना कि हमारे प्रभु राजा--मारन वलुदि (पांड्य) की मदुरा नगरी में एक गरीब मनुष्य को हमने देखा जो वायु के झोंके खाकर कृश हुआ है (कष्ट भोग रहा है); अपनी बाहों को ही लेकर देह को ढांके हुए अपनी टांगों को ही लेकर ऊपर की ओर (खींच) कर (उनसे) लिपटे हुए, जैसे (मदारी की) पिटारी के भीतर साँप पड़ा हो—यों सांस लेता हुआ पड़ा है।

(पडिक्काशु-त्-तम्बिराव्)

3. ठोंक लगाने के लिए 'पिल्लै पांडिय' यहां नहीं है; कान को कुरेद कर, जितनी हो सके उतनी गहराई तक खोदकर काट डालने के लिए 'विल्वि' नहीं है, दो-दो के सर इकट्ठा बांधकर झुकाकर काटने के लिए महाकवि 'ओट्ट-क-कूत्तन्' नहीं हैं।

जैसा कोई खेल हो यों शीघ्रता से कविता करके धन ऐंठने के लिए अज्ञ धनिक प्रभु विद्यमान हैं। अब और क्या ? अब तो कोई भी व्यक्ति देश भर में अपने को कवि घोषित करते हुए घूम सकता है।

नंदनार चरित्र कीर्तनै

•

गोपालकृष्ण भारती

चमारों की बस्ती का वर्णन

खेतों के पास बसी हुई वह निम्नजाति के लोगों की बस्ती है, झोंपड़ों में लौकी फैली रहती है, चारों ओर से कुत्ते घेरकर भूकते रहते हैं, बाज और चील उड़ते, मंडराते रहते हैं, न गीले न सूखे चमड़े के मांस की इच्छा से मुर्गे चिल्लाकर बोलते रहते हैं। उजाड़ पड़े पिछवाड़े में सफेद हड्डियां और नसें ढेर की ढेर पड़ी रहती हैं।

तालाबों में जहाँ अनेक चमड़े के टुकड़े उतराते रहते हैं केकड़े वास करते रहते हैं, घोंघे घनी घोंघ लिए मोटे बनते रहते हैं, चमड़ों को भिगोये रखने के जलकुंडों की दुर्गन्ध दूर तक फैलती रहती है जिसका वर्णन करना असंभव है। समतल किए खेतों के आसपास चूर हुए हड्डी के टुकड़े और फटे चमड़े के धागे पड़े रहते हैं। वहां के निवासियों में हीनता या लज्जा का भाव नहीं है। संकरी गली में जहां मछली धूप में सुखायी गयी रहती है वे खेलते 'तानाता' गाते रहते हैं, महुए की गुठली को सुन्दरता से कमर में बांध लेते हैं, सिर में पुष्प पहने रहते हैं, कानों में शंख के कर्णभरण और कंठ में पंखों के बीच मन के रखकर बनायी गयी माला पहने रहते हैं। गली पर घर के द्वार पर गालियां बकते हुए मौज में रहते हैं। छक कर मद्यपान करके तालियां बजा बजाकर ठहाका मारकर हँसते रहते हैं। चमड़े के बाजे बड़े मजेदार रहते हैं—ऐसी है वह बस्ती !

महाकवि सुब्रह्मण्य भारती के गीत

1. भारत समुदाय

भारत समाज की जय ! जय ! जय !
भारत समाज की जय ! जय ! जय !
तीस कोटि जनता के संघ में
सब का समान स्वत्व हो गया !
समता इसकी कहां रही अब ?
भारत समाज की जय ! जय ! जय !

नर का अन्न हरण करै नर
रीति कहां अब रहे यहां पर ?
नर को दुःख करे नर घटित
जीवन वह अब कहां रहे ? अज्ञ—
जीवन वह अब कहां रहे ? हाँ—
वह जीवन हममें कहां रहे ? भारत समाज की जय·········

कल उपवन और हरित खेत में
विशाल अगणित यह महा देश
कंद-मूल, फल, विविध धान्यगण
असंख्य देता है महा देश
अपार देता देश यह नित नित
अपार देता महा देश यह ! भारत समाज की जय·········

नव विधान अब एक हम करें
सब दिन उसको स्मरण हम रखें
एक व्यक्ति यदि भूख से तड़पे
तो उठ, कर दें ध्वस्त जगत को
हाँ, हम कर दें ध्वस्त जगत को भारत समाज की जय·········

कृष्ण ने कहा—सब में मेरा
बना वास; मैं सर्व-प्राण हूँ
सब की उत्तम अमर दशा यह
भारत कह दे सकल विश्व को
हाँ ! हाँ ! कह दे सकल विश्व
भारत कह दे सकल विश्व को भारत समाज की जय·········

सभी एक कुल एक जाति के
भारत की ही प्रजा हम सभी
सभी एक स्थिति एक मूल के
इसी देश के प्रभु हैं हम सब
हाँ ! हाँ ! इसके प्रभु हैं हम सब ! भारत समाज की जय······

सभी एक कुल एक जाति के
भारत की ही प्रजा हम सभी
सभी एक स्थिति एक मूल के
इसी देश में प्रभु हैं हम सब
इसी देश के प्रभु हैं हम सब
हाँ हाँ इसके प्रभु हैं हम सब। भारत समाज की जय.........

2. ऊलि कत्तु प्रलय नृत्य

1. अंड-कटाह फटा, वज्र अगणित बज उठते,
नभोरंग पर भूत गा उठे, रक्त-मत्त हो।
गिरते पदार्थ, उस आहट में मिली गान ध्वनि
नाच रही कंकाल धारिणी काली चामुंडी !
माता ! माता ! नाच रही हो !
देख रहा मैं क्षुब्ध मुग्ध हो !

2. पंच भूत ये अस्त-व्यस्त, मिल एक बन गये !
वह भी अंतर्धान हुआ हा ! शक्ति-धार में
फूट रही यह चमक तीक्ष्ण—जो भाव न पकड़े !
नृत्य-भंगिमा-वेग यह—देख न पावे कोई !
माता ! माता ! नाच रही हो !
देख रहा मैं क्षुब्ध मुग्ध हो !

3. महाशून्य भी त्रस्त हो रहा ध्वस्त हो रहा !
चंचल विद्युत-गण ये मार्ग भ्रष्ट हो गये !
प्रलय पिशाचे यह भटका 'अररा' ! 'अररा' ! करता
गरज गरज उन्मत नृत्य कर रही, घूम कर !
माता ! माता ! नाच रही हो !
देख रहा मैं क्षुब्ध-मुग्ध हो !

3. शक्ति डाकिनी ! शिर से शिर टकरा जाते हैं
छट छट छट छट छिटके; ताल बजाते हैं ये
दिग्-दिगन्त में अग्नि ज्वाल यह दृष्टि तुम्हारी !
काल स्वयं ही अहो ! जल रहा ज्वलित रूप बन !
माता ! माता ! नाच रही हो—
देख रहा मैं क्षुब्ध-मुग्ध हो !

5. काल सहित निर्मूल हो रहे त्रिभुवन सब ही
ईश्वर एकाकी बन मौन-प्रकाश में रहा !
शंकर-मुद्रा देख शान्त हो रोष वह्नि तीव्र !
प्रेमपूर्ण हो छू देती उनकी बाहों को
माता ! माता ! नृत्य कर रही !
देख रहा मैं क्षुब्ध-मुग्ध हो !

3. चेत्तमिष् नाडु (प्यारा तमिलनाडु)

तमिल देश शब्द सुना तो
मधुधारा बही मेरे कानों में
मेरा पितृ देश कथन सुनकर
बड़ी शक्ति उमड़ी मेरी सांसों में

वेदों में पूर्ण तमलिनाडु,
उत्तम वीरों से भरा तमिलनाडु,
प्रेमवती युवती, रंभासम
अगणित है, यह तमिलनाडु,

काविरि, दक्षिण पिनाकिनी,
क्षीर नदी, तमिल माता वह 'वैगै'
'पोरुनै' नदी वह बहती
ऋद्धि भरा यह तमिलनाडु

त्रितामिल मुनति[1] का वह गिरिवर
रक्षक खड़ा—यह तमिलनाडु

---

1. त्रितमिल्=कविता, नाटक और गीत नामक त्रिविध तमिल साहित्य।
तमिलमुनि=अगस्त्य

विश्व सम्पदा समग्र है यहाँ
समृद्ध यह मेरा तमिलनाडु,

नील पयोधि वेला पर नित्य
खड़ी तपस्विनी कन्या कुमरि[1]
विष्णु का उत्तर पर्वत वेंकट[2]
मध्य राजित है तमिलनाडु,

विद्या से पूर्ण है तमिलनाडु,
ख्यात कम्बन का देश तमिलनाडु
पृथ्वी पर विविध शास्त्रों की सुरभि
फैलायी जिसने—तमिलनाडु

वैल्लु' को दे इसने जगत में
शाश्वत कीर्ति पायी—-यह देश
हृदय-हारी 'शिलप्पदिकारम्' का
हार मणिमय दिया इसने

सिंहल, पुष्पक, जावक आदि
अनेक द्वीपों में जा अपनी
'व्याघ्र' 'मत्स्य' की ध्वज फहरायी—
उन राज-वंशों की यह मातृभूमि

नभ को छूते हिमाचल पर चढ़
पायी विजय है वीरों ने
युद्ध में कलिंग का तम मिटा दिया
ऐसे पार्थिवों की यह मातृभूमि

चीन, यवन, मिश्र, फारस में
अन्य देशों में भी यश फैला—
ज्ञान-विज्ञान उद्योग वाणिज्य
कलाओं से पूर्ण देश तमिल !

---

1. 'कन्याकुमारी' का वास्तविक नाम 'कन्या कुमरि' है।
2. अर्थात् तिरुपति नामक स्थान पर स्थित पर्वत जिसे 'वेंकटाचल' कहते हैं।

शूली पर ईसा

ईसा को सूली के तख्ते पर
चढ़ाकर मारने के लिए……
नाशक दुर्जनों ने मिलकर हाय !
एक उपाय बनाया,
जग के जीवों की रक्षा के लिए
जो जगत में आया था—
अपने ही प्राणों की रक्षा न करते हुए
है खड़ा सहमा हुआ !
घोषण करके वह गया था
कार्य को पूरा करके है खड़ा !
चारित्र्य का रूप दिखाने आया था !
जग में महान हुआ ।
यह कहकर वहां खड़े लोग
हंसी करते थे ।
पर कुछ न कह, मौन हो
शांति से महात्मा वह खड़ा था ।
'जानते न कुछ ये अज्ञ, इनका
अपराध क्षमा करो !
हे नाथ !' कहकर ईश्वर की
कृपा मांगता खड़ा था !
गगन को देखता खड़ा, न जाने
क्या चाहता था वह !
उसके मन के सभी विचारों को
जान सके —यहां ऐसा कौन है ?

तुम्हीं पर है विश्वास; सहायक
अन्य कोई नहीं है !
क्या छोड़ दी मेरी बांह ! हे प्रभु
कहकर चिंतित है।
प्रभु की सहायता उस दिन
प्रकट न दिखायी पड़ी थी,
प्रार्थना सारी अहो ! बिखर कर
व्यर्थ-सी बन गयी थी।
'तुम्हीं शरण हो' ! कह कर उसने
शिर नवाया प्रभु को !
मृत्यु की वेला में उसने
नहीं भुला दिया प्रभु को।

संजीवि पर्वतत्तिन् चारल्

क्रांतिकवि भारतिदासन्

1. राजा के साथ मेरा झगड़ा हो गया। मैंने कहा कि उसका फैसला प्रजा करे– लेकिन सहमत नहीं हुए। (राजा ने) फैसला दिया कि यह (स्त्री) और मैं मृत्यु दंड पायें। हम मरने आये। यदि एक देश एक व्यक्ति की आवश्यकताओं के लिए ही है तो वह देश मिट जाए—इसी में भला है। लो, ये हम दो व्यक्ति मर रहे हैं, तुम यह सोचकर जीवित रहते हो कि कल तुम्हारा रहना सत्य है।

2. मैं तमिल जानता हूँ (तमिल का विद्वान् हूँ)। इसलिए राजा ने मुझे बुलाया। मैं तमिल कवि हूँ, इसलिए उस (राजकुमारी) ने मुझसे प्रेम किया। हाय! कहीं समाज यह न सोच ले कि अमृत कहने योग्य यह तमिल ही जो मेरा प्राण है, मिटने का कारण बन गयी – मेरी मातृभाषा का अपयश हो तो वह कैसे सह्य होगा? मैं तुम लोगों से एक प्रार्थना कर रहा हूँ, कलंक रहित उत्तम तमिल की प्राणों के समान ही रक्षा करो।

3. राजा के बाद इस पवित्र देश का शासन करने के लिए उत्पन्न एक स्त्री को मारने का क्या राजा को अधिकार है, या तुम लोगों को है?

उस राजा ने कानून का तिरस्कार किया है। शिर काटना तो राजा के लिए एक मनोरंजन है; वह उसके लिए छोटी कहानी है, लेकिन हम सब को प्राणसंकट है। राजकुमारी ने अपने (शासक के) समय में शासनाधिकार को जनता का स्वत्व बनाने की सोची थी।

4. हाय! वह मर रही है। उसे बचाओ। हे मेरी सुन्दर भूमि! प्यारे देश! जगत में तुम्हारी जो महत्ता है उस उत्तम सुन्दर नदी को, प्राण समान पर्वत को और मधुधारा बहाते हुए उपवन को तमिल कविता में गाने की मेरी

बड़ी कामना अभी पूरी नहीं हुई है। मेरा शरीर और हृदय कट जाएँ, उनसे रक्तधारा बहे, तो उससे वह कामना पूरी हो जायेगी न ?

5. मेरा देश स्वर्ण भूमि बनकर जिये। यहां की उत्तम जनता स्वत्व (अधिकार) पाकर जिये। एकाधिकार का निरंकुश स्वत्व गगन से गिरने वाली लूक के समान मिट्टी में गिर जाए। यह गरीब अंतिम बार नमस्कार कर रहा है। मेरे गुरूजन। माताओं ! जा रहा हूँ; मेरा रुधिर सारे प्यारे देश की मिट्टी में ही लीन हो जाए। यह कहकर तलवार के नीचे उसने सर झुका लिया।

6. मानों स्फटिक पर दूध का अभिषेक देखा जा रहा हो—यों 'अमृत-वल्ली' का अश्रुप्रवाह उसके चरणों को धो रहा था; इस दृश्य को लोगों ने देखा और 'हा' कहते रो पड़े।

'क्या प्रेम करने वाले लोग भूमि पर जीवित नहीं रह सकेंगे ?' कहकर वह कुमारी छटपटा उठी; यह सुनकर देश की प्रजा चिल्ला पड़ी कि 'क्रूरता है !' और तलवार को छीन लिया। जल्लाद लोग प्राण बचाकर भागने लगे।

7. लोगों ने कवि को और उसकी प्रियतमा को मुक्त किया; राजा के पास एक दूत को भेजा; उस दूत से कहला भेजा कि 'तुम्हें एकाधिकार नहीं देंगे।' दूत के जाने के पहले ही राजा के कानों में यह समाचार जा पड़ा। राजा ने राज छोड़ दिया। लोगों ने सारी सम्पदा पर जनता का अधिकार करते हुए कानून बनाया। तब उस राज्य में कोई कष्ट नहीं रहा; और लोगों को सब सुख प्राप्त हुए।

(पद्य संख्या 10 और 12 से 17 तक)

तमिल के लोक-गीत

1. पानी से छूत नहीं

किनारे लांघ बह रहा—वह
कावेरी-जल हर कहीं
टेढ़े मेढ़े बह रहा है वह
नील वर्ण जल सारा;
भौंरे दिखाता बहा—वह
शुद्ध स्वच्छ नदी-जल
चांदी - सा चमक रहा;
पीने का, नहाने का जल—मेरी प्यारी
घड़े भर-भर ले लेते हैं;
पानी से कोई छूत नहीं—मेरी प्यारी
रोकने वाला प्रभु नहीं;
बामन को ठंडा पानी—मेरी प्यारी
भंगी को भी ठंडा पानी,
देहात में कई जातियां—मेरी प्यारी
चमार से लेकर बामन तक;
भंगी से लेकर ठाकुर तक
बिखरता यह ठंडा पानी
झगड़े लाता भी है—मेरी प्यारी
जातियों के बीच में;
देवता समान है यह जल—मेरी प्यारी
दिशाओं में बहता जल !

2. लोरी

चिर तप से प्राप्त हुआ—हे मोती ! सो जा
सो जा ! सो जा !

विशाल पृथ्वी का राजा !
विचित्र पुष्प पालने में
शिखा-मणि ! तू सो जा !
रोता तू क्यों, किसने मारा; उसको बता रे तो !
थपथपाते हाथ मेरे
मेरी शिखा-मणि ! तू सो जा
मां ने पीटा क्या प्यारे ! अन्न खिलाते हाथ से
बहिन ने पीटा क्या प्यारे ! उठाते हुए हाथ से
दादी ने पीटा क्या प्यारे ! दूध भरते हाथों से
मामा ने पीटा क्या प्यारे ! चमेली की गेंद से
मामी ने पीटा क्या प्यारे ! काजल लगाते हाथों से

3. 'मुक्कूडै पल्लु' [हरिजन-गीत]

(एक ग्रामीण स्त्री अपने पति की शिकायत कर, मालिक से निवेदन कर रही है, उसका पति एक दूसरी औरत के मोह में पड़ा है)[1] जैसे उसका कोई भीतरी हाथ हो (जो बाहर नहीं दिखता है)

मछली के लिए, पूंछ और
सांप के लिए सिर दिखाकर[1]
मुझे स्नेहजाल में फँसाकर
शहद के साथ दूध-जैसा बना रहा; लेकिन उस स्त्री के
पीले बदन पर मुग्ध हो—सारा पैसा
बिखेर, बरबाद किया; मुझे आज
सड़क पर छोड़ दिया है ।
यह (स्त्री) (अर्थात् मैं) हीनता के लिये—पर वह (स्त्री)
उसके बड़े मान के लिए—यहां तो
पैर धरना नहीं; वहां से वह
सपने में भी हटता नहीं ।

---

1. अर्थात् उसने हाथ में एक मछली को छिपा रखा और उसका शिर दिखाकर सांप का भ्रम पैदा करता है और पूंछ दिखाकर मछली का भ्रम पैदा करता है अर्थात् धोखा देता है ।

देह के प्राण हैं जो, भूमि और
स्वर्ग की जो ध्वनि है उस सुन्दर भगवान के लिए
प्रिय, वह राग[2] चाहो तो उसे
बचाकर रखो, ए मालिक !
निन्दा के लिए जनमा; होते होते
लाज शरम भूला; युवक ने
यौवन मांगा था; बढ़ती मेरी
बढ़ती को हर लिया;
जब तैरना ही है—तो
अब कोई स्थान की बात कहाँ ?
बातें करने को भी मुझसे वह
सोचता भी नहीं; मुझे ढूंढ़ता हुआ
(इशारे से) खांसता भी कभी नहीं;
आग का जला घाव भर जाता है; निन्दा की
जीभ से जला घाव भर जाता है; उसे मैंने
'छि:' कह फेंक दिया—मैं अब
उसे मुंह दिखाऊंगी नहीं।
ज़रा बोलकर देखो ! काठ की
खूंटी (में बांधकर उस) का फसला कर दो
उस डरते हुए को कसकर पकड़ो
पकड़ते हुए तलैया में डुबोदो।
ए मालिक !

2. 'जलकर कोयिल्' एक स्थान है जहां भगवान का मंदिर है। इस जाति के लोग भगवान के उत्सव में एक विशेष राग गाकर स्तुति करते हैं।

1. देंशिग राजन् कदै [राजा तेजसिंह की कथा]

('राजा देंशिग' नामक एक बड़ा वीर हुआ जिसने शेंजि नामक स्थान में राज किया। उसके एक युद्ध का वर्णन)

उस वेला में नैन से देखा राजा देंशिग ने
बीस हज़ार 'तुरुक' घोड़ों को हांक के छोड़ दिया
घोड़े आते नैन से देखे राजा देंशिग ने
तब तो मूंछें फटफट फटफट फड़क उठीं उसकी
चट-पट घूम के आता था वह पारस का घोड़ा
नवाब-सैनिक दल के दल मरकर गिरते थे
पैरहाना और सिरहाना हो बदल के घोड़े बीस
हज़ारों घोड़े निढ़ाल गिर गये क्षण भर में
हाथियों का अब खेल देखता राजा देंशिग
'पाट[1] का हाथी मूसल लेकर दे मारने लगा था
हाथी दौड़ लगाकर घिरफिर आते थे, तब भी
चिंघाड़ के वे आते थे सामने उसके
हाथी से (भी) विस्ताभर ऊंचा उछला फारसी घोड़ा
हाथी के ऊपर उछल के पड़ता हाथी था दूसरा
भाला ताने हाथ में पकड़ा राजा देंशिग ने
घोंपघोंप कर गिरा रहा था राजा देंशिग
मूसल मार के सलाम मांगता पाट का हाथी वह
मिट्टी पकड़े गिर जाते थे हाथी और सभी
आंतें खिसकीं; गिर जाते कुछ हाथी तभी वहां पर
मस्तक फटकर मर जाते थे; कई मस्त हाथी
टांगें मार मारकर मरते हाथी कई वहां;

---

1. पाट=राजपाट।

टांगें मार, छटफटाके मरते हाथी कई वहां;
दो-दो हज़ार हाथी निढाल तब गिर गये वहां।
हाथियों का मरना देखा राजा देशिंग ने
वहां तभी राजा देशिंग ने देख लिया महावत को,
तब वह हंस पड़ा खिलखिलाकर राजा देशिंग
बायें पैर का रकाब मारा पारस घोड़े को
आगे की टांगें उठाके हाथी के सिर पर चढ़ा वह घोड़ा
भाला तान के दे मारा रे! राजा देशिंग ने,
आगे खड़ा वह महावत भी तब मिट्टी पर गिर गया
छाती पै उसकी भाला तान के खड़ा तब देशिंग।

2. अल्लियरशाणि मालै [अल्लि रानी की कथा]

(यह एक लोक कथा है)
पांड्य देश के लोग परदेश जा रहे हैं
वर्षाएं नहीं हुई मदुरा नगर सीमा में
बौछार नहीं हुई दक्षिण मदुरा में
बूंदें नहीं पड़ीं सुन्दर'[1] की मदुरा में
सूखकर कांटा बने सब मदुरा नगर में—
जलकर धुंआ बना। वहां पर नमी न होने से
पीने को पानी नहीं तलैया में, तालों में
कौए को पीने के लिए भी चम्मच-भर बूंद नहीं;
नदी तालाब सब बिलकुल सूख गये
झीलें सूख गयीं, शहतीर भर गहरे
खेतों से गरमी से अग्नि-लपट निकल रही;
फसलें नहीं हुईं राजकीय मदुरा में;
कटाई-निराई नहीं बड़ी मदुरा नगरी में
असत्य सम-देश में धूल उड़ने लगी,
लहलहाते पेड़ों में सूखे पत्ते झड़े, अब
धरती सूख गयी, जड़ी कहीं रहीं नहीं;

1. 'सुन्दर'=मीनाक्षी सुन्दर नाम से मदुरा के मन्दिर में विराजमान शंकर

पक्षी अब नहीं रहे पांडय राजसीमा में
प्रवास के लिए निकले बड़ी मदुरा के जन
दुर्भिक्ष पीड़ित हो परदेश जा रहे हैं—
अन्न कहीं नहीं मिलता सुन्दर मदुरा में
मदुरा के घिरे हुए महावन वृक्ष सभी
सूखकर जलकर काला धुंआ निकालते थे
खड़े रहने को कहीं छाया थी नहीं वहाँ
गांव के निवासी वे बरबादी पा रहे हैं
शून्य-मुख हो गये थे पांडय देश के नर सब
अन्न-चिन्ता एक वहीं सताती बड़ी सबको
बारह बरस तक घोर दुर्भिक्ष रहा।
बदन सफेद पड़े, आंखें जाली बन गयीं,
पत्नी बच्चे पुरुष बिछुड़कर आपस में
दिशाएं भूलकर दिग्भ्रांत भटक गये।

(लघुकथा)

गली का चिराग

गली के छोर पर उस मोड़ पर एक मुनिसिपल दीप अकेले, एकाकी खड़ा अपना मद्धिम प्रकाश फैलाने का यत्न करता हुआ जीवित रहा।

जवानी, बुढ़ापा, मौत,— ये सिर्फ मनुष्यों का स्वत्व नहीं है। अतः गली के चिराग़ के भी अब बुढ़ापा है।

खड़ा खंभा पत्थर का; अब उसका बदन कुछ झुक गया है। शिर पर के कांच का एक ओर का टुकड़ा टूट गया।

जब उस लड़के ने खेलखेल में पत्थर चलाया तो उसे चिराग़ का दर्द क्या मालूम था ?

हवा का झौंका चले तो एकदम अपने प्राण छोड़ भी देता है क्या ? आखिरी सांस, प्राणों को तड़प-तड़प करके पकड़े हुए उसे मार रहा है ?

थोड़ा-सा ही मद्धिम प्रकाश सही—दे रहा है—इससे क्या हवा में कृतज्ञता (का भाव) है ?

गया ? फिर बारिश में उसकी ठंड की ओर किसने ध्यान दिया।

क्या वह हवा को मालूम है। कहते हैं कि अब उस तरफ रोशनी की ज़रूरत नहीं है, उसे हटा देना चाहिए।

उसका एक साथी—एक बूढ़ा। उपयुक्त अवस्था का ही हो तो साथी बनता है; इसमें अचरज क्या है।

चिराग़ का साथी बूढ़ा !
बूढ़े का साथी चिराग़ !
बूढ़े को मालूम नहीं है कि चिराग़ को हटाने वाले हैं।
उसे कैसे मालूम ?
उसे अपने पेट के लिए क्या भीख नहीं मांगनी है
बिना पेट के लिए कमाए जिन्दा रह सकेगा ?

गली का चिराग़ उसका साथी ही है। उसकी रोशनी से उसे कितनी शांति मिलती है।

उस दिन शाम को आया
वहां सिर्फ एक गड्ढा बाकी था।
अंधेरा! अंधेरा!
जैसे किसी ने हाथ का सहारा—लाठी—
छीन लिया हो—ऐसी अंधे की हालत!
उस दिन उसे जगत शून्य था,
खाली उजाड़, अर्थ हीन था!
शान्ति!
वह कहां से आएगा?
गली का टूटा चिराग़ ही सही!
उसे थोड़ी सांत्वना तो देता रहा!

रोशनी न होने पर भी, छूकर देखने पर सांत्वना पाने के लिए एक पत्थर तो खड़ा था।

अगले दिन सवेरे लोगों ने देखा कि वहां एक बूढ़े की लाश पड़ी थी।

अब एक नया दीप है।
बिजली की बत्ती!
उसके नीचे बच्चे उत्साह से खेल रहे हैं!
उन्हें पुराने चिराग़ और पुराने बूढ़े की क्या चिन्ता है!
कभी ये लोग भी वैसे ही बन जाएंगे!
उससे क्या!
हर कहीं हमेशा ऐसा ही होता है
पुराने बीतते हैं; नए आते हैं
यह जगत की रीति है।

समीक्षा का कुछ ग्रंश

(क) पट्टिन-प्-पालै की

".........आगे, इस बात का कि छन्दगत शब्द-संक्षिप्त और अर्थाधिक्य से युक्त होकर, लयात्मक रीति पर चलने से आनन्ददायक रहेगा—एक उदाहरण प्रस्तुत करके विवेचन करने पर वह स्पष्ट होगा। अतः संत माणिक्य-वाचक की श्रीसूक्ति "तिरुच् चिट्रम्बलक्' कौवेभार्" नामक (एक काव्य) निधि का एक रत्न यहां दिखाया जा रहा है।

इसके उत्तरार्ध के दो चरणों का यह भाव है—हे आँख की पुतली समान (सीख)! मैं आज इस पर्वत-सानु प्रदेश के मार्ग से आने लगी; तब कुछ दूर पर क्रोध से अग्नि उगलता हुआ एक बड़ा व्याघ्र (आकर) मुंह बाने लगा; हाय! उससे क्षण में मैं बचकर—निकलने लगी तो सब प्रकार से उत्तम एक पुरुष ने अपना भाला जो घुमाया उसकी सामर्थ्य का क्या वर्णन करूँ"—उस प्रकार सखी ने नायिका से कहा—इस कथन को सुनते ही नायिका पहले घोर भय से कांप उठी फिर किंचित शांति पाकर सोचने लगी अहो! इस पर्वत प्रदेश पर मुझ, गरीबिन के लिए विचरण करने वाला एक मेरा प्राणप्रियतम ही होगा। उसे छोड़ और कोई पुरुष यहां नहीं आ पाता है। क्या उसे एक बड़े व्याघ्र से कष्ट हुआ; यों बड़ा विचार करके खिन्न होती है। सखी का उसे इस प्रकार त्रास और शंका में डालते हुए कहना अत्यन्त विस्मयकारी है।"

(ख) श्री वी० कल्याणसुन्दरम् के एक निबन्ध का कुछ अंश

"जाति (नामक) पिशाच को भारत को पकड़े दीर्घ समय हो गया। बुद्ध आदि सुधारवादियों के सभी प्रयत्नों का जाति-पिशाच ने निगलकर डकार ले लिया। अनेक जानकार लोग यही सोचते हैं कि वैसे पिशाच को सरलतया भगाना सम्भव नहीं। उनसे प्रार्थना करता हूं कि समय की गति को जरा ध्यान देकर

देखे । यह बात उन्हें स्पष्ट होगी कि जाति पिशाच को भगाने का प्रयत्न यदि अब ठीक ढंग से चल पड़े तो कालदेव उसकी सहायता करने के लिए तैयार खड़ा है । किन्तु प्रयत्न ठीक ढंग से होना चाहिए ।

युग के अनुकूल यत्न से (अहिंसा) धर्मयुक्त विप्लव उठेगा और धर्म-युक्त विप्लव के लिए ही पहले यत्न करना चाहिए । यदि उससे लाभ न हो तो हिंसात्मक विप्लव अपने आप उत्पन्न होगा । यदि हिंसात्मक विप्लव के लिए बलात् यत्न करें तो प्रकृति उसकी सहायक नहीं होगी ।

यत्न की रीतियों और प्रकारों का अनेक प्रकार से वर्णन करके पन्ने भरे जा सकते हैं । उन सबके प्राण मानने योग्य केवल एक उपाय को यहां बताना चाहता हूं । वह है 'अन्तर्जातीय विवाह' । अन्तर्जातीय विवाह जाति भेद के भाव को दूर करेगा और साथ ही जाति-पिशाच को भी कालक्रम में मिटा देगा । अंतर्जातीय विवाह प्रकृति (के नियम) को दृढ़ करने वाला है । भगवान को सम्मत है । श्री सुन्दर मूर्ति जो आदि शैव ब्राह्मण थे जाति-विवाह करने का यत्न करने लगे तो भगवान ने उस विवाह को रोककर उनका अंतर्जातीय विवाह करवाया—यह बात यहां उल्लेखनीय है । भारत माता को बांधने वाले अनेक बंधनों में से एक इस जाति-बन्धन को तोड़ने का उत्तम उपाय यह अंत-र्जातीय विवाह ही है । अतः नव युवतियो ! वीर युवको ! उठो अंतर्जातीय विवाह के लिए उत्साहित होकर उठो, माता को देखो : माता के बंधन देखो : यदि वह बंधन टूट जाएगा तो अनेक बंधन अपने आप टूट जाएंगे । उस बंधन को तोड़ने का दृढ़ निश्चय कर लो । उसके लिए क्या चाहिए ? क्या सोना या धर्म चाहिए । तोप या बन्दूक जरूरी है ! नहीं, नहीं : मन चाहिए : निडरता चाहिए : माता की मुक्ति के लिए हिंसात्मक संघर्ष करने के लिए प्रकृति माता तुम्हें नहीं बुला रही है—अंतर्जातीय विवाह को ध्यान में रखो—यही माता का कहना है; उसकी पुकार को नहीं सुनोगे ? युवको ! माता की मुक्ति के लक्ष्य को लेकर उठो ! निर्भय चित्र के साथ उसे : अंतर्जातीय विवाह का भाव लेकर उठो ! एकत्रित हो जाओ; झुंड के झुंड एकत्रित हुए दलों में एकत्रित होओ । जाति-पिशाच अपने केश बिखेर भागेगा : जाति-पिशाच को भगाने की दक्षता, शक्ति, पराक्रम, तुममें हैं । संकल्प चाहिए । संकल्प करो ।"

नीम की तपस्या

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

एक पुराना नीम का पेड़ था। उसके निकट एक छोटा नीम का पौधा भी खूब लहलहाता हुआ बढ़ रहा था।

पौधे ने कहा—'मां' ! क्या मैं भी तुम्हारे जैसे कड़ुआ ही बढ़ चलूंगा ?

बूढ़ी नीम ने कहा 'और कैसे बढ़ोगे ? कड़ुए ही बढ़ोगे ! तुम्हें पसंद नहीं क्या ?'

पौधे ने कहा—'दवा के लिए और झाड़-फूंक के लिए ही लोग तुम्हारे पास आते हैं। किसी को रुचि-स्वाद के साथ तुम्हारे पास आते हुए मैंने नहीं देखा न !'

मां नीम ने कहा—झाड़-फूंक ही संकट को मिटा सकती है।

मीठा फूल क्या दे सकता है ? वह स्थिर सुख नहीं दे सकता।

अपनी स्थिति से मुझे तृप्ति है। तुम भी वैसे ही रहोगे। बच्चे !

पौधे ने कहा—मेरी एक इच्छा है। मेरी यह इच्छा है कि मैं एक बढ़िया मीठा नीम का पेड़ बनूं।

पेड़ ने शास्त्र (ज्ञान) का उपदेश दिया।

बच्चे ! नहीं : मेरे-जैसे तुम भी दीर्घायु होकर सुख से रहोगे। दूसरों का सुख हमें नहीं चाहिए। उसे देखकर उसकी कामना करने से अहित होगा।'

बच्चे नीम ने यह बात स्वीकार नहीं की। उसने ठान लिया—'मैं नीम नहीं बनूंगा। उसने गणेश जी की स्तुति करके वरदान प्राप्त कर लिया। नीम 'मीठा नीम' बन गया और बढ़ने लगा।

तीन फुट ऊंचा बढ़ा कि नहीं इतने में ही आसपास के घर वाले उस पौधे

से रसोई के लिए पत्ते तोड़कर ले जाने लगे। कुछ लोग थोड़ी कृपा के साथ (मुलायम पत्तों को छोड़कर) बड़े-पके पत्तों को तोड़-तोड़ कर ले जाते। कुछ ने तो डाल की डाल तोड़ दी। कुछ तो मुलायम पत्ते ही ढूंढ़ कर तोड़ ले जाते। यह सोचकर कि वही स्वादिष्ट होते हैं—उन्होंने ऐसा किया ! जो पौधे में बचाखुचा था उसे एक दिन एक बकरा खा गया।

पेड़ ने कहा—फिर गणेश की प्रार्थना करो। मैं भी तुम्हारे लिए प्रार्थना करूंगी। यह कह नीम के पेड़ ने पूर्ण भक्ति के साथ बच्चे के लिए भगवान से प्रार्थना की।

जड़ में अंकुर निकला। नीम का पौधा बन कर खूब बढ़ा। मीठे नीम के पत्ते के लिए गांव के लोग दुबारा आये। लेकिन एकदम कड़ुआ पाकर लौट चले। पौधे को बढ़ने दिया। गांव के मुर्गों ने आकर पौधे के तल की मिट्टी को खोद-खुरचकर बिखेरा; उन्होंने कीड़ों को ढूंढ़ते हुए खोद डाला। लेकिन वह पौधे के लिए अच्छा हुआ। वह तेजी से बढ़ने लगा। कोपलों को तोड़कर ले जाने वाला कोई नहीं। माँ नीम के फूल खुशी से उस पर बरस पड़े।

तेलुगु साहित्य

चयन :

डाक्टर डी० वेंकटावधानी

अनुवाद :

हनुमच्छास्त्री अयाचित

अनुक्रम

ऐतिहासिक समीक्षा		527
नन्नय्य भट्टु	• नागानन्दमु	537
	• ययाति-नीति	539
तिक्कन सोमयाजी	• उपदेश	540
बेज्ज महादेवी	• पाल्कुरिकि सोमनाथुडु	542
कवि मंचना	• अविवेक	544
श्रीनाथ	• काशी से विप्रवास	545
बम्मेर् पोतन्न	• बलि की वदान्यता	547
अल्लसानि पेद्दन्न	• हिमाचल	549
रामराज भूषणुडु	• प्रातःकाल का वर्णन	551
चेमकूर वेंकट कवि	• विवाह	553
यथावाक्कुल अन्नमय्य बद्धंना धूर्जटि कंचर्ल गोपन्ना एनुगु लक्ष्मण कवि वेमन्न	• शतकों के छंद	555
तिरुपति व वेंकटेश्वर कविद्वय	• ज्ञान-धन	558
दुब्बूरि रामिरेड्डि	• महात्मा गांधी	560
पिंगलि व काटूरि कविद्वय	• धर्मपथ	562
विश्वनाथ सत्यनारायण	• दो नक्षत्र	564
गडियारम् वेंकट शेषशास्त्री	• भारतीय नारी का महिमा	566
देवुलपल्लि वेंकट कृष्णशास्त्री	• आशा	569
देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री	• नटराज	570
श्रीरंग श्रीनिवास राव	• भिक्षुवर्षीयसी	572
कुलुवे वीरिराजु	• द्वारका-गमन	574
परबस्तु चिन्नय्य सूरि	• लालच	576
	• अति संचय की इच्छा	577
कंदुकूरि वीरेशलिंगम्पंतुलु	• प्रार्थना	578
पानुगंटि लक्ष्मी नरसिंह राव	• अपनी भाषा	579

ऐतिहासिक समीक्षा

तेलुगु भाषा के उद्गम के सम्बन्ध में दो प्रकार की विचार-प्रणालियाँ हैं। प्राचीन तेलुगु कवियों और वैयाकरणों का मत है कि इसका उद्गम प्राकृत और संस्कृत है तथा प्रथम तेलुगु व्याकरण आंध्र शब्द चिंतामणि में स्पष्ट लिखा है "आंध्रप्रकृतिः प्रकृतिश्चोद्ये - एपातयोर्भवेद् विकृतिः" अब भी ऐसे कुछ विद्वान् हैं, जो इस विचार का समर्थन करते हैं। परन्तु आजकल के अनेक भाषाशास्त्री डा० कान्डवेल द्वारा प्रस्तुत इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं कि तेलुगु और अन्य दक्षिण भारतीय भाषाएं द्रविड़—परिवार के अन्तर्गत हैं और इनका उद्गम प्राचीन आदि—द्रविड – भाषा से हुआ है।

तेलुगु भाषा के प्रारम्भ के लक्षण ईस्वी की प्रथम शताब्दी से मिलते हैं, जब कि सम्भवतः आदिम—द्रविड़-भाषा की एक अलग बोली के रूप में इसका स्वतन्त्र रूप से प्रचलन हुआ। तेलुगु में प्रथम अभिलेख ईसवी की छठी शताब्दी में मिलता है, यद्यपि ऐसे प्रमाण उपलब्ध हैं, जिनसे पता चलता है कि यह भाषा प्रथम शताब्दी से ही लोगों में प्रचलित थी। प्रारम्भिक तेलुगु अभिलेखों में ऐसे अनेक प्राकृत शब्द मौजूद हैं, जिनके स्थान पर धीरे-धीरे संस्कृत शब्द आ गए। नवीं और दसवीं शताब्दी के कुछ अभिलेख पद्यबद्ध भी हैं और ये सभी पद्य केवल देसी या देश्य छन्दों में लिखे गए हैं। आलोचकों की राय है कि कुछ कृतियाँ जैसे देशीमार्ग से सम्बद्ध पालकुरीकी सौमनाथ द्वारा उल्लिखित विभिन्न पद, सम्भवतः उसी काल में लिखे गए हों, परन्तु अब वे सभी विलुप्त हो गईं। भाषा भी अस्थिर अवस्था में थी और एक ही शब्द विभिन्न इलाकों में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयुक्त होता था। नन्नय्य ने ही इसे स्थिर रूप प्रदान किया, संस्कृत शब्दों को ग्रहण करने की निश्चित प्रणाली बनाकर तथा चालुक्य वंश के महाराजा और संरक्षक के अनुरोध पर महाभारत का अनुवाद करके उसे समृद्धशाली बनाया। इसलिए उसे आदि कवि कहा गया है, जिसका केवल यह तात्पर्य है कि वह पहला कवि था, जिसने प्राचीन अलंकारशास्त्रियों द्वारा

निर्धारित नियम-विनियमों के अनुकूल व्याकरणसम्मत भाषा का प्रयोग करते हुए उच्चस्तरीय कविता लिखी।

प्रसिद्ध सम्राट कवि श्री कृष्णदेवराय ने अमुक्त मलयादा में "देशभाष लन्दु तेलुगु लेस्स" कह कर भाव व्यक्त किए हैं। इसका अर्थ यह है कि तेलुगु भाषा सभी क्षेत्रीय भाषाओं में उत्तम है। यही उक्ति "कृत्वभिराम" में पाई जाती है, जिसे कवि सार्वभौम श्रीनाथ द्वारा लिखा बताया जाता है। कहा जाता है कि यह कवि चौदहवीं शताब्दी के प्रथम अर्धांश का था। चूँकि श्रीनाद और कृष्णदेवराय पहले ही तेलुगु भाषा से सम्बद्ध हैं अतः सम्भवतः समझा जाए कि उनके विचार पक्षपातपूर्ण हैं। ब्रिटिश सरकार के राज्यकाल में, अनेक विदेशी जन उच्च अधिकारियों के रूप में भारत आए और उन्होंने विभिन्न भारतीय भाषाएँ सीखीं। वे तेलुगु भाषा की प्राकृतिक मधुरता से इतने आर्कषित हुए कि उन्होंने इसे पूर्व की इतालवी भाषा कहा।

तेलुगु के प्रथम कवि नन्नय्य ने तेलुगु में महाभारत का अनुवाद आरम्भ किया और वह केवल ढाई वर्ष ही समाप्त कर सका। लगभग दो शताब्दियों के बाद कविब्रह्म टिक्कन ने पुनः अनुवादकार्य हाथ में लिया और उसने आखिरी पन्द्रह पर्व समाप्त किए। येर्रप्रगड ने अरण्यपर्व का उत्तर-अर्धांश चौदहवीं शताब्दी में समाप्त किया। सामान्यतः ये तीन लोग कवित्रय के नाम से विख्यात हैं और उत्तरवर्ती सभी कवि इनको उच्च मान प्रदान करते हैं। इनके अनुवाद करने की प्रणाली बड़ी विशिष्ट प्रकार की है। इन्होंने बहुत हद तक कथानक को ग्रहण किया, परन्तु न केवल बढ़ा-घटाकर बहुत से परिवर्तन किए हैं, अपितु समीचीनता को बनाए रखने के लिए नवीन विषय भी जोड़ दिए हैं। जहां कहीं आवश्यकता अनुभव हुई, वहां उन्होंने मौलिक विवरण जोड़ दिए हैं। मूल में आधिक्य रूप से पाए गए लम्बे-लम्बे दार्शनिक और उपदेशात्मक भाषणों को छोटा कर दिया तथा इतिहास को सुन्दर काव्य में परिवर्तित कर दिया। इसलिए तेलुगु भारत में मात्र अनुवाद से कहीं अधिक मूल काव्य का आनन्द प्राप्त होता है, और साथ ही पाठकों को इसमें मूल संस्कृत का सत्व अनुभव होता है। इस युग के अन्य जिन कवियों ने संस्कृत से दूसरे पुराणों का अनुवाद किया है, उन्होंने भी यही प्रणाली अपनाई है, जिससे अनुवाद भी साहित्य के लिए अमूल्य आभूषण बन गए हैं। इनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—मारान का मार्कण्डेय पुराण, केतन का दशकुमार चरित, येरन का हरिवंश और नरसिंह पुराण तथा नचान सोमना का उत्तर हरिवंश। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथण अर्धांश के महान शैव कवि ने कुमार-संभव लिखा, जो मौलिक है और इसमें उत्तरवर्ती प्रबन्ध की अनेक विशेषताएँ पाई जाती हैं।

बारहवीं शताब्दी में तेलुगु क्षेत्र की धार्मिक स्थितियों में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए और आंशिक रूप से इन्हीं कारणों की वजह से नन्नय द्वारा आरम्भ किए गए तेलुगु भारत के प्रकाशन में विलम्ब हुआ। राजा बिज्जला के विख्यात मन्त्री बासवेश्वर ने वीरशैव धर्म का प्रवर्तन किया, जो न केवल कन्नड़प्रदेश में ही बल्कि तेलुगु प्रदेश में भी शीघ्र फैल गया। यह एक ऐसा धर्म है, जो भगवान् शिव की भक्ति पर बल देता है और इसके अनुसार जो कोई भी, चाहे उसकी जाति या मत कुछ भी हो, इनकी आराधना अत्यन्त श्रद्धा से करता है, उसकी मुक्ति निश्चित है। महान् विद्वानों और कवियों सहित अनेकानेक तेलुगु लोगों ने इस धर्म को ग्रहण किया और इसके प्रचार के लिए अपना जीवन समर्पित किया। पंडिताराध्य और पालकुरीकी सोमनाथ जैसे कवियों ने ऐसी कृतियों की रचना की है, जिससे इस धर्म की प्रगति में सहायता मिली है। इन रचनाओं में सरल भाषा और छन्दों का प्रयोग किया गया। इस शताब्दी में लिखे गए शैव-ग्रन्थों में शिवतत्व स्पर, बासवपुराण और पंडिताराध्या चरित्र अत्यधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। शैवमत के कवियों ने साहित्य की अपेक्षा अपने धर्म का अधिक ध्यान रखा है और विषय-वस्तु का चुनाव करने में, भाषा के प्रयोग तथा छन्दों को चुनने में इन लोगों ने बड़ी स्वच्छन्दता बरती है कुछ हद तक यही कारण है कि अभी हाल तक भी विद्वानों ने शैव-साहित्य पर अधिक ध्यान नहीं दिया है। शैव कवियों ने तेलुगु में कई नए रुपों का प्रवर्तन किया। शातक, उद्धाहरण और गद्य उनमें से कुछेक हैं।

14वीं और 15वीं शताब्दी में तेलुगु कवियों ने कुछ प्रसिद्ध काव्यों का अनुवाद आरम्भ किया और प्रमुखतः मूल वृत्तात्मक कविताओं का सृजन किया। इनमें से कुछ उत्तम काव्यों के नाम हैं—द्विपद में रंगानाथरामायण, भास्कर तथा अन्यों द्वारा लिखित भास्कर रामायण, मनचना की केयूरबाहु चरित्र, जक्कना काविक्रमार्क, चरित्र, अनन्तमात्य का भोजराज्य, गोवर्ण का हरिश्चन्द्र द्विपद। इस युग में विख्यात कवि श्रीनाथ और पोतना हैं। श्रीनाथ महान कवि और द्विपद विद्वान् दोनों ही हैं। उसने प्रसिद्ध नीतिज्ञ गौडा डिंडिमभट्ट को परास्त किया और वह देव-आर्य के दरबार में कनकाभिषेक से सम्मानित हुआ। निःसन्देह उसकी अनेक कृतियां अनुवाद ही हैं, परन्तु अनुवाद कला में, जो निपुणता उसने दर्शाई है, वह अद्‌भुत है। उसके द्वारा रचित "शृंगार नैषध" तेलुगु साहित्य की उत्तम कविताओं में से एक है और उसकी विद्वत्ता तथा काव्य-प्रतिभा का भली-भांति परिचय देती है। यद्यपि इसका शाब्दिक : अनुवाद किया गया है, तो भी समीचीनता बनाए रखने के

लिए उसने कहीं कहीं कुछ छोटे-मोटे परिवर्तन किए हैं। अनेक स्थानों पर उसका अनुवाद मूल से भी अच्छा है। उत्तरवर्ती कवियों पर उसका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है। पोतना एक महान् भक्त है और उसने तेलुगु में भागवत का अनुवाद किया है। उसके स्वाभाविक वर्णन तथा जिस प्रकार की रचना का कार्य उसने हाथ में लिया, इन दोनों ने मिल कर उसकी रचना में पूरी तरह मधुरता भर दी है और यह तेलुगु भाषा में उसकी जन्मजात mallifluouness का प्रमाणस्वरूप है। बासमस्कंध में, वह अननुकरणीय ढंग से गोपिकाओं की मधुरा भक्ति का वर्णन करता है। सारा स्कंध गीति-काव्य जैसा लगता है, जिसमें उसने कई स्थानों पर अपनी निजी भक्ति-भावना का समावेश किया है। देश में उसकी रचनाएं बड़ी लोकप्रिय हैं और प्रत्येक शिक्षित उसकी शानदार रचनाओं में से कम से कम एक या दो पदों का अवश्य पाठ कर सकता है।

सोलहवीं शताब्दी में, तेलुगु साहित्य विजयनगर के महाराजाओं के संरक्षणाधीन पूर्णता के उच्चतम स्तर पर पहुंचा हुआ था और इस युग को तेलुगु साहित्य का स्वर्ण-युग कहा जाता है। सुप्रसिद्ध कृष्णदेवार्य स्वयं एक महान् विद्वान् और कवि था और उसने तेलुगु साहित्य में प्रथम श्रेणी के प्रबन्धों में से एक प्रबन्ध आमुक्त माल्यदा की रचना की थी। उसने अनेक विद्वानों और कवियों को संरक्षण प्रदान किया। प्रसिद्ध अष्टादिग्गज उनमें से ही थे। सामान्यतः इस युग को प्रबन्ध युग का नाम दिया जाता है, चूंकि इसमें बहुत प्रबन्ध लिखे गये थे। संस्कृत में प्रबन्ध काव्य का पर्यायवाची है, परन्तु तेलुगु में इसके अर्थ भिन्न हैं। प्रबन्ध एक विशेष प्रकार का काव्य है, जिसमें विषय-वस्तु प्रख्यात होती है, नायक धीरोदात्त होता है और मुख्य रस शृंगार होता है। इसमें पारस्परिक अठारह विवरण होते हैं, पांच या छः सर्ग होते हैं और शब्द तथा अर्थ दोनों में ही अलंकारपूर्ण आलंकारिक शैली का प्रयोग किया जाता है। इस युग के सुप्रसिद्ध प्रबन्धों में कुछ प्रबन्ध हैं—अल्लसानि पेद्दन का मनुचरित्रम्, मुक्कु तिम्मन का पारिजातापहरणम् तथा भट्टमूर्ति का वसुचरित्र। इन प्रबन्धों के प्रत्येक पद में महान् विद्वत्ता, असाधारण काव्य-प्रतिभा और उत्कृष्ट पद-योजना है। यदि कोई व्यक्ति तेलुगु साहित्य की वास्तविक सुन्दरता के दर्शन का इच्छुक है तो उसे इस भाषा के प्रबन्ध पढ़ने चाहिए। इनमें उस काल की भव्यता, लोगों के शानदार जीवन और उनके द्वारा कदम-कदम पर रखे गए उच्चस्तरीय रोमानी रुझान की प्रतिच्छाया मिलेगी। इस युग का एक और महान् कवि पिंगाली सुरना विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि उसने सामान्य मार्ग से हटकर कालपुराणोदय नाम का एक

प्रबन्ध लिखा, जिसे काव्यात्मक-उपन्यास कहा जा सकता है। इसमें कवि ने ही पूरी तरह से कहानी की रचना की है। उसके द्वि-अर्थी काव्य राघवपाण्डवीय तथा नाटकीय प्रबन्ध प्रभावती प्रद्युम्न में उसकी प्रतिभा और मौलिकता भी प्रदर्शित हुई है। तेलुगु में प्रबन्ध चम्पू काव्य होता है, जिसमें महाकाव्य और नाटक की विशेषताएं संयुक्त रहती हैं।

विजयनगर साम्राज्य के पतन के बाद साहित्यिक गतिविधियों का स्थानान्तरण दक्षिण की ओर हो गया था, विशेष रूप से मदुरइ और तंजौर में ये गतिविधियाँ ज्यादा होती थीं। इन राज्यों के नायक कला और साहित्य के महान् प्रेमी थे, और उन्होंने हर सम्भव तरीकों से कलाकारों, कवियों और विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया। कविगण काव्य रूप वाले प्रबन्ध लिखते रहे, परन्तु ये प्रबन्ध पिछले युग में लिखे गए प्रबन्धों की तुलना में निम्नस्तरीय थे। कवियों ने उपदेश की अपेक्षा आनन्द को अधिक महत्त्व दिया। प्रतीत होता है और अनैतिक कथानकों के वरण में भी उन्हें हिचकिचाहट नहीं हुई जैसे सारंगधर की कथा, तारा और शशांक का प्यार करना तथा अहल्या और संकरान्दना का किस्सा। उन्होंने शृंगार रस के विभिन्न पहलुओं के वर्णन करने में औचित्य की सीमाओं का उल्लंघन कर दिया। शायद यही कारण है कि कुछ आलोचकों ने इसे पतन-युग का नाम दिया है। परन्तु इस युग की अन्य विभिन्न रचनाओं को देखते हुए, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह युग पिछले युगों की तुलना में अधिक प्रगतिशील रहा है। इस युग में नए प्रकार के अनेक साहित्यिक रूपों का समारम्भ हुआ और धीरे-धीरे आधुनिक युग में उनका परिमार्जन हुआ। इनमें से यक्षगान, गीति और गद्य रचनाएं, अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यक्षगान या जक्कल पाटलु देशी नाटक हैं, जिनमें नृत्य और संगीत प्रधान होते हैं। इस काल में असंख्य यक्षगान लिखे गए और अभिनीत किए गए। त्यागराज और क्षेत्रीय संगीत के आचार्य थे और उन्होंने क्रमशः कई हजार कीर्तनों तथा पदों का गान किया, जो भावगरिमा और भाषा की मधुरता दोनों दृष्टियों से विख्यात थे। कई लेखकों ने गद्य रचनाएं भी लिखीं तथा रामायण, भारत और भागवत को इसी काल में गद्य रूप दिया गया। दक्षिण के कवियों में से सारंगधर चरित्र और विजयविलास के लेखक चेमाकुरु वेकंट कवि का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जो शब्द और भाव का चमत्कार पैदा करने में कुशल है।

दक्षिणी काल में कुछ प्रसिद्ध कवि आंध्र प्रदेश में रहते थे और उन्होंने कई प्रबन्धों की रचना की। सुविख्यात योगी वामन इसी काल का था और उसने कई हजार आटवेलदुलु लिखे, जो इस प्रदेश में बड़े लोकप्रिय रहे।

उसकी शैली जितनी सरल है उतनी ही शक्तिशाली और उसके पद नैतिकता, हास्य, उस समय की सामाजिक बुराइयों की आलोचना और मुहावरेदार प्रयोगों से भरे पड़े हैं। इस युग के अन्य उल्लेखनीय नाम कूचिमंचि तिम्म कवि, अडिदम् सूरकवि और कंकटि पापुराजु हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी तक तेलुगु कविता के स्तर में धीरे-धीरे ह्रास होना शुरू हो गया। इसका मुख्य कारण यह था कि अनेक कवि शब्दालंकार और शब्द चित्र पर लट्टू हो गए और उन्होंने रसों की मूल अभिव्यक्ति करने का प्रयास कभी नहीं किया। वे मनुचरित्र और वासुचरित्र का अंधानुकरण कर रहे थे और उनमें मौलिकता का बड़ा अभाव रहा। स्वर्गीय वीरेशलिंगम् पंतुलु द्वारा रचित संक्षिप्त कविता में वर्णित सरस्वती और नारद के बीच हुए वार्तालाप से उस विषयावस्था का स्पष्ट विचार प्रगट होता है, जिसमें उन दिनों तेलुगु काव्य-प्रतिभा का ह्रास मिलता है। अंग्रेजी की शिक्षा पाए हुए नवयुवकों और विद्वानों ने इस स्थिति को भली भांति समझा और तेलुगु कविता में प्राण और जीवन फूंकने के लिए नए तरीके खोजने का प्रयत्न किया और उनके प्रयासों से नवीन प्रवृत्तियों ने जन्म लिया, जिसके फलस्वरूप आधुनिक तेलुगु कविता सामने आई, जो आज दिखाई पड़ती है।

जब कि पुरातनपंथी विद्वानों और कवियों ने परम्परावादी कविता लिखना जारी रखा, वहां वे नवयुवक, जो अंग्रेजी साहित्य से परिचित थे, शैली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ और अन्य कवियों का अनुकरण करने लगे और एक नए प्रकार की रोमानी कविता लिखने लगे, जिसे प्रायः भावकवित्वम् कहा जाता है। यह अत्यधिक गीतिमय होती है और विषय वस्तु में प्रकृति का प्रतिपादन करती है। इस प्रकार की उत्कृष्ट कविता की रचना श्रीकृष्ण शास्त्री और अन्य इसी प्रकार के कवियों ने की। श्री रायप्रोलु सुब्बाराव ने ललिता, त्रिणांककनम् आदि जैसे लघुकाव्य अथवा, छोटी कविताएं लिखीं, जिनमें अनावश्यक वर्णन नहीं किया गया और एक नए प्रेम-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। पृथक आंध्र प्रान्त बनाने के राष्ट्रीय आन्दोलन और संघर्ष ने भी कुछ कवियों को प्रभावित किया, जिन्होंने रामप्रताप चरित्र, शिवभादतम्, आंध्र प्रशस्ति, आंध्र पुराणम् और राष्ट्रगानम् जैसी अच्छी कविताएं लिखीं, जो पाठकों में राष्ट्रीय और प्रान्तीय भावनाएं जागृत करती हैं। महात्मा गांधी के व्यक्तित्व ने भी अनेकानेक कवियों को प्रभावित किया और भगवान बुद्ध के सिद्धान्तों से उनके सिद्धान्तों के साम्य के कारण उन्हें बुद्ध या उनके शिष्यों को नामकमान कविताएं लिखने का जोश आया। कट्टुरी और पिंगली द्विकवियों का सौन्दरानन्दम् इस प्रकार की कविताओं में उत्तम है। ग्राम्य कविता लिखने का भी

प्रयास किया गया और स्वर्गीय अदावाई बापीराजु और कवि कोंडला वेकंटाराव ऐसे कुछ नाम हैं, जिनका इस प्रकार की कविता से संबंध है। दुव्वूरि रामिरेड्डी ने ग्राम्यजीवन के वर्णन की कविताएं लिखीं और उनमें से कृष्णवालुडु एक है। स्वर्गीय जी० वी० रामामूर्ति पंतुलु, ने जो एक महान् विद्वान् और भाषा शास्त्री था, व्यवहार भाषोदयम् की रचना प्रारम्भ की और इस बात की जोरदार वकालत की कि सभी प्रकार की रचनाओं में बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए और बहुत से अनुयायी इस आन्दोलन से आकृष्ट हुए। श्री गुरुसद अप्पाराव पंतुलु ने भी बोलचाल की भाषा में कविता लिखी और अनेक नवलेखकों के सामने आदर्श प्रस्तुत किया। यांकि पाटलु, किन्नरसाति पाटलु, और शिवताण्डवम् उन प्रसिद्ध गेय गीतों में से हैं। जिनमें बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है। ऐसे कुछ कवि हैं, जिन्होंने गेय काव्यों में साहित्यिक तेलुगु का भी प्रयोग किया है और उनमें से श्रीनारायण रेड्डी एक हैं। आधुनिक कविता के नवीनतम विकास में प्रगतिशील कविता या अभ्युदय कविता आती हैं और "श्री श्री" इस प्रकार की कविताओं में सर्वाग्र है, जिसके अब विभिन्न रूप हो गए हैं। कुछ लोगों ने बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हुए छन्दबद्ध कविताएं लिखी हैं और कुछ ने छन्दहीन। इसमें अतियथार्थवाद, अनुवाद और मनोविश्लेषण तथा अन्य वादों का मुक्त रूप से समावेश रहता है और इस प्रकार की कविता में कोई निश्चित प्रणाली या रूप नहीं मिलता है। कहीं-कहीं कतिपय अच्छी कविताओं के होते हुए भी ऐसा प्रतीत होता है कि धीरे-धीरे इस प्रकार की कविताएं समाप्त होती जा रही हैं।

आधुनिक युग में ऐसे अनेक लोग हैं, जिन्होंने पारम्परिक मार्ग का अनुशरण किया है तथा तिरुपति वेंकट कबुलु, श्रीपद कृष्णमूर्ति शास्त्री, कविलकोलुन, सुब्बाराव, जनमांची शेषाद्रि शर्मा उनमें से केवल कुछ ही नाम हैं। इन सभी ने मौलिक या अनुवाद के रूप में असंख्य रचनाएं की हैं। आधुनिक काल में कुछ ऐसे लोग हैं, जो नव-क्लैसिक नाम की प्रणाली का अनुसरण करते हैं; यदि इस प्रणाली का भी सत्यनिष्ठा से अनुसरण किया जाता तो इससे हमारा साहित्य समृद्ध और लाभप्रद हो सकता था। श्री विश्वनाथ काटूरि, पिंगली, गडियारम्, जाशुआ, मधुनापतुंलु और अन्य ऐसे कई व्यक्ति इसी मत से सम्बद्ध हैं और उनकी रचनाएं हमारे साहित्य की वास्तविक भूषण हैं। श्री सीतारामभूर्ति ने गांधी जी की आत्मकथा को "आत्म कथा" के नाम से तेलुगु कविता में अनूदित किया।

आधुनिक युग में नाटक, उपन्यास, लघुकथा, निबन्ध और आलोचना

पूर्णता के उच्च स्तर पर पहुंच गए, हालांकि उनका प्रारम्भ केवल एक शताब्दी पूर्व ही हुआ था। पहले तेलुगु नाटक का प्रारम्भ संस्कृत नाटकों के अनुवाद से हुआ; बाद में ऐतिहासिक, पौराणिक तथा सामाजिक विषय-वस्तु वाले मौलिक नाटक लिखे गए। धर्मवरम् रामकृष्णाचार्य, वीरेश लिंगम् पंतुलु, वेदम् वेकंट-राय शास्त्री, पनुगंटि, तिरुपति वेकंटकावुलु वड्डादि, चिलकमूर्ति, बलिजेयपल्ली और गुरज़ाड ने अनेक मौलिक नाटक और अनुवाद लिखे, जो बड़े लोकप्रिय हुए हैं। मौलिक नाटकों में प्रतापरुद्रियम्, कन्यासुल्कम् पाण्डव विजयोद्योग-मुलु, हरिचन्द्र, गयोपाख्यानम और विषाद सारंगधर सर्वोत्तम माने जाते हैं। आजकल नाटककारों ने बड़े नाटक लिखना छोड़ दिया है। केवल एकांकी नाटक पर्याप्त लिखे जाते हैं। श्री पी० वी० राजमन्नार, विश्वनाथ, कविराजु' चिंता दीक्षितुलु, आजेय, बुच्चिबाबू और नार्ल द्वारा लिखे गए एकांकी देश में बड़े लोकप्रिय हुए हैं। बमिदीप्ति ने अनेक हास्यप्रदान नाटक लिखे जिन्हें कई बार अभिनीत किया गया। श्री शिवशंकरास्वामी ने पहले-पहल गेयनाटिकाएं लिखी और उसकी रचित दीक्षितदुहिता और पद्मावती चारण, चारण चक्रवर्ती उनमें से सर्वोत्तम हैं। नवयुवक नाटककारों में श्री नारायण रेड्डी और रजनी ने भी कुछ श्रेष्ठ गेयनाटिकाएं लिखीं और ऐसे बहुत से नाटककार हैं जिन्होंने रेडियो के लिए अच्छे एकांकी लिखे हैं।

वीरेशलिंगम् पंतुलु का राजशेखर तेलुगु में प्रथम अच्छे उपन्यासों में कहा जाता है, हालांकि इस दिशा में पहले भी वस्तुतः प्रयास किए गए थे। तेलुगु में बहुत से अच्छे उपन्यासकार हैं और इनमें चिलकमूर्ति, केतवरपु वेकंट-शास्त्री, वेकंट-पार्वतीश्वर कवुलु, विश्वनाथ, अडिवि बापिराजु, गोपीचंद, बुच्चि-बाबू, पोतुकूचि, नोरी नरसिंहम्शास्त्री और वलिवाद कांताराव विशेष उल्लेखनीय हैं। फिर इनमें से विश्वनाथ के उपन्यास तो बहुत उच्चस्तरीय हैं। मौलिक उपन्यासों के अलावा, बहुत से अन्य उपन्यास अंग्रेजी, हिन्दी और बंगला से अनूदित किए गए। लघुकथा के क्षेत्र में भी तेलुगु लेखकों ने अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की है। गुरुजाद, श्री माडपाटि हमुमन्तराव पंतुलु, विश्वनाथ, शिव शंकरस्वामी, श्रीपद सुब्रह्मन्य शास्त्री, वेलूरि शिवरामशास्त्री, चिंता दीक्षितुलु, करुनाकुमार, चलम्, कोडावेटिगंटि, मुनिमाणिक्यम, गोपीचंद मोक्क-पति नरसिंह शास्त्री, बुच्चिबाबू और राजाराम तेलुगु के सर्वोत्तम लघु-कथा लेखकों में से हैं। श्री पालागुम्मी पद्माराजु को विश्व लघु-कथा प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ है। अंग्रेजी, हिन्दी और बंगला से कई लघु कथाएँ अनूदित हुई हैं।

प्राचीन तेलुगु कवियों में से अनेक कवि महान विद्वान् भी हैं। उन्होंने

अपनी विद्वत्ता का परिचय द्वयर्थी कविताओं की रचना के द्वारा दिया है तथा ऐसी कृतियां प्रस्तुत की हैं, जिनमें बिना तत्सम मिश्रित अच्छा तेलुगु का प्रयोग किया गया है। तेलुगु के लगभग 2000 शतक हैं और उनमें अद्भुत वैविध्य के दर्शन होते हैं। सामान्यतया ये शतक कवियों ने अपने काव्य-काल के आरम्भ में या अंत में लिखे हैं तथा भक्ति, नैतिक उपदेश और दर्शन से परिपूर्ण हैं। शतक बहुत लोकप्रिय हैं और इनमें अलग-अलग समयों में तेलुगु लोगों के जीवन का उद्घाटन किया गया है। तेलुगु भाषा लोकगीतों में भी बड़ी समृद्ध है। यद्यपि बहुत समय तक इसके प्रति उदासीनता रखी गई है, परन्तु अपनी आंतरिक श्रेष्ठता के कारण यह भाषा जीवित रही और अब अनेक विद्वानों का ध्यान आकृष्ट कर रही है। तेलुगु लोकगीत सरल मुहावरेदार भाषा, सुन्दर विचार और सौम्य भावनाओं से भरे पड़े हैं और शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही वर्गों के प्रिय हैं।

प्रारम्भिक दिनों में तेलुगु भाषा पर संस्कृत का प्रभाव रहा है और आज इस पर अंग्रेजी, हिन्दी और बंगला भाषाओं का प्रभाव है। तेलुगु साहित्य अपने-आप में बड़ा समृद्ध है, परन्तु अन्य भाषाओं के उत्तमोत्तम साहित्य से ग्रहण करने में संकोच नहीं किया है। अंग्रेजी और तेलुगु शब्दों को तेलुगु में अनूदित किया जा रहा है और इसे और अधिक समृद्ध बनाया जा रहा है। अब तेलुगु में श्रेष्ठतम हिन्दी उपन्यास, नाटक और लघु कथाएं उपलब्ध हैं और हमारे लेखक हिन्दी की श्रेष्ठतम कविताओं को भी अनूदित करने का प्रयास कर रहे हैं।

इस लेख को समाप्त करने से पूर्व मैं तेलुगु के बारे में कुछ शब्द कह दूं। तेलुगु विद्वान् यह जानते हैं कि जीवित भाषा में, यदि प्रतिदिन नहीं, तो कम से कम प्रतिवर्ष तो परिवर्तन होते ही रहते हैं। लोगों के मार्गदर्शन के लिए नए व्याकरण लिखे जाने चाहिए, जिनमें शब्दों और रूपों का क्रमिक उद्भव और विकास दिया जाए। हमारे पास ग्यारहवीं शताब्दी से अब तक के ऐसे व्याकरण उपलब्ध हैं। हमारी वर्णमाला में 56 वर्ण हैं, संस्कृत वर्णमाला से छः वर्ण अधिक हैं और तेलुगु लोगों के स्वर-संघात इन सभी वर्णों का स्पष्ट उच्चारण करने के अभ्यस्त हैं। इसी कारण तेलुगु लोग वैदिक मन्त्रों का गान ठीक-ठीक स्वराघात और उच्चारण के साथ कर सकते हैं। प्रकृति रूप से भाषा संगीतमय है तथा पोतना के पद या त्यागराज के गीत संगीत की अपनी पूर्ण सुग्राह्यता से इस बात का पर्याप्त प्रमाण हैं। इसी कारण दक्षिण के संगीतज्ञ, त्यागराज के गीतों की उपेक्षा नहीं कर सकते, चाहे उनकी मातृभाषा कोई हो और चाहे गीतों का अर्थ समझने की क्षमता कितनी ही हो। कहा जाता है

कि सुप्रसिद्ध दक्षिण के विद्वान् अप्पय दीक्षित ने "आंध्रत्वपांध्रभाषाच नाल्पस्य तपसः फलम्" श्लोक में तेलुगु प्रदेश और तेलुगु भाषा की प्रशंसा की है। इस श्लोक का अर्थ है कि आंध्र में पैदा होना तथा आंध्र भाषा बोलना वस्तुतः एक वरदान है, जो महान् तपस्या के बिना सम्भव नहीं हो सकता। यह साक्ष्य इस कारण और भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह एक अ-तेलुगु भाषी विद्वान का कथन है।

—डॉ० डी० वेकंटावधानी

नागानन्दम्

•

नन्नय्य भट्टु
(990-1060)

1. हे जनमेजय। तुम चन्द्रवंशभूषण तथा राजर्षि हो। धरती की सारी प्रजा का पालन धर्मदृष्टि के साथ किया करते हो। यही नहीं, स्वीय सदगुणों से तुम राजा युधिष्टिर, नाभाग, भगीरथ, दशरथ, मांधाता, श्रीरामचन्द्र महाराजा रघु तथा अर्जुन जैसे पूर्व राजन्यों के सदृश हों। समस्त जगत् में तुम विख्यात हो।

2. पाण्डव वंश में जन्म लेकर, राज्यलक्ष्मी से शोभित होते हुए पृथ्वी-राज्य-भार का वहन करते हो। यज्ञ-यागों में प्रवृत्त होकर अभीष्ट धन देने के कारण, ब्राह्मणोत्तम अत्यंत संतुष्ट हुए हैं।

3. हे कुरुवंश के आभूषण वास्तव में, राजा नल का किया हुआ यज्ञ राजा युधिष्ठिर के द्वारा समाचरित राजसूय यज्ञ, प्रयाग में संपन्न प्रजापति-यज्ञ, यम का किया हुआ यज्ञ, कृष्ण के द्वारा संपन्न यज्ञ, चन्द्रकृत यज्ञ, तथा तुम से संपन्न अत्यंत मनोज्ञ यज्ञ अपनी महिमा में एक रूप है।

4. इस क्रतु के ऋतित्वज, सभी विद्याओं में ब्रह्म के समान है। प्राची-दिशा के अधिनाथ इन्द्र के क्रतुओं में सम्मिलित ऋत्विजों से भी महिमा में अधिकतर विश्रुत हैं। ये महानुभाव, यज्ञ-प्रयोग-विधि-ज्ञान के भण्डार हैं। उत्तम बुद्धि से शोभित हैं। जगतप्रसिद्ध तपोधनी हैं तथा निग्रहानुग्रह-समर्थ है।

5. कृष्णद्वेपायन, विद्वानों में अग्रगण्य हैं। उनकी तेजोमूर्ति तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वे अपने पुत्र, शिष्यगण तथा ब्राह्मणवृंद के साथ पधारे हुए हैं। सज्जनों के लिए वंदनार्ह भगवान व्यास, इस क्रतु के सदस्य हैं। हे कौरव-

वंशभूषण जनमेजय । तुम्हारे भाग्य को क्या कहना है । राजाओं में तुम साक्षात विष्णु-रूपी हो ।

6. हे चन्द्रवंशमण्डन ! अग्निदेव आर्तिहरण-क्रिया में अभिरत हो कर तुम्हारे सान्निध्य में रहते हुए, प्रादक्षिणावर्त-शिखाग्र-हस्तों से महाब्राह्मणों के द्वारा दिव्यमंत्रों के साथ दिये जाने वाले हव्य-द्रव्यों को स्वीकार करते हुए तुमको सदैव सफलीभूत-मनोरथों को तथा पुष्पफलों को दिया करे ।

7. हे अभिमन्यु के वंशधर ! हे सत्य-वाक्य-विभूषित ! अपने क्रोध को उपसंहृत करके दयापूर्ण-स्थिति में, तुम मेरे बंधुसमूहों के मानसिक ताप दूर करने के लिए विशाल-विश्व-नुत सर्पयाग को त्याग कर सर्पकुल की रक्षा करो न ?

ययाति-नीति

•

नन्नय्य भट्टु
(990-1060)

1. तुमको ज्ञानीपुरुषों के आचरण के संबंध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। सज्जनों को गोष्ठियों में सम्मिलित होते हुए, धर्म पद्धति से अवगत होना चाहिए और ज्ञान धर्म का समंजस बुद्धि के साथ आचरण करना चाहिए।

2. पात्र पुरुष को दिया जाने वाला धन ही धन है। अतः योग्य व्यक्तियों को दान में धन देते रहो। दूसरों के समक्ष प्रार्थी मत बनो। तुम्हारे मुखापेक्षी बनकर जो प्रार्थीजन आते हैं उनको निराश न करके सभी प्राणियों के प्रति प्रेमभाव रखते हुए उनकी कामनाओं को पूरा करो।

3. सभासमाजों में, धर्मपूर्णवाणी में, ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जो मन के लिए हितकर भी हो, प्रियकर भी हो, जो तथ्य हो, अमोघ हो, मधुर एवं मितसम्मित हो।

4. ऐसे दुर्जन रूपी योद्धाओं के सहवास में नहीं रहना चाहिए, जो अपने वदन रूपी धनुष से छूटे हुए वाग्रपी तेज बाणों से दूसरों की मार्मिक भावनाओं को छेद कर ठेस पहुंचाते हैं। हृदय में सदैव करुण, आर्जव, इंद्रियजय, सत्य, शम, तथाशौच नामक गुणों को प्रतिष्ठित करना चाहिये। अरिषड्वर्ग पर शुद्ध शांत बुद्धि से जय पाना चाहिए। मद, काम, क्रोध, मत्सर, लोभ, मोह, नामक आंतरिक सहजात शत्रुवर्ग को जो पुरुष जीत लेता है, वही बाहर के शत्रुसमूह पर अनायास ही जय पा लेता है।

उपदेश

•

तिक्कन सोमयाजी
(सन् 1200-1280 ई०)

1. मेघगंभीर स्वर में श्रीकृष्ण ने राजा धृतराष्ट्र से इस प्रकार कहा ताकि उपस्थित सभी सज्जन सुन सकें। उस समय उनकी दंत-कांति मुखमण्डल से निर्गत हो रही थी।

2. हे राजन। ऐसा कोई कर्तव्यधर्म नहीं है जिनको तुम नहीं जानते हो, फिर भी मैंने विचारा कि जो स्वीयजन है उनको न्यायसंबंधी हितबोध करना ही चाहिए। इस आशय से मैं आया हूं। यह मेरा आचरण सचमुच भरतवंश के हितार्थ होगा, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

3. दूध और पानी की भांति मिलजुल कर घुलमिल कर रहना पाण्डव और कौरवों का कर्तव्य है। इस दिशा में तुम इन दोनों को एकीकृत करो। हे कुरुनाथ। वास्तव में, तुम्हारी दृष्टि में इन दोनों में क्या भेदभाव हो सकता है?

4. भरतवंश अपनी धर्मतत्परता, न्याय, सत्य, मैत्री, करुणा आदि के लिए बहुत ही प्रसिद्ध हैं। उस वंश में उत्तम वंशधारी में तुम और तुम्हारे अनुज सर्वोत्तम हैं। यही नहीं, तुम्हारे पुत्र भी यशोधुरंधर एवं शुभशील हैं। वंशानुगत चरित्र की इस स्वस्थ परम्परा में अब क्यों अपवाद पैदा होवे।

5. इस वंश के लिए तुम ही आस्पद हो। अतः इसमें किसी वर्ग का सद् या असद् व्यवहार का दुष्परिणाम अथवा सुपरिणाम का भी भोक्ता तुम्हीं बनते हो। हे कौरव वंशाग्रणी! अतः तुम्ही को सदशय के साथ आन्तरिक मैत्री एवं वाह्य सदाचार—इन दोनों में जनप्रशंसनीय एक रूपता लानी चाहिए।

6. सुयोधन आदि ये कौरव धर्मसंयुक्त नहीं हैं। इस प्रकार के रवैये से

जीवन में महार्थ सिद्धि से वंचित रहेंगे । यह हमारी वंशमयर्यादा के अनुरूप नहीं हैं, यह विचार इसके मन में उठता ही नहीं । प्रत्युत, बड़ी निर्ममता के साथ अवगुणों से बाज न आए, ये कुत्सित चेष्टाएं किया करते हैं । इस कारण बंधुवर्ग को बड़ी ठेस लगती है ।

7. कौरव एवं पाण्डव आपस में समझौता करके शान्ति को प्राप्त करके रहें तो अच्छा है । न केवल उनके हितार्थ अपितु तुम्हारे लिए, मेरे लिए, सारे वंश तथा राजवृंद के लिए, वास्तव में सारी जाग्रति के लिए उन दोनों को शांतिमार्ग अपनाना उचित होगा । यदि युद्ध ही छिड़ जावे तो महती विपत्ति पैदा होती है । एतदर्थ हे राजश्रेष्ठ धृतराष्ट्र । इन सभी विषयों पर ध्यान देकर इन दोनों में अवश्यमेव संधि की स्थापना करो ।

8. कौरवों में भीम तथा अर्जुन से युद्धभूमि में पराक्रमातिक्रमण करने वाले कितने हैं ? उसी प्रकार यहां के भीष्म तथा द्रोण जैसे धनुर्धरों की वाणवारिधि को पार करने वाले कितने हैं, युद्ध में मरने की अपेक्षा आपके लिए ये दोनों जल-स्रोत बन कर रहना समीचीन है न ? अत: किसी न किसी प्रकार इनमें शांति की स्थापना करो ।

9. विश्व के विभिन्न राजा तुम्हारे चरण-पीठों की सेवा करने योग्य विधान से यदि तुम समुद्रमुद्रित समग्र धरा पर प्रशासन करते तो कितना अच्छा होता । यह कहां तक उचित है कि कहीं माता अपने संतान के विरोध में खड़ी हों ?

10. हे राजन् ? यदि इस समय तुम उपेक्षा करो तो, न केवल कौरवों का, न केवल पाण्डवों का, अपितु विश्व की समग्र जनता के प्रति पापकर्म-करने वाला सिद्ध होते हो तथा विश्व को महती क्षति उठानी पड़ेगी ।

11. हे राजन् ! सोचो तो यह किस प्रकार तुम्हारे लिए वांछनीय होगा कि कौरव अथवा पाण्डवों में किसी को भी मृत्यु अथवा दु:ख पहुंचे । किसी भी विकल्प में तुमको दु:ख ही भोगना पड़ेगा ।

12. ये कौरव और वे पाण्डव दोनों पंडित हैं, विक्रमी हैं, तथा बाहुव में दुर्वार हैं । पारस्परिक कलह के करण, नष्ट होने जा रहे हैं । इस अवसर पर तुम कैसे चुप रह सकते हो ? क्रूर-कर्कश वाण आदि के घुसने के कारण, इनके ये सुन्दर शरीर धराशाही होंगे । हायरे ? उस दृश्य को क्या तुम देख सकते हो ?

13. हे वसुमतीश ! तुम्हारा कर्तव्य है कि इन दोनों पक्षों को हानि न होने दे । तुम्हें ऐसा आचरण करना उपयुक्त होगा ताकि तुम्हारा प्रभाव, नीति तथा शान्ति की सब जन प्रशंसा करें ।

बेज्ज महादेवी

•

पाल्कुरिकि सोमनाथुडु
(13वीं शती)

और भी सुनो। बेज्ज महादेवी ने तो शिवजी के चरण कमलों में, अपने हृदय को समर्पित किया है।

'जिनके सभी नियोग और सब बांधव हैं, ऐसे शिवजी की माता न होना बड़ी विचित्र बात है। बग़ैर माता के कैसे शिव ने जन्म लिया है? त्रैलोक्यनाथ की माता की कहीं मौत तो नहीं हो गयी! वाह रे! किया क्या जाय! माता की मृत्यु पर ही तो मेरी यह हालत हुई। सभी का मातृ-वियोग-दुःख एकसा होता है। यदि शिवजी की माता होती तो, उसे क्यों ऋषि बनने देती? माता ही होती तो क्यों ये जटाएं उलझी पड़ी रहतीं। माता ही होतीं तो क्यों कर विषपान करने देती? माता ही हो तो चर्मधारण करने क्यों देती, सर्पो से क्यों अलंकृत होने देती, भस्म लेपन क्यों करने देती। भीख मांगने क्यों भेजती। श्मशानवाटिका में पुत्र को क्यों रहने देती? मातृ-हीन पुत्र है अतएव इतनी विपदाओं का शिकार हुआ। माता हो तो बात ही दूसरी होती। स्तन्य देकर मक्खन खाने को देती। दूध समय समय पर पिलाती रहती। भूख लगने पर दूध देती, और पालन पोषण भी खूब किया करती। मातृवंचित होकर भी, शिवजी इतने बड़े हुए। यदि माता ही रहती तो उसकी परवरिश में और कितने बड़े हुए होंगे। विवाहों में, व्रतों में पर्वदिनों पर, देखरेख करने वाली माता भाग्य में नहीं रहती तो बच्चे मचलते रहते हैं। अतः इनकी उपेक्षा कदापि नहीं करनी चाहिए। मैं स्वयं माता का स्थान ग्रहण करके हर जी की देखरेख किया करूंगी। वास्तव में बग़ैर संकोचभाव के जो देखरेख किया करती है, वही तो माता है। इस प्रकार सोच विचार

करते हुए, बेज्जमहादेवी स्वयं शिवजी की मातृस्पानीया बनी, और परमेश्वर शिवजी को अपनी संतान समझी। निश्चल मुग्ध भाव से वह शिव की प्रशंसा पुत्ररूप में करने लगी। बेज्जमहादेवी के द्वारा समचरित बाल्योपचारों से शिवजी संतुष्ट हुए। इन पर प्रसन्न होने की इच्छा से शिवजी ने एक दिन दूध पीना और मक्खन खाना छोड़ दिया था। इस प्रकार बेज्जमहादेवी बहुत ही चिंतित हो उठी। मुंह की बीमारी की वजह से बालक शिव मुख नहीं खोलता था "मेरे लाल। मेरे बेटे! मेरे मुन्ने! क्यों तू स्तन्य नहीं पीता। बातों से क्या होता? तेरी विपत्ति को मैं अपनी आंखों से नहीं देख सकती। तुम पर इसी समय अपने प्राणों को उत्सर्ग कर दूंगी"। इस प्रकार कहते हुए अपने सिर को तलवार के घाट उतारना चाहती थी कि शिवजी अपनी माता के समक्ष प्रत्यक्ष होकर खड़े हो गये और कहा "तुझे जो वर चाहिए मांगना। मैं दे दूंगा" "हे बेटे! मुझे न कोई चाह है न कोई कमी।" हे मेरे शिशु! तुम निरोगी एवं नित्य हो कर सुखी बने रहो। यही मेरे लिए पर्याप्त है। जन्म देने से भी बच्चों का लालनपालन करने में प्रेम का मोह अधिक तीव्रतर होता है। अतः तुमको आंखें भर अवलोकन करते हुए यहां रहना ही मेरी मनोकामना है।" यह सुनकर शिवजी का मुखारविंद मंदहास सुन्दर हुआ। उन्होंने माता का परिष्वंग करते हुए बोले "तीन लोकों की माता जो मैं हूं, तुम ऐसी मेरी माता हो। हे माता! तुम जैसी माता के रहते हुए मुझे बीमारियां कैसे घेर सकता हैं?" इन वाक्यों के साथ शिव ने बेज्जमहादेवी को नित्यत्व का वर दिया अनुपम एवं परम परानंद की मूर्ति की माता होने के कारण बेज्जमहादेवी 'अम्मव्वा' 'माता की माता' नाम से अभिहित होने लगी।

अविवेक

कवि मंचना
(चौदहवीं शती)

गार्ग्य नामक एक विप्र कई कष्ट झेलते हुए दुर्गा की पूजा करने लगा। उस समय दुर्गा देवी उसे देख कर अबाधगति से यों बोली —

"कोई वर मांगो" ये शब्द सुनते ही ब्राह्मण ने घुटने टेक दिए और उत्कट वांछा के साथ मांगा कि संजीवनी को कृपा करके मुझे दे दो, हे परमेश्वरि !

जो संकल्प मात्र से ही अपने हस्तकमल में जुट गये हैं, वड़ी दया के साथ देकर देवी ने कहा "इन पत्तों के रस को ऊपर ही ऊपर छिड़कने से शवों में प्राण-संचार होगा। सर्वप्रथम, रूप, बल एवं तेज समाविष्ट होंगे तदनन्तर शव पूर्ववत् चलने फिरने लगेंगे।"

"ये पत्ते न तो सूखते हैं न कम होते हैं" चैंडिकाने इन शब्दों के साथ पत्तों को दिया और तिरोहित हो चली। विप्र उन्हें पाकर आनन्द से भर गया। वह अपने नगर के समीप अकेले जाने लगा।

उस निर्जन स्थान में, उस बड़े जंगल में, सूखे पड़े एक बाघ के शव को झाड़ी के बाहर देखा। वह उसके समीप गया और अपने औषध के प्रभाव को परखने की दृष्टि से पत्तों को हाथ में पीसा तथा निकले हुए पर्णरस को उस शव पर बड़ी वेवकूफी दिखाते हुए निचोड़ा।

निचोड़ने से क्या कहूं ? अति भीषण दुस्सह व्याघ्र उसी समय उठ खड़ा हुआ मानों नींद से जाग पड़ा हो। उस बावले ब्राह्मण को एक ही प्रहार से मार डाला और निगल गया। देखो न ? हित-प्राप्ति के अनन्तर भी बुद्धि-हीन अभागी जन उसका सुफल नहीं प्राप्त कर सकते।

काशी से विप्रवास

•

श्रीनाथ

(1380-1450)

1. कमललोचन ! मनुज यदि कोई एक सोचे विचारे तो भगवान दूसरा कोई सोच रखता है। यह बात बिलकुल सच है। "काशी नहीं छोड़ूंगा इस विचार पर मैं अटल रहा। परन्तु दैव ने निर्दयता के साथ मुझे काशीधाम से निष्कासित किया ही था।

2. हे अंबुजाक्षि ! उस समय तो मैं मौन रहा। कहीं इस प्रकार के कर्म ऋषिजन योग्य हैं ? एक सांड़ दूसरे सांड़ से लड़भिड़ रहा था तो बीच की बछिया की सी दशा हुई।

3. यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। कहीं गोत्रारि (पर्वतों का शत्रु) इन्द्र पर्वतों से डरता है ?

कहीं प्रलयवेता में झकझोर देने वाला भीषण प्रभंजन पर्वत को नहीं दबा पायेगा ? सभी भूतों को अनुशासित करने वाले यमराज की शक्ति कहीं पर्वत के विषय में कुंठित हो जायेगी ?

अग्नि की दाहकशक्ति पर्वत के संस्तंभन के लिए समर्थ नहीं है।

रुद्र, आदित्य, तुषित एवं मरुदुगण आदि शेष देवतागण भी अपने आपमें इतने समर्थ हैं कि तीनों लोकों को निगल के उगल सकते हैं। क्या ये शक्तिशाली विभूतियां विंध्याद्रि के गर्वविजृंभण को दमित करने में समर्थ नहीं हैं ?

4. कामधेनु को मेरे घर में बांध रक्खा है। मेरे उद्यान मे कल्पवृक्ष रोपे गये हैं। एवं विध शक्तिशाली इन्द्र ने मुझसे प्रार्थना की तो मैं कैसे राजी हुए बिना रह सकता हूं।

5. ऋजुवार्ता के आधार पर ही तो, प्राचीन काल में मधु एवं कैटभ नामक दैत्य एक ही समुद्र में जा मरे। गरुत्मान ने भी केवल संकोचशीलता के कारण वनजाक्ष विष्णु को अपनी पीठ पर बिठलाया। स्वागत सत्कार के फल-स्वरूप ही तो चक्रायुध के दमन पर बलि पाताल-बिल में धंस गये।

विश्वास पर ही तो वृत्रासुर नामक राक्षस नेता इन्द्र के हाथों समुद्र में जा मरा। किसी का उपकार करने में यदाकदा हित भी पहुंच सकता है अथवा अहित भी। मन में हिम्मत कभी न हारना। पुरुष का धर्माचरण ही उसकी रक्षा करेगा। वास्तव में, ये सारी बातें क्यों? एकमात्र यशोलब्धि पर्याप्त नहीं है?

6. प्रतिदिन पुराण-मुख से हम सुना करते हैं कि काशी में सदैव बाधाएं उपस्थित होती रहती हैं। अब वह पुराण-श्रुति यथार्थ हुई है। हे किन्नरकंठि! इधर मैं अनुद्विग्नमनस्क होकर रहा रहा हूं कि अप्रत्याशित रूप में महान विघ्न-संचय मार्ग पर खड़े हो गये।

7. मेरे विषय में विश्वभर्ता काशी विश्वनाथ प्रतिकूल हुए हैं। नहीं तो किस प्रकार सकल कैवल्य-कल्याण-जन्मभूमि, काशीक्षेत्र को छोड़ जाने की विरह-वेदना घटित हो सकती है?

8. हाथ के कौर को दूर फेंक कर कोहनी को चाटने वाले छोटे नादान शिशु की भांति, भोग-मोक्षों के निधान काशीधाम को छोड़कर कोई कोई व्यक्ति ही दूसरे स्थानों में जा पहुंचेगा।

9. हिमवत्पर्वत से अवतरित होने वाली जह्नुकन्या को कभी हम छोड़ सकते हैं? जिनके नेत्र मंदारपुष्पों के मधुरस से घूर्णिल हैं, ऐसे बटुकनाथ को कभी भूल सकते हैं?

विघ्नरूपी तमश्छटा के लिए सूर्यरूपी कुंठिविधुनेश जो मंडूक-जठर हैं, कभी उनसे हम दूर हो सकते हैं?

मध्याह्नवेला में, अनूदिन प्राप्त होने वाली, श्री विशालाक्षी की अरुण-हस्तपल्लव की दी हुई भिक्षा किस प्रकार छोड़ी जा सकती है?

देवताओं की प्रार्थना पर मैं प्रतिश्रुत हो चुका हूं। अब कैसे बगैर गये रह सकता हूं। काशी जो पुण्यों की राशि है, तथा गुणरत्नों का क्षीर समुद्र है, उसे छोड़ कर मैं कैसे जा सकता हूं?

बलि की वदान्यता

•

बम्मेर् पोतन्न
(15वीं शती)

1. हे महात्मन् ! तुम सच बोले हो । गृहस्थ धर्म भी यही है । अर्थ हो, काम हो, यश हो अथवा वृत्ति हो, जो भी तुम प्रार्थना करते हो, मैं दूंगा । अर्थलोभ के कारण, याचकजन को कैसे टाला जा सकता है ? वचन देकर उसे टालने से बढ़ कर पाप कौन है ? क्या धरती माता ने पहले ब्रह्मदेव से कहा कि नहीं 'पुरुष जितना भी दुष्कर्मी हो, मैं उसे बर्दाश्त कर सकती हूं । परन्तु मैं सत्यहीन व्यक्ति को बर्दाश्त नहीं कर सकती।' युद्ध में बगैर पीठ दिखाए मृत होना तथा वचन को निभाना, इन दो धर्मों से बढ़ कर कोई अन्य हित-कार्य है क्या ?

2. किसान को उर्वराभूमि तथा अच्छे बीजों से बढ़कर क्या चाहिए ? उसी प्रकार यदि दाता को दान का अवसर, तथा दानाई पात्र मिल जावें तो वही सब कुछ है।

3. क्या नरेशों ने राज्यों पर प्रशासन नहीं किया ? उनमें से कोई इस लौकिक सम्पदा को समेट के जा सका ? उनका नामावशेष तक धरती पर है क्या ? शिबि आदि नरपालों ने यशः कामी होकर प्रार्थीजनों की कामनाओं की पूर्ति नहीं की ? हे भार्गव ! उनको आज तक कोई बिसार सका ?

4. अनन्त ऋतु-व्रतों से दृष्टिगोचर न होनेवाला विराट् मूर्ति, यकायक बोना होकर याचना कर रहा है । हे महानुभाव ! ऐसी स्थिति में यदि अभी-ष्टार्थ मैं दूं तो वह उचित ही है न ?

5. सर्वप्रथम श्रीदेवी की वेणी पर, क्रमशः शरीर पर, उत्तरीय पर, चरण-कमलों पर कपोल-तटि पर, स्तनों पर, नवीन गौरव-गरिमा से मंडित

होने वाला हाथ नीचे रहे, तथा मेरा हाथ दान देते समय उसके ऊपर हो जावे तो क्या यह परम सौभाग्य की बात नहीं है ! राज्यवाज्य क्या शाश्वत है ? शरीर अनश्वर है क्या ?

6. हे धीमन् ! चाहे नरक-प्राप्ति हो, चाहे बन्धन ही मिले, धरणीराज्य का निर्मूलन ही क्यों न हो जावे, दुर्मरण ही क्यों न प्राप्त हो, सत्य को घटित होने दो, जो आया हुआ है, चाहे वह हरि हो, हर हो, ब्रह्म हो, अथवा अभ्यागत हो, जो भी हो, सो मैं एक बात, मेरी जिह्वा नहीं मुड़ सकती—मैं वचन नहीं टाल सकता ।

7. हे शुभ्रचरित्रवान गुरु जी ! जब मैं निस्संकोच भाव के साथ, वचनावधिकदान दे रहा हूं तब विष्णु मुझे क्यों बांधेगा ? यह कहां की बात है ? यदि बांध भी लेता तो कृपाभाव से मुक्त भी वही कर देता । यदि नहीं मुक्त करता तो मुझे बंधे ही पड़े रहने दो ।

8. चाहे मेरु पर्वत ही उलट जावे, पारावार ही सूख जावे, अन्दर ही अन्दर धरती चूर-चूर हो जावे, आकाश बांधने में आवे, चाहे जो कुछ भी हो या न हो, मैं तो अवश्य दान देकर ही रहूंगा ।

9. हे उत्तम ! यह कभी भी दूसरे के समक्ष, हाथ पसारता ही नहीं । एकाकी है, निजी कोई नहीं है, भाई बहनें नहीं हैं । सब विद्याओं के सारतत्व को जानने वाला प्रौढ़ एवं विदग्ध वामन है । हाथ जोड़कर याचना करने पर इस नन्हें शिशु को टालने के लिये जी नहीं मानता ।

10. मानधनी पुरुष दीर्घकाल तक जियें या न जियें, बहुबंधनों में क्यों न उलझ जावें, दरिद्रता के चंगुल में क्यों न फंस जावें, प्राण और धन को हानि ही पहुंचे, जो भी हो एक बार वचन देकर वे उसे किसी भी हालत में नहीं टाल सकते ।

हिमाचल

अल्लसानि पेद्दन्न
(1475-1535)

1. वहां पहुँच कर ब्राह्मण ने ऐसे हिमालय को देखा जहां गगनचुंबी शिखरों से, झरझर झरने वाले निर्झरों के समूहों से बार-बार लहरें उछल रहीं थीं। उन लहर रूपी मृदंगों की ध्वनियों से हर्षित हो कर नृत्यानुकूल भंगिमा में अपने पंखों को प्रफुल्लित करके, मयूरगण जहां विराजमान हैं, और जहां पर पहाड़ों की कंदराओं में भ्रमण करने वाले करणुओं की सूँड़ों से विचालित सालवृक्ष हैं।

2. हृदय में उल्लास उमड़ रहा था। ब्राह्मण उस पर्वत के मध्य भाग में अवस्थित वृक्षों, काननों, तथा कंदराओं में विहरण करने की उत्सुक बुद्धि के साथ (बढ़ा)

3. प्रवर ने बड़े आनन्द के साथ उस स्थान को देखा जहां भगीरथ ने घोर तपस्या की जिसके परिणामस्वरूप उसकी लम्बी वेणी जटाजटित हुई थी। तदनंतर उन्होंने उस पवित्र स्थल का अवलोकन किया जहाँ गंगा ने आकाश से भूतल पर अवतरण इतने प्रवेग के साथ किया कि वृद्ध कच्छप की पीठ—जिस पर भूमि स्थित है,—दिखायी देने लगी।

प्रवर ने उस स्थान को भी देखा जहाँ गिरिराज-कन्या पार्वती ने अपनी लज्जा से मुक्त होकर पति की सेवा शुश्रूषा करने में उत्साह दिखाया था।

प्रवर ने उस दयनीय स्थान का भी दर्शन किया जहाँ फालनेत्र की नेत्राग्नि से कामदेव का सुन्दर रूप नीरूप हुआ था।

उन स्थानों को भी देखा जहाँ ऋषि पत्नियों की सुन्दरता पर गौर करते हुये त्रेताग्नियां विरहतप्त हुई थीं।

अंत में शरजन्मा देवसेनानी कुमारस्वामी के जन्मस्थान का भी दर्शन किया था।

4. प्रलयाग्निज्वालाओं के ताप से रूपमाधुर्य खो बैठकर भस्मसात् होने वाली भूतसृष्टि की पुन: रूपरचना घटित होना तथा औषधियों की पुनः सृष्टि संभव होना केवल शीतनग से उत्पन्न शैत्य के प्रभाव से ही तो है। (अन्यथा असंभव है)"

5. "हरीतिमा की सुन्दर छटाओं से व्याकीर्ण सर्पयज्ञोपवीत धारण करने वाले प्रथमाधिपति शिवाजी यहीं गृहस्थ बन सके।

इन्द्र ने यहीं पर शचीदेवी को तैरने की कला का अध्यापन करते हुए जलक्रीड़ा का हुनर सीखा।

यहीं पर तो समय पर दूध उतार कर धरती-रूपी गाय ने सब पर्वतों में औषधियों को बांटा था। यहीं पर मेनका ने, अप्सराओं के बीच इठलाते हुये इतराते हुये, नवरत्नों से आभूषित होने की अदा सीखी थी। इसी तुषाराद्रि हिमालय के कारण, विविध यज्ञपरिकरों के समारंभों के कारण, देवसभा नित्य नवीन प्रीतिभोजों का आनन्द उठाने लगी ताकि जिह्वा-मांद्यदूर हो के जिह्वा-तर्पण हो सके।"

6. "कहीं ब्रह्म को भी इस पर्वत की महिमा का गुणगान करना संभव है ? मैं यहां के अद्भुत सन्निवेशों का अवलोकन कल करूंगा। आज के लिए चला जाऊंगा। क्योंकि नलिनीबांधव (सूर्य) की किरणों से संतप्त होकर पड़ने वाले ओसकणों की चूत्कार-परंपरा मध्याह्न वेला को सूचित कर रही है।"

प्रातःकाल का वर्णन

रामराजभूषणुडु
(16वीं शती)

1. हे सखी। क्या तुमने शुक्र नक्षत्र को जो आकाश पर टिमटमा रहा है, देखा है ? वह ऐसा प्रतिभासित हो रहा है मानो, अमृतांशु, चन्द्रमा, निशा-कांता के साथ संगमन करके ढलती चन्द्रिकारूपी चंदनचर्चा के साथ, सरोवर-शय्या को छोड़कर गया है। उस समय समय-दुतिका ने तत्कालजनित संभ्रम के कारण, शीर्णतर नक्षत्ररूपी हारमणि-समूह को बटोर कर एक जगह एकत्रित किया हो।

2. हे सखी देखो न ! कल्हार के लिए कहीं दूर का ही संबंध है। रात्रि-कांत के लिए तो केवल पूर्वपक्ष (शुक्लपक्ष) की बात है। नक्षत्रों की कान्ति तो मेरे ऐश्वर्य के समक्ष फीकी पड़ जाती है। सच पूछो तो चन्द्रमा के साथ इन सबका कौन सा पक्का वास्ता है ? केवल मेरे साथ उनका घनिष्ठ संबंध है, इस प्रकार विचार कर चन्द्र को क्षति प्राप्त होते समय (चन्द्र के अस्तंगत होते समय) चन्द्रिका, प्रदीप की धवलिमा के व्याज से दीपवह्नि में जा कर समाहित हुई है।

3. आकाश-केदार में तारासस्य की फसल पक चुकी थी। उस समय चन्द्रिका-नीर सूख गया था। हालिक ने फसल काटकर प्रातः कालरूपी महा-हालिक ने कांतिफलसमूह को ओसाया तो, प्राचीदिशा में धवलिमा दृष्टिगोचर हुई। तब दूरतः ढेर लगे हुए भूसे की तरह चन्द्रमा निस्तेज होकर, कहीं चला गया।

4. लक्ष्मी (प्रातःकाल की सुषमा) के मायका (कमलालय) में लौट आने का शुभ समय है। निकट के द्विजाराव से (पक्षियों के ध्वनिमाधुर्य) पुण्या-हवाचन की विधि चल रही है। सरोवर के तट पर अवस्थित वृक्ष नृत्यत्पल्लवों के उदरों में से हिम जल छिड़क रहे हैं। यह समझकर कि द्विजातित्व के कारण (द्विजातित्व अर्थात् ब्राह्मणत्व एवं पक्षीत्व आम जनता में ब्राह्मण का अकेला

सामना पड़ना अपशकुन माना जाता है। ब्राह्मणदंपति का दर्शन एक साथ मिलना शुभशकुन माना जाता है) इस समय अकेला रहना अनुचित है, चक्रवाक पक्षी भी चक्रवाकी के साथ दिखाई दे रहा है।

5. मन्मथरूपी व्याध ने बाण छोड़ा है। चक्रवाकी ने चीख मारी। चक्रवाक को बुलाया। आंख से आंख मिलायी। एक दूसरे से लिपट गये तथा चक्र (चक्रवाक) को सरोवर पहुंचाया (आकाशरूपी कांता चक्र अर्थात् सूर्य को सरोवर पर भेजा) (चक्र के लग जाने के डर से—) इस सारे कोलाहल से आशंकित होकर, सभी पक्षियों ने अपने-अपने नीड़ों को छोड़ दिया। (प्रातः काल में पक्षियों का कुलालय छोड़कर जाना स्वाभाविक ही है)

6. पांच पुष्पबाणों को धारण करने वाले मन्मथ ने अपने आखिरी बाण-(नीलोत्पल) से सारे विश्व को जीतकर, पुष्पवृष्टि से पवनों को आपूर्ण करने की इच्छा से, नीलोत्पल की छाप लगा दी। इसीलिए भ्रमरों में कालिमा आ गयी। भ्रमरी ने भी अपने परों की छटा से कल्हार पुष्प को पुलकित किया है। और वहीं अचंचलवृत्ति से रह गयी है।

7. कमलरूपी मादापक्षी ने (अंधकार में) आसक्ति के साथ श्वेतकोरक रूपी अंडों को दिया है। परों के समूह से ढक कर, अंडों से बच्चों को निकालने का समय आसन्न होने पर अपने परों को (पंखुड़ियों को) खोला है। तत्क्षण, पथिकों को पीड़ा पहुंचाने वाली भ्रमरी संतान सहजनी लच्छवि के साथ बाहर निकल पड़ी है।

8. समयमहर्षि बोधगुणशाली हैं। उन्होंने महान् उदयपर्वत को प्राचीव-धूटि से लोकहितकारी, अशेषदेवतांशमय पुत्र की कल्पना की। तदर्थ उदय-संध्या रूपी होमवह्नि को प्रज्वलित किया है। और उसमें शताधिकसंख्या में नक्षत्र रूपी चरुओं की आहुतियाँ डालीं।

9. कल्हार-प्रिय चन्द्र के विहारों को कमलरूपी नारी देख सकी। इसी लिए उसने-अपने गृहकपाटों को (पंखुड़ियों को) बंद कराया—परन्तु समय-रूपी विष्णु ने वामनेत्र (चन्द्र) को बंद किया और दक्षिणनेत्र को (सूर्य को) खोला। उस समय चन्द्र उत्पन्न राग (संध्याराग, अथवा क्रोध) के कारण कहीं चला गया और बंधूकपुष्पों की अरुण छटा के साथ सूर्य गगनमंडल पर उदित हुआ।

10. हे स्वर्णसदृश रम्य गात्रवाली ! तुमको पर्वत के राजा से प्रार्थना करके, प्राची पति इन्द्र चेदि धरामण्डल के अभिनाथ के साथ मिलाना चाहता है। राजा इन्द्र के सिर पर लगाये गये छत्र की भांति उदय-सूर्य दिखाई दे रहा है। पर्यन्तभूमि में सूर्य की रश्मिलहरियां, उस छत्र के रत्नगुच्छों की तरह शोभित होने लगीं।

विवाह

●

चेमकूर वेंकट कवि
(17वीं शती)

1. जग में ननु-नच करके बाधा डालनेवाला कोई है ? श्री कृष्ण कितना मायावी है पर लगता है कितना अनजान और अबोध ? कन्यारत्न सुभद्रा को कन्यादान करने का दायित्व वसुदेव को सौंपा और आप सहस्रनेत्र वाले इन्द्र की भांति बड़ी तत्परता के साथ—विवाह की शोभा को देख रहा था।

2. मधुकरवेणियों ने (नारियों ने) मधुर शब्दों के साथ दोनों के बीच परदे का कपड़ा धारण किया। मधुसूदन के पिता वसुदेव ने तब राजकुमारों में उत्तम, अर्जुन को मधुपर्क दिये।

3. वसुदेव ने वर के चरणों को सोने की तश्तरी में, चन्द्रकांतमणि-खचित पात्र में रक्खे हुए पानी में धोया तथा कन्या को दानधारा के साथ समर्पित किया।

4. अष्टमहर्षियां पार्श्वभूमि में खड़े हो कर सन्निवेश की शोभा बढ़ा रही थीं। देवगण बड़े कुतूहल के साथ देख रहे थे। कुछ स्त्रियाँ वधुवरों को स्वर्ण-क्षितों से अलंकृत कर रही थीं। फलतः उनके अंग पुलकित हो रहे थे। उस समय, सारा वायुमण्डल वाद्यध्वनियों से प्रतिध्वनित हो रहा था।

5. असावधानी से स्त्रियों ने बीच का परदा झुकाया तो कन्या का हंसमुख दृष्टिगोचर हुआ। उस समय स्त्रियाँ सकपका गयीं। शर-मेघ से छूट कर शोभित होने वाले चन्द्रबिंब की भांति, उसका मुखमंडल शोभायमान रहा।

6. कुरुवीर अर्जुन ने उस समय, मंगलसूत्र को उस रमणी की कंठसीमा में बांधा। बांधने का ढंग अत्यन्त मोहक था। प्रणयकलह की वेला में, लाड़-प्यार के साथ अनुनय करने की मुद्रा में उन्होंने सुभद्रा के लज्जानवत मुख को

जरा-सा ऊपर उठाया और धीरे-धीरे, हस्तयुग्म को कंठ के नीचे पसार कर, वेणी को सरकाया। फिर मंगलसूत्र को वधू की कंठसीमा में आबद्ध किया।

7. दोनों पक्षवालों ने वर और वधू के हाथ में मोतियों से भरे थाल रखे वरपक्षीय वर से वधूपक्षीय वधू से कहने लगे "तुम को इस बाज़ी में जीत जाना चाहिए"—इस प्रकार के उत्साहवर्धक वाक्य बोले जा रहे थे। तब सुभद्रा एवं अर्जुन दोनों एक-दूसरे के सिर पर मोती भरे मंगलाक्षत डालने लगे। उस समय वधूवरों में विनोद एवं क्रीड़ा के भाव संघर्ष कर रहे थे।

8. अग्नि को साक्ष्य देकर ब्याही हुई वधू और वर स्वर्णमय पीठ पर आसीन हुए शोभित हो रहे थे। सम्मिलित वृद्धजन साशीर्वाद दोनों के सिर पर मंगलाक्षत डालने लगे।

9. मृगमद के पास की कुंकुम रेखा की भांति, नीलमणि के पार्श्व में, स्वर्णपर्ण की भांति संघ के निकट विद्युल्लता की तरह, अर्जुन के सान्निध्य में, सुभद्रा शोभित होने लगी।

10. हर किसी में प्रकृत्या विवाह के नामग्रहण से ही एक अनूठी शोभा निखर आती है। ऐसी स्थिति में, यौवन, रूप, विलास आदि से विलसित राजकन्या एवं राजकुमार दोनों जब समक्ष हैं तब उनकी लजीली आंखें तथा अन्य विलासपूर्ण चेष्टाएं दर्शकों को नेत्रनिर्वाण पहुँचाएं—इसमें क्या आश्चर्य है?

शतकों के छंद

यथावाक्कुल अन्नमय्य

(13वीं शती)

1. हे सर्वेश्वर तरुओं में पुष्प पहले शलाटुओं में परिणत होते हैं और क्रमशः फलाकार धारण करते हैं। परन्तु वे ही पुष्प तुम्हारे चरणरूपी कमलों की पूजा करके हाथी, घोड़े, अनर्धमणियां, कर्पूर, हार, घोड़े, तरुणी रत्न, चंदनवृक्ष आदि अमूल्य भोगपदार्थों एवं संपदाओं के रूप में, परिणत हो जाते हैं। यह वास्तव में महान् आश्चर्य है।

2. एक पुष्पमात्र को तुम्हारे पद्म पर भक्तिभाव से आपूर्ण मन के साथ रखने वाले पुष्पमति पुरुष को पुनर्जन्म की पीड़ा नहीं उठानी पड़ती तो अनवरत निष्ठा के साथ तीनों वेलाओं में (प्रातः, मध्याह्न, एवं सायं) षोडश उपचार सहित तुम्हारी अर्चना करने वाले नेष्ठिक सज्जन यदि भवदाकारपरिणत हो जाकर क्रमशः तू ही बन जाएं तो आश्चर्य की क्या बात है ?

2. बद्धना (13वीं शती)

1. हे अच्छे बुद्धिवाले ! उत्तमगुण नींद में कैसे समाविष्ट हो सकते हैं ? कहीं पीतल के गलाने से सोना बनने की संभावना है ?

2. हे बुद्धिवाले ! जब आपस में मैत्रीभाव होता है कोई त्रुटियां हो ही नहीं सकतीं। परन्तु जब सरसता विरसता में परिवर्तित होती है तब दोष ही दोष दृष्टिगोचर होते हैं।

3. धूर्जटि (16वीं शती)

1. कौन-सा वेद मकड़ी ने पढ़ा ? सर्प ने कौन-सा शास्त्र-पठन किया था ?

ने भी क्या शिक्षा दीक्षा ली ? भिल्लने कौन-सा मंत्रोच्चारण किया था ? हे श्रीकालहस्तीश्वर प्रभो ! वास्तव में, ज्ञानोदय के हेतु ये लौकिक शिक्षा-दीक्षाएँ आदि कारण नहीं बन सकतीं। प्राणिसमूह के लिए तुम्हारे चरणों की सेवासक्ति ही सब कुछ है।

2. हे कालहस्तीश्वर प्रभो ! जग में, "शिव, शिव" का जप करने वाले उत्साही पुरुष के लिए वज्र भी पुष्प हो जाता है, अग्नि ओस में परिवर्तित होती है। समुद्र भूमि बन जाता है। शत्रु भी घनिष्ट मित्र वन जाता है। विष दिव्य भोजन में परिणत होता है। हे शिव तुम्हारा नाम सर्वश्रेयस्कर है।

4. कंचर्ल गोपन्ना (17वीं शती)

1. हे करुणावरुणालय ! दाशरथि ! आज ही तुम्हारा गुण-संकीर्तन एवं भजन करना आरम्भ कर दूंगा क्योंकि जिस वक्त यमदूत मेरे आंगन में घुस आते हैं, बीमारियां शरीर को ग्रस लेती हैं, कफ से कंठ अवरुद्ध होने लगता है, बंधुजन चारों ओर सेघेर लेते हैं, उस वक्त पता नहीं तुम्हारा पुण्यस्मरण कर सकता हूं कि नहीं।

2. हे करुणापयोनिधि ! दाशरथि ! घने दूध पर जमी हुई चिकनी मलाई को शक्कर के साथ मिलाकर खाने में जो स्वाद मिलता है, तादृश स्वाद के आनन्द को उपलब्ध करने के लिए मैं तुम्हारे निर्मल, श्यामल रूपामृत-रस को मेरे प्रेमरूपी थाल में परोस कर समाहित दास्यभाव नामक करपुट से खूब सेवन करता रहूँगा।

5. एनुगु लक्ष्मण कवि (18वीं शती)

1. विद्या निगूढ़ गुप्त धन है। पुरुषों के लिए रूप है। विद्या यशस्करी तथा भोगदात्री है। यही नहीं गुरु-सदृश तथा विदेशों में बंधु-सदृश है। विद्या विशेष प्रकार का देव है। विद्यासदृश धन वास्तव में नहीं है। विद्याविहीन पुरुष, पुरुष कहलाने योग्य कब है ?

2. विपदाओं में धैर्यगुण, संपदा में क्षमा, राजाओं की सभाओं में पुष्कल वाक्चातुर्य, युद्ध में बाहुबल, यश में अनुरक्ति, विद्या में व्यसन, ये सब सज्जनों में प्राप्य नैसर्गिक गुण-धर्म हैं।

6. वेमन्न

1. नमक एवं कपूर बाह्याकार में एक से लगते हैं। परन्तु छानबीन करें

तो उनका स्वाद अलग-अलग है । हे सर्वस्व दान में देकर आनंदित होने वाले वेम ! तुम सुनो--उसी प्रकार पुरुषों में पुण्य पुरुष पृथक् ही होते हैं हालाँकि पुरुष सब देखने में एकरूप लगते हैं ।

2. सर्वस्व दान में देकर आनंदित होने वाले हे वेम ! तुम सुनो ! तुच्छ पुरुष सदैव आडंबर से बोला करता है । सज्जन इसके विपरीत शीतलवाणी से बोला करता है । जिस प्रकार की आवाज़ कांसे से निकला करती है वैसी कनक से निकलेगी क्या ? कदापि नहीं ।

ज्ञान-धन

तिरुपति व वेंकटेश्वर कविद्वय

(1871-1940)

1. सहकार-किसलयों की छवि को बिखेरते हुए सिर पर शिरोजों की जटाएँ उलझी पड़ी हैं। रोहिणीयुक्त सूर्य के प्रकाश से तप्त सुमलता जैसा शरीर उनका था। मुखच्छाया उनकी, सूर्य से पिहित होकर फीके पड़े हुए पूर्णचन्द्र की जैसी थी। बहुत दिनों के अनंतर पतिरूप—दर्शन प्राप्त करने के कारण, मुख की विवर्णता परिपुष्ट हुई और उसका मन आनंदमय भावों के साथ भर गया। सप्तवर्षीय बालक, रोहित साड़ी के आंचल को पकड़ कर पूछ रहा था 'माता तुम कहाँ जा रही हो ? हृदय में अनवरत भाव्यमान पतिदेव को पहचान कर, निकट गयी और बोली 'हे सिद्धार्थ !' संबोधन करते करते लज्जा से भर गयी। अश्रुमयी आंखें अधिक कातिल बनीं। वेणी की शोभा से तत्काल सिद्धार्थ के पद दीप्त हो उठे। उसके उठाने तक उस नारी ने विवशमनस्का हो कर दुःख के कारण नाथ के गले का परिष्वंग किया। कोमल नारियाँ इसी प्रकार तो अपने पति का प्रेमपूर्ण आदर करती हैं न ?

2. सिद्धार्थ भी वैसे उसको सर्वप्रथम एक शिष्या समझा। परंतु यशोधरा की परिष्वंग-चेष्टा तथा उसकी मुखसुषमा से ज्ञात हुआ कि यह मेरी धर्मपत्नी है। तब वे उसको समझाते हुए कतिपय ज्ञानवर्धक वचन बोले। तदनंतर राजा शुद्धोधन भी अपने पुत्र को, जो मदन सुंदर तथा अविचलित था, देखा। उसकी वेषभूषा से राजा का मन संक्षुभित हुआ था। वह अपने क्रोध को नहीं सम्हाल सका। आरूढ़ अश्व से उतर कर पुत्र की ओर बढ़ा।

3. पापरहित पुत्र बुद्ध ने भी पिता को बड़े प्रेम के साथ नमस्कार किया। पुत्र के प्रणाम से पिता का क्रोध आप ही तिरोहित हो चला। बुद्ध के प्रांजल

दर्शन के अनंतर कहीं किसी के मन में क्रोध टिक सकता है ?

4. सभी राजाधिराजाओं के पूज्यप्रभाव से शोभित होनेवाले अपने पुत्र की गौरव-महिमा को देख कर राजा शुद्धोधन आश्चर्यचकित हुआ था। उस अवसर पर राजा ने बड़े प्रेमभाव के साथ अपने पुत्र से निम्नवत् कहा—

5. "समस्त विश्व पर प्रशासन करते हुए अपनी उदारता के कारण यशोर्जन तुम कर सकते थे। वास्तव में राजाओं की प्रणुतियाँ एवं प्रणालियाँ स्वीकार करते हुए अपने बंधुजनों के प्रशंसावाक्य सुनते हुए तुम सुख से रह सकते थे। परंतु हाय रे! आज तुम्हारी क्या ही दशा है ? वास्तव में, निर्मम विधाता की चेष्टाएँ पुरुष को कहाँ से कहाँ तक नहीं पहुंचा सकती हैं ?

6. आपन्नसत्त्वा पत्नी की मनोवांछाओं की पूर्ति तुम नहीं कर सके। प्रसूतिदशा के दस दिनों के अंदर ही अंदर पुत्र का मुखावलोकन करने का भाग्य नहीं पा सके। मेरी जगह तुम्हारी बार-बार याद करनेवाली प्रजा की अभ्यनुज्ञा नहीं ले सके। वार्धक्य में राज्यभार न सम्हाल सकने की मेरी अक्षमता पर तुम रंचमात्र भी दुःखित नहीं हो रहे हो। हाय रे! इतने विस्तृत साम्राज्य से हाथ धोकर संन्यासी बने हो। काश्मीर गर्दभ की भांति तुम्हारा जन्म भी वृथा-विशेष भाजन है। (व्यर्थ ही विशेष प्रकार के कलात्मक पात्रों को ढोनेवाला—विशेषताओं का पात्र—यह दूसरा अर्थ है)

7. बुद्ध ने कहा 'यह संन्यासीवृत्ति मेरे साथ ही उत्पन्न नहीं हुई है यह तो प्राचीन परंपरा के अनुकूल ही हैं।' इस पर क्रुद्ध होकर राजा ने कहा—

8. 'हे पुत्र! जरा सोचो तो। महासम्मत आदि एक शत नरपाल जो शाक्यवंश के वंशधर थे क्या उनमें कोई एक भी तुम्हारी भांति वैरागियों में मिला है ?'

9. इस पर गौतमबुद्ध ने कहा "हे महात्मन्! जो मैंने आपसे निवेदन किया है, वह मेरी जन्मपरंपरा से संबंधित है। मैं अपने पूर्वजन्मों में भी इसी प्रकार—संन्यास-ग्रहण करता आया हूँ। और प्रत्येक जन्म में पिता की ग्लानि को ज्ञानधन देकर दूर करता आया हूँ। अतः आज भी उसी प्रकार तुमको पुष्कलमात्रा में ज्ञानधन शान्त्यर्थ देने वाला हूं।"

महात्मा गांधी

•

दुब्बूरि रामिरेड्डि
(1895 से 1947)

1. हे महात्मा गांधी ! "धर्म की स्थापना के लिए दैवशक्ति युग-युग में जन्म लेती रहती है"—इस आर्य-सूक्ति के अनुकूल ही तुमने अवतार लिया है न?

2. हे कार्यशूर ! भीष्म की अकुंठित दीक्षा, चैतन्यप्रभु का प्रेमरस, गौतम-बुद्ध की अहिंसा-तत्परता, प्रह्लाद की पवित्र भक्तिभावना, तथा हरिश्चन्द्र की सत्यव्रताढ्यता, सभी मिलकर तुममें मूर्तरूप धारण किए हुए हैं ।

3. श्रीकृष्ण भगवान ने कुरुक्षेत्र में स्वपक्ष और विपक्ष की रक्तनदियों के उमड़ कर प्रवाहित कराने के बहाने धरणीभार को उतार कर धर्म-नियति की रक्षा की । इस समय तो हे धीनिधी गांधी ! तू ने अहिंसासूत्र को अमल में ला कर दौर्जन्य के मूल बन्धन को शिथिल कर दिया । यह अत्यन्त स्तुत्य है ।

4. तैंतीस करोड़ भारतीय बड़ी प्रसन्नता के साथ और स्वतन्त्रवृत्ति के साथ तुम्हारी आज्ञाओं का पालन करते हैं । मृत्युदंष्ट्रिकाओं में फंसने से भी नहीं डरते । हे बापू ! यह सब तुम्हारी—जिसका शरीर केवल जीर्णशीर्ण अस्थिपंजर मात्र सा देखने में लगता है—महिमापूर्ण इन्द्रजाल के आवर्तन से तेजोदीप्त हो उठा है ।

5. असूर्यपश्या कोमल नारियाँ जो अपने महलों की देहलियां तक पार कर बाहर नहीं जाती थीं, आज विजयशंखाराव करते हुए, चारों दिशाओं में, सत्याग्रह-मंत्रों का उपदेश दे रही हैं । ग्रामीण जनता तक कटिबद्ध हो कर, स्वदेश की सेवा करने लगी । कारागार भर गये । जाने तुम ने महाश्रेयोदायक

इस महोद्यम की कल्पना कैसे की है। वास्तव में यह एक महाद्भुत दया है।

6. सेना में तोपों के प्रहारों के साथ शत्रुओं के विरुद्ध लड़नेवाला अंग्रेजी प्रशासन,—जिनका साम्राज्यगर्व अखर्व है और शासन की डोरी जिन्होंने अपनी वज्रमुष्टि में सम्हाली है—उन अंग्रेजों की तर्जना, धिक्कार, आदि का तुम्हारे आत्मबल ने सामना करके, उसकी कंडुति-चिकित्सा की है। प्राकृत नरों के सामने कहीं दिव्यविभूतियाँ झुकती हैं?

7. अर्धनग्न निर्धनी होते हुए भी सम्राट् के समकक्ष आसीन होना, अगले दिन के निर्वाह के लिए निजी पैसा एक न होते हुए भी जनता से एक करोड़ रुपये की निधि का वसूल करना; शम, दम, क्षमा एवं नित्य शांति का निधान होते हुए भी सत्य के लिए आग्रह करने का हठधर्म; बहुत दुबले-पतले शरीर का होते हुए भी देश-देश में भ्रमण करना; इत्यादि अनेक विरोधी गुणों का समावेश तुम्हारे जीवन-विधान में निहित है। वास्तव में, इन गुणों का रहस्य कैसे जाना जा सकता है? और तो और, इनका मूल्यांकन विदेशी लोग क्या कर सकते हैं?

8. तुमने भोग एवं सौख्यसंपदाओं के लिए निजसमक्ष उपयुक्त अनेकानेक मार्गों के होते हुए भी शीघ्र ही उन सब को त्याग कर विश्व परिवार का सदस्य बन कर, महान् त्यागबुद्धि के साथ समग्र जीवन को स्वराज्य की यज्ञ-वह्नि में वैराग्य भाव से आहुति कर दी। इससे पशु-शक्ति का ह्रास हो चला है।

धर्म-पथ

•

पिंगलि व काट्रि कविद्वय
(1893, 1895-1965)

1. ममता से मुक्त, संभ्रम से दूर, करुण रस से तरंगित, शांत एवं महोदार गौतम ने निज कटाक्षों से त्रस्त जनता का अवलोकन करते हुए कहा —

2. 'मोह एवं भ्रम के कारण, सुत के पीछे, पति के पीछे, बंधुवर्ग के पीछे, आसक्त एवं तिप्त होकर, दुस्तर शोक सागर में माग्नोग्मान होकर अस्त-व्यस्त होने वाले हे प्राणियो ! कलि के पाशों में फंसे हुए आर्तजीवियो ! जनन-मरण-यातना से पीड़ित जनों ! आप सब सत्यमार्ग के संबंध में सुनिये न !

3. हायरे ! आप क्यों नश्वर प्राणों पर विश्वास करके, विभ्रांत मन से भवकूप में गिरना चाहते हैं। ये जन्म और मरण तथा उनका पुनः पुनरावर्तन क्यों ? काव्य-मृगतृष्णारूपी समुद्र की तरफ दौड़ क्यों लगाते हो। कहीं सृष्टि नित्यपदवाच्य हो सकती है? यदि आपकी एवंविध धारणा हो तो तदर्थ प्रमाण-वाक्य सुनाइए।

4. सबसे पहले इस पर विचार करना है कि भवबंधन का मूल कारण क्या है ? इस बंधन से मोक्ष किस प्रकार मिल सकता है ? इन विषयों पर सोचे बिना तुम लोग पापमति से हिंसातत्पर हो कर, क्यों कुपथगामी बनते हो ? नवीन धर्मपथ पर आप चलिए न ! सहस्रमुखों से सत्य, भूत, दया, शील एवं तीन शब्दों से युक्त मंत्र को (बुद्धं शरणं गच्छामि) — मुखरित करें न !

5. धर्मचक्र जिस में यम नियम ही अरे हैं, यथार्थ जिसकी नाभी है, समाधि ही जिसकी नेमि है, दयावान होकर खूब घुमाइएगा। उस यम को बिजूका दिखाइए, संसार रूपी राक्षस के सिर पर लात मारिए, और मोक्ष-कांता के कंठ में मंगलसूत्र बांधने के हेतु शुभसूत्रसंतान आपको उपलब्ध होगी।

6. भव नामक ऐंद्रजालिक के हाथों में फंस कर, नश्वर सुख रूपी विद्युत को बिजली की चकाचौंध से मोह-मुग्ध होकर, सुवर्ण शृंखलाओं में फंस कर परस्पर कठपुतलियाँ बन कर सदैव नाचने लगते हैं। क्या नव धर्मपथ पर पदार्पण करना श्रेयस्कर नहीं है ? ताकि जनन-पीड़ा से मुक्ति मिले।

7. आप लोग विचरण करें न ! अस्तेयपथ पर जिससे पापसमूह रूपी अंधकार पलायनमंत्र का पठन करें—(दूर हो जावे) —

सत्यवाड़्नियन का पतन करें न जिससे मोक्षरूपी दुर्ग के कपाट खुल जावें अहिंसाव्रत को स्वीकारें न जो लोककल्याणकारी धर्म का सारभूत तत्व हैं।

8. पुष्पबाणों के लिए अस्तेय ब्रह्मचर्यव्रत में दीक्षित होइए न ? समता-बुद्धि को धारण कीजिए न जो शांति, दांति आदि निधानों के देखने के लिए सिद्धांजन है। शीलरूपी कवच को ग्रहण कीजिए न जिससे रोग, वार्धक्य तथा मृत्यु निकट न भटकने पावे।

9. यह सत्य है, यह नित्य है, यह भवलता के लिए लवित्र जैसा है। इस धर्म को स्वीकार करना, मृत्यु जिसके मुंह में कराल दंष्ट्रिकाएँ हैं, उसके सिर पर पैर रखना ही है। वास्तव में भव्य मोक्षपद यही है।

दो नक्षत्र

विश्वनाथ सत्यनारायण

(बीसवीं शती)

1. राजकुमार का जन्म भर्म्य हर्म्य के अंदर हुआ। धरती कल्पतरु की भांति खिल पड़ी। स्वर्णपिंड सभी दिशाओं में दान में दिये गये। वारकांताएं नाच उठीं। राजमहल के प्रांगण में, सूर्यनिदानों का संकुलराव हो उठा। दुनिया भर के लोगों की प्रशंसा-वर्षा हुई।

2. दरिद्रता के एक कुटीर में कविकुमार का जन्म हुआ। दसवें दिन दायी ने शिकायत की कि मुझे भरपेट अन्न नहीं मिला है। पता नहीं, ब्राह्मण ने मंत्र का उच्चारण किया अथवा कुछ बड़बड़ाया।

3. वह राजकुमार विवाह कार्य के लिए सज्जीकृत पंचकल्याणी (उत्तम घोड़ा)— पर स्वयं अलंकृत हो कर आसीन हुआ।

यह कविकुमार विकट बुभुक्षा के कारण, अपने प्राणों को किसी न किसी प्रकार आंखों से बचा रक्खा।

उधर राजकुमार के मार्गक्लेश को सड़क पर के वृक्षों ने झुकझुक कर, अपनी शीतलच्छाया से दूर किया।

इधर कविकुमार को—जिसके भाग्य में जन्म के आरंभ से ही दुःख बदा हुआ था, मार्तण्ड को प्रखर किरणों ने संतप्त कर दिया।

4. राजा के अनंत-भोग-मधुर-जीवन के अवसान के अवसर पर पुनः सूर्यनाद मुखरित हुए। कोकिल-कंठा महिलाओं की गीत-ध्वनियों से सारा वायुमण्डल आनंद पुलकित हो उठा। त्रयीनिनाद, वर्षावेला के मेघगर्जनरूपी जयजयकारों के सदृश सुनाई देने लगे।

5. उस दिन संध्या के समय, आकाश-वीथी से एक नक्षत्र जो न सान पर तेज किये हुए मणि की भांति शोभित हो रहा था — जगमग जगमग करते हुए धरातल पर आ गिरा।

6. कवि की काया क्षुधाग्नि-पीड़ित होकर, धराशायी हो गयी। श्मशान-भूमि की काष्ठवह्नि में शव को रखते रखते सूर्य अस्तगत हो चला। थोड़ी ही देर में, नवीन कांतिपुंज को दिशाओं में बिखेरते हुए एक नक्षत्र, तारापथ पर जा चमका।

भारतीय नारी की महिमा

•

गडियारम् वेंकट शेषशास्त्री

(बीसवीं शती)

1. अब्बाजी सोनदेव उत्तर सह्यभूमि को जीत कर लौट आया और खड्ग-पाणि हो कर विनीतभाव से कहा 'हे प्रभु ! आपकी आज्ञा के अनुसार कल्याणि दुर्ग को जीता और वहां के सरदार को बंदी बना कर उसे रनिवास-समेत यहां लाया हूं ।"

2. तुमने यह क्या किया : पुष्पों का आवास, रनिवास को क्यों साथ लाए हो ? कोई भी हिन्दू इस प्रकार अगौरवपूर्ण व्यवहार करता है ? क्या तुम हमारी आज्ञा से अनभिज्ञ रहो हो क्या ? जय के उन्माद में तुम्हारे आयुस्सूत्र को तुम्हीं अपने हाथों तोड़ डालने पर कैसे उद्यत हुए हो ? तुम्हारी इस उजड्डुता को मैं सह नहीं सकता ।"

3. आंखें "लाल लाल थीं । ओष्ठों में प्रस्पंदन था । कंठ से घन हुंकार की ध्वनि निकल रही थी । क्रोध के मारे भ्रुकुटियाँ, विचलित थीं । भौंसलीय शिवजी की इस भयंकर मूर्ति को देखने तक का साहस सभासद नहीं कर सके । उस समय शिवजी अपने वैरस्यभाव को गले उतार कर, रनिवास को बंधन को छुड़वा कर लाने के लिए सोनदेव को भेजा था ।

3. शीघ्रातिशीघ्र सोनदेव ने शिवराज की आज्ञा का पालन किया और समक्ष में नम्रनिवेदन यों किया । "हे भगवन् ! मुझे क्षमा करो । तुम्हारे सरदार को लिवा लाने में, मैं उत्साह के साथ भर गया हूँ । दुष्ट व्यवहार का विचार कदापि नहीं था । तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन करने की उद्धतवृत्ति भी मुझ में नहीं है । आपके चरणद्वय की सौगंध है ।" इन शब्दों को सुन कर छत्रपति शिवाजी कुछ शांत हुए ।

5. शिवराज, अवगुंठन के अंदर स्निग्ध मेघछाया में सद्योजात विद्युत् की भांति शोभित होनेवाली उस यवनकांतामणि को सगौरव वीक्षणों से अवलोकन किया और बोला "नारियाँ इस भारतभूमि पर विचरण करने वाली पुष्प-देवियाँ हैं। हे माता ! हमारे अपराध को क्षमा करो।"

6. हरि, हर और ब्रह्म को सद्योजात शिशु बना कर पालने में झुलाने वाली पुरंध्रीरत्न (अनसूया)

यम के पाशों को तोड़ कर, पतिभिक्षा को ग्रहण करने वाली पावनचरित्रा (सावित्री)

धधक उठने वाली अग्नि के बीच में पुष्पराशि की भांति शोभित होने वाली साध्वीमतल्लिका (सीता)

पति के हितार्श भगवान सूर्य को उदित होने से रोकने वाली पवित्र वधू (सुकन्या)

और न जाने भारतमाता की सुपुत्रियाँ इस प्रकार कितनी हैं ? ये नारियाँ भारतभूमि की कल्पलताएँ हैं जहाँ पर पतिदेवतात्व के सुफल फलते हैं और जिनसे ससुराल एवं पीहर दोनों को धन्य बनते हैं।

7. भारत की ये पतिव्रताएँ, अनल के ज्योतिष्पुंज हैं जिसके निकट पापाचरण की बुद्धि से उपसर्पण करने वाले अपनी संपदाओं से दूर होकर, अस्त-ध्वस्त तथा नष्टभ्रष्ट हो जाते हैं। उनका वंश ही नष्ट हो जाता है। पुलस्त्य ब्रह्म की संतान की जो दुर्दशा हुई, क्या उससे हम अपरिचित हैं ?

हे जननी ! 'भारत की पवित्र भूमि पर इस प्रकार कुत्सित व्यवहार घटित हो सकते है ? कदापि नहीं।

8. तुम यवनों की पुण्य-कांता हो। फिर भी तुम हिन्दुओं का किया आदर सत्कार एक माता के रूप में स्वीकार कर सकती हो न ? तुम्हारी रूपगरिमा मुझ में नहीं है। फिर भी, मैं तुम्हें अपनी माता के रूप में मानता हूँ और तुम्हारा आदर करता हूं।

9. हमारा सरदार जल्दीबाजी करके असन्मार्ग पर चला है। इस अपराध पर तुम दुखित मत होओ। तुमको अभी सैनिक सुरक्षा के साथ तुम्हारे दौलत खाने पर भेज दूँगा। तुम मेरी पूज्य माता हो। तुम मेरी प्रिय बहन हो। तुम्हारे मार्ग पर अपने करकमलों को बार-बार बिछा-बिछा कर तुमको उन पर चलने दूँगा। अपनी आंखों से सहिष्णुता का प्रकाश बिखेर दो न !"

10. इस प्रकार प्रशंसा-पुष्पों की वर्षा करने के बाद, पतिव्रताओं की मान रक्षा में कटिबद्ध शिवाजी ने यवनकांता का उचित सत्कार किया और

यवनों के सरदार को भी बंधन से छुड़वाया । बीजापुर वापस जाने की भी अनुमति उन्हें मिली । साथ ही निज सेना को भी सुरक्षार्थ भेजा ।

11. तदनंतर शिवराज सोनदेव का संबोधन करते हुए कहा 'स्त्रियाँ बहुत ही पूजनीय होती हैं । इस प्रकार उनका अपमान नहीं करना चाहिए । यह मेरा अभीष्ट है । मेरे सेनानायकों को मेरे आदेशों का पालन अवश्य करना चाहिए । तुम्हारे आशय को मैं समझ गया और यह भी मैंने जान लिया कि तुम्हारी और से कोई अपराध नहीं हुआ है"

12. मुग़लों की फौज की उद्दंडता को कुंठित करने के लिए उत्तर में 'कल्याणि' और 'माहुति' पहुँच कर प्रजाओं में अमन चैन पहुंचाते हुए, हमारे प्रशासन की श्रीवृद्धि करते हुए तुम वहाँ के सूबेदार पद के कार्यभार को सम्हाल लो ।

आशा

देवुलपल्लि वेंकट कृष्ण शास्त्री
(बीसवीं शती)

1. अश्रुलहरियों में चांदनी यह कैसी !
निश्वास-पवन में महक यह कैसी !
प्रलयकाल की महोग्र, घनघोर घटाओं की
भीकर कहकहार्भटियों में,
बिजली यह चमक पड़ी कैसी !

2. वज्रपात में वर्षा कैसी ?
हलाहल में अमृत कैसा ?
प्रबल नीरंध्रभ्राजनित-प्रगाढ श्वास में,
हेमंत रात्रि के कुंतलों में
जगमग जगमग तारा कैसी ?

3. शिथिल में यह नव पल्लव कैसा ?
पाषाण पंक्तियों पर
कुसुम यह विकसित कैसा ?
विकराल-क्रूर क्षुधा-क्षुभित
मृत्यु कठोर विकट पांण्डूर शुष्क
वदन दंष्ट्राग्नि में
मंदहास यह कैसा ?
अश्रुलहरियों में......॥

नटराज

देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री

1. हर दिन के अंत में
नित्य नूतन ताण्डव नृत्य
करते हो हे हर ! हे नटराज !
क्षमता नहीं रखते, लोक
सिर हिलाने तक
दुर्भर आनन्द मग्न जो हुए !

2. तब ऊहांचलों को पार कर
अमृतरस की माधुरियों में,
बह जानेवाला मेरा
क्षुद्र जीवन यह,
दिशामूढ़ हो, हो असंतुष्ट,

3. मैं पागल बन जाता ।
चाहता गाना तुम जैसा
चाहूँ नाचना तुम जैसा
छोड़ लाज, नाचना चाहता,
इतनी तृषा के साथ
कैसे ? रहना चाहता ?

4. किस ढंग से सौंदर्यरसैक जीवी मैं,
यहाँ खड़ा रह सकता पल भर भी,
यदि मेरे जीवन की सूखी राहों पर,
तेरे चरणनूपुरों का
अनुरणन न बज उठे !

5. गीत से खेल से, हे ईश्वर !
मुझ को भी नाचने दो
तुम जैसे !
इस अनवरत यात्रा को
जारी रखने दो
कथमपि तेरे दर्शन हो पाने को ॥

भिक्षुवर्षीयसी

श्रीरंग श्रीनिवास राव
(बीसवीं शती)

1. सड़क के बगल में,
पेड़ की छाँह में,
बुढ़िया एक बैठी,
मानों बुझी अँगीठी ।
चारों ओर भिनभिनाती
मक्खियों से तिलमिलाती,
अकुलाती ।।

2. चूने का टोकरा जैसा सिर
झुरियों से भरा शरीर,
कांतिहीन आंखें,
सच है, लाश कहीं
उससे बेहतर !

3. बीमार पड़ी रोग के मारे,
भीख माँगने तक की क्षमता नहीं ।
जाड़े का मौसम इधर कौने में,
आश्रयहीना, दीना मलीना ।।

4. बड़ी उमर, ढीली पड़ी झुर्रियाँ,

पड़ोस के चट्टानों की भांति
पड़ी रही, वह सड़ी रही ।

5. "यदि बुड्ढ़ी मर जावे !
पाप किसका"—यह प्रश्न उठाते
पगली हवा सरसर,
चल निकली वहाँ से ।

6. हड्डी की टुकड़ी मुंह में चबाते,
कहा नहीं कुत्ते ने कुछ, बस चुप रहा ।
मक्खी को निगलते, झटपट,
चला गया वहाँ से गिरगिट,

7. झुक आया चारों ओर अंधकार
धूल उड़ा इतने में,
'यह मेरा पाप नहीं'
घोषित करते हुए
आ गिरा जुठला पत्तल
बूढ़ी की गोद में ॥

द्वारका-गमन

•

कुलुवे वीरिराजु
(17वीं शती)

तदनन्तर, वैशंपायन ने जनमेजय को देखकर इस प्रकार कहा "हे कुरु वंश श्रेष्ठ ! जनार्दन इन्द्रप्रस्थपुर में, संतुष्टांतरंगी पाण्डुनंदनों के द्वारा समाचरित सत्कारों एवं पूजाओं को स्वीकार करते हुए, कतिपय दिन रहे । वहाँ से चल निकल कर द्वारकानगर को वसुदेव के दर्शनार्थ जाना चाहा । पहले युधिष्ठिर तथा अर्जुन से बिदा ली और तदनन्तर सर्वलोक-वंदित दिव्यश्रीचरणारविंद, गोविंद ने अपनी फूफी कुन्ती देवी के यहां जाकर उनके पादों में प्रणामसमर्पण किया । उस वक्त कुन्ती ने उसका परिष्वंग किया तथा उनके सिर का आघ्राण करके बिदा किया । तदुपरांत माधव ने अपनी भगिनी सुभद्रा के निकट जाकर कतिपय हितवाक्य कहे । उस समय, उनकी आंखें आनंदाश्रुओं से भरी हुई थीं । सुभद्रा ने भाई के प्रेमातिशय पूर्ण शब्दों को सुनकर पुनः अपनी ओर से माता पिता देवकी एवं वसुदेव के लिए, तथा अन्य बंधुवर्ग के लिये उपयुक्त कुशलसंदेश को मृदुभाषणों में भाई के द्वारा प्रेषित किया । भाई के चरण-कमलों में प्रणाम किया । श्रीकृष्ण भगिनी के योग्य आचरण से बहुत ही आनंदित हुए और वहाँ से पाण्डवपुरोहित, धौम्य के यहां जाकर उनका अभिवादन किया और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किये । वहाँ से द्रुपदराजपुत्री के यहाँ गये और उनको सांत्वना दी । सुभद्रा को उनकी देखरेख में सौंपा । तदनन्तर अर्जुन सहित धर्मनन्दन के पास गये । वहाँ पाँचों पाण्डवों से परिवेष्टित श्रीकृष्ण ऐसे दिखाई देने लगे मानों वृन्दारकवृन्द-परिवेष्टित पुरन्दर हों । यात्रा के समय करणीय कृत्यों को करना चाहा । फलतः उन्होंने दिव्य गंधमाल्यों से भूदेवगण की पूजा की, ब्राह्मणों को नमस्कार किया तथा उनसे आशीर्वाद पाये ।

माक्षा
उनके दिए हुए कुसुतों को शिरसा धारण किया। आपने ब्राह्मणों को उत्तम कनकांबर दिए तथा उनकी प्रदक्षिणा की। ब्राह्मणों की अभ्यनुज्ञा पाकर सकल गुणान्वित शुभमुहूर्त में, शंखचक्रगदादि आयुधों से विराजित, सैन्यसुग्रीव मेघपुष्प वलाहक नामक अश्वों से संयोजित, गरुडध्वज से सुशोभित, तथा रत्न एवं कांचन से अलंकृत दिव्यस्यंदन पर आरूढ़ हुए। उस समय, धर्मनंदन ने उस रथ पर आरूढ़ होकर तत्रस्थ सारथी दारुक को निवारते हुए, आप ही ने सारथ्य किया। भीम ने श्रीकृष्ण के मुकुट पर अतिविशाल, दिव्यमाल विराजित, सुवर्णमयकाण्ड से शोभित, श्वेतच्छत्र को लगाया। अर्जुन सांद्रचंद्रातप की अवहेलना करने वाले वालव्यंजनों को हिलाते डुलाते रहे। नकुल एवं सहदेव दोनों पार्श्वों में चामर वीजनों को डुलाते रहे। ऋत्विक् एवं पुरोहितजन भी साथ थे। यह सारा भव्य दृश्य ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों जगद्गुरु श्रीकृष्ण शिष्यवृन्द से परिवेष्टित हुए हों। धौम्य ने वृद्धजनों के साथ अभिमन्यु के रथ पर उनका अनुगमन किया। तदनन्तर, एक कोश जाने के बाद श्रीकृष्ण ने धर्मनन्दन तथा उनके अनुजों के साथ गले मिलकर, उनके साथ उचित औपचारिकताओं को निभा कर प्रणत नकुल सहदेवों के प्रति प्रेमभाव दिखाया और उनको इन्द्रप्रस्थपुर वापस भेज दिया। अपर आखण्डल की भाँति शोभित होने वाले गोविंद द्वारका गये। उधर जनार्दन का रथ जब तक दृष्टिगोचर हो रहा था तब तक पांडव उसी ओर देखते रहे, तदनन्दर रथ जब लोचनगोचर नहीं होने लगा तब तक राजीवाक्ष श्रीकृष्ण को हृदयकमल में प्रस्थापित करके उनकी प्रशंसा करते हुए वापस अपने नगर में आ पहुँचे।

लालच

•

परबस्तु चिन्नय्य सूरि
(19वीं शती)

एक वृद्ध व्याघ्र ने स्नान करके, हाथ में कुश धारण किए हुए, सरोवर के तट से चिल्लाते हुए कहा "हे पथिक ! इस स्वर्ण कंकण को आके ले जाओ।" एक पथिक ने उन शब्दों को सुना और मन-ही-मन सोचा "यह मेरे भाग्य के कारण ही मुझे मिल रहा है। इस पर सन्देह क्यों करूं और उसने पूछा "अच्छा ! कंकड़ कहां है ? दिखाओ तो सही।" बाघ ने हाथ पसारते हुए कहा "यह लो ! हेमकंकण !" और कंकण को दिखाया। पथिक ने पूछा "हां जी ! यह तो ठीक है। फिर भी तुम तो एक हिंसक जंतु हो। तुम पर कैसे विश्वास किया जा सकता है ?" इस पर बाघ ने उत्तर दिया। हे पथिक सुनो न ! पहले यौवनदशा में, मैं बड़ा दुष्ट रहा। अनेक गायों को, मनुष्यों की हत्या करके, असीम पाप का अर्जन मैंने किया। फलतः पत्नी को और संतान को मैं खो बैठा। मैं अकेला रह गया। उस वक्त एक पुण्यात्मा पुरुष ने मुझ पर दया करके, उपदेश दिया 'आगे चल कर गोहत्या और नरहत्या मत करो। सत्कार्य किया करो। "उस समय से मैंने पाप कर्म छोड़ दिए और पुण्य कृत्य करने लगा हूं। वृद्ध हूं। मुंह में से दांत निकल गये। मुंह मेरा पोपला है। नख भी नहीं हैं। उठने भर की ताक़त भी नहीं है। मुझ पर तुम विश्वास क्यों नहीं करते। तुम दरिद्र हो। अतः मैं इसको तुम्हें दान में देना चाहता हूं। निस्संकोचभाव से इस सरोवर में स्नान करके जाओ और इसको दान में ले लो। इन बातों को सुनते ही, वह लालच के मारे सरोवर में स्नान करने करने गया। सरोवर में उतरते ही, वह कीचड़ में धँस गया। तब बाघने देखा और कहा "हायरे ! बेचारे तुम कीचड़ में धँस गये हो ! मैं आकर तुम को उठाऊँगा। डरो मत !" इस प्रकार कहते हुए, उसने धीरे-धीरे उसके पास आ कर उसको पकड़ लिया। बाघ के चंगुल में फँसकर, वह यों सोचने लगा— क्रूर जंतु का विश्वास कभी नहीं करना चाहिए। इस पर विश्वास करके मैं इस हालत पर पहुँचा हूं। अब पछताने से क्या लाभ ! विधि का लेख न मेटनहारा !" बाघ ने उसको खा डाला।

अति संचय की इच्छा

परबस्तु चिन्नय सूरि

(19वीं शती)

अर्थ नित्य नहीं है। यौवन झरोवेग तुल्य है। जीवन बुद्बुद्प्राय है। अतः बुद्धिमान पुरुष को सत्वर धर्म का आचरण करना चाहिए। जो धर्माचरण नहीं करता उसको पछताते हुए शोकाग्नि संतप्त होना पड़ता है। तटाकगत जल के लिये जिस प्रकार प्रवाह की आवश्यकता है, उसी प्रकार समार्जित वित्तों के लिये त्याग ही रक्षा देता है; धन को खत्ते में निक्षिप्त करना, उसके विनाश के लिए मार्ग दिखाना है, और कुछ नहीं। मुंह और पेट को बंद रखकर—न खा कर—धनार्जन करने वाला क्लेशमात्र-भोक्ता, ठीक उसी प्रकार होगा जिस प्रकार दूसरों के लिए लकड़ियों की गठरी अपने सिर पर ढोना है। भोग और त्याग के लिये अनुपयुक्त धन के संचित होने से कोई लाभ नहीं है। उस के नष्ट होने से क्या हानि है? लोभी पुरुष धनिक होते हुए भी भोगविलास होने के कारण दरिद्र-तुल्य ही है। परन्तु फिर भी लोभी को धनार्जन, उसकी रक्षा उसकी हानिगत चिंता में प्राप्त दुःख—एक अतिरिक्त विशेषता है। लोभी अपने धन को गरीबों को नहीं देता। बंधुजनों के हितार्थ व्यय नहीं करता। स्वयं नहीं खाता। अंत में उनका धन या तो भूमिक्षेप के रूप में रह जाता है या चोरों के साझे में चला जाता है। प्रियवचनों के साथ दान करना, गर्वरहित ज्ञान, क्षमासहित—शौर्य, त्यागयुक्त धन, ये चारों जग में दुर्लभ वस्तुएं हैं। बुद्धिमान पुरुष को सर्वदा धनार्जनवृत्ति आवश्यक तो है, परन्तु अतिसंचय की इच्छा उसको नहीं करनी चाहिये।

प्रार्थना

•

कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु

प्रार्थना की आवश्यकता इसलिये है कि मनुष्य अपने सुख के लिए वांछित पदार्थों को, प्राप्त करने परात्पर परमेश्वर की सहायता की अपेक्षा रखता है। अतः प्रार्थना करना मनुष्य समाज के लिए एक स्वाभाविक गुण है। भूख लगने पर शिशु माता से दूध मांगता है। अन्नातुर दरिद्र पुरुष अपने से अधिक धनवान के घर जाकर अन्न मांगता है। रोगार्त व्यक्ति व्याधि-वेदना को दूर करने में समर्थ वैद्य के पास जा कर औषध के लिये प्रार्थना करता है। इस प्रकार, बाल-वृद्ध जितने भी व्यक्ति हैं, अपने पालन पोषण तथा संरक्षण एवं विपन्निवारण के लिए, उन कार्यों को कर सकने वाले व्यक्तियों के पास जाकर प्रार्थना करते हैं। पोषण और रक्षण के बिना जिस प्रकार शरीर सुख-चैन से नहीं रह सकता है उसी प्रकार आत्मा भी पालन पोषण के बिना सुख-चैन से नहीं रह सकती। देहसम्बन्धी पीड़ाओं के लिए जिस प्रकार उन पीड़ाओं को निवारण करने वालों के निकट जा कर प्रार्थना करते हैं उसी प्रकार मनुष्य आत्मसम्बन्धी कमियों के घटित होने पर उन कमियों को दूर करके सुख देने में समर्थ ईश्वर से सहज ही प्रार्थना करते हैं। जब ज्ञानशरीर पोषण के लिए आवश्यक सत्य, शांति आदि गुणों में कमी पड़ती है तो उनकी प्राप्ति के लिये गुणसंपतप्रदाता ईश्वर से ही प्रार्थना करना चाहिए। पापरूपी रोगों से पीड़ित आत्मा की रक्षा करने के लिये, भवरगिवैद्य ईश्वर की ही प्रार्थना करनी चाहिये। इन उक्त दृष्टांतों से यह सिद्ध होता है कि भगवत्प्रार्थना आवश्यक एवं नैसर्गिक है। समस्त विश्व के लिये जो आधारभूत है, बगैर जिसकी कृपा के हम एक पल भी जीने में असमर्थ होते हैं, जिसने अनुदिन हमारे अनुभव की, हमारे मनपसन्द की, हमारे जीवन को सुखमय बनाने वाली सारी वस्तुओं को तथा परिकरों को महती कृपा के साथ दिया है; ऐसे परम दयालु, परि-शुद्ध, प्रेमैकनिधि, ईश्वर को परिपूर्ण भक्ति भाव तथा कृतज्ञता भाव के साथ कौन ज्ञानी मनुष्य स्मरण किए बिना, उसकी प्रार्थना किये बिना रह सकता है ?

अपनी भाषा

•

श्री पानुगंटि लक्ष्मी नरसिंहराव

क्या आप को भाषा नहीं आती ? वाह रे वाह ! आप ने कौन सी ऐसी कोशिश की जो कि घोषित कर रहे हो कि भाषा नहीं आती । क्या आप समझते हैं कि भाषा अपने आप आपके पास चली आयेगी । जब मुहम्मद के पास पहाड़ नहीं आया तब मुहम्मद साहब पहाड़ के पास खुद गये या नहीं ? यदि आपको भाषा नहीं आती तो यह किसका दोष है ? भाषा का अथवा आपका ? यदि थोड़ी सी निष्ठा के साथ पढ़ता तो ऐसा कौन रह जाता जिस को भाषा नहीं आती । बगैर पढ़े ही भाषा को हासिल करना चाहते हो तो क्या उसको इतना आसान समझ बैठे हो ? जब आप भाषा को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं तब भाषा भी कैसे आपके प्रति प्रेम दिखा सकती है ? स्वीय भाषा में लिखी हुई पुस्तक जब आपके लिए तकिये के रूप में इस्तेमाल करने के लिये भी अनुपयुक्त है तो आप समझते हैं कि भाषा आपके दिमाग में वैसे ही प्रवेश कर जायेगी । ढंग से पढ़ने पर किसको भाषा नहीं आती ? गिन कर कहो, यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो तो उसका नाम स्मरण करो । अपने को धन्य मानेंगे । भाषा में जन्म ले कर, भाषा सीख कर भ्रष्ट होने वाला वह असाधारण विश्वातीत व्यक्ति कौन है ? जरा सुनाओ तो । यदि सचमुच स्वभाषाज्ञान अर्जन करने के लिये अनुपयुक्त महाद्भुत ज्ञानी कोई मिले तो हम वादा करते हैं कि आदि कवि नन्नयूयट्टु से ले कर आज तक जितने ग्रन्थ तेलुगु में उपलब्ध हैं सब को इकट्ठा करके बंगाल की खाड़ी में फेंक देंगे । जो भाषा हमको आती नहीं उससे हमें क्या काम ? हाय रे हाय ! जरा सा भी कष्ट नहीं उठाना है क्या ? लोग "ट्रान्सफर आफ प्रोपर्टी एक्ट" को तो खूब रट लेते हैं परन्तु ताराशशांकविजय को नहीं पढ़ सकते हैं । उसे पढ़ने से मनोरंजन तो होगा ही साथ ही भाषा ज्ञान भी हासिल होगा न ? क्यों नहीं पढ़ते ?

क्या कोई भी चीज यों ही आ जायेगी ? जो चीज़ मुंह में आयी, उसे कम से कम निगलना तो चाहिए पेट भरने के लिए। तावन्मात्र कष्ट उठाने के लिए भी आप प्रस्तुत नहीं हैं। मनुचरित्र में से एक आश्वास को पढ़ने की भी फुर-सत नहीं है। क्षमता नहीं क्या ? सूझ-बूझ नहीं क्या ? चन्द्रबुल्लि को तो खूब जानते हैं परन्तु चन्द्रमती का नाम तक नहीं जानते हो न ? भगवत और भाग-वत ग्रन्थों की गंध तक आप में नहीं है, यकायक बारिस्टर बन बैठे हैं। आपके अफसर बनने से क्या बड़ी बात हो गयी। आखिर आप आंध्र हो के क्यों पैदा हुए हैं ? हे महाशय ! आप से आंध्र प्रदेश को कौन सा फायदा है, बताओ न ? जिज्ञासा से पूछ रहा हूं। बुरा मत मानो। आपको कोई भारी भरकम पुस्तकें पढ़ने की जरूरत नहीं है। दिन में सिर्फ पाव घंटे भर समय निकालिए। रात में भोजन करने के बाद पत्नी और संतान को साथ बिठलाइए। वह ताम्बूल-चर्वण की वेला है। उस समय नान्कोपरेशन की बातें करते हुए, बीच-बीच में आन्ध्र पत्रिका को पढ़ा कीजिए। यही पर्याप्त है। समाचार पत्र को चार महीने पढ़ते जाइए और खुद परखिए कि चार महीने के बाद आप में तेलुगु का कितना ज्ञानवर्धन हो चला है। यदि आप को एहसास हो जाता है कि तेलुगु भाषा में कुछ सार है, इसमें कुछ पुष्टि और तुष्टि देने के गुण हैं तब तो कुछ साहित्यिक पुस्तकें भी पढ़ते जाइए न ! बात दरअसल यह है भाई साहब ! जहाँ सब लोग तेलुगु में बात किया करते वहाँ आपका अंग्रेजी में अकेला बोलते जाना क्या अच्छा लगेगा। कुछ बेसुर ही लगेगा न ! मसलन एक जगह सब कौवे काँव काँव कर रहे हैं और उनमें से एक ही कौआ ऐसा निकले जो कुकडूं कुकडूं करे तो कितना अजीब लगता है। दूसरे सब कौवों का चोंच से मार भगाने का खतरा है। असल में हम ऐसी कई विचित्र प्रकृतियों को देख चुके हैं। इसलिए आप बच गये। नहीं तो, कुछ कहा नहीं जा सकता।

मैं यह प्रश्न नहीं कर रहा हूं कि आपने अंग्रेजी क्यों सीखी। न हम इस पर आपका मज़ाक उड़ाने वाले हैं। आप उस में भी अत्यधिक ज्ञान को हासिल करो। मैं भी इस बात को पसन्द करता हूं। परन्तु क्या आप जानते हैं कि आपका अंग्रेजी ज्ञान वास्तव में किस प्रयोजन के लिए है ? अंग्रेजी ही नहीं दुनिया की और सारी भाषाओं को भी सीख लेना। आपका अर्जित यह सारा अन्य भाषाज्ञान आपकी मातृभाषा के उन्नयन में काम देना चाहिए। तभी इस ज्ञान की शोभा है। आन्ध्र भाषा में आपका ज्ञान अफसोस की बात है और 'आ' इन दो अक्षरों के आगे नहीं दिखायी दे रहा है। आन्ध्र हो कर आन्ध्र-भाषा में 'आ' करके मुंह नहीं खोल सकते हो। अब बताओ, ऐसी दयनीय दशा में आपका अंग्रेजी ज्ञान और आप देश के लिए किस काम के हैं !

पंजाबी साहित्य

चयन :

पंजाब विश्वविद्यालय के उपकुल पति,
श्री कृपालसिंह नारंग द्वारा
नियुक्त समिति

अनुवाद :

डाक्टर महीपसिंह

अनुक्रम

ऐतिहासिक समीक्षा		584
शेख फरीद (1469-1539)	• फरीदा गलीएं चिकड़ दूर घर	596
	• तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरउं	,,
	• भिजहु सिजहु कंबली अल्ला बरसउ मेह	597
	• फरीदा बुरे दा भला कर	,,
	• फरीदा मैं जाणिआ दुख मुझ कू	,,
गुरू नानक देव (1469-1539)	• चेतु वसंतु भला भंवर सुहावड़े	598
	• जैसी मैं आवै खसम की बाणी	,,
	• खुरासान खसमाना कीआ	599
	• दया कपाह संतोखु सूत	,,
	• जतु पहारा धीरजु सुनिआर	,,
	• कउण तराजू कवणु तुला	600
	• पढ़ि पढ़ि गड्डी लदिअहि	601
	• राती रुत्ती थिती वार	,,
	• गगन में थाल रवि चंदु दीपक बनै	602
	• मोती त मंदर ऊसरहि	,,
	• वैसाखु भला साखा वेस करे	603
	• घड़ीआ सभै गोपीआं	,,
	• कलि काते राजे कसाई	604
	• नदीआं होवहि धेणवा	,,
	• मोरी रुणझुण लाइआ	605
	• सभि सहीआ सहु रावणि गईआ	,,
	• तै साहिब की बात जि आखै	,,
	• मैं रोवंदी सभु जग रुना	606
गुरू अर्जुन देव (1563-1606)	• मेरा मन लोचे गुर दरसन ताई	607
	• तेरा मुख सुहावा	,,

	• इक घड़ी न मिलते तां	607
	• हउं गोंसाई का पहिलवानडा	608
	• एकु पिता एकस के हम बारिक	609
	• फूटो आंडा भरम का	"
	• तूं मेरा पिता तूं ही मेरी माता	610
	• सावणि सरसी कामणी	"
	• भाद्रो भरमि भुलाणीआ	611
	• गुरु का सबदु रखवारे	"
	• कर करि ताल पखावजु नैनहु	612
	• पाठ पढ़िउ अरु वेदु बीचारिउ	"
	• जा कउ मुसकल अति बनै	613
गुरु गोबिंद सिंह (1666-1708)	• देह शिवा वर मोहि इहै	615
	• देहुरा मसीत सोई	"
	• धन्न जीउ जग में तिहको	"
बुल्लेशाह (1680-1752)	• भावें जान न जान वे	616
वारिसशाह (17301790)	• लै वे रांझिआ बांह मैं लाइ थक्की	617
भाई वीरसिंह (1872-1957)	• टुटिआ फुल्ल	618
	• कवि रंग सुन्दरता	"
	• सुपने विच तुसी मिले	620
	• वीणकार नूँ बीणा पई आखे	621
	• मेरी छिपी रहे गुलज़ार	622
	• पत्थर शीशा हीरा	"
प्रो० पूरनसिंह (1881-1931)	• देश नूँ असीस साडी गरीबां दीं	624
धनीराम चात्रिक(1876-1954)	• आ रल मिल के	627

ऐतिहासिक समीक्षा

किसी भी भाषा में तब तक साहित्यिक बोध अथवा संवेदनशीलता नहीं आ सकती जब तक कि उस में एक विशेष संस्कार न आ जाए। इस प्रकार की प्रक्रिया, अनिवार्यतः लम्बे अरसे में घटित होती है और सामूहिक चेतना और विशिष्ट वर्ग के बोध से सम्बद्ध होती है। इसका आशय यह नहीं है कि साहित्य की भाषा लोकभाषा के मुहावरे से भिन्न और परे हो गई है। इस के विपरीत साहित्य की भाषा के लिए जरूरी है कि अपनी शक्ति और ऊर्जा को बनाए रखने के लिए, बोलचाल की भाषा के अत्यन्त निकट हो। पर ऐसा भी एक क्षण आता है जब भाषा अपने विशुद्ध लौकिक रूप को त्याग कर, सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बन जाती है। इस प्रकार, भाषा मनोवेगों और प्रतिक्रियाओं से सतत विस्तृत होते हुए जटिल रूप को वाणी देती है और चेतना के संगीत को गुंजा देती है। लोकभाषा के मुहावरे को भी, शिष्टतापूर्ण बनने से पूर्व कई अप्रत्यक्ष परिवर्तनों में से गुजरना पड़ता है। इस प्रकार साहित्य के रूप में भाषा तभी विकसित हो पाती है जब वह जागरूक अवस्था में हो। वस्तुतः भाषा का जनता की प्रतिभा से शब्द-रूप सह-संबंध है। बिटिगेन्सटीन के कथनानुसार भाषा जीवन-पद्धति का प्रतीक है।

पंजाबी भाषा जो कि वैदिक प्राकृत और अपभ्रंश से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है, कब साहित्यिक बन गई? यह कब गीत और कहानी के रुप में बह निकली? बोली से साहित्यिक भाषा के स्तर तक पहुँचने की इसकी यात्रा में क्या-क्या घटित हुआ? ये कतिपय ऐसे प्रश्न हैं जिन का कदाचित् एक उत्तर नहीं हो सकता। भाषा की रासायनिक प्रक्रिया, प्रायः प्रत्येक विश्लेषण को नकारती हुई चलती है। तो भी सौभाग्य से, आठवीं शती के आस-पास के साहित्य बोध की प्राचीनतम गतिविधियों की साक्षी हमारे पास उपलब्ध है। यह महत्वपूर्ण है कि पंजाबी साहित्य का उद्भव यदि धार्मिक नहीं तो धर्मोप-

देश से सम्बद्ध है। इस साहित्य का धर्म—निरपेक्ष रूप तक परवर्ती प्रक्रिया है। उत्तर भारत की अधिकांश आधुनिक भाषाओं के समान, पंजाबी भी हठ-योगी साधकों के प्रयत्नों से जो गोरखनाथ की कालावधि (840-1031) में विशेष रूप से सक्रिय थे, साहित्यिक भाषा का माध्यम बनी थी। ये रचनाएं अपने मूल रूप में हमें उपलब्ध नहीं हैं। कालान्तर में इन रचनाओं में, अनि-वार्यतः, क्षेपक जुड़ते गए थे और संवर्द्धन और क्षय होता गया था। वैसे इन रचनाओं में अभिव्यक्ति के जिस मुहावरे का प्रयोग किया गया है, वह मिली-जुली जन-भाषा के प्रकार का है। ऊपर से देखने पर, इस प्रकार का साहित्य आम लोगों में वेदान्त और हठ-योग को लोकप्रिय बनाने के विचार से रचा गया था। इस प्रकार यह साहित्य अद्भुत निग्रह का परिणाम था।

पंजाबी साहित्य की प्रथम प्रामाणिक और विशुद्ध अभिव्यक्ति भारत में इस्लाम के प्रवेश से ही मानी जा सकती है। इस नये फ़ौजी और जिहाद बोलने वाले समता-दृष्टि से पोषक धर्म को शान्तिप्रिय और अन्तर्मुखी हिन्दू धर्म के मुकाबले और विरोध में आना पड़ा। दोनों में समन्वय स्थापित करने के प्रयत्न के कारण ही, सूफी आन्दोलन का प्रवर्तन हो सका। उस काल की सर्वाधिक अन्तःप्रेरित प्रतिभाओं ने, सूफी-मत के रहस्यात्मक सांचों में ही अपनी दिव्यानुभूतियों को अभिव्यक्त किया। ऐसे करने वाले प्रथम सूफी कवि फ़रीद थे (1173-1265), जिन्होंने भाषा के ऐसे मुहावरे का प्रयोग किया जिससे मूल पंजाबी रुप को अक्षुण्ण रखने के साथ-साथ फारसी शब्दावली को भी आत्मसात् किया था। वस्तुतः यह विचार और संस्कृति की नदियों का रहस्यात्मक मिलन था। इस प्रकार फ़रीद ने साधनाशील मुस्लिम मत को चालू मुहावरे में अभिव्यक्त किया। उनके रहस्यात्मक पदों के काव्यात्मक बोझ पर भी पंजाबी प्राकृतिक दृश्यावली का प्रभाव देखा जा सकता है। उनकी कविता में जो प्रखर, प्रत्यक्ष, समृद्ध और अच्युत प्राकृतिक बिम्ब-विधान है वह उनके यथार्थ के ऐन्द्रिय-बोध की गवाही देता है।

अगले लगभग दो सौ वर्ष निराशा और मानसिक संकुलता के वर्ष हैं। इस बात के होते हुए भी कि यह काल बहुत बड़े पैमाने पर उलट-फेर का काल था इस बीच कोई भी प्रतिभाशाली कवि अथवा लेखक नहीं हुआ। साहित्यिक चेतना की इस पुंसत्वहीन अवस्था की तुलना चौसर के बाद की अंग्रेजी कविता की कुछ ऐसी ही प्रक्रिया के साथ की जा सकती है। ये साहित्यिक सांध्यलोक के ऐसे दीर्घ अन्तर्काल हैं जब सृजनात्मक चेतना सुस्त और निष्क्रिय रही है। महान साहित्य तभी रचा जाता है जब क्षण और व्यक्ति का एक साथ आविर्भाव होता है।

इस प्रकार का संयोग तब घटित हुआ था जब सिख मत के प्रवर्त्तक गुरु नानक (1469-1539) गीतों और भजनों में असीम अपरिमेय आनन्द के रूप में फूट पड़े थे। पंजाबी भाषा के इतिहास में यह एक अद्वितीय क्षण था जब एक असाधारण प्रतिभावान मानव ने इस भाषा को सूक्ष्मतम चिन्तन और गहनतम भावना का वाहक बनाया। एक बार तो जन-भाषा को इतना प्रौढ़ और उत्तम बना दिया गया कि यह सीधी-सादी और घरेलू बोली शास्त्रीय और परिष्कृत संस्कृत की तुलना में कहीं अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई। अतः भाषा का यह देशी मुहावरा, जो सशक्त, जीवन्त, स्फूर्तिवान और पुष्ट था और जो यथार्थ की धड़कनों के समीप पड़ता था, कवि की कल्पना के लिए बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ। गुरु नानक की कविता ने शास्त्रीय काव्य परम्परा, तत्कालीन लोक-छंदों, लोक-साहित्य की लयों और लोक-गाथा को आत्मसात् कर लिया। विद्वतापूर्ण और मताग्रही कथ्य को उन्होंने ऐसे रूपकों में बांधकर व्यक्त किया जो चूल्हे और घर, दुकान और गली से लिए गये थे। यही कारण है कि कल्पनात्मक शब्दों का तात्कालिक प्रभाव पड़ा और इनकी शक्ति से इनकार नहीं किया जा सका। उनके गौरवशाली और आत्मप्रेरित काव्य की प्रत्येक पंक्ति, क्रान्तिकारी मानववाद से स्पंदित है। गुरु नानक जीवात्मा के सुखों और जीवन के उल्लास से अनभिज्ञ नहीं थे। फूलों और पत्तियों, पहाड़ों और दृश्यावलियों, मछलियों और मुर्गियों, ऋतुओं, नदियों और समुद्रों के बिम्ब, जीवन की सादी और शाश्वत विविधता के प्रति उन के प्रेम को सूचित करते हैं। अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने भावात्मा की आन्तरिक सुन्दरता, उसकी खोज और आत्मोपलब्धि के गीत गाए हैं। उनकी महान् रचनाएं —'जपु जी', 'सिद्ध गोष्ठी', 'बारह मासा' आदि-ग्रंथ में संग्रहीत हैं।

उन के उत्तराधिकारियों ने, स्वभावतः गुरु नानक के छन्द-विधान को ग्रहण किया और उनके नाम पर पद-रचना की। गुरु रामदास में उच्च स्तर का सौंदर्य-बोध था और पांचवे गुरु अर्जुन देव में वे सभी गुण थे जिनके कारण वे आध्यात्मिक कवि बन गये। गहन विनम्रता और आस्था उनकी कविता की विशेषताएं हैं। इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण वे पद्यबद्ध पत्र हैं जो उन्होंने अपने पिता और गुरु से अलग होते समय लाहौर से लिखे थे। उनकी विरहानुभूति की गीतात्मक तीव्रता वाणी को उत्कंठित कर देती है। उनकी रचना 'सुखमनी' विश्व की महानतम रचनाओं में से एक है। इसमें अभिव्यक्ति शान्तिकारी है और दिव्य भावनाएं आज भी विभक्ति मानस को शान्ति पहुंचाने वाली है। गुरु अर्जुन देव ने ही 'आदि-ग्रंथ' को सम्पादित और संग्रहीत करने का महत् कार्य किया था। जिनके लिए अत्यन्त उच्च कोटि की विद्वता और चयनदृष्टि

अपेक्षित थी। अतः 'आदिग्रंथ' जिसमें गुरु गोबिन्दसिंह के बाद में गुरु तेग बहादुर के पद्य जोड़ दिये थे, मध्यकालीन भारतीय समाज और धर्मों का एक प्रामाणिक, व्यापक और प्रभावशाली सार-संग्रह है। प्रसिद्ध सिख विद्वान भाई गुरदास (1558-1636) जिन्होंने आदिग्रंथ के सम्पादन और संकलन में गुरु अर्जुनदेव को सहयोग दिया था, स्वयं भी एक उच्चकोटि के कवि थे। उनकी 'वारें' सिद्ध करती हैं कि वे आदिग्रंथ में संग्रहीत सिख आस्तिकता और जीवन-पद्धति के एक महान व्याख्याता थे। उनके प्रभावशाली पद और रूपक देवी वाणी के ज्ञान को विशुद्ध और ठेठ पंजाबी मुहावरे में व्यक्त करते हैं।

इस काल का गद्य-साहित्य सन्त-चरित-गान से सम्बद्ध है और इस में गुरु नानक की जीवनी और यात्राओं के विवरण दिए गये हैं। गुरु नानक से सम्बद्ध चमत्कारों और विभिन्न प्रकार के लोगों और पंडितों से उनके संवादों को भक्ति और श्रद्धा से संकलित किया गया है। इस समय तक गद्य पूरी तरह से विकसित नहीं हुई थी, यद्यपि 'जनम साखियों', 'परचियों' और 'वचनों' के अनाम लेखक भाषा माध्यम को साहित्यिक बनाने का प्रयास कर रहे थे।

सूफी-मत का, विशेष रूप से, एक व्यापक स्वरूप था। फ़रीद ने इस्लाम के कड़े और कठोर अनुशासन को स्वीकार किया था, जब कि उनके एक महत्वपूर्ण उत्तराधिकारी शाह हुसैन ने न केवल हिन्दू मतों और विचारों को ग्रहण किया बल्कि हिन्दू-बिम्बविधान और संदर्भों को भी ग्रहण किया। वे अपनी 'काफियों' के लिए प्रसिद्ध हैं। ये गीतात्मक गंध से संयुक्त हैं और इन में वास्तविकता को भेद देने वाली आत्मा की उत्कंठाओं को अभिव्यक्त किया गया है। इस मुहावरे में लिखने वाले अन्य लोग थे; सुल्तान बाहु, बुल्ले शाह और अली हैदर। इन तमाम कवियों ने पंजाबी भाषा का प्रयोग किया था और इसे अभिव्यक्ति और वैशिष्ट्य के नये धरातल प्रदान किये थे।

यद्यपि इस बीच धार्मिक और रहस्यात्मक काव्य का ही प्राधान्य रहा तथापि कविता को धर्म-निरपेक्ष बनाने की प्रक्रिया को एक लम्बे अरसे तक टाला नहीं जा सकता था। एक ओर तो युद्ध के गीत थे जिन के पीछे धार्मिक भावनाएं और धर्म प्रचार का जोश था, यह बात और है कि उन में साहसिक कार्यों और वीरत्वपूर्ण गुणों की गौरव गाथाएं वर्णित थीं, तो दूसरी ओर प्रेम के तराने थे जो इन्द्रियों का स्वाद लेने वाले लोगों की भावात्मक जिन्दगी से निसृत थे। युद्ध-गीतों में सबसे अधिक लोकप्रिय गीत हैं—गुरु गोबिन्दसिंह का 'चंडी दी वार' जिसका अपने क्षिप्र संवेग और नादात्मक संगीत के कारण आज भी स्पन्दनकारी प्रभाव है। एक अन्य परवर्ती कवि निज़बत ने नादिर शाह के आक्रमण के महाविध्वंस को पद्यबद्ध किया था और एक अन्य कवि

कादिर यार ने प्रसिद्ध सिख सेनापति हरिसिंह नलवा के वीरतापूर्ण कार्यों का कविता में वर्णन किया है ।

पंजाबियों के दिलों और घरों में प्रेम-गीतों के लिए सहज आकर्षण था । पंजाबी चूंकि विस्तृत, खुले और उपजाऊ मैदानों में रहते थे, अतः वे सदैव धरती के समीप रहते थे। उन की रहस्यात्मक रचनाओं में भी सूक्ष्म ऐन्द्रियता को साफ तौर से देखा जा सकता है । सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य था 'हीर-रांझा' जिस का पंजाबी काव्य-बोध पर जादुई प्रभाव दामोदर के समय से लेकर 17 वीं शताब्दी तक कभी भी कम नहीं हुआ । इस प्रेम-गाथा में निश्चय ही कुछ ऐसा आकर्षक तत्व है जिसने इसे एक साहित्य आद्यबिम्ब बना दिया है । सदियों से अनेक कवि इस गाथा को अपनी काव्यानुभूति का आधार बनाते रहे हैं पर इन कवियों में केवल वारिस शाह ही ऐसे थे (1730-1790) जिन्होंने अपने काव्य 'हीर' में इस प्रेम-गाथा को महाकाव्यात्मक गरिमा और अमर सौन्दर्य प्रदान किया । उन्होंने पंजाबी मुहावरे की शब्दार्थ संबंधी संभावनाओं का ही पूर्णतः प्रयोग नहीं किया है बल्कि उन्होंने अपने काव्य को सौंदर्यात्मक तत्वों से विभूषित किया है । उन के काव्य के शृंगारात्मक दृश्यों में ताजगी और सरलता का सौन्दर्य है । वास्तव में, वारिस की हीर को महानतम कविता बनाने वाला तत्व है कवि की रुचियों और उसके विचारों का विस्तृत क्षेत्र । वारिस शाह में न केवल समृद्ध और ऐन्द्रिय कल्पना शक्ति थी बल्कि एक सार्वभौम मन भी था । यह महाकाव्य पंजाबी जीवन और संस्कृति का सर्वाधिक प्रामाणिक और सुविस्तृत चित्र है । अन्य प्रेम-कथाएँ और त्रासदियाँ 'मिर्ज़ा और साहिबां,' के लेखक पीलू और 'ससी और पुन्नू' के लेखक हाशम आदि यद्यपि लोकप्रिय हैं, फिर भी 'हीर' के स्तर तक ये कभी नहीं पहुँच सकीं ।

यह एक दिलचस्प तथ्य है कि एक विशिष्ट धरातल पर कविता की मानवीयकरण-प्रक्रिया 18वीं शताब्दी में शुरू हुई । भाई मनीसिंह ने (1644-1734) अपनी जन्म साखी में देशी भाषा का लचीलापन और शक्ति बना ए रखते हुए, गद्य को गहन और सुगठित चिन्तन का माध्यम बनाया ।

19वीं शताब्दी के पहले 50 वर्ष का समय पंजाब में सिख गौरव और प्रभुसत्ता का काल है और रणजीत सिंह के शासन काल में पंजाबी साहित्य की बहुमुखी समृद्धि हुई । लेकिन, आश्चर्य है कि तब भी पंजाबी राज-भाषा नहीं बनी ।

पंजाबी की साहित्यिक परम्परा चार सौ वर्ष से भी अधिक पुरानी हो चुकी थी जब अल्पकालीन सिख शासन समाप्त हो गया; अंग्रेजों ने पंजाब को जीत लिया और वहाँ अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया । इस प्रकार की

कँपा देने वाली, ज़बरदस्त घटना का, नयी पीढ़ी के लेखकों के साहित्यिक बोध पर दूरगामी प्रभाव पड़ना अपरिहार्य था। 19वीं शताब्दी के दूसरे चरण में एक ऐसे मुहावरे में रूढ़िग्रस्त कविता लिखी जाती रही जो नकलचियों के हाथ में पड़ कर अपनी ताज़गी और शक्ति खो बैठी थी। इस बीच प्रेम-कथाओं के अभिप्रायों को बिना किसी विशेष कौशल और कल्पना के दुहराया गया। इस संक्रमण काल में शाह मुहम्मद (1782-1862) ही एक ऐसे विशिष्ट कवि हैं जिन्होंने सिख-साम्राज्य के विघटन के सम्बन्ध में, संवेदनात्मक ढंग से लिखा था और स्थिति की वेदना को ऐसी भाषा में अभिव्यक्त किया था जो भावना-स्फूर्त थी।

अगले कुछ दशकों में पुराने मूल्यों का धीरे-धीरे क्षय होता गया और एक नयी, पाश्चात्य-प्रभावित, उदार, प्रजातांत्रिक, वैज्ञानिक और समान चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। अंग्रेजी भाषा और साहित्य युवकों के लिए विशेष रूप से एक जबरदस्त आकर्षण था। जिन्होंने अंग्रेज और उपमहाद्वीपीय लेखकों और दार्शनिकों को पढ़ा था, वे उपासना और प्रार्थना भी करने लग गए। इसमें सन्देह नहीं कि पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों तथा आर्य समाज और सिंह सभा ने, 20वीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों में पश्चिमी चेतना की अभिवृद्धि को रोका। पर जैसे ही फ्रायड के मनोविज्ञान, मार्क्स के चिंतन और यूरोप के सौन्दर्य-शास्त्र और साहित्यिक शिल्प साधनों को समझा गया और आत्मसात कर लिया गया, अतीत से लगभग पूर्ण विच्छेद हो गया।

दो लोकों में एक सेतु के समान कार्य करने वाले कवियों में से केवल भाई वीर सिंह (1872-1957) ही थे जिन्होंने युग चेतना को बड़े सशक्त ढंग से वाणी दी। यद्यपि उन्होंने पाश्चात्य चिंतन और शैलियों से स्वयं को बचाया और स्वदेशी रहस्यात्मक और आध्यात्मिक स्रोतों से अपनी काव्य वस्तु ग्रहण की परन्तु उन्होंने भी परिवर्तन की प्रक्रिया को लक्षित किया है। उन्होंने पंजाबी में लगभग सभी प्रकार की नई विधाओं जैसे उपन्यास, निबन्ध, ललित साहित्य आदि का प्रवर्तन किया। इस सब के होते हुए भी वे एक कवि के रूप में गुरुओं के बाद शायद महानतम कवि के रूप में, वे पंजाब में स्मरण और सम्मानित किए जाते हैं। आश्चर्य नहीं कि हरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने उन्हें 'पांच नदियों के देश में छठी नदी' कहा है। उन्होंने लगभग हर विषय पर कविता लिखी है। महाकाव्य लिखना उन के लिए उतना ही स्वाभाविक और सहज था जितना कि लघु-गीत लिखना। राणा सूरत सिंह जो अतुकान्त छन्द में लिखा हुआ महाकाव्य है, पंथी-आत्मा के निर्वाण के साक्षात्कार की खोज का काव्य है। इस के रूपकात्मक पात्र और इसमें व्याप्त अन्य सन्दर्भ स्पेन्सर

की 'फेअरी क्वीन' की याद दिलाते हैं। उनके प्रकृति से सम्बद्ध गीत न केवल वर्डस्वर्थ के गीतों के समान हैं बल्कि उनमें एक अद्वितीय रहस्यात्मक प्रभा-मंडल भी है। वे इतने ताज़े, सौरभ-सने और नाज़ुक हैं जितने कि ओस से गीले फूल और इतने उत्कृष्ट हैं जितना की कोई चीनी फूलदान। भाई वीर सिंह की उनके महान् समकालीन, डबल्यू० बी० यीट्स के साथ तुलना करना उचित नहीं है क्योंकि दोनों कवियों की एक दूसरे से बहुत भिन्न जीवन-दृष्टियाँ और शैलियाँ थीं, यद्यपि यह कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों यह कवि बड़े होते गए, इन की कविता अधिक सशक्त होती गयी।

भाई वीर सिंह से पूरन सिंह (1881-1931) तक की यात्रा साफ सुथरी और सहज यात्रा है मानों यह दिव्य सन्देशवाहकता का स्वाभाविक उत्तराधिकार हो। सिख रहस्यवाद में पूरन सिंह की दीक्षा महान् कवि और ज्ञानी के साथ सम्पर्क का सीधा परिणाम थी। तो भी, उनकी काव्यात्मक रुचियाँ और शैलियाँ एक दूसरे से बहुत भिन्न थीं। भाई वीरसिंह में जहाँ अत्यन्त उन्मुक्त फैन्टेसियों में भी क्लासिकल संयम का गुण है वहाँ पूरन सिंह में अन्तः प्रेरणा का स्वच्छन्दतावादी गुण है। जापान के अनुभव ने और छोटी आयु में ही वाल्ट विट्मैन के साथ सम्पर्क के कारण उन की कविता में अद्वितीय सौन्दर्य और उन्मुक्तता है। उन्हें सहज प्रेरणा से बोध हो गया था कि काव्य को मुक्त रूप में अपना कर ही वे अपने स्वप्नों और आंकाक्षाओं को वाणी दे सकेंगे। पंजाबी धरती से गहरे में जुड़े होने के कारण, गांव की युवतियों के रुदन और नृत्य के, पशुओं के रँभाने और चरने के, किसानों के बीज बोने और फसल काटने के गीत उन्होंने गाए हैं। वस्तुतः, वारिस शाह के बाद पूरन सिंह ने ही पंजाब की आत्मा की इतने उन्मुक्त रूप में काव्याभिव्यक्ति की है। यह सही है कि कहीं-कहीं विट्मैन की समृद्धि का अन्दाज़ उन के कथ्य को बिखरा देता है और काव्यात्मक साँचों में वह समाहित नहीं हो पाता। खुले मैदान, खुले खेत, खुले आसमानी रंग, आदि उन के काव्यों के शीर्षक उन की कविता की असीम मुक्ति के सूचक हैं।

भाई वीर सिंह और पूरन सिंह, वर्तमान शताब्दी के तीसरे दशक के मध्य तक, काव्य के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहे हैं। धनीराम चात्रिक के पास वैसी व्यापक दृष्टि नहीं थी क्योंकि उन की प्रतिभा मीठे और सुन्दर गीत लिखने की थी। उस समय बहुत कम पंजाबी कवि थे जिन की भाषा इतनी शुद्ध और प्रांजल हो। वे भाषा से प्रेम करते थे और इस का प्रयोग सूक्ष्म विवेक और अधिकार से करते थे।

इस विवेचन से हम आधुनिक पंजाबी कविता के प्रवेशद्वार पर आ खड़े

होते हैं । जैसा कि हम जानते हैं आधुनिकता समकालीनता की अपेक्षा दृष्टि और स्थिति विशेष का प्रश्न है । इसमें कथ्य और कथन प्रकार दोनों समाहित हैं । इस प्रकार तीसरे दशक की पंजाबी कविता को आधुनिक बनाने वाली जो बातें हैं वे हैं नयी काव्य वस्तुओं जैसे यौन-प्रेम, राजनीति, मतवाद, सक्रियता प्रतिबद्धता, असम्प्रेषणीयता और अजनबीपन आदि का कविता में प्रवेश । यह एक प्रकार से अस्वीकार का काव्य है । इस काव्य में फ्रायड के 'चेतना प्रवाह' और प्रतीकवाद से लेकर सामाजिक यथार्थ की रचना प्रणालियों का प्रयोग किया गया है । यह ठीक है कि नव्य काव्य का बहुत-सा अंश अनुकृति मात्र है और बहुत कम भारतीय भाषाएँ हैं जिनमें समकालीन चेतना की अभिव्यक्ति के लिए स्वदेशी काव्यात्मक शिल्पविधि को अन्वेषित किया गया हो । पाश्चात्य शैली का आकर्षण अभी बना हुआ है ।

नयी कविता का प्रारंभ मोहन सिंह से होता है (जन्म 1905) जिन्हें प्रथम आधुनिक कवि माना जाता है । विशुद्ध स्वच्छन्दतावादी और परम्परागत काव्य में दीक्षित होने के बाद उन्होंने भोगी हुई अनुभूति और गहरे मानवीय अर्थ में संयुक्त कविता लिखी और एक प्रकार के क्रांतिदर्शी मानववाद की परिकल्पना की । मोहन सिंह की विशेष शक्ति गीत हैं और उनके कई गीतों की रचना अद्‌भुत लयात्मक विधानों में हुई है । पर, इधर कुछ अरसे से उन की गीतात्मक लयविधान की शक्ति छीज रही है । प्रयोग-धार्मिता और गीतात्मक संवेदना की दृष्टि से मोहन सिंह के समीपतम पड़ने वाली कवयित्री हैं अमृता प्रीतम (जन्म 1919) । पंजाब के दुःखद विभाजन के परिणामस्वरूप जो भावनात्मक धक्का लगा उस से उनकी कविता का नव-विन्यास हुआ है । उन की जवानी की कल्पनाएँ एक तीव्र आत्मबोध, प्रश्नवाचकता और पीड़ा-बोध में बदल गयीं । यह कविता कवयित्री की आन्तरिक और मानसिक दशाओं की कविता है और यदि हापकिन्स के प्रसिद्ध कथन का प्रयोग करें तो यह आन्तरिक भूगोल का चित्रण करने वाली कविता है । कालान्तर में उन की कविता अधिक मधुर और सौम्य हो गयी है और वह जीवन में एक मौन समीकरण बैठाने की तलाश में है । एक अन्य प्रसिद्ध कवयित्री हैं प्रभजोत कौर (जन्म 1944) जिसने कुछ वैसी ही आन्तरिक उथल-पुथल देखी है । वह आकर्षक और सहज ढंग से लिख रही हैं । उन का नवीनतम संग्रह 'पब्बी' उन की सच्ची काव्य-प्रतिभा की गवाही देता है जिससे कि वे नए रचना-विधान और शब्दरूपावली के अन्वेषण के लिए काव्यबोध के क्षेत्र का विस्तार करती हैं ।

प्रीतम सिंह सफ़ीर (जन्म 1916) की एक मौलिक और विशिष्ट शैली

है। कीट्स के शिष्यतत्व और इलियट की बोध-प्रक्रिया और दुर्बोधता में रमे रहने के बाद, अन्ततः उन्होंने अपने पूर्वजों के रहस्यवाद में ही शरण ली।

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद से, पंजाबी कविता, पहले की अपेक्षा अधिक जीवन सम्पृक्त और प्रयोगात्मक हो गयी है। नये कवि चिंतन के पीछे रहने वाली विचारधाराओं के प्रति जागरूक हैं, पर उन के काव्य की चमत्कारपूर्ण और चौंकाने वाली प्रवृत्तियों को सदैव सराहा नहीं जा सकता। 'अवां गार्द' स्कूल के कवि हैं—हरिभजनसिंह, जसवन्त सिंह नेकी, सोहन सिंह मीशा, जसबीर सिंह आलुवालिया और हसरत। युवा स्वप्नों और विरही प्रेम का कवि शिवकुमार बटालवी आज का सर्वाधिक संभावनापूर्ण कवि है। वह एक संवेदनशील कवि है और उसके गीत कोमलता से कसे हुए वायलिन के तारों के समान हृदय को झंकृत और स्पन्दित करते हैं। अपने महाकाव्यात्मक काव्य 'लूना' के द्वारा उन्होंने एक वर्णनात्मक कवि के रूप में भी अपने काव्यगत वैशिष्ट्य को स्थापित किया है।

इस में जरा भी सन्देह नहीं है कि समकालीन साहित्यिक विधाओं में केवल कविता ही है जो महत्वपूर्ण अतीत का दावा कर सकती है। नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना अभी बनने की प्रक्रिया में हैं। इन विधाओं में अभी प्रौढ़ता नहीं आई है।

यह सचमुच हैरानी की बात है कि कालिदास से लेकर एक सुदीर्घ और सम्मानित परम्परा के होते हुए भी, पंजाबी सर्जक का ध्यान नाटक की ओर बहुत बाद में गया। गांव की 'नकलों' और नाटकों से सजीव रंगमंच की भावना का तो विकास हुआ, पर प्रथम विश्व-युद्ध तक कोई भी प्रतिभाशाली लेखक नाटक रचना में प्रवृत्त नहीं हुआ। ईश्वर चन्द्र नन्दा (1892-1966) पहला नाटककार था जिसने पश्चिम से प्रेरणा ली। उन्होंने एक बाँके पूँजीपति के जीवन को चुस्त और यथार्थ संवादों द्वारा चित्रित किया है और व्यक्तित्व सम्पन्न और वर्गगत दोनों ही प्रकार के पात्रों को अपने नाटकों में लिया है। उन्हें रंगमंच की गहरी समझ थी और इसी बात ने उन के नाटकों को विशेष रूप से अभिनेय बना दिया है। सन्त सिंह सेखों (जन्म 1904) ने, जो यूरोपीयन नाटक के अच्छे ज्ञाता थे, पंजाबी नाटक को स्वयं में, एक कलात्मक कृति बनाने का प्रयत्न किया। विद्रोह और मूर्तिभंजक होने के कारण उन्होंने निष्क्रिय और जीर्ण परम्पराओं, अनिष्टकारी निषेधों और रूढ़ियों को चुनौती दी और रंगमंच की मृतप्रायः काया में क्रान्तिकारी और मानवतावादी चेतना का संचार किया। उन के नाटकों में विशेष रूप से 'कलाकार' 'वारिस' 'नल दमयन्ती' आदि में इब्सन, फ्रायड और मार्क्स आदि का प्रभाव साफ तौर

से देखा जा सकता है। दूसरी ओर हरचरण सिंह ने (जन्म 1914) स्वयं को किसी मत, दर्शन अथवा प्रयोगात्मक नाट्य-विधान का गुलाम नहीं बनने दिया। उनके प्रारंभिक नाटकों में सुधारवादी और प्रगतिशील दृष्टि-कोण है, जब कि बाद में वे अपने नाटकों में मनुष्यों के आन्तरिक संसार का अन्तर्दृष्टि और कल्पना के द्वारा अन्वेषण करते रहे हैं। 'शोभा शक्ति' नाटक में वे समकालीन यथार्थ की पकड़ का परिचय देते है। आधुनिक पंजाबी का संभवतः सब से लोकप्रिय और महत्वाकांक्षी नाटककार बलवंत गार्गी (जन्म 1918) है। रूसी, यूरोपियन और अमरीकी नाटक से सक्रिय सम्पर्क होने के परिणामस्वरूप वह रंगमंच कला में पूर्णतः दीक्षित है। प्राचीन संस्कृत नाटक और लोक-रंगमंच द्वारा विकसित प्रणालियों में भी वह समान रूप से कुशल है। उन के पहले नाटक 'लोहा कुट' में पंजाबी बोली और ग्राम्य-भाषा की सच्ची समझ के अतिरिक्त स्थान के गहरे बोध का भी पता चलता है। इसी लिए यह नाटक पंजाबी नाटक की प्रगति का सूचक सिद्ध हुआ। तब से बलवंत गार्गी ने विभिन्न दिशाओं में तेजी से उन्नति की है।

उपन्यास का प्रारंभ भी काफी देर से हुआ और इसका कारण यह था कि यह कलात्मक विधा संबंधों की जटिलता के लिए, जो विकासशील औद्योगीकृत समाजों में व्याप्त है, अधिक अनुकूल है। इस बीच प्रतिष्ठित और लोकप्रिय उपन्यासकारों में नानकसिंह (जन्म 1897) ट्रौलोप और बैनेट के समान, उपन्यास के बाद उपन्यास की रचना करते जा रहे हैं। वे मूलतः, किस्सागो हैं और कथा के सभी युग प्रचलित तत्वों तथा रोमांस षड्यन्त्र और मेलोड्रामा का भी प्रयोग करते हैं। तो भी एक तीव्र समाजपरक और मानवीय संवेदना उन के कथा साहित्य की विशेषता है। यदि वे मध्यवर्ग के लिए लिखते हैं तो मध्यवर्ग ही उनके व्यंग्य का भी विषय है। सुरेन्द्रसिंह नरुला के आगमन से (जन्म 1919) पंजाबी उपन्यास विचारों और प्रयोगों के क्षेत्र में प्रवेश करता है। वे वर्णनात्मकता से चरित्र चित्रण की ओर बढ़ते हैं। अपने महत् उपन्यास 'प्यो पुत्तर' में उन्होंने नगर जीवन की पृष्ठभूमि में पीढ़ियों के संघर्ष को नाटकीय ढंग से निरुपित किया है। जिस सामग्री का वे प्रयोग करते हैं उनका यथार्थ परिज्ञान उन्हें है और वे इसे पाश्चात्य शिल्पविधि द्वारा परिपुष्ट, विकसित कथा-संवेदना द्वारा रूपायित करते हैं। अमृता प्रीतम ने अपने उपन्यासों में जैसे 'डाक्टर देव' और 'पिंजर' में यथार्थ के काव्यात्मक और कोमल पक्षों का उद्घाटन किया है। ऐतिहासिक उपन्यास का प्रतिनिधित्व नरेन्द्रपालसिंह ने सफलतापूर्वक किया है। महेन्द्रसिंह सरना, सुरजीत

सिंह सेठी, गुरदयालसिंह तथा अन्य लेखकों ने ऐसे उपन्यास लिखे हैं—जिन की तुलना अन्य प्रादेशिक भाषाओं में रचित उपन्यासों से की जा सकती है।

कविता के अलावा, कहानी ही ऐसी विधा है जिसमें सच्ची सृजनात्मकता लक्षित की जा सकती है। एक नये कला-रूप की दृष्टि से इस विधा के विकासक्षम होने का मुख्य कारण यह है कि इसमें प्रयोग के लिए गुंजाइश है। जीवन के एक खंड का चित्रण करने के लिए महत्व अथवा विविध—आयामी कल्पना भले ही आपेक्षित न हो, इसके लिए जरूरी है कि एक क्षण का अर्थ, चरित्र की एक झलक, मुद्रा और वातावरण की एक भंगिमा अलग-अलग कौंध जाए और सौंदर्यात्मक संश्लिष्टिता में समाहित हो जाए। इस में सन्देह नहीं कि पंजाबी लेखकों के सामने मोपासाँ, चेखव, गोर्की, कैथरीन, मेन्सफील्ड, एच० ई० बेट्स, ओ० हेनरी आदि लेखकों के आदर्श थे, पर, इनमें जो अधिक विशिष्ट थे जैसे सन्तसिंह सेखों, करतारसिंह दुग्गल, कुलवन्तसिंह विर्क, अजीत कौर और दलीप कौर टिवाणा आदि ने पाश्चात्य संरक्षण से मुक्त होकर विकास किया और स्वतंत्रता, संयम और विग्धता का परिचय दिया।

पिछले कुछ अरसे से पंजाबी गद्य भी निखर रहा है लेकिन गुरबख्शसिंह (प्रीत लड़ी) की प्रांजल और निर्दोष शैली और तेजासिंह (1894-1958) के विद्वतापूर्ण और साहित्यिक मुहावरे में पंजाबी गद्य आधुनिक और दार्शनिक चिन्तन के दबाव को वहन करने में समर्थ नहीं है। अतः हल्के-फुल्के निबन्ध ही पंजाबी गद्य प्रवहमानता और सौंदर्य के प्रतिनिधि हैं। बलवंत गार्गी के उपहास के अंदाज में लिखित रोचक रेखाचित्र 'निम दे पत्त', ज्ञानी गुरदित्त सिंह को गांव की जिन्दगी के वाक्-पटु और स्वच्छन्द वैविध्य का संग्रह 'मेरा पिंड' छोटी-मोटी महत्-कृतियां तो बन ही चुकी हैं, साथ ही उन की अच्छी अनुकृत्तियों ने भी जन्म ले लिया है।

साहित्यिक समीक्षा एक ऐसा अनुशासन है जिसका स्तरीय बनना और प्रतिष्ठा प्राप्त करना अभी शेष है। अधिकांशतः शोधार्थियों और शोध-प्रबन्धों तक सीमित यह समीक्षा पाश्चात्य साहित्यिक मानदंडों और सौंदर्यात्मक सिद्धांतों को प्रायः आधार मान कर चलती है। आधुनिक रचना-विधान की जटिलता को विवेचित करने के लिए नये आलोचनात्मक शब्द गढ़े गए हैं पर, ये शब्द नितान्त अस्थायी प्रतीत होते हैं। डा० मोहनसिंह दीवाना पंजाबी आलोचना के वरिष्ठ आलोचक हैं, जब कि मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र पर आधृत अधिक संवेदनशील, विश्लेषणात्मक और प्रामाणिक आलोचक सन्तसिंह सेखों

हैं जो कि पिछले तीन दशकों से नियामक रहे हैं। एक अन्य मार्क्सवादी आलोचक किशनसिंह हैं जो अपने निर्णयों में अधिक निर्भय और मताग्रही हैं।

पंजाबी के एक राजभाषा बनने से और एक नए विश्वविद्यालय के इसके विकास के लिए प्रतिश्रुत होने से, हमें आशा करनी चाहिए कि पंजाबी साहित्य के नए आयाम खुलेंगे।

—डा० दर्शनसिंह मैनी

शैख़ फरीद

फरीदा गलीएँ चिकड़ दूर घर

फरीदा गलीए चिकड़ दूरी घरि ।
फरीदा गली में कीचड़, दूर घर, प्रियतम के संगनेह ।
चलूं तो भीजै कंबली, रहूं तो टूटै नेह ।

(सलोक 25 गुरु ग्रंथ साहब पृष्ठ 1379)

तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरउं

तप-तप, तड़पूं हाथ मरोड़ूं ॥
बावलि होकर प्रिय को ढूंढ़ूं ॥
तुमने प्रभु, मन में किया रोष ॥
अवगुण मुझमें, प्रिय का नहि दोष ॥ 1 ॥
प्रिय की मैंने सार न जानी ॥
यौवन खोय पीछे पछतानी ॥ 1 ॥
काली कोयल तू किस गुण काली ॥
अपने प्रियतम के मैं बिरहे जाली ॥
प्रिय—विहीन कोई कहां सुख पाए ॥
जो होए कृपाल तो प्रभु मिलाए ॥ 2 ॥
अंधा कुआं मैं नारि अकेली ॥
ना कोई साथी ना कोई सहेली ॥

करि कृपा प्रभु साधु-संग मेली ॥
जो फिर देखूं तो अल्लह् बेली ॥ 3 ॥
जीवन—यात्रा बड़ी दुखदाई ॥
तलवार की धार, संकरी बहुताई ॥
उसके ऊपर मारग है मेरा ॥
शेख फरीदा पंथ संभाल सवेरा ॥ 4 ॥

(राग सूही-गुरु ग्रंथ साहब-पृष्ठ 794)

भिजहु सिजहु कंबली अल्ला वरसउ मेह

कमली भीगी-गीली, अल्लह् बरसे मेह ॥
जाए मिलूं अपने सजना से, टूटे नाही नेह ॥

(सलोक 25 गुरु ग्रंथ साहब पृष्ठ 1379)

फरीदा बुरे दा भला कर

फरीदा बुरे का भला कर, गुस्सा मन मत लाओ ॥
देही रोग लगे नहीं पल्ले सब कुछ पाओ ॥

(सलोक 76 गुरु ग्रंथ साहब पृष्ठ 1381-82)

फरीदा में जाणिआ दुख मुझ कू

फरीदा मैंने समझा दुख मुझे, दुख तो सारे जग में ।
ऊंचे चढ़कर मैंने देखा, घर घर जले इसी आग में ॥

(सलोक 81 गुरु ग्रंथ साहब पृष्ठ 1382)

गुरु नानक देव

चैतु बसंतु भला भंवर सुहावड़े

चैत बसंत भला भँवरे सुहाने ।।
बनराजि फूल पड़ी वनो में प्रिय मेरे घर आने ।।
प्रियतम घर नहिं आए, स्त्री क्योंकर सुख पाए, विरह व्यथा तन छीजै ।।
अमराई में कोयल बोले बोल सुहाना, दुख कैसे सह लीजै ।।
भँवरा घूमे फूली डाली, हे माँ मैं मृत कैसे जीवन पाऊँ ।।
नानक, चैत सहज सुख पाऊं, यदि हरि प्रिय को घर में पाऊं ।।

(तुखारी राग-पृष्ठ 1108)

जैसी मैं आवै खसम की बाणी

प्रिय की जैसी वाणी आए वैसा देता ज्ञान, हे लालो ।
(बाबर) पाप की बारात ले दौड़ा काबुल से, बलात् मांगता दान हे लालो ।
शरम-धरम दोनों छिप गये हैं झूठ बना प्रधान हे लालो ।
कोई न पूछे काजी ब्राह्मण, पुरोहित बना शैतान हे लालो ।
मुसलमानियां कुरान पढ़ें, कष्ट में करें याद खुदा हे लालो ।
हिन्दुवानियां ऊंची-नीची भोग रही हैं यही व्यथा हे लालो ।
खून के गीत गाए नानक, रक्त का केसर पड़ा हे लालो ।

(राग तिलंग-पृष्ठ 722)

खुरासान खसमाना हिंदुसतानु डराइआ

(हे प्रभु) खुरासान को अपना समझा हिन्दुस्तान डरा दिया ॥
खुद को दोष न देता कर्त्ता यम रूप मुगल चढ़ा दिया ॥
इतनी मार पड़ी, क्रन्दन है, तुम को कुछ भी दर्द न आया ॥
कर्त्ता तुम तो सब के हो ॥
यदि बली बली को मारे मन में दोष नहीं होता ॥1॥
पर बली सिंह मारे पखुओं को उनका स्वामी कैसे सोता ॥
रतन विगाड़ दिया कुत्तों ने, मरने पर पूछे नहिं कोई ॥
(हे प्रभु) तुम खुदी मिलाओ खुदी विलगाओ देखूं तेरी बड़ाई ॥2॥
यदि कोई नाम बड़ा रख ले और स्वाद चखे मन माने ॥
प्रभु की नजर में कीड़ा है वो चुगता फिरता दाने ॥
मर मर जाओ तब कुछ पावो नानक नाम बसाने ॥3॥

(आसा राग-पृष्ठ 360)

दया कपाह संतोखु सूत

दया कपास संतोख सूत मति गांठ सत् की हो पूरन ।
यह जनेऊ जीव का है तो लाओ पांडे भाई ॥
ना यह टूटै ना मल लगै न यह जले न जाय ।
धन्य वह मानस नानका, जो धारण करता जाय ॥
चार कौड़ी के मोल खरीदा और चौके में बैठ उसे पहनाया ॥
कान में उसके शिक्षा डाली ब्राह्मण को गुरु बनाया ।
वह मरा और उसे जलाया वह जनेऊ कहाँ गया ॥

(वार आसा-पृष्ठ 471)

जतु पहारा धीरजु सुनिआर

संयम बना भट्टी और धीरज बना सुनार ॥
बुद्धि बनी निहाई और ज्ञान बना हथियार ॥
भय हुआ धौंकनी और तपस्या बनी आग ॥

प्रेम-भाव का पात्र, डालो उसमें अमृत नाम ।।
इस सच्ची टकसाल में गुरु शब्द के ढालो सिक्के ।।
पर वही करें यह कर्म जिन पर उस की कृपा विशाल ।।
नानक, दृष्टि मात्र से साधक हुआ निहाल ।।
पवन गुरु पानी पिता माता धरती महत् ।
दिवस रात दोनों दाई-दाया खेले सकल जगत् ।।
गुण अवगुण बाचे जाते हैं धर्म की हज़ूरी में ।
अपने-अपने कर्म, कोई रहता निकट और कोई दूरी में ।।
जो ध्याते है नाम उसका और करते गये कर्म ।
नानक, वे मुख उजले वे समझे मुक्ति का मर्म ।।

(जपु जी पृष्ठ 87)

कउण तराजू कवणु तुला

कौन तराजू कौन तुला और तूने कौन सर्राफ बुलाया ।।
कौन गुरु से दीक्षा ली है किससे उसका मौल कराया ।।
मेरे लाल जी तेरा अंत न जाना ।।
तू जल थल महीअल भरपूर लीना तू आप सर्व समाना ।।1।।
मन तराजू चित तुला मेरी सेवा सर्राफ बनाया ।
घट ही भीतर सो प्रिय तोलूँ इस विधि चित्त समाया ।।2।।
आपे कुंडा तोल तराजू आपे तोलन हारा ।
आपे देखे आपे बूझे आपे है बनजारा ।।3।।
अंधा नीच जाति परदेसी खिन आवै तिल जावै ।
ताकी संगत नानक रहता क्यों कर मूरख पावै ।।4।।

(राग सूही —730-31)

पढ़ि पढ़ि गड्डी लदीअहि

पढ़ पढ़ कर गाड़ी लादो पढ़ पढ़ कर भर लो साथ ।।
पढ़ पढ़ कर बेड़ी भरी लो पढ़ पढ़ कर पूरो खत्ते ।।
जितने बरस पढ़ो चाहे, जितने मास पढ़ो चाहे ।।
सारी आयु पढ़ो चाहे, सारे श्वास पढ़ो चाहे ।।
नानक, लेखे में एक बात बाकी सब कुछ अहं भाव ।।

(आसा-पृष्ठ 467)

राती रुती थिती वार

(परमात्मा ने बनाए है)
रात्रि, ऋतु, तिथि औ वार ।
पवन, पानी, अग्नि औ पाताल ।
इनके बीच स्थापित की पृथ्वी, जैसे एक धर्मशाला ।
उसमें अनेक जाति, रंग के जीव ।
जिनके नाम है अनेक अनंत ।
उनके हैं अपने कर्म और होता है विचार कर्मानुसार ।
परमात्मा ही एकमात्र सत्य है, एकमात्र है सत्य उसका दरबार ।।
वहां शोभित है पंच तत्वों के सूक्ष्म रूप ।
उसकी कृपा होने पर ही दिखता है उनका स्वरूप ।।
धर्म अग्नि में तपते हुए लोग होते हैं वहाँ ।
नानक, दिखते हैं ऐसे लोग पहुंचने पर वहाँ ।।

(जपुजी पउड़ी-34-पृष्ठ 7)

गगन में थाल रवि चंदु दीपक बने

गगन में थाल रवि चंद दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ।
धूप मलआनलो पवनु चंवरो करे सगल बनराइ फुलंत जोती ।।1।।
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती ।।
अनहता सबद बाजंत भेरी ।।1।। रहाउ ।।
सहस तव नैन हैं तोहि कोउ सहस मूरत नना एक तोही ।
सहस पद विमल नन एक पद गंध बिनु सहस मूरत तव गंध इव चलत मोही ।।2।।

सब महि जोत जोति है सोई ।।
तिसकै चानण सब महि चानण होइ ।।
गुरु साखी जोति परगट होइ ।।
जो तिसु भावै सु आरती होइ ।।3।।
हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही आसा ।।
कृपा जल देहि नानक सारंग को होइ जाते तेरे नामा वासा ।।

(धनासरी—पृष्ठ 663)

मोती त मंदर ऊसरहि

मोती के घर बनाए गए हों, उनमें रत्न जड़े गए हों ।
कस्तूरी, केशर, अगर और चन्दन से लिपे हों कि मन प्रसन्न हो जाए ।।
(हे परमात्मा) यह देख न पड़ूं भुलावे में, तेरा नाम बिसर न जाए ।।1।।
हरि के बिना तो नष्ट हो जाएगा यह जीव ।
गुरु से मैंने पूछ देखा—नहीं और कोई ठाँव ।
हीरों—लालों से जड़ी हो धरती, पलंग भी जड़े हों लालों से ।
मन मोहिनी, मणि शोभित नारी हो, आनन्द बिखेरती ।
(हे परमात्मा) यह देख न पड़ूँ भुलावे में, तेरा नाम बिसर न जाए ।।2।।
सिद्ध बनूँ सिद्धियाँ पाऊं, ऋद्धियों को आने दूँ ।
कभी गुप्त कभी प्रकट हो बैठूं, भय से श्रद्धानत हों लोग ।।

(हे परमात्मा) यह देख न पड़ूँ भुलावे में, तेरा नाम बिसर न जाए ॥3॥
सुल्तान बनूँ लश्कर बना लूँ और जमा लूँ पाँव तख्त पर ।
नानक सभी हवाओं पर मेरे हुक्म का पसारा हो ॥
(हे परमात्मा) यह देख न पड़ूँ भुलावे में, तेरा नाम बिसर न जाए ॥4॥

(सिरी राग-पृष्ठ 14)

वैसाखु भला साखा वेस करे

वैसाख भला शाखाएँ बेश करें ।
नारी द्वार पर हरि की बाट देखती है—'दया करो घर आ जाओ ॥
हे प्रिय घर आओ, दुस्तर तारो, तेरे बिना मेरा कोई मोल नहीं ।
तुझे भा जाऊँ, मेरी कीमत कौन पा सके, प्रिय को देख कोई मुझे दिखा दे ॥
दूर न जानूँ, अन्दर मानूँ, हरि का महल मैंने पहचाना ।
नानक, वैशाख में प्रभु को पावो, सुरति, शब्द में मन लगाओ ॥

(तुखारी-पृष्ठ 1108)

घड़ीआ समै गोपीआ

दिन की सारी घड़ियाँ गोपियाँ है और प्रहर है कृष्ण गोपाल ।
पवन, पानी, अग्नि, चन्द्र और सूरज सभी गहने हैं ।
सारी धरती रास के रंगमंच का धन और माल है ।
सारे प्रपंच रास के व्यवहार हैं ।
नानक, ज्ञान के बिना संसार ठगा जा रहा है ।
यमकाल खा रहा है उसे ।

(वीर आसा पृष्ठ-465)

कलि काते राजे कसाई

कलयुग छुरी है, राजे कसाई है, धर्म पंख लगा कर उड़ गया है।
झूठ की अमावस है, सत्य का चन्द्रमा कहाँ उदय हुआ दिखलाई नहीं पड़ता ।
मैं उसे ढूंढ ढूंढ कर व्याकुल हो गयी हूँ ।
अन्धकार में कोई रास्ता नहीं सूझता ।
सारी सृष्टि अहंकार में दुःखी होकर रो रही है ।
हे नानक, इस स्थिति से किस प्रकार छुटकारा हो ।

(वार माझ-पृष्ठ 145)

नदीआ होवहि धेणवा

नदियाँ सारी गायें बन जाएँ, झरने बन जाएँ दूध और घी ।।
सारी धरती शक्कर बन जाए, और जीव प्रसन्न हो नित्य ।।
सोने-चांदी के पर्वत बन जाएं, उनमें जड़े हों लाल और हीरे ।।
(हे प्रभु) तो भी मैं स्तुति करूँ तुम्हारी, चाव न पूरा हो यह मेरा ।।1।।
अठारह भार यदि हो मेवा, बहुत रसीला उनका स्वाद ।।
चन्द्र सूर्य घूमें रखवाली में मेरी, रहने का हो स्थान अटल ।।
(हे प्रभु) तो भी मैं स्तुति करूँ तुम्हारी, चाव न पूरा हो यह मेरा ।।2।।
दुःख लगे देही को मेरी, राहु केतु दोनों ग्रह आएँ ।।
रक्त पिपासु हों राजे सिर पर, फिर भी रखूँ यही भाव मैं ।।
(हे प्रभु) तो भी मैं स्तुति करूँ तुम्हारी, चाव न पूरा हो यह मेरा ।।3।।
आग और पाला बनें मेरे कपड़े, वायु बने मेरा भोजन ।।
स्वर्ग की मोहनियाँ मेरी हों, नानक यह सब नश्वर है ।।
(हे प्रभु) तो भी मैं स्तुति करूँ तुम्हारी, चाव न पूरा हो यह मेरा ।।4।।

(वार माझ, पृष्ठ 141-142)

मोरी रुणझुण लाइआ

मोर रुन-झुन बोल रहे हैं बहिनों सावन आया ।
(हे प्रभु) तेरे तीक्ष्ण कटाक्षों ने मेरा मन लुभा लिया है लोभियों की तरह ।।
(हे प्रभु) तेरे दर्शन पर मैं बलिहारी, तेरे नाम पर कुरबान हूँ ।
तुम हो तो मैं मान करती हूँ, तेरे बिना मेरा मान कैसा ?
(हे स्त्री) अपनी चूड़ियों को पलंग से तोड़ दे और बाहों को पाटी से ।
इतना वेश करने पर भी तेरा पति औरों के साथ रमण कर रहा ।।
न तेरे पास मनीआर है और न ही छोटी बड़ी चूड़ियाँ ।
ऐसी बाँहें जो पति का कंठहार नहीं बनतीं, अच्छा है जल जाएँ ।।
(वडहंस, पृष्ठ 557)

सभि सहीआ सहु रावणि गईआ

सारी सखियाँ पति के साथ रमण करने गईं, मैं विरह दग्ध किसके द्वारे जाऊँ ।।
मैं तो अच्छी भी हूँ, सुन्दर आचरण वाली भी, फिर भी पति को नहीं भाती ।।
मैंने बालों को अच्छी तरह गूँथा, माँग निकाली, सिंदूर भरा ।
आगे गयी तो पति ने नहीं स्वीकारा, मैं मर रही हूँ बिसूर बिसूर कर ।।
(वडहंस, पृष्ठ 557)

तै साहिब की बात जि आखै

नानक, उस परमेश्वर की जो बातें कहता है उसे क्या दिया जाए ?
उसे अपना सिर काट कर बैठने को दिया जाय ।
बिना सिर के ही उसकी सेवा की जाय ।

यदि पति वेगाना हो गया है,
तो क्यों न मर कर प्राण दे दिये जायं ।

(बडहंस, पृष्ठ 557)

मैं रोंवदी सभु जग रुना

मैं रोई सारा जग रोया, रोए पक्षी वन के ।
एक न रोया मेरे तन का बिरहा बिलगाया जिसने प्रिय से ॥

(बडहंस, पृष्ठ 557)

गुरु अर्जुन

मेरा मन लोचे गुरु दरसन ताईं

मेरा मन लोचे गुरू दर्शन के लिए ।।
विलाप करे वह चातक की तरह ।।
तृषा न उतरे शांति न आवै, बिन दर्शन संत प्यारे जी ।।
मैं कुरबान, मैं बलिहारी जाऊं, गुरू दर्शन संत प्यारे जी ।।

(राग मांभ गुरू ग्रंथसाहब-पृष्ठ 96)

तेरा मुख सुहावा

तुम्हारा मुख सुहाना, सहज ध्वनि वाणी ।।
चिर हुआ देखे हे ! सारंगपाणी ।।
धन्य वह देश जहां तू बसता, मेरे साजन, मीत, मुरारे जी ।।
मैं कुरबान, मैं बलिहारी जाऊं, गुरू दर्शन संत प्यारे जी ।।

(राम मांभ गुरू ग्रंथसाहब, पृष्ठ 96)

घड़ी न मिलते ता कलिजुगु होता

एक घड़ी न मिलते तो कलयुग होता ।।
अब कब मिलोगे प्रिय तुम भगवंता ।।

मुझे रात न आए नींद न आए बिन देखे गुरू—दरबारे जी ।।
मैं कुरबान, मैं बलिहारी जाऊँ गुरू दर्शन संत प्यारे जी ।।
भाग हुआ गुरू संत मिलाया ।।
प्रभु अविनाशी घर में पाया ।।
सेव करूँ पल भर ना बिछड़ूं जन नानक दास तुम्हारे जी ।।
मैं कुरबान, मैं बलिहारी जाऊं गुरू दर्शन संत प्यारे जी ।।

(राग मांझ, गुरू ग्रंथसाहब-पृष्ठ 96)

हउं गोसाईं का पहिलवानडा

मैं गोसाईं का पहलवान ।।
गुरू मिला पाया ऊँचा स्थान ।।
सब दर्शक हुए इकट्ठे, प्रभु बैठा स्वयं भी देखे जी ।।1।।
बाजे बजते नगाड़े मेरी ।।
मल्ल उतरे लेते फेरी ।।
मैंने पांच जवान किये निहत्थे, गुरू मुझे शाबासी देते जी ।।2।।
सभी इकट्ठे होकर आए ।।
घर जाएँगे रास्ता पाए ।।
गुरूमुख लाभ ले जाएँगे, मनमुख मूल गवां कर जाते जी ।।3।।
तू वर्णों चिन्हों से बाहर ।।
हरि दिखता है सम्मुख आकर ।।
सुन-सुन तेरा ध्यान करें, तेरे भगत भरे गुण तेरे जी ।।4।।
युग-युग करता सेवा तेरी ।।
गुरू ने काटी रस्सी मेरी ।।
अब मैं फिर न नाचूँगा, नानक, अवसर पाया देखे भाले जी ।।5।।

(श्री राग, गुरू ग्रंथ साहब, पृष्ठ 74)

एकु पिता एकस के हम बारिक

एक पिता एक ही के हम बालक तुम मेरे गुरू हो ।।
सुन मीता, जीव हमारा बलि वलिजाए, हरि दर्शन हमें दिखाओ ।।1।।
सुन मीता, मैं उस पर वलिहारी ।।
यह मन तेरा भाई ।।
पांव पखारूं, मल-मल धोऊं, यह मन तुमको दे दूँ ।।
सुन मीता, मैं तेरी शरण में, दो उपदेश जिससे प्रभु पा लूँ ।।2।।
मान न करो, शरण में पड़ो, जो वह करे वह भला मनाओ ।।
सुन मीता, जीव, पिंड सब तन अर्पितकर, तव दर्शन हरि पाओ ।।3।।
भया अनुग्रह प्रसाद संतों का हरि नाम है मीठा ।।
जन नानक को गुरू कृपा करी सब अकुल निरंजन देखा ।।4।।

(सोरठि राग गुरू ग्रंथ साहब; पृष्ठ 611-12)

फूटो आंडा भरम का

फूटा अंडा भरम का मन में भया प्रकाश ।।
काटी बेड़ी पैर की गुरु ने काटी पाश ।।1।।
आवागमन न समाप्त हुआ ।।
तप्त तृष्णा का हंडा बुझ गया, गुरू ने शीतल नाम दिया ।।2।।
जब से साधु संग हुआ, छोड़ गये वासना के शत्रु ।।
जिसकी रोक उसी ने छोड़ी, अब क्या करेगी मृत्यु ।।3।।
चुक गया कर्मों का भार, हुआ मैं निष्कर्म ।।
चढ़ गया मैं सागर तीर, गुरु ने दिया धर्म ।।4।।
सच स्थान, सच की बैठक, सच का उद्देश्य बनाया ।।
सच की पूँजी, सच-व्यापार नानक घर में पाया ।।5।।

(मारू राग, गुरु ग्रंथ साहब; पृष्ठ 1002-1003)

तूं मेरा पिता तूँ ही मेरी माता

तुम मेरे पिता तुम हो मेरी माता ॥
तुम मेरे बंधु तुम हो मेरे भ्राता ॥
तुम मेरे रक्षक सभी जगह पर, मुझको कैसा भय कैसा रोष ॥1॥
तुम्हारी कृपा से तुम्हें पहचाना ॥
तुम मेरी ओट तुम हो मेरे मान ॥
तुम बिन दूजा और न कोई सब तेरा खेल अखाड़ा ॥2॥
जीव जन्तु सब तुमने बनाए ॥
जैसे चाहे वैसे काम लगाए ॥
सब कुछ किया तुम्हारा हो, नहीं इसमें कुछ हमारा ॥3॥
नाम सिमरा महा सुख पाया ॥
हरि गुण गा मेरा मन शीतल भया ॥
गुरु पूरे की हुई कृपा तो जीत का हुआ पसारा ॥4॥

(मांझ राग, गुरु ग्रंथ साहब; पृष्ठ 103)

सावणि सरसी कामणी

सावन आया कामिनि, चरण-कमल से प्यार करे ॥
तन मन भीगा सच के रंग में, एक नाम आधार करे ॥
विषय-रंग मद्धिम हुए, दिन-दिन हुए क्षार ॥
हरि अमृत बूंद सुहावनी, मिल साधू पीवनहार ॥
वन—तृण्ण प्रभु संग हरा हुआ, वह समर्थ पुरुष अपार ॥
हे सखि, जिनसे मैं प्रभु को पावूं उन पर मैं बलिहार ॥
नानक, हरि की कृपा हुई तो उसका शब्द संवारे ॥
सावन उस सोहागिनी को, जो राम नाम उर धारे ॥

(बारहमाह, गुरू ग्रंथ साहब; पृष्ठ 134)

भाद्रो भरमि भुलाणीश्रा

भादो में तू भ्रम में भूली, दूसरे से लगा हेतु ।।
लाख सिंगार बनाया तूने, बना न तेरा केतु ।।
जिस दिन देह होगी नष्ट, तब लोग कहेंगे प्रेत ।।
पकड़ चलेंगे दूत यम के किसी को न देंगे भेद ।।
छोड़ जाएंगे क्षण में, जिनसे लगा तुम्हारा हेतु ।।
हाथ मरोड़े उठ गये, स्याह भी हुआ श्वेत ।।
जैसा बीजो वैसा पाओ, कर्मों का है खेत ।।
नानक प्रभु की शरण में, चरण-नाव प्रभु देत ।।
वे भादों में नरक न पाएं जिनका गुरु रखवाला हेतु ।।

(बारहमाह गुरु ग्रंथ साहब; पृष्ठ 134)

गुरु का सबदु रखवारे

गुरु का शब्द रखवारे ।।
चौकी चौगिरद हमारे ।।
राम नाम का मठ लागा ।।
यम लज्जा करके भागा ।। 1 ।।
प्रभु जी तुम मेरे सुख दाता ।।
बंधन काट करे मन निर्मल पूर्ण पुरुष विधाता ।। 1 ।।
नानक प्रभु अविनाशी ।।
उसकी सेवा व्यर्थ न जाती ।।
आनन्द करें तेरे दास ।।
जपो पूर्ण होगी आस ।।

(सोरठि राग, गुरु ग्रंथ साहब; पृष्ठ 626)

कर करि ताल पखावजु नैनहु

हाथ की ताल, पखावज नैनके, माथे की बजे रबाब ॥
कानों की मधु बांसुरी बजती जिह्वा ध्वनि आगाज ॥
नृत्य करता मन है नाचे आए घुंघरु के साज ॥ 1 ॥
राम के नृत्यकर्त्ता ॥
देखे देखने वाला दयाल जितना साज और सिंगार ॥ 1 ॥
आकाश मंडली धरती सारी ऊपर गगन चंदोआ ॥
पवन बीच का करता अकेला, सब जल से उत्पन्न हुआ ॥
पांच तत्व का पुतला बनाया, कर्मों द्वारा मिलन हुआ ॥ 2 ॥
चंद सूरज दो जले दीपक चारों कुंड के भीतर रखे ॥
दस इंद्रियां, पांच ज्ञानेद्रियां एक जीव के भीतर रखे ॥
भिन्न-भिन्न होकर भाव दिखाते तभी निराले दिखते ॥ 3 ॥
घर घर नाच होता दिन-रात, घट-घट बजता तूरा ॥
एक नाचता एक घुमाता एक आए एक जाए बन घूरा ॥
कहे नानक, सो बहुर न नाचें जिसे मिलता गुरु पूरा ॥ 4 ॥
(रामकली, गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 884)

पाठ पढ़िउ अरु वेदु बिचारिउ

पाठ पढ़ा और वेद विचारा योग—साधना करता ॥
पंचजना से संग न छूटा अधिक अहं भाव बढ़ता ॥ 1 ॥
प्यारे इस विधि मिलना नहिं होता मैंने किये कर्म अनेक ॥
हार पड़ा स्वामी के द्वारे, कहा—'दीजे बुद्धि विवेक' ॥
मौन हुआ, बना करपात्री, रहा नग्न, बना बनचारी ॥
तट तीरथ सब धरती घूमा दुविधा गई नहीं सारी ॥ 2 ॥
मनोकामना लेकर तीरथ जाय बसे सिर आरे से कटवाया ॥
मन की मैल नहीं उतरी, इस विधि लाखों यत्न कराया ॥ 3 ॥

कनक—कामिनी, हाथी-घोड़े बहुत तरह के दान किये ।।
अन्न, वस्त्र, भूमि किये अर्पित, हरि का द्वार नहीं मिले ।। 4 ।।
पूजा, अर्चा, बंदन, दंडवत, षट कर्मों में निरत है रहता ।।
मैं मैं करता बंधन में रहता, इस युक्ति से हरि नहिं मिलता ।। 5 ।।
योग सिद्धि आसन चौरासी यह भी कर कर मरता ।।
बड़ी आयु, फिर फिर ममता हरि का संग न पाता ।। 6 ।।
राज-लीला, राज्यों की रचना किया हुक्म—पसारा ।।
सुंदर सेज चन्दन की चौकी पर मिला नरक का द्वारा ।। 7 ।।
हरि की कीर्ति, साधु की संगति यह सब कर्मो का कर्म ।।
नानक कहे उसे है मिलता अर्जित जिसका पूर्व जन्म ।। 8 ।।
तेरा सेवक इस रंग से भरा ।।
भये कृपाल दीन दुख भंजन हरि-कीर्त्तन में मन निरत हुआ ।। 9 ।।
(राग सोरठ, गुरु ग्रंथ साहब; पृष्ठ 641-42)

जा को मुसकल अति बनै

जब बहुत अधिक मुश्किल बन जाए और कोई मदद भी न करे ।।
जब दुश्मन पीछे पड़ जाएं संबन्धी भी भाग खड़े हों ।।
जब सभी सहारे दूर हो जाएं आशाएं भी चुक जाएं ।।
तब पारब्रह्म में चित्त हो तो गर्म हवा भी नहीं लगे ।। 1 ।।
ईश्वर शक्तिहीनों की शक्ति है—
न वह जन्म में आता है न मृत्यु में जाता है, सदा अटल है ।।
उस सच को, गुरु—शब्दों द्वारा जानो ।। 2 ।।
यदि कोई दुबला हो नंगे-भूखे पन की पीड़ा हो ।।
दमड़ी भी पल्ले में न हो, कोई धीरज भी न बंधाए ।।
जरूरत में कोई मदद न करे, कोई भी काम पूरा न हो ।।
यदि चित्त में पारब्रह्म आ जाए तो पा लोगे निश्चल राज ।।
जिसे बड़ी-बड़ी चिंताएं हैं, देही में रोग व्याप्त हैं ।।

गृहस्थी—कुटुंब में डूबा, कभी हर्ष है कभी शोक है ।।
चारों ओर भागता है, घड़ी भर भी शांत होकर बैठता नहीं ।।
यदि चित्त में पारब्रह्म आ जाए तो तन-मन शीतल हो जाए ।। 3 ।।
काम, क्रोध, मोह, कृपणता, लोभ और प्यार ने वश कर लिया ।।
चारों पाप जी भर कर किये और बना वह संहारी असुर ।।
उसने धर्म पोथी, गीत, कवित्त किसी पर भी धरे न कान ।।
यदि चित्त में पारब्रह्म आ जाए तो निमिष सुमिरन से तर जाए ।। 4 ।।
थदि सभी शास्त्र, स्मृतियां, चारों वेद कोई मुख से उच्चरित करे ।।
तपस्वी की भांति तपे, बने योगी, घूमे तीर्थों में, वाट कर्म करे और
करे दुगुनी पूजा-अर्चा ।।
उसे यदि हरि—भक्ति का रंग नहीं लगा, तो निश्चय ही वह होगा
नरकभागी ।। 5 ।।
यदि मिल जाए राज, स्वामित्व, सरदारी और भोगने के लिए सभी रस ।
सुंदर सुहाने बाग हों, आज्ञा का हर क्षण पालन हो ।
अनेक तरह के रंग—तमाशे हों, चाव से उनमें रमे हों ।
पर यदि चित्त में पारब्रह्म न आया तो उसे योनी मिलेगी सर्प की ।। 6 ।।
यदि कोई है बहुत धनाढ्य, आचारवंत, शोभायुक्त और निर्मल ।।
प्रेम करता है माता, पिता, पुत्र, भाई मित्र सभी से ।।
उसके पास है बड़ी सुसज्जित सेना, करते हैं सभी जी जी ।।
यदि उसके चित्त में पारब्रह्म नहीं तो वह जाएगा रसातल में ।। 7 ।।
काया में कोई रोग नहीं, कोई दोष नहीं, और न हुआ कभी कोई शोक ।।
मन में न आयी मृत्यु, रात दिन भोगे मनचाहे भोग ।।
सब कुछ को उसने बनाया अपना, मन में हुई न कोई शंका ।
यदि चित्त में पारब्रह्म नहीं तो पड़ेगा यमदूतों के वश में ।। 8 ।।
पारब्रह्म जिस पर कृपा करें उसे मिलता है साधु-संग ।।
ज्यों ज्यों वह संबंध बढ़ाता, गहरा होता उस पर हरि रंग ।
परमेश्वर दोनों लोकों का स्वामी, दूसरी नहिं कोई ठांव ।
सतगुरु हुए प्रसन्न तो पाते हैं, नानक उसका सच्चा नांव ।। 9 ।।

(श्री राग, गुरुग्रंथ साहब; पृष्ठ 70-71)

गुरु गोबिंदसिंह

देह शिवा वर मोहि इहै

देह शिवा वर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहूं ना टारौ ।
ना डरौ अरि सों जब जाइ लरौं निसचे करि अपनी जीत करो ।।
अर सिख हों अपने ही मन को इह लालच हउ गुण तउ उचरौ ।
जब आव की अउध निदान बने अति ही रण में तब जूझ मरौं ।

देहुरा मसीत सोई

देहुरा मसीत सोई पूजा औ निवाज उही,
मानस सबै एक पै अनेक को प्रभाउ है ।
देवता अदेव जच्छ गंदर्ब तुरक हिंदू,
निआरे निआरे देसन के भेस क प्रभाउ ।।
एकै नैन ऐकै कान एक देह ऐकै बान,
खाक बाद आतश औ आब को रलाउ है ।
अल्लाह अभेख सोई पुरान और कुरान उही,
एक ही सरूप सबै एक ही बनाउ है ।।

धन्न जियो जग में तिहको

धन्य जियो जग में तेहि को,
ते हरि चित्त में जुद्ध विचारै ।।
देह अनित न मित्त रहे,
जस नाव चढ़े भवसागर तारै,
धीरज धाम बनाइ इहै तन,
बुद्धि सो दीपक जिउं उजिआरै ।
गिआनहि की बढ़नी मनो हाथ लै,
कातरता कुत कात बुहारै ।।

बुल्लेशाह

भावें जान न जान वे

चाहे जानो चाहे न जानो, तुम मेरे आंगन में आओ ।
मैं तुम पर कुरबान, तुम मेरे आँगन में आओ ।
तुम्हारे जैसा और नहीं कोई, ढूँढ़ूँ ऊसर बियावान में ।
ढूँढ़ूँ तुम्हें सारे जहान में, तुम मेरे आंगन में आओ ।
मैं तुम पर कुरबान, तुम मेरे आंगन में आओ ।
लोग तुम्हें चरवाह समझें, रांझे ! लोग तुम्हें क्या जाने ।
मेरे दीन-ईमान हो तुम, मेरे आंगन में आओ ।
मैं तुम पर कुरबान, तुम मेरे आंगन में आओ ।
मां-बाप ने ढूँढा मेरा वर, हे मेरे शाह साईं कृपा कर ।
लगी हुई की लाज बचा लो, तुम मेरे आंगन में आओ ।
मैं तुम पर कुरबान, तुम मेरे आंगन में आओ ।

वारिस शाह

लै वे रांझिया बांह मैं लाइ थक्को

हे रांझे, मैं अपनी कोशिश कर थको,
बात मेरे बस से बेबस हो गई है ॥
काजी, माँ-बाप, भाइयों ने मुझे बाँध भेजा,
मेरी और तुम्हारी दोस्ती अब ख़त्म हो गयी ॥
खेड़ों के घर वसूँगी नहीं, इनसे हमारी कलह हो गयी ॥
जिऊंगी, मिलूँगी, जो राम मिलाए,
फिलहाल तो दोस्ती बस गयी ॥
लगा तीर जुदाई का, मियां वारिस,
और पीड़ा कलेजे में बस गयी ॥

भाई वीर सिंह

टुटिआ फुल्ल

तुमने तोड़ा हम टूट गये बिछुड़ गये थे डाल से ।
तुमने सूंघा, सीने से लगा फेंक दिया, बिछुड़ गये आप से ।
पैरों के नीचे लताड़कर कर दिया, तुमने पत्ती-पत्ती,
पर तुम्हारे स्पर्श की कृतज्ञता मुझे कभी नहीं भूलती ।

'कवि रंग' सुन्दरता

कविता की सुंदरता,
ऊँचे नक्षत्रों में बसती ।
अपनी संगीत लहर में,
अपने प्रकाश से झिलमिल ।
एक शाम को वहाँ से,
नीचे लटकती आई ।
रस रंग से काँपत ,
संगीत से थरथराती ।
जैसे ओस की तार में गुंथी,
जैसे मोतियों की चमक,
नज़रों में तार की गुंथी,
नाज़ुक सुकुमार सुहाई ।

कोमल गले की सुर ज्यों,
भन्कार साज की ज्यों ।
झलकते रूप वाली,
तारे चमक ज्यों छाई ।
ज्यों भीड़ थिरके खिचकर,
खिच मेरी रुह् काँपी ।
रूपों के रंग बिखरे,
रस भूम वो भुमाई ।
उड़ते पंछी की तरह,
पंख उसके फड़फड़ाए ।
एक सरूर सिर को आया,
एक तार से सिर भूमा ।
पूछा हमने, हे सुंदरि,
तुम स्वयं सुंदरता हो ?
हीरे जवाहर जैसे,
टिकती तुम क्यों हो नहीं ?
पर्वत खड़े सुहाने,
झीलें औ' बन समुंदर ।
स्थिर है इन की शोभा,
शाश्वत रहे यह छाई ।
बोली वह थरथराती,
लरजते अस्तित्व वाली ।
बिजली की चमक बता तू,
टिकती कैसे टिकाई ?
लस दे के किरन सूरज,
झिलमिल के देश जाती ।
सुर राग की थर्राती,
किसने है बाँध बैठाई ?
उल्का आकाश चमके,
चमक दे के खिसके ।
इंद्र धनुष आकाश का,
किसने टिका लिया है ?

चंदा से रश्मि फिसले,
तारों से चमक झरती ।
दे के हुलार खिसके,
टिकती नज़र न आए ।
चातक की प्रेम चितवन,
कोयल की कूक सुंदर ।
फैलाए वो गमक अपनी,
कब काबू में है आती ?
लरजना देश जिनका,
लरजना अस्तित्व उनका ।
चक्कर अनंत अस्थिर,
उनकी चाल पाते ।
अंतर जो नप न सकते,
सिर चीरते थरथराते ।
अनंत चालों में जाते,
चमक के वे स्वामी ।
चमकता हुआ रंग देना,
रस झूम से झुमाना ।
एक जीवन—स्पर्श देना,
कहीं भी नहीं अटकाना ।
लरजना देश जिनका,
लरजना अस्तित्व उनका ।
रेखा अनंत अस्थिर,
लरज़े के मत्थे डाली ।

सुपने विच तुसी मिले

सपने में तुम मिले हमें, हमने दौड़ गलवहियां डाली ।
नितांत प्रकाश तुम हाथ न आए, हमारी काँपती रही कलाई ।
दौड़ चरणों पर शीश झुकाया, हमारे माथे को स्पर्श मिला नहीं ।
तुम ऊँचे थे हम नीचे थे, हमारा कुछ भी बस चला नहीं ।

फिर दामन पकड़ने उठ दौड़े, हाय, दामन में बिजली की लहरें।
उड़ता जाता, पर उसने अपना एक स्पर्श दे दिया हो।
मिट्टी चमक गयी, यह मेरी, और आप रोयों में चमके।
बिजली कौंध गई थर्राती, अब चकाचौंध है छाई।

वीणकार नूँ वीणा पई आखे

वीणाकार को वीणा है कहती—
तेरे गीतों को मैं रंग चढ़ाती हूँ।
वीणाकार ने उसे उठा रख दिया, परे,
और गिलाफ लपेट दिया,
तब आई वीणा को होश,
मैं थी लकड़ी, ताँत और तार,
जान हीन थी मेरी देह,
यह तो स्वामी का जादू अमिट,
भर देता था संगीत से,
रग रेशा मेरा तार तार,
तब बोलती थी मैं प्यारा-प्यारा।
फिर स्वामी गाता था साथ मेरे,
मोहित होता सुनता संगीत,
हाँ, गाता बजाता था खुद,
फिर झूमता था अपने आप,
रस लेता था स्वयं रसाल,
वाह वाह हे मेरे स्वामी,
तेरे गीतों की तुझे बधाई।
तू ही गीत संगीत और स्वाद,
रस, रसिया और स्वयं रसाल।

मेरी छिपी रहे गुलज़ार

मेरी छिपी रहे गुलज़ार,
मैं नीचा उगा रहूँ ।
कोई भी नज़र न लगे,
मैं पर्वतों में छिपा रहूँ ।
मैंने लिया आकाश से रंग,
जो शोख़ न किसी तरह का ।
हां, धुर से गरीबी मांग,
मैं आया हूं जगत में ।
में पीता हूं आकाश की ओस,
पलता हूँ किरण खाकर ।
मेरे साथ चांदनी खेल,
रात को मिल कर है खेलती ।
मैं मस्त हूँ अपने हाल में,
मगन रास्ते पर अपने ।
हां दिन को भौंरे से भी,
मिलने में होता है संकोच ।
शोखी में आकर पवन,
जब गले से आ लगती ।
मैं नहीं हिलाता गर्दन,
आवाज भी नहीं निकलती ।
फिर भी टूटता हूँ हाय,
बिछोड़ने वालो ।

पत्थर, शीशा, हीरा

मैं पत्थर सुख की नींद में सोया,
सपने में कोई सुनाए ।

'बन हीरा, कर दूर अंधेरा,
तुझे प्रकाश आ गले लगाए।'
अपने को पीसा, आग-ताप सही,
बन शीशा नूर मैंने पाया।
अब चाहता हूं हीरा बनना,
जो ज़रब न कोई आए॥

प्रो० पूरन सिंह

देश नूँ असीस साडी गरीबां दो

बसें तेरे महल और माढ़ियां,
बसें और खुश होकर, तेरी छोटी-छोटी झुग्गियां ।
बसें तेरे देश प्रदेश सभी,
सुखी सुखी तेरी सतानें ।
बसें तेरे बाग तेरी बहारें,
फूलें फलें तेरे खेत ।
जियें तेरे पीपल और आम प्यारे,
जियें तेरे सदा हरे-भरे बरगद ।
जियें तेरे तूत शहतूत सारे,
जियें तेरी बेरियाँ,
फलाहियां जियें, बबूल जियें, जियें तेरे झाड़ और झाड़ियां ।
मीठे मीठे बेर तेरे,
मीठे तेरे चश्मों के हीरे चमकते पानी,
ऊंचे-ऊंचे पर्वत तेरे,
तेरे जंगल देवदार के सुहाने,
जियें लाखों रंग तेरी धरती और आकाश के,
जियें तेरी गृहणियां ।
जियें तेरे ढोर डंगर,
जियें जाटनियां दूध दुहने वालीं,
जियें तेरे बालक सारे, चुप-चुप रोने वाले ।
भरे रहें तेरे लस्सी के मटके,
ऊपर तैरते उनके मक्खन के पेड़े ।

फिरें घूम-घूम बड़े सवेरे लाल-लाल मथानियां,
दूध दही आम हो, शीतलता बरसे ।
जियें तेरे मजूर और मजूरनियां,
जियें सभी काम करने वाले,
जियें तेरे महल उसारने वाले,
साथ ही वे जो ईंटें पकड़ाते हैं सिर पर रखकर,
गारा चढ़ाने वाले ऊंची-ऊंची छतों पर,
हों लम्बे और लम्बे तेरे सुन्दर सुन्दर सपने,
और लम्बी सर्दी की रातें प्यार वाली ।
बड़े-बड़े काम करो छोटे-छोटे हाथों से,
बंधन बांधो जो हों मजबूत,
चाँद ईद का हो सदके एक सारी दुनिया के लिए ।
कदम कदम, मैं दूं तुम्हें,
ओ देश के प्यारे लाख-लाख बधाइयाँ ।

2. हे सुन्दर तुम खूब मनाओ
पीली-पीली खिली सरसों की खेतियां;
मनाओ तुम खिलकर अपना बसंत सारा,
मनाओ तुम दूध—श्वेत गर्मियाँ;
मनाओ आसमानों में अपने
वह गरज-गरज कर आएं घनघोर काले बादल;
मनाओ तुम सावन अपना,
सुनो बूंदों का शोर और वे संदेश जो आसमानों वाले
भेजें तुझे बरसते मेह में ।
दौड़-दौड़ पकड़ो बादलों की शालें तुम,
और पकड़ कर रखना यह सुन्दर घनघोर,
जलों में राह चलते एकाएक भीग जाना ।
मनाओ तुम बरसते जल में,
पके, घुले, टपकते आमों का चूसना ।
मनाओ खुशी-खुशी पत्रों के रंग तुम,
तूतों के पीले पड़े पत्तों की रौनक ।
मनाओ मनाओ तुम अपनी सिदक और सिखी,
मनाओ तुम अपना प्यार ऊंचा वह गुरु वाला सदके ।
गांठ डालो यह तुम पक्की,

रखो टेक तुम सारी अपनी सच्ची सरकार पर,
जगाना, जगाना वह लौ, अरे लाला,
बुझने देना मत ज्योति जो गुरुओं ने स्थापित की तुम में,
देख जो जल रही तेरी नदियों के दिल में;
वह देख जो चमक रही हिमालय की ज्योति में;
वह देख खोल दिल का दरवाजा
जो गुरु की कृपा से,
लौ देती हुई जल रही अपने अंदर;
बांधो अपना आप तुम चरण-कमलों से प्यारे,
अरे मनमोहक,
खड़े हो वहां, कंधे पर रखो लाठी,
निडर होकर घुसो जंग—घमसान, अरे दुल्ले !
जीत बाजी आशय सदा बेखौफ़ अरे दुल्ले;
सतगुरु जी सदा तेरे साथ ।

धनीराम चात्रिक

आ रल मिल के......

1. आ भई सजना
इकट्ठे बैठें,
दुख-सुख भूल, घड़ी भर पड़ लें।
मुझे तो बड़ी दूर है जाना,
तेरा किधर से हुआ है आना ?
धो लो पैर,
थकान उतारो।
यहीं पड़ रहो,
मंजी बिछा लो।

बात करो कुछ, जी को समझा लें,
आ मिल-जुलकर रात बिता लें।

2. तुम तो बड़े हँसमुख हो यार,
कितने लगते हो प्यारे प्यारे।
पता नहीं कौन-सा जादू किया है।
दो बातों में मन मोह लिया है।
रोटी मेरे पास बहुत है,
तेरी भी है मेरी भी है।

पास पास बैठकर खाएँ।
आ मिल-जुल कर रात बिताएं।

3. छोड़ दो पिंड शरियत का, धर्म का
बैठो मिटा दें किस्सा गम का।

मैं ब्राह्मण, तू सैयद है यदि,
आखिर हम यात्री हैं दोनों ।
तुझे मुझे, मुझे तुझे है सहना,
दिन चढ़ने पर नहिं बैठे रहना ।
अभी हँस हँस कर जी खुश कर लें ।
आ मिल-जुल कर रात बिता लें ।

4. इस सराय में डेरा डाल कर,
चले जाते हैं लोग आ आकर ।
हर कोई रहता, राह में मिलता,
कोई कोई मिलता दोस्त दिल का ।
सो जाए रख कर बांह सिरहाने,
दिन चढ़ने की स्वामी जाने ।
किसी तरफ को मुख घुमा लें;
आ मिल-जुलकर रात बिता लें ।

बंगला साहित्य

चयन :
श्री आर० के० दास गुप्त

अनुवाद :
श्री भवानी प्रसाद मिश्र

अनुक्रम

ऐतिहासिक समीक्षा		631
रवीन्द्रनाथ ठाकुर	• महात्मा गांधी	647
	• प्रथम दिवस का सूर्य	651
	• गीत	652
	• प्रार्थना	653
	• काबुलीवाला	654
राम प्रसाद सेन	• मानस-पूजा	664
काजी नज़रूल इस्लाम	• चोर और डाकू	665
	• अविश्रान्त क्रान्ति चक्र	667
विष्णु दे	• एक सॉनेट	666
	• नाविक	670
	• प्रेम	672
चंडीदास	• मनहरण बांसुरी	674
	• प्रतीक्षा	"
	• अनुरक्ता	675
	• श्याम का नाम	"
	• अभिशाप	676
विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय	• मेघ मलार	677
जीवनानन्द दास	• वनलता सेन	691
बुद्धदेव वसु	• दादुर	693
अमिय चक्रवर्ती	• कलकत्ता	695
सुधीन्द्रनाथ दत्त	• नाम	697

ऐतिहासिक समीक्षा

बंगला भारतीय भाषाओं के परिवार में से एक है। यह उस परिवार की सुदूर पूर्व में स्थित शाखाओं में से एक है और असमिया तथा उड़िया से बहुत मिलती-जुलती है। यह मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के उस प्राकृत रूप की वंशज है जो मध्यकालीन आर्य भाषा संस्कृत अथवा प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से निःसृत हुआ था। मध्यकालीन आर्य भाषा है जो संस्कृत भाषा से निकली है, वह दसवीं शताब्दी में प्रचलित अपभ्रंश-अवहट्ट का संशोधित रूप थी। यह अपभ्रंश भाषा आज अपने किसी न किसी रूप में 33,888, 939 लोगों के द्वारा भारत में और पाकिस्तान में भी बहुत विशाल जनसमुदाय द्वारा बोली जाती है।

लिपि : अशोक के शिलालेखों में प्राप्त ब्राह्मी वर्णमाला बंगला लिपि का मूल है और इसके पुराने से पुराने प्राप्त नमूने लगभग 800 वर्ष पहले के हैं। सन् 1778 में चार्ल्स विल्किन्स ने छापेखाने के लिए इसके वर्णों को ढाला, क्योंकि उसी वर्ष एन० बी० हालदेड की पुस्तक 'ए ग्रामर आफ दी बंगाली लैंग्वेज' का प्रकाशन किया जाना था; यह पुस्तक उसी वर्ष हुगली से प्रकाशित हुई।

प्राचीन बंगला : बंगला भाषा और साहित्य के इतिहास को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—प्राचीन बंगला, मध्यकालीन बंगला और आधुनिक बंगला। प्राचीन बंगला काल 950 से 1350 तक, मध्यकालीन बंगला 1350 से 1800 तक और आधुनिक अथवा अर्वाचीन बंगला का काल 1800 से आज तक माना जा सकता है। प्राचीन बंगला साहित्य का सबसे प्राचीनतम उदाहरण हमें गीतों के एक संग्रह के रूप में मिलता है। ये गीत संख्या में 48 हैं और ये इनके विभिन्न (सिद्ध-आचार्य) कवियों द्वारा रचे गये हैं। ये सभी

आचार्य बौद्ध थे। इनका काल ईसवी सन् 1150 और 1200 के बीच का है। चर्या अर्थात् आध्यात्मिक अभ्यास से सम्बन्धित ये गीत अधिकांशतः दस-दस पंक्तियों में निबद्ध होते थे और इनका छन्द पादाकुलक छन्द कहलाता था। दो-दो पंक्तियों का यह छन्द हिन्दी के चौपाई छन्द से मिलता-जुलता हुआ करता था। इन गीतों का विषय निर्माण प्राप्ति के लिए सम्प्रदाय विशेष में सीमित गुह्य तन्त्र और योग से सम्बंधित अभ्यास होता था। ये गीत प्रतीकात्मक भाषा में लिखे जाते थे और जिन प्रतीकों का प्रयोग किया जाता था, अपने आप में वे प्रतीक भी रहस्यमय और दुरूह होते थे। उक्त चर्या गीत कूट काव्य के उत्कृष्ट नमूने हैं। इस रहस्यमयता और दुराव का कारण यह था कि रचनाकार उन्हें केवल सम्प्रदाय में दीक्षित व्यक्तियों के लिए लिखता था; साधारण पाठक के लिए कोई साहित्यिक कृति उपलब्ध करना उसका ध्येय कदापि नहीं था। सरह कान्ह, जय नन्दी, ताड़क आदि कवियों द्वारा लिखे गये इन गीतों में आगे आनेवाले वैष्णव भक्ति गीतों के कुछ महत्वपूर्ण लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में लिखे गये वैष्णव गीतों में इनके अनेक महत्वपूर्ण तत्व खोजे जा सकते हैं।

मध्यकालीन बंगला : चौहदवीं शताब्दी : बंगाल में मुसलसानों के आगमन के फलस्वरूप तत्काल ही यह देखा गया कि कुछ दिन के लिए ही क्यों न हो, उसके बौद्धिक और आध्यात्मिक जीवन में एक प्रकार का अवरोध आ गया है। किन्तु इसी अवरोध में से क्रमशः एक नया समाज मूर्त होने लगा और उसने एक नये सांस्कृतिक वातावरण को जन्म दिया। संस्कृत-बहुल परम्परा में धीरे-धीरे तत्कालीन लौकिक रूढ़ि-व्यवहार, रहस्य-कथाएं और धार्मिक गाथाएं घुलमिल कर एक होने लगीं और उन दिनों जो भाषा बोली जाती थी उसमें इतिवृत्तात्मक काव्य भी लिखा जाने लगा। हिन्दू-बौद्ध तन्त्र-परम्परा ने मिलकर एक नये रहस्यवाद को जन्म दिया और सूफी रहस्यवाद के सम्पर्क में आकर इसके रंगरूप में एक नया निखार आया। किन्तु कह सकते हैं कि यह शताब्दी प्रयत्नों की शताब्दी थी, उपलब्धियों की नहीं; इस काल में जो साहित्य लिखा गया वह अब तक लगभग अप्राप्य हो चुका है।

पन्द्रहवीं शताब्दी : पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में बंगाल के मुसलमान शासकों और उनके हिन्दू अमात्यों द्वारा बंगाल में साहित्यिक गतिविधियों को बहुत प्रोत्साहन मिला। पन्द्रहवीं शताब्दी में जो साहित्य लिखा गया उसमें विवरण-परक कविता प्रमुख रही और प्रधान रूप से उसका विषय रहा संस्कृत रामायण में आई हुई राजा राम की कहानी, जो जनता में अब तक सर्वाधिक प्रिय हो चुकी थी। इस परम्परा के सबसे महत्वपूर्ण कवि हैं कृतिवास। उन्होंने

अपनी रामायण इसी शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखी। अन्य अनेक बंगला कवियों ने राम की कथा को लेकर प्रबन्ध काव्य लिखे किन्तु कृतिवास की रचना को ही भाषा के इतिहास और जनता के हृदय में अमर स्थान मिला। कृतिवास की रामायण पहली बार 1802 में मुद्रित हुई।

बंगला का सबसे पुराना प्रबन्ध काव्य कृष्ण की कथा को लेकर लिखा गया था। प्रबन्ध काव्य का नाम है 'श्री कृष्ण विजय' और उनके कवि हैं मालाधर बसु। यह काव्य उक्त शताब्दी के चौथे भाग में लिखा गया था। इसका विषय यद्यपि भागवत और विष्णु पुराण से लिया गया है किन्तु उसके लिखे जाने की शैली का अपना एक वैशिष्ट्य है। इसी विशिष्टता के कारण यह महाकाव्य बहुत लोकप्रिय हुआ और तत्कालीन सुलतान ने उसके कवि को 'गुण राज खाँ' की उपधि दी।

कृष्ण-कथा से सम्बन्धित कविताओं में सबसे शक्तिशाली पद बड़ू चन्दीदास द्वारा लिखे गये। वे 'श्रीकृष्ण कीर्तन' के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनकी रचना सम्भवतः इस शताब्दी के अन्तिम भाग में हुई। उक्त रचना कृष्ण और राधा के प्रेम पर आधारित हैं; उस प्रेम का स्वरूप बहुत कुछ लौकिक है। शैली में गीति तत्व और नाट्य तत्व का सूक्ष्म मणि-कांचन संयोग है। ये पद जयदेव कृत गीत गोविन्द की तरह दिव्य प्रेम को उतना व्यक्त नहीं करता और कहा जा सकता है कि धर्म निरपेक्ष कविता की दिशा में वह रचना बहुत आगे जाती है। इसके बाद की शताब्दी में इसी नाम के अनेक कवि हुए और उनके जिन पदों में विशिष्टता रही वे एक युग के बाद दूसरे युग में थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ लोगों के बीच प्रचलित रहे।

पन्द्रहवीं शताब्दी के बंगला कवि अपने प्रबन्ध काव्यों के लिए सदा ही पुराणों का सहारा नहीं लेते थे। विप्रदास का 'मनसा विजय' काव्य एक पाँचाली है। पाँचाली का अर्थ होता है भक्तिपरक गाथा के आधार पर लिखी गई कविता। इस काव्य में मनसा देवी की कथा गुंथी गई है और उसकी शैली अपनी सहजता और ऋजुता के लिए प्रसिद्ध है। कथा प्रवाह भी अक्षुण्ण है और पाठक का मन कथा और कविता दोनों के साथ एकरूप होकर बढ़ता चला जाता है। विजय गुप्त नामक एक अन्य कवि ने भी 'मनसा मंगल' नामक काव्य लिखा। इस कृति का विषय और समय दोनों लगभग विप्रदास कृत 'मनसा विजय' के समान ही हैं। अपौराणिक कथाओं में यह कृति सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

चैतन्य और उनका युग : चैतन्य का जन्म ईसवी सन् 1486 में नवद्वीप में हुआ। वैष्णव धर्म तब तक बंगाल में जड़ें जमा चुका था। नवद्वीप संस्कृत

विद्या के ग्रध्ययन ग्रौर ग्रभ्यास का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था ग्रौर वहाँ के तरुण स्नातकों में चैतन्य का स्थान बड़ा ऊँचा था। प्रभु के चरणों में ग्रपने गहरे प्रेम के कारण वे प्रायः तल्लीन रहते ग्रौर कभी-कभी तो ऐसे बेसुध हो जाते कि वे इस संसार के प्राणी ही नहीं जान पड़ते थे। चैतन्य प्रभु की इस घनिष्ठ भक्ति के प्रभाव में ग्रनेक वैष्णव भक्तों का समुदाय उनके ग्रासपास जमा हो गया जिनमें ग्राचार्य ग्रद्वैत ग्रौर हरिदास भी थे। हरिदास तो पहले एक सूफी सन्त थे ग्रौर बाद में वैष्णव हो गये थे। चैतन्य ने सन् 1509 में गृह त्याग कर दिया था ग्रौर वे उसी के बाद पुरी चले गये थे। पुरी में उन्होंने दक्षिण के तीर्थों की यात्रा की ग्रौर फिर दक्षिण से पश्चिम तथा उत्तर के तीर्थों की। इसी यात्रा की ग्रवधि में उनकी भेंट सनातन ग्रौर रूप नामक दो भाइयों से हुई जिन्होंने इस नये सम्प्रदाय के प्रति उत्सुक होकर सुल्तान के दरबार में प्राप्त ग्रपने बड़े-बड़े पदों को छोड़ दिया ग्रौर वृन्दावन में जाकर चैतन्य महाप्रभु के भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करने लगे। स्वयं चैतन्य का संकीर्तन जन-समुदाय को ऐसा ग्राविष्ट कर देता था कि वे प्रभु का गुण गाते-गाते ग्रपनी सुध-बुध खो देते थे। सार्वजनिक पूजा पद्धति का यह रूप ग्राज भी बंगाल में व्यापक रूप से प्रचलित है।

स्वयं चैतन्य ने केवल एक संस्कृत कविता लिखी है उसमें उन्होंने ग्रपनी निष्ठा ग्रौर धार्मिक विश्वास के तत्वों को ग्राठ पदों में निबद्ध किया है; किन्तु उनकी भक्ति, ज्ञान ग्रौर चरित्र से प्रभावित होकर ग्रसंख्य कवियों ने गीत लिखे ग्रौर इस प्रकार सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दियों में विपुल वैष्णव साहित्य की सृष्टि हुई। सन् 1533 में चैतन्य महाप्रभु का देहावसान हुग्रा ग्रौर उनके ग्रनेक ग्रनुयायियों तथा समकालीन भक्तों को ऐसी प्रेरणा हुई कि चैतन्य महाप्रभु का जीवन काव्य के रूप में ग्रथित कर दिया जाना चाहिए जिससे युग-युगान्तर तक लोग उनका स्मरण करते रहें। वृन्दावन दास ने 'चैतन्य मंगल' ग्रथवा 'चैतन्य भागवत' नामक उनका पद्यबद्ध जीवन-चरित्र लिखा जो बंगला का पहला जीवन चरित्र है। यह पुस्तक 1540 में पूरी हुई थी। चैतन्य के जीवन ग्रौर उपदेशों पर ग्राधारित ग्रनेक पुस्तकें लिखी गईं किन्तु इनमें सबसे उल्लेखनीय पुस्तक है 'चैतन्य चरितामृत'—रचनाकार हैं कृष्णदास कविराज ग्रौर रचनाकाल है सोलहवीं शताब्दी का ग्रन्तिम भाग। वृन्दावनदास ने चैतन्य को विष्णु के ग्रवतार की तरह निरूपित किया है। किन्तु कृष्ण देव उन्हें एक ही देह में कृष्ण ग्रौर राधा का ग्रवतार मानते हैं। इस विशिष्ट मान्यता के कारण वैष्णव सम्प्रदाय की ग्रलौकिक प्रेम-मीमांसा को इस काव्य के द्वारा एक ग्रपूर्व शोभा प्राप्त हो जाती है।

सोलहवीं शताब्दी की अन्य कृतियाँ : मंगल काव्य : सोलहवीं शताब्दी में लिखे गए बंगला साहित्य की दूसरी शाखा में वे अनेक लम्बी विवरण प्रधान कविताएँ आ जाती हैं जो शक्ति के रूप चण्डी और मनसा जैसी देवियों की कहानियों से जुड़ी हुई हैं और जो आकार की विपुलता में कई बार तो महाकाव्यों की बराबरी करती हैं। ये कविताएँ मंगल काव्य कही जाती हैं। इनमें कवि कंकण मुकुन्दराम चक्रवर्ती द्वारा लिखित 'चण्डी मंगल' सर्वाधिक शक्तिशाली रचना है। यह इस शताब्दी के अन्तिम दशाब्द में लिखी गई थी। कृष्णदास कविराज का 'चैतन्य चरणामृत,' जिस प्रकार सोलहवीं शताब्दी में लिखे गए वैष्णव परम्परा के काव्यों में सर्वोत्तम है उसी प्रकार चण्डीमंगल महाकाव्य के समतुल्य अपने आकार के कारण तथा बंगला भाषा में इस आकार की प्रथम रचना होने के कारण बहुत महत्वपूर्ण है। उसी प्रकार मुकुन्दराम की रचना भी महत्वपूर्ण है और उनमें जो प्रधान बात हैं कवि की सामाजिक दृष्टि। समाज की कुरीतियों को उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से पकड़ कर व्यक्त किया है और वह भी प्रायः व्यंग्य के सहारे। अपने समाज की बुराइयों के प्रति कवि का यह जागरूक तथापि तटस्थ भाव उसे तत्कालीन बंगाली हिन्दू और मुस्लिम समाज के जीवन को भो सहानुभूतिपूर्वक समझने में सहायक बनाता है। समाज के दुर्बल तत्वों की निराशा को उन्होंने बड़े व्यंग्यपूर्ण ढंग से सामने रखा है। एक घटना से प्रसंग में उन्होंने शक्ति के वाहन सिंह से कहलवाया है:—'हे माँ, मैं पापों से बिलकुल अलिप्त हूँ तथापि आपने मुझे (आततायियों से बदला लेने की) शक्ति देने की कृपा नहीं की।'

वैष्णव काव्य : सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी : चैतन्य के युग में वैष्णव धर्म के प्रसार से प्रेरणा पाकर विष्णु की प्रशंसा में जो गीतात्मक पद लिखे गये वे वैष्णव पदावली के नाम से प्रसिद्ध हैं और मध्यकालीन बंगला साहित्य में उन्हें सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। पन्द्रहवीं शताब्दी में मैथिल कवि विद्यापति ने जो वैष्णव प्रेम काव्य लिखा वह धीरे-धीरे सारे बंगाल में लोकप्रिय हो गया और उसी आदर्श पर विभिन्न कवि रचना रत हो गए। बंगला वैष्णव कवियों ने अपनी भाषा और मैथिली को बड़ी सुरुचि के साथ मिलाकर एक नई ही काव्य पद्धति का निर्माण कर डाला। इस भाषा को 'ब्रजबुली' कहते थे। स्मरण रखना चहिए कि यह ब्रज भाषा से भिन्न है। वैष्णव प्रेम काव्य के रचयिता पदकर्त्ता कहलाते ये। सोलहवीं शताब्दी के सर्वाधिक प्रसिद्ध पदकर्त्ताओं में लोचनदास, बलरामदास और ज्ञानदास के नाम लिए जाते हैं। इनके गीतों का विषय कृष्ण और राधा का प्रेम ही है। इन पदों ने इस प्रकार की बंगला कविता के रूप को निश्चित स्वरूप देनें में बहुत

बड़ा हाथ बँटाया। ज्ञानदास ने बंगला और ब्रजबोली दोनों में ही लिखा; किन्तु लोचनदास ने केवल बँगला में ही अपनी लेखनी का चमत्कार प्रकट किया।

सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में वैष्णव धर्म के प्रति लोगों का उत्साह और भी बढ़ गया। वृन्दावन में सम्प्रदाय से सम्बंधित जो दार्शनिक पण्डित थे उन्होंने सम्प्रदाय के दर्शन को बंगाल की जनता में प्रसारित करने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप कीर्तन की नई-नई शैलियाँ प्रचलित हुई और उन्होंने काव्य और संगीत को मिलाकर एक नई ही लहर दौड़ा दी। नरोत्तम-दास इस प्रकार के कवियों में प्रमुख कहे जा सकते हैं। वे स्वयं बहुत अच्छे संगीतज्ञ थे और बड़े ही ललित पद लिखकर उनका संकीर्तन करते थे। इस परम्परा में सबसे प्रख्यात कवि हुए हैं गोविन्ददास। उन्होंने ब्रजबोली में 300 से भी अधिक गीत लिखे। इसके अतिरिक्त उनके बहुत से गीत चण्डीदास के नाम से भी प्रचलित हो गए। हम कह चुके हैं कि चण्डीदास नाम के अनेक कवि थे। ये पद बंगला वैष्णव पदों में अपने लालित्य और संगीतमयता के कारण बहुत ही लोकप्रिय रहे हैं।

इन वैष्णव पदों की एक बड़ी खूबी यह है कि यद्यपि वे विष्णु की भक्ति की अपेक्षा रखते हैं और उसे बड़े उत्कृष्ट रूप में व्यक्त भी करते हैं तथापि वे साधारण लौकिक प्रेम के गीत भी माने जा सकते हैं। बंगाली वैष्णव कवियों ने अपनी काव्यात्मक प्रतिभा को साम्प्रदायिक चौखटों में कभी बन्द नहीं होने दिया और उसकी कल्पना सदा मुक्त विहार करती रही।

सत्रहवीं शताब्दी : सत्रहवी शताब्दी में साहित्यिक प्रतिभा का बड़ा विकास हुआ। यह वही युग है जिसमें काशीरामदास ने बँगला महाभारत का प्रणयन किया। यह महाग्रन्थ कृत्तिवास की रामायण की तरह ही जनप्रिय है। इस काल में जो अन्य साहित्यिक रचनाएँ लिखी गई उनमें बहुधा सोलहवीं शताब्दी के महान कवियों द्वारा रचित विवरण और प्रेमपरक कविता की छाया ही दृष्टिगोचर होती रही। इस शताब्दी में कोटकदास (क्षमोनन्द) लिखित 'मानस मंगल' भी उल्लेखनीय है। इसकी भाषा बहुत ही सरल है; जन-समुदाय इसे बिना किसी कठिनाई के भलीभाँति समझ पाता था और यद्यपि कोटकदास के काव्य में मौलिकता की गुंजाइश बहुत थोड़ी ही थी तथापि वर्णन शैली कवि की अपनी है और इस कारण परम्मपरागत विचारों को कहते हुए भी वे मौलिक ही जान पड़ते हैं इस कृति का छन्द पयार है। जो अपनी उच्छल गति और लय के लिए बँगला छन्दों में अनुपम है।

इसके अतिरिक्त सत्रहवीं शताब्दी बँगला साहित्य के इतिहास में अपनी धर्म-निरपेक्ष प्रेम कथाओं के कारण भी महत्वपूर्ण गिना जाता है। ये प्रेम

कथाएँ मुसलमान कवियों ने ही लिखीं। उनके सामने आदर्श के रूप में फारसी और हिन्दी में लिखी गई वैसी ही कविताएँ थीं। कुछ मुसलमान कवियों ने वैष्णव पद भी लिखे। इन कवियों में सैयद मुर्तजा और नजीर महमूद सबसे अधिक जाने हुए नाम हैं।

आराकान के मुसलमान कवि : सत्रहवीं शताब्दी में आराकान का दरबार साहित्य और कलाओं का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। दरबार के अनेक मुसलमान कवियों ने बँगला साहित्य की निधि बढ़ाई। आराकान की जनता की भाषा आराकान थी। यह भाषा तिब्बत और चीनी भाषा का एक मिश्रण थी और यह भाषा बर्मी भाषा से बहुत मिलती-जुलती थी। यह अंचल शताब्दियों तक बँगाल की साहित्यिक और बौद्धिक प्रतिभा से सम्पर्क में आता रहा और इसलिए वहाँ के अनेक विद्वान बँगला में साहित्य रचना करते रहे। वहाँ का पहला बँगाली कवि दौलत क़ाज़ी हुआ। उसने सती मयना की कहानी को पद्यबद्ध किया। यह काव्य 'लोर चन्द्राणी' के नाम से भी प्रसिद्ध है। कहानी का आधार राजस्थान के कवि साधन की एक कविता है। दौलत क़ाज़ी अपने प्रबन्ध काव्य को पूरा नहीं कर पाये। उसे सैयद आलाओल ने सन् 1659 में पूरा किया। ये आराकान के प्रमुख बंगला कवि थे। आलाओल सूफी सम्प्रदाय के थे। संस्कृत और फारसी का इन्होंने बड़ा गहरा अध्ययन किया था और इनका हिन्दी साहित्य से भी अच्छा परिचय था। जायसी के महाकाव्य 'पदमावत' का बँगला रूपान्तर उन्हीं ने किया और वह उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती हैं।

अठारहवीं शताब्दी : बँगला के धर्म निरपेक्ष काव्य ने इस शताब्दी में एक नया मोड़ लिया और विवरणात्मक काव्य ने भी नई ऊंचाइयाँ छुईं। रामेश्वर भट्टाचार्य कृत 'शिव संकीर्तन' (1710) शिव को एक एक गरीब किसान और उनकी पत्नी गौरी को एक साधारण नारी के रूप में चित्रित करता है। इस काव्य के सामाजिक चित्र मुकुन्द राम के 'चण्डी मंगल' में मिलनेवाले यथार्थ की याद दिलाते हैं। जनता में प्रिय, धर्म ठाकुर से सम्बन्धित 'धर्म मंगल' कही जानेवाली कविताएं इस काल की प्रमुख देन है। घनाराम चक्रवर्ती और मानिकराम गाँगुली इस काल के प्रसिद्ध कवि हुए।

इस शताब्दी के सबसे बड़े कवि हुए भारतचन्द्र (1712 से 1760)। उन्होंने अपने 'अन्नदा मंगल' (1753) नामक काव्य में तीन लम्बी विवरणपरक कविताएं सम्मिलित कीं। इस कविताओं की शैली ओजपूर्ण हैं। भाषा और छन्द अत्यन्त व्यवस्थित हैं ओर वर्णन हृदयहारी। पहली कविता शिव और पार्वती की कहानी सुनाती है। पूरे ग्रन्थ का नाम इसी कविता के नाम पर

रखा गया है। दूसरी कहानी 'विद्या सुन्दर' है और उसमें विद्या तथा सुन्दर नामक दो काल्पनिक चरित्रों के प्रेम का वर्णन किया गया है। अन्तिम कविता ऐतिहासिक काव्य है। उसका नाम 'मानसिंह' है और उसमें जहांगीर और प्रताप आदित्य का संग्रह चित्रित किया गया है। इन तीनों काव्य रचनाओं में 'विद्या सुन्दर' ही सबसे अधिक कमनीय है। यद्यपि उसके कुछ हिस्से ऐसे हैं जो किसी अत्यन्त सुरुचिशील पाठक को खटक सकते हैं। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वर्णनात्मक शैली में लिखी गई रचनाओं में इस कृति का स्थान बहुत ऊँचा गिना जायेगा। जहाँ हम मुकुन्दराम में उसके काव्य क्षेत्र के विस्तार के कारण देवों, नरों और पशुओं—सबका समर्थ चित्रण देखते हैं, वहाँ हम भारत चन्द्र में कला के सौष्ठव और सौन्दर्य का दर्शन करते हैं। मुकुन्दराम गहन हैं, भरतचन्द्र सुष्ठ और सुन्दर हैं।

इस शताब्दी के विवरणशील कवियों में यदि हम भरतचन्द्र को सबसे श्रेष्ठ कवि कहें तो प्रेम काव्य के कवियों में रामप्रसाद सेन ही उस पद के भागी हैं। रामप्रसाद सेन की रचना 'काली-कीर्तन' मां काली की भक्ति में लिखे गए पदों का संग्रह है। इन कविताओं में ईश्वर के माता रूप के प्रति मनुष्य के प्रेम की अभिव्यक्ति बड़ी ही सशक्त और भावना प्रवण रूप में सामने आई है। यद्यपि इन पदों में वैष्णव प्रेम काव्य जैसी संगीतात्मकता और रमणीयता नहीं है किन्तु छन्दों की सरलता और चित्रों की आत्मीयता हमें गम्भीर आध्यात्मिक अनुभव के स्तरों तक उठा ले जाती है।

धार्मिक भावनाओं से अलग लिखे गए प्रेम गीतों के कवि रामनिधि गुप्त अथवा निधि बाबू (1742 से 1839) भी इसी शताब्दी में हुए। मानवीय प्रेम को काव्य रूप देने वाले कवियों ने उन्हें बंगला का पहला कवि कहा जा सकता है। उन्होंने अबतक चली आ रही शास्त्रीय शैली को भी तोड़ा। यहाँ शास्त्रीय शैली से अभिप्राय काव्य की शैली न होकर संगीत की शैली से है। लोकसंगीत की शैली में लिखे गए ये गीत शब्दों की उपयुक्तता और गहनता की दृष्टि से दृष्टव्य हैं। हिन्दी अंचलों में प्रचलित टप्पा शैली की जड़ें बंगाल में जमाने का श्रेय भी रामनिधि गुप्त को जाता है। उन्होंने काव्य के माध्यम से संगीत की शैली को रूढ़ करने में बड़ी सहायता पहुँचाई।

अठारहवीं शताब्दी बँगला साहित्य के इतिहास में एक और दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। शताब्दी में ईसाई धर्म-प्रचारकों ने बंगला गद्य का विकास किया। पौर्तुगाली ईसाई धर्म-प्रचारक और उनके माध्यम से ईसाई धर्म को ग्रहण करनेवाले भारतीय, गद्य में धार्मिक पुस्तकें लिखने लगे। इसके पहले कतिपय वैष्णव कवियों ने कुछ ऐसी सूक्तियां लिखी थीं जो गद्य के बहुत

निकट पहुँच जाती थीं। उक्त धर्म-प्रचारकों ने अपनी धार्मिक पुस्तकें लिखते हुए इसी शैली को आदर्श के रूप में अपने सामने रखा। मानोएल द आसुम्पसाओं लिखित 'कृपार शास्त्रेर अर्थभेद' सन् 1734 में ढाका में लिखी गई और रोमन लिपि में लिसबन में मुद्रित हुई। इसका मुद्रण 1743 में हुआ। बँगला की मुद्रित पुस्तकों में यह पहली पुस्तक है। पहला बँगला व्याकरण पुर्तगाली भाषा में लिखा गया और उसी वर्ष एक बँगला-पुर्तगाली कोश भी प्रकाशित हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी के अंग्रेज अधिकारियों ने भी प्रशासनिक कार्यों में सहायक होने की दृष्टि से बँगला में कुछ रचनाएँ लिखवाईं और छपवाईं। उन्होंने सन् 1785-1792 में बँगला टाइप का निर्माण किया और सरकारी विनियमों का बँगला प्रकाशन किया।

उन्नीसवीं शताब्दी : जागरण युग : उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जब कलकत्ता भारत की राजधानी थी वहाँ के मध्य वर्गीय और नव शिक्षित समाज में बड़ी मानसिक हलचल देखी गई। इस हलचल के फलस्वरूप अनेक नये विषयों का अध्ययन और नव साहित्य का निर्माण हुआ। इसी काल में माइकेल मधुसूदन दत्त (1834-73) और बंकिमचन्द्र चटर्जी (1838-98) हुए। राजा राममोहन राय (1772-1835) ने ब्राह्म समाज की स्थापना की। वे अपने काल के सबसे बड़े समाज सुधारक और शिक्षा-शास्त्री हुए। उन्होंने तत्कालीन प्रश्नों को लेकर जो तर्कपुष्ट और दृष्टिपूर्ण गद्य लिखा वह बंगाली साहित्य की अमर निधि है। उन्होंने जो कुछ लिखा वह तो महत्वपूर्ण है ही किन्तु कदाचित उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है उनका पश्चिम के विज्ञान तथा साहित्य के प्रति उत्साह। उनका विचार था कि ये ऐसी शक्तियाँ हैं जो हमारे देश में नवीन बौद्धिक गतिविधियों का निर्माण करके हमें आगे बढ़ा सकती हैं। राजा राममोहन राय ने पश्चिम के विज्ञान और साहित्य के साथ-साथ भारत के आध्यात्मिक आधार उपनिषदों को भी नये सिरे में महत्व देना प्रारम्भ किया, उनके आधार पर उन्होंने धर्म में सुधार सुझाये और इसके कारण संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति नव शिक्षितों में आदर का भाव बढ़ा। जो लोग बिना अपने अतीत को जाने पश्चिम की नई सभ्यता की चकाचौंध में आ गये थे, उनका ध्यान अपनी प्राचीन उपलब्धियों की ओर गया सन् 1784में सर विलियम जोन्स ने 'दि रायल एसियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल' नामक संस्था प्रारम्भ की और उसके माध्यम से यूरोभारतीय साहित्य का जो अध्ययन हुआ, उसने भी लोगों के सामने एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया और देश के प्राचीन साहित्य और दर्शन की ओर समादर की भावना दृढ़ की। सन् 1800 में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज प्रारम्भ हुआ और वर्षों तक

यह भाषा-विज्ञान और साहित्य के अध्ययन का केन्द्र रहा। यहाँ भारतीय और यूरोपीय विद्वानों ने मिल जुलकर काम किया और बँगला भाषा को समुचित शिक्षण की दृष्टि से उपयुक्त बंगला व्याकरण और कोश आदि का निर्माण किया गया। 1817 में कलकत्ता में हिन्दू कालेज की स्थापना हुई। हेनरी विवयन डेरोजिओं (1809-1921) वहां अंग्रेजी के अध्यापक थे। उनके सम्पर्क से उनके विद्यार्थियों में अंग्रेजी साहित्य के प्रति एक नई उत्सुकता जागी। ये विद्यार्थी 'यंग बंगाल' के नाम से जाने जाते थे। उन्होंने एक नया बौद्धिक आन्दोलन चलाया। बंगला साहित्य में आधुनिक साहित्य के प्रवर्तक सर माइकेल मधुसूदन दत्त, तथा ब्राह्म आन्दोलन के प्रमुख नेता और बँगला गद्य के महान् लेखक देवेन्द्रनाथ ठाकुर इसी कालेज के विद्यार्थी थे। 1857 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की स्थापना हुई; तब प्रान्त के लोग नवीन विषयों और नये साहित्य से और भी निकट सम्पर्क में आये। बंकिमचन्द्र चटर्जी इस विश्वविद्यालय के पहले दो स्नातकों में से हैं। बौद्धिक दिशा में इस जागरण के साथ-साथ रामकृष्ण परमहंस के उपदेशों से निकलने वाले जीवन और आध्यात्म सम्बन्धी दृष्टिकोण ने समाज के साहित्य और जीवन पर बड़ा असर डाला। परमहंस देव के शिष्यों ने 'रामकृष्ण-कथामृत' नाम देकर उनके वचनों का एक संग्रह प्रकाशित किया। वह बंगला भाषा के धार्मिक साहित्य में सर्वाधिक लोक प्रिय पुस्तक है।

गद्य के प्रवर्तक : हम ऊपर कह आये हैं कि बँगला भाषा में सर्व प्रथम प्रकाशित पुस्तकें ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा बनाये गये कानूनों के बँगला अनुवाद की थीं। विलियम कैरी (1761-1843) ने सन् 1800 में श्री रामपुर में बैपटिस्ट मिशन की स्थापना की और 1801 में बंगला में बाइबिल का अनुवाद प्रकाशित कराया। रामराम बसु का 'प्रतापादित्य चरित्र' भी उसी वर्ष प्रकाशित हुआ। फोर्ट विलियम कालेज में जिन लेखकों ने गद्य-लेखन को प्रोत्साहन देने की शिक्षा में विलियम कैरी का हाथ बँटाया, उनमें मृत्युंजय विद्यालंकार अग्रगण्य हैं। उनकी शैली संस्कृत प्रधान थी। उन्ही के सहयोगी रामराम बसु अपनी 'मुंशी शैली' के लिए प्रसिद्ध हैं।

बँगला रंगमंच : बँगला रंगमंच की स्थापना करने का श्रेय एक साहसी रूसी व्यक्ति को जाता है। उसका नाम जरासिम लेबेडाफ़ (1749-1818) था। इसने एक अंग्रेजी प्रहसन का बँगला रूपान्तर 1796 में रंगमंच पर प्रस्तुत किया। किन्तु भाषा में मौलिक रूप से लिखे गये नाटकों में ताराचरण शीकदार का 'भद्रार्जुन' और ग्रीष्मचन्द्र गुप्त का 'कीर्ति विलास' इनके कोई 50 वर्ष बाद 1852 में सामने आये। ये नाटक पाश्चात्य शैली में लिखे गए थे। 'कीर्ति विलास' पर तो शैक्सपियर का प्रभाव स्पष्ट ही हैं। इसके बाद

कोई 25 वर्ष तक बँगाली नाटकों में संस्कृत ग्रोर ग्रंग्रेजी नाटकों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता रहा। कुछ ग्रपवाद भी थे। जैसे रामनारायण तर्क रत्न का 'कुलीन कुत सर्वस्व' (1854), व्यौमेशचन्द्र मित्र का 'विधवा विवाह' नाटक (1856) तथा दीनबन्धु मित्र (1829-1874) का 'नील दर्पण' नाटक। पहले दो नाटक समस्याग्रों को लेकर लिखे गए थे ग्रौर तीसरा नाटक, 'नील दर्पण' निलहे गोरों के ग्रत्याचारों को चित्रित करता था। नाटक की दृष्टि से 'नील दर्पण' कौई बड़ा शक्तिशाली नाटक नहीं हैं; किन्तु उससे इतना तो सूचित होता ही है कि बंगाली साहित्यिक की दृष्टि देश की राजनीतिक ग्रौर ग्राथिक समस्याग्रों की ग्रोर जाने लगी थी। दीन बन्धु के ग्रन्य नाटकों में सधवार एकादशी (1866) का नाम लिया जा सकता है। यह एक प्रहसन है ग्रौर इसमें जहां तहाँ व्यंग्य के छीटे भी हैं व्यंग्य के ग्रपेक्षाकृत ग्रधिक ग्रच्छे उदाहरण के रूप में रूप में माइकेल मधुसूदन के 'एकेइ की बोले सभ्यता' तथा 'बूड़ी सालिकेर घोड़ेरों' (1859)का उल्लेख करना ग्रावश्यक है। श्री माइकेल मधुसूदन दत्त ने कुछ गम्भीर नाटक भी लिखे।

ग्राधुनिक काव्य के प्रवर्तक : ग्रठारहवीं शताब्दी के ग्रन्तिम भाग में काव्य के दो नये रूप सामने ग्राये। एक रूप का नाम 'कवि' ग्रौर दूसरे का पाँचाली प्रचलित हुग्रा। इन रूपों में बँगला साहित्य के ह्रास का ग्राभास दृष्टिगोचर होता है।

राम बसु (1787 से 1829) इन नये स्वरूपों में 'कवि' शैली के रचयिता थे। दशरथी राय (1806-1857) ने एक 'कवि' मण्डली के लिए गीत लिखने से ग्रपना कवि कार्य प्रारंभ किया किन्तु बाद में वे पाँचाली गायकों में ग्रग्रगण्य बन गये। ईश्वरचन्द्र गुप्त (1812-59) उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे ग्रधिक लोकप्रिय कवि हुए। वे ग्रठारहवीं शताब्दी की परम्परा की ग्रोर ही मुड़ गए ग्रौर उन्होंने 'शब्द प्रभाकर' नामक एक पत्र निकाला जिसमें वे काव्य संबंधी लेख ग्रादि लिखते रहे। यों ग्राधुनिक काव्य के प्रवर्तकों में सबसे बड़ा हाथ रहा इन्हीं ईश्वरचन्द्र गुप्त के शिष्यों का; उनमें भी रंगलाल बनर्जी (1826-86) प्रमुख हैं। उन्होंने 'पद्मिनी उपाख्यान' (1858) नामक प्रसिद्ध प्रबन्ध-काव्य लिखा; इस की कथा ग्रलाउद्दीन द्वारा चित्तौड़गढ़ को जीतने से संबंधित है ग्रौर यह काव्य राष्ट्रीय भावना प्रधान लेखन का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

उन्नीसवीं शताब्दी का पहला महान् कवि माइकेल मधुसूदन दत्त ही कहे जायेंगे। उन्होने बँगला में मुक्त छन्द का प्रारम्भ किया ग्रौर उन्होंने ही पहले-पहल चतुर्दशपदियाँ (सॉनेट) लिखीं। उन्होंने जो कुछ लिखा उससे

स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि उनमें पाश्चात्य प्रभावों को भारतीय साहित्य के स्वभाव के अनुसार ढालकर प्रस्तुत करने की विलक्षण प्रतिभा थी। उनका 'मेघनाद वध' काव्य (1861) मुक्त छन्द में लिखा गया है और वह एक बड़ी ही समर्थ काव्य-कृति है। यह बात विशेष रूप से दृष्टव्य है कि रामायण के एक पात्र को लेकर राम के प्रति जनता में रूढ़ परम्परागत भक्ति से बिलकुल अछूते रहकर उन्होंने कथा को मानवीय मूल्यों के प्रकाश में देखा और लिखा। माइकेल मधुसूदन दत्त की प्रबंध-शैली पर यद्यपि होमर, वर्जिल और मिल्टन का प्रभाव दिखाई देता है किन्तु उनकी कविता की आत्मा सर्वथा भारतीय है।

इसी प्रबंध शैली के दर्शन हमें पुनः हेमचन्द्र बनर्जी (1838-1905) के 'वृत्र संहार' (1875-77) और नवीनचन्द्र सेन की (1846-1909) की महाभारत के आधार पर ली गई श्रीकृष्ण संबंधी कविताओं में होता है किन्तु इन्हें शिल्प और कल्पना शक्ति के विचार से साधारण ही कहा जायेगा।

बँगला उपन्यास : भूदेव मुखर्जी (1825-94) का ऐतिहासिक उपन्यास (1862) बँगला भाषा में लिखी गई गद्य-कथाओं का सबसे पहला नमूना है। 'अंगुरीय विनिमय' नामक उनका उपन्यास औरंगजेब की पुत्री के प्रति शिवाजी के प्रेम की कहानी है। बंकिम चन्द्र का उपन्यास दुर्गेशनंदिनी (1865) भी इसी कथा के आधार पर लिखा गया है और यह बँगला भाष' का कहे जाने योग्य पहला उपन्यास है। सामाजिक यथार्थ से संबंधित पहला बँगाली उपन्यास प्यारेचन्द्र मित्र (1814-83) ने लिखा है। इस उपन्यास का नाम है 'आलालेर घरेर दुलाल'। इसमें एक बड़े घर के बिगड़े हुए बेटे की कहानी लिखी गई है। शैली अपनी ताज़गी और बड़े-बड़े शब्दों के प्रति अपनी मोहमुक्ति के कारण आज के गद्य लेखकों के लिए भी एक नमूना हो सकती है। कालीप्रसन्न सिंह (1840-70) ने इसी से प्रेरित होकर 'हुतुम पेचार नक्शा' (1862) लिखा। कलकत्ते के सामाजिक जीवन की बोलचाल की भाषा में लिखे गए ये व्यंग्य चित्र आज भी अपकी मनोरंजकता में ताजे बने हुए हैं।

इस काल के प्रमुख उपन्यासकार हैं बंकिमचन्द्र चटर्जी जो अपनी गद्य शैली के प्रति उतने ही सतर्क हैं जितने माइकेल मधुसूदन दत्त पद्य शैली के प्रति। वे अपने शिल्प के विषय में भी वैसे ही सावधान हैं यद्यपि जहाँ तहाँ उनमें कुछ शिल्पगत कमजोरियाँ भी दृष्टिगोचर हो जाती हैं। उन का कल्पना प्रधान उपन्यास 'कपाल कुण्डला' (1866) मनोहारी है; किन्तु

वह गम्भीर नहीं है। 'विश्व वृक्ष' (1873) जैसे उनके उपन्यास समाज-सुधार के फेर में पड़कर कुछ कमजोर हो गए हैं। 'कृष्णकान्तेर विल' (1878) के विषय में भी यही कहा जा सकता है। 'आनन्दमठ' उनका राज-नैतिक उपन्यास है और सुविख्यात वन्देमातरम् गीत उसी के अन्तर्गत है। यद्यपि उपन्यास का कथानक कमजोर है किन्तु शैली शक्तिशाली है और राष्ट्रभक्ति उसमें कूट-कूटकर भरी है।

बंकिमचन्द्र से प्रेरित होकर रमेशचन्द्र दत्त ने भी (1848-1905) उपन्यास लिखे। 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' (1878) और 'राजपूत जीवन सन्ध्या' (1879) उनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं और वे पर्याप्त रूप में सफल कहे जा सकते हैं। श्री रमेशचन्द्र दत्त ने कुल मिलाकर छः उपन्यास लिखे हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ : प्रारंभिक पत्र-पत्रिकाओं में 'दिग्दर्शन (मासिक) ओर 'समाचार दर्पण' (साप्ताहिक) उल्लेखनीय हैं। इन दोनों का प्रकाशन 1818 में श्री रामपुर से ईसाई धर्म-प्रचारकों द्वारा हुआ। उसी वर्ष जून में कलकत्ते से गंगा किशोर भट्टाचार्य ने 'बँगाली गजेटि' का प्रकाशन प्रारंभ किया। इन पत्र-पत्रिकाओं ने साहित्यिक पत्रकारिता की परम्परा डाली जिसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण के रूप में राजेन्द्रलाल मित्र के 'विविधार्थ संग्रह' (1851) बंकिमचन्द्र के 'बंग-दर्शन' (1872), 'भारती' (1877) और 'साधना' (1891) पाठकों के सामने आये।

नाटक : 1875 में कलकत्ते में ग्रेट नेशनल थियेटर की स्थापना हुई। इसके स्थापित होते ही नाटक-संबंधी गतिविधियों ने जोर पकड़ लिया। इस रंगमंच पर कुछ राजनीतिक रूपक भी प्रस्तुत किये गये। सरकार ने इनकी रोकथाम के लिये ड्रेमेटिक परफोरमेन्स सेन्ट्रल एक्ट बनाया और इस तरह बौद्धिक स्वतंत्रता पर बन्धन लगाने का प्रयत्न किया। उन्नीसवीं शताब्दी के नाटककारों में सबसे अधिक उल्लेखनीय हैं ज्योतिरिन्द्रनाथ टैगौर (1848-1925), राजकृष्ण राय (1852-1894), गिरीश चन्द्र घोष, (1844-1911), अमृतलाल बोस (1853-29) और द्विजेन्द्रलाल राय (1843 1913)। इनके लिखे हुए अनेक नाटक रंगमंच पर बड़ी सफलता के साथ आज तक खेले जाते हैं; इन नाटकों ने बंगाल को अनेक प्रतिभावान रंगमंचीय कलाकार दिए। श्री गिरीशचन्द्र घोष ओर श्री द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों का तो अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है।

साहित्यिक गद्य : देवेन्द्रनाथ ठाकुर, अक्षयकुमार दत्त और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर बँगला के प्रारम्भिक महान गद्य लेखक हुए। बंकिमचन्द्र ने बँगला

में साहित्यालोचन की नींव डाली और आगे चलकर इसी आलोचना शैली का अनुकरण रमेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी (1864-1913) और बालेन्द्रनाथ ठाकुर (1870-99) ने किया। 1897 में 'सिराजुद्दौला' नाम की ऐतिहासिक पुस्तक अक्षयकुमार मैत्रेय (1861-1930) ने लिखी। यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। श्री अक्षयकुमार मैत्रेय पुरातत्व-सम्बन्धी अन्वेषकों में बंगाल के गिने-जाने योग्य प्रारम्भिक सज्जनों में आ जाते हैं। स्वामी विवेकानंद (1863-1901) ने भी प्रसाद और ओज की दृष्टि से जो उल्लेखनीय गद्य लिखा—उसका आध्यात्मिक मूल्य तो निर्विवाद है ही।

उन्नीसवीं शताब्दी में बँगला काव्य : परवर्ती काल : बिहारीलाल चक्रवर्ती के (1834-94) 'शारदा मंगल,' (1879) और 'सावेर आसन' (1889) से बँगला काव्य में एक नई ही प्रकार की गीतात्मकता का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम और भक्ति प्रधान इस कविता में कोमलता, परिमार्जन और सुरुचि का नया ही संयोग देखा गया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861-1941) पर इस काव्य का प्रभाव पड़ा था। द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर (1840-1926) ने 1875 में 'स्वप्न प्रयाण' नामक एक शक्तिशाली दार्शनिक काव्य लिखा। अक्षयकुमार बड़ाल (1865-1918) का काव्य अपनी गौरवपूर्ण छन्द शैली और शब्द चयन के लिए प्रसिद्ध हुआ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर : रवीन्द्रनाथ ने काव्य, उपन्यास, कहानियां, नाटक, प्रबन्ध और साहित्य समीक्षा-साहित्य के सभा क्षेत्रों में लिखकर बँगला सहित्य को एक सर्वथा ही नई ऊँचाई और सार्थकता प्रदान की। किसी अन्य बंगाली साहित्यकार ने आकार और प्रकार दोनों दृष्टियों से इतना नहीं लिखा। रवीन्द्रनाथ ने जो कुछ लिखा वह विश्व-साहित्य की निधि है। सन् 1913 में उन्हें अपने गीतांजलि काव्य पर साहित्य का नोबुल पुरस्कार मिला। वे इस समय तक बंगाल के साहित्यिकों में सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति की तरह प्रतिष्ठित हो चुके थे। धीरे-धीरे उनकी कीर्ति भारत और भारत के बाहर भी फैल गई। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में भी अपना योगदान किया—यद्यपि यह योगदान किसी राजनीतिज्ञ का न होकर, एक कवि का ही था। महात्मा गांधी ने उनके इस योगदान की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है और अपने लेखों में उन्हें 'स्वतंत्रता का प्रहरी' कहा है। यद्यपि रवीन्द्रनाथ ने सभी क्षेत्रों में महान कृतियाँ दीं, किन्तु उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ काव्य क्षेत्र में ही हैं। वे अपने जीवन के अन्तिम काल तक कविताएं लिखते रहे ओर उनके लिखने की ताजगी और मौलिकता कभी मन्द नहीं पड़ी। उन्होंने लगभग 70 वर्ष की अवस्था में गद्य के छन्द को साधकर कविताएं लिखीं और उनकी कुछ अन्तिम

कविताएं तो आधुनिक काव्य के शिल्प के नये से नये उदाहरणों की भाँति प्रस्तुत की जा सकती हैं।

रवीन्द्रनाथ के बाद : रवीन्द्रनाथ के समकालीनों में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर (1871-1951), प्रमथनाथ चौधरी (1868-1948), प्रभातकुमार मुखर्जी (1873-1932) शरद्चन्द्र चटर्जी (1876-1938) और सत्येन्द्रनाथ दत्त (1882-1922) विभिन्न क्षेत्रों में साहित्य का भण्डार भरते रहे। श्री अवनीन्द्रनाथ और प्रमथनाथ ने बँगला निबंध साहित्य, प्रभात कुमार मुखर्जी ने कथा साहित्य, शरद्चन्द्र चटर्जी ने उपन्यास और कथा-क्षेत्र तथा सत्येन्द्रनाथ दत्त ने कविता के क्षेत्र में उत्कृष्ट कृतियाँ दीं। शरद्चन्द्र चटर्जी इस काल के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार हुए और उन्होंने सामाजिक यथार्थ को बड़े ही संवेदनशील रूप में लोगों के सामने प्रस्तुत किया। सत्येन्द्रनाथ की 'चर्खार गान' नामक काव्य पुस्तक में गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित कविताएँ संगृहीत हैं और वे काव्य की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

आधुनिक काल : बँगला साहित्य का आधुनिक काल उस तरुण लेखक-समुदाय से प्रारम्भ हुआ माना जाता है जिसने अपना लेखन 'कल्लोल' के माध्यम से लोगों के सामने रखा। यह पत्रिका सन् 1923 में शुरू हुई और साहित्य में आधुनिकता के आन्दोलन की मुख-पत्रिका बन गई। इन लेखकों में से अनेक रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नगण्य बताते रहे किन्तु देखा जाये तो उनमें से एक भी उनकी लेखन शैली के प्रभाव से अछूता नहीं रहा। इस समुदाय के कवियों में सबसे अधिक लोकप्रिय कवि काज़ी नज़रुल इस्लाम (जन्म 1899) हैं। इनकी कविताएँ और इनके गीत तरुणाई की भावना और उच्छ्वास को व्यक्त करते हैं। मोहितलाल मजूमदार (1879-1952) इस तरुण समाज के अपेक्षाकृत बुजुर्ग सदस्य हैं और उनकी कविता में काव्यगत गुण भी अधिक पाये जाते हैं।

'कल्लोल' से संबंधित तरुण साहित्यिक आधुनिक काल के सबसे अधिक प्रभावशाली साहित्यिक सिद्ध नहीं हुए। वे तो अन्य ही साहित्यिकगण हैं जिन्होंने इस काल में उल्लेखनीय रचनाएं दीं। ये लोग रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नगण्य भी नहीं कहते थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बाद बंगाल का सर्वाधिक श्रेष्ठ लेखन जीवनानंद दास के द्वारा हुआ (1899-1954)। उपन्यास लेखन में 'पथेर पाँचाली' के लेखक विभूतिभूषण (1899-1950) अग्रगण्य हैं। प्रमथनाथ बिशी ने (1901) साहित्य-समीक्षा के और व्यंग्य के क्षेत्र में राजशेखर बसु (परशुराम) ने श्रेष्ठ कृतियाँ दीं। काव्य में वास्तविक आधुनिकता और शक्ति के उदाहरण परिलक्षित हुए सत्येन्द्रनाथ दत्त (1901-1960) और विष्णु दे (1909) की कविताओं में। विष्णु दे एक श्रेष्ठ आलोचक भी हैं। ताराशंकर

बनर्जी (जन्म 1898) पिछले खेवे के उपन्यासकार हैं और आज भी लोकप्रिय उपन्यासों की रचना कर रहे हैं। अन्नदाशंकर राय (जन्म 1904) हमारे आज के सबसे अच्छे गद्यकार कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त आज अनेक बंगाली साहित्यिक पर्याप्त शक्ति के साथ लिख रहे हैं और आलोचकगण उनके भविष्य के विषय में आश्वस्त भाव से अपना मत प्रकट कर पाते हैं। स्थानाभाव से हम उन सबके नाम यहाँ नहीं दे पा रहे हैं किन्तु वे अपने इन सहयोगियों के माध्यम से यहाँ उपस्थित भी हैं क्योंकि उन्होंने बँगला की साहित्यिक निधि में इन सबके साथ मिलजुल कर हाथ बँटाया है।

महात्मा गाँधी

•

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हिन्दू संस्कृति पहले एक परिपूर्ण इकाई थी; पाश्चात्य प्रभाव के दबाव में पड़कर यह सांग इकाई विकलांग होने लगी और उसके स्वस्थ शरीर में अस्पृश्यता रूपी भयानक अर्बुद्ध रोग (कैंसर) अपने चिन्ह प्रगट करने लगा। हिन्दू और मुसलमान राष्ट्रीय हित का ध्यान भूलकर राज्याश्रय के उन टुकड़ों के लिए लड़ने-झगड़ने लगे जो शासकगण बहुत सोच-समझकर उनके सामने फेंक रहे थे। हम लोग इतने विकीर्ण और अविश्वस्त हो गए कि कितनों को तो ऐसा लगने लगा कि कौन जाने भारत अपनी प्रजा की प्रतिभा के योग्य फिर कभी ऊँचा उठ पाता है या नहीं। ऐसे ही निराशा से पूर्ण अन्धकारमय काल में एक वास्तविक महान आत्मा, एक अभूतपूर्व ऐसा नेता जो प्राचीन और महान ऋषियों की परम्परा में उदित हुआ था, हमारे बीच में आया और हम सब आज यहाँ उसका समादर करने के लिए समवेत हुए हैं। मानव जाति के इस महान नेता को हम महात्मा गाँधी के नाम से पुकारते हैं। जिस अपराजेय शक्ति के माध्यम से सृजन प्रारंभ होता है हमारे बीच उस शक्ति का द्वार खुल गया है और इसलिए अब किसी को भी इस राष्ट्र के भविष्य के विषय में मन में निराशा रखने अथवा व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं रही। महात्मा गाँधी ने हमें एक ऐसा पथ प्रदर्शित कर दिया है जिसपर चलने से हम न केवल अपना ही त्राण प्राप्त कर लेंगे वरन् दूसरे राष्ट्रों की जनता को भी त्राण पाने में सहायक बनेंगे।

जो महापुरुष आज हमारे बीच में विद्यमान हैं, जो आज हमारे बीच में जैसे उतरकर आया है, उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह किसी संकुचित व्यक्तिगत अथवा राष्ट्रगत स्वार्थ से पूर्ण रूपेण अलिप्त है। क्योंकि यह तो संभव है कि राष्ट्र का स्वार्थ, व्यक्तिगत स्वार्थ का एक अलंकृत और चौंधिया देनेवाला विराट् रूप भी है। किन्तु इससे उस दुर्गुण के वास्तविक स्वभाव में कोई अन्तर नहीं पड़ता; दुर्गुण तो वह है ही। हम जिन्हें राजनीतिज्ञ के नाम

से जानते पहचानते हैं उस वर्ग के लोगों का आचरण किसी बड़े आदर्श का अनुसरण नहीं करता। उन्हें झूठ बोलते हुए कोई हिचकिचाहट नहीं होती और अपने लाभ के लिए दूसरों को मर्मान्तिक आघात पहुँचाते हुए किसी प्रकार की दया-माया नहीं लगती। इसीलिए हम देखते हैं कि पश्चिम में राष्ट्र प्रेमी गण एक ओर तो अपने देश के लिए हँसते-हँसते प्राण दे डालते हैं और दूसरी ओर वे उसकी नाना भाँति की दुष्प्रवृत्तियों में हाथ बँटाते हैं। पश्चिमी देशों की इस गतिविधि के कारण मन में गंभीर सन्देह उत्पन्न होने लगे हैं कि ऐसी यह पश्चिमी सभ्यता कितने दिनों तक जीवित रह सकेगी : जिसे वे देशभक्ति कहते हैं वही उनके नाश का कारण बनती दिखाई देती है। और जब यह अन्त आयेगा तब वहाँ के लोग उसे निष्क्रिय होकर, भाग्य मानकर स्वीकार नहीं कर सकेंगे, जैसा कि हमारे देश में सम्भव है। वहाँ तो प्रलयकाल की उथल-पुथल का-सा दृश्य उपस्थित हो जायेगा।

यदि राजनीतिज्ञों को किसी क्षण ऐसा आभास होता है कि अमुक दुष्कृत्य करने से वे अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर लेंगे तो वे निस्संकोच होकर आसुरी शक्तियों को गले लगा लेते हैं और अपने को व्यावहारिक कहते हुए गौरव का अनुभव करते हैं। किन्तु आज मैं निश्चिन्त भाव से इतना कह सकता हूँ कि हमारे भाग्य का लेखा-जोखा करने वाले विधाता की सूक्ष्म दृष्टि से ऐसे मोटे-मोटे दुष्कृत्य बचकर नहीं निकल सकते; इसलिए हम निर्बलता के अपने किसी क्षण में उनकी प्रशंसा भले ही कर उठें, हम उन्हें समादर तो कभी नहीं दे सकते। हमारा समादर तो उस महात्मा के चरणों में समर्पित है जो सदा सत्य के पथ पर दृढ़ रहने के लिए प्रयत्नशील है; यह हमारे देश का सौभाग्य है कि जब वह नवयुग में प्रवेश कर रहा है उस समय हमारे इस नेता ने किसी तात्कालिक फल के लिए शाश्वत नैतिक आदर्शों से डिगने का उपदेश नहीं दिया और यदि हम कभी उस पथ से विचलित हो गए तो उसने हमें क्षमा नहीं किया।

उसने हमें ऐसा पथ बताया है जिसका अनुसरण करके हम बिना कोई हत्याकांड मचाये स्वातन्त्र्य प्राप्त कर सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमारे बीच ऐसे लोग बहुत कम हैं जो हिंसा पर अपने विश्वास को मन से एकदम निकालकर फेंक सकें अथवा जो सचमुच इस बात पर भरोसा ला पायें कि बिना हिंसा को अपनाये भी हमें विजय-श्री मिल सकती है। पश्चिम के 'सभ्य' युद्धों की बात तो छोड़ ही दीजिये, हम देखते हैं कि महाभारत का धर्म-युद्ध भी क्रूरता और हिंसा से भरा हुआ था। कदाचित पहली ही बार संसार में यह बात अब घोषित की गई कि हमें तो अपने प्राण देने हैं, लेने नहीं है। और इसके बाद भी विजय-श्री हमारी होगी। यह एक प्रभापूर्ण सन्देश है;

इसमें दाँव-पेंच और हथकंडों की कोई बात ही नहीं है और यह किसी कोरे राजनीतिक उद्देश्य का साधन-मात्र नहीं है। अधर्म युद्ध में मृत्यु का अर्थ है परिपूर्ण रूप से समाप्त हो जाना; अहिंसा के धर्म युद्ध में मृत्यु के बाद भी हम बचे रह जाते हैं—उस हार में जीत है और मृत्यु में अमरत्व है। महात्मा जी ने अपने जीवन में इस सत्य का साक्षात्कार किया है और इसीलिए इस सत्य के प्रति विश्वस्त होने के लिए उनके वचन और कर्म हमें बाध्य कर देते हैं।

भारतवर्ष की प्रतिभा अपने सम्पर्क में आनेवाले नवागन्तुकों से, अपने ऊपर राज्य चलाने की दृष्टि से आक्रमण करनेवालों तक से उनका श्रेष्ठ ही ग्रहण करती रही है। आक्रमणकारियों की संस्कृति में आध्यात्मिक दृष्टि से जो सिद्धान्त ग्रहण करने योग्य रहा है उसे भारत ने आत्मसात किया और उसके द्वारा मनुष्य जाति की सदा आशा का ही सन्देश दिया। ईसाई धर्म का महान् सिद्धान्त यह कहता है कि मनुष्य जाति को बचाने के लिए उसके पापों और कष्टों का बोझ स्वयं अपने ऊपर ले लेने के लिए प्रभु पृथ्वी पर आये और उन्होंने मनुष्य को किसी परलोक की प्रतीक्षा किये बिना इसी लोक में पापमुक्त हो जाने की आशा बंधाई। इसाई धर्म ने इस बात पर भी बड़ा बल दिया कि भूखे को भोजन और वस्त्रहीन को वस्त्र दिया जाना चाहिए। उदारता, त्याग, दान और इसी प्रकार के अन्य सात्विक गुणों का सभी धर्मों में स्थान है। हमारे देश में भी इन्हें बहुत महत्व दिया जाता है किन्तु इनका विनियोग प्रायः सीमित क्षेत्रों में होता रहता है और मनुष्य के प्रति प्रेम की भावना से वे अंशतः ही प्रेरित होते हैं। गांधीजी ने ईसा के इस उपदेश को जीवन्त रूप में अपनाया और यह इस देश के लिए बड़ी ही कल्याणकारी घटना हुई। ईसाइयत की शिक्षा उन्होंने किसी ऐसे व्यक्ति से ग्रहण नहीं की जो धर्मोपदेश का धन्धा करता हो। यह शिक्षण उन्हें टॉल्स्टाय की पुस्तकों से प्राप्त हुआ। टाल्सटाय ने अहिंसा के मूल्य को अपने ही जीवन संघर्षों और बहुविध अनुभवों के माध्यम से पहचाना था। यूरोप का यह महान दान मानो हमारे देश के लिए एक चिर प्रतीक्षित दान था।

मध्यकाल में ऐसे ही दान हमें मुसलमानों से मिले। दादू, कबीर और अनेक भक्तजनों ने घोषित किया कि पवित्रता और मुक्ति किसी मन्दिर के भीतर बन्द नहीं है वह तो ऐसा धन है जिस पर सारी मानव जाति का अधिकार है। हमें यह स्वीकार करते हुए कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि इस सन्देश की प्रेरणा हमें इस्लाम के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप ही मिली। चाहे धर्म में हो, चाहे नीति में, चाहे संस्कृति में हो, चाहे व्यक्तिगत जीवन में, श्रेष्ठ पुरुष श्रेष्ठ शिक्षा को सभी जगह से चुनकर उठा लेते हैं। किन्तु

मध्यकाल तो बीत चुका और अब हमने नये युग में पदार्पण कर दिया है और ऐसे क्षण में मनुष्यों में श्रेष्ठ महात्मा गांधी हमारे बीच में आये हैं और उन्होंने पश्चिम से प्राप्तव्य श्रेष्ठ सिद्धान्तों को भी हमारे सामने ला रखा है।

यह तो ठीक है कि ईसा मसीह ने यह घोषित किया था कि पृथ्वी पर दुर्बलों और विनयशीलों का राज्य होगा; किन्तु ईसाई आज मानो इसके विपरीत यह कह रहे हैं कि विजय उसकी होगी जो समर्थ हैं, आक्रामक है। और इसमें आश्चर्य की भी कोई बात नहीं क्योंकि यह सिद्धान्त प्रकट रूप में एक ऊट-पटाँग बात ही जान पड़ती है। फिर पश्चिम के वैज्ञानिकों ने प्रकृति के इतिहास के सिद्धान्तों की जो मीमांसा की है, उक्त सिद्धान्त उसके भी विरोध में जाता है। इस विरोधाभास के सत्य को सिद्ध करने के लिए एक नये मसीहा की ज़रूरत थी जो यह समझा सके कि विनयशीलता, प्रेम और पावित्र्य की शक्ति का एक सक्रिय रूप है; और वह है सत्याग्रह। विनयशीलता का अर्थ दब जाना नहीं है और न वह किसी गलत बात अथवा अन्याय को निष्क्रिय भाव से सहते चले जाना ही है। इस तरह दब जाना तो कायरता होगी और अनिच्छा से ही क्यों न हो, इसका अर्थ अत्याचारी शक्तियों से सहयोग करना होगा। गांधीजी ने विनयशीलता अथवा अहिंसा को वीरता का उच्चतम शिखर बना दिया और पशुबल के दम्भ के विरोध में अहिंसा एक शाश्वत चुनौती के रूप में खड़ी हो गई।

पशु-बल और आत्म-बल ये दो परस्पर विरोधी सिद्धान्त हैं। और यह कह सकना कठिन है कि अन्ततोगत्वा इनमें कौन अधिक शक्तिमान साबित होगा। क्योंकि जब हमारे चारों तरफ बाहर और हमारे अन्तर में भी आसुरी शक्तियों की सेनाएँ उमड़ रही हैं तब नैतिक और सत्य के पथ का अन्वेषण निश्चय ही एक अत्यन्त कष्टसाध्य काम है। फिर भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि हममें से कोई भी अहिंसा के उच्चतम आदर्श तक पहुँचने में समर्थ है अथवा नहीं, उसे स्वीकार तो करना ही पड़ेगा। हमें उसके प्रति अपनी निष्ठा जगानी ही होगी; क्योंकि आज हम अपने सामने एक ऐसे व्यक्ति को देख रहें हैं जो आधुनिक युग के इस घमासान में अपने जीवन और कार्य-दृष्टान्तों से इस आदर्श को ऊपर उठाए हुए है और हमें रास्ता दिखा रहा है। हम इस पथ पर अपनी शक्ति के अनुसार धीरे-धीरे चलें। हम देखेंगे कि इस पथ पर चलते-चलते महात्मा का सन्देश हमारे निकट स्पष्ट, प्रत्यक्ष और सत्य हो जायेगा। इसलिए आज का दिवस एक स्मरणीय दिवस है और युगों-युगों तक जब-जब यह दिन आयेगा हमें इस सन्देश को अधिकाधिक स्पष्टता के साथ समझते और आचरित करते चले जाना है।

प्रथम दिवस का सूर्य

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रथम दिवस के रवि ने
अपने उदय काल में
प्रश्न किया
तुम कौन ?
उत्तर नहीं मिला।

गये वर्ष पर वर्ष
दिवस के डूब रहे सूरज ने
पश्चिम सागर तट पर
स्तब्ध सांझ में
पूछा अन्तिम बार
कौन तुम ?
उत्तर नहीं मिला।

[शेष लेखा]

गीत

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

तुमने मुझे अशेष किया हैं
   यह लीला तव;
रिक्त किया फिर भरा, हुआ जीवन
   नित नव-नव ।

इस छोटी-सी बंसी को ओंठों पर रखकर
घूमे तुम कितने वन पर्वत सरिता तट पर
कितने राग बजाये तुमने उसमें स्वर-भर
   किसे बताऊँ वह सारा-सब ।
   यह लीला तव ।।

सुधा स्पर्श ने मन की सब सीमाएँ हर दीं
विपुल हर्ष ने वाणी की लहरें-सी भर दीं
एक दिवस मुट्ठी भरकर जो तुमने दान दे दिया मुझको
कितने युग हो गये नहीं चुकता कुछ उसका
केवल पाता रहता हूं अब ।
यह लीला तव ।।

(गीतांजलि)

प्रार्थना

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

चित्त जहाँ भयशून्य, उच्च है शीश जहाँ पर
मुक्त जहाँ हैं ज्ञान, नहीं है प्रांगण सीमित
गृह प्राचीरें जहाँ नहीं दिन रात
धरा को खण्ड-खण्ड करने पर उद्यत;
जहाँ शब्द झरते हैं अन्तर के झरने से,
जहाँ कर्म-धारा निर्धारित
स्रौतबद्ध होकर बहती है;
वह सहस्रविध सार्थकता में
नित्य प्रवाहित ही रहती है।

जहाँ तुच्छ आचार मरुस्थल
स्रोतःपथ विचार सरिता का नहीं सोखते;
जहाँ रूढ़ि के अचल प्रगति पथ नहीं रोकते;
जहां तुम्हीं हो सर्वकर्म चिन्तन के नेता;
अपने हाथों तुम निर्दय आघात लगाओ;
उसी स्वर्ग में भारत को, हे पिता, जगाओ।

(नैवेद्य)

काबुलीवाला

●

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मेरी पाँच वर्ष की छोटी बेटी मिनी, एक पल भी चुप नहीं रह पाती। पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करने के बाद उसने भाषा सीखने में केवल एक ही वर्ष लगने दिया। तब से तो वह जितनी देर तक जागती रहती है, कोई भी क्षण चुप रहकर बर्बाद नहीं करती। कई बार उसकी माँ उसे डाँटकर चुप करा देती है किन्तु मैं वैसा नहीं कर पाता। मिनी का चुप रहना इतना अस्वाभाविक दिखाई देता है कि मुझसे उसका वह रूप सहन नहीं होता। इसीलिए मेरे साथ उसका कथोपकथन कुछ विशेष उत्साह से ही चलता रहता है।

उस दिन सुबह मैं अपने नये उपन्यास के सत्रहवें परिच्छेद को लिखने में व्यस्त था। उसी समय मिनी आई और उसने एकदम कहना शुरू कर दिया : 'बाबा' अपना दरबान रामदयाल काक को कौआ कहता है। वह कुछ भी नहीं जानता। ठीक है न ? में जबतक उसे यह समझाने के लिए प्रस्तुत हुआ कि संसार में अलग-अलग प्रकार की भाषाए हैं तबतक उसने दूसरा ही प्रसंग उठा दिया। 'देखो बाबा भोला कह रहा था कि आसमान में कोई एक हाथी है। वह अपनी सूंड से पानी की फुहार छोड़ता है और तभी बारिश होने लगती है। हे भगवान ! भोला कितना झूठ बोलता है। रात-दिन बकवास करता है।'

इस विषय में मेरी राय के लिए बिना एक पल रुके वह फिर से पूछ बैठी, 'बाबा' माँ तुम्हारी कौन लगती हैं ?' मन ही मन मैंने कहा, साली। किन्तु मिनी से कहा, 'मिनी जाओ तुम भोला के साथ खेलो; मैं अभी काम में लगा हूँ।'

इसके बाद वह मेरी मेज के बिलकुल पास बैठ गई लगभग मेरे पाँव से सटकर और अपने दोनों घुटनों को हथेलियों से बजाती हुई जल्दी-जल्दी 'आग्डुम-बाग्डुम' कहते हुए किसी खेल में लग गई। उस समय मेरे सत्रहवें

परिच्छेद के प्रतापसिंह कांचनमाला को लेकर निशीथ के अन्धकार में कारागृह की ऊँची खिड़की से किले से लगी हुई बह रही नदी के पानी में छलाँग लगा रहे थे।

मेरा कमरा सड़क से लगा हुआ है। एकाएक मिनी ने आग्डुम-बाग्डुम खेलना बन्द कर दिया और खिड़की की ओर दौड़ गई। खिड़की से झांकती हुई वह जोर-जोर से पुकारने लगी, 'काबुलीवाला, ए काबुलीवाला।'

मैंने देखा एक लम्बा काबुली पठान मैले ढीले कपड़े पहने, सिरपर कुल्ला बांधे, कन्धे पर झोली टांगे और हाथ में दो-चार अंगूर की पिटारियां लिए हुए धीरे-धीरे सामने की सड़क से चला जा रहा है—उसे देखते ही मेरी बेटी के चेहरे पर जो उत्साह छा गया उसका वर्णन करना कठिन है। उसने उसे चिल्ला-चिल्लाकर पुकारना शुरू कर दिया। मुझे लगा कि कन्धे पर झोली लटकाये हुए वह आदमी यहां आकर खड़ा हो जायेगा और आफत ही आ जायेगी; मेरा सत्रहवाँ परिच्छेद जहां का तहां पड़ा रह जायेगा।

मिनी की पुकार सुनकर उस पठान ने जिस तरह हँसकर, मुँह फेरकर मिनी की तरफ देखा और जिस तेजी से वह हमारे घर की तरफ बढ़ा, उसे देखकर लगभग वैसे ही उत्साह से मिनी घर के भीतर भाग गई और फिर मुझे अन्दाज़ भी नहीं लगा कि वह कहाँ चली गई। लगता है उसके मन में कहीं यह बात बैठी हुई थी कि काबुली पठान के कन्धे पर पड़ी हुई झोली को अगर कोई खुलवाकर देखे तो उसमें मिनी जैसे दो-चार बच्चे बंधे पड़े होंगे।

मिनी भीतर गई और काबुली मेरे सामने हँसता हुआ आकर खड़ा हो गया और उसने मुझे सलाम किया। मैं सोचने लगा कि इस समय यद्यपि प्रतापसिंह और कांचनमाला की अवस्था अत्यन्त संकटापन्न है फिर भी जब इस आदमी को पुकारकर बुला ही लिया गया है तो उससे कुछ न कुछ खरीदना ही पड़ेगा।

मैंने कुछ खरीदा और उसी के बाद काबुली ने बातचीत शुरू कर दी और वह अब्दुल रहमान, रूस और अंग्रेजों के स्वभाव और उनकी सीमान्त नीति को लेकर गप्पें छाँटने लगा।

अन्त में चलते-चलते उसने पूछा, 'बाबूजी, आपकी बेटी कहाँ चली गई है?

मुझे लगा कि मिनी के मन में काबुली के कंधे पर पड़ी हुई झोली के विषय में जो बिना बात का भय है उसे दूर कर देना अच्छा होगा। इसी विचार से मैं घर के भीतर चला गया और उसे बुलाकर ले आया। वह मुझसे बिलकुल सटी हुई काबुली के चेहरे और उसकी झोली को सन्देह भरी आँखों से देखती खड़ी रही। काबुली ने झोली से किसमिस, खुमानी वगैरह निकाले और

मिनी को देने चाहे; किन्तु वह किसी भी प्रकार से लेने को तैयार नहीं हुई। उसने जितना लेने का आग्रह किया वह उतनी ही अधिक मेरे घुटनों से सटती चली गई—उसके मन में सन्देह जो था। मिनी और काबुली का पहला परिचय तो इसी तरह हुआ।

कुछ दिनों के बाद की बात है कि मैं किसी काम से घर के बाहर निकला। मैंने देखा कि मेरी बेटी दरवाजे के पास एक बैंच पर बैठी हुई है और हँस-हँसकर लगातार बोलती चली जा रही है और काबुली उसके पाँव के पास बैठा हुआ मुस्करा-मुस्करा कर सुनता चला जा रहा है। और बीच-बीच में अपना टूटी-फूटी बँगला में मिनी की बातों पर अपनी राय भी दे रहा है। मिनी को अपने पाँच वर्ष के जीवन में बाबा को छोड़कर धीरज से सुननेवाला ऐसा श्रोता कभी नहीं मिला था। मैंने यह भी देखा कि उसके छोटे से आँचल में बादाम और किसमिस भरे हुए हैं। मैंने काबुली से कहा, 'उसे ये सब चीजें किसलिए दीं। आगे से फिर कभी मत देना'। इतना कहकर मैंने जेब से एक अठन्नी निकाली और उसे दी। उसने बिना हिचके सिक्के को ले लिया और झोली में डाल लिया।

जब मैं घर लौटकर आया तो मैंने देखा कि उस अठन्नी ने अपने मूल्य से दुगुना उत्पात मचा रखा है—मिनी की माँ सोलह आना नाराज थी। उसने जब मिनी के हाथ में सफेद चमकती हुई अठन्नी देखी तो उससे डाँटकर पूछा, 'यह अठन्नी तू कहाँ से लाई ?'

मिनी ने कहा, 'काबुलीवाले ने दी है।'

माँ कह रही थी 'तूने काबुलीवाले से अठन्नी क्यों ले ली ?'

मिनी ने रोते हुए कहा, 'मेंने माँगी थोड़े ही थी, उसने खुद ही दे दी।'

मैंने आगे बढ़कर मिनी के सिरपर जो आफत टूटनेवाली थी उससे उसे बचाया और उसे उंगली पकड़कर बाहर ले गया।

बाद में मालूम हुआ कि मिनी का काबुलीवाले के साथ यह द्वितीय मिलन ही नहीं था; इस बीच में वह कई बार आ चुका है और किसमिस बादाम की घूस देकर उसने मिनी के लालचीमन को जीतकर लगभग अपनी मुट्ठी में कर लिया है।

मैंने यह भी देखा कि इन दोनों मित्रों के बीच में कुछ बँधी-बँधाई बातें और कुछ बँधे-बँधाये हँसी-ठट्ठा चलते रहते हैं—जैसे ही रहमत आता है उसे देखते ही मेरी बेटी हँसते-हँसते सवाल करती है, 'काबुलीवाले, काबुलीवाले' तुम अपनी झोली में क्या डाले हो ?'

रहमत एक अतिरिक्त चन्द्र बिन्दु का उपयोग करते हुए हँसते-हँसते जवाब देता, 'हाँथी' ।

यह सोचते ही की पठान की झोली में एक हाथी पड़ा हुआ है मिनी खिलखिला पड़ती और हँसने-बोलने का दौर शुरू हो जाता । उनकी बातों में हँसने का बहुत-कुछ होता था, ऐसा मुझे नहीं लगता । किन्तु दोनों ही अपनी बातचीत में विशेष आनन्द लेने लगते थे । एक शरद् काल के प्रभात की तरह सफेद और बूढ़ा और एक दुधमुहें बच्चे के सरल हास-परिहास को देख सुनकर मुझे भी सुख होता था ।

उनके बीच में एक और चर्चा रूढ़ थी । रहमत मिनी से कहता, 'खोकी, तुम क्या ससुराल कभी नहीं जाओगी ?'

बँगाली घरों में लड़कियाँ जन्म लेते ही ससुराल शब्द से परिचित हो जाती हैं, किन्तु हम लोग थोड़े आधुनिक थे इसलिए हमने छोटी बच्ची को ससुराल के बारे में सब ज्ञान कराना उचित नहीं समझा था । इसीलिए रहमत के इस आग्रह को वह भलीभाँति समझ नहीं पाती थी, फिर भी किसी बात का जवाब न देकर चुप रह जाना मिनी के स्वभाव के विरुद्ध था—वह प्रतिप्रश्न कर बैठती, 'तुम ससुराल जाओगे ?'

रहमत किसी काल्पनिक ससुर की दिशा में अपनी जबर्दस्त मुट्ठी बांधकर मानो डाँटते हुए कहता है, 'मैं ससुर का सिर तोड़ दूंगा ।'

यह बात सुनकर मिनी ससुर नामक एक किसी अपरिचित जीव की बुरी हालत की कल्पना करके बहुत हँसती ।

स्वच्छ शरद् ऋतु आ गई थी । प्राचीनकाल में सम्राट्गण इस समय दिग्विजय के लिए निकल पड़ते थे । मैं कलकत्ता छोड़कर कहीं नहीं जाता, किन्तु इसीलिए मेरा मन सारे संसार में घूमता फिरता है । मानो मैं अपने घर के कोने में ही चिर प्रवासी बना रहता हूँ । अपने से बाहर की दुनिया के प्रति हमेशा ही मेरा मन न जाने कैसा करता रहता है । किसी दूर देश का नाम सुनते ही मेरा मन जिस प्रकार व्यस्त हो जाता है उसी प्रकार किसी विदेशी को देखते ही मुझे किसी नदी के किनारे पहाड़ और जंगल के बीच किसी छोटी कुटिया का दृश्य दिखाई देने लगता है और आनन्द से भरे हुए जीवनयापन की कल्पना मन में जाग उठती है ।

दूसरी ओर मेरी प्रकृति लगभग पृथ्वी से उगनेवाली वनस्पति की तरह है । जैसे वृक्ष को उखाड़कर दूसरी जगह लगायें ऐसी कुछ हालत बाहर जाने की बात सोचते ही मेरे मन की होने लगती है । इसीलिए इन दिनों सुबह-सवेरे अपने छोटे-से कमरे में मेज के सामने बैठे हुए काबुली से बातचीत करते

हुए मुझे बहुत कुछ भ्रमण करने सरीखा ग्राभास होता रहता था। मैं एकदम कल्पना लोक में पहुँचकर देखता कि दोनों ग्रोर दुर्गम लाल रंग की ऊँची-ऊँची पर्वत श्रेणियाँ खड़ी हैं। रास्ता संकरा ग्रौर रेतीला है, ऊँटों की पीठ पर बोझा लदा है ग्रौर पगड़ी बाँधे हुए सौदागर ग्रोर मुसाफिर कोई ऊँट के ऊपर तो कोई पैदल, कोई कटार बाँधे हुए तो कोई पुराने ढंगों की बन्दूकें कन्धे पर लटकाये चलते चले जा रहे हैं—काबुली ग्रपने मेघ मन्द स्वर में टूटी-फूटी बंगला के सहारे ग्रपने देश की बातें सुनाता ग्रौर मेरी ग्राँखों के सामने ये चित्र उठते चले जाते।

मिनी की मां का स्वभाव बड़ा शंकालु है। रास्ते पर कोई शोर हुग्रा कि उसे लगने लगता कि दुनिया के जितने पागल ग्रादमी हैं वे सारे के सारे उसी के घर पर हमला करने के लिए दौड़ते चले ग्रा रहे हैं। संसार में जितने चोर, डाकू शराबी, साँप, शेर मलेरिया, कीड़े-मकोड़े यहां तक कि ग्रंग्रेज नाविक हैं, उसे लगता है कि इन्हीं में से कोई न कोई उसके घर में घुसा चला ग्रा रहा है ग्रौर इतने दिन दुनिया देख लेने के बाद भी उसके मन की यह ग्राशंका दूर नहीं होती थी।

रहमत खाँ पठान के बारे में भी उसके मन में कहीं-न-कहीं भय पड़ा हुग्रा था। उसने मुझसे बार-बार जोर देकर कह रखा था कि रहमत पर नजर रखी जानी चाहिए। मैंने उसकी ग्राशंका को हँसकर उड़ा देने की कोशिश की तो उसने मुझसे कुछ सवाल किये, 'क्या तुमने सुना नहीं है कि लोग लड़के-बच्चे उठा ले जाते हैं?' 'क्या काबुलियों के देश में गुलामी की प्रथा नहीं है?' 'एक ऐसे ज़बर्दस्त काबुली के लिए एक छोटी सी बच्ची को उठाकर ले जाना क्या कोई बिलकुल ही ग्रसम्भव बात है?'

मुझे मानना पड़ा कि यह बात ग्रसम्भव तो नहीं है किन्तु मुझे इस पर विश्वास नहीं होता। सभी लोगों में विश्वास करने की समान शक्ति नहीं होती इसीलिए मेरी पत्नी के मन में भय बना रहा। इसीलिए बिना किसी ग्रपराध के मैं रहमत को ग्रपने घर ग्राने से मना नहीं कर सका।

रहमत हर साल माघ महीने के बीच में कभी ग्रपने देश लौट जाया करता था। इन दिनों वह ग्रपनी उधारी वसूल करने में बहुत व्यस्त हो जाता था। घर-घर जाना पड़ता था फिर भी वह रोज एक बार मिनी से तो मिल ही जाता। ऐसा लगता मानो उन दिनों के बीच में कोई षड्यन्त्र चल रहा है। वह जिस दिन सुबह नहीं ग्रा पाता, मैंने देखा कि वह उस दिन शाम को तो ग्राता ही; ग्रन्धेरे कमरे के कोने में उस ढीले-ढाले कुर्ते, पजामे पहने हुए व्यक्ति को देखकर, जो कन्धे पर एक लम्बी झोली भी डाले हुए होता था सचमुच मन में

कभी-कभी आशंका जाग तो उठती थी, किन्तु जब मैं देखता कि मिनी, 'काबुलीवाला काबुलीवाला' कहते हुए हँसती हुई दौड़ती आती थी और जब वे दोनों, जिनकी उम्र में ऐसा ज़बर्दस्त फ़र्क था, मित्र भाव से अपना हमेशा का हास-परिहास शुरू कर देते तो मन प्रसन्नता से स्वच्छ हो उठता था।

एक दिन सुबह मैं अपने छोटे कमरे में बैठा हुआ प्रूफ सुधार रहा था। आज दो-तीन दिन से सरदी मानो जाते-जाते खूब कनकनी हो गई थी, चारों तरफ लोग सर्दी से परेशान थे। बन्द खिड़की से धूप झांककर टेबुल के नीचे मेरे पाँव पर पड़ी थी और उसका वह गर्म स्पर्श बहुत मधुर लग रहा था। मेरा ख्याल है उस वक्त 8 बजे होंगे। जो लोग बहुत सुबह घर से निकल पड़े थे वे कान और सिर बांधे हुए सुबह की फेरी खत्म करके घर लौट रहे थे। इसी समय मैंने रास्ते पर बहुत शोर होते सुना।

नजर उठाकर देखा, तो देखता क्या हूँ कि पुलिस के दो सिपाही रहमत को बांधे लिए जा रहे हैं और उनके पीछे-पीछे बच्चों का दल कोतूहल में शोर करता हुआ चला जा रहा है। रहमत के शरीर और कपड़ों पर खून के धब्बे पड़े हुए थे और सिपाहियों में से एक के हाथ में खून से भरी हुई छुरी थी। मैं झटपट बाहर निकला और उन्हें रोककर मैंने पूछा कि बात क्या है? कुछ बात एक सिपाही ने बताई तो कुछ दूसरे ने और समझ में यह आया कि मेरा कोई पड़ोसी रहमत का कर्ज़दार था। कई दिनों पहले उसने रहमत से एक रामपुरी चादर ली थी और अब उसका पैसा देने से इन्कार कर रहा था। इसी बात को लेकर बकझक होने लगी और रहमत ने उसके पेट में छुरी घोंप दी।

रहमत उस झूठे आदमी को तरह-तरह की गालियाँ दिये जा रहा था और उसी समय 'काबुलीवाला, काबुलीवाला' कहते और पुकारते हुए मिनी घर के बाहर आ पहुँची।

रहमत का चेहरा एक क्षण भर हँसी से खिल गया। आज उसके कन्धे पर झोली नहीं थी। इसलिए जो प्रश्न हमेशा झोली के विषय में पूछा जाता था उसको लेकर जवाब-सवाल नहीं हुए। मिनी एकदम बोल पड़ी, 'तुम ससुराल जाओगे?'

रहमत ने हँसकर कहा, 'इसी मिनट पर जा रहा हूँ।'

मैंने देखा कि जवाब सुनकर मिनी हँसी नहीं। तब उसने इशारा करते हुए कहा, 'ससुर का सिर तोड़ देता लेकिन क्या करूँ हाथ बँधे हुए हैं।

प्राणघातक चोट पहुँचाने के अपराध में रहमत को कुछ वर्षों की सजा हो गई।

मैं एक तरह से उसकी बात भूल ही गया। जिन दिनों हम लोग घर में बैठे-बैठे अपनी आदत के मुताबिक रोज के कामों में लगे हुए एक दिन के बाद दूसरा दिन काटते चले जा रहे थे; कभी जंगल-पहाड़ों में घूमनेवाला एक स्वाधीन-प्रकृति मनुष्य जेलखाने की दीवार से घिरकर किस तरह अपने दिन काट रहा होगा इसका हमारे मन में कभी ख्याल ही नहीं आता था।

और चंचल मन की मिनी ने जो व्यवहार किया वह तो बहुत ही लज्जा-जनक था। यह तो उसके पिता को भी स्वीकार करना पड़ेगा। उसने बड़ी आसानी से अपने उस पुराने मित्र को भुला दिया और नये-नये साथी बना लिये। पहले तो उसने हमारे साईस नबी को अपना दोस्त बनाया फिर बाद में जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ती गई तो पुरुष मित्रों की जगह उसकी दोस्ती लड़कियों से ही रहने लगी। यहाँ तक की अब वह अपने पिता के कमरे में कदाचित ही दिखाई देती थी। मेरी तो उससे बातचीत लगभग हो ही नहीं पाती थी।

अनेक वर्ष बीत गये फिर शरद् काल आया। हमारी मिनी विवाह योग्य हो गई थी। उसका विवाह सम्बन्ध निश्चित हो गया। दुर्गा पूजा की छुट्टी में उसका विवाह होना था। इस छुट्टी के बाद जिस प्रकार कैलाशवासिनी दुर्गा की मूर्ति का विसर्जन होना था उसी प्रकार हमारे घर की आनन्दमयी बेटीं पिता का घर छोड़कर और उसे अन्धकारमय करके पति के घर चली जायेगी।

उस दिन जो दिन निकला वह बहुत ही सुन्दर था। वर्षा के बाद शरद् काल की नई धुली-धुली धूप का रंग ऐसा कुछ था जैसे सुहागे में लगाये हुए सोने का होता है। कलकत्ते की गलियों के भीतर की एक-दूसरे से संटे हुए उन मकानों को भी जो पुराने और जर्जर हो गए थे इस धूप ने एक विचित्र सुन्दरता दे डाली थी।

हमारे आँगन में आज रात्रि समाप्त होने के पहले से ही शहनाई बज रही है। शहनाई का वह स्वर मानो मेरी छाती के भीतर उमड़-घुमड़कर मुझे रुलाये डालता है। लगता था मानो वह मेरे भीतर से ही उठ रहा है। तरुण भैरवी की रागिनी में बेटी के आसन्न विरह की व्यथा ने शरद की धूप के साथ मिलकर मानो मेरे मन-प्राण व्यस्त कर दिए थे। आज मेरी मिनी का विवाह हो रहा था।

दिन चढ़ते ही ज़बर्दस्त आना-जाना और व्यस्तता शुरू हो गई। एक जगह बाँस बाँध-बाँधकर मण्डप खड़ा किया जा रहा है। घर के एक-एक कमरे में और बरामदे में झाड़-फानूस लगाये जा रहे थे। बड़ी दौड़-धूप और उत्तेजना थी।

मैं अपने लिखने के कमरे में बैठा हुआ हिसाब-किताब देख रहा था; उसी समय रहमत आया और सलाम करके खड़ा हो गया।

मैं उसे एकदम नहीं पहचान सका। कन्धे पर झोली नहीं थी। उसके वे लम्बे-लम्बे बाल भी नहीं थे और न शरीर में पहले जैसा तेज था। अन्त में मैंने उसकी मुस्कान पहचान ली और सब याद आ गया।

मैंने कहा, 'अरे रहमत कब आये ?'

उसने कहा, 'कल शाम को जेल से रिहाई मिली है।'

बात सुनते ही एक झटका-सा लगा। कभी किसी खूनी को सामने खड़ा देखा नहीं था, उसे देखते ही समस्त अन्तःकरण मानो संकुचित हो गया। मुझे ऐसा कुछ लगा कि आज के शुभ दिन पर यह आदमी यहां न आता तो अच्छा होता; इसका चला जाना ठीक रहेगा।

मैंने उससे कहा, 'आज हमारे घर में एक काम चल रहा है, मैं आज थोड़ा व्यस्त हूँ, तुम फिर कभी आना।'

बात सुनते ही वह एकदम जाने को हुआ, किन्तु बाद में दरवाजे तक जाकर थोड़ा हिचकिचाकर बोला, 'क्या एक बार खोकी से मिलना मुमकिन होगा ?'

शायद वह सोच रहा था कि मिनी अभी तक जैसी की तैसी बनी होगी। शायद उसने सोचा था मिनी आज भी पहले की तरह 'काबुलीवाला, काबुलीवाला', कहते हुए दौड़ती आयेगी और उनके बीच में वह पुरानी हँसी-दिल्लगी से भरी हुई बातचीत चल पड़ेगी। इतना ही नहीं अपनी पुरानी मित्रता के विचार से वह एक पेटी अंगूर और कागज के एक लिफाफे में शायद किसमिस और बादाम खरीदकर साथ में लेता आया था—अब उसकी झोली तो थी नहीं। वह अपने किसी देशवासी मित्र से माँग-टूंग कर यह सब लाया।

मैंने कहा, 'आज घर में कामकाज चल रहा है। आज तो किसी से मिलना-जुलना मुमकिन नहीं है।'

ऐसा जान पड़ा मानो उसे आघात पहुँचा है। स्तब्ध भाव से खड़े रहकर बिलकुल ही टकटकी लगाकर उसने मेरी ओर देखा और उसके बाद कहा 'बाबू सलाम'—इतना कहकर वह चला गया :

'मेरे मन में एक तरह का दर्द हुआ और ऐसा लगा कि मैं उसे पुकारकर बुला लूँ। इतने में ही मैंने देखा कि वह खुद लौटकर आ रहा है।

पास आकर बोला, 'ये अंगूर और थोड़े किसमिस, बादाम खोकी के लिए लाया था, मेहरबानी करके उसे दे दीजिये।'

मैं उसकी दी हुई उन चीजों को लेकर उसे कुछ पैसे देने लगा। उसने मेरा हाथ दबाते हुए कहा, 'आपकी बड़ी मेहरबानी; मुझे आप लोग हमेशा याद रहेंगे—मुझे आप पैसा न दें।'

'बाबू आपके जैसी लड़की है वैसी ही देश में मेरे भी एक लड़की है। आपकी बेटी के लिए उसी की याद में मैं कुछ मेवा वगैरह लेकर आया था; मैं कुछ सौदा करने नहीं आया।'

इतना कहकर उसने अपने ढीले-ढाले कुरते के भीतर हाथ डालकर छाती के पास से एक छोटा मैला-सा कागज बाहर निकाला। बहुत सावधानी के साथ उसकी तह खोली और दोनों हाथों से उसने उस कागज को मेरी मेज पर रख दिया।

मैंने देखा कि उस कागज पर एक छोटे-से हाथ की छाप है। वह कोई फोटोग्राफ नहीं था और न कोई हाथ से खींची गई तसवीर। हाथ पर स्याही लग जाने से बनी हुई छाप ही उस कागज पर थी। वह अपनी छोटी बेटी के हाथ के चिन्ह को हमेशा अपनी छाती से लगाए रखता था। साल दर साल कलकत्ते की गलियों में वह इसे छाती से लगाये फेरी लगाता रहता था।

मेरी आँखें छलछला उठीं। मैं भूल गया कि वह एक मामूली काबुली है और मैं एक सम्भ्रान्त बंगाली हूँ—तब समझ में आया कि जो वह है सो मैं हूँ; वह भी पिता है, मैं भी पिता हूँ। उसकी पर्वत गृह-वासिनी छोटी-सी पार्वती के हाथ की वह छाप उसे मेरी मिनी का स्मरण दिलाती रही है। मैंने उसी क्षण मिनी को भीतर से बुलवा भेजा। जनानखाने में स्त्रियों ने बड़ी आपत्ति की। किन्तु मैंने किसी की कुछ नहीं सुनी। विवाह की लाल रेशमी साड़ी पहने हुए माथे पर चन्दन की खौर लगाये वधु के वेष में मिनी संकुचाती हुई मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

उसे देखकर काबुलीवाला जरा अकचा गया; वह पहले की तरह एका-एक बोल नहीं पाया। जरा सँभलकर हँसकर बोला, 'खोकी, तुम ससुराल जा रही हो?'

मिनी को अबतक ससुराल का मतलब मालूम हो गया था। वह पहले की तरह जवाब नहीं दे पाई। रहमत का सवाल सुनकर लाज से लाल हो गई औन मुँह फिराकर खड़ी हो गई। काबुलीवाले के साथ मैंने जब मिनी को पहले दिन देखा था उस दिन की बात याद हो आई। मेरा मन करुणा से भर उठा।

मिनी भीतर चली गई और रहमत एक गहरी साँस खींचकर जमीन पर बैठ गया। एकाएक उसकी समझ में आया कि इस बीच उसकी बेटी भी ऐसी

ही बड़ी हो गई होगी । अब उसके साथ अब किसी और ढंग से बोलना-चालना पड़ेगा । वह जब लौटकर देश जायेगा तो उसे वैसा नहीं पायेगा जैसा छोड़कर आया था । इन आठ वर्षों की अवधि में क्या-क्या गुजरी होगी, कौन जाने । प्रभात काल के शरद स्निग्ध प्रकाश पर शहनाई का स्वर उभर उठा । रहमत कलकत्ते की एक गली में बैठा हुआ अफगानिस्तान के किसी गजे पहाड़ पर बसी हुई बस्ती की झांकी देख रहा था ।

मैंने एक नोट निकाला और उसे दिया । कहा, 'रहमत तुम अपनी बेटी के पास स्वदेश लौट जाओ; तुम दोनों का मिलना मेरी मिनी का मंगल करेगा ।'

मैंने उसे जो-कुछ दिया उसके कारण मुझे उत्सव आयोजन में कुछ काट-छांट करनी पड़ी । जैसा सोचा था उतनी झकझक बिजली का प्रकाश नहीं कर पाया । मिलीटरी का बैंड भी नहीं बुलाया जा सका और इससे घर की महिलाएँ उदास भी हुई । किन्तु मेरे लेखे विवाह में चार चांद लग गये । मैं सोचने लगा कि मैंने जो-कुछ किया है, उसके कारण बहुत दिनों के बिछुड़े हुए पिता की अपनी बेटी से मिलन हो सकेगा ।

मानस पूजा

श्री रामप्रसाद सेन

चित्त, तू इतना चिन्तित क्यों है ? काली का नाम जप और ध्यान में तल्लीन हो जा। पूजा का यह आडम्बर दम्भ उपजाता है। एकान्त में उसका भजन कर; इस तरह कि किसी को ज्ञात ही न होने पाये, भला तुझे मिट्टी और पत्थर और धातु निर्मित मूर्तियों से क्या मिलेगा ?

माँ की मूर्ति का निर्माण अपने मनस्तत्व से कर और उसे अपने हृदय के कमलासन पर प्रतिष्ठित कर। अक्षत और कदली फल किसलिए अर्पित कर रहा है तू ? यह व्यर्थ है। अपनी भक्तिसुधा उसके चरणों में ढाल और इस प्रकार अपने हृदय को तृप्त कर।

दीपक जला जलाकर इसके कक्ष में प्रकाश करने का प्रयत्न मत कर। अपने मन का मणि-दीप जला कर और अहर्निश उसी के प्रकाश को विकीर्ण कर।

अरे तू भेड़ें और बकरे और भैंसें बलिदान के लिए किसलिए ला रहा है। 'जय काली जय काली' कहकर षड्‌रिपुओं का बलिदान कर दे।

रामप्रसाद कहता है; ढोलक और नगाड़ों की क्या आवश्यकता है। 'जय काली' कहकर ताली बजा और अपना हृदय माँ के चरणों पर अर्पित कर दे।

चोर और डाकू

काजी नज़रुल इस्लाम

कौन कहता है तुम्हें डाकू, भाई कौन कहता है तुम्हें चोर ?
चारों ओर डंका बजाते घूम रहे हैं डाकू और सब जगह चोरों का राज है।
कौन है वह सुलेमान जो चोरी और डकैती का फैसला करना चाहता है ?

कौन है संसार में ऐसा बेदाग़, शोषण नहीं किया जिसने ?
हे महान् न्यायवादी, अपना न्यायदण्ड उद्यत करो
आज जो भी बड़ा बना है क्यों दुर्बल को लूटकर ही बड़ा बना है वह ?
लूट और चोरी में जो जितना आगे है,
जो जितना आगे है शोषण और वंचना में,
उतनी ही अधिक है उसकी प्रतिष्ठा, आधुनिक राष्ट्रों के बीच
उतना ही उच्च है वहाँ उसका स्थान।

प्रजा के ठँडे और जमे हुए रक्त से जोड़ी जाती हैं राजप्रासादों की ईंटें;
गरम बने हैं धनिकों के कारखाने कितने घरों के चूल्हों की आग बुझाकर।
यह कैसा यन्त्र-तन्त्र है जिसका खाद्य है नरमांस,
जीवित स्त्रियाँ और पुरुष प्रवेश करते हैं इसमें
और फिर बाहर निकलते हैं चूसे हुए गन्ने की तरह रसहीन होकर।
लाखों का पौरुष निचोड़कर ये कल-कारखाने
भरते रहते हैं उद्योगपतियों के शराब के प्याले और स्वर्ण-कलश;
भूखे के मुँह का कौर छीनकर मोटा होता रहता है सूदखोर;
और माटी में मिला देता हैं जमींदार गरीब की कुटिया इसीलिए
कि वह मोहताज होकर उसकी गाड़ी हाँके।

व्यापारी की बुद्धि ने बना छोड़ा है संसार को एक वेश्यालय
जिसमें पाप और पापात्मा साकी हैं और
इस महफिल में जमा हुआ है लोभ का संगीत ।

अन्न और स्वास्थ्य, आशा और भाषा सब कुछ खोकर
दौड़ रहा है आदमी अपने सर्वनाश की ओर;
बचाव की कोई सूरत दिखाई ही नहीं पड़ती
क्योंकि जहाँ देखो वहीं स्वर्ण-लोम की खाइयाँ खुदी हैं

सारी दुनिया एक कारागार है और पहरे पर खड़े हैं डकैत;
चोरों से उनका भाईचारा है और वांच उनके संगाती हैं ।
हे बन्धु, तुम्हें डाकू कौन कहता है, कौन कहता है कि तुम चोर हो ?
तुमने तो कुछ छोटे-मोटे सिक्के ही उठाए हैं;
तुमने आदमियत की छाती में छुरी नहीं मारी है ।
चोर तुम हो सकते हो मगर अमानुषता तुम में नहीं आई है ।
तुम भी रत्नाकर की तरह वाल्मीकि हो सकते हो
अगर किसी सच्चे आदमी से तुम्हारी भेंट हो जाए !

अविश्रान्त क्रान्ति-चक्र

काज़ी नजरूल इस्लाम

कांप रहा है शाश्वत थरथर पड़कर
सतत क्रान्ति के चक्रों में
भूतकाल मर गया, उसका शरीर काला पड़ गया है;
भूतकाल मर गया है और उसके पाँव रक्तरंजित हैं;
शाश्वत काल को मूर्छा आ गई है सतत क्रान्ति के चक्र में पड़कर
चैत्र के झंझा के साथ-साथ पुरातन समाप्त हो रहा है ।
हे नवीन, तुम अग्रसर हो जाओ,
हे शक्तिशाली, तुम आगे बढ़ आओ;
भूतकाल मृत हो चुका है, वह गया-गुज़रा हो गया;
हे नवीन, अन्वेषण तुम आओ,
हे आधुनिक, तुम आओ ।

वैशाख की आँधी नवीन का सन्देश लेकर आ रही है;
क्रान्ति के अविश्रान्त चक्र में शाश्वत थरथर काँप रहा है;

इस अविश्रान्त चक्र की वक्र कक्षा को देखो,
क्षितिज इससे रंजित है ।
रथ तीव्र गति से चल रहा है और
कुचल देनेवाले उसके पहिए सृष्टि को कंपित किए हैं ।

लक्ष-लक्ष सूर्य चन्द्रमा इसके आगे-पीछे हो रहे हैं,
क्रांति का अविराम चक्र चल रहा है;
और थरथर कांप रहा है शाश्वत ।

गृह ग्रौर नक्षत्र ग्राकाश में गतिमान हैं,
'ग्रागामी कल' उसकी गोद में है ग्रौर 'ग्राज' झूले में;
सूर्योदय हो रहा है; किसके स्वागत में हो रहा है यह सूर्योदय ?
दूरस्थ शिखर चुपचाप खड़े ताक रहे हैं इसे
पलाश-वृक्षों पर किस विजेता का विजय केतु फहरा रहा है ?
रथ मुड़ता है, चक्र बढ़ते हैं उस रक्तरंजित पथ पर
सूर्य उदित होता है इसी ग्रविराम क्रांति के चक्र में पड़कर
ग्रौर थरथर कांपता है उसकी गति में शाश्वत
ग्राग्रो झंझ, ग्राग्रो प्रलय
गरजो ग्रौर उमड़ो
ग्राग्रो हे दारुण वर्तमान
ग्राग्रो हे तारुण्य, ग्राग्रो हे नवीन
भले ही तुम्हारा जन्म जला दे ग्रखिल सृष्टि को
ग्राग्रो निडर होकर ग्राग्रो

इन्द्र धनुष के वर्तुलों में माँ तुम्हें हाथ देकर
ऊपर उठा रही है
ग्राग्रो ग्रविश्रान्त क्रान्ति के चक्र में
थरथर काँप रहा हैं जिसमें पड़कर शाश्वत

काल छन्द-गति होकर, विगत का निर्जीव शरीर
ग्रपने कन्धे पर उठाकर चला जा रहा है
कहाँ है वह चक्रधारी
जो इस मृत देह के टुकड़े-टुकड़े कर देगा ?
शिव के गाढ़ ग्रालिंगन शक्तिहीन हो गए हैं
तोड़ो इन शक्तिहीन ग्रालिंगनों को
ग्रविराम क्रांतिका चक्र चल रहा है
चल रहा है ग्रविराम क्रांति का चक्र
ग्रौर थरथर काँप रहा है उसमें पकड़कर शाश्वत !

एक सानेट

विष्णु दे

गोधूली की स्वर्ण वेला है किन्तु मेरे शून्याकाश में
जल रहा है दोपहरी का भयावना स्वप्न ।
मेरा हृदय नीलिमा में खो गया है;
खेत-खलिहान धू-धूकर के जल रहे हैं और उत्साह पीला पड़ गया है;
मन में आशा और आकांक्षा उमड़ती है,
किन्तु अनमना प्राण तो ठंडा ही पड़ा है ।
प्रेम के माया-जल में मैंने अपनी नौका छोड़ दी है, किन्तु मेरा पाल
फटा है और फड़फड़ा रहा है; वह जल रहा है क्योंकि जड़ता की वैतरणी
निष्प्राण जो है
गाँव के ग्वाल-बाल, रेल की सड़क पर काम करनेवाले मजदूरो;
मेरे जीवन में प्रवाह उत्पन्न करो,
उसमें तूफान आने दो और प्रवाहित करो मुझे सबके साथ मिलाकर ।
शरीर और मन की यह असंगति, संसार और आत्मा का यह भेद
भूल जाऊँ मैं और ऐसे स्वर में गा उठूं
कि फूटे और पनपे इस गंजे टीले पर हरा-भरा अश्वत्थ
पुष्ट हो जिसका तना और गहरी हों जिसकी ज़ड़े पृथ्वी के भीतर तक और
हरीतिमा उसकी वायुमण्डल में लहराये
कर्णधार का सन्देह समाप्त हो जाए और चुकादे वह अपना सारा ऋण ।
देखो, कोरे दर्शन बघारनेवालों का दम्भ औंधे मुँह पड़ा है कारखानों में, खेतों
में, मितासी के चित्रों में और मेलार्मे के शिष्य सम्प्रदाय के जुलूस
के सामने !

नाविक

विष्णु दे

नाविक की नींद खुली एकाएक और उसके मन में पराजय का भाव जागा
उसने देखा कि वह पतवार चलाने की जगह सोया पड़ा था इस आशा से कि
बीच समुद्र में उसका जलयान अपने आप चलता रहेगा।
उसने अपने को समवेत किया, पतवार हाथ में ली और लिया श्रम और बुद्धि
का सहारा

सूर्य और समीप के किसी बन्दर स्थान की हलचल और ध्वनियाँ और ताड़
के झाड़ उसे पुकार रहे हैं और यान बढ़ता चला जा रहा है अब।

सुनहली केश राशि वाली किसी भैरवी को सान्ध्य सूर्य
किसी दिव्य पक्षी के अण्डे की तरह दिखाई देता है
और किसान को दिखाई देता है वह अपने खेतों में पकती हुई फसल के बीच
के किसी खिलौने की तरह।

अन्धकार में कुछ लोग पास-पास सटे खड़े हैं और देख रहे हैं
सूर्य की तिर्यक् किरणों का दृश्य जो उनकी कुटिया में किसी तिरछे भाले की
तरह प्रवेश कर रही हैं।

वे मुग्ध होकर उन स्वर्ण-किरणों को देख रहे हैं और देख रहे हैं उसमें तैरते
हुए धूलि-कणों को। उनमें कंपन है और उड़ान है, उड़ान है और कंपन है।
यह सब किसलिए और किस उद्देश्य से ?

हे नाविक, तुम नौका बढ़ाते रहो और चलते रहो सूरज से पाँव मिलाकर;
तुम्हारे प्रतिबिम्ब बेबिलोनिया, मिस्र, चीन और जिनेवा के दर्पणों में पड़ रहे हैं;

क्योंकि तुमने अपने को लहरों पर छोड़ दिया है और बढ़ते चले जा रहे हो
किन्हीं तटों की ओर।

वैशाली, बैलनटाइन और एलेक्जेंड्रिया का ध्यान तुम्हें प्रकाश दिखा रहा है।
मानो वे किन्हीं जाने हुए तटों पर प्रज्जवलित निष्कंप दीप शिखाएं हों

यह सब तो अच्छा है किन्तु तुम्हें खोज किस बात की है
तुम खोज में हो, अधिक गंभीर ज्ञान और अधिक पूर्ण अनुभव की
जब तक तुषार कणों की तरह चमकती हुई मधुमक्खियां सूर्य के प्रकाश में उड़
रही हैं और जबतक बकपाँति किसी जेट से भी अधिक कुशलता से
फैली नीलिमा के अनजाने कोनों को चीर रही हैं
तब तक आदमी भी चैन से नहीं बैठेगा। भूलचूक और भयावह त्रुटियों की
ओर सा निश्चिन्त
उसकी नाविक-आत्मा आगे बढ़ती ही चली जायेगी
धरा पर एक नये जीवन की खोज में
अधिक परिपूर्ण आनन्द, अधिक आत्मीय सम्प्रेषण की व्याकुलता में।

प्रेम

विष्णु दे

अपनी चितवन मेरे चेहरे पर से हटा लो
इन जलती हुई शिखाओं पर बादल ढांक दो
तुम्हारी दृष्टि का आकर्षण
प्राणों में सागर के ज्वार का संगीत बजाता है;
तुम्हारी आंखों की तारिकाएं मेरे भीतर
नक्षत्रों का वर्तुलाकार नर-तन, जगाता है;
तुम्हारी आँखों के आमन्त्रण पर मेरे प्राण बाहर निकल पड़ते हैं ।
हटा लो अपनी यह चितवन;
क्योंकि एकाएक मेरे सामने की सांसारिक सड़क समाप्त हो गई हैं
और दिखाई दे रही हैं मुझे विश्व की सीमाएं
शून्याकाश के काले और सीधे तट पर ।

मैं रुक गया हूँ और मेरी भाग-दौड़ समाप्त हो गई है
सूनी धरती की गन्ध मस्तिष्क में घूम रही है—
अपना मुँह दूसरी तरफ कर लो
अपनी चितवन मेरे चेहरे पर से हटा लो
क्या यह अनिवार्य है कि मैं
किसी पक्षी की तरह कभी समाप्त न होनेवाली लहरों में
आकाश से टूटकर सदा के लिए समाप्त हो जाऊँ
एक अनजाने अँधेरे में डूब जाऊँ ?

किन्तु कौन जाने कहाँ है मेरा स्थान, कहाँ है मेरी निश्चित जगह
बन्द कर लो उस तारिका को अपनी आँखों की पुतली में

इन शिखाओं को ढाँप लो
इन्हें विलीन कर लो घने काले बादलों में
मैंने अपने अन्तर में मिथ्या का कूड़ा-करकट पूंजीभूत कर दिया
संयमविहीन इस क्षणिक मोह में
कितने ही कपोलों को आरक्त किया
सोने के सेब को सहज पा लेने के लालच में
निषेध की अवज्ञा करके विदीर्ण कर देने वाले वज्र को भूलकर
मैंने यह पादप तुम्हारे पाद-पद्मों पर गिरा दिया
किन्तु हवा की तीव्र गति पद-चिन्हों को मिटा रही है
धूली भरे पथ पर आज की पीड़ाकारी इच्छा भी
आनेवाले दिनों में फीकी पड़ जायेगी

और मुझे तुम्हारा सहारा चाहिए
हे मेरी अनिवार्यता
आज निराशा की इस स्मृतिपूर्ण कक्षा में
मुझे तुम्हारा सहारा चाहिए
किन्तु यह कक्षा मेरी इच्छा का उपहास कर रही है
मेरी अनन्त पीड़ा तुम्हारे नाम का उच्चारण करते-करते
विलीन होती जा रही है
तुम्हारा नाम केवल तुम्हारा नाम केवल तुम्हारा नाम

चंडीदास

मनहरण बांसुरी

कदम्ब वन से अचानक यह कैसा स्वर
चकित हो गए श्रवण
भर गया मन जीवनदायी रस और मधुरिमा से
प्राण मुग्ध हो गए हैं और मैं उन्मन हूँ।
कैसी विचलित हो गई हूँ मैं
इसे कैसे बताऊँ ?
मनहरण बांसुरी की सुरधारा बह रही है,
जैसे गरल हो; जैसे सुधा हो।

प्रतीक्षा

मेघ छाये हैं,
भयानक अँधेरी रात है,
मैं अकेली कदम्ब के नीचे बैठी हुई
बिसूर रही हूँ;
कन्हैया कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता।
अच्छा हो, पृथ्वी फट जाए
और मैं उसमें समा जाऊँ;
दिन बीतते चले जा रहे हैं,
रिसते चला जा रहा है यौवन घट !
मेरा मन कृष्ण को देखने के लिए व्याकुल है।

अनुरक्ता

तुम्हारे अँग शिथिल क्यों दिख रहे हैं
अधर काँप रहे हैं और आँख छलछला रही है,
देखती हूँ तुम्हारा शरीर काँप रहा है,
और गला रुँध गया है ।

तुम चुप क्यों हो और मन ही मन क्या सोच रही हो,
तुम टकटकी लगाकर शून्य में क्यों ताक रही हो ?

बड़ु चंडीदास कहता है, मैं भलीभाँति समझ गया,
बाँसुरी की धुन इसके कान में पड़ गई है ।
उसी ने यह अवस्था कर दी है इसकी ।

श्याम का नाम

सखि, श्याम का नाम मुझे किसने सुना दिया ।
कानों से होकर नाम मेरे प्राणों में उतर गया;
उसने मेरे प्राण आकुल कर दिये ।

कैसे बताऊँ श्याम के नाम में कितना मधु है
जीभ उसे छोड़ ही नहीं पाती ।
नाम लेते लेते मैं उसमें लीन हो गई हूँ
कैसे इससे छुटकारा पाऊँगी ।

जिसके नाम की महिमा ऐसी है,
जिसके नाम ने ही मेरा यह हाल कर दिया है,
क्या होगा जब मुझे स्वयं उसका संस्पर्श मिलेगा ?

मैंने उसके निवास को जान लिया है,
मैं अपने नियत पथ पर ही कैसे चलती रहूँ,
कितना चाहती हूँ कि मन उसे भूल जाये
किन्तु भूल नहीं पाती—मैं क्या करूँ ?

द्विज चन्डीदास कहता है
यौवन के निकष पर होती है
कुलवती के शील की परीक्षा ।

अभिशाप

यह तो काल हो गया, मेरा यौवन नहीं हुआ
और यह बृन्दावन-निवास नहीं हुआ, काल हो गया यह भी;
और यह कदम्बतल काल हो गया;
और यह जमुना-जल काल हो गया;
और काल हो गए ये रत्न-भूषण;
और काल हो गया यह गिरि गोवर्धन ।

कितने मृत्यु पाश मुझे घेरे हैं और मैं अकेली हूँ;
कोई भी ऐसा नहीं मिलता जिसे मैं अपनी व्यथा सुना सकूं !

मेघ मलार

विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय

प्रद्युम्न को वह व्यक्ति दशपारमिमता के मन्दिर के पास मिला। ज्येष्ठ मास का अन्तिम दिन था और लोग संक्रान्ति के पर्व पर वहाँ एकत्रित हुए थे। आसपास के गाँवों से लड़कियाँ मनौती मनाने और पूजा-प्रसाद चढ़ाने आई थीं।

प्रद्युम्न दिन-भर से उसी व्यक्ति की प्रतीक्षा में था। काफी दिन ढले पर्व पर एकत्रित लोग जब सपेरे का खेल देखने के लिए घेरा बनाकर खड़े हो गए तब प्रद्युम्न बड़ी उत्सुकता से उस एकत्रित जन-समुदाय पर आँखें दौड़ाने लगा; उसे आशा थी कि वह जिस व्यक्ति की तलाश में है, वह उसे मिल जरूर जायेगा। यद्यपि प्रद्युम्न ने उस व्यक्ति को कभी पहले नहीं देखा था फिर भी उसे इस बात का निश्चय था कि उस महान संगीतकार में कोई न कोई ऐसी विशेषता होगी ही, जिसके कारण वह अन्य लोगों से भिन्न दिखाई देगा और पहचाना जा सकेगा।

एकाएक उसने देखा कि भीड़ में से कोई व्यक्ति उसकी ओर ताक रहा है। इस व्यक्ति के कपड़े मैले-कुचैले और फटे हुए थे। किन्तु फिर भी उस व्यक्ति के चेहरे में ऐसी कोई बात थी कि प्रद्युम्न को लगा कि यही व्यक्ति वह संगीतकार है जिसे मैं खोज रहा हूँ। प्रद्युम्न ने जैसे ही उसकी ओर बढ़ने का भाव प्रदर्शित किया, उस व्यक्ति ने उसे हाथ के इशारे से भीड़ के बाहर आकर मिलने को कहा।

वह बूढ़ा आदमी प्रद्युम्न से बोला, 'मैं सूरदास हूँ, अवन्तिका का संगीतकार; क्या तुम मुझे ही नहीं खोज रहे थे?'

प्रद्युम्न को आश्चर्य हुआ कि यह व्यक्ति मेरे मन की बात कैसे जान गया। बूढ़े आदमी ने कहा, 'तुम मेरे निकट अपरिचित नहीं हो। तुम्हारे पिता मेरे

मित्र थे। मैं जब कभी काशी जाता था, कुछ भी क्यों न हो जाए, उनसे अवश्य मिलता था। मैंने तुम्हें वहीं देखा था, किन्तु तब तो तुम बच्चे थे।'

प्रद्युम्न ने पूछा, 'आप ठहरे कहाँ हैं?'

'उस जीर्ण मग्न मन्दिर में, वह जो नदी के किनारे पर है। तुम कहाँ रहते हो।'

'मैं यहाँ के विहार में अध्ययन करता हूँ।'

'बहुत अच्छी बात है। नदी के किनारे के उस मन्दिर में मेरे पास आना।'

अभी रात नहीं हुई थी लड़कियाँ पूजा-अर्चना करके मन्दिर से लौट रहीं थीं। प्रद्युम्न उन सबको देखता चल रहा था; उसकी आँखें सुनन्दा को ढूंढ़ रही थीं। सुनन्दा उसे कहीं नहीं दिखी और अब अँधेरा घिरता जा रहा था। रात होने के पहले उसे विहार पहुँच जाना था। क्योंकि आचार्य शीलव्रत का स्वभाव उग्र था।

वह तेज़ी के साथ पहाड़ी से नीचे उतरने लगा। अब वह मैदान में आ गया था। वहाँ से उसे नदी के तीर पर के उस जीर्ण-शीर्ण मन्दिर का शिखर दिखाई दे रहा था। वह मैदान में खड़ा था; सूर्य-किरणों से रंगीन बादल उसके पीछे थे।

एकाएक उसे लगा कि कोई उसका उत्तरीय पकड़कर खींच रहा है। उसने घूमकर देखा तो नीली साड़ी पहने हुए एक सुदेह तरुणी खड़ी थी। उसने अपने काले बड़े जूड़े पर कुन्द के फूलों का गजरा लपेट रखा था।

'सुनन्दा? तुम कब आईं? मैंने तुम्हें कहाँ-कहाँ ढूंढा मगर तुम कहीं भी नहीं मिलीं।'

लड़की का चेहरा थोड़ा लाल हो आया। उसे लगा कि यह आरोप लगाया जा रहा है। वह थोड़ी तेजी से बोली, 'तुम ऐसी बातें कर रहे हो जैसे मैंने यह नहीं देखा कि तुम आज क्या करते रहे हो। तुम तो आज दिन भर जादूगरों और सपेरों के फेर में पड़े रहे।'

'नहीं, नहीं सुनन्दा! विश्वास करो, मैंने तुम्हें बहुत खोजा।'

मन्दिर से लड़कियों का दल लौट रहा था। जैसे ही वह पास आते दिखा, सुनन्दा जरा जल्दी चलकर उनके साथ हो ली। वे सब मिलकर पहाड़ी के ढलान से उतर चलीं। प्रद्युम्न निराश और क्षुब्ध अकेला रह गया। थोड़ी देर के बाद वह फिर विहार की ओर चल पड़ा।

अँधेरा जो घिर रहा था एकाएक छँट गया। आज पूर्णिमा की रात थी; पहाड़ी और आसपास के मैदान हल्की चाँदनी में नहा उठे; फिर भी बहुत दूरी के वृक्षों पर और घास के मैदान पर एक काया थी।

जो लोग संक्राति पर्व पर मन्दिर में इकट्ठे हुए थे वे सब धीरे-धीरे चले गए। शाम की आरती का शब्द विलीन हो गया और प्रद्युम्न ने अपनी चाल तेज की;—तभी उसने एक वृक्ष के पीछे किसी को खड़े हुए देखा। जब वह पास आया तो देखा कि वह सुनन्दा है और उसी की प्रतीक्षा कर रही थी। वृक्ष की डालियों के बीच से चाँदनी का प्रकाश छनकर उसके ऊपर पड़ रहा था और छाया-प्रकाश के उस खेल में नीली साड़ी पहने हुए सुनन्दा हमेशा से भी अधिक सुन्दर लग रही थी।

प्रद्युम्न ने उसे देखते ही कहा, 'सुनन्दा, सचमुच मुझे तुम पर बड़ा रोष है।'

'अच्छा ? मगर यह तो बताओ दोष किसका है। तुम सारा दिन भीड़ में घूमते-फिरते रहे और मैं मन्दिर में तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही।'

'तुमने मुझे देख लिया था तो फिर तुमने मुझे पुकारा क्यों नहीं ?'

'तुम भी अच्छी बातें करते हो, मैं कोई अकेली थोड़े ही थी। चारों तरफ मेरी सहेलियाँ घूम रहीं थीं। दोपहर में जरूर कोई मेरे साथ नहीं था; किन्तु तब तो तुम सपेरों में फँसे थे।'

'अच्छी बात है भाई, अच्छी बात है। दोष मेरा ही सही, मगर मेरी बात सुनो; मैं किसी जादूगर या सपेरे के फेर में नहीं था। अवन्तिका से एक बड़े संगीतज्ञ आने वाले थे, मैं उन्हीं को खोज रहा था। सुनन्दा तुम जानती हो मैं वीणा सीखने के लिए कितना उत्सुक हूँ। अवन्तिका के ये संगीतज्ञ वीणा-वादन में बहुत प्रवीण हैं। अन्त में वे आज मुझे मिल गये। चलो, अब चलें और थोड़ी देर नदी के तीर पर बैठें। मैं थोड़ी देर तुम्हें बाँसुरी बजाकर सुनाऊँगा। बाँसुरी मैं लेकर ही निकला था।'

वे नदी के तीर पर गए, बैठे और प्रद्युम्न ने बाँसुरी भी बजाई। किन्तु लगा वह अन्यमनस्क है। सुनन्दा ने उसको इतना भूला-भूला कभी नहीं देखा था।

उसे स्वयं भी संगीत में कोई आनन्द नहीं आया, न कोई प्रेरणा ही उसे मिली। सूरदास का विलक्षण-सा वह रूप उसके मन में घूम रहा था। वह सोच रहा था कितना कुरूप है वह आदमी, बिलकुल दुबला और झुर्रियों से भरा हुआ; भिक्षु वसुव्रत ने वृद्धावस्था का जो चित्र अंकित किया है, उस व्यक्ति का सरूप लगभग वैसा ही है। उसके कपड़े तक कितने मैले थे; किसी पुराने उस भूर्ज पत्र की तरह जिसका रंग समय के कारण उड़ गया है।

प्रद्युम्न दूसरे दिन नदी के किनारे के उस जीर्ण-शीर्ण मन्दिर में गया। देवता की मूर्ति तो वहाँ से जाने कब कहाँ चली गई थी। दीवारों में दरारें फटी हुई थी और उनमें अनगिनत साँप छुपे पड़े थे।

सूरदास ने कहा : 'चलो हम बाहर चलें। यहाँ बड़ा अँधेरा है।' सूरदास ने प्रद्युम्न की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखकर मानो मन ही मन कहा : 'ठीक है, तुम इस काम को कर सकोगे। मुझे इसका भरोसा था।'

सूरदास का चेहरा असुन्दर था किन्तु प्रद्युम्न ने देखा कि उस पर प्रतिभा की एक छाप है जिससे वह प्रभावित हुआ। सूरदास ने कहा : 'मुझे आशा थी कि तुम आओगे। तुम्हारे पिताजी बड़े प्रख्यात संगीतज्ञ थे। क्या तुमने उनसे कुछ सीखा है ?'

प्रद्युम्न ने कहा, 'जी हाँ, मैं थोड़ी बाँसुरी बजा लेता हूँ।'

'क्या तुम बाँसुरी पर राग मेघ मलार निकाल सकते हो ?'

प्रद्युम्न ने उत्तर दिया, 'मैंने यह राग बजाना सीखा तो था किन्तु मैं नहीं कह सकता कि उस पर कोई ऐसा अधिकार है।'

'ठीक है, देखें, तुमने क्या सीखा है ?'

प्रद्युम्न ने अपनी बाँसुरी निकाली और उसे बजाना शुरू किया। संगीत उसके लिए सहज था और फिर उसके पिता ने उसे बड़ी चिन्ता के साथ अभ्यास भी कराया था। उसने मेघ मलार बहुत अच्छी तरह बजाया। उसमें गहराई थी और शक्ति भी। ऐसा जान पड़ा मानो सूरदास के लिए यह वेणु-वादन आशातीत रहा हो। उसने नहीं सोचा था कि प्रद्युम्न इतना अच्छा वादक होगा; वह उठा और उसने प्रद्युम्न को छाती से लगाकर कहा : 'आज तुम्हारे पिता होते तो उन्हें तुम पर गर्व होता। निस्सन्देह तुम यह काम सम्पन्न कर सकोगे। मैंने ठीक ही सोचा था।'

सूरदास ने थोड़ा रुककर कहा : 'मैं तुम से एक बात करना चाहता हूं, किन्तु वह अत्यन्त गोपनीय है। मैं तुम्हारे सामने अब यह बात स्वीकार कर लेना चाहता हूँ कि मैं भी तुम्हारी खोज में था। यह बहुत अच्छा हुआ कि हम लोग एक-दूसरे को पा गये। किन्तु पहले तुम प्रतिज्ञापूर्वक यह कहो कि मैं जो रहस्य तुम्हें बताऊँगा उसे तुम किसी पर प्रकट नहीं करोगे।'

प्रद्युम्न को यह सब सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा आखिर इन वृद्ध सज्जन से मेरी भेंट अभी कल ही तो हुई है, वे क्या सोचकर मुझ पर किसी रहस्य को प्रकट कर देना चाहते हैं। उसका कौतूहल बढ़ा और उसने प्रतिज्ञा की कि वह उनके द्वारा प्रकट किया हुआ रहस्य किसी को नहीं बतायेगा।

प्रद्युम्न के प्रतिज्ञा ले लेने पर सूरदास ने धीमी आवाज में कहना शुरू किया : 'तुम्हें दूर पर मैदान के उस पार वह एक टीला दिखाई दे रहा है न ? प्राचीन काल में उस टीले पर देवी सरस्वती का मन्दिर था। यह मन्दिर बहुत विचित्र था। आज भी यदि कोई संगीतज्ञ पूर्णिमा की रात को आषाढ़ मास

में इस टीले पर बैठकर मेघ मलार का सांगोपांग निरूपण करे तो देवी स्वयं उसे साक्षात दर्शन देती हैं। यदि वह लगातार तीन पूर्णिमा की रातों में राग को इसी प्रकार निरूपित कर सके तो उसे अपनी कला पूरी तरह हस्तगत हो जाती है। देवी सरस्वती की कृपा से संगीत विद्या के गुह्यतम रहस्य उसके लिए हस्तामलकवत हो जाते हैं, किन्तु एक बात है और यह उसकी शर्त है। संगीतज्ञ तरुण हो और अविवाहित हो। तुम इस साधना को क्यों नहीं कर डालते। अगली पूर्णिमा की रात को तुम यह साधना करो।'

प्रद्युम्न बिलकुल हक्का-बक्का होकर यह सब सुन रहा था। विद्या और कला की देवी सरस्वती के विषय में उसने अनेक आख्यिकाएँ सुनी थीं। वह सोचने लगा कि क्या सचमुच देवी सरस्वती का कोई अस्तित्व है। क्या उसे देख सकना सम्भव है।

सूरदास ने उसे चुप देखकर फिर से कहा, 'क्या तुम प्रयत्न करके नहीं देखना चाहते ?'

'नहीं, सो बात नहीं है। मैं तो केवल यही सोच रहा था कि क्या यह सम्भव है—?'

'यह तो तुम स्वयं ही देख सकते हो। यदि तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो मैं अगली पूर्णिमा को तुम्हारी ओर से सारी तैयारी कर रखूंगा।'

प्रद्युम्न जैसे कुछ सोचने में असमर्थ हो गया। लगा मानो किसी ने उस पर जादू कर दिया है। उसने केवल इतना ही कहा,'अच्छी बात है, मैं आ जाऊँगा।'

प्रद्युम्न पूर्णिमा की रात को सूरदास के साथ भद्रावती नदी के किनारे पहुँचा। आकाश में मेघ छाये हुए थे। किन्तु चन्द्रमा की ज्योत्सना से अन्धकार तरल हो गया-सा लगता था। सूरदास ने नियत स्थान पर पहुँचकर कोई विस्तृत आचार-विधि प्रारम्भ कर दी। उसने एक खोपड़ी में तेल भरा और ज्योति सुलगा दी। उसके बाद उसने वेदी रची और उसे भी प्रज्ज्वलित किया। प्रद्युम्न किसी सम्प्रदाय विशेष से संबंधित ये सारे आचार चुपचाप आश्चर्यचकित भाव से देख रहा था। काफी रात गये तक आचार चलते रहे और जब सारा कर्म-काण्ड सम्पन्न हो गया तब सूरदास ने कहा: 'मुझे जो कुछ करना था सो मैं कर चुका हूँ। अब शेष सब कुछ तुम्हारे हाथ में है।'

प्रद्युम्न ने देखा कि सूरदास की आँखों में एक प्रकार की प्यास थी और वह हर बार प्रद्युम्न की ओर लगभग घूरकर देखता था। सूरदास की इस दृष्टि ने उसे कुछ व्यस्त कर दिया। किन्तु जब वह बाँसुरी बजाने बैठ गया तो जैसे उसे सूरदास की याद ही नहीं रही।

पवन और आकाश निस्तब्ध हो गए। रात की निस्तब्धता को मेघ मलार के स्वरों ने आच्छादित कर दिया। प्रकृति और संगीत की आत्मा जैसे किसी एक ही आवेश के छन्द में घुलमिलकर परस्पर लीन हो गई।

एकाएक सारा मैदान किसी सौम्य स्निग्ध स्वच्छ प्रकाश से जगमगा उठा। प्रकाश मण्डल से परिवृत अनुपम सौन्दर्यशालिनी एक तरुणी दिखाई दी। प्रद्युम्न को सहसा अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। विद्या, कला, सत्य और सौन्दर्य की देवी उसके सामने खड़ी थी। वह उस दिव्य स्वरूप को चकित होकर देखता ही रह गया और फिर वह स्वरूप धीरे-धीरे शून्य में विलीन हो गया।

प्रद्युम्न मन्त्रमुग्ध होकर रह गया। सोचने लगा यह सत्य था अथवा स्वप्न। क्या वास्तव में मैंने उस स्वरूप को देखा अथवा मेरे उत्सुक मन ने उसकी कल्पना कर ली। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि उसने उस दिव्य स्वरूप को देखा था। किन्तु फिर भी उसे मन में भरोसा नहीं हो रहा था।

सूरदास ने कहा, 'अब तुम्हें विश्वास हुआ न ? अच्छा, अब तुम जा सकते हो। मुझे अभी थोड़ी-बहुत पूजा-अर्चा और करनी है।'

सूरदास के इन शब्दों को सुनकर मानो प्रद्युम्न का स्वप्न टूटा। उसका मन विक्षुब्ध हो उठा। विशृंखलित विचार उसके मस्तिष्क में चक्कर काटने लगे। पह विश्रांत गति से विहार की दिशा में लौट चला। वह बहुत देर तक चलता रहा। मैदानों को पार करके वह एक अरण्य में पहुँचा। अँधेरा घना था। वह अपना रास्ता टटोलता हुआ बढ़ता चला जा रहा था कि उसे एक जगह कुछ प्रकाश सा दिखा। वह प्रकाश चन्द्रमा का तो हो ही नहीं सकता था। आकाश में बादल छाये हुए थे और चन्द्रमा का जो प्रकाश उनसे छनकर आ भी रहा था, वह बहुत हल्का और पीला था। जब वह और पास पहुँचा तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने देखा, वह प्रकाश एक तरुणी की देह से विकीर्ण हो रहा था। अंधेरी रात में जैसे खद्योत के शरीर से स्निग्ध नील प्रकाश निकलता दिखाई देता है, उसका सारा शरीर उसी प्रकार की विचित्र आभा से उद्भासित हो रहा था। उसने पहचान लिया कि यह तो वही दिव्य देह है जिसे उसने थोड़ी देर पहले देखा था। ऐसा लगा कि वह रास्ता टटोल रही है और उसे दिखाई नहीं पड़ रहा है। उसके चेहरे पर कष्ट की छाप थी।

प्रद्युम्न एक विचित्र प्रकार के भय से भर गया। सारी ही घटना उसे भयजनक लगने लगी। वह जल्दी-जल्दी कदम उठाकर बिहार जा पहुँचा।

बड़ी देर तक उसे नींद ही नहीं ग्राई ग्रौर फिर सवेरे-सवेरे उसने एक विचित्र स्वप्न देखा। उसने देखा कि ग्रनुपम सौन्दर्यवती एक देवी भद्रावती के पानी में डूबती चला जा रही है। वह ऊपर उठने की कोशिश करती है किन्तु पानी के निर्मम भँवर उसे भीतर ही खींचते चले जा रहे हैं। उसके शरीर की ग्राभा फीकी पड़ती चली जा रही है ग्रौर उसके चारों ग्रोर ग्रँधेरा सिमट रहा है। एक बहुत बड़े ग्राकार की मछली क्रूर भाव से मुस्कराती हुई उस दिव्य देह का यह संघर्ष देख रही है; मछली का चेहरा सूरदास का चेहरा था। वैसा ही सतृष्ण, वैसा ही क्रूर।

प्रद्युम्न ने रात की सारी घटना महाकोट्टि विहार के ग्राचार्य पूर्णवर्द्धन को सुनाई। उस वृद्ध ज्ञानी पुरुष ने सारी कथा ग्राश्चर्य ग्रौर कौतूहल के साथ सुनी। ग्रन्त में उसने कहा, 'मुझे भय था कि कभी ऐसा कुछ होगा। संसार में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो ग्रपने स्वार्थ-साधन के लिए बड़े सा बड़ा दुष्कर्म करते हुए नहीं हिचकते ग्रौर तुमने ग्रनजाने ही ऐसे एक व्यक्ति को सहायता पहुँचा दी। तुम देवी सरस्वती को बंदिनी बनाने में निमित्त हुए हो। जरा मुझे बताग्रो तो सही, यह ग्रादमी कैसा दिखता है?'

प्रद्युम्न ने सूरदास की क्षीण देह ग्रौर तृषित स्वरूप का वर्णन किया।

पूर्णवर्द्धन ने कहा, 'मैं भलीभाँति समझ गया कि यह व्यक्ति सूरदास नहीं है ग्रौर यह ग्रवन्तिका से भी नहीं ग्राया है। यह है कापालिक गुणाढ्य।'

पूर्णवर्द्धन ने कहना जारी रखा, 'प्रद्युम्न सुनो, ग्राज से कोई दो सौ वर्ष पहले सरस्वती के उस मन्दिर में एक तरुण संगीतज्ञ रहता था। राग मेघ मलार के वादन में उसे ऐसी ग्राश्चर्यजनक कुशलता प्राप्त थी कि स्वयं देवी उसे प्रायः दर्शन दे दिया करती थी। फिर ऐसा होने लगा कि यदि उस स्थान पर जाकर कोई मेघ मलार को उसके बिलकुल शुद्ध रूप में प्रस्तुत कर दे तो देवी उसे दर्शन देने लगीं। एकबार उन्होंने सूरदास को भी दर्शन दिए थे। देवी की कृपा से सूरदास देश के सबसे बड़े संगीतज्ञ हो गए। उस क्षण गुणाढ्य वहाँ उपस्थित था। जब देवी ने उसे भी कोई वरदान माँगने को कहा तो उस ग्रविवेकशील व्यक्ति ने देवी को ग्रपनी पत्नी के रूप में माँगा। देवी ने कहा 'यह ग्रसम्भव है' ग्रौर वह ग्रदृश्य हो गई। गुणाढ्य ग्रपनी दुष्ट इच्छा के वश में होकर तन्त्र विद्या सीखने लगा ग्रौर उसने निश्चय किया कि वह किसी दिन ग्रपनी इस विद्या के बल पर सरस्वती को पाकर ही रहेगा। बहुत दिनों से उसका कोई समाचार सुनने में नहीं ग्राया था। तुमने जो बात सुनाई उसे सुनकर जान पड़ता है कि ग्रन्ततोगत्वा वह ग्रपने कुचक्र में सफल हो गया है। तुम वापस वहीं जाकर देखो कि क्या गुणाढ्य ग्रभी तक वहाँ है ग्रथवा नहीं।

प्रद्युम्न जितना जल्दी बना वहाँ जा पहुँचा। किन्तु उसने देखा कि मन्दिर खाली है। वह सुनन्दा के पास गया और उसने उससे कहा कि मैं एक आवश्यक काम से बाहर जा रहा हूँ और जल्दी ही वापस आऊँगा।

उसी रात को वह विहार छोड़कर चला गया। एक वर्ष निकल गया। प्रद्युम्न ने सारे देश में उस व्यक्ति को छान डाला जिसने उसके जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया था। उसका कहीं कोई पता नहीं चला। कोई नहीं जानता था कि गुणाढ्य कौन है। कला और विद्या के क्षेत्र में इसी समय बड़ी विचित्र घटनाएँ घट रही थीं। प्रसिद्ध शिल्पी मिहिरगुप्त बहुत दिनों से भगवान बुद्ध की एक मूर्ति गढ़ रहे थे। लोगों ने देखा कि मूर्ति के मुख पर एक आसुरी भाव उभर आया है। सब इसे देखकर स्तब्ध रह गए। तक्षशिला के प्रसिद्ध विद्वान यमुनाचार्य मीमांसा दर्शन की एक नई टीका करने में लगे हुए थे। सुना गया कि पिछले बारह महीनों से वे एकाएक दिगभ्रमित हो गए हैं और उन्हें बिलकुल ही प्रारम्भिक सिद्धान्तों को फिर से सोचना-समझना पड़ रहा है।

ऐसी ही अनेक बातें प्रद्युम्न के सुनने में आ रही थीं और उसे प्रतीति हो रही थी कि इस सब का कारण गुणाढ्य की करतूत ही है। वह अविश्रान्त भाव से गुणाढ्य को खोजता रहा किन्तु सारे प्रयत्न निष्फल रहे।

उसने एक दिन सुना कि उरुविल्व नामक गाँव में कोई एक आदमी आया है और यह वैसा ही दिखाई देता है जैसा वर्णन लोगों ने गुणाढ्य कापालिक का उससे सुना था। सुनते ही वे उस गाँव में पहुँचा। किन्तु वह रहस्यमय नवागन्तुक उसे वहाँ नहीं मिला।

वह उसे दिन भर खोजता रहा और बहुत थक गया। वह उसे खोजता-खोजता गाँव के दूसरे सिरे पर पहुँच गया था। थोड़ा विश्राम करने के विचार से वह वहाँ एक विशाल वट-वृक्ष के नीचे बैठ गया। अभी तक अँधेरा नहीं हुआ था। वह बैठा-बैठा अपने सामने के फैले हुए मैदानों को ताक रहा था। कितना शान्त था सन्ध्या का वह दृश्य, उसने उसके अशान्त मन को प्रसन्न कर दिया। थोड़ी ही दूर पर एक छोटी-सी पहाड़ी थी और वह वृक्षों से आच्छादित थी। उसने देखा कि उस सीधी पहाड़ी पर होकर एक पगडण्डी भी जा रही है।

प्रद्युम्न को बड़ा आश्चर्य हुआ जब उसने देखा कि घनी झाड़ियों में से एक मनुष्याकृति निकली और उसने संकीर्ण पथ से उतरना शुरू किया। जब वह पास आई तो उसने देखा कि वह कोई तरुणी है जो पहाड़ी के नीचे के सरोवर में पानी भरने के लिए आई है।

उसे जैसे कोई भूली हुई बात याद आ गई। लगा जैसे इस स्त्री को कहीं देखा है। वह और ठीक से देख सकने के विचार से सरोवर के पास पहुँचा।

प्रद्युम्न सोचने लगा कि क्या यह सम्भव है। यह तो वही दिव्य स्त्री है जिसने उसे महाकोट्टि विहार के निकट के वन में देखा था। यह तो सरस्वती देवी ही है जो उस रात को उसे दर्शन देने के लिए आई थी। वही आँखें, वही सुकुमार शरीर। किन्तु अब तक उसके शरीर की आत्मा समाप्त हो चुकी थी और उसका वर्ण बिलकुल पीला पड़ गया था।

प्रद्युम्न की समझ में नहीं आया कि क्या किया जाये। जब उसने विहार से बिदा ली थी तब उसका मन अत्यन्त विक्षुब्ध था। अपनी खोज के दिनों में भी वह इतना व्यस्त रहा कि उसने यह कभी नहीं सोचा था कि जो इस समय उसके सामने घट रहा है वह कभी संभव होगा।

वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया और उलझन मे पड़कर उसने वहाँ से चुपचाप चला जाना ही ठीक समझा। उसे लगा कि यदि वह तरुणी उसे न देख पाये तो अच्छा हो। दूसरे दिन शाम को वह फिर वहाँ लौटा और उसने देखा कि कल की तरह वह आज भी सरोवर से पानी भरने आई है। वह कुछ दिनों तक लगातार ऐसा ही करता रहा किन्तु उसकी समझ में नहीं आया कि करना क्या चाहिए।

एक दिन उसने देखा कि वह स्त्री सरोवर के पानी में नीचे उतरी। थोड़ी दूर कुमुदिनी का एक फूल खिला हुआ था किन्तु ऐसा लगा कि फूल जहाँ है, वहाँ पानी गहरा है। सम्भव है, वह वहाँ तक जाये तो डूब ही जाये। प्रद्युम्न धीरे-धीरे पास पहुँचा। स्त्री थोड़ा-सा मुस्कराई और उसने कहा 'क्या आप कृपा करके कुमुदिनी का वह फूल तोड़ देंगे ?'

'अवश्य तोड़ दूंगा। किन्तु मैं बहुत भूखा हूँ। क्या आप मुझे कुछ खिला सकेंगी ?'

'आइये मेरे साथ चलिये, फूल को अभी रहने दीजिये। देखती हूँ मेरी कुटिया में आपके योग्य कुछ है या नहीं।'

प्रद्युम्न पहाड़ी के शिखर पर बनी हुई कुटिया में उसके साथ गया। उसने दरवाजा खोला और कहा, 'आइये।'

प्रद्युम्न ने देखा कि छोटी-सी उस कुटी में और तो कोई भी नहीं था।

उसने पूछा, 'क्या आप यहाँ अकेली ही रहती हैं ?

'नहीं, एक सन्यासी मुझे यहाँ ले आया है। वह क्या करता है सो मैं नहीं जानती। कई बार वह मुझे यहाँ अकेली छोड़कर चला जाता है और पाँच-पाँच, छः-छः दिन तक नहीं लौटता।'

स्त्री ने मिट्टी के एक सकोरे में अनाज का कोई पेय प्रद्युम्न को दिया ।

प्रद्युम्न ने पूछा, 'आप पहले कहाँ थीं ? आपका घर कहाँ है?'

स्त्री इस समय एक थाली में बड़े मनोयोग से भात परोस रही थी । उसने दृष्टि उठाकर ऊपर की तरफ देखा । देखने में आश्चर्य का एक भाव था ।

'मेरा घर ? मुझे नहीं मालूम । कहा जाता है मैं विदिशा के एक मन्दिर के पास के मार्ग पर मूर्छित अवस्था में पड़ी थी । सन्यासी ने मुझे वहीं पाया । अपने पिछले जीवन की कोई बात मुझे याद नहीं पड़ती ।'

उसके चेहरे के भाव से ऐसा लगा कि मानो मन कहीं दूर चला गया है । सान्ध्यकालीन आकाश को वह जिस भाव से चुपचाप देख रही थी उससे ऐसा जान पड़ता था कि वह किसी इस तरह की बात को स्मृति में खींच लेने का प्रयत्न कर रही है जो उसके मानस पटल पर से बिलकुल ही लुप्त हो चुकी है । एकाएक वह रोने लगी और उसके पान्डुवर्ण-कपोलों पर आँसू बह चले ।

उसने अपनी आँखें पोंछी । भात परोसी हुई लकड़ी की थाली प्रद्युम्न को दी और बोली, 'मुझे खेद है कि इस समय घर में कुछ और नहीं है, जो मैं आपको दे सकती । कृपया आज रात यहीं ठहरिए । कुछ मखाने रखे हुए हैं । मैं उनकी कोई मिठाई बनाऊँगी और तब सुबह आपको कम-से-कम स्वादिष्ट वस्तु तो दे ही सकूंगी ।'

प्रद्युम्न ने पूछा, 'आपको यहाँ रात में अकेले रहते हुए डर लगता होगा, ठीक है न ?'

'जी, हाँ, मुझे बहुत अधिक भय मालूम होता है । जंगल की इन झाड़ियों में कुछ न कुछ चल जाता है और मुझे नींद नहीं आती ।'

प्रद्युम्न ने ठहरना ठीक समझा और वह फिर रात को वहीं रह गया । वह स्त्री से बहुत देर तक बातचीत करता रहा । किन्तु उसने देखा कि उस स्त्री को इस बात का कोई अनुमान ही नहीं है कि वह वास्तव में पहले कौन थी ।

प्रद्युम्न ने प्रातः काल उससे विदा ले ली । लेकिन अब उसका यह क्रम ही हो गया कि वह रोज रात को आता और पहाड़ी के नीचे रात भर जागता हुआ बैठा रहता । उससे मन में विचारों के बादल आते रहते । किन्तु उस विचार से वह बड़ा ही दुखी होता कि उस असहाय स्त्री को इस निर्जन कुटी में अकेले रहना पड़ रहा है और मैं उसकी कोई सहायता नहीं कर सकता । कभी-कभी वह सुनता स्त्री रात के सन्नाटे में अकेली बैठी हुई गा रही है । उसके गीत प्रद्युम्न को आश्चर्य और आनन्द से भर देते थे ।

एक दिन प्रातः काल उरुविल्व के एक ग्रामवासी ने प्रद्युम्न को बताया, 'आप जिस व्यक्ति की खोज कर रहे हैं वह अभी-अभी इस पहाड़ी के पास सरोवर में स्नान कर रहा था।' बात सुनते ही प्रद्युम्न वहाँ दौड़कर पहुँचा और वह व्यक्ति उसे वहाँ मिल गया। निस्सन्देह, यह तो वही कापालिक है।

गुणाढ्य आश्चर्यचकित हो गया। उसने आशा नहीं की थी कि फिर कभी प्रद्युम्न से भेंट होगी।

उसने पूछा, 'तुम यहाँ कैसे आये ?'

'क्या आप मेरे आने का कारण नहीं जानते ?'

गुणाढ्य ने कहा, 'मेरा पता लगाते हुए तुम्हारे आने का कारण क्या है, सो मैं समझ गया। मैं तुमसे कोई बात छुपाना नहीं चाहता। प्रद्युम्न तुम नहीं जानते कि उस दुष्ट कर्म को करने के बाद मैं पाश्चाताप की अग्नि में किस तरह तिलतिल करके जल रहा हूँ। मेरे जीवन का एक-एक क्षण असह्य पीड़ा में बीत रहा है। यह कैसे हुआ सो मैं तुम्हें बताता हूँ मैंने एक सन्यासी से कुछ ऐसी रहस्यमय क्रियाएँ और मन्त्र सीखे जिनकी सहायता से यदि मैं चाहूँ तो किसी को भी अपने बस में कर सकता हूँ। किन्तु मैंने देखा कि मैं अकेला इन्हीं मन्त्रों की शक्ति से किसी को भी अपने वश में नहीं कर पाया। इसलिए मैंने तुम्हारी सहायता ली और जब तुम्हारे वेणु-वादन से आकर्षित होकर देवी सरस्वती वहाँ आई तब मैंने उनको बन्दी बना लिया। तब मैं नहीं जानता था कि मैं क्या कर रहा हूँ। उस समय तो मैं लगभग उद्भ्रान्त था। इसके अतिरिक्त मन्त्र-शक्ति को परखने का कौतूहल भी मन में था ही। मैं तुमसे स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि स्वयं मुझे इस बात का भरोसा नहीं था कि उन मंत्रों का देवी पर कोई असर पड़ सकेगा।'

प्रद्युम्न ने पूछा, 'और अब तुम क्या सोचते हो ?'

'अब मैं अपने दुष्टकर्म का प्रायश्चित करना चाहता हूँ, उसका परिमार्जन करना चाहता हूँ। मैं इतने दिनों तक उस सन्यासी को ही खोजता रहा। अभी मैं वहीं से आ रहा हूँ। बड़ी कठिनाई से मेरी उनकी भेंट हुई। उन्होंने मुझे कुछ नये मन्त्रों में दीक्षित किया है। वे ऐसे मन्त्र हैं जो मेरे पिछले मन्त्रों से उत्पन्न प्रभाव को दूर कर सकते हैं। इन मन्त्रों से अभिसिंचित जल यदि देवी पर छिड़क दिया जाये तो वे मुक्त हो जायेंगी। किन्तु भगवान ही जानता है कि यह कभी हो सकेगा या नहीं'।'

प्रद्युम्न साँस रोककर कापालिक की बातें सुन रहा था। उसने एकदम पूछा, 'क्यों, ऐसा क्यों नहीं हो सकता ?'

'जल से अभिषेक करने वाले व्यक्ति का जीवन चला जायेगा, वह समूचा प्रस्तर की मूर्ति बनकर रह जायेगा। प्रद्युम्न क्रोध न करो। मेरी परिस्थिति को समझो। मैं दोनों हालतों में अभिशप्त रहूँगा। अतएव मैं अपने जीवन के शेष दिन बिना इस बात की चिन्ता किये भी व्यतीत कर सकता हूँ कि अब देवी स्वतंत्र होती है या बंदी बनी रहती है। सम्भव है मुझे इस जीवन के बाद कोई दूसरा जीवन मिले जो मेरे आज के जीवन से अधिक अच्छा हो। किन्तु यदि मैं प्रस्तर की मूर्ति बनकर रह जाऊँ तो मैं भविष्य में क्या आशा रख सकता हूँ?'

प्रद्युम्न को उस निर्जन कुटिया में बैठी हुई तरुणी का निस्तेज फीका और उदास चेहरा याद आ गया। बिना एक क्षण आगा-पीछा किए उसने कहा, 'देवी पर मन्त्र-सिक्त जल का अभिषेक मैं करूँगा।'

आश्चर्यचकित होकर गुणाढ्य ने कहा, 'अपनी बात को फिर से सोचकर देखो प्रद्युम्न। यह कोई हँसी खेल नहीं है?'

प्रद्युम्न ने दृढ़ता से कहा, 'मुझे मंत्र-अभिषिक्त जल दीजिये।'

कापालिक ने उसे साथ आने को कहा और वह उसके साथ कुटिया की दिशा में पहाड़ी पर चढ़ चला। पहाड़ी के संकीर्ण मार्ग पर दोनों चढ़ते चले जा रहे थे। कापालिक ने गम्भीर स्वर में कहा, 'प्रद्युम्न मेरी तुमसे प्रार्थना है कि तुम फिर अपने निर्णय पर विचार कर लो। अपने मन में कोई मिथ्या आशाएँ मत रखना। इतना करने के बाद तुम किसी प्रकार नहीं बचोगे। जीवन सर्वकाल के लिए तुम्हें छोड़कर चला जायेगा। स्वयं देवी सरस्वती भी तुम्हें पुनर्जीवित नहीं कर सकेगी। वे मन्त्र अमोघ हैं और उनके कठिन बन्धनों से देवी भी त्राण नहीं दिला सकती।'

'आप कोई चिन्ता न करें। चलिये, हम जल्दी से जल्दी इस शुभ कार्य को सम्पन्न करें।'

पहाड़ी की चोटी पर पहुँचकर उन्होंने देखा कि वह तरुण स्त्री कुटिया के बाहर बैठी है। प्रद्युम्न को आभास हुआ कि उसे प्रसन्नता हुई है।

'तुम नहीं जानते कि जब से तुम गए हो मैं तुम्हारी ही बात सोचती रही हूँ। तुमने कहा था कि तुम लौटकर आओगे।'

वह कुटिया के भीतर प्रद्युम्न को देने के विचार से खाने की कोई चीज लेने के लिए गई। इसी बीच में गुणाढ्य ने उससे फिर पूछा, 'प्रद्युम्न क्या तुम सचमुच यह काम करना चाहते हो?'

'हम इस बात पर तर्क न करें। मुझे थोड़ा पानी दीजिये।'

स्त्री एक पात्र में कुछ मिष्ठान्न लेकर आई। थोड़ी ही देर बाद उसने घड़ा उठाया और वह पहाड़ी के नीचे जल भरने चली गई।

गुणाढ्य ने प्रद्युम्न को एक कमंडलु में जल दिया और कहा, 'इसे अपने पास रखो और अब हम यहां से एक तरफ हट जायें। जब देवी पानी का घड़ा लेकर वापस लौटे तब तुम कमडलु का यह मंत्रित जल उसके ऊपर छिड़क देना।'

इतना कहकर गुणाढ्य ने कुटी में रखी हुई अपनी दो-चार वस्तुएँ उठा लीं और वह पहाड़ी के नीचे उत्तर गया। वहां प्रद्युम्न अकेला बैठा रह गया।

बैठे-बैठे प्रद्युम्न को एक प्रकार के अवसाद ने आ घेरा। सन्ध्याकाश की ओर देखते हुए उसे जाने कैसे काशी के अपने घर की याद आ गई और उसे लगा कि उसकी माँ उसकी प्रतीक्षा कर रही है और फिर उसे सुनन्दा का स्मरण हो आया। वहा सोचने लगा कि वह भी मुझे इस क्षण याद कर रही होगी। उसे इसके पहले घर की ऐसी ‍याद कभी नहीं आई थी। उसका कंठ भर आया और आंखों में आँसू छलक आये।

तरुणी स्त्री पहाड़ी के संकीर्ण रास्ते से ऊपर चढ़ती चली आ रही थी। प्रद्युम्न ने अपने भटकते हुए मन को शाँत किया और अपने संकल्प को पूरा करने के विचार से व्यवस्थित भाव से बैठ रहा। स्त्री जैसे ही पास आई, वह उसके पास गया, उसने झुककर उसका चरण स्पर्श किया और कहा, 'मैंने आपका अपराध किया है; किन्तु तब मैं जानता नहीं था कि मैं क्या कर रहा हूँ। अब मैं अपने उस पाप का प्रायश्चित करना चाहता हूँ।'

स्त्री प्रनेद्युम्न की ओर देखा। वह कुछ भी नहीं समझी और चकित भाव से खड़ी रह गई।

प्रद्युम्न ने पूछा, 'क्या आपको कुछ भी याद नहीं है कि आप कौन हैं और कहां से आई हैं?'

'क्यों, विदिशा के मार्ग···।'

प्रद्युम्न ने गुणाढ्य का दिया हुआ कमंडलु हाथ में लिया और उस स्त्री के ऊपर उसके कुछ छींटे दिए।

ऐसा जान पड़ा कि वह स्त्री कुछ चौंकी जैसे नींद से जागी हो।

प्रद्युम्न ने थोड़ा-सा जल उस पर फिर फेंका। जब उसने देखा कि उसके सामने परम सौन्दर्य से मण्डित कोई मूर्ति खड़ी है तो उसे रोमाँच हो आया और वह आनन्द से विभोर हो गया। उसने अपनी आंखें बन्द की और चेतना के अन्तिम क्षण में उसे अपनी माता का चेहरा दिखाई दिया। उसने देखा

कि माँ वातायन से बाहर झाँक रही है और उसकी प्रतीक्षा कर रही है—घर, काशी का उसका चिरपरिचित घर था।

हिरण्यनगर के धनिक व्यापारी श्यामन्तदास की लड़की सुनन्दा नें विवाह करने से इनकार कर दिया और महाकोट्टि के आचार्य शीलव्रत से दीक्षा लेकर वह भगवान बुद्ध की शरण में चली गई। तरुण अवस्था में इस प्रकार संसार त्याग देने के कारण विहार के सभी व्यक्तियों के द्वारा उसे स्नेह और समादर प्राप्त हुआ। किन्तु वह किसी से घनिष्ठ नहीं हुई और उदास बनी रही।

चाँदनी रातों में वह विहार की छत पर जाकर खड़ी हो जाती और रात के स्निग्ध प्रकाश में फैले हुए मैदानों की ओर देखती हुई खड़ी रहती। उसके मन में विचार आते, 'किसी ने कहा था कि मैं लौटकर आऊँगा। किन्तु वह अभी तक लौटकर नहीं आया'। वह हर दिन प्रतीक्षा करती कि जो चला गया है वह आज लौटकर आयेगा। जैसे-जैसे दिन बीतता बस सन्ध्या की प्रतीक्षा करने लगती। सन्ध्या रात में बदल जाती और वह अकेली छत पर खड़ी रह जाती। वृक्षों के पत्तों की हलकी से हलकी हलचल भी उसे चौंका देती थी। वह घूमकर इस प्रकार देखती मानों किसी के पदचाप सुनाई पड़े हों। उसका प्रति क्षण उस व्यक्ति की प्रतीक्षा में कटता जिसे उसने प्रेम किया था और जो कह गया था कि मैं लौटकर आऊंगा।

बहुत रात गए उसे नींद आ जाती और कभी-कभी वह एक विचित्र स्वप्न देखती। देखती कि कहीं पहाड़ी के किसी शिखर पर एक प्रस्तर मूर्ति है। प्रस्तर मूर्ति का चेहरा बाँस और बनस्पति से ढका हुआ होने के कारण उसे साफ दिखाई नहीं पड़ता था। जोर से आँधी आती और वह बाँस बन में से गुजरती हुई एक विचित्र प्रकार के संगीत का निर्माण करती। ऐसा लगता, मानो मेघ मलार के गम्भीर स्वर गूंज रहे हों।

कभी आकाश में उजाला छा जाता और स्वप्न विलीन हो जाता। जागने पर उसे लगता कि सब कुछ सपना था। किन्तु कितना रहस्यमय! कितना अर्थवान्! दिन के प्रकाश में वह अनिश्चय में पड़ जाती। किन्तु एक निश्चय का स्वर बार-बार उठता रहता, 'मुझे अभी प्रतीक्षा करनी है। मेरी प्रतीक्षा सफल होगी।'

वनलता सेन

जीवनानन्द दास

पृथ्वी की धूल छानते मुझे सहस्रों वर्ष हो गये
निशीथ के अँधकार में सिंहल सिन्धु से लेकर
मैं मलय सागर तक आया-गया
बहुत घूमा बिम्बिसार और अशोक के धूसर जगत में
और भी दूर
अन्धकार में भटक रहा था जब मैं विदर्भ नगर में
और जब क्लांत प्राण के चारों ओर
जीवन का उफनाता हुआ जलधि उमड़ रहा था
तब मुझे शान्ति दी नाटोर की वनलता सेन ने ।

केश उसके मानो न जाने कितनी पुरानी
और अन्धकारमयी विदिशा नगरी की निशा
मुख उसका मानो श्रावस्ती का कारुशिल्प
सुदूर सागर में नौका का हाल टूट जाने से
दिशा विहीन हो जाते हैं जो नाविक
जब उन्हें दिखाई पड़ता है कोई हरा-भरा अंचल
किसी दारु चीनी से भरे देश के भीतर
ऐसे ही उसे देखा मैंने अन्धकार में ।
'कहाँ थे इतने दिन' पूछा
पक्षिनीड़ जैसी अपनी आँखें ऊपर उठाकर
नाटोर की वनलता सेन ने

जब दिन निःशेष हो जाता है और सन्ध्या उतरती है
ओसबिन्दु के शब्द की तरह
रात का पंछी जब आतप के गंध को
डैने फड़काकर अपसारित कर देता है
पृथ्वी के सारे रंग जब फीके पड़ जाते हैं
और जब जुगनुओं के दल झिलमिलाते रंगों में
किसी कथा की पांडुलिपि का आयोजन करते हैं
जब पंछी लौट आते हैं, नदियाँ निःशब्द हो जाती हैं
जीवन का लेन-देन समाप्त हो जाता है और जब केवल अन्धकार ही बच रहता है
तब मानो आता है समय नाटोर की वनलता सेन को ताकते हुए बैठे रहने का ।

दादुर

बुद्धदेव बसु

वर्षा आ गई है और दादुर उल्लास से भर गए हैं
वे समवेत स्वरों में गा रहे हैं कंठ खोलकर, आवेश में भरकर
उनका गीत आदि-आनन्द का गीत है
आज कोई भय नहीं है न भूख का न मृत्यु का

भाग्य के निष्ठुर पत्थर भी आज उनपर नहीं फेंके जा रहे हैं
दूर्वादल की तरह बादल घने हो रहे हैं
खेतों में स्वच्छ जल भरा हुआ है
दिन के निश्चिन्त प्रहर आज धृष्टतापूर्ण गान में कट जायेंगे

सुखदाई वर्षा के स्पर्श में एक विचित्र आवेश है
कैसा स्निग्ध है पंक, कितना नया कितना नरम

उनका गला नहीं है किन्तु उनके कंठ फूले हुए हैं
साकार तार सप्तक है उनका कंठ

कैसे मसृण हैं उनके शरीर—बादल की तरह, पीले और हरे
आँखें पारदर्शी काँच की तरह स्वच्छ और वे ऊपर की तरफ ताक रही हैं
जैसे समाधि में लीन ईश्वर के अन्वेषण में रत
किसी साधक की अचल दृष्टि

वर्षा थम गई है और अँधेरा उतर रहा है
उनके गान शून्य और गम्भीर आकाश में
मन्त्र घोष की तरह गुंजित हैं

दिन श्रान्त हो गया और डूब गया
तीव्र स्वर मूर्छित हो गए
अन्धकार में निद्रा दायिनी तीव्र चीत्कार की एकवर्णा ध्वनि भिद गई
निःस्तब्ध निशीथ है, हमने अपने द्वारे बन्द कर लिए हैं
निस्तब्धता को चीरकर एक अविश्रान्त स्वर उठता चला आ रहा है
यह रहस्य मन्त्र का अंतिम श्लोक है
एक ओर अकेले किसी दादुर का टर्र टर्र टर्र !

कलकत्ता

अमिय चक्रवर्ती

बड़े-बड़े पत्तों से आच्छादित वृक्षों की छाया में
उष्ण दोपहरी की प्रसन्नता विकीर्ण है
वहां उद्यान की सीमा के इस पार
प्रसन्न वातास में हनीसिकल का फूल हिल रहा है
लोहे के जीर्ण फाटक से लगा हुआ
मैं जहाँ भी जाता हूँ गलियों से गुज़रता हुआ

साथ-साथ चलता है यह दृश्य मेरे मन में
पियानों के स्वर हवा के रुख की चिन्ता किये बिना
वसन्ताकाश को व्यथा से भर देते हैं—
दक्षिण कलकत्ते की एक गली में

फिर कभी मैं पृथ्वी पर लौटकर आया तो
फिर एक बार इस गली से गुज़रूँगा
और देखूंगा सुकुमार धूप में वही फाटक
और उसके पार्श्व में बैंगनी आइरिस लता;
सतर्कता से सँवारे गए पौधे, नीले-पीले फूल
और घास की हरी जाजम मेरी आँखों को विश्रान्ति देंगे
यह घर किसका है और कौन इसमें रहता है
सो मुझे कभी नहीं मालूम होगा

किन्तु मुझ यात्री के एकाकी हृदय को भर देगी
वसन्त काल की उत्सुक व्यथा उस शून्य और सन्नाटे में

जो पियानो के स्वर से काँप रहा है
और उसी तरह भर उठेंगी मेरी आँखें
एक क्षण के लिए क्यों न हों, प्रसन्नता से !

नाम

सुधीन्द्रनाथ दत्त

तुम जा चुकी हो
किन्तु आतुरता नित्य बढ़ती ही जाती है
आज भी मेरे बन्द कानों में वे शब्द गूंजते रहते हैं
तुम चली गई हो
मेरा वर्तमान एक असह्य व्यथा है
भविष्य काल एक खोखलापन
इससे तो तिलतिल करके मरना अच्छा
तुम्हारे इस सुदूर, अनन्त, तटस्थ आकर्षण से।
तुम मुझे तीव्र गति से घूम रही कक्षा में बंदी बनाये हो
दूर जाती हुई तुम्हारी मूर्ति देखते-देखते
मेरी आँखें बिलकुल थक गई हैं
मेरी व्यथा के इस स्पप्न देश में
जिसमें सब कुछ एक स्वप्न के समान है
केवल तुम ही सत्य हो।

किन्तु मेरा मन इस माया को स्वीकार नहीं करता
मैं जानता हूँ तुम केवल एक प्रतिबिम्ब हो
और तुम्हें दान-प्रतिदान का आधार नहीं बनाया जा सकता
मेरे भारभूत लौकिक जीवन को
जो निराशा की दिशा में दौड़ रहा है
तुम नहीं बता सकती
यह भार मुझे किसी न किसी दिन कुचल डालेगा

ग्रौर विस्फोट होकर विकीर्ण हो जाऊँगा मैं निःशेष भाव से शून्य में
मैं जानता हूँ कि निरर्थक थी वह सन्ध्या
जब तुमने वन में चकित होकर मेरी ग्रोर देखा—
क्योंकि मेरी ग्राँखों से ग्राँसू बह रहे थे

मैंने उस पथ पर स्वयं ग्रपने को धोखा दिया
रूढ़ प्रेम का ग्रर्पण करके
मैं तुम्हारे हृदय के पास नहीं पहुँचा

मराठी साहित्य

चयन :

डा० डी० वी० पटवर्धन

अनुवाद :

डा० प्रभाकर माचवे

अनुक्रम

ऐतिहासिक समीक्षा		701
संत ज्ञानेश्वर	• पसायदान	713
संत एकनाथ	• भागवत महाक्षेत्र	714
संत तुकाराम	• देहसहित हुआ गुप्त तुका	715
संत रामदास	• उत्तम पुरुष निरूपण	716
मोरोपन्त	• केकावली	717
अनन्तफन्दी	• उपदेशपरक 'फटका'	718
केशवसुत	• कांटों के बिना गुलाब नहीं	719
बालकवि	• औदुंबर वृक्ष	720
भा० रा० तांबे	• जन पलभर कह देंगे 'हाय ! हाय !'	721
यशवन्त	• जग की रीति	722
बा० भ० बोरकर	• जीवन उन्होंने ही समझा	724
कुसुमाग्रज	• ध्वज अमरण यह	725
इन्दिरा संत	• आओ जी सूर्यनारायण	726
केशवसुत	• नया सिपाही	727
	• आज्ञा-पत्र	729
विष्णुबुवा ब्रह्मचारी	• लोकहितकारी राज्य पर एक निबन्ध	730
विष्णुशास्त्री चिपलूणकर	• वक्तृत्व	732
बा० गं० तिलक	• गीताधर्म	733
शि० म० परांजपे	• संप्राप्त संपुष्ट	734
न० चिं० केलकर	• शिमला	735
रा० ग० गडकरी	• पुण्यप्रभाव	736
आचार्य शं० द० जावडेकर	• भारतीय संस्कृति का अमृत-तत्व	738
आचार्य विनोबा भावे	• महाराष्ट्र की सरस्वती	739
प्र० के० अत्रे	• महात्मा गांधी अमर हैं	740
वि० दा० सावरकर	• मनुष्य का देव और विश्व का देव	741

ऐतिहासिक समीक्षा

मराठी भाषा की उत्पत्ति

मराठी साहित्य का 10वीं शताब्दी से आरम्भ होने वाला लम्बा इतिहास है और मराठी भाषा तो और भी प्राचीन है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत से खोजी जा सकती है, परन्तु मराठी भाषा सीधे संस्कृत से नहीं निकली। संस्कृत के बाद पालि, महाराष्ट्री, महाराष्ट्र-अपभ्रंश इस क्रम से मराठी बनी है। नवीनतम शोध से सातवीं और आठवीं शताब्दी के महाराष्ट्री अपभ्रंश के बहुत से ग्रंथ मिले हैं। इस प्रकार से किसी भी जीवित भाषा में जो प्राकृतिक और अनिवार्य परिवर्तन की प्रक्रिया होती है उसी के अनुसार मराठी भाषा का विकास हुआ।

मराठी साहित्य की उत्पत्ति और विकास

यह सुपरिचित तथ्य है कि दो महत्वपूर्ण घटनाओं ने मराठी में साहित्य के विकास की प्रेरणा दी। एक तो देवगिरि में राजधानी बनाकर एक लम्बी अवधि के लिए स्थायी राज्य बनाने वाले जाधव वंश का उत्थान। इस राजवंश ने मराठी को अपनी दरबारी भाषा बनाया और "महानुभाव पन्थ" और 'वारकरी पन्थ' नामक दो धार्मिक सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव दूसरी महत्व की घटना थी। दोनों ने अपने भक्ति के सिद्धान्तों विद्वानों और विद्या को प्रोत्साहन दिया। विचार जनता तक पहुँचाने के लिए प्रभावी माध्यम के रूप में मराठी को अपनाया। और इस प्रकार से मराठी साहित्य के विकास में बड़ा योग दिया। महानुभाव लेखकों ने मराठी गद्य को बड़ी महत्वपूर्ण साहित्यिक देन दी और वारकरी पन्थ के सन्त कवियों ने मराठी पद्य में अपनी रचनाएं लिखीं। वारकरी पन्थ के लेखक ही मराठी साहित्य के आरम्भकर्त्ता और प्रतिस्थापक माने गये। यह साहित्य 18वीं शती तक प्रवाहित होता रहा।

विभिन्न काल-खंडों में मराठी साहित्य का विभाजन

सामान्यतः मराठी साहित्य, दसवीं शताब्दी में, महाराष्ट्र के हृदय में उदय हुआ, यद्यपि एक-दो शताब्दी पूर्व से बोली हुई भाषा चल रही थी। धीरे-धीरे समय के साथ इस छोटे से प्रवाह ने बढ़कर एक महानदी का रूप धारण किया जिसमें मराठी भाषी जनता के चरित्र और भावनाएँ, विचार और आदर्श अभिव्यंजित हुए। इससे पता चलता है कि मराठी साहित्य की अंग्रेजी की ही तरह करीब एक हज़ार वर्ष की समृद्ध परम्परा है। इस लम्बे इतिहास काल में कभी भी कोई क्रम भंग नहीं हुआ, यद्यपि समय के अन्तराल से, बदलती हुई परिस्थिति में, मराठी साहित्य का मूल स्वभाव और भावना धीरे-धीरे परिवर्तित हुई, और पुरानी विधाओं के स्थान पर नये साहित्यिक रूप अपना रूप दिखाने लगे।

इस प्रकार से मराठी साहित्य का यह इतिहास दो खण्डों में बांटा जा सकता है। प्रथम काल खण्ड 1000 ईस्वी से 1800 ईस्वी तक का है, और इसे "प्राचीन या पुराना मराठी साहित्य" कह सकते हैं। दूसरा काल खण्ड 1800 ईस्वी से आगे का है, और इसे "आधुनिक मराठी साहित्य" कह सकते हैं। अब पुराने साहित्य की विशेषताएं जानने का यत्न करें।

प्राचीन मराठी साहित्य की निजी विशेषताएँ

प्रायः सभी प्राचीन मराठी साहित्य काव्यात्मक है। वह पद्य या वर्णवृत्तों में रचा जाता था जिसमें कवि के लिए शब्द और प्रास की सीमाएँ थीं। वह विशेष रूप से भक्ति प्रधान और वर्णनात्मक काव्य था। पुराने कवि साहित्य की मनोरंजक विधाओं जैसे नाटक, उपन्यास, कथा, निबन्ध आदि से अपरिचित थे। पुराने कवियों का मानवी जीवन के प्रति बहुत बुरा विचार था। जीवन के कृष्ण पक्ष की ओर ही वे देखते थे और निराशावादी दृष्टिकोण रखते थे। इस प्रकार से उनकी कविता ऐहिक दृष्टि से बहुत उदासी भरी और नीरस हो गई। उनमें कोई विशेष विनोद बुद्धि भी नहीं थी और इस-लिए वे हास्य को हल्का मानते थे। उनकी कविता हमेशा गम्भीर और चिता-युक्त होती। अन्त में पुराने कवियों ने अपने आन्तरिक और बाह्य अनुभवों का उपयोग करने की पूर्ण उपेक्षा की। इस प्रकार की एकरस पुनरुक्तियाँ उसमें हैं, क्योंकि प्रायः सभी प्राचीन कवि अपनी विषय-वस्तु और अपनी जानकारी का स्रोत प्रसिद्ध महाकाव्य रामायण और महाभारत से लेते थे। इस

प्रकार से, आनन्दमय और ऐहिक स्वभाव के अभाव में प्राचीन मराठी कविता हास्य-व्यंग्य, विडंबन, वक्रोक्ति और विनोदपूर्ण कविता का विकास नहीं कर सकी।

दूसरी ओर आधुनिक कवियों ने प्राचीन कवियों की कई विशेषताएँ छोड़ दी हैं। आधुनिक लेखकों को बड़ा लाभ यह मिला कि वे पश्चिमी साहित्य के वैविध्यपूर्ण और विशद भंडार के सम्पर्क में आये, विशेषतः अंग्रेजी साहित्य के, जो सभी रूपों में समृद्ध है। संस्कृत का बड़ा कोश उनकी सहायता के लिए सदा प्रस्तुत है। आधुनिक लेखकों ने पुरानी विधाओं के बारे में जाना और अधिक उत्साह और आनन्द के साथ नाटक, उपन्यास आदि नये रूपों को भी जाना, वैयक्तिक अनुभवों का उपयोग सीखने पर आधुनिक लेखक, मुद्रणकला से सन्नद्ध होकर, साहित्य-निर्मित करने लगे। गद्य-पद्य दोनों नयी सप्राणता और नये वातावरण में, पूरे उत्साह से लिखे जाने लगे।

प्राचीन मराठी साहित्य

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पुराना मराठी साहित्य आठ शताब्दियों तक फैला है। मुकुंदराज और ज्ञानेश्वर उसके प्रथम लेखक और प्रतिष्ठापक माने गये हैं। सामाजिक प्रेरणा के कारण नवजात मराठी भाषा साहित्यिक माध्यम के रूप में तेजी से परिपक्व होती गई। एक आध्यात्मिक प्रजातंत्र उसमें अभिव्यंजना पा रहा था और इसी प्रेरणा के उत्तर में मुकुंदराज और ज्ञानेश्वर ने 'विवेकसिंधु' और 'ज्ञानेश्वरी' लिखी। यह जानबूझ कर मराठी भाषा में रची गई। परंपरा के अनुसार ज्ञानेश्वर (1275-1296) मराठी साहित्य के जनक और निर्माता माने जाते हैं, यद्यपि उसी परंपरा के अनुसार मुकुंदराज को सौ साल पुराना माना जाता है। ज्ञानेश्वर की जीवनी और इतिहास उतने ही मनोरंजक और प्रभावशाली हैं जितने कि उनके साहित्यिक ग्रंथ 'ज्ञानेश्वरी' और 'अमृतानुभव' हैं, उनकी शैली और काव्यरचनाएं बहुत ही लालित्यपूर्ण हैं।

उसी समय नामदेव ने (1270-1350) जो ज्ञानेश्वर से छोटे समकालीन कवि थे, सीधी और ठेठ जनभाषा में अपने भक्तिपूर्ण पद लिखे, जिनके द्वारा उन्होंने सारे भारत में वारकरी पंथ के दर्शन का प्रचार किया। दो शताब्दियों बाद, महाराष्ट्र के मंच पर एक बड़े संत और उससे भी बड़े कवि एकनाथ (1433-1599) आये। श्रीमद्‌भागवत के प्रसिद्ध ग्यारहवें अध्याय पर उनकी टीका जो 'एकनाथी भागवत' नाम से प्रसिद्ध है, उनकी वैसी ही साहित्यिक श्रेष्ठकृति है, जैसे ज्ञानेश्वर की 'ज्ञानेश्वरी'। प्राचीन मराठी साहित्य में एक-

नाथ की इस कृति में उनकी शैली सरल और आकर्षक है। वे बड़े आख्यान-कार थे और मराठी में ऐहिक कविता के जनक हो गये। जैसे तीन शताब्दियों के बीच ज्ञानेश्वर की भाषा दुरूह और दुर्बोध होती चली गई और एकनाथ ने 'ज्ञानेश्वरी' को उत्तम रूप में संशोधित किया। वही 'ज्ञानेश्वरी' की प्रति आज भी प्रामाणिक मानी जाती है। वह महाराष्ट्र के बड़े समाजसुधारक थे। उनका नाम महाराष्ट्र के संत और कवियों की मालिका में ज्ञानेश्वर के साथ जुड़ा हुआ है।

एकनाथ ने जो यह ऐहिक कविता लिखने की प्रथा चलाई वह मुक्तेश्वर (1574-1655) ने विकसित की। उनका महाभारत एक प्रौढ़ प्रतिभा की रचना है। प्राचीन मराठी साहित्य में बड़े खण्डकाव्य का यह उत्तम नमूना माना जाता रहा है। उनकी चित्रोपन वर्णनशक्ति, उनकी पाठकों की कई भावनाओं को छूने की सामर्थ्य, और उनकी स्वच्छ, मधुर ओजमयी शैली उनकी कविता के प्रत्येक पद में लक्षित होती है।

मराठी साहित्य के इतिहास में तुकाराम (1608-1651) का एक अपूर्व स्थान है। वह एक सच्ची प्रतिभा है। उनकी सारी रचना मौलिक है और उनकी अपनी आश्चर्यजनक प्रेरणा से वह निकली है। वे एक क्रान्तिकारी सुधारक थे, और हास्य व्यंग परिहास और कटाक्षपूर्ण फटकार से उन्होंने अपने समय के समाज को सुधारने का यत्न किया। सूत्रमयता, स्पष्टता, आवेश और प्रामाणिकता उनकी कविता की हर पंक्ति में दिखाई देती है। वह पाठक के मर्म को छूती है और जीवन के बुरे पहलुओं से उसे अप्रत्यक्ष रूप से, बचाती है।

अब इसके बाद आते हैं रामदास (1608-1681), तुकाराम के संत-मित्र। उनका महाकाव्य 'दासबोध' प्राचीन मराठी साहित्य में सबसे प्रेरणा-दायक और प्रभावशाली साहित्यिक कृतियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार रामदास राजा शिवाजी के राजनीतिक 'गुरु' थे। उन्होंने कई फुटकर कविताएं, गीत और पद्य भी लिखे, कुछ वर्णनात्मक काव्य भी लिखे, जो निस्संदेह बहुत ऊंचा उठाने वाले और प्रेरणादायक हैं।

14वीं शती की कविता का कुछ पूर्वाभास विद्वान बामन पंडित में मिलता है, जो संस्कृत और मराठी पर समान अधिकार रखते थे। वामन की 'यथार्थ दीपिका' (गीता भाष्य) निस्संदेह एक महान कृति है। उनका दूसरा दार्शनिक ग्रंथ 'निगमसार' है। जिसमें सुंदर, स्पष्ट मराठी में वेदों का सार दिया है। वामन पंडित अपने आपमें गहरी विद्वता और काव्य-प्रतिभा के एक दुर्मिल संगम थे।

रघुनाथ पंडित ने अपने 'नल दमयंती स्वयंबराख्यान' में वैसा ही समन्वय दिखाया था। यह काव्य मराठी साहित्य की एक मणि है।

परन्तु श्रीधर पंडित शैली में बहुत कुछ मुक्तेश्वर जैसा है, और ऐहिक कविता में एकनाथ के समकक्ष है। उसकी कीर्ति और यश उसके 'पाँडवप्रताप' 'हरिविजय', 'रामविजय' जैसे ग्रंथों के कारण है। सरलता, शैली की मधुरता, वर्णन का सहज प्रवाह और विषयों की उदात्तता ने उसे बहुत लोकप्रियता प्रदान की। ज्ञानेश्वर, एकनाथ और रामदास की ही तरह वह भी मराठी भाषा का एक सशक्त रचनाकार था।

अब हम महाराष्ट्र के बहुमुखी और विपुल रचना करने वाले कवि मोरोपंत (1729-1794) की चर्चा करें जो अपने आपको अपनी प्रसिद्ध भक्ति रचना में 'मयूर' कहते हैं। उक्त 'महाभारत' में, जो कि मराठी की पहली महाकाव्य रचना है, उनकी सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा के दर्शन होते हैं। उनका विविधतापूर्ण ज्ञान, मराठी भाषा पर प्रभुत्व, सुस्पष्ट वर्णन की उनकी शक्ति, कहानी के आवेशमय दृश्यों के वर्णन द्वारा पाठकों की भावनाओं को उत्तेजित करने की उनकी कुशलता, उनके नाट्य-पूर्ण संवाद—ये सब महाकवि के लक्षण हैं—जो इस महाकाव्य में दिखाई देते हैं। मोरोपंत की 'संशय-रत्नमाला' और 'केकावली' उनकी प्रतिभा के सर्वोच्च मान-बिंदु हैं। मोरोपंत की 1794 में मृत्यु हुई।

उसके बाद 1794-1818 ईस्वी तक (इस वर्ष में महाराष्ट्र में ब्रिटिश राज्य शुरू हुआ) प्राचीन मराठी साहित्य का उपसंहार काल मानना चाहिए। यही आधुनिक मराठी साहित्य का आरंभ-युग था। इसमें कोई संदेह नहीं कि जब प्राचीन मराठी साहित्य का पतन हो रहा था तभी कुछ रामजोशी और अनंतफंदी जैसे लोकप्रिय कवियों ने सच्ची काव्यशक्ति दिखाई। रामजोशी ने अपनी प्रतिभा से सिद्ध किया कि 'लावणी' छन्द जो अश्लीलता और हीन अभिरुचि से संबद्ध था, वह मनोरंजन और जनबोध के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। दूसरे प्रसिद्ध कवि अनंतफंदी ने विविध मराठी छंद प्रकार; 'लावणी' 'पोवाडा', 'कटाव', 'फटका' में ऐसी रचनाएं कीं कि सुनने वाले उन नृत्य-नाट्यों में मंत्रमुग्ध रहते थे।

अंत में, प्राचीन मराठी साहित्य का ऐतिहासिक अंश भी कम महत्वपूर्ण नहीं। यह मराठी साहित्य की अपनी विशेषता है। इस अंश में गद्य-पद्य दोनों हैं। गद्य में 'बखर' और ऐतिहासिक महत्व के सार्वजनिक और निजी पत्र-व्यवहार हैं। 'बखरें' शिवाजी महाराज द्वारा मराठी राज्य कायम किये जाने से ही लिखी जाने लगी। कुछ समय बंद रहने पर भी आधुनिक काल के आरंभ तक वे बराबर लिखी जाती रहीं। अंतिम 'बखरकार' मल्हार रामराव चिटणीस

1810 के करीब हुए। पोवाड़े और कटाव शाहीरों ने रचे हैं। ये बखरें और वीर-काव्य सरल भाषा में घटनाओं में केवल वर्णन होने के कारण मराठी साहित्यिक इतिहास का एक भाग हैं। आधुनिक काल में प्राप्त सार्वजनिक और निजी-पत्रव्यवहार से उस समय के लोगों के विचार और भावों का पता चलता है। शाहीर राष्ट्रीय कविताएं रचते थे जिनमें मराठा साम्राज्य के उत्थान और पतन की शताब्दी में घटित घटनाओं का वर्णन था। इस प्रकार से पोवाडाकार और बखरकारों का सारा साहित्य एक श्रेष्ठ साहित्यिक मूल्य पा गया है।

आधुनिक मराठी साहित्य

यद्यपि आधुनिक साहित्य 150 वर्षों का है फिर भी वह तीन खंडों में विभाजित किया जाता है। पहला काल खंड 1800 से शुरू होता है और 1885 तक माना जाता है (इसी वर्ष भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई)। दूसरा खंड 1885 से 1920 तक आता है (जब प्रथम महायुद्ध समाप्त हुआ) और अंतिम खंड आज तक का है। इस आधुनिक युग में गद्य-पद्य के सभी साहित्यिक रूप सुविकसित हुए। मराठी साहित्य में विविध विज्ञानों पर भी बहुत सा साहित्य रचा गया। इस प्रकार से प्रतिवर्ष साहित्य की ग्रंथ-संख्या बड़ी मात्रा में बढ़ती गई।

1818 में पेशवा द्वितीय को अपनी गद्दी छोड़नी पड़ी। महाराष्ट्र पर ब्रिटिश राज्य की नयी परिस्थितियों में, भीतर और बाहर मराठी भाषा और साहित्य को विकसित करने के प्रयत्न किये गये। तंजौर के राजा ने मराठी साहित्य को विकसित करने का निश्चय किया। अंग्रेजी से प्रथम मराठी अनुवाद तंजोर में 1817 को उन्होंने कराया। दूसरा वैसा ही प्रयत्न प्रसिद्ध मिशनरी डा० केरी ने कलकत्ता में किया। 1805 में उन्होंने मराठी व्याकरण और कोश प्रकाशित किया। 1816 में फादर स्टीफेन्स ने 'ख्रिस्त पुराण' प्रकाशित किया बंबई के पहले गवर्नर एलफिस्टन ने मराठी में अनुवाद और मौलिक ग्रंथों के प्रकाशन को प्रोत्साहन देकर मराठी साहित्य को समृद्ध बनाया। मेजर कैंडी के मराठी-अंग्रेजी और अंग्रेजी-मराठी ऐसे दो कोशों के और माल्सवर्थ के कोश के प्रकाशन का भी विशेष उल्लेख करना चाहिए। महाराष्ट्र में छत्रे, बाल-शास्त्री जांभेकर, लोकहितवादी जोतिका फुले जैसे लोग मराठी में विविध विषयों पर लिख रहे थे। 1857 में बाबा पदमन जी ने 'यमुना-पर्यटन' नाम से पहला उपन्यास समाज सुधार पर लिखा। 1835 में पहला समाचार-पत्र मराठी में छपा। मौलिक कविता के लिए यह काल विशेष अनुकूल नहीं था।

संस्कृत कविताओं के अनुवाद मात्र प्रकाशित हो रहे थे। कुछ सामान्य पद्य रचना भी की जा रही थी। इस प्रकार से यह देखा जा सकता है कि मराठी साहित्य भीतरी और बाहरी प्रयत्नों से विकसित किया जा रहा था। और इस प्रकार से 1880 के करीब पुरानी ज़मीन में नया साहित्य जोर पकड़ता जा रहा था।

1858 में बंबई यूनिवर्सिटी की स्थापना हुई। 1873-74 में विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने निबंधमाला शुरू की, 1830-81 में 'केसरी' पत्र मराठी में प्रकाशित हुआ। इन तीन घटनाओं ने आधुनिक मराठी साहित्य के विकास में बड़ी सहायता की।

आधुनिक कविता : 1885 से आगे

वास्तव में केशवसुत (1866-1905) की प्रथम कविता के प्रकाशन से ही आधुनिक मराठी कविता का आरम्भ हुआ। उसमें विविध सूत्र जैसे उदारता, अंग्रेजी कविता की रोमांटिक धारा, यूरोपीय राष्ट्रीयतावाद, मानवता की भावना और महाराष्ट्र के भूतकाल का गौरव-गान है। केशवसुत का विश्वास था कि कविता का कार्य भावना जगाना है और भ्रष्टाचार और मानव-जीवन की बुराइयों पर चोट करने के लिए उन्होंने कविता का उपयोग किया। आधुनिक युग के वे प्रथम विद्रोही मराठी कवि थे। उन्होंने मराठी कविता में पुरानी रूढ़ियों के विरोध में विद्रोह किया। उनका विद्रोह केवल साहित्यिक नहीं था, वह रूप और शैली में प्रयोगों से परे गये। इस कवि की रचना ने उस पीढ़ी के कई प्रमुख कवियों को प्रेरित किया और उन्हें निर्मित किया : जैसे रेवरेंड तिलक, कवि 'विनायक', कवि 'गोविंदाग्रज' और 'बाल-कवि'। इन कवियों ने कई तरह की कविताएं लिखीं, जिनकी मुख्य विशेषताएँ थीं : घर और प्रकृति का सौम्य सौन्दर्य, गौरवमय अतीत के नाटकीय चित्र, नाट्यपूर्ण विनोदी शैली और शुद्ध गीति-काव्यात्मकता। यह दौर 1920 में समाप्त हो गया।

1920 से 1945 तक कवि 'बी' सामाजिक और साहित्यिक पुराणमत-वादिता के अन्याय के विरुद्ध बराबर विरोध करते रहे। उसी समय भास्कर राव तांबे (1874-1941) अपने गीतों की गुणवत्ता और शैली की इंद्रिय-गोचरता के कारण बढ़ती हुई लोकप्रियता अर्जित कर रहे थे। उसी प्रकार से कवि चंद्रशेखर ने मराठी पाठकों को अपनी कविता की चतुर शिल्पमयता से आकर्षित कर लिया था। परन्तु सामान्यतः 'रविकिरणमण्डल' नामक कवि-दल ने इस समय सब से अधिक प्रभाव डाला। ये कविता को प्रतिदिन के जीवन

के लिए घोषित करते थे। इस काल खण्ड में इस दल की कविता के विशेष गुण थे—कवि यशवंत का छोटी-छोटी चिंताओं और निराशाओं के प्रति विलाप, कवि गिरीश का क्षुद्र विषयों पर सामान्यीकरण और माधव ज्यूलियन के कुछ विदेशी स्वाद वाले सुन्दर प्रेमगीत।

1925 में प्रह्लाद केशव अत्रे ने 'झेंडूची फुलें' संग्रह प्रकाशित किया। उसमें रविकिरणमण्डल की शैली के लटकों की पैरोडियां थीं, इसलिए वह बहुत लोकप्रिय हुआ। परन्तु आज के कवियों का सामान्य पथ और विशेष रूप-दृष्टि भा० रा० तांबे (1874-1941) ने दी, जिनके गीतों को विशाल समुदाय तक कई गायकों ने पहुँचाया। बा० भ० बोरकर, जो तांबे के सबसे अच्छे शिष्य हैं, अपनी कविता में प्रकृति सौंदर्य के प्रति सूक्ष्म संवेदना और इंद्रियगोचर बिंबों द्वारा अपना ही विशेष उल्लास लाये। 'रविकिरणमण्डल' और कवि तांबे के प्रभावों के मिश्रण थे। अब ऐसे कवि निर्मित हुए जैसे अनंत काणेकर, कवि अनिल, ना० घ० देशपाण्डे आदि जो शब्द प्रभाव की प्रतिक्रिया रूप थे। काणेकर की 'चाँदरात आणि इतर कविता' (1933), कवि अनिल की 'फुलवात' (1932), 'भग्नमूर्ति' (1940) और 'पेतेव्ह' (1947) इस काल की सर्वोत्तम कविताएं हैं। (1942) के आंदोलन का प्रभाव भी साहित्य पर पड़ा और उस समय कुसुमाग्रज की 'विशाखा' (1942) में उनकी प्रतिभा अभिव्यक्त हुई। आज की नयी कविता (1945 के बाद की) मनुष्य के जीवन को उसके विविध रूपों में खोजती है। वह पाठक को जागृत करना चाहती है और कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों में रस लेने के लिए आकर्षित करती है। नयी कविता का कथ्य व्यक्तिगत और आत्म-परक है। उसके बिंब औचित्यपूर्ण हैं, और उसकी भाषा सीधी बोलचाल पसंद करती है, काव्य शैली के नकली रूप नहीं हैं।

बा० सी० मर्ढेकर की 'काहीं कविता' आज की कविता का पहला समग्र प्रभाव व्यक्त करती है (1947)। मर्ढेकर (1907-1956) नवकाव्य के आरंभ कर्त्ता थे। यह कहने में कोई अतिरंजना नहीं है कि मर्ढेकर ने नये कवियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया जैसे पु० शि० रेगे, विंदा करंदीकर, वसंत बापट, मंगेश पडगांवकर और शांता शेलके, संजीवनी मराठे, वहिणाबाई चौधरी और इंदिरा संत ने, बड़े अच्छे और वास्तववादी ढंग से, स्त्री-सुलभ भावनाओं और मनोभावों को अपनी कविताओं में व्यक्त किया, और यहां कविता का संक्षिप्त परीक्षण समाप्त होता है।

आधुनिक मराठी गद्य : नाटक

1843 में मराठी रंगमंच का जन्म हुआ। वह जल्दी से अपने शैशव से बढ़कर आगे विकसित हुआ। विष्णुदास भावे मराठी के आद्यनाटककार थे — नाट्य रचना में मराठी रंगमंच को रंगरूप मिला। उनका 'सौभद्र' (1852) उसमें से संगीत के कारण लोकप्रिय बना। गो० ब० देवल (1852-1916) अण्णा किर्लोस्कर के शिष्य थे — उन्होंने अपना रास्ता अपनाया और वे 'शारदा' नाटक मंच पर लाये। यह नाटक आज भी चरित्र-चित्रण और संवाद की वास्तविकता के लिए प्रशंसित होता है। परंतु कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर (1882-1954) ने सुनिश्चित दिशा दिखाई। मराठी मंच पर उच्च प्रकार का शास्त्रीय संगीत बहुत लोकप्रिय था। परंतु खाडिलकर का 'कीचक वध' (1910) उसमें के राजनीतिक रूपक के कारण बहुत प्रसिद्ध हुआ। उसमें तिलक भीम के रूप में और लार्ड कर्ज़न कीचक के रूप में थे, जिसके कारण यह नाटक ज़ब्त हुआ। उनके ऐतिहासिक नाटकों में शैक्सपीयर से काफी समानता है। श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर (1871-1934) ने कुछ व्यंग्यपूर्ण सुखांत नाटक लिखने का यत्न किया, जिसमें रोमांटिक कथा-द्वंद्व थे। उनके हास-परिहासमय रेखाचित्रों में सामाजिक सुधार का उनका उद्देश्य बहुत कुछ सफल हुआ। राम गणेश गडकरी (1885-1919) रोमांस और विनोद के और अच्छे सम्मिश्रण, चरित्र-चित्रण और गद्यशैली के कारण और अधिक सफल हुए। उनका 'एकच प्याला' और 'पुण्यप्रभाव' मराठी रंगमंच के रत्न हैं। नरसिंह चिंतामणि केकलकर (1872-1947) नाटककार के नाते साधारण प्रतिभा के लेखक थे। उनकी प्रतिभा उनके सुंदर नाटकों में व्यक्त है। वासुदेव शास्त्री खरे ने ऐतिहासिक विषयों पर बहुत अच्छा लिखा है। आधुनिक मराठी रंगमंच के पहले उत्थान के यह लेखक थे।

अगले तीस वर्षों तक मराठी रंगमंच को उनका यह पूर्व वैभव और महानता टिकाये हुए थी। कुछ अभिनेता जो अच्छे गायक भी थे, बहुत लोकप्रिय हुए, और वही मराठी रंगमंच की श्रेष्ठता मानी जाती थी। इस समय मामा वरेकर नाटककार के नाते आगे आये। उनका जीवन चरित्र मराठी के आधुनिक रंगमंच का सार है। उन्होंने नाट्यशैली में कुछ प्रयोग भी किये, कई सामाजिक समस्याओं की व्याख्या भी की। उन्होंने चालीस से अधिक नाटक लिखे, उनके इधर के प्रसिद्ध नाटक हैं, 'अपूर्व बंगाल' (1953), 'भूमि-कन्या सीता' (1955) जो बहुत वास्तववादी है। मामा वरेकर (1883-1965) मराठी रंगमंच पर पहली बार यथार्थवाद लाये। उसके लिए मराठी मंच उनका आभारी है। परन्तु एस० वीं० वर्तक की 'आंधल्याची शाब्दा', नाट्य-

मन्वंतर ने 1933 में खेला। मराठी रंगमंच को जीवित रखने का यह एक बहुत साहसपूर्ण प्रयत्न था। प्रह्लाद केशव अत्रे ने कुछ अर्द्ध-आधुनिक नाटक लिखे, जो कि व्यावसायिक दृष्टि से सफल थे। अत्रे ने अपनी परिहास वृद्धि चरित्र-चित्रण की कला और गद्यशैली अपने नाटकों में दिखाई। इसी बीच में मो० ग-रांगणेकर का 'नाट्यनिकेतन' मनोरंजन के सामान्य हेतु से आगे आया, और इसके लिए उन्होंने अपनी सुन्दर सुखांत नाट्यकृतियाँ दीं। पु० ल० देशपांडे का 'अमलदार' विशेषरूप से उल्लेखनीय है चूंकि आज के मंच की वह सबसे सफल कृति है। और अंत में हमें यह कहना ही होगा कि वसत कानेटकर और विद्याधर गोखले ऐसे दो नाटककार हैं जो मराठी मंच की सेवा में अपना सब कुछ लगा रहे हैं। मराठी नाटक निःसंदेह गुण और परिमाण दोनों में बहुत समृद्ध है।

उपन्यास

हरिनारायण आप्टे (1864-1919) के प्रथम उपन्यास 'मधली स्थिति' (1885) के प्रकाशन से आधुनिक मराठी उपन्यास आरंभ हुआ ! सचमुच आप्टे के उपन्यासों में मराठी उपन्यास ने सहसा प्रौढ़ता प्राप्त की। कुछ उपन्यास लिखने के बाद वे ऐतिहासिक कथाओं की ओर मुड़े। रानाडे और आगरकर से पाया हुआ समाज सुधार आप्टे ने प्रतिपादित किया, अपनी 'मधली स्थिति' (1885) 'पण लक्षांतकोणधेतो' 1890-93) जैसे उपन्यासों में। कलाकार के नाते उनकी रचना विषम है, पुनरावृत्तिपूर्ण है, उबानेवाली है। परन्तु जो विशिष्ट सफलता उन्हें मिली उसका कारण उनकी गहरी विचार अन्विति और चरित्र की निश्चित कल्पना है। नाथमाधव, चि० वि० वैद्य, शि० म० परांजपे ने मराठी उपन्यास को समृद्ध बनाया। परन्तु उन सबसे बढ़ कर प्रोफेसर वा० म० जोशी ने मराठी उपन्यास को एक ऊंचे स्तर तक उठाया और अपनी 'रागिणी' (1915) और अन्य पांच उपन्यासों से नया क्षेत्र खोल दिया 'सुशीलेचा देव' (1930) उनका सर्वोत्तम उपन्यास है जो कि एक सुशक्षित स्त्री के बौद्धिक दृष्टिकोण के विकास का गहरा अध्ययन है। उनके 'इंदु काले' और 'सरला भोले' (1935) में कला और नीति के संघर्ष का चित्र है। महाराष्ट्र में 1940 के करीब व्यावसायिक रंगमंच के ह्रास के साथ-साथ मध्य वित्तवर्ग का सबसे प्रधान मनोरंजन का साधन उपन्यास बना। मराठी उपन्यास ने विशद विविधता और उदात्त सोद्देश्यता की उपलब्धि की। डा० श्री व्यंकेतकर एक समाज-सुधारक थे और वे उपन्यास को सामाजिक समस्याओं के लिए काम में लाये। वा० म० जोशी से डा० केतकर तक उपन्यास एकदम

ऊंचे स्तर तक पहुंचे। मामा वरेरकर ने नाटक से भी अधिक उपन्यास लिखे।

1925 के बाद के वर्षों में दो प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं प्रो० ना० सी० फड़के और वि० स० खांडेकर। ये प्रथमत: उपन्यासकार हैं, निबन्धकार और कहानीकार बाद में। प्रो० फड़के ने 'कला के लिए कला' का जोरों से प्रतिपादन किया और खांडेकर ने अपना सिद्धान्त 'जीवन के लिए कला' का प्रचार किया। उच्च मध्य वर्ग के लिए फड़के ने सरलीकृत प्रेम की चतुर विविधताएं प्रस्तुत कीं, परन्तु वे अपनी सुन्दर शैली के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। खांडेकर पहले कहानीकार के नाते प्रसिद्ध हुए, बाद में उपन्यासकार के नाते। उन्होंने प्रो० फड़के के "कला के लिए कला" के सिद्धान्त को 'अपने जीवन के लिए कला' के सिद्धान्त से चुनौती दी। इस सिद्धान्त में आदर्शवाद प्रमुख तत्व था। ये दोनों मराठी साहित्य के सच्चे मणि हैं। पु० ल० देशपांडे, विश्राम बेडेकर, विभावरी शिरूरकर, मालती बाई बेडेकर, मालती बाई दांडेकर, र० वि० दिघे और साने गुरु जी प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं जिन्होंने मराठी उपन्यास को नयी पीढ़ी में समृद्ध किया है। आज के मराठी उपन्यासकारों में सबसे प्रसिद्ध हैं श्री ना० पेंडसे, वा० वि० शिरवाडकर, गो० नी० दांडेकर और रणजीत देसाई। मराठी साहित्य को इनकी देन बहुत ही शानदार है।

लघुकथा और लघुनिबन्ध

इस काल में कहानी और निबन्ध का एक विशेष विधा के रूप में निर्माण हुआ। ह० ना० आप्टे, श्री कृ० कोल्हटकर, वि० स० गुर्जर ने रूपों को बहुत विकसित किया। संरचना की अन्विति और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से दिवाकर कृष्ण आज के युग के सब से पहले कहानी लेखक हैं। खांडेकर और फड़के के साथ उनकी अपनी-अपनी विशेषताएं कथा-विधा को मिलीं और उसका रूप 1940 में पूर्ण विकसित हुआ। य० गो० जोशी उसमें और वास्तवता लाये। भावुकता और घरेलू वातावरण के कारण वे बहुत लोकप्रिय हुए। साथ ही साथ वि० वि० बोकील, अनन्त काणेकर, चिं० वि० जोशी, श्री० मा० माटे और पु० के० अत्रे ने इसे और ऊंचे स्तर पर उठाया। परन्तु गंगाधर गाडगिल ने अपनी सदाबहार कल्पनाशक्ति से इस विधा में सबसे नये प्रयोग किये और कथा का रूप और ऊंचा किया। अरविंद कल्पनाशक्ति से इस विद्या में सबसे नये प्रयोग किये और कथा का रूप और ऊंचा किया। अरविंद गोखले, पु० भा० भावे, व्यंकटेश माडगूलकर, महादेव शास्त्री जोशी, दि० बा० मोकाशी, दि० म० मिरासदार, ना० ग० गोरे और वंसुधरा पटवर्धन आज के मराठी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार हैं। श्री० मा० माटे, अनन्त काणेकर, डा०

इरावती कर्वे, ना० सी० फड़के, दुर्गा भागवत, कुसुमावती देशपांडे मराठी के प्रसिद्ध निबन्धकार हैं। रा० मी० जोशी के यात्रा-वर्णन, पु० ल० देशपांडे के व्यंग्य लेख विशेष उल्लेख योग्य हैं। कुसुमावती देशपांडे, वा० ल० कुलकर्णी, दि० के० वेडेकर, श्री० के० क्षीरसागर जैसे आलोचकों ने आज के मराठी साहित्य के रचयिताओं को दिशादर्शन देने में बड़ा काम किया है।

वाद-विवाद का गद्य

1873 से 1945 तक का कालखंड आधुनिक मराठी गद्य साहित्य की श्रेष्ठ कृतियों के निर्माण का काल था। विष्णुशास्त्री चिपलूणकर (1850-1882) इस क्षेत्र में सबसे पहले कार्यकर्ता थे। वे सच्चे अर्थों में मराठी भाषा के शिवाजी थे। उन्होंने अपनी भावपूर्ण और व्याख्यानात्मक गद्यशैली से बड़ा यश कमाया। उनके बाद आये तिलक और अगरकर। मराठी पाठकों की बढ़ती हुई संख्या को, दोनों के बीच सामाजिक या राजनीतिक सुधारक प्रथम हों, इस प्रश्न पर जो वाद-विवाद हुआ, उन्होंने जागृत किया। तिलक मराठी गद्यशैली के स्वामी थे। उनकी गद्यशैली उनकी महान् विद्वत्ता से अनुरंजित थी, जिसका उत्तम प्रमाण विश्वविख्यात "गीतारहस्य" है।

उसी समय शिवराम महादेव परांजपे (1868-1929), अपने काल में वक्तृत्वपूर्ण और व्यंग्यपूर्ण शैली में ओजस्वी निबन्ध लिख रहे थे। नरसिंह चिंतामणि केलकर जैसे प्रसिद्ध, बहुमुखी पत्रकार में कई क्षेत्रों में साधारण कलाओं का मधुर समिश्रण था। ऐसी कोई गद्य-विधा न होगी जिसमें उन्होंने सफलतापूर्वक न लिखा हो। अ० ब० कोल्हटकर, रमाबाई रानाडे, ल० रा० पांगारकर, श्री० म० भाटे, काका कालेलकर, दत्तो वामन पोतदार, वि० द० सावरकर, शं० दा० जावडेकर, विनोबा भावे, कृ० पां० कुलकर्णी, न० र० फाटक, शं० दा० पेंडसे, वि० भि० कोलते, पु० ग० सहस्त्र, शं० ग० तुलपुले, डा० करंदीकर ने मराठी में निबन्ध साहित्य को बहुमूल्य देन दी है।

मराठी भाषा और साहित्य का भविष्य

कभी-कभी यह प्रश्न पूछा जाता है कि मराठी साहित्य का भविष्य क्या होगा? इस प्रश्न का सीधा-सच्चा जवाब है कि मराठी भाषा को चार करोड़ लोगों से अधिक बोलते हैं। इसका साहित्य सब रूपों और शाखाओं में समृद्ध है। उसके पीछे एक हजार वर्षों की परम्परा है। अब उसे महाराष्ट्र की राजभाषा का दर्जा मिला है। वह उच्चतर शिक्षा का माध्यम बनने योग्य है और निकट भविष्य में निस्सन्देह बनेगी भी। इसलिए मराठी भाषा और साहित्य का भविष्य बहुत उज्ज्वल और गौरवपूर्ण होगा ही।

पसायदान

•

संत ज्ञानेश्वर

इसलिए आप सब संतों ने मेरा तीनों लोकों में (प्रसिद्ध) यह जो ग्रंथ रूप में उपयोग करा लिया, वह निरुपय (रचना) आगे है।

या यों कहिये कि आपका किया हुआ यह धर्म कीर्तन अपनी सिद्धि तक पहुंचा। यहां बची है सिर्फ मेरी सन्देशवाहक जैसी सेवा।

अब विश्वात्मक भगवान। इस वाग्-यज्ञ से आप तुष्ट हों। और तुष्ट होकर मुझे यह प्रसाद (पसायदान) दें।

जिससे खल-जनों की संगत छूटे। सत्कर्म में आसक्ति बढ़े। भूतमात्र के प्राणों में परस्पर-मैत्री बढ़े।

दुरित (पाप) का तिमिर जाय। विश्व स्वधर्मसूर्य से देखे। प्राणी मात्र में जो-जो कुछ चाहे वही उसे मिले।

ईश्वरनिष्ठों की मन्द-मधुर वर्षा सकल मंगलकारी हो। इस भू-मण्डल पर भूतमात्र से उसकी अनवरत भेंट हो।

ऐसे चेतना चिंतामणि के गांव चलें जहाँ कलतरुओं के झुंड हों जिसे अमृत का अर्णव (समुद्र) भी कहते हैं।

वह ऐसा चन्द्रमा है जो अलांछन है, वह ऐसा मार्त्तण्ड है जो तापहीन है, वह सब का सदा सज्जन सम्बन्धी हो।

अथवा सब सुख से, तीनों लोकों में पूर्ण होकर, वही आदि पुरुष का अखंड भजन करता है।

और ग्रंथोपजीवी का, ऐसे विशेष लोगों से यहां, विजयपूर्ण दृष्टि-मिलन हो।

यहां विश्वेश राजा दानप्रसार करेगा। (इन शब्दों द्वारा) ज्ञानदेव सुखी हो गया।

भागवत महाक्षेत्र

•

संत एकनाथ

श्री भागवत महाक्षत्र है। वहां ब्रह्म मख्य बीज-घर है। नारद जमींदार है। वहां विचित्र ढंग से बुवाई की गई ॥

वहां श्री व्यास ने अति शुद्ध दस प्रकार की मेंड बनायी। उसमें से अगाध फसल निकली। स्वानंद बोध का भांडार भर गया।

वहां शुक बैठे सिंचाई करने। उन्होंने हरिकथा की नहर फोड़ दी। पाप-पक्षियों को वहां से उड़ा कर निःशेष कर दिया।

उसमें एकादश में उद्धव ने जमा किया। उस फसल के कण निकले अति-सघन, कृष्णोक्ति के रूप में ॥

वहां नाना युक्ति से उसे कूट-पीस कर, उत्तम प्रश्नों की पद्धति के रुचिर पक्वान्न बनाये, जिनकी नित्य नयी मधुरता थी, अविनाशी।

वह अविनाशी निजमधुरता, पद-पद पर अत्यंत रुचिपूर्ण थी। एकदश में वह ठीक-ठीक उद्धव ने जोड़ी। दुनिया पर उपकार किया ॥

उस उद्धव की पिछली पंक्ति में, त्यक्तोदक श्रवणार्थी, शुकमुख से परीक्षित निजात्मतृप्ति से शांत हुआ ॥ उस समर्थ की पंक्ति में, भावार्थदीपिका हाथ में रखकर, श्रीधर ने पद-पदार्थों दिखाये। वह निजात्मास्थित से शांत हुआ।

वहां देशभाषापदपक्ष को एका जनार्दन की मक्षिका भी सबके साथ-साथ तृप्त हुई। उसे कोई निषेध नहीं था।

एका जनार्दन पागल बिल्ली है। भावार्थदीपिका के प्रकाश में यह नये रुचिर रस देखकर थाली के आगे आ गयी ॥

'मैं हूँ! मैं हूँ' स्मरण कर रही है। कृपा से सज्जन तुष्ट हुए।' शेष प्रसाद देकर मानो पूर्ण संतृप्त किये गये ॥

एका जनार्दन का पोषण क्या है? कहते हैं—"मैं तो सबसे हल्की बिल्ली हूँ। संतों का शेष भांड चाट-चाट कर मुझे परिपूर्ण तृप्ति मिल जायगी।

देहसहित हुआ गुप्त तुका

संत तुकाराम

उस पार आये हरी। शंक चक्र कर में शोभते हैं।
गरुड़ पंख फटकार कर आया। जल्दी से कहता है 'न डर न डर'
मुकुट कुंडल की दीप्ति ऐसी कि उसमें गभस्ति भी लुप्त हैं।
मेघ श्याम वर्ण हरी। मूर्ति बड़ी आंखोंवाली सुंदर।
चतुर्भुज गले में वैजयंती माला सुहा रही है।
पीतांबर ऐसे झलकता है जैसे दशों दिशाएं उज्ज्वल हो रही हों।
'तुका' संतुष्ट हुआ। घर पर वैकुंठ पीठ आया॥
हम जा रहे हैं आप कृपा रहने दें।
सबको कहिये मेरी विनती॥
बहुत वक्त हो गया है, पांडुरंग खड़ा है
वैकुंठ से श्रीरंग बुला रहा है॥
अंतकाल में विठोबा हमें मिल गया।
देहसहित हुआ गुप्त तुका।

उत्तम पुरुष निरूपण

संत रामदास

रामदास का शिवाजी को किया हुआ उपदेश

नाना वस्त्र, नाना आभूषणों से शरीर शृंगारित होता है, विवेक विचार से राजकाण से अंतर शृंगारित होता है। शरीर सुंदर सतेज, वस्त्राभूषणों से सुसज्ज किया जाय, अंतर में चातुर्य बीज न हो तो वह शोभा नहीं पाता। ईश्वर साभिमान (आपके हाथ) है, विशेषतः तुलजा भवानी है, परंतु विचार देखकर ही कार्य करना चाहिए। म्लेच्छ दुर्जन, उदंड, बहुत दिनों से बागी हो रहे हैं, इसलिए अखंड सावधान रहना चाहिए। सकल-कर्ता जो ईश्वर है उसे अंगीकृत करने वाले पुरुष का विचार बिरला ही होता है। न्याय नीति विवेक विचार, नाना प्रसंग (के अनुसार) परीक्षण परांतर (करना) ईश्वर की देन है। महान् यत्न से, सावधानी से, समय पर धीरज रखना, अद्भुत कार्य कर गुजारना, ईश्वर की देन है। यश, कीर्ति, प्रताप, महिमा (आदि) उत्तम गुणों की सीमा नहीं है। इसकी दूसरी कोई उपमा ही नहीं है। यह ईश्वर की देन है। इहलोक परलोक देखना, अखंड सावधानी से रहना, बहुत जनों को सहना, ईश्वर की देन है। ईश्वर का पक्ष लेना, ब्राह्मणों की चिंता करना, बहुत जनों को पालना, ईश्वर की देन है। धर्मस्थापना के जो नर हैं, वे ईश्वर के अवतार हैं। हो गये, आगे भी बहुत हैं, वे ईश्वर की देन हैं।

केकावली

मोरोपंत

क्रतांत-कटकामल-ध्वज वाली जरा दिखाई देने लगी
पुरःसर गदाओं के साथ लड़ते हुए तन थक गया
सहाय दूसरा नहीं है तेरे बिना किसका विलक्षण बल है
यदि उतावला न बने तो यह स्व-रिपू गला काटता है ॥
सुसंगति सदा मिले, सुजन-वाक्य कानों में पड़े
मति का कलंक झड़े, विषय-वासना सदा बुरी लगे
सदांघ्रिकमल में छिप जाय, मोड़ने पर हठ से अड़े ।
वियोग होने पर रोये, मन भवच्चरित्र में जड़े ।
ओ दयामृतधन हरी, 'मयूर' की ओर मुड़ो
रोते शिशु को वात्सल्य से माँ गोद में ले लेती है ।
धार्मिकों द्वारा स्तुति किये जाने वाले पदों को कब ऐसा करना पड़ेगा
दास के लिए तुम्हें जड़ भवार्णव में उतरना ही पड़ेगा ।

उपदेशपरक 'फटका' (छन्दविशेष)

अनंत फंदी

विकट मार्ग वाला व्यवहार नहीं होना चाहिए। सरल मार्ग को नहीं छोड़ना चाहिए। संसार में ऐसे ही भटकते रहना ठीक नहीं। चलो, खालिस सीधा-सादापन रखकर, झूठी बातें मत बोलो। शरीर में सदा नम्रता होनी चाहिए, किसी पर गुस्सा नहीं होना चाहिए। नास्तिकता में जाकर सारी जनता की निंदा ग्रहण नहीं की जाय। भलाई हमेशा करो और अधर्ममार्ग में न जाओ। माँ बाप पर मत रूठो, दूर अकेले मत बैठो। व्यवहार में मत फंसो। कभी खाली न बैठो। पर पेट के लिए बेकार के ऊलजलूल काम मत करो ॥ 1 ॥

किसी की बुरी बातें याद करके फिर शर्माने जैसा खराब किसी को न कहो। दूसरे की अच्छी संगृहीत बातों को डुबाने की हिर्स मन में मत रखो। मैं बड़ा सयाना हूँ, धनाढ्य हूँ, ऐसा गर्वभार मत उठाकर चलो। एक से एक बढ़कर दुनिया में लोग हैं, अपनी ही बड़ाई मत हाँको। किसी की हिदायत पाकर गरीबों पर गुर्राओ मत। दो दिन की सत्ता चली जायगी, अपने माथे पर अपयश मत लो। बहुत कर्ज करके अपनी कीमत कम मत करो। मित्रों के लिए अपनी जेब से खर्च करो पर कभी जमानत न दो। प्रतिज्ञा की बीड़ा किसी स्पर्द्धा में न उठाओ। तराजू से तोलते हुए कम मत तोलो। किसी की गिरवी चीज मत डुबाओ। यदि कोई चीज तुम्हारे पास हो तो भीख मत माँगो। न होने पर कहना क्यों ? सारे गाँव को अपना मित्र न मानो ॥ 2 ॥

स्वहित के लिए बेकार किसी की निंदा-स्तुति मत करो। अक्लमंद की खुशामद अच्छी, मूर्ख की मैत्री भी अच्छी नहीं। श्रम से प्राप्त सब्जी रोटी भी अच्छी, घी शक्कर की चोरी मत करो। जो भी अतिथि आये उसे मुट्ठी भर देने में आगे पीछे मत देखो। जो भगवान ने स्थिति दी है उसी में सुख मानो, कभी मत डूबो। पैसा हुआ तो संचय किया, उसे सत्कार्य में खर्च करने से मत हटो। अब तुझे एक बात कहता हूँ, सत्कर्म में कमी मत करो। सत्कीर्ति की नौबत और डंका बजेगा इसमें कोई शंका ही नहीं है। सुविचार से मत कतराओ। सत्संगति से मत बचो। द्वैत का अनुसरण मत करो। हरिभजन को मत भूलो ॥ 3 ॥

कांटों के बिना गुलाब नहीं

केशवसुत

काँटों के बिना गुलाव नहीं, यह हृदय में पक्की तरह ठान लो
फिर निराशा का तुम्हें कभी कष्ट नहीं होगा ।
इस दुनिया में सुख-दुख ऐसे ही मिश्रित होते हैं,
सुख के लिए कष्ट झेलने पर दुख हिस्से में पड़ता है ।
छाया के बिना कभी प्रभा किसी ने देखी है क्या ?
चित्र तभी बनता है जब छाया प्रभा से मिल जाती है ।
इस दुनिया में स्पृहणीय क्या है—एक ही चीज, प्रीति ।
हृदयभेदक बहुत क्या है ? तो वही निश्चित-प्रीति !
अविकृत ऐसा कुछ भी नहीं होता, विकृतिमय संसार है
यह पहचानकर शोक दुःख अनिवार छोड़ दे

औदुंबर वृक्ष

बालकवि

उस पार के किनारे पर हरियाली पहनकर
नीला साँवला झरना बहता है द्वीपों द्वीपों में से;
चार घरों का गांव छोटा सा है उस पहाड़ी के पार;
उनके आगे खेतों की, बगीचों की हरी भीड़ आगे है;
उनमें से सफेद पगडंडी टेढ़ी-तिरछी जा रही है;
हरे चरागाहों में से वह काले गहरे जलाशय की ओर जा रही है।
जल को ढांक कर मीठी कालिमा लहरों पर फैलाता है,
पैर डाल कर जल में बैठा है यह औदुंबर वृक्ष।

जन पलभर कह देंगे हाय ! हाय !

भास्कर रामचंद्र तांबे

जन पलभर कह देंगे—'हाय ! हाय !'
मेरे जाने पर बचेगा कौन सा कार्य ?
सूर्य तपेगा, चन्द्र चमकेगा
तारागण अपना व्रत आचरण करेंगे
ऐसी ही हवाएं आगे भी बहेंगी
क्या कुछ भी पड़ेगा अंतराय ?
मेघ बरसेंगे, खेत लहलहायेंगे
गर्व से वे नदियाँ बहेंगी
किसे चिंता है कि फिर तट पर
यही पैर न चिन्ह छोड़ जायेंगे—
सगे-रिश्तेदार आंखें पोंछेंगे,
फिर अपने काम पर लग जायेंगे,
उठेंगे, बैठेंगे, हंसकर खूब खिलखिलायेंगे
मेरे जाने से उनका क्या जायगा ?

रामकृष्ण भी आये, गये
उनके बिना क्या दुनियां खाली पड़ी ?
किसने सदा के लिए सूतक रखा
फिर क्या अटक जायगा मेरे बिना ?—

ऐसी दुनिया के लिए कुढ़ना क्या
किसी के मोह में क्यों उलझना
हरि के दूतों से क्यों विमुख बनें ?
काया को शांति से क्यों न नष्ट होने दें ?

जग की रीति

यशवंत

हे जगत् ! तेरी रीति सदा उलटी है !

एक भी बाग का
फूल कौतुक से देगा
ऐसी व्यर्थ आशा रखी

पर अब फूलों की राशि में डुबा दी है अरथी !

जब पैरों से अपने जा रहा था
तो उसे जगह-जगह घसीटा, गिराया
अब देखिये कितनी जल्दी हो रही है

कंधा देने की, बाजार में जुलूस ले जाने की !

मुफ्त का मीठा शब्द
कभी कोई नहीं बोला
सदा निंदा की धूल उड़ाई

और अब श्मशान स्तुति से निनादित हो रहा है !

कहीं कोई प्रतिगूँज मिले
इस अपेक्षा से अकेले
तीनों लोक ढूंढ डाले

अब कलेवर को गले लगाने, रिश्तेदारों की यह भीड़ !

जिंदगी भर आग की लपटें
बुझाने के लिए एक बूंद
नहीं मिली । अब कुंभ—

कितने खाली हो रहे हैं तिलांजलि के लिए !
स्नेहगाथा तब बनाई
तो हाथों में सूखे पत्ते आये
सिर पर कीले ठोंके गये
अब अस्थि पर देवालय नदी किनारे खड़े हैं
कहीं ऊष्मा पाने के लिए
देहलीज़ घिसी
सब जगह दरवाजे बंद थे
अब दिन और रात धूपारती शय्यादती
सारे जीवन भर तंग करके
अब सीमा लांघकर
प्रेमभाव दिखा रहे हैं
तुम्हारे परिमार्जन की (हे जगत् !) यह विचित्र रीति है !

जीवन उन्होंने ही समझा

बालकृष्ण भगवंत बोरकर

जीवन उन्होंने ही समझा जी,
जिनका अहंकार पक्व फल की तरह
सहज रूप से गल गया जी ।
जल की तरह जिनका निर्मल मन
जहां-तहां मिल गया जी ।
चराचर का जीवन बनकर
स्नेह के समान चमक गया जी ।
सिंधु के समान जिनके हृदयों में
सारे रस आ मिल गये जी ।
आपत्काल में दीनों पर
घन बनकर जो उतर आये जी ।
जिनके दर्शनमात्र से दुरित
मोहित होकर जल गया जी ।
जिनके प्रकाश से पुण्य
फूला और परिमल बना जी ।
आत्मदल से नक्षत्रों का
वैभव जिन्होंने तौला जी ।
बिना प्रयत्न के ब्रह्म सनातन
जिन्हें घर में मिल गया जी ।
हृदय में ही जो पा गये जी ।

ध्वज अमरण यह

कुसुमाग्रज

ध्वज अमरण यह !
ध्वज अशरण यह !
ध्वज अविरत यह फहरेगा।
वीरों के रक्त में यह भीगा
संतों की श्रद्धा में यह डूबा
यह त्रिवर्ण निर्भय नील (गगन) में
जीवन नया बरसायेगा
ध्वज अमरण यह······1

धवल हिमालय देता रक्षण
विशाल सागर अर्घ्य समर्पण
उदयगिरि पर पूर्व दिशा के
सविता सम तेज चमकायेगा
ध्वज अमरण यह······2

धरती के ज़खमी हृदयों के
स्वप्न यहीं पर सुफलित होंगे
मानवता की दौलत रक्षित करके
जगाकर जगेगा
ध्वज अमरण यह······3

दुर्बल दलितों का रक्षण
समता का राजापन दिखला
अमानवों का अंध महाबल
इस पर टूट जायगा
ध्वज अमरण यह······4

नक्षत्रों के दिव्य पक्षों से
इंद्रधनुषों की सीमा से
नीला चक्र जहां पर जाये
नया जगत खिलेगा
ध्वज अमरण यह
ध्वज अशरण यह
ध्वज अविरत यह फहरेगा !······5

आओ जी सूर्यनारायण

इंदिरा संत

आओ जी सूर्यनारायण, आओ जी आओ जल्दी
सोने के पैरों से, यह घर शोभित करो······
आंगन लीपा, स्वस्तिक रेखित किया
हल्दी कुंकुम से, मंगलसूचक···
खुला है दालान, स्वागत को आतुर
आओ जी सूर्यनारायण, आओ जी आओ जल्दी···
आकाश के मध्य भाग में आया है भास्कर
तेज की वर्षा में झिलमिलाती है धरा······
आने दो मेरे घर में किरणों की शलाकाएं
तेजस्वी पिता के वे वात्सल्यपूर्ण हाथ हैं···
खुली खिड़कियाँ, झरोखे क्वेलदार
घर में रेंग रही हैं, रुपहली किरण···
सोने की ग्राम सीमा से, विदा लेते हुए
आओ जी आओ आंगन में, सूर्यनारायण······
मां की ममता से, कोमल करों से
बालकों को पुचकारो, खेलते हुए आंगन में······
रंगो खिड़कियां, अन्तर थक गया है
गुलाबी आनन्द में, सारा संसार नहाये······

नया सिपाही

केशवसुत

नवयुग का मैं नव दम-खम का शूर सिपाही हूँ,
कौन मुझे अपने बन्धन में रख सकता है, देखूँ !
ब्राह्मण नहीं, न मैं हिन्दू या एक पन्थ का केवल,
वे हैं पतित कि जो संकीर्ण बनाते हैं सकलांचल !

भारी भीषण मेरी भूख,
टुकड़े से मुझको कब सुख,
नहीं कूप का मैं मंडूक;

मेरे खेत बंधेंगे बागड़ से न सहन मुझको यूं !
कौन मुझे अपने बन्धन में रख सकता है, देखूँ !
जाऊँगा मैं जिधर कहीं हैं सभी ओर मेरे भाई,
सभी जगह निज घर के चिन्ह मुझे दिखे हैं दिखलाई;
कहीं जाइये—सिर पर तो है अम्बर की नीली झांई !

छाया में बच्चे सुन्दर,
और धूप में फूल मधुर,
देख हर्ष से डोले उर,

वे मेरे, मैं उनका - एक प्रवाह बह रहा हम सबमें !
नवयुग का ताजे दम-खम का शूर सिपाही हूँ अब मैं !
पूज रहा हूं मैं किसको ?—तो अपने को पूज रहा,
अपने में ही विश्व देखकर पूज रहा मैं यह दुनिया;
'मैं यह शब्द न मुझे चाहिए; लोग उसे संकीर्ण बना,
निज सिर पर अनर्थ खींच देते हैं यों ही नाना !

छोटा-बड़ा न मुझको सूझे,
साधु-अधम का द्वन्द्व भी झरे,
दूर-निकट का भाव भी भगे;
सब ही बड़ा-साधु-अतिनिकट, उसी में भरा हुआ हूँ !
कौन मुझे अपने बन्धन में रख सकता है मैं देखूं ?
'हलवा'[1] जब कि बनाते तिल पर चढ़ें चाशनी के पुट कण,
अहंस्फूर्ति के केन्द्र पर चढ़ें उसी तरह जड़ आवेष्टन;
अन्दर सम निर्गुण तिल, ऊपर सगुण जम रहा जैसे पाक
किन्तु अन्य के लिए चुभन के कांटे बनते हैं प्रत्येक ?

ऐसी स्थिति से हम जनमे !
कलह मिटेगा कब कैसे ?
चिंता साल रही मन में ।

काल शांति-साम्राज्य स्थापना चाह रहा है जो,
उसका प्रेषित नव दम-खम का शूर सिपाही हूँ !

1. महाराष्ट्र का एक चिरौंजी दाने-जैसा, संक्रान्ति के दिनों में घर-घर बनाया जाने वाला मीठा पदार्थ ।

आज्ञा-पत्र

शिवाजी राजा की राजनीति

फ़ौज़ी जहाज़ी बेड़ा अपने आप में एक स्वतन्त्र राज्यांग है। जैसे "अश्व-बल" (या घुड़सवार फौज) जितना जिसके पास हो उतनी ही पृथ्वी उसकी होगी, उसी तरह जिसके पास फौजी जहाज़ी बेड़ा हो समुद्र उसी का है। इसी-लिए जहाज़ी बेड़ा जरूर रखा जाय। चाल की "गुराबा" तोपें न बहुत बड़ी हों न बहुत छोटी, ऐसी मझोले आकार की सजायी जायं जैसे कि जहाज़ हों। बड़े-बड़े पाल जो हवा के बिना काम के ही न हों, उनके बनाने का कोई उप-योग नहीं है। एक-दो बनायें भी तो जो पूरा फ़ौजी जहाज़ी बेड़ा हो उस पर "मर्दाना तोपें" दागने वाले आदमी, बर्तन, छोटे जंबूरे, बंदूकें, बारूद-गोले, 'होके' आदि जहाज़ी बेड़े के लिए ज़रूरी सामान यथेष्ट मात्रा में सजाया जाना चाहिए। हर-एक के अलग-अलग सूबेदार बनाने चाहिए। हर हिस्से को पांच 'गुराबे', पन्द्रह जहाज़ देने चाहिए। इन सब का एक सरसूबेदार बनाना चाहिए। उसकी आज्ञा का ही सब लोग पालन करें।

लोकहितकारी राज्य पर एक निबंध

विष्णुबुवा ब्रह्मचारी

1. लोगों, सुनो। जितने प्रदेश का वह राजा हो उतने प्रदेश की प्रजा को राजा यों समझे कि यह सारी प्रजा मेरा एक परिवार है। मैं इस प्रजा-रूपी परिवार का स्वामी हूँ। और जितनी ज़मीन मेरे अधिकार में है वह सारी ज़मीन एक बाग है। ऐसी व्यवस्था मुझे करनी चाहिए जिससे इस सारे प्रजारूपी परिवार का उतने बाग में यानी ज़मीन में, निर्वाह हो और यह प्रजारूपी परिवार सदा सुखी रहे। राजा का यह प्रथम विचार होना चाहिए कि राज्य ही घर है और प्रजा ही परिवार है।

2. इस प्रकार सारी प्रजा एक कुटुम्ब है। इसलिए उस सारे कुटुम्ब को सुख देने के लिए उद्योग करने वाले राजा से प्रजा विनती करे कि जो हुक्म वह देगा उसके अनुसार रहने के लिए सारी प्रजा सन्नद्ध है।

3. फिर सारी प्रजा से ज़मीन की खेती करायी जाय। वह इस ढंग से कि जिस जगह जो वनस्पति अच्छी फसल दे सके उस जगह उसी की बुवाई की जाय और नदियों पर बाँध निर्माण करके ज़मीन को बारहो महीने भरपूर पानी देने लायक तालाब और बावड़ियाँ तैयार करायी जायं और अनेक प्रकार के फल, सब्जियाँ, अन्न उपजाये जायँ। गाय, भैंस, घोड़े, गधे, ऊंट आदि के निर्वाह के लिए चारा पैदा करके गांव-गांव में उनके भण्डार भर कर रखे जायं और उनमें से सारे गांव वाले पेट भरने के लिए आवश्यक अन्न ले जायं, जानवरों के लिए चारा ले जायँ। इस प्रकार शीतकाल, ग्रीष्म और वर्षा में बारह मास एक जैसी ज़मीन से पैदावार करें और ऐसी व्यवस्था की जाय कि सब की पैदावार एक सी हो और एक ही के अधिकार में रह कर सब को उसमें से खाने को यथेष्ट अन्न मिले। राजा ऊन, कपास आदि के

अनेक प्रकार के कपड़े बनाने के कारखाने स्थापित करे और अनेक प्रकार के कपड़े बनवाये और गांव-गांव में उनके भंडार भर कर रखे। उनमें से जिसको जो कपड़ा चाहिए वह ले जाय और बारह बरस वर्षा न हो तो भी वर्षा वाले देशों से लाये गये पानी की आपूर्ति से ज़मीन सदा अच्छी फसल देने वाली बनी रहे; ऐसी व्यवस्था बाँध बना कर करें। सोने-चाँदी, मोती-हीरे के अलंकार तैयार करके गांव-गांव में रखे जायँ और उन्हें भी सब स्त्री-पुरुष इस्तेमाल करें और टूट जाने पर फिर राज्य के ख़ज़ाने में डाल दें और नये ले जायं। उसी प्रकार से शस्त्र और यन्त्र गांव-गांव में रखे जायं। सब तरह की क्रीड़ाएँ गांव-गांव में कराई जायँ। रेल गाड़ियां और तार घर गांव-गांव में हों। और सब तरह की शादियाँ, शादियाँ करानेवाले विभाग की ओर से राजा करवाये। सब लोग अपने बच्चों और बच्चियों को, पांच वर्ष की उम्र के बाद, राजा के हवाले कर दें। बाद में उन्हें सब तरह की विद्याएं सिखाकर जिसे जिस काम में सबसे अधिक उद्योग करने की प्रवृत्ति हो उसे उस काम में लगा दिया जाय। स्त्रियों और वृद्ध पुरुषों से कोई काम न कराया जाय, उन्हें आराम से रहकर खाने दिया जाय।

इस प्रकार से एक ही कुटुम्ब सारी प्रजा है। इस तरह से व्यवहार की पद्धति ऊपर लिखी है। इससे चोरी, मारकाट, झगड़े, खून इत्यादि अपराध ऐसे नष्ट हो जायँगे कि किसी को पता भी नहीं चलेगा। इन्साफ की कचहरी या न्यायालय की ज़रूरत नहीं रहेगी। अकाल क्या होता है यह भी पता नहीं चलेगा। सब की सब इच्छाएं इस तरह से पूरी होंगी। इसके लिए आवश्यक है कि राजा और प्रजा के सम्बन्ध वैसे हों जैसे इस परिच्छेद में वर्णित हैं।

वक्तृत्व

विष्णु शास्त्री चिपलूणकर

वक्तृत्व शक्ति का उदय होने के लिए देश की राज्यरीति एक विशेष पद्धति की होनी चाहिए। यह विशेष पद्धति लोकसत्तात्मक राज्य की होती है। लोकसत्तात्मक राज्य-पद्धति में जब समाज के या सभा के बहुमत से राज्य का शासन चलता है तब बुद्धिमान पुरुषों को ऐसे समाजों का या सभाओं का संघटन बनाकर, अपने विचारों के अनुकूल सब की मति बनानी होती है। उस के लिए वक्तृत्व जैसा ज़ोरदार हथियार और कोई नहीं मिलेगा। वह जिसके पास पूरी तरह होता है, उसकी मुट्ठी में सब लोग आ जाते हैं ऐसा मानिये। वह जो दिखा देगा वही मुख्य दिशा बन जाएगी और सारी संस्थाओं पर उसी का अधिकार हो जाता है, ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। इस प्रकार से सारे राज्य प्रकारों में लोकसत्तात्मक राज्य ही वक्तृत्व शक्ति के उदय के लिए अनुकूल है, क्योंकि अन्य किसी भी राज्य-शासन-प्रकार में बहु-जन के मत पर राज्यशासन नहीं चलता, इसलिए बहुजनों का मत अपनी ओर खींच लेने की जो कला वक्तृत्व में है उसकी जरूरत ही नहीं रहती और इस प्रकार से ऊपर बताई कला का मूल ही सूख जाता है या उसका विस्तार होने की संभावना नहीं रहती, यह स्पष्ट है।

गीतारहस्य अथवा कर्मयोग

बाल गंगाधर तिलक

गीता-धर्म

इस तरह सबसे अधिक निर्भय और व्यापक रहकर समभाव से, यानी वर्ण-जाति-देश या अन्य कोई भी भेद न रखकर, सब को एक ही माप से एक-सी सद्गति देनेवाला और अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता दिखानेवाला, ज्ञान-भक्ति-कर्मयुक्त गीताधर्म सनातन वैदिक धर्मवृक्ष का अत्यंत मधुर और अमृत फल है। वैदिक धर्म में प्रारम्भ में द्रव्यमय या पशुमय यज्ञ का, ज्ञानी केवल कर्मकांड का ही, अधिक माहात्म्य था। परन्तु आगे उपनिषदों के ज्ञान से, केवल कर्मकांडपरक श्रोतमार्ग गौण हो जाने पर, उसी में सांख्यशास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ परन्तु यह ज्ञान साधारण जनों के लिए अगम्य था, और उन की रुझान भी कर्मसन्यास की ओर विशेष होने से, सर्वसामान्य लोगों का केवल औपनिषदिक धर्म से अथवा दोनों की स्मार्त एकवाक्यता से भी पूरा समाधान होना संभव नहीं था। इसलिए उपनिषदों में केवल बुद्धिगम्य ब्रह्मज्ञान को प्रेम-गम्य व्यक्त उपासना के राजगुह्य से जोड़कर, कर्मकांड की प्राचीन परम्परा की तरह 'तुम अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार अपने सांसारिक कर्तव्य लोक-संग्रह के लिए निष्काम बुद्धि से, आत्मोपम्य दृष्टि से और उत्साह से यावज्जीवन करते रहो और उसके द्वारा पिंड-ब्रह्मांड में सब भूतों में एकत्व रूप से बसने वाले नित्य परमात्म देवता का सदा भजन करो, उसी में तुम्हारा पारलौकिक और ऐहिक कल्याण है।" ऐसा अर्जुन को निमित्त बनाकर सबको ही गीताधर्म कंठ-रव से कह रहा है। और उसी कारण कर्म, बुद्धि (ज्ञान) और प्रेम (भक्ति) इन तीनों में जो विरोध है वह नष्ट होकर सारा जीवन यज्ञमय करने के लिए कहनेवाले एक गीता-धर्म में सकल वैदिक धर्म का सार आ जाता है।

संप्राप्त संपुष्ट

शिवराम महादेव परांजपे

और पुरोहित महाराज के मुंह से यह शब्द निकले—"अहा हा ! यह सच्चा संपुष्ट ! क्या दिव्य शोभा ! भूतल इस संपुष्ट का नीचे का हिस्सा, आकाश उसका ऊपर का ढक्कन ! कितना अद्भुत, कितना विस्तीर्ण, कितना दिव्य है यह संपुष्ट ! द्यावा-पृथिवी के स्वरूप में वेदांत और उपनिषद् जिसमें वर्णित हुए वही यह संपुष्ट । परमात्मा ने स्वयं अपने हाथों से यह संपुष्ट निर्माण करके मनुष्य को सौंपा। फिर भी आज तक मैंने उसे देखा नहीं। और आज मेरा संपुष्ट खो गया है कहकर मैं शोक करता बैठा हूं । और जैसा मेरा संपुष्ट वैसा ही उसमें का मेरा देव ! संपुष्ट खोते ही उसमें के मेरे देव भी खो गये । परन्तु हे देव ! क्या तू कभी खो सकता है ? परमेश्वर, तू विश्वव्यापी है । तब तू क्यों और कैसे खो सकता है ? परन्तु यह बात मूढ़ जनों के ध्यान में नहीं आती । तो भी यह बात सच है कि आज तक अज्ञान से मेरा कुछ तो खो ही गया था निश्चित । आज तुम्हारी कृपा से वह सब मुझे मिल गया । पृथ्वीतल और आकाश-मंडल से बना हुआ संपुष्ट और उसी में उगने वाले सूर्य जैसा मेरा मूर्तिमय उपास्य देवता और उस पर चढ़ाने के लिए यह नक्षत्ररूप सुवर्णकमल । इन सबके होने पर मैं अज्ञान से मोहित होकर व्यर्थ क्यों शोक करूं ? इस दिव्य संपुष्ट में प्रत्यक्ष परब्रह्म बंद है, और अनन्त को भी उस में रहने का स्थान है । यह जो विश्वात्मा का विश्वस्वरूप दिखाई देता है, उसी का भजन, पूजन, अर्चन, मनन और निदिध्यासन करने से क्या नहीं प्राप्त हो सकेगा ? उसी का चिंतन करते-करते मनुष्य एतद्रूप ही हो जायगा, और ऐसा जो करेगा उस पर परमात्मा की कृपा होगी, उसके सब संकल्प परमात्मा सिद्ध कर देंगे और अन्त में उसे परमात्म-स्वरूपता प्राप्त होगी ।"

शिमला

•

नरसिंह चिंतामणि केलकर

हिमालय पर्वत में एक से एक ऊंचे शिखरों की पंक्तियां एक के पीछे एक लगी हैं, ऐसा कहते हैं। उनका नमूना शिमला आने पर देखने को मिला। कालका से चढ़ना शुरू किया। तब लगा कि यह पहाड़ी पार की कि शिमला दिखाई देगा। पर शिमला तो सिर्फ देखने के लिए ही सात हजार फीट की ऊंचाई में छह हजार फीट पार करने पड़े। और यह करते हुए रेलगाड़ी को इतने चक्कर काटने पड़े कि ऐसी एक भी दिशा नहीं बची जिस ओर मुंह करके हम चले न हों मानों पूरा शिमला पीठ की ओर रखकर हम आगे जा रहे हों : चक्करदार चाल की सांप की चाल से उपमा दी जाती है। परन्तु हमारी पूरी चक्राकार गति से यह उपमा भी झूठी सिद्ध हुई। चक्करों की एक पंक्ति पूरी होने पर पहली घाटी पूरी होकर नयी घाटी और नया खड्ड दिखाई देने लगा। इसलिए धरती से ऊंचाई आंखों को दिखाई नहीं देती थी। पर हम नये संकट उत्पन्न होने पर पुराना भूल जाते हैं—यह बात भी वैसी ही थी। अगणित घाटियों और वादियों के संपुट में हिमालय की बनावट किसी गेंदे के फूलों की माला की तरह या पंखुड़ियों वाले फूल की तरह बनी हुई है। शिमला का पर्वत इस पूरी माला के सैकड़ों फूलों में से सिर्फ एक फूल है। हर फूल के हिस्से में एक-एक ऊंचा गिरिशिखर है। प्राय: यह सारे गिरिशिखर श्री शंकर के नाम से पवित्र हुए होंगे ऐसा जान पड़ता है। हमारे सामने जो शिखर है उस का नाम 'चूडेश्वर' और मानो जटाधारी योगीश्वर के विरागी ऐश्वर्य की याद दिलाने वाली पवित्र भस्मराशि ही सामने है, ऐसा उस शिखर पर बर्फ का बिखरा हुआ ढेर देखकर लगता है। यहां से केदार, कैलाश, कांचनगंगा, धवलगिरि इत्यादि शंकर जी के अन्य प्रिय निवास-स्थानों की याद आती है। और 'एवरेस्ट' पर चढ़ने के प्रयत्नों की सारी खबर आज के अखबार में पढ़ी। यह विचार मन को बहुत अच्छा लगा कि देवता-निवास की कम-से-कम एक जगह बची है जिसे "अभी साहब ने छुआ नहीं"।

पुण्य-प्रभाव

राम गणेश गडकरी

वसुंधरा—नहीं, वृन्दावन, नहीं, मातृरूप से तुम्हें जन्म देनेवाली, पत्नीरूप से तुम्हारी जीवनसंगिनी, कन्या रूप से तुम्हारे पेट से जन्म लेनेवाली—तुम्हारे ज़ीवन की तीनों अवस्थाओं में तुम्हें कोमल प्रेम की साक्ष्य सिद्ध करके पुत्र, पति और पिता इन एक से एक बड़ी पदवियों तक ले जाने वाली स्त्री-शक्ति की कीमत इतनी कम मत आंको। विश्व के प्रेम, मांगल्क, कोमलता, सौंदर्य और पावित्र्य के सारभूत सर्वस्व की स्त्री एकमात्र विजयपताका है। स्त्री के प्रभाव की साक्षी दुनिया की प्रत्येक वस्तु है। स्त्री के एक दृष्टिपात से वीरान रेगिस्तान पर रमणीय उद्यान बस गये हैं। स्त्री के नाम के आधार से नदियों के प्रबल प्रवाह को वेदघोर्ण की पवित्रता मिली है; स्त्री ने तेज को कोमलता से जोड़ा है, और स्त्री ने सत्य पर सौन्दर्य का साज चढ़ाया है। स्त्री-हृदय में उमड़ने वाली प्रीति के साथ महाकवियों की प्रतिभा के प्रवाह बहे हैं। और स्त्री-सौन्दर्य की रंगच्छटाएं सिर्फ छायारूप से अंकित करने के लिए कुशल चित्रकारों की तूलिकाएं रंगों में डूबी हैं। सुन्दर इमारतों के गर्भगृहों में स्त्रियों की देवी मूर्तियां बैठी हैं। और तलवारों की धार पर प्राणों को न्यौछावर करने वाले महावीरों के शस्त्रों को स्त्रियों की आंखों का पानी चढ़ाया होता है। स्त्रियों के लिए पर्वत समुद्र की छाती पर नाचे हैं। साक्षात परमात्मा ने स्त्रियों के लिए स्त्री-रूप धारण किया है। वृन्दावन, पुरुष और परमेश्वर की, भक्त और भगवान की उत्तम भावनाओं का स्त्री में ही प्रीतिसंगम हुआ है। पुरुष के परम पावित्र्य की सीमा साधुत्व की भक्ति में होती है। निष्काम बुद्धि से भगवान की भक्ति करने वाले सत्पुरुषों को पुरुष कोटि में परमोच्च पदवी पर बिठाया जाता है। ऐसा साधु आप पुरुषों को लाख में एक भी नहीं

मिलता। परन्तु आत्मयत्न में अपनी इच्छा की आहुति डालकर, पति रूपी परमात्मा की केवल उसकी इच्छा के लिए निर्व्याज सेवा करने वाली साह्विर्यां हम स्त्रियों में घर-घर मिल सकती हैं ! उसी तरह प्राणिमात्र पर पर जो सहज प्रेम परमात्मा करता है और उसको पालता-पोसता है, उस निष्काम पुत्र प्रेम की —ईश्वर-प्रेम की—भूलोक पर कोई साक्षी है तो बच्चों का पोषण करने वाली माता ! इसी तरह एक स्त्री—देह में पुरुष और परमात्मा अपने उत्कृष्ट गुणों के साथ एक रूप से बसते हैं। अपनी महिमा का शिखर माने जाने वाले पुरुष के पोषण की, विश्वास की, जिम्मेदारी सम्हालने के लिए ईश्वर ने स्त्री निर्मित की है। पुरुष की परम्परा चलाने के लिए ईश्वर ने स्त्रीमय प्रेम-मय अवतार लिया है। पुरुष परमात्मा की कीर्ति है, परन्तु स्त्री परमात्मा की मूर्ति है ! और इसीलिए, वृन्दावन, मनुष्य से भी अधिक कौतुकमय नवीन सृष्टि निर्मित करने की कल्पना में समाधिस्थ होने पर भी पतिव्रता की पुकार सुनते ही परमात्मा दौड़कर आते हैं ! वृन्दावन, देखो मेरे कहने का प्रत्यय ! यह देखो मेरे हाथ की माला ! करो अपनी गर्दन आगे !

भारतीय संस्कृति का अमृत-तत्व

आचार्य शंकर दत्तात्रेय जावडेकर

आधुनिक जगत में अन्य राष्ट्रों के वर्तमान-कालीन इतिहास से अपने कार्य को स्फूर्ति देनेवाले आधुनिक भारत के समाजवादी नेता और प्राचीन भारत की आध्यात्मिक संस्कृति का अभियान चलाने वाले महात्मा गांधी जैसे सत्याग्रही जगद्-वंद्य नेता, इन दोनों के दृष्टिपथ में आने वाली भावी भारतीय संस्कृति के चित्र का द्वैत दूर हो सकता है। जिस परिमाण में स्वतन्त्र भारत की भावी संस्कृति मूर्त रूप धारण करने लगेगी, उसी परिमाण में यह द्वैत पूर्णतः नष्ट होकर उसका स्पृहणीय स्वरूप समस्त मानव जाति की भौतिक आत्मिक आकांक्षाओं को संतुष्ट करने में समर्थ होगा और यही भारतीय संस्कृति मानव-संस्कृति बनकर दुनिया भर में फैलेगी, ऐसी हमारी दृढ़ श्रद्धा है।

महाराष्ट्र की सरस्वती

•

आचार्य विनोबा भावे

महाराष्ट्र पर इंद्रायणी नदी के अनंत उपकार हुए हैं। भूगोल की अंधी नज़र में इंद्रायणी नदी एक मामूली नदी भासित होगी और लंबाई देखें तो सचमुच यह एक मामूली नदी है। अथवा नदी भी क्यों कहें उसे ? एक बड़ा-सा झरना ही उसे कहा जाय। परंतु वह सिर्फ पानी का झरना नहीं, वह आध्यात्मिक स्फूर्ति का झरना है।

जो पानी स्वाद में मीठा हो और जिसकी सहायता से यदि हम लकड़ी खायें तो वह भी पच जाय, वही अच्छा है। इंद्रायणी का पानी इस दोहरी कसौटी पर सही उतरा है। ज्ञान जैसा पाचक और भक्ति जैसा रोचक दूसरा कुछ भी नहीं दिखाई देगा। इंद्रायणी के पानी में पाचक ज्ञान और रोचक भक्ति भरपूर भरी है, ऐसा इतिहास का साक्ष्य है। 'ज्ञानियों के गुरु' ज्ञानेश्वर महाराज और 'भक्तों के मुकुटमणि' तुकोबा यह दोनों इंद्रायणी का पानी पीकर पुष्ट हुए।

'ग्यानश: तुकाराम' यह भावक मन को मुग्ध करनेवाला महामंत्र इंद्रायणी के पवित्र पानी से निर्मित हुआ। देहू और आकंदी इंद्रायणी के किनारे पर एक दूसरे से पांच कोसों के बीच बसे हैं। ज्ञानोबा की आकंदी ने ज्ञान की नींव रची और तुकोबा के देहू ने भक्ति का कलश। पांच कोस के अंतर में ही इतनी विशाल ऊंचाई के दो महापुरुष प्रसिद्ध हुए ऐसा उदाहरण क्वचित् ही मिलता है। नदी के आसपास का प्रदेश बहुधा उपजाऊ होता है पर इंद्रायणी के किनारे की जमीन ने उपजाऊपन का कमाल कर दिया। ज्ञानेश्वर महाराज ज्ञान की फसल काटने वाले हो गये और तुकोबा तो मूर्तिमान भक्ति-रस ! इतनी फसल और इतना रस जिस पानी में जमा था उस पानी की योग्यता को अपूर्व ही कहना चाहिए।

महात्मा गांधी ग्रमर हैं

•

प्रह्लाद केशव अत्रे

गांधी जी गये। महात्मा जी गये। स्वतंत्रता के जनक गये। तेरह दिन हुए उन्हें गये हुए। तीस जनवरी की शाम को भारत की राजधानी में प्रार्थना की पवित्र भूमि पर उन्हें शहीद का वीरमरण मिला। देश में फैली हुई द्वेष की अग्नि के कुँड में आखिर उनके प्राणों की आहुति हो गयी। प्रेम और शांति का प्रकाश विश्व पर ढालने वाला एक विराट दीपस्तंभ एक क्षण में गिर पड़ा। दूसरे दिन जमुना के तीर पर डूबते हुए सूर्य को साक्षी रख कर लाखों लोगों ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से गांधी जी की पार्थिव देह को विदा दी और उस स्थान पर 'महात्मा गांधी अमर हैं' का संदेश स्वर्ग के तैंतीस कोटि देवताओं को दिया। चंदन की सुगंधित ज्वालाओं पर चढ़ कर उनकी देह का तेजस्वी कण-कण पंचमहाभूतों में जाकर मिला। कल उनकी अस्थियां प्रयाग संगम में और उनका चिता-भस्म भारत के पवित्र सरिता-तीर्थों में और सागरतीर्थों में विसर्जित होते समय देश के करोड़ों जन उन्हें अश्रुओं की श्रद्धांजलि अर्पित करेंगे। इस युग का एक महान अवतार समाप्त हुआ। पांच महीने पहले इस महान् भारत के टुकड़े हुए और अब इस भारत का भाग्य-विधाता चला गया!

मनुष्य का देव और विश्व का देव

विनायक दामोदर सावरकर

वह विश्व की आद्याशक्ति जिन कुछ निश्चित नियमों से व्यवहार करती है, वे उसके नियम जितने समझ में आयें उतने समझ कर, उनमें भी जितने मनुष्य-जाति के हित और सुख के पोषक होंगे वैसे जितने सधें उनका उपयोग कर लेना मनुष्य के हाथों में है। मनुष्य जाति के सुख के लिए अनुकूल हो तो अच्छा, प्रतिकूल हो तो बुरा, ऐसी नीति-अनीति की स्पष्ट मानवी व्याख्या करनी चाहिए। जो ईश्वर को अच्छा लगता है वही अच्छा और मनुष्य को जो सुखदायक है वही ईश्वर को अच्छा लगता है, यह दोनों विश्वास मूर्खतापूर्ण हैं, क्योंकि वे असत्य हैं, विश्व में हम हैं परंतु विश्व अपना नहीं है। बहुत ही थोड़े अंश में वह हमारे अनुकूल है, बहुत बड़े अंश में वह हमसे प्रतिकूल है—ऐसा जो है, वह ठीक से और धैर्य से समझ लेना चाहिए और उसकी ओर निर्भयता से देखना चाहिए, यह सच्ची मनुष्यता है ! और विश्व के ईश्वर की यही पूजा है !!

मलयालम साहित्य

चयन :

डा० पी० के० नारायण पिल्ले

अनुवाद :

डा० (श्रीमती) रत्नमयी देवी दीक्षित

अनुक्रम

ऐतिहासिक समीक्षा		745
चीरामन्	• रामचरितम् (मन्दोदरी-विलाप)	753
गणपतिशास्त्री	• भाषा-कौटलीयम् (कृषि)	756
राम पणिक्कर	• शिवरात्रिमहात्म्यम् (एक पापी की गणनायकत्व प्राप्ति)	759
चेरुश्शेरी	• कृष्ण गाथा (गोपिका-विरह)	763
तुञ्चतु एड्डुत्तच्छन्	• महाभारतम् (प्रतिकार)	766
कुञ्चन् नम्पियार	• पञ्चेन्द्रोपाख्यानम् (जब यमराज नहीं रहे)	770
उण्णाई वारियर	• नलचरितम् (दमयन्ती और किरात)	774
कैरलवर्मा	• प्रसंगसंग्रहम् (भाषा पोषण)	778
ओय्यारतु चन्तु मेनन	• इन्दुलेखा (चपल कामुक)	781
सी० वी० रामन् पिल्ले	• मार्तण्डवर्मा (मां को मंजूर, बेटी को नामंजूर)	785
कुमारन् आशान्	• चिन्ताविष्टयाय सीता (करुणा का स्रोत)	790
उल्लूर	• किरणावली (कन्याकुमारी का सूर्योदय)	792
वल्लत्तोल	• साहित्य मंजरी (मेरे गुरुदेव)	797
जी० शंकर कुरुप	• सूर्यकान्ति (खोज)	801

ऐतिहासिक समीक्षा

पूर्व में घाट की नीली पहाड़ियों तथा पश्चिम में अरब सागर के गहरे नीले जल के बीच बसा हरियाली सम्पन्न केरल प्रदेश का पूर्व इतिहास प्राचीन-काल में फोनीशिया और रोम को भारत तथा सुदूर-पूर्व से जोड़ने वाले व्यापार मार्गों एवं इनके बीच व्यापार का इतिहास रहा है। इसका इतिहास प्राचीन द्रविड़ भूभाग, उसके चोलों, पांडयों एवं चेरों के तीन सम्राटों (मूवरशर) की प्राचीन परम्परा का इतिहास रहा है।

काल्डवैल ने मलयालम को पहले तमिल की उपभाषा माना था किन्तु बाद में उन्हें अपने मत का परिशोधन कर इसे तमिल की सहभाषा के रूप में स्वीकार करना पड़ा। केरल संस्कृति की तरह, इस प्रदेश की भाषा का मूलाधार भी द्रविड़ है, किन्तु इसमें संस्कृतनिष्ठ परम्परा का बहुलता से सम्मिश्रण मिलता है। तमिल का 'चिलपतिकारम्' (नूपुर महाकाव्य) एक चेर राजकुमार की रचना है, 'पदिट्रपत्तु' (दस के दस) नामक चयनिका भी चेर राजाओं के आश्रित तमिल कवियों द्वारा अपने आश्रयदाताओं के प्रति श्रद्धांजलि ही है। पेरुमाल तिरुमार्षी के रचयिता, नवीं शताब्दी के कुलशेखर को तमिल परम्परा के महान वैष्णव सन्तों में से एक माना जाता है, किन्तु इसके साथ साथ उन्होंने संस्कृत में 'मुकुन्द माल' की भी रचना की थी।

भाषा के विकास के सम्बन्ध में यहाँ बहुत संक्षेप में ही कुछ कहा जा सकता है। इस के पुर्नानिर्माण में कई कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई हैं क्योंकि बोलचाल की भाषा का स्वतन्त्र विकास होने के बावजूद भी तमिल काफी लम्बी अवधि तक राजभाषा के रूप में बनी रही। किन्तु बोलचाल की भाषा की जीवंतता ने इसे नवीं शताब्दी से ही राजसी शिलालेखों एवं प्रलेखों की राजभाषा में प्रवेश दिला दिया जिससे राजभाषा की प्राचीन पवित्रता अक्षुण्ण न रह सकी जो कि अंततः मलयालम द्वारा राजभाषा का स्थान ग्रहण करने की दिशा में प्रथम चरण था। इसी प्रकार काव्य में भी न केवल शब्द समूह के स्तर पर परिवर्तन हुआ बल्कि नवविकसित वाक्यविन्यास और व्याकरण द्वारा विलक्षण भाषायी

सम्मिश्रणयुक्त सांक्रांतिक रचनाओं की सृष्टि हुई। पर इस संक्रमण के सम्पूर्ण होने से पूर्व इस प्रदेश में संस्कृतनिष्ठ संस्कृति का ह्रास आरम्भ हो गया। उस समय मलयालम तथा संस्कृत-मिश्रित काव्य का उन्मेष हुआ। यह मिश्रण इतना सूक्ष्म था कि इसने स्वरमाधुर्य तथा संरचना की सहरूपता सुरक्षित रखी—यह मिश्रित काव्यशैली लालमणि और प्रवाल के हार की तरह थी, इसीलिए इसे 'मणि प्रवालम्' नाम से अलंकृत किया जाता है। भाषा के विकास में, आगे चलकर, संस्कृत व्याकरण का आग्रह कम होता चला गया किन्तु संस्कृत शब्दों का आत्मसात्करण चलता रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि भाषा के सुर-सौंदर्य में असीम वृद्धि हुई, द्रविड़ शब्दों की सीमा में रहते हुए यह काष्ठवृंदीय रागों को सुर प्रदान कर सकती थी, संस्कृत शब्दों के विवेकसंगत प्रयोग से यह अनुनादात्मक प्रभाव उत्पन्न कर सकती थी, संस्कृत छंदों ने इसे सस्वरपाठ की अनुदात्तता प्रदान की। द्रविड़ छंदों के पूर्ण विकसित रागों के रूप में इसमें ऊँची उड़ान की क्षमता थी।

लोक-काव्य

इसके कालनिर्धारण में कठिनाइयों के बावजूद भी, इतना स्पष्ट है कि लोक गीतों का विकास, मिश्रित भाषा के उन्मेषकाल से पहले का है, जो कि शिक्षित वर्ग की कृत्रिम भाषा थी। इसकी अपनी एक महान परम्परा है। इन गीतों में हमें निम्नतम सामाजिक एवं आर्थिक स्तरों के निर्माण और उनमें क्रूर शोषक के प्रति विरोध का स्वर सुनाई पड़ता है। कुल मिलाकर इन लोक-गीतों में आनन्द और आशावादी दृष्टिकोण की सृष्टि मिलती है। यह लोक-काव्य की धारा, भावनाओं की निर्मलता और शब्दविन्यास की सरलता लिए, तटीय जीवन की विशालता, काम और आराम, ऋतुओं जीवन-मरण के चक्रों को ईमानदारी से प्रतिबिम्बित करते हुए, शताब्दियों तक बहती रही। इसमें लोरियां, विवाहगीत एवं शोक गीत भी सम्मिलित हैं।

इस परम्परा में प्रचुर विकास के लिए जीवनशक्ति की झलक मिलती है। उच्चवर्ग द्वारा आत्मसात्कृत संस्कृत परम्परा इस स्तर तक भी रिस आई है और लोक संवेदनशीलता एक नतोदर दर्पण का कार्य करती है जिसमें रामायण एवं महाभारत की उपकथाओं और उसके पात्रों के मनोरंजक विरूपण प्रस्तुत हुए हैं, भीम के शौर्य एवं साहसिक कारनामे अत्यधिक विदूशकता का अंश लिए हुए हैं, कौरवों के जघन्यकृत्यों को विफल करने वाले घात-प्रतिगातों में सहज विनोद की भावना भी सर्वत्र निहित रहती है।

आगे चलकर इन लोकगीतों का विकास ओदेनन और आरोमल से सम्बन्धित गीतिकाव्यों के रूप में हुआ है। ये लोक नायक अविरल रूप से अपने जीवन

से खेलते रहे और उन्होंने हँसते हँसते अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। कनियकुलम् युद्ध पर आधारित सत्रहवीं शताब्दी का गीतिकाव्य दुखांत भावना के साथ साथ किंचित शोकपूर्ण स्तर भी लिए है। इससे भाग्य का साहस से द्वन्द्व तथा उसकी अंततः नियति में परिणति और यहाँ तक की मृत्यु में भी आत्म परितोष का चित्रण किया गया है। कुछ गीतों में जाति-भेदों के ध्वंसित प्रेम का गान किया गया है। अन्य में 'अप्यप्पन' जैसे देवतुल्य स्वनामधन्य वीरों की कथाएं हैं जिन्होंने इन भेदों को दूर करने और एकता स्थापित करने का सन्देश दिया।

शिक्षित वर्ग का काव्य

यदि लोक काव्य का विकास धान के खेतों और नारियल के झुर्मुटों, देवालयों तथा अपने देश के लिए प्राण न्यौछावर करने वाले वीरों की युद्धभूमि से माना जाए तो प्राचीन 'मणि प्रवालम' काव्य का उद्भव गणिकाओं के शृंगारकक्ष से माना जा सकता है। जिस अप्रवासी वर्ग ने संस्कृतनिष्ठ उत्संस्करण को उखाड़ फेंका और देशी वर्ग के साथ प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित किया, वह वर्ग सामाजिक सामतंवादी तथा आर्थिक पिरामिड के शिखर का प्रतिनिधित्व करता है। समृद्ध शिक्षित वर्ग के पास सुखवाद की स्थापना करने के लिए सभी प्रकार के ऐश्वर्य-साधन उपलब्ध थे। चूंकि वे सुसंस्कृत थे, अतः वे ग्राम्य और अशिष्ट होने से बचे रहे। किन्तु उनकी संस्कृति 'कैटुलुस' और औविड के समय के रोम के सामाजिक तथा शिक्षित व्यक्तियों की संस्कृति के समान अनैतिक तथा कृत्रिम थी। यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि मणिप्रवालम् परम्परा की सबसे प्राचीन वैशिकातंत्रम् नामक लम्बी कविता नवीं शताब्दी के दामोदर गुप्त की 'कुट्टनी मत' का प्रतिरूप ही है और इस प्रकार उसमें प्रलोभन की सुखद कला का वर्णन मिलता है।

इस काव्य में हम प्रेम की अपेक्षा वासना, आत्मा की अपेक्षा शरीर तथा स्वच्छंद संभोग को प्राथमिकता दिये जाने पर खेद प्रकट कर सकते हैं। इस परम्परा ने काव्य शैली की उत्कृष्ट संरचना तथा अविश्वसनीय स्वर माधुर्य के रूप में परिष्कार किया। इसके माध्यम से कई शैलीगत रूपों का भी विकास हुआ। एक ही छंद में कमनीयता के साथ अंकित किए गए प्रेमिका के छायाचित्र दस से लेकर बीस पद्यों तक की छोटी कविता में घटनात्मक पृष्ठभूमि के पार्श्वचित्र का अंकन, लम्बे पद्यात्मक धर्मपत्र और संगीतात्मक गद्य (चम्पू) जो कि सन्देशात्मक काव्य और यात्रावृत के साथ साथ कालिदास के मेघदूत की तरह का काव्य था। यह ऐंद्रिय आमोदप्रमोद दो शताब्दियों तक चलता रहा और उसके बाद 1500 के आस पास चंद्रोत्सव (चंद्र पर्व) द्वारा अजीर्णता में

इसका अन्त हो गया, जिसमें उन कवियों की पूरी परम्परा पर व्यंग्य किया गया, जिनको गणिकाओं के चारों ओर घूमने और उनके विभिन्न विमोहनों की प्रशस्ति के अतिरिक्त कोई अन्य काम न था।

शास्त्रीय परम्परा

इसी बीच एक अत्यधिक गम्भीर काव्य परम्परा का विकास हो रहा था। द्रविड़ छंदों, जिनका सस्वरपाठ न कर गाया जाता था तथा तमिल-मलयालम मिश्रित छंदों का प्रयोग करते हुए 12 वीं शताब्दी के अन्त अथवा तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में चीरामन (श्रीराम) ने बाल्मिकी रामायण पर आधारित 'रामचरितम्' लिखा। 1350 से 1450 के बीच दो भाईयों और एक भतीजे के प्रतिभाशाली परिवार के निरणम् कवियों ने रामायण, महाभारत, भागवत् तथा गीता का स्वच्छंद तथा संक्षिप्त अनुवाद प्रस्तुत किया। गीता जैसी महान रचना का यह अनुवाद किसी भी अन्य भाषा में किए गए अनुवाद से उत्तम था। 15 वीं शताब्दी में चेरुसेरी ने कृष्णकथा को वर्णित करने के लिए भगवान कृष्ण के बालरूप के वात्सल्य भाव को प्रमुखता देते हुए भागवत का स्वच्छंद अनुकूलन किया। यह अपने आप में दक्षिण भारतीय परम्परा का द्योतक है तथा जिसकी तुलना में उत्तर भारत के सूरदास के काव्य को रखा जा सकता है। रामचरित्र से चेरुसेरी तक की इस काव्य धारा के विकास में काव्यशैली ने, तमिल से सम्बन्ध विच्छेद करते हुए संस्कृत के साथ गहन सम्पर्क स्थापित करते हुए, संस्कृत व्याकरण तथा वाक्य-विन्यास के अन्तर्वेधी आधिपत्य को समाप्त करने का प्रयास करते हुए तथा भाषानुकूल संस्कृत शब्दों से अपने भंडार को सम्पन्न करते हुए, एक नया रूप प्राप्त किया। इस भाषाई स्थिरता को 'एषुत्तच्छन' ने 16 वीं शताब्दी तक बनाए रखा। इसका कारण यह था कि वह रामायण तथा महाभारत के स्वच्छंद अनुवाद के माध्यम से समग्र जनता के लोकाचार के स्थिरीकरण में सफल हुआ। यह अपने आप में एक महान उपलब्धि थी जिसने उसे सम्पूर्ण साहित्यिक परम्परा के लिए वस्तुतः अनुकरणीय बना दिया।

जहाँ निरणम कवियों ने संस्कृत रचनाओं के भण्डार से मलयालम भाषा को भरने का कार्य बड़ी दक्षता से किया था, वहीं एषुत्तच्छन की महानता इस तथ्य में निहित है कि उसने अपनी विश्व-दृष्टि का सम्प्रेषण करने में इस सामग्री का बड़ी सूक्ष्मता से उपयोग किया और उसकी यह विश्व दृष्टि अत्यन्त गहन है। जिस मानव स्थिति का उसे सामना करना पड़ा, वह सही शब्दों में अस्तित्ववादी थी। उसके हृदय में समय की धड़कन के प्रति वेदनामय अनुभूति थी, जो प्रत्येक वस्तु को क्षरण एवं विस्मृति की गोद में सुला देती है। उसने

एक ऐसे मेंढक का चित्रण किया है, जो अपना अगला खाद्य-ग्रास पाने के लिए संघर्ष करता हुआ अजगर के फैले मुँह में शनैः शनैः अग्रसर हो रहा है । जीवन की निरर्थकता तथा उसके प्रयोजन की अनिश्चितता के सम्बन्ध में आधुनिक अस्तित्ववादी साहित्य में इससे अधिक सशक्त बिम्ब चित्र अन्यत्र नहीं मिल सकता । शीघ्र या देर से, यह बढ़ती चली जा रही अनंत पिपासा केवल मृत्यु द्वारा ही बुझ सकेगी । सभी संयोग वियोग के ही उपक्रम हैं। परन्तु एषुत्तच्छन निराशावादी नहीं है । उसका दुखान्त आशावाद यूनानी नाटककारों के दुखान्त आशावाद के समान है । उसका यह विश्वास है कि अस्तित्व के अस्थिर रेत-कणों के बीच भी सत्व को स्थिरता प्रदान की जा सकती है। इस व्यापक क्षरण को रोकने के लिए उसका महान उत्तर है—"अन्तरात्मा के समक्ष आत्म का मुक्त रूप से समर्पण।" और उसने अपनी इस संकल्पना का वर्णन सार्वभौमिक विशाल अन्तर्दृष्टि से किया है—"अहं का त्याग करो, अथवा उसका विस्तार कर सम्पूर्ण संसृति से उसका तादात्म्य करो।"

आगे की तीन शताब्दियों की उपलब्धि बहुत समेकन है । संस्कृत के महाकाव्य,पुराण, आध्यात्मिक और उपदेशात्मक ग्रन्थ मलयालम भाषा में अनूदित हुए तथा इनमें अनेक ग्रन्थों का काव्यानुवाद भी हुआ । शायद इस परम्परा में आलंकारिकता की अपेक्षा गीतात्मकता को तथा विद्वता की अपेक्षा मौलिकता को प्राथमिकता दी । सन् 1902 से लगभग दो दशाब्दियों तक भारवि और माघ के स्थूल और पुरातन अनुकरणों पर महाकाव्यों की रचना करने की पुनः जागरणकारी प्रवृति भी रही है । इस अन्यथा पद्च्युत प्रयास का एक अच्छा परिणाम यह हुआ कि ईसाई कथानकों पर महाकाव्य की रचना की गई तथा इनका उत्कर्ष बढ़ कर परिनिष्ठित गौरव की ऊँचाइयों को छूने लगा ।

कतिपय विरल अवसरों पर पीतल के बने गर्जनकारी बैण्ड-बाजों के बीच शहनाई की मधुर ध्वनि भी सुनी जा सकती थी । सोलहवीं शताब्दी के पूंतानम के ज्ञानप्पाना (दीप्ति गीत) में जीवन और मृत्यु पर किए गए चिंतन में गुंजायमान वैयक्तिक ध्वनि मिलती है, क्योंकि इस सज्जन और दयालु व्यक्ति का चिन्तन उसके चार वर्षीय बच्चे की दुःखदायी मृत्यु से मुखरित हुआ था । लगभग चार शताब्दियों बाद वी०सी० पणिक्कर ने उसी प्रकार के गीति चिन्तन का पुनरुद्धार किया था । 1915 में छब्बीस वर्ष की अल्पायु में तपैदिक बीमारी से उनकी मृत्यु हो गयी, जबकि आधुनिक आन्दोलन का सूर्योदय हुआ था, जिसमें तीन महान कवि; आशान, उल्लूर और वल्लतोल की उपलब्धि का सूत्रपात हुआ ।

आधुनिक काव्य

इनमें से पूर्ववर्ती असन (1873-1924) सम्भवतः हमारी चित्तवृति के सर्वाधिक समीप था। उसकी चित्तवृति का झुकाव सहज रूप में ही निराशावाद की ओर था। उस के ये विचार भारतीय तत्वमीमाँसी विचारधारा की उन परम्पराओं से और दृढ़ हो गए जो संसार को अवास्तविक एवं क्षणभंगुर मानते हैं। लेकिन उसका सारा जीवन ही अपने समुदाय की सेवा में व्यतीत हुआ। ईष्वा जो कि उस समय सामाजिक रूप से शोषित था, उसने इस गुत्थी को सुलझाने का भी प्रयत्न नहीं किया। लेकिन संक्षेप में इसका कारण यही था जिसने कि उसके काव्य में तीव्रता और तनाव उत्पन्न किया। उसका दैनिक जीवन जिस संघर्ष से परिपूर्ण था, उसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता या मताग्रह नहीं था अपितु संसार को उसके यथारूप में ही स्वीकार किया गया था। उसका यह विचार कि जगत और जीवन को मुक्ति नहीं मिलती है, अत्यन्त तर्कपूर्ण और सार गर्भित है। उनके अनुसार जगत एवं जीवन की दशा शोचनीय है लेकिन प्रेम के माध्यम से उनकी पुनः प्राप्ति अथवा रूपान्तरण हो सकता है, इस प्रकार आशान से उस विचारधारा को पुष्ट किया जिसे प्राप्त करने में एल्बर्ट कामू ने उसी तीव्र संघर्ष का सामना किया और अन्त में इसी दार्शनिक निश्चय पर पहुँचा कि अब कुछ भगवान की अनुकम्पा पर ही निर्भर है।

उल्लूर (1977-1949) जिसने कि इस शास्त्रीय परम्परा का अनुगमन किया, काव्यपूर्ण होने की अपेक्षा पांडित्यपूर्ण तथा तीव्रतावादी होने की अपेक्षा स्थूलतावादी अधिक था। लेकिन यह एक सार्वभौमिक प्रेम और उत्तरदायी अनुकरणात्मक क्रिया का सन्देश था जो उसे प्राचीन परम्परा से मिला और जिसका अधिक महत्व के साथ प्रचार किया गया यद्यपि वह पूर्णतया पाण्डित्य-प्रदर्शन से मुक्त नहीं रहा। वल्लतोल (1878-1958) का काव्य सरल और व्यापक रूप से संगीतमय था जिसमें उसकी चित्र-प्रकृति, जो आसानी से उदार मनोवेगों द्वारा उद्वेलित हो जाती थी, दिखाई देती है। चाहे वह राजनैतिक एवं आर्थिक कार्यक्रमों के दूरगामी परिणामों का विश्लेषण न कर सका हो लेकिन वह ऐसे उपायों की तुरन्त मानवीय महत्ता को पूर्ण भावुकता के साथ प्रस्तुत कर सका है। उसने ग्रामोत्थान, जात-पात के विरुद्ध संघर्ष, विदेशी शासन के प्रति विद्रोह आदि राष्ट्रीय आन्दोलन के विविध पक्षों का गान किया है।

जगत से अधिक तीव्र संघर्ष एवं जगत की असंख्य सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक जीवन की उलझी हुई समस्याओं का निर्देशन समकालीन कविता की मुख्य विशेषताएं थीं। इडप्पल्ली (1909-36) तथा चगम्पुषा (1914-48) में सुस्पष्ट योजनाबद्ध लक्ष्यों की कल्पना न कर पाने के कारण, बिना क्रमिक

विकास की तीव्र गीतात्मक संवेदन-शीलता का गीतों और शोक गीतों में लगभग विकृत रूप में प्रयोग हुआ है । राजनैतिक परिवर्तन कुछ समय के लिए उत्तेजना पैदा कर देता है और वह अपने लक्ष्यों को थोपने का प्रयास भी करता है, फलतः निम्नकोटि और गन्दे काव्य के माध्यम से यथार्थ मानवता भ्रष्ट हो जाती है । इसकी प्रतिक्रिया तीव्र होती है और कवि अनुभव करने लगते हैं कि उन्हें राजनैतिक सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा नहीं रखनी चाहिए, अपितु अपनी आत्मा की सत्यता और भावना के क्षेत्र में इसके वास्तविक और गहन उत्तरदायित्व का निर्वाह करना है । नवचेतना मानव की विषमावस्था की पीड़ा से परिचित है । पुरानी गाथाओं में कहा गया था कि भस्मासुर को वरदान मिला हुआ था कि वह जिस वस्तु का स्पर्श कर देगा, वह नष्ट हो जायेगी तथा आदिकाल में समुद्र का मन्थन करके अमृत और विष दोनों की उपलब्धि हुई थी—आज ये गाथाएं नई जटिल परिस्थितियों की आवश्यकतावश नए अर्थों को ग्रहण कर पुनः जीवित हो उठी हैं । साथ ही यह भी अनुभव किया गया है कि आत्म अभिप्रमाणन के लिए फिर से एक कुरुक्षेत्र का युद्ध लड़कर जीतना होगा । इस वृन्दगान के अधिकतर सकारात्मक स्वरों में—उदाहरण के लिए शंकर कुरुप के स्वरों में जीवन के उस संस्कारवादी गुण का गीत गाया गया है, जिसे मनुष्य प्राप्त कर सकता है और जिसके सम्बन्ध में एषुत्तच्छन ने बहुत पहले कहा था कि या तो अपने अहं का त्याग कर दो अथवा इसका इतना विस्तार कर दो कि इसमें सभी व्यक्ति और सारा संसार समा जाए ।

नृत्य-नाटक के रूप

यूरोप के चमत्कारिक नाटकों का जैसा प्रारम्भिक रूप था, कुछ कुछ वैसे ही रूप में प्रारम्भिक समय में धार्मिक नाटक मन्दिरों की चार दीवारियों में अभिनीत किए जाते थे । दुर्गा द्वारा असुर दारुक के वध पर लिखित कविता में अनियन्त्रित प्रवाह है जिसके कारण इसका गान विकसित होकर आदिकालिक नाटक बन गया है ।

बहुत पहले से ही कत्थकलि की असाधारण शक्ति हमारे लिए एक रिक्थ रही है । किन्तु लगभग यह आदिकालिक अपरिपक्व शक्ति एक लम्बे समय तक विकसित होकर ही स्मारकीय शास्त्रीय शैली में परिवर्तन हो सकी है जिसका स्वरूप 17 वीं शताब्दी में स्थिर हुआ ।

यह स्वरूप अनेक परम्पराओं का संश्लिष्ट रूप है । इसके नृत्य-तत्व में मंथर (लास्य क्रम हैं, परन्तु इसका विशेष गुण तीव्र, शक्तिशाली ताण्डव) ताल में निहित है । इसमें हाव-भावों की लगभग पूर्ण भाषा है इसमें शृंगार और

वेशभूषा इस प्रकार की होती है कि चरित्रों में देव प्रकृति के दर्शन हों। मुख-शृंगार मुखौटे के सदृश होता है जिससे भिन्न-भिन्न प्रकार के सकेतों में आलोकित स्पष्टता आ जाती है। यदि वास्तविक मुखौटा लगाया जाता तो मुख पर प्रचुर अभिव्यक्तिपूर्ण-गतिमयता न आ पाती। कत्थकलि में, मुखौटे का प्रभाव मुख को रंग कर उत्पन्न किया जाता है। इससे मुख मानों आतंरिक भावनाओं के लिए मंच बन जाता है जिसके उतार-चढ़ाव द्वारा उनकी अभिव्यक्ति होती है और जिसके परिणामस्वरूप हृदय की उथल-पुथल अथवा शान्ति तत्काल मुख पर प्रकट हो जाती है।

कत्थकलि नृत्य नाट्य यूरोपीय नृत्य-नाट्य से भिन्न है क्योंकि इसकी काव्य कथा यूरोपीय संगीत नाटक से भी अधिक प्रशस्त है। कत्थकलि संगीत रूपक मधुर होने के साथ गेय भी होते हैं। एक नायिका का चित्रण देखिये—"ईश्वर ने जब तुम्हारा सृजन किया तो उसने सौंदर्य का पूरा कोश रिक्त कर दिया। जो कुछ शेष रह गया था, उसे इकट्ठा करके रगड़कर उसने चन्द्रमा बनाया, फिर भी उसके चमकीले मुख पर धब्बे रहे, जो तुम्हारे मुख पर नहीं हैं। तत्पश्चात् उसने झील में अपने हाथों को धोया तथा सौंदर्य के मूलस्रोत में से जो अवशिष्ट भाग जल में मिल गया उससे कमल फूट पड़े।" रावण को देवी रम्भा की झलक मिलती है। गीत में इसका वर्णन इस प्रकार है—"जैसे नीले रंग की कालिन्दी के झिलमिलाते जल में से नदी के पाट में स्वर्णिम पंखुड़ी दिखाई पड़ती हैं, वैसे ही उसके नीले फड़फड़ाते वस्त्रों में से उसके स्वर्णिम रूप का सौंदर्य आभा प्रदान कर रहा है।" यह नीलाम्बरी राग है—अनवरत मधुरता का राग जो ऐन्द्रिक दिवास्वप्न जागृत करता है।

जहाँ एक ओर पूर्व नाट्य धार्मिक संस्कारों से बाद में प्रचलित कत्थकलि को गम्भीर स्वर-सामंजस्य की प्राप्ति हुई वहीं दूसरी ओर लोकप्रिय मनोरंजन के अन्य साधनों की स्वच्छन्द टिप्पणी व स्थूल विदूषकता से भी इसी प्रकार के महत्वपूर्ण परिणाम निकले। चकयार नाम से प्रसिद्ध कथावाचकों ने पौराणिक कथाओं को दोहराया तथा उन का उपदेशात्मक प्रयोजन अदृश्य रूप से हास्य में खो गया, जिसके द्वारा उन श्रोताओं के दोषों पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करने की पर्याप्त छूट रहती थी, जो उस समय समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते थे। अठारहवीं शताब्दी में, कंचन नम्बियार ने इस परम्परा में से एक नए रूप 'तुल्लल' का सृजन किया। यहाँ कथावाचक ने कत्थकलि के वस्त्र तथा साज-सज्जा को ग्रहण किया। इसमें अपने द्वारा वर्णनीय पौराणिक कथा का गान व अभिनय दोनों ही किया जाता था, परन्तु स्थानीय आख्यायिकाओं और चरित्रों को केरल के प्रादेशिक और उसके सामाजिक स्वरूपों में ढालने में पूर्ण स्वच्छन्दता बरती गई। नम्बियार रेबिलियास की भाँति हास्य-

किन्तु अधिक स्थायी मूल्यों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप एकतावादी नाटकों का अभ्युदय हुआ। इनमें से अनेक नाटकों में उद्देश्य की महानता होते हुए भी नाटकीय गुणों का अभाव था। पिछले कुछ वर्षों में लगभग एक दर्जन ऐसे नाटक लिखे गए हैं जो एकता के आदर्श के साथ साथ नाटकीय प्रभाव से भी युक्त हैं और जिनमें परिवार, धार्मिक सम्प्रदायों और आर्थिक वर्गों एवं राष्ट्रों के बीच सम्बन्धों को सुव्यवस्थित करने की भूमिका की ओर संकेत किया गया है।

गद्य

दैनिक जीवन में सम्प्रेषण के मुख्य साधन गद्य के विकास में उस प्रकार कविता के विकास के चरण नहीं थे, जिस प्रकार कृत्रिम भाषा मिश्रणों को कुछ समय तक बनाए रखा गया था। जनता जनार्दन के लिए पौराणिक कथाओं के पाठ में (पाठक्रम) कथावाचक संस्कृत शब्दों का उदारतापूर्वक प्रयोग करते रहे। किन्तु इसे भाषा मिश्रण नहीं कहा जा सकता क्योंकि आदत्त शब्दों को मलयालम व्याकरण तथा वाक्यविन्यास द्वारा आत्मसात किया जाता था। गणित, खगोलशास्त्र, वास्तुकला, आयुर्विज्ञान, तर्कशास्त्र, संगीत तथा नाट्यशास्त्र, जैसे विविध विषयों के प्रबन्धों ने गद्य को विशुद्ध और स्पष्ट रूप प्रदान किया। जब ऐतिहासिक संकट ने उत्तेजित भावनाओं की शक्ति को माध्यम का रूप प्रदान किया, तब उसने सम्प्रेषण से प्रेरणा का स्थान ले लिया।

1808 की कुन्दरा घोषणा, जिसके स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रारम्भिक शहीद वेलु तम्पिका जिन्होंने लोगों को अपमानजनक विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह के लिए उकसाया था केवल ऐतिहासिक प्रलेख मात्र न हो कर उत्कृष्ट गद्य का नमूना भी है। ईसाई धर्म के प्रचार आन्दोलन का धार्मिक पुस्तकों के सरल तथा प्रभावी गद्य में अनुवाद तथा अन्य सहायक सामग्री की रचना के द्वारा एक क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त हुआ। त्रावनकोर की पाठ्यपुस्तक समिति के सुनियोजित प्रयत्नों ने, जिसमें उसके कई शासकों ने सक्रिय भाग लिया और समाचार पत्रों के उदय ने 19 वीं शती के उत्तरार्ध में गद्य के विकास को त्वरित गति प्रदान की।

उपन्यास

उपन्यास, जो कि सृजनात्मक गद्य का एक महत्वपूर्ण वर्ग है, का आरम्भ 18वीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ था। प्रथम उपन्यास (1887) एक कल्पना प्रधान प्रेमाख्यान था, जब कि दूसरी ओर दूसरे उपन्यास में सामाजिक यथार्थ का उत्कृष्ट चित्र प्रस्तुत किया गया था। यद्यपि अगले तीन दशकों में ऐतिहासिक उपन्यासों का रूप पर्याप्त रूप से स्थूल और विस्तृत था तथापि

पूर्ण तथा व्यंग्य काव्य में ड्राइडन से भी कहीं अधिक दक्ष है तथा उसने पचास से भी अधिक तुल्लल नाटकों की रचना की है। वह विश्व के सर्वश्रेष्ठ हास्य-लेखकों में से एक है। उसके व्यंग्य बड़े तीव्र होते हैं, परन्तु उसका हास्य आघात पहुँचाए बिना आनन्द प्रदान करता है। सामाजिक धर्मतंत्र के अन्तर्गत आने वाले उस पुरोहित वर्ग पर, जिसे वेदों के सर्वश्रेष्ठ साहित्य का जन्माधिकार मिला हुआ था और जिसने इस एकाधिकार पर काला-बाजारी आरम्भ कर दी थी, ह्रासोमुख कुलीन तंत्र पर जिसने ऐसे केश सजाने वाले और स्वँण छैलों को जन्म दिया, जिन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र का उपयोग करना भूल कर उन्हें गिरवी रख दिया था और प्रायः मदिरालयों में जाते और लड़कियों पर कटाक्ष करते रहते थे, उस व्यापारी वर्ग पर जो आठ पैसे के अठारह पैसे लेते थे, उन कर्मचारियों पर जो अधिकारियों और जनता दोनों का उल्लू बनाते थे—उन्होंने करारे व्यंग्य किए।

आधुनिक नाटक—

काव्यात्मक तथा संगीतात्मक नाटकों के संक्रांतिकाल के बाद, इस शताब्दी के प्रथम दो दशकों में प्रहसन के विकास के माध्यम से आधुनिक रंगमंच का उद्भव हुआ। इसका हल्का फुल्का हास्य गोल्डस्मिथ तथा शेरिडन से प्रभावित है, परन्तु यह सामाजिक आलोचना से भी सम्बन्धित है। इसकी प्रेरणा तो यही रही किन्तु उसके रूप में अवश्य परिवर्तन हुआ। तीसरे दशक से नम्पूतिरि, नायर, ईसाई, मुसलमान—प्रत्येक सम्प्रदाय का सामूहिक चिन्तन अन्तर्मुखी हो गया और वे उन प्राचीन सामाजिक रुढ़ियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने लगे जो परिवर्तनशील समय के साथ समायोजन स्थापित करने में कठिनाइयाँ प्रस्तुत करती हैं और इस प्रकार मानवीय पीड़ाओं को जन्म देती है।

चौथे दशक के अन्त में इब्सन का प्रभाव सर्वाधिक हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप अस्वस्थ् परम्पराओं से घिरे पुरुषों एवं स्त्रियों के भाग्य का चित्रण मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अधिक भेदक तथा नाटककला की दृष्टि से अधिक प्रभावी बन पड़ा है। इस काल में नाटक का क्षेत्र पारिवारिक दुखान्त नाटकों से हटकर आर्थिक व राजनैतिक दोनों प्रकार की व्यापक सामाजिक बुराइयों के चित्रण तक विस्तृत हो गया। चूंकि इसी समय अतिवादी राजनैतिक विचारों और आन्दोलनों का जन्म हो रहा था अतः इस युग के बहुत से नाटक युद्धप्रिय देशभक्ति से ओत-प्रोत हैं। कुछ समय के बाद इस अतिवाद ने तीव्र प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया। व्यंग्यकारों ने हास्य से ओत-प्रोत प्रहसनों द्वारा दक्षिणपंथियों के आत्मदंभ तथा वामपंथियों के जेहादी उत्साह की पोल खोली।

उनमें निहित सामाजिक यथार्थ की परम्परा ने ही विकास को मुख्य दिशा दी ।

नाटकों के समान ही प्रत्येक समुदाय की मनोवृत्ति अन्तर्दर्शन की ओर थी । चित्त प्रवृति के अनुसार ही भावदशा भी भिन्न-भिन्न होती है । एम० टी० वासुदेवन नायर की संयुक्त परिवार प्रणाली के पतन का चित्र प्रस्तुत करने वाली कृतियों में गम्भीर निराशा प्रतिबिंबित होती है । रेफी ने कैथोलिक सामाजिक जीवन के कुछ पक्षों पर तीव्र प्रहार किया है, लेकिन मुंडेश्वरी ने यद्यपि ये ही बुराइयाँ देखीं तथापि उनसे संघर्ष के माध्यम से पुनरुत्थान के मार्ग का वर्णन किया । बशीर ने रुढ़िवादी और प्रगतिशील मुस्लिम परिवारों के सम्मिलन द्वारा हास्य विशेष के साथ सामाजिक आलोचना की, जिसमें प्रगतिशील विचारों ने रूढ़िवादियों को सड़े गले पुरातन पंथी विचारों से मुक्ति दिलाई ।

केरल ने अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा संभवतः सर्वप्रथम यह अनुभव किया कि स्वतंत्रता मिल जाने मात्र से ही रामराज्य नहीं स्थापित हो जाएगा, उसके आने से होगा यही कि विदेशियों से झगड़े के स्थान पर भाइयों में परस्पर झगड़े प्रारम्भ हो जायेंगे । थाका जी के लैंडरस्टेप्स (1963) में वास्तविक राजनीति का सच्चा चित्र प्रस्तुत है । उसमें स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का राजनैतिक चित्र सही रूप में आया है , जिसमें सत्ता प्राप्ति के लिए तीव्र संघर्ष होता है और जनकल्याण की भावना महत्वहीन हो कर रह जाती है, लेकिन यह मत भी अन्तिम नहीं है । के० सुन्दरम् की फ्लेम (1965) भी इसी प्रकार सभी पुरानी भ्रांतियों को दूर करती है, परन्तु इसमें अन्तःकरण के मूल्यों की पुर्नस्थापना हुई है ।

यही विरोधाभास विपरीत विचारधाराओं का निर्दर्शन करने वाली कृतियों के बीच भी देखा जा सकता है । अनेक रचनाओं में रचनात्मक प्रतिभा का उपयोग मानव जीवन की गहराई के अध्ययन के साथ-साथ सतही ढंग से फ़तवे देने में किया गया है, लेकिन उत्कृष्ट कृतियों में चित्रित संघर्ष वर्गों एवं संप्रदायों के बीच स्पर्धा एवं पक्षपात पूर्ण विरोधों का संघर्ष न होकर मानव की वास्तविक महत्ता की स्थापना का संघर्ष है । यह वह नई अन्तर्दृष्टि है जो कि निम्न श्रेणी जैसे--किसान, मज़दूर, रिक्शाचालक और जमादारों को शान्तिपूर्ण वीरता के लिए प्रेरित करती है, जिनको थाकाजी तथा केशव देव जैसे उपन्यासकारों ने अपनी महत्वपूर्ण क़ृतियों की कथावस्तु के लिए चुना है ।

केरल में भारत के सब राज्यों की तुलना में साक्षरता की सबसे अधिक प्रतिशतता है । समाचार पत्र, पाक्षिक पत्र, भौगोलिक तथ्य अधिक संख्या में

हैं तथा सारे विश्व में आजीविका के रूप में साहित्य को अपनाने में इसका अपना एक विशेष स्थान एवं परम्परा है।

(मलयालम में लेखकों का सहकारी संघ मलयालम की सबसे बड़ी प्रकाशन संस्था है जो 30 प्रतिशत तक रायल्टी देता है)। इस प्रकार केरल में साहित्यिक गतिविधियाँ विविध और बहुल हैं। यहाँ भी जनसंख्या को देखते हुए यहाँ रचा जाने वाला साहित्य अत्यधिक है जिसका अधिकांश अल्पकालिक होने से नहीं बचा है, लेकिन केरल का उत्कृष्टतम साहित्य देश की किसी भी भाषा के उत्कृष्टतम साहित्य के समकक्ष रखा जा सकता है।

रामचरितम्

चीरामन्

[कुछ विद्वानों के मतानुसार कवि चीरामन् का "रामचरितम्" मलयालम भाषा की प्राचीनतम उपलब्ध कृति है। इसका प्रणयन-काल ईसा की तेरहवीं शताब्दी स्थिर किया गया है। यह वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड के आधार पर रचा गया है। इसमें शुद्ध द्रविड़ वर्णों का उपयोग हुआ है, जो प्राचीन मलयालम भाषा के रूप का परिचय देता है। इसमें कुल मिलाकर 164 परिच्छेद और 1814 पद्य हैं। परिच्छेद 104 का अनुवाद यहां दिया जाता है—सम्पादक]

मन्दोदरी-विलाप

मेरे स्वामी! देवों के शत्रु! तुम अपना मोहन रूप, अनन्त सम्पत्ति वैभवमय नगर और जिसका बखान मैंने नहीं किया वह बहुत-कुछ छोड़कर, युद्ध का उत्सव मनाते हुए, मुझे अपार दुःख में डुबा कर कहां चले गये?

शत्रुओं को क्षणभर भी शान्ति न देने वाले घनघोर संग्राम के बीच, इस प्रकार सो जाना तुम्हें शोभा नहीं देता। उठाओ इस श्रीमुख को और रूठना छोड़कर देखो मेरी ओर एक बार प्यार के साथ जिससे मेरे हृदय का भार हल्का हो जाये। आज तक कोई भी तुम्हें मारने में सफल नहीं हुआ था। न ही इतनी सरलता से कभी तुम अपकीर्ति के भाजन बने थे।

तमिस्रा के समान निबिड़ काले बालोंवाली दीन-हीन नारियों से यदि कोई अपराध हो जाये तो उनके प्रति इस प्रकार का व्यवहार करना उचित नहीं है। हे वीर! तुम्हारी वह प्रेम-धारा मुझ पर फिर से कब बहेगी, प्रभो! तुम्हारे कान्तिमान पाद-युगल में प्रणामांजली अर्पित करनेवाली मुझसे क्या तुम एक शब्द भी नहीं बोलोगे? यह बर्ताव तुम्हारे नहीं, हीन लोगों के योग्य है। इस निद्रा को त्यागो और उठो, मेरे राजन!

महाराज! शक्तिशाली सम्राट! तुम्हारे शरीर को नष्ट करने के लिए तुम्हारे शत्रुजन एक नहीं, बड़े कौशल से सचमुच सहस्रों उपाय करके हार गये।

परन्तु जिस दिन मेघ-गर्जन को भी अपने रव से विदारित करनेवाली ताड़का ने मृत्यु-मुख में प्रवेश किया, उसी दिन मैंने इस भवितव्य को ताड़ लिया था और आपको सचेत भी किया था।

ताड़का की मृत्यु के कारण उसके एक पुत्र ने जाकर युद्ध किया और वह मारा गया। मूर्ख मारीच ने भी छल करने का प्रयत्न किया और उसे भी मौत के घाट उतरना पड़ा। यह सब देख कर भी उस दिन से तुमने अनेक-अनेक गलतियां कीं। परन्तु, हे निशाचरों के सम्राट ! विधि के सुयोजित विधान में कभी कोई गलती नहीं होती !

हल्के से एक बाण से वह कपिवर—बाली—स्वर्ग चला गया और जो दूसरा कपि-श्रेष्ठ अपने-आप लंका में चला आया था उसके ढाये हुए कहर को कोई भूला है ? समय-समय पर मैं विनती करती रही, परन्तु तुम्हारी अभिमानाग्नि दिन पर दिन तेजी से बढ़ती गई और अन्त में प्रज्ज्वलित हो उठी।

संसार में मेरे सामने खड़ा होने वाला कोई है ही नहीं—यह मानकर तुम अपनी बहन शूर्पणखा के कहने से उस मधुरवाणी देवी सीता के हरण के लिए निकल पड़े। नानाविध गुणोंवाली रमणियाँ जो यहाँ हैं, उनसे अधिक न जाने उस नारी में क्या है, जिसके लिए सम्पूर्ण वंश का ही नाश तुमने आमन्त्रित कर लिया !

ज्ञान, सौन्दर्य, सम्पूर्ण विश्व को विमुग्ध करनेवाली रूप-भंगिमा, कुलीनता, विलासिता, तुम्हारे प्रति अनन्य भक्ति आदि सभी गुणों से सम्पन्न इस नगर की वनिताओं से बढ़कर उस नारी में ऐसी परिपूर्णता तुमने क्या देखी, मेरे स्वामी ! जिससे तुम्हारा हृदय-संतुलन ही खो गया ?

हे आश्रितों के कल्पद्रुम ! क्यों तुम्हारा हृदय इस प्रकार उस स्त्री में लीन हो गया ? क्या मैं जितना जानती हूँ उससे अधिक सौन्दर्य, कुलीनता या ज्ञान उसमें है ? मूढ़ होकर, विवेक छोड़कर उसमें अपने हृदय को लगा देना अनौचित्य की पराकाष्ठा थी। इससे मेरे प्रभो ! बरसात के कुकुरमुत्तों की भाँति सारे के सारे प्रजाजन नष्ट हो गये।

उस समय, जब देवराज के कुलिश ने तुम्हारी देह को चीर दिया था, तब भी तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँची थी। अब क्या इस युद्ध में बाणों से विद्ध होकर तुम्हारा शरीर इतना जीर्ण हो गया कि तुम्हारा मुँह भी रक्त से भर गया और तुम्हारी इस सहधर्मिणी के लिए तुमसे विलग होकर विरह-ज्वाला में जलते रहने का अवसर आ गया ?

राजसी ठाठबाट के साथ इस रणभूमि में शयन करनेवाले स्वामिन् ! तुम्हारे श्रीमुख से अमृतवाणी निकलवाने वाली यह दासी इन अबलाजनों के साथ अपने नयन-कमलों से रक्ताश्रु बहा रही है । इस समय, जब हम रुंधे हुए कंठ से परस्पर धीरज बंधाने की बातें कर रही हैं । महाराज ! उठो और हमें आश्वासन देने की कृपा करो ।

भाषा-कौटलीयम्

•

गणपति शास्त्री

["भाषा-कौटलीयम्" कौटिल्य के "अर्थशास्त्र" पर भारतीय भाषाओं में सर्वप्रथम व्याख्या है। किसी अज्ञातनामा लेखक द्वारा विरचित यह व्याख्या प्राचीन मलयालम-भाषा में है। कुछ विद्वानों ने इसका रचना-काल बारहवीं शताब्दी निर्धारित किया है। उपलब्ध मलयालम ग्रंथों में यह प्राचीनतम है। मूल ग्रंथ के तीन-चौथाई अंश की व्याख्या इसमें मिलती है। स्वर्गीय गणपति शास्त्री ने इसी के आधार पर "अर्थशास्त्र" की संस्कृत टीका लिखी है। इसके दूसरे अधिकरण के चौबीसवें अध्याय के इकतालीसवें प्रकरण का अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है। यह प्रकरण कृषि के सम्बन्ध में है—सम्पादक।]

कृषि

"सिताध्यक्षः"—यह है सूत्र! "सिता" अर्थात् कृषि! उसकी देखरेख करनेवाला होता है "सिताध्यक्ष"! यही सूत्र का अर्थ है।

सिताध्यक्ष को कृषि-तन्त्र, शुल्बशास्त्र, वृक्षायुर्वेद आदि का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। वृद्धपराशर आदि ने कहा है कि "कृषिशास्त्र" ही "कृषि-तन्त्र" है। भूमिसिरा-ज्ञान ही शुल्बशास्त्र है। पानी जहाँ सुलभ है—ऐसी भूमि को पहचान सकना भूमिसिरा-ज्ञान कहलाता है। वृक्षायुर्वेद तो प्रसिद्ध ही है।

भूमि को कई बार हल से जोतना आवश्यक है। "स्वभूमौ"—इसका अर्थ है जो-जो बीज हो, उसके-उसके योग्य भूमि। इस प्रकार की भूमि में दासों, कर्मकरों और दण्डप्रतिकर्ताओं से हल चलाने और बीज बोने का काम लेना चाहिए। दास कहते हैं गुलाम को। कर्मकर है मजदूर। सजा के बदले काम करनेवाला अर्थात् कैदी दण्डप्रतिकर्ता कहलाता है।

आगे कृषि के लिए उत्तम संवत्सरों के विषय में बताते हैं। कौन-सा समय कृषि के लिए अच्छा है? "वर्षत्रिभागं पूर्वपश्चिमयोः"। श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक—ये चार मास वर्षाॠतु के हैं। इन चार मासों में बरसनेवाले पानी के तीन भाग किये जायें और उसके एक भाग का आधा

श्रावणमास में, दूसरा आधा कार्तिक में और शेष दो भाग बीच के दो महीनों में बरसे तो उस वर्ष को "सुषम" कहा जाता है। यही कृषि के लिए सर्वोत्तम वर्ष होता है।

इस वर्ष के आगमन का अनुमान कैसे हो ? कहते हैं कि बृहस्पति की स्थिति से, उसके अन्य राशियों में होने वाले संक्रमणों से और गर्भाधान से अनुमान किया जा सकता है। मार्गशीर्ष से लेकर छः महीनों में पड़नेवाले कुहरे, तूफान तथा बादलों के गर्जन आदि को "गर्भाधान" संज्ञा दी गई है। इसके अतिरिक्त, शुक्र के उदयास्त से अर्थात् उदय-काल की स्थिति और अस्त होने के समय की स्थिति से भी अच्छे वर्ष की सूचना मिल सकती है। इसी प्रकार, नव राशियों में शुक्र की गति से और सूर्य की प्रकृति-विकृति से भी वह जाना जा सकता है। प्रकृति है सूर्य की स्वाभाविक अवस्था, विकृति है परिवेष आदि विशेष अवस्था। इस प्रकार अच्छी वर्षा का अनुमान करने के ये तीन चिह्न हुए।

अब अच्छे वर्ष में बरसनेवाले मेघों के विषय में बताते हैं। "त्रयस्साप्ताहिकाः मेघाः"। सात दिनों तक लगातार बरसनेवाले मेघ तीन प्रकार के होते हैं। "अशीतिः क (राः)—अशीकराः"। अस्सी प्रकार के मेघ छोटी-छोटी बूंदों में बरसते हैं। "षष्टि-रातपमेघानाम्"। साठ प्रकार के मेघ ऐसे हैं, जो छाये तो रहते हैं परन्तु बरसते नहीं। इन सब प्रकारों की वर्षा सभी बीजों और सस्यों के लिए उत्तम तथा हितकारी है।

यदि चार महीनों में तीन बार ऐसी वर्षा हो जिसके बीच में गोबर सूख जाने का समय निकल आये, तो उस वर्ष की फसल निश्चिय ही बहुत अच्छी होगी।

कृषि-व्यवस्थापक को चाहिए कि यह सब जानकारी प्राप्त करके, मौसम के अनुसार, अधिक जल चाहनेवाले बीज उनके योग्य स्थान पर और कम जल से पनपनेवाले बीज उनके योग्य स्थान पर डलवाये।

अनाज के बीज को सात रात ओस में और सात दिन धूप में डाल रखे। गरमी से पकनेवाले अनाज के बीज को उसी प्रकार तीन या पाँच रात-दिन ओस तथा धूप में सुखाना चाहिए। काटकर लगानेवाले पौधों की कलमों को घी, शहद, सुअर की चर्बी और गोबर मिला कर और कटे हुए सिरे पर पोत कर भूमि में गाड़ना चाहिए। जिमीकन्द जैसे कन्दमूल को घी और शहद के मिश्रण का लेप करके बोना चाहिए। बिनौला आदि अस्थिबीजों को गोबर में लपेट क़र बोना चाहिए। आम, कटहल आदि के बीज बोने के पहले उनके

लिए खोदे हुए गढ़्हों में गाय की हड्डी और गोबर के उपले डाल कर जलाना चाहिए। जब पेड़ बढ़ कर फूलने-फलने लगे तब वृक्षायुर्वेद शास्त्र में वर्णित दोहद करना चाहिए।

बीज में अंकुर फूटने के बाद जब दो या तीन कोंपलें निकलें तब उन्हें कृमि-कीट आदि के आक्रमण से बचाने के लिए सूखी हुई छोटी मछलियों का चूर्ण नागफनी के रस में मिलाकर उन पर छिड़कना चाहिए।

बिनौले और साँप की केंचुली जलाकार धुआं करने से साँप आदि जन्तु पास नहीं फटकेंगे।

शिवरात्रिमाहात्म्यम्

राम पणिक्कर

[ईसा की चौदहवीं शताब्दी में निरणम् नामक स्थान के कवियों ने मलयालम-साहित्य की बहुत श्रीवृद्धि की। उन कवियों में राम पणिक्कर का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। उनका रामायण बहुत प्रसिद्ध है। कदाचित् मलयालमभाषा में सम्पूर्ण रामायण की रचना सर्वप्रथम उन्होंने ही की है। उनकी एक कृति "शिवरात्रि माहात्म्यम्" है। उसमें 150 पद्य हैं और सुकुमार नाम के एक बहुत बड़े पापी की कथा द्वारा शिवरात्रिव्रत का महत्व बताया गया है। उसी के एक अंश का अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है—सम्पादक।]

एक पापी की गणनायकत्व प्राप्ति

यह सुन कर नन्दीश्वर शीघ्रता से गये और उन्होंने भगवान शंकर के चरण-कमलों में प्रणाम करके निवेदन किया : "अखिलेश्वर ! यमराज अपने समस्त परिजनों के साथ आपके दर्शनों के लिए आये हैं। आज्ञा कीजिये मुझ दास को, उनसे क्या कहूँ—आइये या जाइये।"

चारों वेदों के मूल महादेव ने अपनी नेत्र-संज्ञा द्वारा उससे कहा : "जो दर्शन करने आया है उसे अविलम्ब अन्दर ले आओ।" यह आज्ञा पाकर नन्दी प्रसन्नता से वापस गया और कृतान्त से बोला : "अन्दर आइये और परम कारुणिक परमेश्वर गिरिसुता-वल्लभ के दर्शन कीजिये।"

यह सुन कर कृतान्त ने अन्दर प्रवेश किया। वहाँ, भगवान शंकर के सामने देखा कि असंख्य गण-नायक सुखपूर्वक विराजमान हैं। आनन्द के साथ, शुद्ध स्फटिक के समान धवल, दिव्य, सुन्दर शरीरवाले, कोमल, शीतल, निशाकर-कला से अलंकृत, सुन्दर जटाएं धारण किये—

विशाल चार-चार भुजाओं से शोभित, अति निर्मल भस्म का आलेपन किये, चर्माम्बर पहने, कामान्तक के समान विक्रमवाले, माया से परे, ब्रह्मान्डों

की मालाएं धारण किये, हृष्टपुष्ट काया वाले उन महान गणेश्वरों को देख कर वैवस्वत ग्रानन्दित हुए।

फिर उन्होंने महेश्वर के दक्षिण की ग्रोर देखा—समस्त भूमण्डल ग्रौर सब वेदों की सृष्टि जिन्होंने की है वे विधाता ग्रौर ग्रपने ग्रष्टादश सुमंगल रूपों से सारे जगत को शोभायमान करनेवाली, कुवलय-लोल-विलोचना, पिकवाणी देवी भारती वहाँ विराजमान थीं।

निकट ही सनक-सनन्दन ग्रादि देवर्षियों के साथ वशिष्ठ ग्रादि ग्रनेक महान् ब्रह्मर्षियों ग्रौर मुनिश्रेष्ठों को भी कृतान्त ने देखा। ईश्वर के पश्चिम में बड़े-बड़े भैरवगण, मातृजन, काली निशीथिनी ग्रौर उज्ज्वल पाशुपतास्त्र भी शोभायमान थे।

उत्तर की ग्रोर कृन्तक ने महाविष्णु को देखा, जो ग्रपने कालाम्बुद-श्यामल, कोमल तनु में मणि-भूषण-राशि धारण किये हुए थे, जिनके कौस्तुभमणि से जाज्वल्यमान वक्ष-स्थल पर ग्रनेक मुक्ता-मालाएं विलसित थीं ग्रौर जिनका श्रीमुख कानों में दोलायमान रत्नकुण्डलों की किरणें पड़ने से ग्रौर भी मनोहर बन गया था।

चरण-कमलों में दण्डवत-प्रणाम करके धर्मराज ने ग्रपनी दण्डमहामुद्रा सर्वेश्वर के पदतलों में समर्पित कर दी। फिर झटपट उठकर उन्होंने हाथ जोड़े। उनकी जड़ता दूर हो गई ग्रौर वे निर्मल हृदय से जगदीश्वर की स्तुति करने लगे : "हे परमेश्वर ! ग्रापके ग्रलावा कौन है, जो किसी की भी रक्षा कर सके ? ग्रापकी जय हो ! जय हो !

"ज़िस प्रकार जलधि की सब लहरें जल का ही रूप होती हैं, उसी प्रकार, हे परमेश्वर ! यह जो सारा विश्व दिखलाई पड़ता है वह ग्रापका ही स्वरूप है। ग्रापकी जय हो ! इन्द्रादि हम सब देवों ने ग्रापकी यथाविधि पूजा द्वारा ही ग्रपना-ग्रपना पद प्राप्त किया है ग्रौर उसी के बल पर हम निर्भय होकर रहते भी हैं। हे गिरिराज-सुता-प्रिय ! ग्रापकी जय हो !

"भक्तों का प्रिय करने वाले भगवन ! महादेव ! ग्रापकी जय हो ! भीषण भोगिविभूषण ! ग्रापकी जय हो ! ग्रज्ञान के कारण दिन-प्रति दिन ग्रनेक-ग्रनेक पाप करते हुए भी जो, ग्रपने दुःख मिटाने के लिए, एक बार भी ग्रापका नाम ले लेता है उसे, हे परमशिव ! ग्रानन्दकन्द ! ग्राप ग्रपने लोक में स्थान दे देते हैं, जहाँ कोई भय नहीं होता। ग्रापकी जय हो !

"ग्रब ग्रपना प्रयोजन निवेदन करता हूँ। सुनने की कृपा कीजिये। ग्रापकी ग्राज्ञा से सद्भाव ग्रौर निष्ठा के साथ मैं ग्रपने दूतों को भेज कर सभी प्राणियों

के जीव को अपने पास बुला लिया करता था। जो अधिक पुण्य करने वाले होते उन्हें मैं प्रयत्नपूर्वक सुखी करता था। जो निरन्तर पाप करते रहते उन्हें यथोचित दण्ड भी देता था।

"अब तक मैं यह सब दण्डधर के रूप में करता रहा। अब आपके विशिष्ठ दूतों ने मुझे खण्डित-शासक बना दिया है। आठों दिशाओं में सबसे बड़े पापी सुकुमार को मेरे किंकर ले जा रहे थे। उन्हें मार कर आपके गण उसे यहाँ ले आये हैं उसने अनेक गौओं और ब्राह्मणों को, घोर पीड़ा पहुँचा कर, वध किया है। चाँडाली के संग स्वाद ले-लेकर, मांस को सालन बना कर मदिरा-पान किया है। बार-बार स्वर्ण आदि का अपहरण किया है। चांडाली से मूर्तिमान महापातक जैसे पुत्रों को जन्म दिया हैं।

"उस चांडाली की मृत्यु हो जाने पर यह उसकी पुत्री, अपनी आत्मजा चांडाली के साथ बहुत दिनों तक सुख-भोग करता रहा। उससे भी इसने पुत्रों को जन्म दिया। सुकुमार के पापों की गिनती करना आकाश से भूमि पर गिरनेवाली वर्षा की बूंदें और धरा के धूलि-कण गिनने से भी दुष्कर है।

"अखिलेश्वर ! यदि यह विप्राधम सुकुमार, जिसने इतने दुष्कर्म किये हैं, अन्त में आपके लोक में आकर सुख से रहेगा तो आगे चल कर यह निश्चय करना कठिन हो जायेगा कि कौन सुकृत करनेवाला है, कौन पापकर्म करनेवाला।

"परमेश्वर ! आपकी नियोग-विधियों का पालन करने के लिए ब्रह्मा से लेकर सभी प्राणी नित्य-निरन्तर अथक प्रयत्न करते रहते हैं। परन्तु यह एक ऐसा जीव है जो किसी का भी अनुशासन नहीं मानता। खेद की बात यह है कि आपने इस सुकुमार को, जो सदा दुष्कर्म ही दुष्कर्म करता आया है, अपने लोक में स्थान दे दिया है और, इस कारण, आपकी जो महिमा गाई गई है उसे लोग विपरीत मानने लगे हैं।

"अस्तु ! यही सब बातें आपके सम्मुख निवेदन करने के लिए यह दास सन्निधि में उपस्थित हुआ है। अब आज्ञा दीजिये, मुझे क्या करना चाहिए। आपकी सन्निधि में सब बातें रख सका, मेरे लिए तो यही पर्याप्त है। मैं आपके चरणों में विनत हूँ।" यह कहते हुए अन्तक ने नमस्कार किया।

अखिलेश्वर भगवान ने संतुष्ट होकर यमराज को उठा लिया और उन्हें अपने निकट लेकर हँसते हुए मधुमय वाणी में कहा : "आदरास्पद ! सुनो। तुम्हारी आज्ञाओं को उल्लंघन दूसरा कोई भी नहीं करेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु सुकुमार के विषय में यह जो-कुछ हुआ है उसका एक कारण है। मैं तुमको बताता हूँ।

"यह सुकुमार जी-भर कर पाप करनेवाला है। फिर भी एक दिन जब उस दुष्टा चांडाली के प्रति कामासक्त होकर उसके लिए पुष्पों की खोज कर रहा था इसने मुझे देख लिया था, और फिर, उन लोगों के साथ, जो मेरे सेवक बन कर रहते हैं, मेरे सामने बैठकर, इसने बिना किसी त्रुटि के शिवरात्रि का व्रत रखा था।

"वह व्रत यह जानता नहीं था। फिर भी उस अनुष्ठान से इसके कोटि-कोटि पाप नष्ट हो गये। अग्नि जलानेवाली है—यह न जानते हुए भी यदि उसका स्पर्श किया जाये तो क्या वह जलाती नहीं? उसी प्रकार, यह मंगलकारी व्रत भी सब पापों को नष्ट करनेवाला है। इसीलिए मैंने प्रसन्न होकर इसे गण-नायक का पद प्रदान किया है।"

कृष्णगाथा

चेरुश्शेरी

[जिस युग में मलयालम कविता एक ओर संस्कृत से और दूसरी ओर तमिल से प्रभावित हो रही थी, उसी युग में चेरुश्शेरी ने इस महाकाव्य की रचना की। इसकी शैली मलयालम भाषा की स्वाभाविक क्षमता के अनुरूप है। पन्द्रहवीं शताब्दी में रचित यह महाकाव्य श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध पर आधारित है और इससे कवि की मौलिकता का अच्छा परिचय मिलता है। इसमें कम से कम 16,000 पंक्तियाँ हैं। उन्हें अनेक खण्डों में विभाजित कर दिया गया है। प्रस्तुत अनुवाद "गोपिका-दुःखम्" के एक अंश का है, जिसमें कृष्ण-विरह में डूबी हुई गोपियों के दुःख का चित्रण किया गया है—सम्पादक।]

गोपिका-विरह

हे भ्रमर-वृंद ! तुमने हमारे मंगलमूर्ति प्रियतम को कहीं देखा है, जो सदा हमारे साथ रहा करता था ? मनहरण वेणु-गान करता कहीं आया तो नहीं यहाँ ? बोलो, देखा है तुमने ?

हे मन्दार ! तुमने देखा है उसे कहीं जाते हुए, जिसके नयन लाल कमल के समान हैं ? पांच-छः घड़ियां बीत गईं, हमें धोखा देकर कहीं चला गया वह !

कदम्ब तुम ही बोलो सच-सच—तुमने हमारे कान्त को देखा है ? तुम्हारे पुष्पों को तो वह प्यार करता है, क्योंकि उनमें उसकी देह-कान्ति की अनुहार है। अपनी बंसी की तान से उसने मुग्ध कर दिया हमें और जब हम नाचने, गाने, खेलने में मग्न हो गईं उस समय वह अचानक कहीं चल दिया—अन्तर्धान हो गया !

विकसित पुष्प-मंजरियों से परिपूर्ण केसर-वृक्ष ! वह कमल-लोचन कहाँ हैं—तुरन्त बता दो ! कल-परसों न करके आज ही बताओ हमें, अभी।

हे अश्वत्थ ! तुम तो अच्युत के पुराने, विश्वस्त मित्र हो। उससे कहो—इन गोपियों को इस प्रकार व्यथित करना उचित नहीं है।

हे पाकर ! हम अपने प्यारे कान्हा के बारे में हर-एक वृक्ष से पूछती घूम रही हैं। तुम बता दो, दूसरे वृक्षों के बताने से पहले ही।

गूलर ! सुनो ! हमारे मनमोहन, उस धीर ने हमें छोड़ दिया है। उसके विरह की अग्नि से जले हुए हमारे शरीर अब अस्थि-पंजर मात्र रह गये हैं।

हे वट-वृक्ष ! यदि तुमने नारायण को देखा है तो हमें बताओ। हमें बता देने से तुम्हें कोई हानि नहीं होगी। हम नारियाँ ही तो हैं। इन सारे बन-पथों को हमने छान डाला, परन्तु हमारी पुकार का कहीं कोई उत्तर नहीं मिला।

कुन्द ! तुम क्यों शिर झुकाये खड़े हो ? क्या नन्दलाल ने तुम्हें झेंपा दिया है ? उसके मन्द हास से तुम्हें हार जाना पड़ा है ? या तुम्हारी खिन्नता का कोई दूसरा कारण है ?

कनकगन्धा ! तुमने तो नहीं देखा मानी गोकुलनाथ को ? कानन में हम आनन्द के साथ क्रीड़ा कर रहे थे और वह धीरे-धीरे गायब हो गया। हमारे साथ ऐसा छल करेगा—ऐसा हमने कभी सोचा भी नहीं था।

हरिणो ! तुम क्यों घबराकर दूर भाग रहे हो ? हम कोई बाण थोड़े ही हैं। हम पर जो संकट आ गया है वह बताने के लिए हम रो-रो कर इधर-उधर भाग रही हैं। हमारे प्राणों के प्राण कान्हा ने हमें छोड़ दिया है। इसलिए हम पुरुष-विरहित, रक्षक-विहीन हो गई हैं। जैसे हमारी सब सम्पत्ति खो गई हो वैसे, देखो, हम इधर-उधर भटक रहीं हैं। निर्लज्ज होकर रोती-चिल्लाती, अब हम भूमि पर गिर कर मरने पर आ गई हैं। यदि तुम वेणु-गान सुनने के लिए ही इतनी आतुरता से भागे जा रहे हो तो, हम विरह-वेदना से दग्ध हो रहीं हैं—यह सन्देश कान्हा को विशेष रूप से सुना देना।

हे केकीवृन्द ! हमारे प्यारे केशव को तुमने देखा है ? अन्य ग्वालबालों के साथ खेलता-खेलता वह मोरपंख लेने के लिए तुम्हारे पास तो नहीं आया ? इधर कहीं देखो तो कृपाकर हमें बता देना। तुम देखती तो हो, कितनी व्याकुलता के साथ हम उसे ढूंढ़ती फिर रही हैं।

कोकगण ! तुमने तो नहीं देखा गोकल-नायक को कहीं इधर जाते हुए ? विह्वल होकर, दूर-दूर भटक कर हमने पूछा, पर वह कहीं नहीं मिला। हम आकुल होकर रो रहीं हैं, पर क्या लाभ ? वह तो कहीं मिलता ही नहीं—मिलता ही नहीं !

राजहंस ! तुम क्यों क्रंदन कर रहे हो ? इसलिए कि नन्दलाल कहीं दिखलाई नहीं पड़ता ! चिन्ता में डूबी हमारी भी यही दशा है। हमें भान ही नहीं है कि हम क्या कर रही हैं।

सेवती । तुम तो पुष्प-वृक्षों के भाल-तिलक हो । हेमन्त-काल के कमलों के समान हम तुम्हारे सामने आकर खड़ी हैं । प्रेमभरी हम गोपियों के पास आकर उसने हमारे प्रेम को खूब बढ़ाया और मधु-मंदहास बरसा कर हमारे हृदयों को समूल उखाड़ कर ले लिया । उसके अनन्तर हमें दीनता और आधि में डुबा कर वह मन में कहीं अन्तर्हित हो गया । हम जानती नहीं कि अब क्या करें, इसलिए विरह-ज्वाला में जल-जल कर ऐसी हो रहीं हैं । उस मोहन कान्हा से अविरहित एक नारी उसके साथ है । जिधर वह गया है उधर ही हम भी जाना चाहती हैं । हमें बताओ, वह दिशा कौन-सी है ?

अनोखी कान्ति के स्रोत, हे अमरकन्द ! तुमने भी नहीं देखा उस बाल-गोपाल को ? उसने हमें भयभीत, दूर-दूर भटक कर रोनेवाली बना दिया है ।

हे केतकी ! हौले-से हम पूछती हैं तुमसे, छल-कपट छोड़कर बताना—हम जिस प्यारे कान्त को ढूंढ़ रही हैं उसे यहाँ आते हुए देखा है तुमने ? उसका वर्ण है श्याम मेघ के समान । काले, घने बालों को ऊपर बाँधे है । हाथ में बंसी है । पैरों में पायल पहने है । शरीर आभूषणों से अलंकृत है । पीताम्बर धारण किये है । मंजुल, मोहन उसकी वाणी है । भाल-प्रदेश में घुंघराली अलकावली खेलती है । देह की शोभा अनुपम है । माथे पर कुंकुम की बिन्दी, करों में कंकण हैं । नारियों के हृदयों को वेध देनेवाली मन्दस्मिति है उसके होठों पर । "हृदय से मैं एक हूँ तुम लोगों के साथ"—ऐसा बतानेवाला छलमय कटाक्ष भी धीरे-धीरे करता है । यदि तुमने नहीं भी देखा, तो भी हमसे न कहना कि "नहीं देखा ।" इससे हमारे हृदय में व्यथा का जो उबाल आयेगा उसे देख कर सह न सकोगी तुम ।

महाभारतम्

तुञ्चत्तु एडुत्तच्छन्

[तुञ्चत्तु एडुत्तच्छन् ईसा की सोलहवीं शताब्दी में हुए। मलयाली कवियों में उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अपनी चिरस्थायी कृतियों—अध्यात्म रामायण तथा महाभारत के द्वारा उन्होंने साहित्यिक मलयालमभाषा का मानदण्ड स्थिर किया। "हरिनाम कीर्तन" उनकी ऐसी कृति है, जिसमें उपनिषदों के समान आध्यात्मिक तत्वों का प्रतिपादन किया गया है। इनके अलावा अन्य अनेक कृतियों का श्रेय भी उन्हें प्राप्त है। महाभारत के कर्णपर्व में दुश्शासन से भीम के प्रतिकार का जो प्रसंग वर्णित है उसका अनुवाद यहाँ दिया जाता है—सम्पादक]

प्रतिकार

वायु-वेग से निकट जाकर भीम ने कहा—
"आओ, मदमत्त ! दुर्बुद्धिग्रस्त !
आयतलोचना द्रुपद-पुत्री को उसके घने, लम्बे बाल पकड़ कर खींचना,
उसके वस्त्र को खींच-खींच कर खोलना ,
और तरह-तरह के उपायों से हमें अपमानित करना—
यह कुछ भी मैं भूला नहीं हूँ। इसके प्रतिकार-स्वरूप तुम्हारे शरीर को
नर, सुर, असुर आदि सभी के देखते
"युद्ध करके अभी चूर-चूर कर डालूंगा।"
मेघों की गड़गड़ाहट के समान गरज कर यह कहते हुए
मारुति ने दुश्शासन के घोड़ों को मार डाला, सारथी को
धराशायी किया और रथ को चकनाचूर कर दिया।

दृढ़प्रज्ञ दुश्शासन भी क्रुद्ध होकर
सामने आया; शक्ति, शर, चक्र आदि आयुधों की
वर्षा करके भीम के शरीर को घायल कर दिया और उसके
रथ को भी तोड़, उछलकर मेघों के समान गरजा।
अब दोनों ने गदाएं ले लीं
और फिर जो युद्ध हुआ उसके समान युद्ध
आसपास कहीं भी कभी नहीं हुआ था।
दोनों ने रणभूमि में कोलाहल मचा दिया।
वे एक-दूसरे को आगे बढ़कर मारते और मार से अपनी रक्षा करते।
शत्रु को मारने की घात लगाते—
मारें, पर आघात से बचें, ऐसे दांव खेलते।
बचकर पीछे हटते, पास जाकर घातें लगाते,
कूदकर अति निकट पहुँच जाते, छिटक कर बहुत दूर चले जाते।
इस प्रकार युद्ध करते हुए भीम ने दुश्शासन की गदा तोड़ डाली।

अब दुश्शासन ने भीम को अपने बाहु-पाश में बाँध लिया,
उसे दांतों से काटा, घूंसों से मारा—दांत पीसते हुए
गिरते और फिर उछल कर खड़े होते,
बढ़ते हुए क्रोध से गोल-गोल बनी आँखों में धूल झोंकते,
गर्दनों को तेज़ नाखूनों से चीरते और मांस को नोचते,
पैरों से दबा कर एक-दूसरे को कुचलते,
दर्द से छटपटाते, हाथों को मरोड़ते,
एक-दूसरे की नाक और बाल पकड़कर खींचते,
चारों ओर फव्वारे के समान रक्त की फुहारें उड़ाते,
आगे झुक कर आक्रमण करते, छाती से छाती रगड़ते,
हाथ से हाथ दबा कर शक्ति मापते,
धरती पर पैर जमा कर खड़े होते,
ठोकर खाकर दूर जा लुढ़कते।

उस भीषण द्वन्द्व-युद्ध के प्रेक्षक—
कुछ कहने लगे, दुश्शासन जीतेगा;
दूसरों ने कहा, जय होगी वृकोदर की;
औरों का कहना था, "निडर होकर देखो इनका रण-कौशल,
कैसी भीषण है यह "समर-रीति" आदि आदि।

प्रेक्षक जब इस प्रकार ग्रालाप कर रहे थे,
तभी मारुति थोड़ा-सा पीछे हटकर
घात लगाकर खड़ा हुग्रा ग्रौर उसने
शत्रु को दोनों पैर खींचकर गिरा दिया
ग्रौर वह झपटकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा
ग्रौर उसे भूमि में धंसा कर, पैरों से दबा कर,
मर्त्य ग्रौर ग्रमर्त्य सबके देखते हुए,
बिना किसी ऊहापोह के उसने उसकी छाती
ग्रपनी तलवार ग्रौर नाखूनों से फाड़ डाली ।

झरने के समान उछलकर निकलनेवाली रुधिर-धारा को
सुड़-सुड़ ग्रावाज से पीते, गरजते ग्रौर उछलते-कूदते हुए,
ग्रौर उसमें डुबकी लगाकर, प्रलय-जल के समान फैलनेवाले उस रक्त की
एक बूंद भी बाहर न जाये—इस प्रकार
उसपर उलटे लेट कर मारुति ने उसे मुँह भर-भर कर पिया
ग्रौर उन्मत्त होकर वह ग्रट्टहास करके चिल्लाया—
"रसना ग्रौर उदर ग्राज खूब संतृप्त हुए" ।
ग्रंतड़ियों को निकाल-निकाल कर, गले में माला-जैसे पहन कर,
रणभूमि को चूर-चूर कर देने जैसे पराक्रम के साथ
ताण्डव करते हुए, जांघों पर जोर-जोर से ताल देने लगा ।

"पांडु के पुत्र पशुग्रों के समान हैं—
ऐसा बहुजनों को सुनाते हुए,
परिहास के साथ, हँसते ताली बजाते,
नाचते हुए तुम लोगों ने कहा था ।
कौरव पशुग्रों के समान हैं—
ऐसा कहता हुग्रा आज मैं ध्वंस-नृत्य करता हूँ ।
इन चारों के कुल का सबसे बड़ा व्यक्ति
मेरे एक दिन के खेल के लिए बच रहा है ।
लड़कर उसे भी यमपुरी पहुँचाऊँगा —
राज्य ग्रौर सम्पत्ति दूंगा वापस ग्रसली सम्राट् को"—
ऐसा कहते हुए मारुति ने
कुशल नर्तकी के साथ मिले नट-प्रवर के समान मत्त होकर,

हिरण्यकशिपु को चीर कर जैसे नृसिंह
रक्त-रंजित हो गये थे, वैसा रूप धारण करके
सारी रणभूमि में घूम-घूम कर,
शत्रु-वर्ग का विनाश किया।

पञ्चेन्द्रोपाख्यानम्

कुञ्चन नम्पियार

[मलयालमभाषा के टकसाली कवियों में संभवत: सबसे अधिक लोकप्रिय हैं कुञ्चन् नम्पियार। वे अठारहवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में हुए। उन्होंने "तुल्लल" नाम से प्रसिद्ध नृत्य का आविष्कार किया और उसके साथ गाने के लिए लगभग 40 उपयुक्त गीतों की रचना भी की। इनके अतिरिक्त उन्होंने श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवालम्, नालुवृत्तम् (शीलावति), पत्तुवृत्तम्, पतिन्नालुवृत्तम्, चाणक्यसूत्रं किलिप्पाट्टु, नलचरितं किलिप्पाट्टु, पंचतन्त्रं किलिप्पाट्टु आदि अनेक काव्यों का प्रणयन किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि केरल के महान संस्कृत कवि रामपाणिवादन् ही कुञ्चन् नम्पियार थे। पंचेन्द्रोपाख्यानम् तुल्लल-कथा में कवि ने उस प्रसंग का वर्णन किया है, जिसमें यमराज जगत को अपने मार्ग पर चलने के लिए छोड़कर एक यज्ञ करने में निमग्न हो गये थे। उसके एक अंश का अनुवाद यहाँ दिया जाता है—सम्पादक]

जब यमराज नहीं रहे

बूढ़ों से भर गई है भूमि यह,
मरना संभव नहीं,
क्योंकि यमराज अनुपस्थित है।
वृद्ध पितामह के पितामह जीवित हैं,
उनके पितामह के पितामह भी मरे नहीं।
पांच सौ वर्षों की आयुवाले बूढ़े भी
बच्चे ही अभी,
क्योंकि उनके भी परदादा अभी जीवित हैं।

घरों में मांड भी मिल सकता नहीं पीने को ।
दस मन चावल भी पड़ता नहीं पूरा—
केवल नन्हें बच्चों को ।
दस सौ मन चावल भी पकायें तो बूढ़ों को
दो-दो कण ही परोसते खुट जाता है ।
दन्तहीन दस-दस करोड़ एक-एक घर में—
लोट-पोट एक साथ,
गुड़ियां हों मानों बना कर रखी हुई ।
आँखों की बरोनियाँ भी सफेद जिन पुरुषों की
उनकी गिनती नहीं; वैसे ही नारियां भी असंख्य हैं ।
आँखों से अंधे, कानों से बहरे और
गंजे भी अगणित हैं, खोपड़ियाँ चमकती जिनकी
कांसे के कटोरों सी ।
देह में हाड़ छोड़ कुछ भी नहीं;
न कभी दुर्दशा की, न ही संकट की ।
दस-दस दिन भोजन न मिले तो भी
जाते नहीं प्राण
घरों में स्थानाभाव का कष्ट है, सो है ही ।
ऊंचे चबूतरों पर सोते तो गिर पड़ते नीचे
पत्थरों पर, टूट-फूट जाते हाथ, पैर, शिर ।
एक नहीं, दो नहीं, लाख-लाख बूढ़ों की
होती दुर्दशा यह,
निकलते नहीं प्राण पर
किसी तरह, किसी तरह ।

कठिनाई अधिकारियों की सबसे बड़ी—
मार नहीं सकते चोरों को,
गोली से भी उनकी मृत्यु होती नहीं;
जहाँ जो पाया चुराया और खाया—
फिरते रुआब से, भय नहीं किंचित् ।
राजधानी में घुस, खजाना चुरा कर
घूमते सर्वत्र, निःशंक ।
दण्डशक्ति राजा की घट गई ।

कम हो गई मन्दिरों में पूजा भी ।
नहीं रही पूजा तो
देवता भी स्थान त्याग जाने लगे ।
मंत्रियों को भय नहीं राजा का तनिक भी
और प्रजा मंत्रियों को दिखाती अंगूठा ।
दुराचार बेहद बढ़ गया जगत में—
सारे अनर्थ का मूल बना
याग यमराज का ।

धाग, धर्म कर्म—कुछ भी न रहा
ब्राह्मणों के लिए;
पूजार्थ मन्दिर नहीं, शान्ति नहीं कहीं ।
मदमत्त जनों की चलती मनमानी है ।
जीवन-धर्म की भी रही कोई व्यवस्था नहीं,
न रहा कोई नियम ।
पातिव्रत्य उत्तम स्त्रियों का भी नष्ट हुआ
पुरुष क्योंकि घूमता छुट्टा मनमाना ।
मरने का भय जब दुष्टों को रहा नहीं,
यह सब करने में संकोच कैसे हो ?
खाना-पहनना देने वाले पुरुषों को
वेश्यागण पास फटकने नहीं देतीं अब—
पास आते जब देते जो, पोषण जो करते,
अन्य समर्थ ख़ूब मार-पीट करते तब,
बढ़ता है दुराचार ।
कलि-काल से भी अधिक कष्ट-काल यह समय
बन गया है । काल के न होने से
पड़ गये हैं प्राणिमात्र संकट में ।

अन्य मांसभोजी प्राणियों को भी अब
भोजन नहीं मिलता, मर भी नहीं पाते वे ।
चीता, भालू, सिंह आदि भी
मांस एक-दूसरे का
काट-काट लगते हैं खाने ।

छोटी मछलियों को निगल जाते मगरमच्छ,
किन्तु निकल आतीं वे सत्वर, सरलता से
द्वार से दूसरे ।
दुष्ट जन्तुओं से छा गया है जगत सब,
हो गया है हाल यह
कि भोजन दे देने को भी
रहा नहीं कोई ।

भूखे रहने की नौबत आ पहुँची यात्रियों की भी ।
रुपया-पैसा मिलता नहीं कहीं भी नगरों में
धर्मार्थ भोजन-घरों में घूम खाते जो,
अब नहीं मिलता कहीं कुछ भी उन विप्रों को—
इतना भीड़-भड़क्का होता है ।
जीविका कमाते थे खेल-तमाशे से नृत्य-संघादि जो,
छिन्न-भिन्न होकर कोने-कोतरे संभाले हैं ।
कंठ गानेवालों का भर्राता भूख से,
हो गया है सुर-हीन ।
क्षुधातुर जो, संगीत-रस कैसे ले, कौन ले ?
अतः धनोपार्जन का उपाय ही नहीं रहा—
संगीत-जीवियों के लिए ।
भोजन का नाम सुन शिर उठाते जरूर,
पर भोजन तो है ही नहीं—कहीं नहीं ।
दुष्टों में प्रेम भाई-भाई का रहा ही नहीं—
और बड़े भाई भी कितने ? एक न दो,
पचास, सौ या पाँच सौ !
और इस कष्ट-काल में
सहायतार्थ मृत्यु भी नहीं !

नलचरितम्

उण्णाई वारियर

[केरल अपने कथकली नृत्य के लिए प्रसिद्ध है। इन नृत्यों के साथ गाने के लिए लिखे गये गीतों को सामान्यतया "आट्टकथा" कहा जाता है और वे पौराणिक कथाओं के आधार पर लिखे गये हैं। आट्टकथाओं में उण्णाई वारियर-कृत "नल-चरितम्" को साहित्य-पारखियों ने सर्वश्रेष्ठ माना है। ये कवि अठारहवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में हुए। नल-चरितम् चार भागों में विभक्त है। उनमें से दूसरे भाग का अनुवाद यहाँ दिया जाता है। इसमें वन में किरात से दमयन्ती की भेंट का वर्णन है—सम्पादक]

दमयन्ती और किरात

(इसके बाद किरात अपनी झोंपड़ी में किसी आवाज से चौंक कर जाग उठता है और उसी अवस्था में प्रवेश करता है)।

किरात—(ध्यान से सुन कर) : यह क्या आवाज है ? घोर वन के अन्दर से आ रही है ? (अधिक ध्यान से सुनता है)। दूर से सच बात कैसे जान सकूंगा ? पास जाकर देखूं। (बाहर निकलकर देखता हुआ) इस भयानक वन में अकेले जाने और खोजने में मुझे भय होता है। अब तो अंधकार नष्ट करने के लिए भगवान भास्कर उदित होने ही वाले हैं। परन्तु मैं यहीं बैठा रहूँ तो लज्जा की बात होगी और वह भीरुता भी होगी। धनुष-वाण और तलवार लेकर पास जाना ही चाहिए और पता लगाना चाहिए। नीच-भाव छोड़कर अब मैं उचित काम करूँगा। (जिधर से आवाज आ रही थी उस ओर चलने लगता है)।

(नेपथ्य में विलाप सुनाई पड़ता है)

दमयन्ती—हा हन्त ! दयासिन्धो ! प्रियतम ! तुम मुझे छोड़कर कैसे चले जा रहे हो ? मैं मोह के सागर में गिरकर अधिकाधिक डूबती जा रही हूँ।

जुए में तुमने अपना भाग्य तो खो ही दिया, अब इस गहन वन में आकर क्या बुद्धि भी हर गई ? अपने कृपा-पात्र प्रियजनों पर से ममता भी उठ गई ? हे नाथ ! मंगलमूर्ति...!

किरात—(रुककर और ध्यान से सुनकर) :

कंठ की मधुरता से जान पड़ता है, यह कोई स्त्री है।
स्वच्छन्दता से जाकर इस सुमुखी से पूछूंगा—तुम कौन हो ?
वह देखो, इन वृक्षों के बीच से दिखलाई पड़ रही है !
अह ! यह तो मानो सौन्दर्य की प्रतिमा ही है !
किसके वियोग में विलाप कर रही है ?
कैसे इसे अपने वश में करूँ ?
यह अकृत्रिम सुन्दरी और अनवद्य-रूपिणी है।
पास जाकर दर्शन करना चाहिए।
रूप में तो यह रंभा को भी मात देनेवाली है।
इसका अधर-पान करना चाहिए।
है कौन यह ? अवनीतल पर उतरकर आई हुई देवी।
कौन—शरीर में माधुर्य भरे यह श्रेष्ठ नारी है कौन ?
(दमयन्ती के निकट पहुँचता है। अजगर की पकड़ में आई हुई दमयन्ती दिखलाई पड़ती है)

दमयन्ती—हे कान्त ! अजगर पैरों को ग्रस रहा है।
अन्तःकरण मोह में डूबा जा रहा है।
हे साहस-प्रिय ! मेरी मृत्यु की बात सुनने पर
अपने स्नेह के अनुरूप मेरा स्मरण करना।

किरात—पुत्र, मित्र आदि से विरहित तुम इस कान्तार में आकर
अनर्थ-गर्त में गिर गई।
आनन्द के साथ दीर्घ काल तक जीवित रहने योग्य हो तुम.
हे कमनीया !
लज्जित न हो, मैं इस वन का निवासी हूँ।
फिर मैं कोई भी होऊँ, अब तुम्हें बचाने के लिए,
तुम कितना भी रोओ तो भी, और कोई आ सकता है ?
मेरे कंधे का सहारा लेकर एक क्षण खड़ी हो जाओ।
हे सुन्दरी ! अभी मैं इस उरग को मारे डालता हूँ।
प्राण जब अचूक खतरे में हों

तब छूने के लिए कोई जाति नहीं पूछता।
लो, स्त्रियों की मुकुट-मालिके ! अजगर मर गया।
(अजगर को मार कर दमयन्ती के भाव जानने के लिए उत्कंठित होकर उसकी ओर ध्यान से देखता है। दमयन्ती समझ जाती है)

दमयन्ती—अजगर ने मुझे पकड़ा तब मैं होश खो बैठी थी।
शरीर काँपने लगा था।
उस हालत में तुमने मुझे बचाया, मैं अनुगृहीत हूँ।
अब तुम अपने स्थान को जाओ।
प्राण-रक्षा के योग्य प्रत्युपकार तो कोई होता ही नहीं—
सिवा उससे प्राप्त होने वाले पुण्य-संचय के।

(इस अप्रत्याशित उत्तर से निराश होकर—)

किरात—हे अंगने ! मैं कैसे चला जाऊँ ?
मेरे बहुत-से मन्सूबे हैं···क्या-क्या सो सुनो
और जो मेरा इंगित है उसे तुम मान लो।

मैं बहुत पीड़ित हूँ, मुझ पर दया करो।
हे मंगलगात्रि ! तुम मुझे क्यों दुराती हो ?
सुन्दरी-मणिमालिके ! तुम महान गुण-ग्राम से परिपूर्ण हो।
तुम्हारे गुणों का सुयश फैला है, परन्तु उन गुणों का
यदि अनुभव नहीं होता तो वे किस काम के ?

कामदेव मेरा वैरी हो गया है।
मुझे हराने के लिए वह भाँति-भाँति के बाण छोड़ता है।
इधर-उधर भटक कर देह को मत थकाओ।
सर्वत्र ही डरने लगोगी तो सुख कहाँ मिलेगा ?
तुम्हारे नेत्र तो यहाँ हैं, पर मन कहीं और है।
पर अब सोचो तो भला, जाओगी कहाँ ?

हे सुन्दरि ! तुम मेरे घर रहो, जहाँ कोई अभाव नहीं।
एक झोंपड़ी मेरी है, उसमें पानी नहीं टपकता,
मजबूत बंधी हुई है वह।
हम उसी में रहेंगे···वन-जीवन में कितना सुख है,
किसी को क्या पता ?

परस्पर मिलन तो ईश्वर की कृपा से ही
संभव होता है न ?
फिर, क्या हम एक-दूसरे के अनुरूप नहीं !
हम मिल नहीं सकते ?
कह दो···"हाँ" । और कहने को बचा ही क्या है ?

दयमन्ती···हे स्वामि ! निषधेश्वर !
इससे अधिक आश्चर्यजनक बात और क्या हो सकती है ?
अपना पद छोड़कर हे राजन् ! तुम छिप गये ।
तुम्हें न देख कर मैं तुम्हें खोजने निकली ।
अजगर के मुँह में जा पड़ी, पर वहाँ मेरा अन्त नहीं हुआ ।
फिर एकान्त में उन्मत्त की सी बातें करता यह वनचर भी आ गया ।
इस मूर्ख को कैसे समझाऊँ ?
और क्या मेरी अनुनय-विनय सुनकर यह लौट जायेगा ?

हाँ, याद आया···"जो तुम्हारा व्रत भंग करने को उद्यत होगा,वह भस्म हो जायेगा", ऐसा वर एक बार इन्द्र ने दिया था, वही आज काम आयेगा ।

(किरात भस्म हो जाता है । दमयन्ती आश्चर्य से देखती है फिर इन्द्रादि देवों का स्मरण करती हुई चलने लगती है)

प्रसंगसंग्रहम्

केरलवर्मा

[केरलवर्मा वलिय कोयिल तम्पुरान (1845-1915) तिरुवितांकूर की एक महारानी के पति थे। उन्होंने मलयालम के पुनरुद्धार का नेतृत्व किया और आधुनिक मलयालम-गद्य के जनक की प्रतिष्ठा प्राप्त की। संस्कृत में उन्होंने विशाखविजयम्, क्षमापणसहस्रम, यमप्रणामशतकम्, आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की है। मलयालम में अनेक आट्टकथाएं, कुछ कविताएं और मयूर-सन्देश काव्य भी उनके लिखे हुए हैं। मलयालमभाषा में कालीदास के अभिज्ञानशाकुन्तल का सर्वप्रथम अनुवाद करने के कारण उन्हें "केरल-कालिदास" का विरुद प्राप्त हुआ। परन्तु मलयालम-साहित्य में उन्हें सर्वश्रेष्ठ स्थान इसलिए प्राप्त हुआ कि उन्होंने मलयालमभाषा की सर्वतोमुखी अभिवृद्धि का नेतृत्व किया। सन् 1910 में उन्होंने वैक्कम् नामक स्थान में "भाषा-पोषिणी सभा"के अधिवेशन में मलयालम जैसी दाक्षिणात्य भाषाओं की महत्ता पर जोर देते हुए एक भाषण दिया था। उसमें उन्होंने एक ऐसी भाषा-व्यवस्था की परिकल्पना की थी, जो आजकी भाषा सम्बन्धी समस्या के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। मलयालम के विकास के लिए उपाय और पद्धति बतानेवाले उस स्मरणीय भाषण के एक अंश का अनुवाद यहाँ दिया जाता है—सम्पादक]

भाषा पोषण

सारे भारतवर्ष की एक ही मातृभाषा हो जाये तो अच्छा—इस प्रकार की भावना बहुत-से लोगों के मन में रूढ़मूल हो गई है। यह अभिप्राय भी सुनने को मिलता है कि जब, यथासमय, यह इच्छा सफल होगी तब विभिन्न प्रान्तीय भाषाएं नामशेष हो जायेंगी, इसलिए इन भाषाओं की उन्नति के प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार के तर्क अर्थशून्य हैं, यह साबित कर देना कठिन नहीं हैं। कलकत्ते की "माडर्न रिव्यू" नामक मासिक पत्रिका के सम्पादक

श्रीरामानन्द चट्टोपाध्याय ने युक्तिपूर्वक प्रतिपादित किया है कि बंगला या हिन्दी का अन्य प्रान्तों में प्रचार हो तो भी वे उपभाषा के रूप में ही रह पायेंगी, मुख्य भाषा कभी नहीं बन सकेंगी। इतिहास और लोकगति के आधार पर यह भी नहीं माना जा सकता कि दक्षिण भारत की सब द्राविड़ भाषाएं मृतप्राय हो जायेंगी और उनके स्थान पर आर्यावर्त की किसी एक भाषा का सार्वत्रिक प्रचार हो जायेगा। इसके आलावा, आजकल प्रचलित भाषाओं में से कोई एक भारत के समस्त प्रान्तों की भाषा बन जाये, यह आवश्यक भी नहीं है। भारतीय जनता के परस्पर व्यवहार के लिए संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी— ये तीन भाषाएं मौजूद हैं ही। ऐसी स्थिति में कोई भी प्रान्तीय भाषा मलयालम-भाषा को आगे चलकर निगल जायेगी, ऐसी शंका के लिए कोई अवकाश नहीं है। मैं बिना किसी सन्देह के कह सकता हूँ कि केरल और कैरली के आयुष्य का दैर्घ्य समान ही है।

उपर्युक्त प्रस्तावना से यह निष्कर्ष निकलता है कि केरलभाषा की उन्नति करना हमारा एक मुख्य कर्तव्य है। अब देखें इसका उपाय क्या-क्या है।

हमारा पहला कर्तव्य है अपनी भाषा के ग्रंथ-दुर्भिक्ष का निवारण करना। यह कार्य अप्रकाशित प्राचीन ग्रंथों के प्रकाशन और विविध विषयों के नवीन ग्रंथों की रचना से पूर्ण हो सकता है।

यह विशेष रूप से कहने की आवश्यकता नहीं कि जब हमारी भाषा की जबकि विरासत में मिली प्राचीन सामग्री कम है तब जितनी भी है उसे दीमक और झींगुरों का खाद्य बनाये बिना एकत्रित करके संभालकर रखना हमारा कर्तव्य है। ग्रंथों और आसवों का गुण जितने वे पुराने होते जाते हैं, बढ़ता है। किसी समय का साहित्य उपलब्ध न हो तो उस समय का भाषा इतिहास जाना नहीं जा सकता। इसलिए भविष्य में हम कितनी भी पुस्तकें लिख डालें, उन्हें पण्डित-दृष्टि से देखने पर प्राचीन ग्रंथों के समान महत्व नहीं मिल सकता। ऐसा मालूम होता है कि रामचरितम् तथा 'पय्यन्नूर पट्टोला' नाम के जो ग्रंथ गुंडर्ट साहब के हाथ लगे थे वे उनके साथ ही केरल से अन्तर्धान हो गये।

दक्षिण तिरुवितांकूर की रामकथापाट्टु' 'भारतंहाट्टु' आदि गीति-कृतियाँ आज भी अप्रकाशित हैं और उनके प्राण कण्ठगत हो गये हैं। यह हमारे लिए बहुत लज्जा की बात है। साहित्य-सागर में यदि हम डुबकी लगाकर देखें तो अनवधि अनर्घ रत्न हाथ लगेंगे।

विभिन्न विषयों के नये-नये ग्रंथ भी लिखना आवश्यक है। मलयालम में गद्य-ग्रंथों के समान पद्य-ग्रंथों का दारिद्र्य नहीं है। फिर भी यह तो कहना

ही पड़ता है कि आजकल के कवियों में दीखनेवाली अनाशास्य गतानुगतिक वृत्ति यह सूचना नहीं देती कि भाषा का भविष्य उज्ज्वल है। गद्य की अवस्था तो अत्यन्त शोचनीय है। यह माने बिना नहीं रहा जा सकता कि मलयालमभाषा में किसी भी विषय के ऐसे गद्य-ग्रंथ निर्मित नहीं हुए हैं, जिन्हें गुण या संख्या की दृष्टि से पर्याप्त माना जा सके। इसमें तो संदेह किया ही नहीं जा सकता कि जीवनचरित और इतिहास-ग्रंथ जितने भी लिखे जायें उतनी ही उस भाषा-भाषी जनता की उन्नति होगी।

शास्त्रीय ग्रंथों के निर्माण पर भी भाषा-पंडितों का ध्यान गया है, ऐसा नहीं लगता। सस्यशास्त्र, प्राणिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र आदि नवीन विषयों के आदि-पाठ भी अभी मलयालम में नहीं बने हैं। ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यास, विविध रस-प्रधान कहानियां आदि अभी जितनी हैं उससे कई गुनी अधिक लिखी जायें तभी भाषा का वर्तमान दारिद्र्य कम हो सकेगा। एक अच्छा अंग्रेजी-मलयालम कोश न होने के कारण भी बहुत हानि हो रही है।

इस प्रकार प्राचीन तथा नवीन ग्रंथों की संख्या बढ़ जाने से ही भाषा का विकास या पुष्टि नहीं होगी। इसलिए हमारा दूसरा कर्तव्य है कि ग्रंथ पढ़ने में जन-साधारण की अभिरुचि का संवर्धन करना।

इन्दुलेखा

•

ओय्यारत्तु चन्तु मेनन

[मलयालम में सर्वप्रथम उपन्यास-लेखक, ओय्यारत्तु चन्तु मेनन (1847-99) ने अपने बाल्यकाल में संस्कृत और अँग्रेजी का अध्ययन किया है और वे मैट्रिकुलेशन तक पहुँचे। 1867 में उन्हें सब-कलेक्टर के दफ्तर में मुंशी की नौकरी मिली। धीरे-धीरे बढ़कर उन्होंने सब जज का स्थान प्राप्त किया। अंग्रेज सरकार ने उन्हें "राव बहादुर" की उपाधि से सम्मानित किया था। उन्होंने "इन्दुलेखा" और "शारदा"—दो सामाजिक उपन्यास लिखे। शारदा उपन्यास अपूर्ण रह गया। चन्तु मेनन एक अच्छे साहित्य-समालोचक भी थे। जिस अंश का अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है वह उनके इन्दुलेखा उपन्यास से लिया गया है। इस उपन्यास में उच्च वर्ग के लोगों के आचार-विचार तथा उनकी चपलताओं का चित्रण किया गया है। इसमें वर्णित सूरि नम्पूरि का चरित्र मलयालम उपन्यास-जगत में बहुत मार्के की कृति है—सम्पादक]

चपल कामुक

"शिव शिव ! कितनी सुन्दर ! इस जन्म में मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकूंगा ! क्या मुखड़ा ! क्या रंग ! क्या बाल ! ओह, क्या ये आँखें ! हे भगवान ! नारायण ! मैं तो मर बैठा ! न धीरज रहा, न साहस ? देवेन्द्र ने जब उस ऋषि-पत्नी (अहल्या) को देखा तब उसकी भी तो यही हालत हुई थी ! और जब रावण ने रंभा को देखा था ?"

इन्दुलेखा को देखते ही नम्पूरिप्पाड़ु इन विचारों में बह गया। फिर भी, कुछ क्षण कुर्सी पर बैठकर उसने धीरज बांधा और पूछा : "धीरों के लिए नारी तृण के समान है—इन्दुलेखा, यह कहावत तुमने पढ़ी है ?"

इन्दुलेखा—(खिलखिलाकर) हँसती हुई) मैंने कोई कहावत नहीं पढ़ी, मगर अब सुन तो ली ही। बहुत अच्छी कहावत है।

इन्दुलेखा बेकाबू होकर हिल-हिल, डोल-डोल, मनमोहक ध्वनि में हँसने लगी। उसके भाव को देखते ही नम्पूरिप्पाड् का वह सारा धैर्य लुप्त हो गया, जो उसने बड़ी कठिनाई से अर्जित किया था। गोविन्दन से सलाह करके जो निर्णय किया था वह सब भूल गया और उसका मन इन्दुलेखा में लीन हो गया। वह बोला :

"इन्दुलेखा ! एक बार जरा फिर हँसो। अँग्रेजी में क्या हँसना भी सिखाया जाता है ? यह हँसी—बहुत सुन्दर ! बहुत सुन्दर ! एक बार फिर हँसो।"

इन्दुलेखा हँस-हँसकर बेहाल हो गई। वह मुँह पोंछने के लिए अन्दर चली गई।

नम्पूरि०—हाय ! यह तो बुरा हुआ ! अन्दर चली गई ! कल की जितनी बात करने को भी समय नहीं दीखता। फिर मुझसे आने को क्यों कहा ?

इन्दुलेखा—नहीं नहीं, मैं आ रही हूँ

यह कहती हुई वह फिर से बाहर आ गई।

नम्पूरि०—तुम्हारी उम्र क्या है, इन्दुलेखा ?

इन्दु०—अठारह वर्ष।

नम्पूरि—मैं कितने वर्ष का हूँ, बता सकती हो ?

इन्दु०—देखकर आयु जान लेने की योग्यता मुझमें नहीं है। इसलिए नहीं बता सकती।

नम्पूरि०—फिर भी, अन्दाज तो करो।

इन्दु०—वह सही नहीं होगा।

नम्पूरि०—कुछ बताओ तो।

इन्दु०—कुछ भी कहना है तो कहे देती हूँ—मुझे लगता है, आप पचास के ऊपर हैं।

नम्पूरि०—बकवास ! तुमको लगता है—मेरा यौवन बीत गया ? अफसोस ! क्या बात कही—पचास वर्ष ! ! ! पूर्ण यौवन देख कर भी नहीं जान सकती ?

इन्दु—मैंने तो पहले ही कहा था न कि किसी की उम्र का गणित मुझे नहीं आता ?

नम्पूरि०—पूर्ण यौवन प्राप्त हुए पुरुष को देख कर नहीं जान सकती ? अठारह वर्ष की हो गई फिर भी नहीं जानतीं ?

इन्दु—नहीं जानती। मेरी समझ में यह भी नहीं आता कि पूर्ण यौवन का क्या अर्थ है।

नम्पूरि०—इंगरीजी सीखने के कारण ही तुम यह सब जान नहीं पातीं—जरूर यही कारण है।

इन्दु—हो सकता है।

नम्पूरि०—मैंने अब तक विवाह नहीं किया।

इन्दु०—अच्छा!

नम्पूरि०—वंश में संतान के लिए छोटे भाइयों के विवाह करा दिये। मैं सदा आनन्द में रहता हूँ। नम्पूरि यदि आचार के अनुसार अपनी जाति में विवाह करता है तो उसका जीवन-सुख नष्ट हुआ ही समझो। आजतक मैंने किसी स्त्री को स्थायी रूप से पत्नी बनाकर नहीं रखा है। क्यों, इन्दुलेखा, तुम कुछ बोलतीं नहीं?

इन्दु०—आप अपने घर की बातें कह रहे हैं, उनमें मैं क्या बोलूं?

नम्पूरि०—कल मैंने जो श्लोक भेजा था वह सुनोगी? मैं सुनाता हूँ।

इन्दु०—नहीं नहीं, कष्ट न कीजिये।

नम्पूरि०—कष्ट क्या है? श्लोक सुनाने में तो आनन्द आता है।

इन्दु०—मैं नहीं जानती।

नम्पूरि०—इंगरीजी पढ़ने से ही ऐसा होता है।

इन्दु०—हो सकता है।

नम्पूरि०—इंगरीजी पढ़ने से शृंगार-रस आयेगा ही नहीं।

इन्दु०—जी, नहीं आयेगा।

नम्पूरि०—पर तुममें तो बहुत शृंगार है?

इन्दू०—मुझे लगता है—बिलकुल नहीं है?

नम्पूरि०—नैषध पढ़ा है?

इन्दु०—नहीं।

नम्पूरि—अरे अरे! स्त्रियों को नैषध तो पढ़ना ही चाहिए। उसका एक श्लोक सुनाऊँ?

इन्दु०—नहीं नहीं, व्यर्थ कष्ट न कीजिये।

नम्पूरि०—यह बड़ी पेटी क्या है? बाजा है?

इन्दु०—जी हाँ।

नम्पूरि०—इसका वाद्य जरा सुनाओगी?

इन्दुलेखा ने मंजूर करके पियानो बजाना शुरू कर दिया। दस मिनट बाद ही नम्पूरिप्पाड़् कह उठा—"अब बस करो। थक गई होगी। इन कोमल हाथों से कितनी देर परिश्रम करोगी?

इन्दुलेखा ने हास्य के भाव से उसे देखा।

नम्पूरिप्पाड़ु ने अपना चाँदी का पानदान और सोने की गुलाबजली लाने को कहा। दोनों चीजें आ गई तो इन्दुलेखा से बोला : "यह पानदान देखो। अच्छा है ?"

इन्दुलेखा ने उसे हाथ में लेकर देखा और "सुन्दर है" कह कर रख दिया।

नम्पूरि०—चाहिए तुम्हें तो ले सकती हो।

इन्दु०—मुझे नहीं चाहिए।

नम्पूरि०—ले सकती हो, ले सकती हो। कोई हर्ज नहीं।

इन्दु०—मुझे जरूरत नहीं है।

नम्पूरि०—मैंने तुम्हें छोड़कर और किसी स्त्री का प्रेम नहीं चाहा।

इन्दु०—यह तो अच्छी बात है।

नम्पूरि०—ओहो ! तो मान लिया ?

इन्दु०—मान लिया।

नम्पूरिप्पाड़ु उठकर खड़ा हो गया और उछलने लगा।

इन्दु०—यह क्या चौकड़ी है ?

नम्पूरि०—चौकड़ी ? मेरा अहोभाग्य है। नाचूं नहीं मैं ? मुझे इन्दुलेखा मिल गई न ? मेरा काम सिद्ध हो गया न ?

इन्दु०—बकवास मत करो। मैं इस जन्म में तुम्हारी पत्नी नहीं बनूंगी। मुझे चाहते हो तो उसमें मेरा क्या वश है ? आगे कभी इस तरह का एक शब्द भी मुंह से निकाला तो मैं तुम्हारे सामने भी नहीं आऊँगी। मुझे दूसरा काम है।

इतना कह कर इन्दुलेखा अन्दर चली गई।

मार्तण्डवर्मा

•

सी० वी० रामन् पिल्ले

[सी० वी० रामन् पिल्ले (1858-1922) मलयालमभाषा के सबसे बड़े उपन्यासकार हो गये हैं। बी० ए० पास होने के बाद उन्होंने सरकारी नौकरी कर ली और धीरे-धीरे तिरुअनन्तपुरम में सरकारी छापाखाने के सुपरिंटेंडेंट का पद प्राप्त किया। सरकारी अफसर होने पर भी स्थानिक राजनीति में उनका स्थान बहुत जबरदस्त था। उन्होंने तीन ऐतिहासिक उपन्यास—मार्तण्डवर्मा, धर्मराज तथा रामराजा बहादुर—और एक सामाजिक उपन्यास—प्रेमामृतम्—का प्रणयन किया। यही कृतियाँ उनके यशस्तम्भ की आधार-शिला बनीं। इसके अलावा, उन्होंने अनेक प्रहसन भी लिखे, जिनसे मलयालम में गद्य नाटकों की रचना का पथ प्रशस्त हुआ। उन्हें प्रेमादर से लोग "सी०वी०" कहा करते थे। उनके उपन्यास "मार्तण्डवर्मा के विषय में कहा गया है कि वह "किसी भी शताब्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की बराबरी कर सकता है।" उसी के एक अंश का अनुवाद यहाँ दिया जाता है—सम्पादक]

माँ को मंजूर, बेटी को नामंजूर

प्रातःकाल होते ही चम्पकश्शेरी-भवन में धूमधाम शुरू हो गई। गृह-स्वामिनी कार्त्यायिनी अम्मा मानो आठ या दस हो गई थीं। अटप्रथमन् (एक प्रकार की खीर) के लिए चावल कूटने के स्थान पर कार्त्यायिनी अम्मा मौजूद थीं और वे गलती निकाल कर कह रही थीं—"बारीक छानो, इतना काफी नहीं है।" केले की उप्पेरी (चकतियों) के लिए गुड़ की चाशनी खरी न हो जाये, ऐसी चेतावनी देने के लिए भी वे उपस्थित थीं। अन्दर के आंगन में शाक-भाजी काटनेवालों को यह आज्ञा देनेवाली भी कार्त्यायिनी अम्मा ही थीं कि जितनी जरूरत हो उतनी काट लो, शायद साथ बहुत लोग आयेंगे। लोग जगह-जगह से पके केलों के गोभ ला रहे थे; उन्हें लेकर भंडार में रखनेवाली भी और

कोई नहीं थीं। दीवट आदि मांज कर साफ करनेवाली ठीक सफाई नहीं कर रहीं है, इस शंका से ऐसा कह कर डांट-फटकार सुनानेवाली भी वहीं थीं कि "हाथ में क्या फोड़ा हो गया है ? जोर से घिसो। चाँदी जैसी चमकनी चाहिए।" चौबीस बत्तियोंवाली तीन दीवटों के लिए, जिनमें से एक घर के अन्दर, एक भोजन-घर में और एक दालान में रखी जायेगी, लगभग पाँच सौ महीन बत्तियाँ भी उन्होंने बनाई थीं। पुत्री के प्रति अमित वात्सल्य के कारण और सब का काम—जैसे चाँदी की छोटी डिब्बी में कत्था मिला कर चूना भरना: सुपारी महीन-महीन काट कर चाँदी की कटोरी में रखना; कपूर, मर्जार-कस्तूरी आदि मिला कर तम्बाकू तैयार करना और उसे चाँदी की नलियों में भर कर रखना; नरम-नरम पानों के साथ लौंग, इलायची, गरी केसर आदि—चाँदी की तश्तरी में सजाना, आदि—करनेवाली भी कात्यायिनी अम्मा ही थीं।

सूर्यास्त के समय तक पाचकों का काम पूरा हो गया। वर्षा भी रुक गई। दालान और सामने के आंगन में इन्द्र के मणि-मन्दिर की जैसी शोभा फैली हुई थी। पश्चिम की ओर के दरवाजे पर खड़ी होकर कात्यायिनी अम्मा ने लाल झालर लगे हुए सफेद मंडप को, मखमली गद्दों और तकियों को, पलंग के चारों ओर बिछाई गई विशिष्ट चटाइयों को और मशाल जैसे जलनेवाले दीप को देखा और अत्यन्त सन्तुष्ट होकर वे घर के अन्दर चली गईं। यह सब सजावट देखने के लिए कुछ नौकरों ने शंकु आशान् को आमंत्रित किया। शंकु आशान् ने उत्तर दिया—"छोकरो, मेरे साथ खिलवाड़ करने आये तो याद रखना, मार-मार कर ठीक कर दूंगा—कहे देता हूँ इसी तरह भुनभुनाते हुए आशान् इस समारोह में भाग न लेने का निश्चय करके अपने आयुधागार में ही लेट रहे।

पारुक्कुट्टी (कात्यायिनी अम्मा की बेटी) की हालत का अनुमान तो पाठक कर सकते हैं। उत्तरी हिस्से में भी लोगों का आना-जाना अधिक होने के कारण वह घर के अन्दरूनी कमरे में ही बनी रही। स्नान आदि नित्यकर्म के बाद जब वह अपने ऊपर आनेवाली मुसीबत को टालने के उपाय सोचने में निमग्न थी, तभी कात्यायिनी अम्मा कुछ गहने आदि लेकर उसके पास पहुँचीं। उन्होंने कहा—"तंकम् ! (मेरी सोने जैसी बेटी !) एक काम करो—ये उलक्केट्टु, कण्ठशरम् और नालुपन्ती गले में पहन लो; और यह तक्का भी कान में डाल लो। अरे ! यह नाक की लौंग फेक क्यों नहीं देती ? आओ, मेरे पास आओ। पायल और कड़े मैं ही पैरों में पहना दूं। और देखो ये कपड़े। अपने जरी के कपड़े ही तुम्हारे लिए लाई हूँ। पारुक्कुट्टी ने इन सब बातों का कोई उत्तर नहीं दिया। न वह मां की बात मानने के लिए आगे ही बढ़ी।

कार्त्यायनी—मेरी प्यारी बेटी ! बाल सूखे न हों तो सामने जूड़ा मत बाँधना । यह फूल लगा लो । और तंकम् ! काली बिन्दी भी लगा लो ।

पारु०—समझ में नहीं आया, यह सब किस लिए ।

कार्त्यायनी—जैसे कुछ जानती ही नहीं । यही तो···। सुनो, मेरा कहना मान जाओ !

पारु०—किसलिए, यह तो बताइये ।

कार्त्यायनी—(बेटी के पास जाकर धीरे से) किसलिए, यह मुझे कहना ही पड़ेगा ? आज···आज, बड़े तम्पि साहब यहाँ आ रहे हैं ।

पारु०—आते रहें, उससे मुझे क्या ?

कार्त्यायनी—तुम रूठ क्यों रही हो ? किसी ने तुमसे कोई पहाड़ उलटाने को कहा है ? कपड़े-अपड़े पहन कर जरा ठीक-ठाक क्यों नहीं रह सकतीं ? यही तो कहती हूँ, ज्यादा क्या ? शायद—शायद—वे—तुमको देखना चाहें—तो ?

पारु०—मुझे देखना चाहेंगे ? क्या इतने अभद्र हैं वे ?

कार्त्यायनी—किसी लड़की को देखना चाहें तो उसमें अभद्रता क्या है ? यह कहाँ का कानून है ? क्या खूब ! अगर वे तुमसे विवाह करना चाहते हों तो ?

पारु०—तो विवाह करें तब देख लें ।

कार्त्यायनी—लड़की को देखे बिना कहीं विवाह होता है ?

पारु०—तो बताइये—लड़का ही लड़की को देखने निकल पड़े, यह हमारे समाज की रीति है ?

कार्त्यायनी—तुम्हारा क्या मतलब है ? उनके सिवा और कौन आये ?

पारु०—उनके पिता या मामा आकर क्यों न देखें ?

कार्त्यायनी—ओहो ! उनके पिता, हमारे महाराजा स्वयं तो यहाँ जरूर पधारेंगे ! जरूर होनेवाली बात है ! "पहले से गर्भिणी" वाली कहावत है । फिर अभी बीमार भी हैं ।

पारु०—तो मामा आ सकते हैं ।

कार्त्यायनी—जो हैं ही नहीं, तुम्हारे लिए अब पैदा करेंगे ?

पारु०—ऐसा है तो नाते-रिश्तेदारों में से कोई आ जाये ?

यह बात सुन कर कार्त्यायनी अम्मा सोच में पड़ गई कि अब क्या जवाब दिया जाये । आखिर भेदोपाय ही काम में लाने का निश्चय करके बोलीं—"अपने लिए क्या अच्छा है, यदि नहीं जान सकतीं, तो दूसरों का कहना मानना चाहिए । यह तो ऐसी स्थिति हो गई है कि न पानी में, न जमीन में । तुम

किसका ध्यान लगाये बैठी हो ? तुमने ही तो वह पत्र पढ़ा था ? तुम्हारा ही कहना काफी है कि वह झूठा था ? बस, बैठी रहो राह देखती ! आखिर तुम्हें ही तो दुःख झेलना पड़ेगा ?"

पारु०—इससे भी बढ़कर दुःख क्या है ?

कात्यायनी—किससे बढ़कर ?

पारु०—तम्पि साहब की पत्नी बनने से ।

कात्यायनी—क्यों, उनमें क्या कमी है ? प्रतिष्ठा नहीं ? धन नहीं ? सौन्दर्य नहीं ?...

पारु०—यह सब है । परन्तु इससे भी बढ़कर जो गुण होना चाहिए वह नहीं है, बस !

कात्यायनी—ओह ! क्या है वह तुम्हारा बड़ा गुण ? साहब की बुद्धि ओछी है ! मेरी बेटी की बुद्धि तो मनुष्य की बुद्धि से ऊपर है ! अच्छा कहो तो !

पारु०—(परिहास सुनने पर भी अपना गौरव छोड़े बिना) मनुष्य के कुछ सहज गुण होते हैं । जिस आदमी में उन गुणों का अभाव हो उसकी पत्नी बनने से बढ़कर स्त्री के लिए और कोई नरक नहीं है ।

कात्यायनी—यह प्रवचन मेरी समझ में नहीं आता । तुम्हारा इतना कहना काफी नहीं है कि उनमें कोई गुण नहीं है ।

पारु०—अच्छा, अम्मा, ! आप ही बताइये उनका कोई सद्गुण ।

कात्यायनी—(जरा सोच कर) हाय राम ! देरी भी हो रही है ! यह क्या कुमति है । उनके जितना शौर्य किसमें है ?

पारु०—ठीक है ! आपको याद होगा, अम्मा ! हमारे करुमन के जितना शौर्य...

कात्यायनी अम्मा ने पारुक्कुट्टी की बात पूरी नहीं होने दी । बीच में ही वे चिल्ला उठीं—बदतमीज कहीं की ! इतना मत बढ़ो । बहुत बढ़ोगी तो संकट में पड़ जाओगी । तम्पि साहब को कुत्ता बना रही हो ?

पारु०—ऐसा मैंने नहीं कहा । शौर्य बहुत से मनुष्यों और जानवरों का भी सहज गुण होता है । परन्तु बहुत-से विशेष गुण केवल मनुष्यजाति में ही दिखलाई देते हैं । उनमें से एक भी तम्पि साहब में है, इसमें मुझे शंका है । यही मैंने कहा । आप क्यों व्यर्थ रुष्ट होती हैं ?

कात्यायनी—जो कहूँ, उस सब का उलटा जवाब देते जाना ! अच्छी शिष्टता है ! तुम बड़ी रीति-रिवाज की बात करती हो । यह तम्हारी कहाँ की रीति है ?

पारु०—कहीं की भी नहीं होगी । पर मेरी इस रीति से किसी की कोई हानि तो नहीं होती न ?

कात्यायनी--होती कैसे नहीं ? जरूर होती है । और स्वयं तुम्हारी ही होती है ।

पारु०—अपनी भलाई की मैं स्वयं विरोधी बनूंगी ? कभी नहीं ।

कात्यायनी—हाँ, हाँ ! जानती हूँ ! बहुत समर्थ हो ! लाड़ करके बिगाड़ रखा है । बाप से पले बेटे ऐसे ही होते हैं ! तुम्हें घमंड है कि पूछनेवाला कोई नहीं । ठहरो, मैं सब सिखा दूंगी ।

पारु०—माँ, आप मुझे क्यों बेकार दुःखी करती हैं ? मेरे दिल की हालत जरा भी सोचे बिना, मेरे भविष्य के बारे में बिलकुल ख्याल किये बिना इस प्रकार कहने में आपको कुछ नहीं लगता ? मैं जो कहती हूँ उसमें कुछ तथ्य है या नहीं, जरा सोच कर देखिये । फिर, चाहे तो मुझसे नाराज हो लीजिये ।

कात्यायनी—तथ्य ! तथ्य ! तुम्हें तथ्य का क्या ज्ञान है ? बेकार ही मैंने यह काम शुरू किया । अब लज्जित होना पड़ेगा । अभी वे आ भी पहुँचेंगे । हाय भगवान ! इससे तो मैं तंग आ गई !

पारु०—आपने अनर्थ को स्वयं बुलाया है । अब दूसरों को दोष क्यों देती हैं ?

कात्यायनी—हाँ, मैंने बुलाया है । पर किसके लिए ? स्वयं आनन्द से रहने के लिए ? (आत्मगत् जैसे, पर जोर से) क्या अब मार-पीट करूँ ? मुहूर्त के समय ही इस तरह उलट जाये तो क्या होगा ? (शान्ति से) मेरी लाड़ली है न ? जरा सोचो तो कितनी शरम की बात होगी ? तुम तो समझदार हो, मेरी तंकम् !

पारु०—इतनी जल्दी ऐसा हो जायेगा, मैंने सोचा भी नहीं था । मैं क्या करूँ ? पता नहीं क्यों, पर तम्पि साहब के प्रति जरा भी आदर होता ही नहीं । हमारा मेल हो ही नहीं सकता । फिर, आप स्थिति को अधिक क्यों बिगाड़े ?

... ...

कात्यायनी—छिः ! कौन हो तुम यह बोलनेवाली ? तुम्हारी शिष्टता का कहना ही क्या है ! तुम मेरी कोख से पैदा ही नहीं हुई । जो चाहो, करो । जैसा भाग्य में लिखा होगा, वैसा ही तो सब होगा ।

चिन्ताविष्टयायसीता

कुमारन् आशान्

[कुमारन् आशान् (1873-1924) आधुनिक मलयाली कवियों की सुविख्यात त्रिमूर्ति में से एक हैं—शेष दो हैं, उल्लूर और वल्लत्तोल। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद ये श्री नारायण गुरु के प्रभाव में आ गये। उनकी सहायता से इन्हें बंगलोर, मद्रास तथा कलकत्ता जाकर संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। कुछ समय तक इन्होंने पिछड़ी जातियों की उन्नति के लिए संयोजित "श्री नारायण धर्म परिपालन योगन्" के मंत्री का काम और उस संस्था के मुखपत्र "विवेकोदयम्" का सम्पादन किया। इन्होंने अनेक भावना-पूर्ण, गीतिमय खंडकाव्यों की रचना की, जिनमें एक नया दृष्टिकोण प्रति-बिम्बित हुआ। ये काव्य ही मलयालम साहित्य को उनकी मुख्य देन हैं। वीणपूवु, नलिनी, लीला, दुरवस्था, चंडालभिक्षुकी, प्ररोदनम्, चिन्ताविष्टयाय सीता और करुणा इनकी मुख्य रचनाएँ हैं। इन्होंने प्रबोधचन्द्रोदयम् नाटक तथा सौन्दर्यलहरी काव्य का संस्कृत से मलयालम् में अनुवाद किया और "विवेकोदयम्" में अनेक गद्य रचनाएं धारावाहिक रूप में प्रकाशित कीं। 1921 में वेल्स के राजकुमार ने एक दुशाला और स्वर्ण-कंकण भेंट करके इन्हें सम्मानित किया। 1924 में पल्लना नदी में नौका-दुर्घटना से इनका स्वर्गवास हो गया। दुर्घटना केरल के तृक्कुन्नपुड़ा नामक स्थान के निकट हुई थी। जिस काव्यांश का अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है वह "चिन्ताविष्टयाय सीता" से लिया गया है, जिसमें आश्रम तथा आश्रमवासियों की प्रशंसा की गई है, और पुत्रों के अयोध्या जाने पर सीतादेवी की चिन्ता-गति का चित्रण किया गया है—सम्पादक]

करुणा का स्रोत

अहो! यह शान्तिदायी तपोवन! जलते हुए महावनों के समीप का शीतल सरोवर है यह, या लहरायमान सिन्धु का तीर है?

ये मुनीन्द्र-पत्नियाँ, जो अपने कपोलों की दीप्ति को ईर्ष्या-रूपी धुएं से आच्छादित नहीं करतीं, जो इन सौम्य उटजों के कभी न बुझनेवाले दीप हैं, सदा आनन्द से रहें !

इनके हृदयों से तरु, पक्षी, मृग, नर और सुर—सभी पर एक समान स्रवित होनेवाली सरल स्नेहधारा मुझे याद आती है।

अनल, सूर्य, चन्द्र, वन शैल आदि में, और वेदों में भी, किसी प्रकार की चंचलता के बिना स्थिर रहनेवाली इनकी आस्तिक बुद्धि, इनका श्रद्धामय विश्वास, मुझे स्मरण हो आता है।

इस भूमि में श्रुतियों के समान आदरणीय और प्रयतात्मा, ये ऋषि-जननियां अपने आचार-व्यवहार के द्वारा ही विहित और अविहित कार्यों का निदर्शन करती हैं।

इतिहास, पुराण और अन्यान्य सत्कथाओं की धारा बहा कर, सभी की चेतनारूपी लताओं को सींच कर, ये उन्हें फल-फूलमय बना देती हैं।

जो व्रत-निष्ठा में रहनेवाले पति की सेवा में ही निर्वृति प्राप्त करती हैं, जो परिशुद्ध रागवती हैं, जिन्हें भोग-माया का लोभ तनिक भी नहीं व्यापता, जो पति को देवता मानती हैं—ऐसी इन सती देवियों की जय हो !

सब स्मृतियां भले ही विस्मृत हो जायें, सब श्रुतियां भले ही काल-रूपी समुद्र में डूब जायें, परन्तु अति पावन शीलवाली ये सतीजन जहाँ रहती हैं, वह भूमि सदा धन्य रहेगी।

ये श्रेष्ठ वनिताएं करुणा की स्रोतस्वनियां बन गई हैं। इनकी संगति के कारण ही उन मुनियों के हृदय में भी आर्द्रता आ जाती है, जो अनिवार्य विरक्ति से रूखे बन गये हैं।

त्रिगुणों को पार कर समाधि में लीन रहने के कारण तीनों लोकों को तृणवत् माननेवाले प्रबुद्ध महाकवि अपने मृत्युवशग प्रिय के विरह से कातर पक्षी पर करुणार्द्र हो उठें, इसका यही कारण है।

किरणावली

उल्लूर

[तिरुअनन्तपुरम् के पास उल्लूर नाम का एक गांव है। वहाँ जन्म लेने के कारण ये कविवर उसी नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका पूरा नाम है—उल्लूर एस० परमेश्वर अय्यर। ये इस शताब्दी में प्रख्यात कवित्रयी में से एक थे। इनका जन्म 1877 में हुआ था। इन्होंने तिरुअनन्तपुरम् में शिक्षा पाई और एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। भूतपूर्व तिरुवितांकूर राज्य में इन्होंने चीफ सेक्रेटरी जैसे उच्च पदों को विभूषित किया। उमाकेरलम् महाकाव्य और कर्णभूषणम्, पिंगला, भक्तिदीपिका, चित्रशाला, प्रेमसंगीतम्, आदि अनेक खण्डकाव्य तथा किरणावली, तारहारम्, हृयद-कौमुदी, तप्तहृदयम्, अमृतधारा इत्यादि अनेक कविता-संग्रह उल्लूर की रचनाएं हैं।

इनकी सांस्कृतिक तथा साहित्यिक गवेषणाओं का सुफल "विज्ञान दीपिका" नामक ग्रंथ के चार भागों में और "केरल साहित्य चरित्रम्" अर्थात् केरलीय साहित्य के बृहत् इतिहास में सुप्रतिष्ठित है। "साहित्य चरित्रम्" में मलयालम, संस्कृत और तमिल—तीनों भाषाओं के साहित्य का इतिहास दिया गया है। इन्होंने अनेक प्राचीन मलयालम ग्रंथों का सम्पादन भी किया है, जिसमें मुख्य हैं—रामचरितम्, गिरिजाकल्याण्म्, व्यवहारमाला, पटप्पाट्टु, भद्रोत्पत्ति, केशग्रहणम्, त्रिपुरदहनम्, बकवघम्, दूतवाक्यम्, आदि। "जंगम साहित्य-ज्ञानकोश" कहनेवाले इन विद्वोत्तन्स कविवर का स्वर्गवास सन् 1949 में हुआ—सम्पादक]

कन्याकुमारी का सूर्योदय

हे नित्य ! सर्व-संरक्षक ! भगवन !
सत्यरूपी केन्द्र-स्तम्भ खड़ा करके,

उसके ऊपर नीलाम्बर का वितान तान कर,
चारों ओर रेशमी पर्दे टांग कर,
सूर्य और सुधाकर—दो देदीप्यमान विद्युत-दीप
तथा तारों के मनोहर ग्लोब भी लटकाकर,
समुद्र-रूपी इन्द्र-नील रत्न-पंक्तियों के बीच
भूमण्डल-रूपी हरा रत्न जमाकर,
तुमने जो यह मानुष-गोल-रूपी
रत्न-खचित मण्डप निर्मित किया है,
वह चारों ओर, चौबीसों घंटे और प्रतिदिन अति मनोहर है।

तो भी, मेरे प्रभु !
प्रभात होने पर मेरे हृदय-रूपी कमल-पुष्प में
अरुण किरण का प्रवेश जो कौतुक-उन्माद उत्पन्न करता है,
वह निराला ही है।
तुम्हारे दिव्य दर्शन साक्षात् पाकर
जब तक मैं बन्धन-मुक्त न हो जाऊँ, उस दिन तक
दूसरा कौन-सा प्रकृति-प्रदर्शन
मुझे इतना धन्य बना सकता है ?

देखो तो—
विस्तृत आकाश की छाया के समान ढक लेने वाले
घने अंधकार-रूपी कम्बल को हटाकर
अंगड़ाई लेता हुआ यह महिमण्डल-रूपी कांचन-मण्डप
सीधे खड़े होकर पूर्व-दिशा की ओर देखता है।
चन्द्र, जैसे संध्या से प्रभात तक नृत्य करता-करता थक गया हो,
अपने मित्र-नक्षत्रों के साथ,
गगन-रूपी रंगमंच छोड़कर चला गया है।

इधर-उधर, एक-आध तारा
झिलमिलाता, डूबता, अव्यक्त होता दिखलाई पड़ता है—
मानो, माँ से बिछुड़ा हुआ बच्चा हो,
अथवा किसी अप्सरा की नासिका से गिरा हुआ
उसके नासाभरण का कोई हीरा हो।

क्यों संकोच करते खड़े हो, प्यारे बच्चो !
पीछे मुड़कर कहीं भाग जाओ !
ज्योतिस्वरूप के आगमन का समय हो गया,
रास्ते से दूर हट जाओ ।
इस आकाश-वीथी को
मन्दानिल ने अपनी झाड़ू से झाड़ दिया है,
मंदाकिनी ने अपने जल से सींच दिया है,
मंदार-वृक्ष ने इस पर पुष्प-वर्षा कर दी है—
इस प्रकार शीतल और सुन्दर बनी इस वीथी के
गज-गामिनी सुन्दरियों की मंजुल नूपुर-ध्वनि से
गूंज उठने का समय हो गया है ।
मेरे मित्रो !
दूसरे किसी स्थान पर जाकर छिप जाओ !

यह देखो, सीधे पूर्व दिशा की ओर—
चक्रवाल की सीमा पर सागर से निकल कर
तीर-प्रदेश पर खेलनेवाले
जल-जन्तु-समूह के समान,
अमरगणों द्वारा कृषि के लिए
समुद्र में बनाये गये, बाँध के समान,
अपना शिर थोड़ा-सा ऊपर उठाकर देखनेवाले
सुन्दर मैनाक पर्वत के समान,
प्रभात-देवी
समुद्र को छूती हुई लम्बी नील मेघ-माला पर
धीरे-धीरे स्वर्ण-रेखाएं खींचने लगी—
मानो, सुन्दर रेशमी वस्त्र के अंचल में
लाल रेशमी जरी लगा रही हो !

प्रभात-देवी ! तुम क्या कर रही हो ?
मनोहर नील-रत्न की पीठिका पर
माणिक्य-रत्न जड़ रही हो ?
या एक-एक कनक-मुद्रा को जल्दी-जल्दी कसौटी पर कस रही हो ?
या बड़े-बड़े गज-वीरों को

पूर्वाभिमुख एक पंक्ति में खड़ा करके
कांचन मस्तकावरण पहना रही हो ?
या आकाश के नीलाम्बुद रूपी पात्र में
तारागण-रूपी द्रव पका रही हो ?

हे देवी ! तुम क्या कर रही हो ?
मेघ के ऊपर विद्युल्लता को
पेंच लगाकर जमा रही हो ?

इस महामंगल पर्व में आनन्दित होकर
प्राची की सखियां
उसके शरीर पर केसर का क्षीर-रस छिड़क रही हैं।

मन्दस्मित-मुखी ! हे प्राचीदेवी !
यह नया रेशमी वस्त्र धारण किये हुए तुमको
दूर खड़ा हुआ मेरा चित्त-रूपी मधुकर
उस कमलिनी के समान देख रहा है, जिसमें
तुम्हारे स्वामी पुरन्दर की आँखों के समान दलवाले
लाल कमल भरपूर विकसित खड़े हैं।
अरे ! रंग तो बदलने लगा !
केसर-द्रव एकदम कांचन-द्रव बन गया !

चक्रवाल के अग्र-भाग में
किसी अग्रिम ज्योतिस् के प्रक्रम का
परिस्फुरण हो रहा है।
पीले, लाल, काले, सफेद—
सब रंगों से रंजित दिखाई देनेवाला यह स्थान
पीले रंग में मग्न होकर
लोक-मनोहर बन गया है।

उधर देखो—
उस दिशा में जहाँ आकाश और समुद्र मिल रहे हैं।
वहाँ कोई कनकमय वस्तु ऊपर उठ रही है।
दोनों आँखें मलकर देखो !

यह क्या है ?
आदि-कूर्म की पीठ है ?
या दिव्य श्वेत रंग का कमल-नाल है ?
या कड़्.ड्.ली[1] फल का;
जलता हुआ कड़ा कवच है ?
या आरती का नया थाल है ?
या कोमल कल्प-लता का सुन्दर गमला है ?
या स्वर्ण से बनी बलि-शिला का उपरि-भाग है ?
या देवों की क्रीड़ा-नौका की छत है ?
या पूजा के लिए बनी समुद्र की कावटी[2] है ?
या समुद्र-देवी का केलि-व्यंजन है ?
या शुक्र के राज-छत्र का आवरण है ?
या एक नया कांचन द्वीप है ?
या परिशुद्ध पीयूष-कुम्भ है ?

---

1. लाल रंग का एक फल, जिसके ऊपर कड़ा कवच होता है।
2. पूजा का एक अर्ध-वर्तुलाकार उपकरण, जिसे कार्तिकेय के भक्त हाथ में लिये घूमते हैं।

साहित्य मंजरी

वल्लत्तोल

[कवि का पूरा नाम है···वल्लत्तोल नारायण मेनवन (1879-1958)। वल्लत्तोल घर का परम्परागत नाम है। ये उस त्रिमूर्ति के एक अंग थे जिसका इस शताब्दी के पूर्वार्ध में मलयालम कविता पर पूर्ण आधिपत्य था। दक्षिण मलबार के मंगलम् नामक स्थान में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने प्राचीन पद्धति से संस्कृत और मलयालम की शिक्षा पाई थी। चित्रयोगम् नामक महा-काव्य और ऋतुविलासम्, बन्धनस्थनाय अनिरुद्धन, गणपति, मग्दलन मरियम, बधिरविलापम्, शिष्यनुं मकनुम्, कोच्चु सीता, अच्छनुं मकनुम्, आदि अनेक खण्डकाव्य इनकी रचनाएं हैं। इन्हें महाकवि की पदवी मिलने का मुख्य निमित्त बनी इनकी साहित्य-मंजरी, जो 9 भागों में प्रकाशित हुई है और जिसमें इनकी लगभग डेढ़ सौ कविताएं संग्रहीत हैं। वीर-शृंखला और दिवास्वप्न भी इनके कविता-संग्रह हैं। इन्होंने संस्कृत के अनेक ग्रंथों का मलयालम में अनुवाद भी किया है। उनमें मुख्य हैं...ऋग्वेद, वाल्मीकि रामायण, वामण-पुराण, मत्स्य-पुराण, पद्मपुराण, अग्निपुराण, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, बोधिसत्वाबदान-कल्पलता आदि। विभिन्न ललितकलाओं में भी इनकी अभिरुचि थी। कथकली नाम से प्रसिद्ध केरलीय नाट्य-नृत्य कला के पुनरुद्धार के लिए इन्होंने कला-मण्डलम् की स्थापना की, जिसे बाद में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। इस सब के अलावा ये एक महान राष्ट्रीय कवि थे। राष्ट्रीय काव्य-क्षेत्र में इन्होंने वही दर्जा प्राप्त किया था, जो श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर और कविवर भारती का था। यहाँ महात्मा गाँधी पर लिखी इनकी कविता का अनुवाद दिया जा रहा है। मूल कविता साहित्य-मंजरी के चौथे भाग में प्रकाशित हुई है और वह राष्ट्रीय कविता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है—सम्पादक]

मेरे गुरुदेव

यह लोक ही अपना कुटुम्ब है;
ये पौधे, घास, कीट-पतंग भी अपना परिवार हैं;

त्याग ही अपनी सम्पत्ति है; विनय ही अपनी महत्ता है :
ऐसे योग के ज्ञानी मेरे गुरुदेव की जय हो !

तारों के समान रत्नमाल्य पहनाया जाये तो भी ठीक
और बादलों के समान काले कीचड़ से पोत दिया जाये तो भी ठीक !
न किसी से संग है, न लिप्तता !
सम स्वच्छ आकाश जैसे हैं मेरे गुरुदेव !

मेरे गुरुदेव ऐसी चाँदनी हैं जो व्यर्थ कभी किसी पर छाया नहीं डालती;
वे ऐसे दुर्लभ तीर्थ-सरोवर हैं, जिसमें दुर्जन्तु नहीं रहते;
वे ऐसे मंगल-द्वीप हैं, जो धुआँ नहीं करता;
वे ऐसी माणिक्य-महानिधि हैं, जिस पर नागों की छाया भी नहीं पड़ी ।

बिना शस्त्र के युद्ध करनेवाले,
बिना पुस्तक के पुण्य का अध्यापन करनेवाले,
बिना औषधि के रोग नष्ट करनेवाले,
बिना हिंसा-दोष के यज्ञ करनेवाले हैं, मेरे गुरुदेव !

शाश्वत अहिंसा है उन महात्मा का व्रत !
शान्ति उनका इष्टदेव है सदा से ही !
वे कहा करते हैं···"अहिंसा-रूपी कवच
किस तलवार की धार को मोड़ नहीं देता ?'।

मेरे गुरुवर्य के शोभन वचन हैं···
धर्म का अपनी पत्नी से सरस संलाप,
आर्य-सत्य की सभा का संगीत,
मुक्ति के रत्न-नूपुरों की झनकार ।

प्रेम से लोक को जीतनेवाले उन योद्धा के लिए
प्रणव ही धनुष है, आत्मा बाण और ब्रह्म लक्ष्य है !
ओंकार को भी धीरे-धीरे पिघला कर वे
उसका सूक्ष्मतम अंश ही अपने लिए लेते हैं ।

भगवान ईसा का त्याग,
साक्षात् श्रीकृष्ण का धर्मरक्षोपाय,
रन्तिदेव की चरम करुणा,
श्रीहरिश्चन्द्र का सत्य और
हजरत मुहम्मद का स्थैर्य—
सब एक साथ एक व्यक्ति में देखना हो तो
जाइये मेरे गुरुदेव के पास,
अथवा पढ़िये उनकी जीवनी।

उनके चरणों का दर्शन एक बार पा लेने पर
कायर भी वीर बन जाता है; क्रूर भी कृपालु,
कृपण भी दानवीर, परुषवादी भी प्रियवादी,
अशुद्ध भी परिशुद्ध, आलसी भी परिश्रमी बन जाता है।

सदा शान्तिमय उन तपस्वी के सामने
आततायी की तलवार नीलोत्पल-माला है;
दंष्ट्रा-कराल केसरी मृग-शावक है;
भयंकर लहरें उछालनेवाला सागर क्रीड़ा-पुष्करिणी है !

गंभीर कार्य-चिंतन के समय उन नेतावर के लिए
कानन-प्रदेश भी कांचन-सभास्थल है।
निश्चल समाधि में स्थित होने पर उन योगीवर के लिए
नगर-मध्यस्थल भी पर्वत-गुहान्तर है।

शुद्ध स्वर्ण ही उपजाता है
उस धर्म-कर्षक का सत्कर्म—खेत-खेत में !
और उस सिद्ध की आँखें स्वर्ण को भी
इस भूमि की पीली मिट्टी जैसा देखती हैं।

उस महाविरक्त के लिए, संपूज्य साम्राज्यश्री भी
चामर-चलन के द्वारा दांत दिखानेवाली पिशाचिनी है।
किसी मृदुतम, कुसुम-कोमल चरणों को भी पीड़ा न हो,
इसलिए जो महात्मा स्वातंत्र्य के दुर्गम पथ पर रेशमी पांवड़े
बिछा रहे हैं, वे महानुभाव स्वयं वल्कल का टुकड़ा ही पहन कर
सदा अर्ध-नग्न रहते हैं !

गीता को जिस भूमि ने जन्म दिया,
वही इस प्रकार के कर्मयोगी की प्रसविनी बन सकती है।
हिमवत और विन्ध्याचल के बीच के प्रदेश में ही दिखाई दे सकता है
शम की साधना करनेवाला ऐसा सिंह।
गंगानदी जिस भूमि में प्रवाहित होती है, उसमें ही
उग सकता है मंगल-फल देनेवाला ऐसा कल्प-पादप।
नमस्ते गत-तर्ष ! नमस्ते दुराधर्ष !
नमस्ते सुमहात्मन् ! नमस्ते द्जगगुरो !

सूर्यकान्ति

जी० शंकर कुरुप

[वर्तमान मलयालम कवियों में श्री जी० शंकर कुरुप सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। 1965 में ये भारतीय ज्ञानपीठ के सर्वप्रथम पुरस्कार से सम्मानित किये गये। इनका जन्म 1901 में हुआ। इन्होंने अपने गाँव नयत्तोड़ु के विद्यालयों में शिक्षा पाई और बाद में स्वपरिश्रम से "विद्वान्" की उपाधि प्राप्त की। इनकी जीवन-यात्रा माध्यमिक पाठशाला के भाषा-अध्यापक के रूप में आरम्भ हुई। धीरे-धीरे ये एरणाकुलम् के महाराजा कालेज में मलयालम के प्राध्यापक बन गये। "जी" नाम से भी ये प्रसिद्ध हैं। इनकी प्रकाशित पुस्तकों की संख्या 40 के लगभग है, जिनमें विशेष उल्लेखनीय हैं—साहित्य कौतुकम् के चार भाग, सूर्य-कान्ति, पूजा-पुष्पम्, पथिकण्टे पाट्टु, निमिषम्, मुत्तुकल, वेल्लिप्परवकल्, विश्व-दर्शनम्, पाथेयम्, वनगायकन्, ओडक्कुड़ल और जीवन-संगीतम्। कालिदास के मेघदूत और श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि का इन्होंने मलयालम में अनुवाद भी किया है। इस वर्ष भारत-सरकार ने इन्हें "पद्मभूषण" की उपाधि से सम्मानित किया है—सम्पादक]

खोज

कवि ने पूछा—मेरे नन्हें से पवन !
अनन्त प्रेम से उत्कण्ठित होकर तुम किसे खोज रहे हो ?
विश्राम का नाम नहीं, न कोई दूसरी चिन्ता,
रात और दिन उन्मत्त के समान भाग रहे हो !
यह नन्हा-सा सुमन शायद तुम्हारा उन्माद-चापल्य देख कर ही
घबरा कर ऊपर-नीचे देख रहा है।
अपनी प्यारी का नाम ही तुम अव्यक्त शब्दों में गुनगुनाते रहते हो ?

तुम्हारी प्रेम-लहरी के कारण ही तुम्हारे पैर लड़खड़ाते हैं ?
दूसरे किसी को भी ऐसा दिव्य स्नेह से उत्पन्न उन्माद
नहीं मिल सकता !
इसी कारण मैं तुमसे असूया करता हूँ !
खोजो, मेरे सखा ! खोजो !
बांसों के इस घने जंगल की हँसी की परवाह मत करो···
ये अन्तःसार-विहीन हैं !

एक निःश्वास के साथ उस अनिल ने कवि के अंगों को
दयापूर्वक सहलाते हुए गद्गद स्वर में कहा···
श्रीमन् ! आपका अनुमान गलत नहीं है,
मैं घूम रहा हूँ अपने प्रेम-सर्वस्व के मुख-दर्शन के लिए ।
हमें एक-दूसरे से विलग हुए चिरकाल हो गया,
परन्तु स्मृति बीच में खड़ी होकर मुझे व्याकुल करती है ।
आदि-प्रभात में जब मैं जागा तब यह भूमि और वह आकाश
एक-दूसरे को देखते शोक-मूक होकर खड़े थे ।
मेरा वक्षस्थल शून्य हो गया था···हाय ! मेरी प्यारी
शायद राग और विश्वास की परीक्षा लेने के लिए
कहीं चली गई थी !
एक-दो शुभ्र तारा-रूपी मन्दार-कुसुम
उसकी वेणी से खिसक कर पड़े हुए थे ।
उसकी मधुर नूपुर-ध्वनि सुनी मैंने,
परन्तु सोचा···यह पक्षियों के कण्ठ से निकला नाद है ।
उसके अलक्तक लगे पैरों के चिह्नों को देखा
तो मान लिया कि वह प्रभात की अरुणिमा है ।
उसने अपनी सोने की अंगूठी निकालकर डाल दी थी,
परन्तु मुझ मूर्ख ने समझ लिया कि वह सूर्य-बिम्ब है ।
आकाश में यादगार के लिए वह जो रेशम का रूमाल छोड़ गई थी
उसे मेघ का टुकड़ा समझकर मैंने सावधानी से नहीं रखा :
उसके पैरों से सिकुड़न पड़े चादर के अग्र का
मैंने यह मान कर चुम्बन नहीं किया कि
वह विस्तृत सागर होगा ।
उसी दिन से मैं खोज रहा हूँ···

उस रस-स्वरूपिणी को;
अपने-आपको भी भूलकर
चारों दिशाओं में घूमता रहता हूँ।
किसी ने उसको देखा नहीं;
जो कहता है—"देखा",
उसने सचमुच देखा नहीं;
देखने के लिए मुझे स्वयं प्रयत्न करना होगा।

जिस प्रेम-धाम को मैं खोज रहा हूँ,
वह है ही नहीं···ऐसा कहनेवाली जिह्वा
मेरे लिए विश्वास योग्य नहीं।
मोगरा के इन मोहन पुष्पों का चुम्बन करते समय
उस कोमल मुख के मनोहर सौरभ्य की मुझे याद आती है।
प्यास के कारण वन-कुल्याओं में होठों को लगाता हूँ
तो उसके स्निग्ध लोल कपोलों की शीतलता का स्मरण हो आता है।
जिसे मैं खोज रहा हूँ वह मेरी प्यारी यदि मिथ्या है
तो मन उसकी स्मृति में उन्मत्त नहीं हो सकता था।
लता की मृदु पल्लव-करतल शय्या में
नीहार-रूपी शुभ्र चादर के ऊपर लेटने पर भी
मुझे शान्ति नहीं मिलती···
कभी न कभी अपनी प्रिया के पास पहुँच पाऊँगा,
यह आशा ही मेरी एकमात्र शक्ति है।

निशीथिनी में, जंगल में,
थककर, बोधहीन होकर मैं गिर जाता हूँ,
तब अदृश्य होकर प्रियतमा समीप आती है,
ठंडे हाथों से मुझे सहलाती है,
मैं चौंककर उठता हूँ और
क्षणभर के लिए आनन्दित होता हूँ···
पर हाय ! केवल रोने के लिए !

नींद में डूबे हुए सागर को मैंने जाकर जगाया
और प्रार्थना की···

"सखे ! जरा बताओ तो मेरी प्यारी कहाँ है ?"
परन्तु, "यह दयनीय कोई पागल है"···ऐसा सोचकर
वह फेन-रूपी दाँतों को कटकटाता हुआ जोर से गरज पड़ा ।

पादपों की शाखाओं को हिला-हिला कर
उत्कण्ठा के साथ कितना मैंने पूछा,
परन्तु उन्होंने कम्पित शरीर से केवल इतना कहा कि
"काश ! हमने देखा होता !"···
इससे अधिक कोई समाधान उन्होंने नहीं दिया ।

ध्यान-मग्न होकर निश्चल बैठे पर्वत की गोद में गिरकर
मैंने विलाप किया, परन्तु
उसने केवल आकाश की ओर अंगुलि-निर्देश कर दिया ।
परन्तु आकाश ने तो मौन से ही व्यक्त कर दिया कि
मुझे कोई जानकारी नहीं है ।

क्या मेरा यह दुस्सह विरह निरन्त है ?

संस्कृत साहित्य

चयन :
डा० वें० राघवन्

अनुवाद :
डा० सत्यकाम

अनुक्रम

ऐतिहासिक समीक्षा

1. वेदोपनिषद्

(क) वेद—1. ऋग्वेद 825

2. (क) कृष्ण यजुर्वेद 830

(ख) शुक्ल यजुर्वेद 831

3. अथर्ववेद 831

(ख) उपनिषद्—1. ईशोपनिषद् 837

2. कठोपनिषद् 839

2. धर्मशास्त्र

1. मनुस्मृति 846

3. पुराणेतिहास

1. रामायण 850
2. महाभारत 864
3. भगवद्गीता 881
4. भागवत महापुराण 890

4. योग और वेदान्त

1. पातंजल योगसूत्र 898
2. व्यासकृत ब्रह्मसूत्र (चतुःसूत्री पर शांकर भाष्य) 902

5. राजशास्त्र

1. कौटिलीय अर्थशास्त्र 909

6. काव्य शास्त्र और नाट्यशास्त्र

1. भरत मुनि का नाट्यशास्त्र 913
2. आचार्य मम्मट का काव्य प्रकाश 916

7. श्रेण्य साहित्य (गद्य, पद्य और नाटक)

कालिदास	• अभिज्ञान शाकुन्तल (नाटक)	920
	• रघुवंश (महाकाव्य)	932
	• कुमारसंभव (महाकाव्य)	933
	• मेघदूत (खंड काव्य)	934
	• विक्रमोर्वशीय (नाटक)	,,
	• मालविकाग्निमित्र (नाटक)	936
शूद्रक	• मृच्छकटिक (नाटक)	,,
भारवि	• किरातार्जुनीय (महाकाव्य)	937
माघ	• शिशुपालवध (महाकाव्य)	938
भवभूति	• महावीर चरित (नाटक)	939
	• मालती माधव (,,)	,,
	• उत्तररामचरित (,,)	940
सुबन्धु	• वासवदत्ता (गद्यकाव्य)	942
हर्षवर्धन	• नागानन्द (नाटक)	,,
महेन्द्रविक्रम	• भगवदज्जुकीय (नाटक)	943
मुरारि	• अनर्घराघव (नाटक)	,,
विशाखदत्त	• मुद्राराक्षस (नाटक)	944
राजशेखर	• बालरामायण (नाटक)	945
	• विद्धशालभंजिका (नाटक)	,,
त्रिविक्रम	• नलचम्पू (चम्पू)	946
महिमभट्ट	• व्यक्तिविवेक (काव्यशास्त्र)	,,
अभिनन्द	• रामचरित (काव्य)	947
कृष्णमिश्र	• प्रबोधचन्द्रोदय (नाटक)	,,
श्रीहर्ष	• नैषधीयचरित (महाकाव्य)	,,
जयदेव	• प्रसन्नराघव (नाटक)	948
वेदान्तदेशिक	• संकल्पसूर्योदय (नाटक)	949
उद्दण्ड	• मल्लिकामरुत (नाटक)	,,
कल्हण	• राजतरंगिणी (इतिहास)	950
भर्तृहरि	• नीतिशतक	951
	• श्रृंगारशतक	955
	• वैराग्यशतक	956
अमरुक	• अमरुकशतक	958

8. विविध काव्य-संग्रह

(क) कुछ कवयित्रियां

[1. विज्जका 2. मारुला 3. सुभद्रा 4. लक्ष्मी 959
5. विकटनितम्बा 6. मोरिका 7. शीलाभट्टारिका] 960

(ख) कुछ अन्योक्तियां

भल्लट	• भल्लटशतक	961
मुरारि	• संग्रहश्लोक	962
गवयी-धोयी	• संग्रहश्लोक	,,
अज्ञात	• संग्रहश्लोक	,,
नीलकण्ठ दीक्षित	• अन्यापदेशशतक	963
(ग) कुछ विशेष	1. प्रेम	965
	2. शैशव	969
	3. मैत्री	,,

9. गद्य काव्य

बाण	• कादम्बरी-चन्द्रापीडजन्म	971
	• हर्षचरित	973
दण्डिन्	• दशकुमारचरित	975

10. सुभाषित-संग्रह

1. ज्ञात कवि 978
2. अज्ञात कवि 981

ऐतिहासिक समीक्षा

संस्कृत भारत-यूरोपीय भाषा-परिवार की सर्वाधिक प्राच्य भाषा है । सबसे बाद में इससे जुदा हुई और इसकी सर्वाधिक समीपवर्तिनी भाषा 'ईरानी' या 'फारसी' है । पश्चिम की ओर सबसे दूरवर्तिनी, इसी परिवार की भाषा 'केल्टिक' या 'आयरी' है । इस परिवार की भाषाओं में संस्कृत का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । कारण यह है कि इसके व्याकरण, स्वरूप और साहित्य की इस रूप में रक्षा हुई है कि जब आधुनिक काल में पाश्चात्य विद्वानों और भाषाविदों ने संस्कृत को फिर से खोजा या उसे पहचाना, तब इसके ज्ञान से ही 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' जैसे आधुनिक विज्ञान की नींव पड़ी और भारोपीय (भारत-आर्य या भारत-जर्मन) परिवार का रूप-गठन संभव हो सका ।

इन भाषाओं में से संस्कृत में ही सर्वाधिक प्राचीन और सर्वाधिक व्यापक साहित्य सुरक्षित है । एशिया माइनर में हुई पुरातत्व-सम्बन्धी खोज ने इसका अस्तित्व ईसा से कम-से-कम डेढ़ सहस्राब्द पूर्व तक सिद्ध किया है । उधर इसके ज्योतिष सम्बन्धी आन्तरिक प्रमाण इसका अस्तित्व ईसापूर्व चौथी सहस्राब्दी में भी ले जाते हैं ।

भारत में संस्कृत का इतिहास इस प्राचीनतम समय से ही अक्षुण्ण रूप में सुरक्षित रहा है । यह इतिहास है वृद्धि, प्रभाव और स्थिरीकरण का । अपने प्राचीनतम साहित्य—वेदों—में इसकी अभिव्यक्ति अनेक बोलियों के रूप में हुई । धीरे-धीरे उत्तर-वैदिक और वीर महाकाव्यों के काल में से गुजरती हुई यह एक आदर्श रूप की ओर बढ़ती रही । यह रूप इसने ईसापूर्व आठवीं से चौथी शताब्दी के बीच पा लिया था । इसे सम्पन्न करने में एक के बाद एक महान वैयाकरणों ने योगदान दिया । इसके कार्यों की परिणति सम्पूर्णता और संक्षेप की दृष्टि से अद्वितीय माने जाने वाले पाणिनिकृत व्याकरण के रूप में हुई । इसके बाद ही आदर्श या शास्त्रीय संस्कृत महान कवियों, नाटककारों, वैज्ञानिकों और दार्शनिकों की अभिव्यक्ति के माध्यम रूप में

प्रतिष्ठित होती है। 'संस्कृत' शब्द के द्वारा स्वतः दोहरी भावना पता चलती है। एक ओर यह परिष्कार और सौन्दर्य की द्योतिका है, दूसरी ओर इसकी शुद्ध और प्रत्यययोग्य व्याकरणात्मक संरचना का आभास मिलता है।

जन-साधारण में आने वाले भाषा के रूप, प्रादेशिक स्वातन्त्र्य के विविध लक्षणों के साथ प्रगति करते गए और बहुत भिन्न-भिन्न प्रदेशों में बोले जाने के कारण ये ही विविध प्राकृतों के रूप में स्वीकार किये गए। इन प्राकृतों के नाम या तो दिशानामों के अनुसार—प्राची आदि—पड़े या किसी प्रदेश के लोगों के नाम पर—यथा नाटकों में प्रयुक्त शौरसेनी और प्रगति काव्य में प्रयुक्त महाराष्ट्री; या फिर किसी प्रदेशविशेष के नाम पर—यथा मागधी और अर्धमागधी, जिन्हें बौद्ध और जैनधर्म के संस्थापकों ने अपने धर्म प्रचार के लिए प्रयोग किया। किसी भी भाषा का जीवन और वर्तनी निरन्तर लौकिक स्वातन्त्र्य और शिष्टों के अनुशासन एवं आदर्शस्थापना के बीच झूलते रहते हैं। नाटक और कविता में प्रयुक्त प्राकृतों को भी वैयाकरणों ने अपने विचार का विषय बनाया और परिणामतः वे भी 'आदर्श' बन गईं। कुछ सदियों बाद इनसे परवर्ती अन्य जनभाषाओं का विकास हुआ, जिन्हें हम अपभ्रंश कहते हैं। ये ही हैं वर्तमान भारतीय-आर्य भाषाओं की तत्काल-पूर्वज भाषाएँ।

अपभ्रंशों ने वर्तमान भाषाओं को लगभग 1000 ई० के आसपास जन्म दिया। इस समय को हम संस्कृत भाषा और साहित्य के इतिहास में एक विभाजक रेखा के रूप में मान सकते हैं। हम कह सकते हैं कि इसके बाद से साहित्यिक रचनात्मक गतिविधि अधिक से अधिक रूप में स्थानीय भाषाओं के माध्यम से होने लगी। पर, तब भी संस्कृत रचनात्मक, वैज्ञानिक एवं अन्य सभी विद्वत्तापूर्ण सृजन का माध्यम बनी रही। प्राची में जयदेव के 'गीत-गोविंद' जैसे अभूतपूर्व रसात्मक काव्य; कश्मीर में कल्हण के ऐतिहासिक ग्रन्थ-सृजन; कन्नौज के श्रीहर्ष जैसे प्रतिष्ठित कवियों की संस्कृत के प्रसिद्धतम पांच काव्यों में से एक 'नैषधीय' जैसी काव्यकृतियां; मालवा के भोज-जैसों की आलोचनाकृतिया; अपनी पद्धति और तर्कसरणि से भारतीय अध्यात्मचिन्तन की दिशा पलट देने वाले मिथिला के गंगेश-जैसे धुरन्धर नव्य नैयायिकों की कृतियां; दक्षिण भारत के रामानुज जैसे दार्शनिकों की कृतियां; धर्मशास्त्र के सम्पूर्ण सारग्रन्थ और टीकाग्रन्थ, आदि तो अनवरत रूप में संस्कृत माध्यम से ही रचे जाते रहे, बल्कि शिलालेखों और ताम्रपत्रों पर लेखों के रूप में भी उस ऐतिहासिक सामग्री का सृजन होता रहा, जिससे हमें शासक राजाओं के इतिहास और दैनिक जीवन के महत्वपूर्ण तथ्यों का पता चलता है। विद्वत्-समाज में अब भी संस्कृत ही माध्यम थी और इसे ही सम्पर्क-भाषा का कार्य

करना पड़ रहा था। प्रादेशिक भाषाओं में उत्कृष्ट साहित्य के प्रथम ग्रन्थ संस्कृत के अनुवाद मात्र थे। ये सभी भाषाएँ शब्दराशि, दार्शनिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि, विषय-वस्तु और साहित्यिक शैलियों के लिए संस्कृत पर ही पूरी तरह आश्रित थीं।

दक्षिण में भी, जहां कि द्रविड़ परिवार की भाषाएँ प्रचलित थीं और उनमें से तमिल का तो साहित्य भी बहुत पुराना है, संस्कृत ने उसी प्रकार की प्रेरणा और सृजन का कार्य साहित्यिक, दार्शनिक और धार्मिक विकास के क्षेत्र में किया। इन दक्षिण भाषाओं ने संस्कृत को इतना अधिक अन्तर्हित किया और उनमें से कम-से-कम तेलुगु और मलयालम में यह इस सीमा तक अन्तर्गृहीत हुई कि उनका स्वरूप ही लगभग 'द्विभाषी' हो गया।

चाहे अपने से उत्पन्न या अन्य किसी परिवार से, जिस भी भाषा से संस्कृत का सदियों तक सम्बन्ध हुआ, उसके साथ उसका भरपूर आदान-प्रदान हुआ। इसने स्थानीय लिपि अपनाई, स्थानीय भाषा और साहित्य के मूल्यों और सौन्दर्य को अपनाया और उन सबको अपने प्राप्त उत्तराधिकार को जी भरकर लुटाया। यही वह विशेषता थी, जो आरम्भ में संस्कृत और प्राकृत के आपसी सम्बन्धों में भी रही थी।

अपने चार सहस्राब्दी के जीवन में संस्कृत असाधारण रूप से सृजनात्मक और उत्पादक रही है। मौलिक सृजन की दृष्टि से भी इसकी देन अपार है। इसकी ज्ञान की शाखाएँ और उत्पादन-क्षेत्र भी समान रूप से व्यापक हैं। भारतीय विचार और जीवन-प्रवृत्ति के निर्धारण में विशेष हाथ बँटाने वाले, बल्कि उन्हें विशेषता प्रदान करने वाले, धर्म और दर्शन के क्षेत्र में प्रत्येक प्रकार का संभव विश्लेषण और पहुंच प्राप्त की गई और परिणामतः अनेकों 'वाद' प्रचलित हुए। गद्य के क्षेत्र में लम्बे और उत्कृष्ट उपन्यासों से लेकर लघुकथाएं, आख्यायिकाएं तक लिखी गई। काव्य के क्षेत्र में आश्चर्यजनक लंबे महाकाव्यों से लेकर मुक्तक की छोटी से छोटी कविताएँ भी लिखी गई। दृश्यकाव्यों के क्षेत्र में दस अंक के नाटकों से लेकर एकांकी तक और भाण, व्यायोग, आदि परीक्षणात्मक प्रयोग भी लिखे गए। व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त, शब्दकोश, नक्षत्रविज्ञान, गणित के सभी अंग, गणित और फलित ज्योतिष, समाज विज्ञान और कामविज्ञान, राजनीति, सैन्यविज्ञान और वास्तुविद्या आदि सभी वैज्ञानिक और अर्धवैज्ञानिक विषयों की रचनाएँ सामने आईं और उन 'चौंसठ कला' के नाम से विख्यात विविध ज्ञान-शाखाओं, ललित कलाओं और रसात्मक विद्याओं के विषय में भी पर्याप्त रचना हुई, जिनके ज्ञान ने दैनिक जीवन की कलाओं को अधिक पूर्ण, कुशल और आनन्ददायक

बनाने में योगदान किया। इन कलाओं की सूची जो वात्स्यायन के कामसूत्र में दी गई है, जो कि स्वयं प्रेम की कला और विज्ञान का वर्णन करता है और उस पर लिखी गई टीका बता रही है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा कितनी सर्वांगीण और व्यापक थी :

"गीत, वाद्य, नृत्य, आलेख्य, पत्रकर्तनकला, मस्तकसज्जा, आटे से या कुसुम से या तण्डुल से रचित गृहकुट्टिमसज्जा या मन्दिरकुट्टिमसज्जा, सीकर फूलों की कढ़ाई, कुशलतापूर्वक पुष्पसज्जा या पुष्पव्यवस्था, ओष्ठ या अन्य अंगों का रंजन, शैत्य के लिए विशिष्ट पाषाणों से कुट्टिम का निर्माण, ऋतुमनोऽनुकूल विष्टरसज्जा, जलक्रीड़ा के रूप में ढोल की भांति जल पर खेलने के दो प्रकार व्यक्तिगत आकार और शारीरिक योग्यता के आधार पर दुर्लभ औषधीय नुस्खों की सज्जा का ज्ञान, पुष्पहारों की सज्जा, विविध रूप में पुष्पों से शिर और केशों की सज्जा, ऋतु, प्रसंग और भाव के अनुकूल परिधान और प्रसाधन, शंख या हस्तिदन्त से कर्णाभरणादि का निर्माण, प्रसाधनसामग्री, आभूषण, निर्माण एवं योजन, इन्द्रजाल, रसायन—वाजीकरण, हस्तकौशल, पाकविद्या, विविध पेय सज्जा, सिलाई-बुनाई, धागे और रस्सी के कौशल, इसी तरह के अन्य समययापक कौतूहल, तन्त्रीवाद्य वीणा और आदातवाद्य डमरू का अभ्यास, प्रहेलिका, चित्रकाव्य आदि (ये भी मनोविनोद या पराभिभव के लिए हैं), श्रोताओं के उचित काव्यपाठ की योग्यता, नाटक या कथा की विवेचना और रसभोग की योग्यता, समस्यापूर्ति, गृहसामग्री को बनाने की तक्षक-योग्यता या तक्षण द्वारा छोटी-बड़ी अन्य चीज़ों का निर्माण, भवन-निर्माण योग्यता, मुद्रानिर्माण योग्यता, रत्नपरीक्षा में योग्यता, खनिजविद्या, वनस्पतिविद्या, कुक्कुटद्वन्द्व के प्रशिक्षण और प्रदर्शन की योग्यता, मेष-द्वन्द्व आदि क्रीड़ाएँ, शुक-सारिका को बोलने में प्रशिक्षण, केशों के स्नेहन और प्रसाधन की कला, गूढ़ोक्ति आदि को समझने की योग्यता, वन्यजातियों की बोलियों को समझने की योग्यता, अन्य प्रादेशिक भाषाओं का ज्ञान, दिव्यीकरण, यन्त्रपुत्तलिकादि का निर्माण, विविध काव्यसामग्री का स्मरण, अपरिचित काव्य के पाठ में भी सहयोग, अक्षरसंकेतों से ही पूरे पद या अनुच्छेद का अर्थ-परिज्ञान, काव्यात्मक उपहार, कोश, छन्द और काव्यशास्त्र की उपजीव्य सामग्री का ज्ञान, कैतव या अपह्नवपूर्ण उक्तियों के प्रयोग से अन्यों के लिए भ्रम उपस्थित करना, द्यूतोपयोगी गोपन-कौशल, विविध वस्तुओं अथवा पशुओं को दाँव पर लगाकर जुआ खेलना, गुड़िया, कन्दुकादि बनाकर बच्चों को क्रीड़ा में सहायता पहुँचाना और खेलने में समर्थ बनाना, पुस्तकों और आत्मानुशासन के लिए आवश्यक सद्व्यवहार की पद्धतियों का ज्ञान और सैनिक सफलता के

लिए साधनभूत अश्वारोहरण, हस्त्यारोहण आदि शारीरिक अभ्यास, जिसमें केवल सैन्य-विज्ञान और कला ही गृहीत नहीं होते, बल्कि सफलता के साधक यज्ञसमारोहादि भी गृहीत होते हैं एवं शिकार आदि।"

जयमंगला टीका इनमें ही आगे बताती है, "लिपियों का ज्ञान, वाग्मिता, मुखौटे बनाने की योग्यता, मानपरिज्ञान, विविध व्यवसायों और पेशों का परिचय, पशुचिकित्सा, बहुमुखी संस्कृतियों और ठग-सम्प्रदायों से परिचय, विविध क्रीड़ाओं और विनोदों में कुशलता, सांसारिक व्यवहार का ज्ञान और एक साथ बहुत सी बातों को आरम्भ और निर्वाह करने की सामान्य योग्यता।"

जब हम यह देखते हैं कि सामान्य रचना-प्रक्रिया के बाहर जाकर इनमें से अधिकांश विषयों पर ग्रंथ रचना संस्कृत में हुई, तब हमें संस्कृत में रचित साहित्य के विस्तार, रुचि और मूल्यों का यत्-किंचित् परिचय मिलता है। सच तो यह है कि इस साहित्य की प्रमुख और गौण धाराएं कुछ इतनी असीम-सी हो गईं कि उनके लिए 'संग्रह' और 'कोश' (विश्वकोश) ग्रन्थ बनाने पड़े। विद्याकर (1100 ई०) का 'सुभाषित-रत्नकोश', श्रीधरदास (1205 ई०) का 'सूक्तिकर्णामृत', वल्लभदेव की 'सुभाषितावली', जल्हण (1247 ई०) की 'सूक्ति-मुक्तावली' और 'शाङ्र्गधरपद्धति' (1363 ई०) आदि तो 'संग्रह' ग्रन्थों में आते हैं; जबकि चालुक्यराज सोमेश्वर द्वारा 1131 ई० में संगृहीत 'मान-सोल्लास' या 'अभिलषितचिन्तामणि' एवं इक्केरीकेलादीपति वसवनायक द्वारा 1709-10 में संगृहीत 'शिवतत्वरत्नाकर', आदि 'कोश' के वर्ग में आते हैं।

इस संग्रह में संस्कृत के दिए गए उद्धरणांश, सामान्य योजना के अनुसार, इस विशाल साहित्य के केवल कुछ भाग में से ही दिये जा सके हैं। इस पर भी यह ध्यान रखा गया है कि यह छोटा-सा अंश भी उन रच-नाओं का प्रतिनिधि हो, जो एक ओर तो सारे साहित्य की आधारभूत हैं तथा जिनसे समस्त सृजनात्मक गतिविधि की भूमिका के रूप में स्थित विचारों और संस्कृति के आदर्शों का निर्माण हुआ कहा जा सकता है तथा दूसरी ओर जो संस्कृत प्रतिभक्ति की उच्चतम उपलब्धियाँ कही जा सकती हैं।

'वेद' वास्तव में संस्कृत के सारे ही काव्य और विचार साहित्य की नींव के रूप में है और पद्य, गद्य, आदि विविध साहित्यविधाओं के साथ-साथ बाद में विकसित होने वाली सभी ज्ञानशाखाओं के उद्गम-स्रोत हैं। 'ऋग्वेद' विविध छन्दों में निबद्ध विविध देवताओं की प्रशस्ति में रचित काव्यमय सूक्तों का संग्रह है, जिसमें सृष्टिरचना, एवं अन्य नानानामरूप देवों द्वारा उपलक्षित 'परम पुरुष', जैसे अधिक महत्वपूर्ण विषयों और धर्मनिरपेक्ष विषयों पर भी, कुछ सूक्त संगृहीत हैं। देवों की स्तुतियां और प्रशस्तियां

यज्ञादि के अवसर पर प्रयोग में आती थीं। इस प्रकार हम बहुत आरम्भ से ही संस्कृत साहित्य में कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के रूप में दो स्पष्ट धाराओं को विकसित रूप में पाते हैं, जिनमें से पहले में यज्ञक्रिया और विधि का समावेश था, दूसरे में बौद्धिक विचार और ध्यान आदि की प्रधानता थी। इन दोनों धाराओं का अधिक विवेचन ही उन 'ब्राह्मणों' के रूप में वेदों का उत्तर भाग बनाता है, जो अधिकांशतः गद्य में लिखे गए हैं और जिनके 'आरण्यक' नाम से ख्यात अन्तिम खण्ड भारतीय दार्शनिक चिन्तन के आदिस्रोत 'उपनिषदों' के आधार हैं।

इस ऋग्वेद के देवस्तुतिपरक सूक्त ही यज्ञों में गान के रूप में भी प्रयुक्त होते थे। ऋग्वेद का यह संगीतात्मक रूपांतर ही 'सामवेद' कहलाता है, इससे ही भारतीय संगीतकला का विकास हुआ माना जाता है। यज्ञक्रियाओं से आन्तरिक रूप में सम्बद्ध 'यजुर्वेद' की दो प्रमुख शाखाएँ हैं : कृष्ण और शुक्ल। चतुर्थवेद—'अथर्वेद' क्रियात्मक, लौकिक, लोकप्रिय और जनगीत-सम्बन्धी सामग्री से, सामंजस्य और सौमनस्य के सूक्तों से, कृषि की सफलता के सूक्तों से, युद्धविजय के सूक्तों से और रोग से मुक्ति सम्बन्धी सूक्तों से भरा पड़ा है।

वेदों के अध्ययन, रक्षा और प्रयोग के सहायक अंगों के रूप में छह वेदांगों का विकास हुआ। ये थे : शिक्षा (ध्वनिविज्ञान), व्याकरण, निरुक्त, छन्द, कल्प और ज्योतिष। ये अंग भावी वैज्ञानिक साहित्य के सूत्रपात करने वाले भी सिद्ध हुए। व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि ने भाषा का बहुत ही सूक्ष्म एवं सर्वागीण वर्णन प्रस्तुत किया, जिसे उससे ही प्रेरणा पाए हुए आज के भाषाविद् आज भी पूरी तरह अधिगत करने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। 'शुल्ब सूत्रों' में वैदिक वेदियों के निर्माण के प्रसंग में ज्यामिति के जो सिद्धान्त स्पष्ट हुए हैं, उनमें वह सब कुछ अन्तर्गृहीत हैं, जिसे बाद में पाइथोगोरस आदि ने आविष्कृत किया। गणित के क्षेत्र में अंक, स्थानीय मूल्य और दशमलव पद्धति आदि भारतीय प्रतिभा के ही आविष्कार हैं।

विविध कल्पसूत्रों से सम्बद्ध होकर ही धर्म, समाजसम्बन्धी और नागरिक नियम, नियम-विधान आदि की पुस्तकें, धर्मसूत्र या धर्मशास्त्र के रूप में बनी; जिनमें मनु और याज्ञवल्क्य द्वारा बनाई गई स्मृतियां प्रसिद्ध हैं। इन पुस्तकों को ही स्मृति कहा जाता है, जिनकी संख्या पर्याप्त है तथा जिनके लेखक विभिन्न ऋषि माने गए हैं। सारा प्राचीन साहित्य ही दो विभागों में बांटा गया है : श्रुति और स्मृति। आगम और वेद नाम से कही जाने वाली 'श्रुति' वह ज्ञान है, जो 'दिव्यप्रकाश' के रूप में स्पष्ट हुआ और जो मुखपरम्परा से होता हुआ आदिवर्ती ऋषियों से हम तक पहुंचा है। इसके विप-

रीत स्मृतियों का निर्माण यद्यपि ऋषियों ने ही किया है, तथापि पुस्तक रूप में वे 'स्मृतवस्तु' को ही लिए हुए हैं, और पूर्व शिक्षाओं के 'संग्रह' के लेखमात्र हैं। इस प्रकार 'श्रुति' के ही ज्ञान और उपदेश का विस्तार और प्रसार स्मृति के नाम से कहलाता है।

धर्मशास्त्रों में जीवन के प्रति समग्र भारतीय प्रवृत्ति और उसके ढांचे का जो विनिश्चय हुआ, उसे संहत और सरल रूप में चार विभागों में बाँटा जा सकता है : चतुर्वर्ग या चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष; चार वर्ण—ब्राह्मण (ज्ञानरत), क्षत्रिय (युद्धचतुर), वैश्य (व्यापारी) और शूद्र (सेवक); चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास।

परम्परागत वर्गीकरण के अनुसार 'स्मृति' के विषयों में देव-कथाओं, आख्यानों, सृष्टि, प्रलय, देवोत्पत्ति, परम्परा, राजवंश एवं राजाओं के इतिवृत्त आदि का भी समावेश हो जाता है। बाद से ये ही 'इतिहास' और 'पुराण' के रूप में व्यापक विस्तार पा गये। इतिहास के रूप में दो महाकाव्य हैं : सूर्यवंशी राम के जीवन पर आश्रित 'रामायण' और चन्द्रवंश के कौरवों और पाण्डवों पर आश्रित 'महाभारत'।

वैदिक साहित्य में पहले ही महाकाव्यात्मक और देवकथात्मक वर्णनों के बीज मिलते हैं। आदिकाव्य के रूप में विख्यात 'रामायण' एवं काव्य के रूप में माना जाने वाला 'महाभारत',—दोनों ही—बाद में विकसित होने वाले समस्त संस्कृत काव्य के आधार, आदर्श और प्रेरणास्रोत के रूप में 'उपजीव्य' माने गए हैं। इन महाकाव्यों का जन्म वेदों की शिक्षा के पूरक रूप में और उसके उपबृंहण के लिए हुआ; विशेष कर नर-नारी के नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक पहलुओं से सम्बद्ध बातों के लिए। बहुत प्राचीन काल से ही ये दोनों महाकाव्य राष्ट्र के लिए आंखों की तरह रहे हैं। वे इसका पथ-प्रदर्शन करते रहे हैं और राष्ट्र के आगे राम और युधिष्ठिर की सत्यनिष्ठा और पवित्रता के आदर्शों एवं, सीता और सावित्री के पातिव्रत और सतीत्व के आदर्शों को दिखाते रहे हैं। विपरीत उदाहरणों के रूप में उनमें यह भी बताया गया है कि लोभ, ईर्ष्या और छल के कारण रावण और दुर्योधन का दुःखान्त कैसे हुआ? काव्य और नाटक से भी इन्हीं आदर्शों को जनता के सामने, उदाहरणों के रूप में, रखने की आशा की गई कि किस प्रकार धर्म की जय और अधर्म की पराजय होती है? महाभारत में प्राचीन वीर काव्यात्मक वर्णनों, कथाओं, नैतिक प्रवचनों और उपदेशों को समग्र रूप में आत्मसात् कर लिया गया। इस प्रकार वह प्राचीन इतिवृत्तों का, प्रतिभा एवं संस्कृति का, भंडार बन गया। इसके लक्षाधिक श्लोकों में वह सब-कुछ ही अन्तर्गत हो

जाता है, जिसे हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के रूप में जीवन का उद्देश्य मानते-जानते रहे हैं।

महाभारत में संगृहीत सभी प्रवचनों में 'भगवद्गीता' ही सबसे महान है। उसमें भयानक आत्मघाती युद्ध के आरम्भ से पूर्व संशयापन्न और हताश पाण्डवों के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी अर्जुन को प्रतीकात्मक रूप में उसके सारथी पद पर आसीन भगवान् कृष्ण कर्ममार्ग का उपदेश देते हैं। गीता के सात सौ श्लोकों में ही प्रधानभूत ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग के रूप में भारतीय दर्शन की सभी मुख्यतम और विविध धाराओं का सर्वाधिक संहृत व्याख्यान आ गया है। प्राचीन परम्परा और आधुनिक युग की धारणा के अनुसार भगवद्गीता को सही रूप में, भारत में और बाहर भी, उस एक पुस्तक के रूप में सर्वाधिक महत्वपूर्ण ध्यान दिया गया है, जो हिन्दुत्व के सारतत्व की प्रतिनिधि रचना कही जा सकती है। इसमें निःस्पृह होकर स्वधर्मपालन, फल में अनासक्ति रख कर किया गया कर्मयोग और स्वार्थरहित सेवा के रूप में कर्म का जो उपदेश दिया गया है, उसने आधुनिक भारत को स्वभावतः महान् प्रेरणा दी है और तिलक, अरविन्द तथा गाँधी जैसे नेताओं के कार्य को अनुप्रमाणित और प्रमाण-बद्ध किया है।

पुराणों की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। संस्कृत-ग्रन्थों में उनका अपना वर्ग पर्याप्त बड़ा है, जिसमें अट्ठारह महापुराण, उतने ही लघुपुराण, और अनेकों उस शीर्षक—पुराण—के अन्तर्गत आने वाले लघुग्रन्थों का समावेश हो जाता है। इनमें सर्वाधिक लोकप्रिय है : 'श्रीमद्भागवत'। ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति पर इसके बल ने, विशेषकर कृष्णावतार के प्रति इनकी भावावेशमय अभिव्यक्ति ने, लोगों के हृदयों को अत्यधिक आकृष्ट किया और भक्ति आन्दोलनों के नए आवेगों और प्रादेशिक भाषाओं में रसमय साहित्य के सृजन की देश भर में प्रेरणा दी।

वेदों के प्रकरण में उपनिषदों की चर्चा भी हुई है। उन्हें ही वेदान्त कहा जाता है। इन दोनों नामों से यही ध्वनि पुष्ट होती है कि उनका विकास, आध्यात्मिक ज्ञान के रूप में, गुरु और शिष्य के सान्निध्य और एकान्त में हुए विचार-विमर्श से हुआ था। इसीलिए उन्हें सभी प्रकार के ज्ञान (=वेद) का शिखर या अन्त माना जाता है। दस या तेरह मुख्य उपनिषद उस 'चरम तत्व' का वर्णन करते हैं, जो ब्रह्माण्ड का स्रोत और तत्व है। वे इसके निर्वैयक्तिक और वैयक्तिक पक्षों और ज्ञान और ध्यान के द्वारा इसकी अनुभूति के उपायों का वर्णन करते हैं। ज्ञान और ध्यान को त्याग, तपश्चरण और सत्य, नीति और अहिंसा के गुणों द्वारा सम्पुष्टि मिलती है। वेदान्त सूत्रों के

रूप में उपनिषदों की शिक्षाओं को संक्षिप्त सूत्रों का रूप दे दिया गया है ।

साहित्यिक प्रणाली के रूप में सूत्र संस्कृत भाषा की निजी विशेषता है। इनका जन्म स्मरण की सरलता की दृष्टि से हुआ। वेदों के प्रायः सभी सहायक साहित्य के लिए इनका प्रयोग हुआ। सूत्र उन अर्थपूर्ण गद्योक्तियों को कहते हैं, जो कम से कम शब्दों में—एक शब्द तक में भी, बटन की भांति—सारे वक्तव्य या भावधारा को भर देती हैं और जिन्हें गुरु की व्याख्या द्वारा ही समझा जा सकता है। एक ओर तो संपूर्ण संस्कृत व्याकरण पूरी तरह से पाणिनि के सूत्रों में बन्द हो गया, जिसने इस पद्धति को पूर्णता की चरम सीमा तक पहुँचाया, दूसरी ओर इससे विभिन्न दृष्टिकोणों को व्याख्या के रूप में वृद्धि भी मिली। ये मतभेद वेदान्तसूत्रों के विषय में भी स्पष्ट हुए, जिनकी रचना उपनिषदों में वर्णित 'परम आत्म तत्व 'ब्रह्म' के आधार पर हुई और जो इसी लिए 'ब्रह्मसूत्र' कहलाए, इनकी व्याख्या में भी एक ओर इन्हें 'एकेश्वरवाद' और 'अद्वैतवाद' का उद्घोषक बताया गया और दूसरी ओर इनमें 'द्वैतवाद' और 'देववाद' को ढूँढ़ा गया। 'अद्वैतवाद' के सबसे महान् भाष्यकार और उद्घोषक आदि शंकर हैं, जिन्होंने अपनी व्याख्याओं और देशव्यापी पदयात्राओं के द्वारा हिन्दुत्व को पुनरुज्जीवित और जीवन्त कर दिया। उन्होंने निर्वैयक्तिक ब्रह्म पर आधारित शुद्धाद्वैतवाद को दृढ़ आधार पर स्थापित किया तथा वैदिक जीवन-पद्धति और विभिन्न ब्रह्म के देवता रूप अवतारों के प्रति भक्ति पर भी बल दिया। शंकर स्वयं भाष्यकारों की लम्बी परम्परा के बाद हुए थे और उनके बाद भी उनसे भिन्न मत वाले व्याख्याकारों की एक लम्बी परम्परा हुई। इन भिन्न मत वालों में रामानुज का नाम मुख्य है, जिन्होंने एक ऐसे द्वैत-दर्शन का प्रचार किया, जिसमें ब्रह्म को व्यक्तिसम्पन्न माना गया था और भक्ति को उसकी प्राप्ति का साधन। इसके अतिरिक्त हैं : आनन्दतीर्थ, जिन्होंने 'द्वैतवाद' का पक्षपोषण किया।

भारतीय दर्शन की अन्य धाराओं में, जिनके अपने मूलसूत्र एवं भाष्य और अनुभाष्य हैं तथा साथ ही जिनके अपने स्वतन्त्र एवं पूर्ण विचारग्रन्थ भी हैं, मुख्य हैं : जैमिनि कृत मीमांसा, जिसमें वेदों की व्याख्या और वैदिक कर्मों के विधान और सिद्धान्त वर्णित हैं और इसलिए 'ब्रह्ममीमांसा' की तुलना में जो 'कर्ममीमांसा' कहलाती है। गौतम कृत न्याय, जिसमें आध्यात्मिक और त्रैतवाद पर आधारित तर्क-पद्धति को आधार बनाया गया है और जिसके अनुसार ब्रह्म या ईश्वर केवल 'स्रष्टा' के रूप में निमित्त मात्र है, वेदान्त की भाँति उपादान कारण नहीं; कणाद कृत 'वैशेषिक' न्याय से सम्बद्ध होकर भी इस दृष्टि से विशेष था कि उसमें ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में परमाणु-सिद्धान्त

का प्रतिपादन किया गया था; कपिल कृत सांख्य, जिसका पूर्वाभास उपनिषदों में ही मिल चुका था और जिसके द्वैतवादी दर्शन में असंख्य पुरुष और सत्वरजतम पर आधारित त्रिगुणात्मिका प्रकृति को चरम सत्य के रूप में स्वीकार किया है, तथा जिसके अनुसार ब्रह्माण्ड की सभी वस्तुओं की सृष्टि या विकास की समस्त प्रक्रिया स्वभावतः निश्चेष्ट पुरुष और वास्तविक क्रियाशील प्रकृति के संगम पर आश्रित थी एवं उक्त संगम का, प्रकृति-पुरुष के वियोग तक, रहस्य जानकर मुक्ति मिलती है; एवं छठा पतंजलि कृत योग-दर्शन, जिसमें ध्यान और समाधि एवं यम और नियमों की प्रक्रिया को क्रम-बद्ध कर दिया गया है, ताकि सांख्य में कथित पुरुष (आत्मा) और प्रकृति के विवेक को प्राप्त किया जा सके ।

समय आने पर एक या दूसरे रूप में वेदान्त ही एकमात्र व्यापक दर्शन-धारा रह गई, जबकि अन्य दर्शन सहायक के रुप में पीछे रह गए। 'न्याय' वेदान्त की व्याख्या का सहायक व्याकरण की पद्धति अपना कर बना। अन्तर यही रहा कि इसके ईश्वर-विचार का स्थान वेदान्ती ईश्वर-विचार ने ले लिया। सांख्य ने वेदान्त को त्रिगुण और अनासक्त आत्मा की धारणा प्रदान कर स्वयं को महत्वहीन कर लिया। न्याय के समान ही योग भी बौद्ध और जैन धर्मों समेत सभी मार्गों द्वारा अपनाई गई साधना पद्धति या अनुशासन का अंग बन गया। आज विश्व भर में इसका अभ्यास किया जाता है।

जब किसी ज्ञान को वैज्ञानिक ढंग से और क्रमबद्ध रूप में वर्णित किया जाता है। और उसे विचारकों और व्याख्याताओं की एक परम्परा पुष्ट करती है, तब उसे 'शास्त्र' कहा जाता है। ऊपर गिनाए छहों दर्शन 'शास्त्र' कहलाते हैं। अनुशासन के अर्थ में 'शासु अनुशिष्टौ' धातु के द्वारा 'शास्त्र' शब्द बनता है, जिसको मूलतः 'वेद' से ही सम्बद्ध माना जाता था। छहों दर्शनों को भी इसी हेतु से 'शास्त्र' कहा गया था। इन छहों को हम प्रमुख शास्त्र कह सकते हैं, क्योंकि इनमें 'मोक्ष' को जीवन का उद्देश्य चरम रूप में माना गया है। उनके बाद ज्ञान की अन्य कई सुसंगठित शाखाएं 'शास्त्र' कही जाने लगीं। ऊपर कहा 'धर्मशास्त्र' इसी प्रकार का है, जिसमें नागरिक और धार्मिक नियम एवं व्याख्या और विनियोग के सिद्धान्त विवेचित हैं तथा जो 'मीमांसा' से निकटतः सम्बद्ध हैं। चौथी शती ई० पू० चन्द्रगुप्त मौर्य के महामन्त्री, चाणक्य का अर्थशास्त्र अपने विषय की मुख्यतम रचना है, जिसमें नीति, राज्यशासन, अर्थव्यवस्था, उत्पादन, व्यापार आदि से भी अभिहित 'अर्थ' का शास्त्रगत विवेचन है। 'काम' जीवन का तीसरा उद्देश्य है, जिसमें जीवन का उपयोग और कलात्मक गतिविधि आदि आते हैं, और जिसकी सर्वोत्कृष्ट रचना है

वात्स्यायन का 'कामसूत्र'। अर्थ और काम से सम्बद्ध शास्त्रों से यह पता चलता है कि प्राचीन भारतीय मन केवल पारलौकिक ही नहीं था, बल्कि उनके द्वारा यह भी सूचना पूर्णतः मिलती है कि लोगों का जीवन विभिन्न व्यवसायों के प्रति गतिविधि और आनन्दोपभोग, किस प्रकार से सम्पन्न होते थे, किन्तु, साथ ही यह भी बता देना आवश्यक है कि इसके द्वारा जब कि एक ओर भौतिक समृद्धि और जीवन के आनन्दों का पूरा महत्व स्वीकार किया गया था, दूसरी ओर भौतिक और आध्यात्मिक वस्तुओं के तुलनात्मक मूल्यांकन को भी भुलाया नहीं गया था। इन दोनों शास्त्रों का भी अन्तिम उद्देश्य धर्म और मोक्ष के रूप में ही माना गया है। व्याकरण एवं काव्य, नाटक, संगीत, नृत्य आदि रसशास्त्र के विषयों की पृष्ठभूमि भी धार्मिक और आध्यात्मिक आधार पर स्थित है, एवं आत्मोपलब्धि के लिए 'साधना' के रूप में उनका महत्व सदा स्वीकार किया गया। इस प्रकार व्याकरण के दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण वाग्व्यापार अविनाशी अद्वैत तत्व 'स्फोट' पर आधारित है, जिसे (ग्रीक के 'लोगोस' की भांति) 'शब्दब्रह्म' या 'नादब्रह्म' कहा जाता है। संगीत-शास्त्र में यही तत्व 'नाद-ब्रह्म' कहलाता है। काव्य और नाटक को भी हृदय के अलौकिक अनुभूति की विश्रान्ति—रस—का जनक माना गया, जो आत्मलीनता की वह आनन्दात्मक दशा है, जिसे आत्मानुभूति के आनन्द या ब्रह्मानन्द का सहोदर माना गया है।

200 ई० पू० से 200 ई० के बीच होने वाले भरत से आरम्भ होकर काव्यात्मक और नाटकादि-सम्बद्ध समालोचना का, अलंकारशास्त्र और नाट्य-शास्त्र के रूप में, पर्याप्त रूप में सृजन हुआ। आज इनकी महानतम उपलब्धियां—रस और ध्वनि—पाश्चात्य आलोचकों का भी ध्यान खींच रही हैं। काव्य और नाटक का विकास महाकाव्य-काल के बाद ही हुआ। सबसे आरम्भिक नाटक भास के हैं। किन्तु, ईस्वी सन् के आरम्भ के कुछ पूर्व और उत्तर की कुछ शतियों में ही संस्कृत कवियों और नाटककारों की कृतियों के पूर्ण दर्शन होते हैं। विशिष्ट कृतियों के कर्त्ताओं में मूर्धन्य हैं कालिदास, जिनका समय कुछ लोग ईसा पूर्व प्रथम शती में, और कुछ विद्वान ईसा की चौथी शती में स्वीकार करते हैं। काव्य और नाटक के क्षेत्र में उन के पूर्व की सभी कृतियाँ उनकी कृतियों के सामने महत्वहीन हो गई। जबकि उनके बाद होने वाला सम्पूर्ण साहित्य उनकी कृतियों के अनुकरण पर बना। प्राचीन और नवीन दोनों ही अनुमानों और दृष्टिकोणों के अनुसार 'शाकुन्तल' कालिदास की प्रतिभा की सर्वोत्कृष्ट रचना ठहरती है। उनके लिखे दो अन्य नाटक, दो महाकाव्य और एक गीतिकाव्य भी है। उनका गीतिकाव्य 'मेघदूत' है, जिसमें एक विरही

उड़ते बादल को अपना दूत बनाकर अपनी दूरवर्तिनी प्रिया के पास भेजता है। बाद में तो संस्कृत और प्रादेशिक भाषाओं में भी इस गीतिपरक 'दूतकाव्य' का बहुत अधिक अनुकरण हुआ। प्रेमकथा के विकास अथवा नाटक में संयोग और वियोग-शृंगार की अभिव्यक्ति अथवा महाकाव्य लिखने आदि में कालिदास ने परवर्ती सभी कवियों के लिए आदर्श प्रतिमान स्थापित कर दिया। कालिदास की शैली अपनी सरलता, उदात्तता और ध्वन्यात्मकता के लिए प्रसिद्ध है। उनका मन भारतीय विचार और संस्कृति के आधारभूत ग्रन्थों में उल्लिखित भावों और आदर्शों को सही और पूर्ण रूप में प्रतिबिम्बित करता था।

संस्कृत के पांच महाकाव्य महान माने गए हैं : कालिदास कृत 'रघुवंश' और 'कुमारसंभव'; भारवि कृत 'किरातार्जुनीय' (550 ई०, लगभग); माघ कृत 'शिशुपालवध' (ईसा की सातवीं शती); और भारविकृत 'किराता-र्जुनीय' (12वीं शती ई०)। इन सबने कथाएं 'महाभारत' से ली हैं और उन्होंने इन्हें केवल अपनी सम्पूर्ण कविप्रतिभा से ही सम्पन्न नहीं किया है, बल्कि अपने उपार्जित विशाल ज्ञान से भी उन्हें सम्पुष्ट किया है। इस प्रकार संस्कृत कविता एक ओर काव्यात्मक आनन्द का स्रोत बन गई, तो दूसरी ओर उसके माध्यम से अन्यान्य ज्ञानांगों के क्षेत्र में प्रवेश भी सुगम हो गया।

यदि देवोपम पुरुष पर आश्रित दृश्यकाव्य (नाटक) का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण 'शकुन्तला' है, तो शूद्रक का मृच्छकटिक सामाजिक दृश्यकाव्य (प्रकरण) की दृष्टि से सर्वप्रधान है, जो अपने असामान्य चरित्र-वैविध्य और स्थिति-वैविध्य के चित्रण के कारण प्रकृति को पूरी तरह प्रति बिम्बित करता है। 700 ईसवी के आसपास भवभूति को अपने 'मालती माधव' में 'प्रकरण' के क्षेत्रमें कम सफलता मिली, जबकि परवर्ती कथा 'उत्तररामचरित' में उसकी शक्ति और संवेदना असाधारण बनकर व्यक्त हुई। इसमें सीता-बनवास का प्रकरण सम्मिलित था। इसी शती में कन्नौज पर शासन करने वाले हर्षवर्धन ने तीन नाटक लिखे, जिनमें से कालिदास के मालविकाग्निमित्र के अनुकरण पर दो प्रेमकथानक पर आधारित हैं, जब कि तीसरा 'नागानन्द' नामक बोधिसत्व के बलिदान पर आधारित है। नागानन्द का विषय संस्कृत नाटक के इतिहास में सर्वथा क्रान्तिकारी था। राजकुमार विशाखदत्त (नवीं शती) का राजनीति पर आधारित नाटक 'मुद्राराक्षस' और भी आकर्षक सिद्ध हुआ। 'नाटकीय माध्यम' की आकर्षकता के कारण कुछ दार्शनिकों ने भी इस माध्यम को अपनाया। बौद्ध महाकवि अश्वघोष (प्रथम ईसवी शती) ने 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरनन्द' नाम के दो महाकाव्यों

के अतिरिक्त 'शारिपुत्रप्रकरण' के नाम से एक नाटक भी लिखा, जिसमें बुद्ध द्वारा सारिपुत्त (शारिपुत्र) के धर्मपरिवर्तन की कथा है और जिसमें अशरीरी या भावात्मक पात्रों का भी प्रयोग किया गया है। 'आगमाडम्बर' नाम के नाटक में प्रतिभासम्पन्न कश्मीरी नैय्यायिक जयन्त भट्ट (10वीं शती) ने प्राचीन और अर्वाचीन सभी दर्शनधाराओं के आपसी टकराव को स्पष्ट करके अन्त में यह दर्शाया कि किस प्रकार शुद्ध रूप से आचरण करने पर सभी धर्म एक ही उद्देश्य की ओर ले जाते हैं। ग्यारहवीं शती में कृष्णमिश्र ने अद्वैत की स्थापना के लिए अपना नाटक 'प्रबोधचन्द्रोदय' लिखा। वेदान्तदेशिक (1268-1369 ई०) ने विशिष्टाद्वैत के लिए 'संकल्पसूर्योदय' नामक नाटक लिखा।

वेदों के अंग-भूत ब्राह्मणों के समकालीन प्राचीन संस्कृत गद्य का प्रयोग पौराणिक और महाकाव्यात्मक अनेक आख्यानों के लिए निश्चय ही किया गया था, किन्तु इन प्राचीनतम कृतियों में से कोई भी अवशिष्ट नहीं रह पाई। जो कुछ बच पाया है, उसमें परवर्ती तीन लेखकों की कृतियों का स्थान मुख्य है: सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता', बाणकृत 'कादम्बरी' नामक उपन्यास और 'हर्षचरित' नामक इतिहास-कृति, जो उसने सातवीं शती के अपने संरक्षक राजा हर्षवर्धन के तथा अपने जीवन पर लिखी और उसी शती का दण्डीकृत 'दशकुमार-चरित' जिसमें दस राजकुमारों के वृत्तों का वर्णन है। दण्डी कांची के पल्लवराज के प्रमुख दरबारी कवि थे। यदि कालिदास ने काव्य और नाटक लेखकों के लिए शैली का निर्धारण किया, तो बाण ने वही कार्य गद्य में किया। वह भाषा का अधिपति, मानव और प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षक, और शब्दालंकारों और अर्थालंकारों से भरपूर ध्वनिपूर्ण अनुच्छेदों का अक्षुण्ण स्रोत था। दण्डी भी उतनी ही चमत्कारी प्रतिभा, उतने ही सूक्ष्म निरीक्षण, और ज्ञान की व्यापकता से सम्पन्न थे; किन्तु, उनकी शैली अधिक सरल एवं समास और अलंकार के बोझ से रहित थी।

महाकाव्यात्मक शैली का प्रयोग कश्मीर में एक नए विषय के लिए हुआ, और अनेक लेखकों ने स्थानीय इतिहास को उसके माध्यम से लिखा। इस श्रेणी की जो एकमात्र रचना आज तक बच पाई है, वह है कल्हण (12 वीं शती) की 'राजतरंगिणी'। इसमें इतिहास के अन्धकारावृत आरम्भ के और दन्तकथाओं के काल से लेकर कल्हण के समय तक का सम्पूर्ण इतिहास वर्णित है। एक अन्य विधा के रूप में अपने संरक्षक अकेले एक राजा को लेकर भी महाकाव्य लिखे गए, जिनमें मालवा के सिन्धुराज को लेकर पद्मगुप्त का लिखा 'नवसाहसांक चरित' (1005 ई०) और कल्याण के चालुक्य विक्रमादित्य

चतुर्थ (1076—1121 ई०) को लेकर बिल्हण द्वारा रचित 'विक्रमांकदेवचरित' मुख्य बैठते हैं। कल्हण के वर्णन से ये भिन्न शैली के हैं। इनमें ऐतिहासिक अंश भी है, किन्तु कवित्व का अंश इनमें प्रमुख है। इस प्रकार की रचनाएं वर्तमान समय तक लिखी जाती रही हैं और लगभग एक भी ऐसा राजवंश नहीं कि जिसके एक या अनेक राजाओं को लेकर इस प्रकार का कोई काव्य न लिखा गया हो।

नवीनता की दृष्टि से जिन अन्य ज्ञानधाराओं में कविता का माध्यम प्रयोग किया गया, उनमें व्याकरण प्रमुख है, जिसके नियम और पदरचना काव्य के रूप में समझाए गए। उदाहरणार्थ भट्टि (लगभग 600 ई०) का 'रावणवध' इसी प्रकार का काव्य है। एक अन्य प्रकार का काव्य है कविराज का 'राघवपाण्डवीय,' जिसमें रामायण और महाभारत से लेकर दो भिन्न कथाओं को उन्हीं श्लोकों के माध्यम से साथ-साथ व्यक्त किया गया है। ऐसा अनेकार्थक श्लेषात्मक या समासबहुल प्रयोगों के द्वारा सम्भव हुआ है, जिनको विविध अर्थों में विभिन्न श्लेष के द्वारा प्रयोग किया गया है। ऐसे काव्यों में व्यामिश्र कथाओं की संख्या दो से अधिक भी हो सकती है। व्याकरण और भाषा पर आधिपत्य एवं पद्यरचना का चमत्कार अन्य रूपों से भी स्पष्ट हुआ; यथा, विविध प्रकार की आह्लादक कविता, एक या दो वर्णों पर आधारित पद्य, कमल, डमरू, आदि विविध चित्रात्मक रचना वाले पद्य, और प्रहेलिकापद्य। इन्हें संस्कृत की उपधाराओं के रूप में कहा जा सकता है।

काव्यों और नाटकों में संस्कृत कवियों ने सदा ही अपनी मुक्तक चित्रण-क्षमता का परिचय दिया है। इसी का परिणाम वे मुक्तक थे, जिनमें एकाकी मुक्तकों में ही किसी भाव या पुरुष, स्त्री, पुष्प और वनस्पति का समग्र और चित्रात्मक-वर्णन निहित है। इस प्रकार के मुक्तकों में एक ही विषय-प्रेम आदि—को लेकर रचे गए संग्रहों में भर्तृहरि और अमरुक के 'शतक' प्रसिद्ध हैं। प्रायः ऐसे संग्रह 'शतकों' के रूप में लिखे गए थे। भर्तृहरि के अन्य दो शतक 'नीति' और 'वैराग्य' विषयों पर हैं। मानक के व्यवहार और स्वभाव का चित्रण पशु, पक्षी और वनस्पति के प्रतीकों के माध्यम से भी किया जाने लगा। ऐसे काव्य को 'अन्यापदेश' या 'अन्योक्ति' कहा गया। इस प्रकार का सर्वप्रसिद्ध संग्रह नवीं शती के भल्लट कवि द्वारा लिखा गया है। व्यंग्य और प्रतिभा के धनी सत्रहवीं शती के मदुराई के नीलकण्ठ दीक्षित ने भी एक अन्यापदेश शतक लिखा। यह प्रवृत्ति वर्तमान समय तक चलती रही है।

लोकोक्ति और उपदेश पर आश्रित काव्य भी संस्कृत की एक प्रमुख धारा है। अनुष्टुभ जैसे छोटे से, छन्द में ही सघनता, अभिव्यक्ति तीव्रता, मानव-

व्यवहार और अनुभूति का व्यापक ग्रहण और कालसीमा से भी अप्रभावित उनकी उपयोगिता आदि सारे गुण भर दिए गए हैं। इन सुभाषितों में से अधिकांश व्यास एवं स्वर्णकालीन महाकवियों के समय से चले आए हैं। अधिकांश मुक्तक बिना नाम के भी स्वतन्त्र प्रवाह में चले आ रहे हैं, जिनके नीतिविषयक पृथक् संग्रह भी हैं तथा जिनका समावेश 'पंचतन्त्र और 'हितोपदेश' जैसे शिक्षात्मक ग्रन्थों में भी हुआ है। ऐसे श्लोक जनप्रिय प्रतिभा की राष्ट्रीय विरासत के रूप में लोगों की जिह्वा पर चले आते हैं, जिन्हें वे भाषणों और वार्तालाप में बहुधा प्रयोग करते हैं।

संस्कृत काव्य का पोषण नारीवर्ग ने भी किया। यद्यपि स्वर्णयुगीन कवयित्रियों में—विज्जका या विजयांका और कर्णाटा रानी आदि—के श्लोक संग्रहग्रन्थों में ही मिलते हैं, तथापि चौदहवीं से अठारहवीं शती तक को परवर्ती कवयित्रियों की रचनाएँ पर्याप्त सुरक्षित हैं।

प्राचीन भारत ने विश्व को कालयापन के जो बहुमूल्य साधन दिए हैं, उनमें अक्षक्रीड़ा जैसी क्रीड़ाओं और गल्पकथाओं का स्थान प्रमुख है। नैतिक शिक्षा के लिए पशुकथाओं का अस्तित्व महाभारत में ही मिलता है। राजकुमारादि को राजनीति और उचित व्यवहार सिखाने के उद्देश्य से इनका एक संग्रह किया गया। इस संग्रह की विविध शाखाएं तन्त्राख्यायिका, पंचतन्त्र और हितोपदेश आदि के नाम से विख्यात हैं। इसी संग्रह की कथाएं मध्य-पश्चिम की ओर गईं और सबसे पूर्व (530-79 ई०) में पहलवी में, 570 ई० में सीरियन और अरबी में, तथा वहाँ से बाद में यूरोप की भाषाओं में अनुवादित हुईं। पता चला है कि विश्वभाषाओं में पंचतन्त्र के दो सौ से भी अधिक रूप प्रचलित हैं।

अरब ने भारत से सिर्फ कथाएं लेकर ही प्रसारित नहीं कीं, बल्कि ज्योतिष, गणित और आयुर्वेद को भी उसने इसी प्रकार फैलाया। आठवीं-नवीं शताब्दी ही वह समय है, जिसके बीच अरबी विद्वानों ने यह अनुवाद कार्य बहुत जोर-शोर के साथ किया। गणित के सम्बन्ध में भारत की विश्व को देन की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। बहुत प्राचीन समय से ही जीवन-विज्ञान या चिकित्सा विज्ञान के रूप में आयुर्वेद को ईसा की आरम्भिक शतियों में होने वाले चरक और सुश्रुत जैसे विद्वान् और सातवीं शती में होने वाले वृद्ध वाग्भट जैसे विद्वानों ने सम्पुष्ट किया। इन विद्वानों से पता चलता है कि प्राचीन भारत में बहुत समृद्ध शल्यचिकित्सा प्रचलित थी, जब कि तिब्बत, श्रीलंका और वृहत्तर भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति पूर्णतः भारतीय पद्धति पर आधारित थी, मध्य एशिया से भी संस्कृत के चिकित्साग्रन्थों के हस्तलेख

उपलब्ध हुए हैं। यूरोप में वर्तमान समय में अन्वेषण किये गए अनेक शल्य सम्बन्धी उपकरण प्राचीन भारतीय प्रतिमानों पर ही आधारित हैं। यहां तक कि प्लास्टिक शल्यचिकित्सा और कई अन्य 'आपरेशन' (शल्योद्धरण) भी भारत की नकल पर ही पश्चिम ने सीखे।

जैसा कि आरम्भ में ही कहा गया है, संस्कृत की पृष्ठभूमि भारत-यूरोपीय है। इसीलिए इसका मध्य-एशिया और यूरोप के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसका सम्बन्ध एथेन्स और अलेक्ज़ेन्द्रिया से बना रहा है, और बौद्धिक आदान-प्रदान के अतिरिक्त आर्थिक और विलास सामग्री के व्यापार ने भी उसके इस सम्पर्क को बाहरी दुनिया के साथ बनाये रखा। भारत और संस्कृत ने बहुत कुछ दिया और लिया है। कुछ मिश्रित रूप में ही सही, संस्कृत का पठन-पाठन उन सारे भारतीय (एशियाई) प्रदेशों में होता रहा है, जिनमें आज भी उसके हस्तलेख उपलब्ध हो रहे हैं। बौद्ध धर्म के माध्यम से संस्कृत तिब्बत, मध्य-एशिया, और चीन में फैली, जहां अब संस्कृत के उस बौद्ध साहित्य का अनुवाद भी प्रादेशिक भाषाओं में उपलब्ध होता है, जिसका मूल तक भारत में नष्ट हो चुका है। संस्कृत की भांति हिन्दुत्व भी सम्पूर्ण दक्षिण-पूर्व एशिया में व्याप्त हो गया था। कम्बोडिया के इतिहास के विशुद्ध स्रोत के रूप में ऐसे अनेक शिलालेख हैं, जो विशुद्ध काव्यात्मक संस्कृत में हैं।

इस प्रकार संस्कृत जहां राष्ट्रीय एकता की प्रतीक है, वहां वह यूरोप और एशिया को व्याप्त करती हुई अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री की भी प्रतीक है। आज भी संस्कृत का प्रयोग आपसी व्यवहार और साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है। यह राष्ट्र की स्वीकृत भाषाओं में से एक है। एक ओर गांधी जी चाहते थे कि देश का प्रत्येक बालक और बालिका संस्कृत, विशेषकर भगवद्गीता, को पढ़ने-समझने लायक सीखले, और दूसरी ओर हमारे संविधान ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के विकास के लिए 'संस्कृत' को सर्वप्रमुख स्रोत स्वीकार किया है।

अगर अब भी इसकी रक्षा के साथ-साथ इसका समुचित उपयोग किया जाए तो संस्कृत अब भी राष्ट्र के भावात्मक, नैतिक और प्रादेशिक सामञ्जस्य के उद्देश्य को पूरा कर सकती है, तथा विश्वमैत्री-भावना को भी आधार प्रदान कर सकती है।

वेद

1. ऋग्वेद-संहिता

प्रथम मण्डल, सूक्त-90

मंत्र 6—हमारे लिए वायु अमृत के समान मधु को सर्वत्र फैलाने वाली हो, नदी और समुद्र मधु को प्रवाहित करने वाले हों और वनस्पतियाँ एवं जड़ी-बूटियाँ हमारे लिए मधुरता भरने वाली हों।

7—हमारे लिए रात और दिन मधुमान् हों, पृथ्वी और अन्तरिक्ष भी मधुमान् हों और हमारा रक्षक द्युलोक भी मधुमान् हो।

8—पेड़-पौधे हमारे लिए मधुमान् हों, सूर्य हमारे लिए मधुमय हो और किरणें अथवा दुधारू पशु भी हमारे लिए मधु से युक्त हों।

प्रथम मण्डल, सू०-164

मंत्र 46 – अग्नि अथवा अग्रणी उसी तत्व को इन्द्र, मित्र और वरुण के नाम से पुकारा जाता है। वही अग्नि द्युलोक में स्थित और दिव्य भी है। वही सुन्दर पंखों वाला गरुड़ पक्षी है और गौरवमय है। उस एक को ही विद्वान् लोग अनेक रूप से वर्णित करते हैं। वही अग्नि यम और मातरिश्वा (वायु) के नाम से जाना जाता है।

तृतीय मण्डल, सू०-62

मं 10—सबके उत्पादक और प्रेरक उस सविता देव के चाहने योग्य तेज को हम स्मरण करते हैं। वह हमारी बुद्धियों को सत्प्रेरणा प्रदान करे।

दशम मण्डल, सू०-85

मं 36—तुम्हारे हाथ को मैं सौभाग्य की उपलब्धि के लिए हाथ में ले रहा हूं, ताकि पत्नी के रूप में तुम मेरे साथ अस्सी वर्ष से भी अधिक

(बुढ़ापे तक) समय बिता सको। इस गृहपति के उत्तरदायित्व को निभाने के लिए ही इन्द्र, अर्यमा, सविता और बृहस्पति ने तुम्हें मेरे सुपुर्द किया है।

37—हे पूषन्। उस सर्वाधिक कल्याणमयी को मेरी ओर प्रेरित करो, जिसमें मनुष्य बीजों को बोते हैं अर्थात्, जो मानव-सन्तति के प्रवाह को बनाए रखती है। उसे, जो अत्यधिक कामना और उमंग में भरकर हमारे आश्रय में आती है और जिसमें हम भी पुत्रकामना से प्रेरित होकर ही संभोग में प्रवृत्त होते हैं।

44—तुम सदा सरल दृष्टिवाली और पति के लिए कल्याणी रहो। पशुओं के लिए भी तुम कल्याणी बनो। तुम्हारा मन शुद्ध रहे और तुम्हारा तेज अक्षुण्ण रहे। तुम वीर पुत्रों को जन्म देने वाली, देवरों से स्नेह व्यवहार रखने वाली और सौन्दर्यमयी बनकर रहो। तुम हमारे लिए तथा दो और चार पाँव वाले पशु-पक्षियों के लिए, हर तरह से कल्याण और शान्ति देने वाली बनो।

45—बल और सुख के दाता हे इन्द्र! आप मेरी इस पत्नी को उत्तम पुत्रों और ऐश्वर्य से संयुक्त करें। इससे दस पुत्र जन्म लें। ग्यारहवाँ इसके लिए मैं ही रहूँ अर्थात्, सन्तान दस से अधिक न हों।

46—तुम सबके लिए शोभामय और काम्य बनकर रहो, ताकि ससुर, सास, ननद और देवर—सभी—तुम्हें इसी रूप में सम्मान देने वाले बन सकें।

47—इस अवसर पर सभी देवता एकत्र हों और हम दोनों के हृदयों में समा जाएं। आज मातरिश्वा (वायु), सबका धारक धाता और सबका निर्देशक देष्टा हमारा मेल अथवा संधान कराएं।

दशम मण्डल, सू०-90
पुरुष सूक्त

मंत्र-1—वह पुरुष हजारों सिर वाला, हजारों आँखों वाला, और हजारों पांवों वाला है। वह इस सारी भूमि को चारों ओर से घेर कर भी शेष बचा रहता है।

2—जो कुछ वर्तमान है, वह सब 'पुरुष' ही है, अर्थात्, उसी में ओतप्रोत है। और, जो कुछ भूत या अतीत में था, एवं जो कुछ भी भविष्य में होगा, वह सब भी 'पुरुष' का ही अंश है। भोजन से पुष्टि पाने वाले तत्वों का तो वह अधिपति है ही, अमर तत्वों का भी वही स्वामी अथवा नियामक है।

3—इतना तो उसका विस्तार है ही। किन्तु, उस पुरुष का विस्तार इससे भी कहीं अधिक है। सच तो यह है कि सृष्टि के सब भूत या विनाशशील तत्व इसके उस विस्तार का एक चौथाई भाग ही बनाते हैं। इसके विस्तार का तीन-चौथाई भाग तो अमर है, और वह द्युलोक में स्थित है अर्थात्, वह विनाशमय द्रव्यों की सीमा से परे है।

4—वह व्यापक पुरुष अपने तीन चरणों पर—या तीन चौथाईभाग से—ऊपर उठा। उसका अवशिष्ट एक चरण या भाग इस लोक में रह गया। उस एक चरण से ही वह सर्वत्र या सब दिशाओं में घूम रहा है और चेतन-अचेतन, अथवा खाने वाले और बिना खाये रहने वाले, सभी तत्वों में वह व्याप्त है।

5—उससे सर्वप्रथम 'विराट्' तत्व की उत्पत्ति हुई। उस विराट् तत्व का स्वामी वह 'पुरुष' ही था। किन्तु, उत्पन्न होने के बाद वह विराट् तत्व इतना फैला कि जैसे पुरुष से भी अधिक व्यापक हो गया हो। उस विस्तार से ही यह पृथ्वी बनी, और तब नाना शरीरों की रचना हुई।

6—तब देवताओं ने उस 'पुरुष' को ही हवि या सामग्री बनाकर यज्ञ का विस्तार किया। इसी जीवन रूपी यज्ञ में बसन्त 'घी' के समान बना; ग्रीष्म 'ईंधन' के समान, और शरत् 'हवि' के समान बने।

7—सबसे पूर्व उत्पन्न उस यज्ञ पुरुष को साधनाशील ऋषियों और देवताओं ने यज्ञादि की लपटों में डाला और इस प्रकार उसको साधन बनाकर यज्ञ सम्पन्न किया।

8—इस सर्वहुत या सर्वहोम यज्ञ से बूंद-बूंद रूप में एक विशिष्ट घृत या वीर्य प्रकट हुआ। उससे ही वायुचारी, अरण्याचारी और पालतू पशुओं आदि की सृष्टि हुई।

9—उस सर्वहुत यज्ञ से ही ऋचाओं और सामों की उत्पत्ति हुई। उससे ही 'छन्दस्' अर्थात् अथर्वमन्त्रों की उत्पत्ति हुई और, उससे ही यजुर्वेद के मंत्र, या उसमें प्रोक्त विधिविधान, प्रकट हुए।

10—उस यज्ञ के माध्यम से ही तेज दौड़ने वाले प्राणी (घोड़े आदि) एवं दोनों जबड़ों वाले प्राणी उत्पन्न हुए। उससे ही गायें आदि दुधारू पशु उत्पन्न हुए और, उससे ही भेड़ और बकरी भी उत्पन्न हुईं।

11—जिस पुरुष का विधान उन्होंने किया, उसकी रचना कितने रूप में की? उसका मुख क्या था? और, उसके हाथ, पाँव और जाँघ आदि कौन से कहे जाते हैं?

12—इसका मुख ब्राह्मण बना । इसके बाहु क्षत्रिय बने । इसकी जाँघें वही थीं जिन्हें हम वैश्य के रूप में जानते हैं और उसके पाँवों से शूद्र उत्पन्न हुआ ।

13—इसके मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि एवं प्राणों से वायु उत्पन्न हुए ।

14—इसकी नाभि से अन्तरिक्ष बना, तथा सिर से द्युलोक उपस्थिति में आया। इसकी टाँगों से भूमि, कानों से दिशाएं (या आकाश) एवं लोकों का निर्माण हुआ ।

15—जिस यज्ञ की आयोजना करते हुए देवों ने उस पुरुष को 'पशु' के रूप में बाँधा, उस यज्ञ की परिधियां (घेरे) सात थीं और समिधाएं तीन और सात के रूप में विभक्त थीं।

16—क्योंकि पुरुष स्वयं ही यज्ञ था, अतः देवों ने वास्तव में यज्ञ से ही यज्ञ का विस्तार किया । उनके ये धार्मिक कार्य सबसे पहले किये जाने वाले और प्रधानतम कार्य थे । महिमा वाले उन देवों ने उस पापहीन लोक को प्राप्त किया, जिसे पहले के साधनाशील देव प्रथम ही प्राप्त करते रहे हैं ।

दशम मण्डल, सू०-117

मंत्र 1—देवता लोग भूखे को मौत के हाथ नहीं दे देते । मौत तो खाने वाले या भरपेट को भी समान रूप से ही आती है । दान देने या तृप्त करने वाले का धन नष्ट नहीं होता । किन्तु, जो दान नहीं देता, या दूसरों को तृप्त नहीं करता वह सुख को नहीं पाता ।

2—जो अन्न और पान से भरपूर होकर किसी भी अन्य कामनाशील, दरिद्र, आधार की आशा करने वाले और समीप आने वाले के प्रति अपने मन को (दानादि न देने के लिए) दृढ़ कर लेता है और सामने आने पर उसकी सेवा नहीं करता, वह भी सुख को नहीं पाता ।

दशम मण्डल, सू०-191

मंत्र 2—एक दूसरे के अनुकूल आचरण करो, एक दूसरे के अनुकूल वाणी का प्रयोग करो, और एक दूसरे के मनों को भली प्रकार पहचानो । उसी प्रकार, जिस प्रकार पूर्ववर्ती देवों ने आपसी ज्ञान के आदान-प्रदान के द्वारा ऐश्वर्य को (या अपने भाग को) प्राप्त किया था ।

3—तुम्हारी मन्त्रणा एक-दूसरे की अनुकूलता में हो । तुम्हारी समिति या संगठन परस्पर की अनुकूलता से संयुक्त हों । तुम्हारा मन और चित्त

भी एक दूसरे के अनुकूल हो। यह समानता और अनुकूलता इसलिए आवश्यक है, क्योंकि मैं तुम्हें एक से ही मंत्र या विचार से अभिमन्त्रित और सम्बुद्ध करता हूं, एवं समान अन्न या हवि से मैं तुम्हारे लिए आहुति देता हूं (या, समान हवि से तुम्हें संयुक्त करता हूँ)।

4—तुम्हारी पुकार एक-दूसरे की अनुकूलता में उठे। तुम्हारे हृदय एक-दूसरे की अनुकूलता में हों। तुम्हारा मन एक-दूसरे के अनुकूल हो। ताकि, तुम भली प्रकार जीवन को सह सको, समर्थ बनो।

ऋग्वेद-परिशिष्ट

श्री सूक्त

मंत्र 1—प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान हे अग्नि ! आप सुवर्ण वर्ण की, मन का हरण करने वाली, सोने और चाँदी की माला वाली, आह्लाद देने वाली, स्वयं स्वर्णरूपा लक्ष्मी को मुझ तक ला दो।

2—हे जातवेदस् अग्नि ! आप उस लक्ष्मी को मुझ तक, अथवा मेरे लिए, ला दो, जो मुझसे भागे नहीं, एवं जिसके रहने पर मैं धन, गाय, घोड़ों और पारिवारिक जनों अथवा पुरुषों को पाने में समर्थ हो सकूं !

3—घोड़े जिसके प्रथम और प्रमुख चिन्ह हैं, रथ आदि वाहन जिसके मध्य भाग के तुल्य हैं और हाथियों की चिंघाड़ जिसके आह्लाद की सूचक है, ऐसी देवी लक्ष्मी का मैं आह्वान करता हूं। वह आकर मुझसे संयुक्त हो, अथवा मेरी सेवा में आए।

4—जो सस्मिता है, हिरण्य या सुवर्ण से घिरी है, आर्द्र या सजल होकर भी ज्वलनशील और उज्ज्वल है, स्वयं तृप्त रहकर भी अन्योंको तृप्त करने वाली है, पद्म पर स्थित है, और पद्म के ही वर्ण की है, ऐसी शोभामयी लक्ष्मी का मैं आह्वान करता हूं।

5—आह्लादप्रदा, ज्योतिर्मयी, यज्ञ से उज्ज्वल, देवों से सेवित, उदार, पद्म-स्थित इस लक्ष्मी की शरण में आया हूं। हे लक्ष्मी! मैं तुम्हारा वरण करता हूं। मेरी अलक्ष्मी अथवा अशुभ स्थिति समाप्त हो जाए !

6—हे आदित्य सदृश वर्ण वाली लक्ष्मी ! अग्निरूपी तेरे तप से ही ये सब वनस्पितियाँ और भासमान बिल्ववृक्ष उत्पन्न हुए हैं। इसके फल अपने अन्तर्हित तप के द्वारा अन्दर और बाहर के समस्त अशुभ तत्वों को निकाल बाहर करें।

7—मुझे भी देवताओं के सखा (अथवा प्रिय) यश धन समृद्धि के साथ-साथ प्राप्त हो। मैं अब इस राष्ट्र में प्रादुर्भूत हुआ हूं अर्थात्, मैं राष्ट्रीय

भावना से भरकर नया हो उठा हूं । यह राष्ट्र मुझे कीर्ति और समृद्धि प्रदान करे ।

8—मैं क्षुधा, पिपासा और दोषों से परिपूर्ण अलक्ष्मी या अशुभलक्षणों को मिटाने में समर्थ होऊं और, हे लक्ष्मी ! तुम भी समस्त ऐश्वर्यहीनता और समृद्धिहीनता को मेरे घर से दूर भगा दो ।

9—हिंसा अथवा याचना के माध्यम से ही जिसे पाया जा सकता है, जिसे कुचलना या वश में लाना अत्यन्त कठिन है, जो नित्य ही पुष्ट रहने वाली है, बलशालिनी है, और सब प्राणियों की शासिका है, उस लक्ष्मी का मैं आह्वान करता हूं ।

10—हम अपने मन की कामना, आन्तरिक पुकार, और वाणी के सत्य का पूरा भोग करें । जो पशुओं और अन्न के रूप में विद्यमान है, वह लक्ष्मी या श्री मुझ में यश को आश्रित करे ।

2 क. कृष्ण यजुर्वेद

3.3.2.

मंत्र 2—मैं माधुर्य का ही मनन करूंगा, उसे ही उत्पन्न करूंगा, उसे ही उच्चारणकरूंगा और उसे ही व्यवहार में लाऊंगा । मैं ऐसी वाणी का उच्चारण करूंगा, जो देवताओं के लिए माधुर्य से पूर्ण हो और मनुष्यों के लिए सेवा के भाव से भरी हो । वे देवता शोभा या श्री की भावना से मेरी रक्षा करें, और पितर या वृद्ध लोग मेरी अनुकूलता में हर्षित हों ।

7.5.18.

मंत्र 1—हे ब्रह्मन् ! इस राष्ट्र में ऐसे ब्राह्मण पैदा हों, जिनमें ज्ञान और तेज भरे हों; ऐसे क्षत्रिय हों, जो धनुर्धारी, शूरवीर और महारथी हों; गौएं खूब दूध देने वाली हों; बैल बोझ ढोने में समर्थ हों; घोड़े तीव्रगामी हों; नारियां बुद्धिमती हों; रथारोही सैनिक विजयशील हों; तथा युवक सभा और समाज के योग्य व्यवहार से परिचित हों । इस यज्ञ करने वाले गृहपति के घर में पुत्र उत्पन्न हो । समय-समय पर आवश्यकतानुकूल बादल बरसते रहें । हमारी औषधियाँ और वृक्षादि फलों से भरपूर होकर पकें और, चारों ओर से शारीरिक और मानसिक कुशलता बढ़े ।

ख. शुक्ल यजुर्वेद

अध्याय-34

मंत्र-1—जो जागते हुए बहुत दूर की उड़ान भरता है, सोते हुए भी वही उसी प्रकार की उड़ान भरता है । दूर-दूर तक जाने वाला तथा ज्योतिमय द्रव्यों से भी अधिक ज्योतिमय वह मेरा मन सदा शिव संकल्प करने वाला हो ।

2—जिस मन के द्वारा सुन्दर और मनीषा वाले यजमान लोग यज्ञ में और धीर-वीर लोग गृहों या युद्धों में सुन्दर कर्म करते हैं, एवं जो मनुष्यों के भीतर अपूर्व साक्षी बनकर बैठा है, मेरा वह मन सदा कल्याणमय संकल्पों से संयुक्त हो ।

3—जो सूक्ष्म ज्ञानचेतना के रूप में है और जो मनुष्यों के भीतर की अमर ज्योति, धृति और चित्त के रूप में है, तथा जिसके बिना कोई कार्य किया ही नहीं जा सकता, वह मेरा मन सदा शिवसंकल्प से युक्त हो ।

4—जिस अमर मन और उसके संकल्प, के द्वारा यह सब अतीत, वर्तमान और भावी घिरा हुआ है और इसके द्वारा पाँच ज्ञानेन्द्रियों एवं आत्मा और मन रूपी सात होताओं द्वारा किया जाने वाला यह जीवनयज्ञ सम्पन्न हो रहा है, वह मेरा मन शिवसंकल्प से युक्त हो ।

5—जिस मन में ऋक्, यजु: और साम इस प्रकार गुँथे हैं, जिस प्रकार रथ के पहिए की नाभि में अरे, और जिसमें सब प्रजाओं (मनुष्यों) की सम्पूर्ण चिन्तनशक्ति या चेतना बसी हुई है, वह मेरा मन शिवसंकल्प से युक्त हो ।

6—जो सधे हुए सारथि के समान घोड़े की भाँति मनुष्यों को मार्ग पर ले चलता है, और जिस प्रकार लगामों से घोड़े रोक लिए जाते हैं उसी प्रकार जो हृदय को स्थिर रखने में समर्थ होता है, तथा जो कभी जीर्ण होने वाला नहीं है एवं जिसका वेग अभी कम नहीं होता, वह मेरा मन सदा शिवसंकल्प से युक्त हो ।

3. अथर्ववेद

तृतीय कांड, सूक्त-8

मंत्र-5—तुम्हारे मन, कर्म और वचनों को हम आपस में एक दूसरे के समीप लाते हैं । तुम में से जो लोग कर्मच्युत हो गए हैं, उन्हें भी हम एक-दूसरे के समीप लाते हैं ।

6—यह लो, मैं अपने मन के द्वारा तुम्हारे मनों को पकड़ता हूँ । आओ, अपने चित्तों से मेरे चित्त का अनुसरण करते हुए आओ । मैं तुम्हारे हृदयों

को अपने वश में कर रहा हूं। मेरे पथ के पथिक बने हुए पीछे-पीछे आते जाओ।

तृतीय कांड, स०-15

मंत्र-1—मैं वणिक् रूप वाले उस इन्द्र को प्रेरित कर रहा हूँ कि वह आए और आकर हमारा पुरस्सर अग्रणी बन जाए। न दान देने वाले अथवा द्वेष करने वाले शत्रु को मृग या पशु की भाँति खदेड़ता हुआ वह सबका स्वामी इन्द्र मुझे धन देने वाला हो।

2—देवताओं या दिव्यशक्तियों के आने-जाने के जो अनेकानेक मार्ग द्युलोक और पृथ्वी लोक के बीच संचार का माध्यम बने हुए हैं, वे मुझे आयु और तेजस् अथवा अन्न और घृत से सम्पन्न करें, जिससे मैं खरीद-कर या व्यापार के द्वारा धनों को ला सकूँ (या, भर सकूं)।

3—जिस धन से मैं क्रय-विक्रय या व्यापार करता हूं और जिस धन के द्वारा ही देवता और भी धन की कामना करते हैं, वह धन मेरे पास, थोड़ा न होकर, बहुतायत में हो, जिससे मेरे कष्टों का नाश हो सके। हे अग्नि! आप मेरे इस हवि को देवों तक पहुंचा दें।

तृतीय कांड, सू०-17

मंत्र-1—देवों में अपनी शुभमति रखने वाले धीर भूमिप्रेमी (कवि) कृषकों ने हल जोड़ लिए हैं और जुओं को पृथक् करके फैलाना आरम्भ कर दिया है।

2—हे कृषको! हलों को जोड़ लो और जुओं को फैला लो। हल चलाने पर जब धारियाँ बन जाएँ, तब उनमें बीज डाल देना। इससे होने वाले अन्न की बालियाँ चमकदार, भरी हुई और भारी होंगी। शीघ्र ही ये पकने वाली नहीं हैं।

3—पीछे से स्थूल और आगे से नुकीला यह हल (वनस्पतियों के स्वामी) चन्द्रमा की अनुकूलता में बढ़ने वाला होकर इस भूमि का उत्खनन करे और यह भी इधर-उधर न जाता हुआ, रथवाहक के पीछे रहकर स्थूल या पुष्ट जमीन को फोड़ता हुआ चले।

4—इस जोती हुई भूमि को इन्द्र अपनी शरण में ले और पूषण इसकी रक्षा करे। और, यह भूमि हर आने वाले वर्ष में हमारे लिए अधिकाधिक रसवती होकर अन्नदान करे (उत्पादन करे)।

5—उत्तम फालों वाले हल इस भूमि को बहुत अच्छी तरह खोदें। अन्न के दाने बोने वाले घोड़ों या बैलों के पीछे-पीछे लोग अच्छी तरह कण बिखेरते हुए चलें।

8—हे सीते (जुती भूमि) ! हम तुम्हारा वन्दन करते हैं । हे शुभ ऐश्वर्यमयी ! तुम हमारे लिए अनुकूल या उगने वाली बनो । तुम हमारे लिए शोभन मन वाली और शोभन फल वाली बनो ।

9—तुम घृत (श्रम सत्य या जल) के द्वारा जोती गई, मधु से सिंचित अथवा सम्पुष्ट, एवं मस्तों तथा अन्य सब दिव्य शक्तियों द्वारा अनुमत हो । हे सीते (जुती भूमि) ! तुम तेज से सम्पन्न हो, घृत, जल अथवा रस से सम्पन्न हो, एवं नित्य पुष्ट हो रही हो । तुम अपने रस या पेय से चारों ओर संतृप्त या आप्लावित कर दो !

तृतीय कांड, सू०-30

मंत्र-1—मैं तुम्हारे हृदयों को एक दूसरे के प्रति प्रेमपूर्ण, मनों को एक दूसरे के अनुकूल और द्वेषभावना से रहित करता हूं । तुम परस्पर एक दूसरे के लिए उसी प्रकार कामनापूर्ण होकर रहो, जिस प्रकार अवंध्या गाय अपने नवजात बछड़े के लिए प्रेम और कामना से पूर्ण होती है ।

2—पुत्र पिता के व्रत या कर्म के अनुकूल बने और माता के मन को समझने वाला हो । पत्नी पति के लिए माधुर्य से युक्त हो और शान्तिदायिनी वाणी का प्रयोग करे ।

3—भाई अपने भाई से द्वेष न करे और न बहिन बहिन से ! एक दूसरे के अनुकूल और समान कर्म वाले होकर तुम सब शोभन रीति से वाणी का परस्पर व्यवहार करो ।

4—जिस से देवता तुम से वियुक्त न हों, और आपस में द्वेष न करें, उस प्रकार का ज्ञान हम तुम्हारे घर में भरते हैं । यह ज्ञान अन्य पुरुषों के लिए दिए गए ज्ञान से अभिन्न है ।

5—महिमाशाली और विचारवान होकर तुम एक-दूसरे से अलग या वियुक्त न हो ! तुम मिलकर अपने यत्न या साधना करते हुए, एक ही प्रेरण या मूल से सम्बद्ध रहकर, आचरण करो । तुममें से प्रत्येक एक दूसरे के प्रति सुन्दर वाणी बोले । ऐसा करने पर, आओ ! मैं तुम्हें साथ-साथ चलने वाला और परस्पर अनुकूल मन वाला बनाता हूँ ।

6—तुम्हारे पानस्थल एक ही हों, तुम्हारा अन्नभाग भी साथ ही हो । मैं तुम सब को एक से ही जुए में साथ-साथ संयुक्त करता हूँ । सब मिलकर अग्नि का वैसे ही सेवन करो (पाक और यज्ञ के लिए), जैसे नाभि या धुरी के चारों ओर अरे संयुक्त होते हैं ।

7—समान गति वाले तुम सब को मैं एक दूसरे के अनुकूल मन वाला करता हूँ। अपने मार्ग या कर्म द्वारा भी सब को एक ही भोग वाला करता हूं। तुम भी देवताओं की भाँति अमृत की नित्य रक्षा करो। तुम्हारा मन आपस में एक दूसरे के प्रति शुभभाव से युक्त हो।

चतुर्थ कांड, सू०-16

मंत्र-1—इन देवताओं का अधिष्ठाता नित्य वृद्धिशील है। यह सबको जैसे पास से ही देखता है। वह शब्द करने वाले और चलने वाले समस्त प्राणियों का ध्यान रखता है। देवता इस बात को पूरी तरह जानते हैं।

2—जो भी बैठा है, चल रहा है, गतिमान है, या जो दुर्गम बिलों में (या गुह्य स्थानों में) घूमता है, तथा एकान्त में बैठकर कोई दो आपस में जो मन्त्रणा करते हैं, उस सब बात को वह, सबसे व्यतिरिक्त (तीसरा), राजा वरुण जानता है।

3—कहां तो यह भूमि उस वरुण के अधीन है। और कहाँ वह दूर-दूर तक विस्तीर्ण द्यौ (आकाश) उस के ही अन्दर विलीन है। यह दोनों समुद्र उस वरुण की उदर-गुहाओं में समाये हुए हैं। पर, कहाँ वही वरुण इस थोड़े से पानी में डूबा या लिया हुआ है।

4—जो इस विस्तृत द्यौ की सीमा से भी परे चले जाए, वह भी राजा वरुण की पकड़ से छूट नहीं पाता। आकाशचारी इसकी ये सहस्रों आँखें इस भूमि से परे की भी सभी वस्तुओं को देख लेती हैं।

5—द्युलोक और पृथ्वीलोक की सीमा के भीतर, और इससे भी परे, जो कुछ भी हो रहा है, उस सब को यह वरुण राजा देख रहा है। लोगों का पलक झपकना तक इसने वैसे ही गिना और नापा हुआ है, जिस प्रकार पाँसा फेंकने वाला पाँसों को जाँच लेता है।

6—हे वरुण! जो तेरे जाल सात और सात के रूप में तीन प्रकार के बुने हुए हैं, और चमक रहे हैं, वे सब असत्य भाषण करने वाले को चारों ओर से जकड़ लें, किन्तु सत्यवादी को विमुक्त रखें।

द्वादश कांड, सू-1

मंत्र-1—बृहत् सत्य, चरम ऋत, दीक्षा, तप, ज्ञान और यज्ञ—ये सब तत्व ही पृथ्वी को धारण करते हैं। यह पृथ्वी हमारे अतीत और भविष्य को सुरक्षित रखने वाली है। इस पृथ्वी को हमारे बसने योग्य विशाल लोक बना दे।

2—मानवों को आपस में, बिना किसी व्यवधान के, बाँधने वाली इस धरती में उन्नत, निम्न और समतल प्रदेश अनेक हैं। यह पृथ्वी नाना

शक्तियों से युक्त वनस्पतियों और जड़ी बूटियों को धारण करती है। यह पृथ्वी हमें प्रसार और सिद्धि देने वाली हो।

3 – जिस भूमि में समुद्र, सिन्धुनद और अन्य नदियाँ बह रही हैं तथा जिसमें अन्न तथा अन्य उपजें पैदा होती हैं, और जिसमें ये सब श्वास लेने वाले और चलने-फिरने वाले प्राणी तृप्त रहते हैं, वह भूमि-माता हमें पूर्वजों द्वारा उपभुक्त भोगों को प्रदान करे।

6—सबका भरण करने वाली, धन-धान्यों से परिपूर्ण, सबकी स्थिरता का कारण, सुवर्णादि को अपने उदर में छिपाये हुए समस्त जगत् को बसाने वाली, वैश्वानर अग्नि को धारण करती हुई, हे इन्द्र और ऋषभ! हमें यह भूमि धन से भरपूर कर दे।

7—जिस विशाल भूमि की रक्षा सदा जागरुक रहने वाले देवता हर क्षण प्रमादरहित होकर करते हैं, वह धरती माता हमारे लिए प्रिय मधु या माधुर्य को भरपूर प्रवाहित करे और हमें वर्चस् से सींच दे।

12—हे पृथ्वी! जो तेरा मध्य भाग है, यह जो तेरा प्रान्त भाग है, तथा जो द्रव्य तेरी अन्तर्हित शक्ति से उत्पन्न हुए हैं, उन सब को हमारे लिए उन्मुक्त कर दे, तथा हमें सर्वतः पवित्र करदे। भूमि मेरी माता है, मैं उस विस्तारमयी का पुत्र हूं। बादल मेरा पिता है। वह हमारा भरण पोषण करे।

16—इस प्रकार की विविधता से युक्त हम समस्त प्रजाओं के लिए, हे पृथ्वी! तुम अपने स्वत्व का दुहन करो और वाणी के समस्त माधुर्य को हमारे अन्दर आहित करो!

अथर्ववेद परिशिष्ट
(सप्तपदी)

हे सखि! तुम मेरे साथ सात पद मिलाकर चलो (और इस प्रकार 'सप्तपदा' हो जाओ)। अब हम दो मित्र (या समानधर्मा) मिलकर एक साथ 'सप्तपद' हो गये हैं। तुम्हारा यह सख्य मैं प्राप्त करूँ। तुझ सखी से मैं कभी वियुक्त न होऊँ। तुम भी मेरे सख्य से कभी वियुक्त न होओ! हम दोनों की गति एक साथ और समान हो, हम दोनों मिलकर ही निश्चय और सृजन करें। ऐसा करते हुए हम सदा एक-दूसरे के प्रिय रहें, एक-दूसरे के लिए रोचक और उज्ज्वल रहें, तथा हम दोनों के मन एक-दूसरे के लिए सुन्दर और शुभ बने रहें। अग्नि और तेज को धारण करते हुए हम दोनों के मन सदा अनुकूल रहें और हम सदा उचित कर्मों को साथ मिलाकर करें।

वह तुम हो और यह मैं हूँ। यह मैं हूँ और वह तुम हो। यदि द्यौ मैं हूँ, तो पृथ्वी तुम हो। यदि तुम योनि हो, तो मैं रेतस् हूँ। यदि मन मैं हूँ तो वाक् तुम हो। यदि साम मैं हूं तो ऋक् तुम हो। ऐसी तुम सदा मेरे व्रत के अनुकूल व्रत वाली हो। पुरुषत्वमय पुत्र की प्राप्ति के लिए और शोभायुक्त पुत्र की प्राप्ति के लिए, हे सत्य वचन वाली ! मेरे साथ आओ !

अश्मारोहण

इस पत्थर पर स्थिर रहो। इसी पत्थर की भाँति तुम भी स्थिर रहना ! कष्ट पाने वाले का साथ दो, पर कष्ट देने वाले का सामना करो।

ध्रुव-अरुन्धती-दर्शन

तुम ध्रुव निवास वाले हो। ध्रुवत्व से ही तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम स्वयं ध्रुव हो। ध्रुव होकर ही तुम स्थित हो। तुम नक्षत्रों के (गतिनिश्चयादि की दृष्टि से) स्थिरबिन्दु हो। ऐसे ही ध्रुव ! मुझे कष्टों से बचाओ !

उपनिषद्

1. ईशोपनिषद्

मंत्र-1—ईश्वर अथवा ऐश्वर्य ने ही जगत में विद्यमान चल और अचल सभी वस्तुएँ बसाई या बनाई हैं। अतः तुम्हें त्यागपूर्वक उनका भोग करना चाहिए। लोभ मत करो! यह धन आखिर है किसका?

2—इस संसार में कर्म करते हुए ही सौ वर्षों तक जीने की कामना करो। ऐसा करने के अतिरिक्त तुम्हारे लिए यहाँ अन्य कोई मार्ग नहीं है। कर्म में सच्चा मनुष्य कभी लिप्त नहीं होता।

3—'असुर्य्य' नाम के या असुरयोग्य वे लोक हैं, जो सदा घने अन्धकार से आवृत रहते हैं। मृत्यु के बाद उनमें वही लोग जाते हैं, जो लोग आत्मघाती होते हैं।

4—वह एक तत्व ऐसा है, जो स्वयं गतिहीन रहकर भी मन से भी अधिक तीव्र गति वाला है। पहले प्रयत्न करने पर भी देवता इसे, या इसकी गति को प्राप्त नहीं कर सके थे। जो दौड़ते हुए इससे आगे निकलना चाहते हैं, एक ही जगह स्थिर रहकर भी यह इन्हें पार कर जाता है। वायु उसकी उपस्थिति में ही जलों को धारण करने वाला बनता है।

5—वह तत्व गति भी करता है, गतिहीन भी रहता है। वह पास भी है, और दूर भी। वह इस सब के अन्दर भी विद्यमान है, और वही बाहर भी विद्यमान है।

6—जो सब प्राणियों को इस दृष्टि से देखता है, मानों वे उसके 'आत्म' में ही समाहित हों, अथवा वह स्वयं उन सब में से एक हो, उसे तब किसी प्रकार की दुःखानुभूति या कुत्सा नहीं होती।

7—जिस ज्ञानवान के लिए सभी प्राणी अपने 'आत्म' में ही गृहीत हो गए हैं, सर्वत्र उस एकत्वदर्शी के लिए तब क्या मोह रह जाता है, और क्या शोक?

8—इस प्रकार का व्यक्तित्व चारों ओर व्याप्त हो जाता है। तब वह अपने को काया, व्रण और स्नायु की सीमाओं से मुक्त पाता है। यह स्वयं को शुद्ध और पापमुक्त कर लेता है। वही सच्चा कवि और मनीषी है। वही सर्वत्र व्याप्त और स्वयम्भू हो जाता है। ऐसी शुद्धात्मा ही पदार्थों को उनके यथावत् रूप में जान लेता है, उसका यह ज्ञान त्रैकालिक रूप में सत्य होता है।

9—जो अविद्या की उपासना करते हैं, वे अन्धकार में प्रवेश करते ही हैं। किन्तु जो विद्या की उपासना में ही आसक्त हैं, वे उससे भी गूढ़ अन्धकार में प्रवेश करते हैं।

10—उन धीर पुरुषों से, जिन्होंने हमें समझाया, हमने सुना है कि विद्या के द्वारा किसी अन्य ही तत्व को जाना जाता है, जबकि अविद्या के द्वारा उससे भिन्न तत्व को जाना जाता है।

11—जो विद्या और अविद्या को साथ-साथ जानता है, वह अविद्या के द्वारा मृत्यु को जीतकर विद्या के द्वारा अमृत (अमरता) का उपभोग करता है।

12—जो असम्भूति या विनाश की उपासना करते हैं, वे घने अन्धकार में प्रवेश करते हैं। उनसे भी अधिक घने अन्धकार में वे लोग प्रवेश करते हैं, जो सम्भूति या उत्पादन में ही लिप्त हो जाते हैं।

13—उपदेश देने वाले धीरों से हमने सुना है कि सम्भव (या सम्भूति) और असम्भूति से भिन्न भिन्न तत्वों को ही पाया जाता है।

14—इसलिए जो लोग इन दोनों तत्वों का साथ-साथ ज्ञान प्राप्त करते हैं, वे विनाश के ज्ञान द्वारा मृत्यु को पार करके, या उसे जीत कर, सम्भूति या उत्पत्ति के ज्ञान द्वारा अमरता का उपभोग करते हैं।

15—सत्य का मुख सुवर्णमय पात्र से बन्द है। हे पूषण ! तुम उसका आवरण हटा दो, ताकि सत्यधर्म का दर्शन हो सके।

16—हे एकमात्र द्रष्टा इन्द्र, यम, सूर्य अथवा प्रजापति प्रसूत तुम रश्मियों को फैलाओ और तेज को केन्द्रीभूत करो ! जो तुम्हारा कल्याणतम रूप है, मैं उसे ही देख रहा हूं। उस आदित्य में जो वह 'पुरुष' है, वह 'पुरुष' मैं ही हूं।

17—इस शरीर में वायु ही सच्चा अमृत है। उसके निकलते ही यह शरीर भस्ममात्र शेष रह जाता है। इसलिए हे कर्मशील ! तुम ओम का

स्मरण करो, कर्त्तव्य कर्म का और अतीत में किये कर्मों का भी स्मरण करो।

18—हे अग्नि (अग्रणी) ! हमको समृद्धि के लिए शोभन पथ से ले चलो। हे देव ! तुम समस्त कर्मों को जानते हो। हमें कुटिल पाप से दूर रखो। हम तुम्हारे लिए अत्यधिक नमनभरी उक्ति का प्रयोग कर रहे हैं।

2. कठोपनिषद्

प्रथम अध्याय, वल्ली 1

मंत्र-20—मनुष्य के मरने पर यह जो सन्देह जगता है कि 'वह अब भी है' अथवा 'नहीं है,' इस बात को मैं आपके द्वारा प्रशिक्षित होकर जान सकूं। माँगे हुए वरों में यह मेरा तीसरा वर है।

23—सौ वर्ष तक की आयु वाले पुत्रों और पौत्रों को माँग लो। अथवा, बहुत से पशुओं, हाथी, स्वर्ण, घोड़ों और पर्याप्त घेरे वाली जमीन को माँग लो तथा, इसके साथ ही स्वयं भी अपनी इच्छानुसार लम्बी आयु तक जियो।

24—यदि तुम मेरे द्वारा बताये जाने वाले इस वर को अपने माँगे वर के तुल्य समझो, तो धन और चिरकाल तक आजीविका को माँग लो। हे नचिकेता ! तुम विस्तृत भूमि पाकर बढ़ो। मैं तुम्हें सब प्रकार की इच्छाओं का उपभोक्ता बनाता हूँ।

25—मर्त्यलोक में जो कामनाएँ भी दुष्प्राप्य हैं, उन सबको तुम इसके बदले में माँग लो। ये जो रथारूढ़ और वाद्यादि से युक्त स्त्रियाँ हैं, इन्हें माँग लो ! इस प्रकार की स्त्रियाँ सामान्य मनुष्यों द्वारा प्राप्य नहीं हैं। मेरे द्वारा प्रदत्त इन स्त्रियों से तुम सेवा कराओ। किन्तु, नचिकेता ! तुम मृत्यु-सम्बन्धी प्रश्न न करो।

26—हे यम ! मनुष्य के ये भोग जल्दी ही मिट जाने वाले हैं, तथा ये सभी इन्द्रियों के तेज को क्षीण कर देने वाले हैं और फिर, यह सारा जीवन भी थोड़ा सा ही है। इसलिए तुम्हारे ये रथ, नृत्य और गीत तुम्हें ही अर्पित हैं।

प्रथम अध्याय, वल्ली 2

मंत्र-1—श्रेय कुछ और है और प्रेय कुछ और ! वे दोनों भिन्न प्रयोजन वाले होकर भी पुरुष को बाँध लेते हैं। उनमें से जो केवल श्रेय का वरण करता है, उसका शुभ होता है। किन्तु, जो प्रेय को चुनता है; वह अपने प्रयोजन से च्युत हो जाता है।

2—मनुष्य को श्रेय और प्रेय दोनों ही प्राप्त होते हैं। धीर पुरुष भली प्रकार पहचानकर उनके भेद को समझ लेता है। इनमें से प्रेय की अपेक्षा धीर पुरुष श्रेय का ही वरण करता है। किन्तु, योगक्षेम की भावना से हीन व्यक्ति प्रेय को ही वरण करता है।

3—किन्तु, हे नचिकेता ! तुमने प्रिय एवं प्रिय रूपवाली कामनाओं को विचार पूर्वक छोड़ दिया है। तुम इस धनमय भंवर में नही फंसे, जिसमें फँसकर अन्य मनुष्य डूब जाते हैं।

4—विद्या और अविद्या के रूप में जो ये दो तत्व माने जाते हैं, ये दोनों एक दूसरे से बहुत भिन्न, विपरीत और भिन्न दिशाओं के सूचक हैं। मैं, तुझ नचिकेता को विद्या की इच्छा करने वाला मानता हूँ, क्योंकि तुम्हें अनेक कामनाएँ भी लुभा नहीं सकी हैं।

5—अन्य लोग अविद्या में पड़े रहकर भी स्वयं को धीर और पण्डित समझते रहते हैं। विमूढ़ गति वाले होकर ये मूर्ख लोग ऐसे ही इधर-उधर भटकते रहते हैं, जैसे अन्धे के नेतृत्व में चलने वाले अन्य अन्धे लोग इधर-उधर भटकते रहते है।

6—मृत्यु के बाद की स्थिति का विचार मूर्ख, आलसी और धन के मोह से ग्रस्त लोगों की समझ में ही आता। जो व्यक्ति यह समझता है कि बस यही लोक है, और परलोक कुछ नहीं, वह बार-बार मुझ मृत्यु के पंजे में जकड़ा जाता है।

7—बहुतों को तो वह सुनने को भी नहीं मिलता। सुनकर भी बहुत से उसे जान नहीं पाते। इसका व्याख्याता कोई आश्चर्य से ही मिलता है। इस को प्राप्त करने वाला भी कोई अत्यन्त चतुर व्यक्ति ही हो सकता है। इसको जानने वाला भी कुशलों से उपादिष्ट कोई व्यक्ति आश्चर्य से ही मिलता है।

9—जिस बुद्धि या मति को सत्य और धैर्य से सम्पन्न तुम आज प्राप्त हुए हो, यह बुद्धि तर्क द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती है। हे प्रियतम, यह तो

किसी अत्यन्त जानकार द्वारा ही कही जाती है। हे नचिकेता ! तेरे जैसा अन्य प्रश्नकर्ता भी कभी नहीं होगा।

11—कामनाओं की उपलब्धि, सांसारिक प्रतिष्ठा, कर्म की अनन्तता, निर्भयता की सीमा एवं महान और अत्यधिक स्तुतियोग्य यश और प्रतिष्ठा को देखकर भी, हे नचिकेता ! तुमने धीर पुरुष के रूप में अपने धैर्य के कारण इन्हें छोड़ दिया है।

12—कठिनता से देखे जाने योग्य, किसी गूढ़ स्थान में घुसे हुए, हृदयगुहा में स्थित, अथवा गहरे में स्थित उस चिरपुराण देव को आत्मगत मिलन के माध्यम से पाकर या जानकर धीर पुरुष हर्ष और शोक के द्वन्द्व से ऊपर उठ जाता है।

14—इस सामान्य धर्म और अधर्म की भावना से भी परे, पुण्य और पाप की सीमा से भी परे, एवं भूत और भावी के बन्धन से भी परे जो उस तत्व को देख लेता है, वही वास्तव में उसे जानता है।

15—सब वेद जिस एक पद का विचार या पाठ करते हैं, सब प्रकार के तप और आचरण जिसका बखान करते हैं, जिस पद को जानने की इच्छा से ही लोग 'ब्रह्मचर्य' के रूप में साधना करते हैं, वह पद मैं तुम्हें संक्षेप में बताता हूँ : वह है 'ओम्' !

16—इसका आश्रय लेना श्रेष्ठ है। इसका आश्रय सबसे बढ़कर है। इसके आश्रय को जान कर ही कोई भी व्यक्ति ब्रह्मलोक में महत्ता या वृद्धि को प्राप्त कर सकता है।

18—सब बातों को जानने वाला यह आत्मा न तो जन्म-मृत्यु के बन्धन में आता है, न यह किसी स्थल विशेष से आता है और न यह कभी किसी रूप में उत्पन्न ही हुआ था। यह अजन्मा है, नित्य है, सदा रहने वाला है और चिरन्तन है। शरीरों के विनष्ट होते समय भी यह नष्ट नहीं होता।

19—यदि मारने वाला यह सोचता हो कि मैंने इस आत्मा को भी मार दिया है अथवा मरने वाला यह समझता हो कि वह सचमुच मारा गया है, तब दोनों ही सत्य को नहीं जानते। सत्य यह है कि न यह किसी को मारता ही है, न किसी द्वारा मारा ही जा सकता है।

20—यह सूक्ष्म से भी अधिक सूक्ष्म, और महान से भी अधिक महान है। इस प्राणी की आत्मा एक गुहा-अदृश्य पान में छिपा है। विधाता की कृपा

से उस आत्मा की महत्ता को देखने में वही व्यक्ति समर्थ हो सकता है, जिसके लिए कोई कर्तव्य कर्म आवश्यक न रह गए हों और जो शोक से मुक्त हो चुका हो।

23—इस आत्मा को न तो बहुत प्रवचनों से, न ही बुद्धि के द्वारा, और न ही बहुत अधिक सुनकर पाया जा सकता है। इसे तो वही पा सकता है, जिसे यह वरण करे या चुने। उसी व्यक्ति के लिए यह आत्मा अपने वास्तविक आकार या शरीर को अनावृत कर देती है।

24—जो दुश्चरितों को करने से बाज नहीं आया है, जो अशान्त है, अथवा जिसका मन केन्द्रित और शान्त नहीं हुआ है, वह इस आत्मा को केवल प्रकृष्ट ज्ञान के बल पर ही नहीं पा सकता है।

25—जिसने ब्रह्म और क्षेत्र दोनों पर अधिकार पा लिया है और मृत्यु भी जिसे बल अथवा पोषण ही प्रदान करती है, ऐसा कोई एक ही इस रहस्य को जानता है कि 'वह आत्मा' कहां रहता है?

प्रथम अध्याय वल्ली 3

मंत्र-3—आत्मा को सवार, शरीर को रथ; आत्मा को सारथि और मन को लगाम के रूप में समझ लो।

4—मननशील लोगों ने इन्द्रियों को घोड़ों के रूप में एवं विषयों को उनकी चरागाह के रूप में कहा है। इन्द्रिय और मन से संयुक्त आत्मा ही सच्चा भोक्ता (फलभोक्ता) है।

5—जो सदा ही अपने अनियोजित या अकेन्द्रित मन के कारण विज्ञान से रहित या हीन रहता है, इन्द्रियाँ उसके वश में उसी प्रकार नहीं आ सकतीं, जिस प्रकार सारथि के वश में बिगड़े घोड़े।

7—जो व्यक्ति सदा ही मन न लगा पाने के कारण, अथवा अपवित्र रहने के कारण, विज्ञान की उपलब्धि से हीन रहता है, वह उस 'पद' (या ओंकार) को प्राप्त नहीं कर सकता। बल्कि, वह उसके बदले संसार को ही पा लेता है।

8—किन्तु, जो व्यक्ति मन लगा कर और पवित्र रहकर विज्ञान से युक्त होता है, वह उस 'पद' को जान लेता है, जिसे जानकर वह फिर से जन्म नहीं लेता।

9—विज्ञान को सारथि और मन को लगाम मानकर जो व्यक्ति चलता है, वही मार्ग के पार तक पहुँच पाता है। वही स्थान विष्णु का परम पद है।

10—इन्द्रियों से भी ऊपर उनके विषय हैं, उन विषयों से भी ऊपर मन है। मन से भी ऊपर बुद्धि है और बुद्धि से भी ऊपर महान आत्मा है।

11—महत् तत्व से ऊपर अव्यक्त या प्रकृति तत्व है। अव्यक्त से भी ऊपर 'पुरुष' है। किन्तु, इस 'पुरुष' से ऊपर कुछ भी नहीं है। यह पुरुष ही चरम सीमा है और यही चरम गति या लक्ष्य है।

12—यह आत्मा सभी भूतों में गूढ़ या छिपा हुआ है। यह प्रकाश या स्पष्टता में नहीं आता। सूक्ष्मदर्शी लोग ही इसे अपनी पैनी और सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा देख सकते हैं।

13—ज्ञानी पुरुष अपनी वाणी को मन के अधीन कर नियन्त्रित करे। इस मन को वह ज्ञानमय आत्मा के अधीन कर नियन्त्रित करे। इस ज्ञानात्मा को वह 'महत्तत्व रूप आत्मा' के अधीन अर्पित करे और इस 'महत्‌मय आत्मा' को भी 'शान्तस्वरूप आत्मा' के वश में ले आए।

14—उठो और जागो! श्रेष्ठ उपलब्धियों को पाकर ज्ञानमय या सचेत हो जाओ। उस (शान्त आत्मा के) मार्ग को कवि लोग छुरे की तीव्र धारा के समान अलंघ्य एवं दुर्गम बताते हैं।

15—जो तत्व नित्य ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध की सीमा से परे है, तथा जो अनादि और अनन्त है, एवं 'महत्' से भी ऊपर है, उसे भली प्रकार चुनकर या पहचान कर ही कोई मृत्यु की पकड़ से या उसके बन्धन से, छूट जाता है।

द्वितीय अध्याय, वल्ली 2

मंत्र-9—जिस प्रकार एक होकर भी अग्नि, लोक के विविध रूपों या द्रव्यों में प्रविष्ट होता हुआ उन द्रव्यों के अनुकूल रूप वाला हो गया है, उसी प्रकार यह आत्मा एक होकर भी सब प्राणियों के अन्दर और बाहर समाकर, प्रत्येक आकार के अनुकूल ढलता हुआ, अनेक रूपवाला बन गया है।

10—जिस प्रकार एक होकर भी वायु, लोक के विविध आकारों या द्रव्यों में प्रविष्ट होता हुआ उन द्रव्यों के अनुरूप हो गया है, उसी प्रकार सब प्राणियों के अन्दर और बाहर स्थित यह आत्मा में एक होकर भी अनेक रूप हो गया है।

11—जिस प्रकार सूर्य सारे लोक का चक्षु होकर भी, सामान्य चाक्षुष दोषों से लिप्त नहीं होता, उसी तरह सब प्राणियों के अन्दर और बाहर स्थित यह आत्मा, एक रहता हुआ, लोकदुःख से लिप्त नहीं होता।

12—सब को वश में करने वाला और सब प्राणियों में स्थित यह आत्मा एक ही रूप को बहुत से आकारों में प्रकट करता है। जो धीर पुरुष इसे अपने ही अन्दर स्थित अनुभव करते हैं, उन्हें ही शाश्वत सुख मिलता है, अन्यों को नहीं।

13—जो स्वयं नित्य चेतन और एक होकर भी नित्य चेतन और अनेक आत्माओं की कामनाओं का विधान करता है, उस पुरुष को जो धीर लोग अपने अन्दर ही स्थित अनुभव कर लेते हैं, उनको ही शाश्वत शान्ति की उपलब्धि होती है, अन्यों को नहीं।

14—जिस अनिर्देश्य परम सुख को (उक्त, धीर पुरुष) 'वह यह है' के रूप में मानते या जान लेते हैं, उसके विषय में मैं कैसे निश्चय करूं कि वह स्वतः चमकता है, या अन्य से प्रकाशित होता है ?

15—उस तत्व में न तो यह सूर्य चमकता है, न ही चन्द्र और तारे चमकते हैं और न विद्युत चमकती है। जब ये ही उसमें नहीं चमकते, तब अग्नि का तो प्रश्न ही नहीं उठता बल्कि, चमकते हुए उस के अनुकरण पर उक्त सब वस्तुएं चमकती हैं। यह उसकी ही चमक है, जिससे ये सब प्रकाशित होते हैं।

द्वितीय अध्याय, वल्ली 3

मंत्र-1—ऊपर की ओर जड़ वाला और नीचे फैली शाखा वाला यह अश्वत्थ सदा से ऐसा ही चला आया है। इसी को 'शुक्र' (चमकदार) और 'ब्रह्म' कहा जाता है इसे ही 'अमृत' भी कहा जाता है। सारे लोक इसी पर आश्रित या इसी में स्थित हैं, इससे बचकर कुछ नहीं रहता। यही है 'वह' !

2—यह जो कुछ भी गतिशील संसार है, यह उसी प्राण से निकलकर गति और व्यवहार करता है। यह प्राण ही उठे हुए वज्र की भाँति महान भय का कारण है। जो भी इस बात को समझ लेते हैं, वे अमृत या अमर हो जाते हैं।

3—इसके भय से अग्नि तप रही है। इसके ही भय से सूर्य भी तपता है। इसके ही भय से इन्द्र और वायु और उसके साथ ही पांचवां तत्व मृत्यु, भी सदा गतिमय रहते हैं।

4—यदि इस बात को शरीर के विनाश से पूर्व ही समझने में कोई समर्थ हो जाए, तब वह केवल नयी सृष्टि के आदि प्रसंग में अथवा अन्यान्य लोकों में जन्म के लिए समर्थ होता है।

11—इन्द्रियों के स्थिरतापूर्वक धारणा या निग्रह की उस दशा को 'योग' कहते हैं। तब व्यक्ति प्रमादरहित हो जाता है। योग नाम है प्रवृत्ति और निवृत्ति के संयोग का।

12—न तो उसे वाणी से, न मन से और न ही चक्षु से पाया जा सकता है। इस पर भी जो उसे 'है' के रूप में कहते हैं, वे उसे अन्यथा किस तरह पा लेते हैं ?

13—उक्त दोनों स्थितियों में से 'है' वाली स्थिति को ही 'तत्व' होने के कारण उपलब्ध करने का यत्न करना चाहिए। 'है' यह मानकर उस तत्व को उपलब्ध करने पर ही, वह 'तत्व' प्रसन्न होता है।

14—हृदय में स्थित इसकी जब सभी कामनाएं छूट जाती हैं, तब 'मर्त्य' भी 'अमर' हो जाता है। इस 'अमृत' स्थिति में ही वह 'ब्रह्म' को पा लेता है।

15—जब हृदय की सभी ग्रन्थियां छिन्न-भिन्न हो जाती हैं, तब 'मरणधर्मा' भी 'अमर' हो जाता है। बस यही मेरा उपदेश है।

16—हृदय से प्रसृत होने वाली नाड़ियां एक सौ एक हैं। उनमें से एक ही मूर्धा की ओर निकलती है। उसी के मार्ग से ऊपर उठता हुआ व्यक्ति 'अमृत' को पाता है या अमर बन जाता है। अन्य सब नाड़ियां ऊर्ध्व-गति में, इधर-उधर बिखर कर, रुकावट बनती हैं।

17—'पुरुष' अंगुष्ठपरिमाण 'अन्तरात्मा' के रूप में प्रत्येक के हृदय में प्रविष्ट होकर विद्यमान है। उसे अपने शरीर से उसी प्रकार भिन्न समझकर, जिस प्रकार गूंज से उसके अन्दर छिपी शलाका भिन्न होती है, उसका संवर्धन करे। वह 'पुरुष' ही शुक्र (वीर्यस्थानीय) और अमृत है।

स्मृति

1. मनुस्मृति

द्वितीय अध्याय 2

श्लोक-1—नित्य ही रागद्वेषरहित विद्वानों द्वारा सेवित और हृदय से अनुमोदित जो धर्म है, उसे समझ लो।

6—सम्पूर्ण वेद ही धर्म है, जानकारों के लिए वही स्मृति, शील और आचार है। साधु पुरुषों के लिए वही अपने मन का सन्तोष है।

159—प्राणियों को अहिंसा से ही कार्य करना चाहिए। उसी का अनुशासन या उपदेश कल्याणकर है। धर्म के इच्छुक व्यक्ति को, अहिंसा के साथ ही, मधुर और स्निग्ध वाणी का प्रयोग करना चाहिए।

160--जिस पुरुष के वाणी और मन शुद्ध हैं और सदा ही भली प्रकार संरक्षित हैं, वह वेदों में कहे या उसमें प्राप्तव्य सम्पूर्ण फल को प्राप्त करता है।

227—मनुष्यों की उत्पत्ति के समय माता और पिता जिस क्लेश को सहते हैं, उससे सौ वर्ष में भी उऋण होना सम्भव नहीं है।

228—उन दोनों के लिए और आचार्य के लिए सदा ही प्रिय या रुचि-अनुकूल कार्य करे। इन तीनों के सन्तुष्ट रहने पर सभी प्रकार के अन्य तपों का लाभ प्राप्त हो जाता है।

238—श्रद्धासम्पन्न होकर मानव अपने से छोटे मनुष्य से भी शुभकारी विद्या को ग्रहण कर ले। यदि श्रेष्ठ धर्म मिले, तब उसे अन्त्य या शूद्र से भी ग्रहण कर ले और यदि स्त्री रत्नसदृश मिले तो उसे नीच या दुष्ट कुल से भी स्वीकार कर ले।

तृतीय अध्याय

श्लोक-56—जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहीं अन्य देवताओं का भी निवास होता है और, जहाँ इनकी पूजा नहीं होती, वहाँ अन्य सब किया-कराया भी निष्फल ही रहता है।

57—जिस कुल में स्त्रियों को शोक-रत रहना पड़ता है, वह कुल शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है। जहाँ नारियों को शोक का अवसर नहीं रहता, वह कुल सदा वृद्धि पाता है।

60—जिस कुल में पत्नी से पति और पति से पत्नी, सदा सन्तुष्ट रहते हैं, उस कुल का निश्चय ही सदा कल्याण होता है।

चतुर्थ अध्याय

श्लोक-12—सुख चाहने वाले को चाहिए कि परमसन्तोष धारण करके स्वयं को संयम में रखे; क्योंकि सुख सन्तोष के द्वारा ही उपलब्ध है। यदि सन्तोष के स्थान पर असन्तोष हो, तब वह दुःख का मूल बनता है।

138—सदा सच बोले, किन्तु वही जो प्रिय भी है! सत्य यदि अप्रिय हो, तो उसे न कहना ही उचित है किन्तु, अनृत या असत्य भी न बोले, भले ही वह प्रिय हो! यही धर्म सदा से चला आया है।

160—सभी प्रकार का दुःख दूसरों पर निर्भर होता है, किन्तु सभी प्रकार के सुख की प्राप्ति स्वयं अपने पर निर्भर होती है। संक्षेप से सुख-दुःख का लक्षण यही जानें।

161—जिस काम को करते हुए मानव की अन्तरात्मा सर्वतः सन्तोष अनुभव करे, उसे तो प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए। किन्तु, जिसमें ऐसा अनुभव न हो, उसे त्याग देना चाहिए!

176—यदि धर्म से हीन हो, तो ऐसे 'धर्म' और 'काम' को भी छोड़ दो। किन्तु, ऐसे धर्म का भी परित्याग कर देना चाहिए, जो दुःख को जन्म देने वाला हो तथा जनसाधारण से खिंचा हुआ हो।

सप्तम अध्याय

श्लोक-44—दिन और रात उसे (राजा को) इन्द्रियों के विजय में यत्नशील होना चाहिए। अपनी इन्द्रियों को जीत लेनेवाला ही प्रजाओं को भी वश में रखने में सफल हो सकता है।

47—शिकार, जुआ, दिवास्वप्न, परनिन्दा, स्त्रियों में आसक्ति, मद्य पानादि, वाद्य और संगीत एवं व्यर्थ घूमना—ये दस वस्तुएँ काम को भड़काती हैं।

48—चुगली करना, दुस्साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, धन के सम्बन्ध में गड़बड़ी, वाणी और दण्डजन्य कठोरता—ये आठ बातें क्रोध को भड़काने वाली हैं।

49—इन दोनों (काम और क्रोध) के मूल में कवियों ने जिस वस्तु को माना है, उस लोभ को बहुत यत्न से जीते। उससे ही ये दोनों गुण जन्म लेते हैं।

50—काम को भड़काने वाले गण में भी मद्यपान, जुआ, स्त्रियाँ, और आखेट—इन चारों के गण को यथाक्रम सर्वाधिक कष्टप्रद जाने।

64—राजा द्वारा नियुक्त वही दूत प्रशंसनीय अथवा श्रेष्ठ माना गया है, जो स्वामी में अनुरक्त, पवित्र, कुशल, स्मृतिशक्ति से सम्पन्न, देश और काल का ध्यान रखने वाला, सुपुष्ट शरीर वाला, भयरहित और अच्छा वक्ता हो।

अष्टम अध्याय

श्लोक-13—या तो सभा में ही न प्रवेश करे। यदि करे, तब युक्तिसंगत बात कहनी चाहिए। बिलकुल ही चुप रहने वाला अथवा उलटी-सीधी बात करने वाला मनुष्य दोष कारक होता है।

15—हनन किया हुआ धर्म भी विनाश का ही कारण बनता है। किन्तु, रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा का काम करता है। इसीलिए हमें धर्म का व्याघात कभी नहीं करना चाहिए, ताकि कहीं व्याघात किया गया धर्म हमारा ही विनाश न कर डाले।

18—(जिस राजा के राज्य में अधर्म होता है, वहाँ) अधर्म के कर्ता का दायित्व केवल चतुर्थांश ही होता है। शेष में से दायित्व चतुर्थांश उस अधर्मकार्य के साक्षी या देखने वाले का, चतुर्थांश राज्यसभा के सभासदों का और अवशिष्ट चतुर्थांश राजा का भी होता है।

81—किसी गवाही के प्रसंग में यदि कोई गवाह सत्य बोलता है, तो उसे अपार लौकिक सुख एवं अपूर्व सांसारिक कीर्ति मिलती है। यह बात वेदों द्वारा भी सम्मानित है।

84—हमारी आत्मा ही स्वयं अपनी साक्षी है, और वही स्वयं अपनी उद्धारक या शरण भी है। इसलिए मनुष्यों की सर्वोत्तम साक्षी रूप अपनी इस आत्मा का तिरस्कार मत करो!

85—पाप करने वाले यह मानते हैं कि उन्हें कोई नहीं देख रहा है। किन्तु, उनके अपने शरीर के अन्दर ही स्थित देवता (द्यौस्: आदि अथवा इन्द्रियात्मादि) उन्हें देखते रहते हैं।

86—सब शरीरधारियों के प्रत्येक कार्य को द्यौस्:, पृथ्वी, जल, हृदय, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, यम (मृत्यु), वायु, रात्रि, ऊष्मा, प्रातः और धर्म (आदि देवता) भली प्रकार देख रहे हैं या जानते हैं।

92—यह जो विवस्वान् से उद्भूत यम (काल) तुम्हारे ही हृदय में स्थित है, यदि इससे तुम्हारा विवाद नहीं है, फिर गंगा या कुरु (=कुरुक्षेत्र) आदि जाने की भी आवश्यकता नहीं है।

386—जिस राजा के नगर या राज्य में कोई भी व्यक्ति, चोर, परस्त्रीगामी, दुष्ट भाषी, डाकू या बलात्कार करने वाला और दण्डघाती नहीं है, वही राजा इन्द्रलोक या स्वर्गावस्था का अधिकारी होता है।

दशम अध्याय

श्लोक-63—मनु ने ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लिए संक्षेप में अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, शुद्धता और इन्द्रियसंयम को ही 'धर्म' कहा है।

बाल्मीकि रामायण

अयोध्या काण्ड

सर्ग-1

श्लोक-3—वहाँ (मामा के घर) रहते हुए भी वे दोनों वीर भाई सब इच्छाओं से तृप्त होने पर वृद्ध राजा दशरथ को स्मरण करते रहते थे।

4—महान् तेजसम्पन्न राजा भी इन्द्र और वरुण से मिलते-जुलते उन दोनों प्रवासी बेटों—भरत और शत्रुघ्न—को स्मरण करता रहता था।

5—यूं तो उस राजा को अपने चारों ही पुरुषश्रेष्ठ पुत्र प्रिय थे, मानों वे उसी के शरीर से विनिर्गत चार बाहुओं के समान हों!

6—किन्तु, उनमें से भी महान् तेज वाले राम पिता के लिए महान् प्रीतिकर थे। जैसे भूतों या प्राणियों से स्वयंभू ब्रह्मा सबसे बढ़कर हैं, उसी प्रकार उन भाइयों में राम सर्वाधिक गुणी थे!

7—बहुत बढ़ते हुए रावण के वध की कामना करने वाले देवों द्वारा याचना करने पर सनातन पुरुष विष्णु ही उस राम के रूप में मनुष्य लोक में आए थे!

8—उस असीम तेज सम्पन्न पुत्र से कौशल्या वैसे ही शोभित हुई, जैसे देवताओं में श्रेष्ठ वज्रधारी इन्द्र के कारण देवमाता अदिति शोभा-सम्पन्न हुई।

9—वह वीर्य से सम्पन्न, रूपवान् और ईर्ष्यारहित था। इस भूमि का वह अनुपम पुत्र था। गुणों में वह जनक दशरथ के ही समान था।

10—वह नित्य ही शान्त आत्मा वाला रहता तथा मृदुता पूर्वक बात करता। यदि उसे कोई कठोर बात भी कहे, तब भी वह कठोर उत्तर नहीं देता।

11—यदि किसी ने किसी प्रकार इसका एक भी उपकार कर दिया, तो यह उतने से ही सन्तुष्ट हो जाता। किन्तु अपने प्रति किये गए शतशः उपकारों को भी स्मरण तक नहीं करता ! कारण यह कि वह इसका अपना स्वभाव था।

12—ज्ञान, शील और आयु की दृष्टि से वृद्ध सज्जनों के साथ अस्त्र-शस्त्रादि तथा अन्य विषयों के सम्बन्ध में बात करता हुआ वह समय बिताता।

13—यह बुद्धिमान मधुर वक्ता, प्रियंवद और प्रथमतः स्वयं ही बात आरम्भ करने वाला है। यह वीर्यवान् है, किन्तु अपने पराक्रम या बल पर गर्वित नहीं है।

14—यह कभी भूठ न बोलने वाला, विद्वान, वृद्धों का समादर करने वाला, प्रजाओं के लिए अनुरक्त, एवं प्रजाओं से अनुराग पाने वाला है।

15—उचित क्रोध के रहने पर भी इसने उसे जीता हुआ है। यह ब्राह्मणों की अर्चा करने वाला, दीनों पर अनुकम्पा करने वाला, धर्म को पहचानने वाला, पवित्र और नित्य संयमी है।

16—कुलस्थिति के अनुरूप सोचने वाला यह अपने क्षत्रियधर्म को सर्वाधिक आदर की दृष्टि से देखता है। उसी से परम कीर्तिलाभ पूर्वक यह स्वर्ग के महान् फल की उपलब्धि सम्भव मानता है।

17—यह किसी भी अकल्याणकर कार्य में रत नहीं है और न इसकी रुचि किसी की विरुद्ध कथाओं में ही है। अवसरोचित युक्तियों को उत्तरोत्तर प्रस्तुत करने में यह बृहस्पति के समान कुशल है।

18—रोगरहित, तरुण, उत्तम वक्ता, सुन्दर और पुष्ट काया वाला, स्थान और अवसर का ध्यान रखने वाला और पुरुष की वास्तविकता को जानने वाला यह राम, वास्तव में, लोक भर में श्रेष्ठ साधु पुरुष बन कर आया है।

19—श्रेष्ठ गुणों से युक्त वह दशरथपुत्र राम अपने गुणों के कारण प्रजाओं को ऐसे ही प्रिय था, जैसे वह उनका बाहर विचरण करने वाला प्राण ही हो !

20—उसने सभी प्रकार की विद्या और व्रत की दीक्षा ली है, और षडांगसहित वेदों को ठीक से पढ़ा है। भरत का यह बड़ा भाई धनुर्विद्या में तो अपने पिता से भी श्रेष्ठ है।

21—कल्याणमय वंश का, साधुस्वभाव वाला, किसी के सम्मुख दीन न बनने वाला, सत्य बोलने वाला और सरल स्वभाव वाला यह राम धर्म और अर्थ के रहस्य को जानने की वृद्ध द्विजों से स्वयं भी विनय के व्यवहार को पाता है।

22—धर्म, अर्थ और काम के तत्व को जानने वाला, स्मृति और प्रतिभा से सम्पन्न यह राम लौकिक सभ्याचार की दृष्टि से भी दीक्षित एवं उस में चतुर है।

23—चुपचाप शान्त और स्थिर आकृति वाला, यह राम सहायकों से युक्त है और अपनी मन्त्रणा को गुप्त रखना जानता है। इसके क्रोध हर्ष—दोनों ही—व्यर्थ हैं। यह त्याग और संग्रह के उचित अवसरों को पहचानता है।

24—इसकी भक्ति दृढ़ और प्रज्ञा स्थिर है। न यह असत् का ग्रहण करता है और न ही बुरी बात या कठोर ढंग से बोलता है। यह तन्द्रा और प्रमाद के वशीभूत नहीं है तथा अपने और पराए दोषों को पहचानता है।

25—यह शास्त्रों का ज्ञाता और कृतज्ञ है तथा दूसरे या अन्यान्य पुरुषों के स्वभाव को पहचानने में निपुण है। बन्धन और मोक्ष अथवा दण्ड और कृपा को न्यायानुकूल विचारने या करने में यह निपुण है।

26—अच्छी बातों और अच्छे व्यक्तियों के संग्रह और प्रग्रह (बन्धन) में तथा नियन्त्रण में, वह उचित स्थिति को पहचानता है। साथ ही, वह जहां आय के उपायों को जानता है, वहां व्यय के विषय में भी पूरी जानकारी रखता है।

27—उसने शास्त्रसमूह और युद्ध-आदि में श्रेष्ठता प्राप्त की है। उसने अर्थ और धर्म का संग्रह करके सुख को अधिकार में कर लिया है तथा वह आलस्य से ही न है।

28—विहारसम्बन्धी कार्यों, शिल्पों का ज्ञाता होने के अतिरिक्त वह अर्थ या धन के विनियोग या विभाग को भी जानता है हाथी और घोड़ों के प्रशिक्षण और उन पर चढ़ने में भी वह कुशल है।

29—वह धनुर्धारियों में श्रेष्ठ होने के साथ ही अप्रतिम चालक भी माना गया है। वह अभियान और प्रहार की कला में चतुर है। साथ ही, सैन्य-संचालन नीति में भी चतुर है।

30—क्रुद्ध होकर भी सुर या असुर उसे संग्राम में हरा नहीं सकते। न उसमें किसी के प्रति ईर्ष्या है, न क्रोध है और न मत्सर है। उसने क्रोध को भी जीत लिया है।

31—न वह प्राणियों का तिरस्कार करता है और न ही वह काल के प्रभाव से प्रभावित होता है। इस प्रकार के श्रेष्ठ गुणों से युक्त वह राजा का पुत्र सभी प्रजाओं को प्रिय है।

32—धरती के सदृश क्षमा के गुण के कारण वह तीनों लोकों में पूजित है। बुद्धि में वह वृहस्पति के तुल्य है और बल-पराक्रम में इन्द्र के तुल्य !

33—इस प्रकार सब प्रजाओं को प्रिय एवं पिता को भी प्रीति देने वाले गुणों से राम उसी प्रकार शोभित या आभासित है, जैसे दीप्त किरणों से सूर्य शोभित होता है।

सर्ग-19

श्लोक 20—हे देवि ! मैं धन या 'अर्थ' के किसी लोभ से लोक या उसमें स्थित किसी वस्तु के प्रति उत्साहवान् नहीं हूँ। मुझे तुम ऋषियों के समान ही समझो। मैं केवल 'धर्म' में ही स्थित हूँ या उसी के आश्रय में हूँ।

सर्ग-21

श्लोक 55—धर्म में स्थित वह अपनी निस्संज्ञ सी पड़ी माता को और क्रोध में आए हुए दुःखी भाई लक्ष्मण को धर्ममय इन वचनों को बोला। ये बातें उस अवसर पर वही कहने में समर्थ था।

56—'लक्ष्मण ! मैं नित्य ही तेरी भक्ति और पराक्रम को जानता हूँ। किन्तु, माँ के साथ जब तू भी मेरे अभिप्राय को नहीं समझता, तब मुझे बहुत कष्टदायक पीड़ा होती है।

57—इस मानव लोक में धर्म, अर्थ और काम को धर्म के फलों की उत्पत्ति का कारण माना गया है। ये सब वहाँ अवश्य ही होते हैं, जहां उत्तम पुत्रों सहित पत्नी पति को वशवर्तिनी एवं प्रिय होती है।

58—जहां ये सब बातें सन्निविष्ट न हों, वहां उस काम को ही आरम्भ करे जिससे 'धर्म' का उदय हो ! क्योंकि केवल 'अर्थ' में रत व्यक्ति भी दुनिया में द्वेष का पात्र बनता है और केवल 'काम' का उपासक भी प्रशंसा नहीं पाता !

सर्ग-30

श्लोक 30—हाथी की सूँड के समान सुन्दर जाघों वाली हे सुन्दरि ! धर्म का आचरण तो लोग पहले भी करते आए हैं। आज मैं भी वैसे ही उस का अनुसरण करूंगा, जैसे सुवर्चला सूर्य का अनुसरण करती है।

सर्ग-105

श्लोक 15—(हे भरत !) इस आत्मा को किसी प्रकार की कामना नहीं होती। यह 'पुरुष' या आत्मा अन्य किसी के भी स्वामित्व में नहीं है। किन्तु, काल इसे इधर से उधर खींचता रहता है।

16—सभी प्रकार के संग्रहों का अन्त विनाश में होता है। सभी प्रकार के उत्थानों का अन्त पतन में होता है। संयोग वियोगों में परिणत होते हैं और जीवन का अन्त भी मृत्यु के रूप में होता है।

17—जिस तरह पके हुए फलों के कहीं और गिरने से कोई भय नहीं होता, उसी प्रकार यदि उत्पन्न मनुष्य भी कहीं अन्यत्र मर जाए, तब उससे कोई भय नहीं होता !

18—जिस प्रकार दृढ़ आधार स्तम्भों वाला भवन भी पुराना पड़कर दयनीय हो जाता है, उसी प्रकार मानव भी बुढ़ापे और मृत्यु के वश में आकर (या उनके वशवर्ती होने के कारण) खिन्न होते हैं।

19—जो रात्रि बीत जाती है, वह लौटकर वापिस नहीं आती। यमुना भी भरने के बाद लवण-सागर की ओर ही जाती है।

20—इसी प्रकार सभी प्राणियों के (जीवन के) दिन और रात भी बीतते जाते हैं और उनकी आयु वैसे ही क्षीण होती जाती है, जिस प्रकार गर्मी के दिनों में किरणों से जल सूखता जाता है।

21—तुम्हें दूसरों का शोक करने के स्थान पर अपने विषय में विचार करना चाहिए। तुम्हारी यह आयु चलते या स्थिर रहने पर भी क्षीण ही होती जा रही है।

22—मनुष्य के चलते और बैठे होने पर मृत्यु भी साथ-साथ चल या बैठ रही होती है। लम्बा रास्ता पार करके लौटने पर मृत्यु भी साथ ही लौट आती है।

23—शरीर में झुर्रियां पड़ गई हैं। बाल सफेद हो गए हैं। बुढ़ापे ने पुरुष को गला दिया है। अब वह किस प्रकार प्रभावकारी हो सकता है?

24—मनुष्य सूर्य के उदय होने पर और अस्त होने पर—दोनों ही समय—खूब प्रसन्न होते हैं। ये ही उसके साथ होने वाले अपनी जीवन को क्षीण होता नहीं पहचान पाते ?

25—नई-नई ऋतुओं के आरम्भ को देख कर सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं। किन्तु इन ऋतुओं के परिवर्तन के साथ उनके प्राणों का विनाश या क्षीणता भी होती जाती है।

26—जिस प्रकार महासमुद्र में एक लक्कड़ दूसरे लक्कड़ से आ मिलता है, और कुछ देर के बाद फिर से बिछुड़ जाता है,

27—उसी प्रकार, पत्नी, पुत्र, सम्बन्धी और धन भी आपस में मिलकर एक दूसरे से दूर हो जाते हैं। इस प्रकार इनका यह विनाश या अलगाव निश्चित ही है।

28—इस संसार में कोई भी प्राणी एक ही स्थिति में नहीं रहता। इसलिए उसके मरने पर शोक करने की बात सार्थक नहीं जंचती !

29—जिस प्रकार किसी जाने वाले समूह को राह में स्थित कोई व्यक्ति कहे कि 'मैं भी आपके पीछे-पीछे आ रहा हूँ;

30—उसी प्रकार पिता-पितामह द्वारा अपनाए गए निश्चित पथ का पूर्वजनों ने अनुसरण किया है। उस बात को करने वाले किसी भी व्यक्ति का शोक क्यों किया जाए, जिससे बचकर जाना असंभव है।

31—जो गिरते हुए पक्षी अथवा न लौटने वाले स्रोतप्रवाह के समान निरन्तर ह्रास शील है, ऐसे आत्मा का उपयोग सुखमार्ग में करना चाहिए। सामान्य प्रजा को सुख की इच्छा करने वाला माना गया है।

सर्ग-109

श्लोक 2—(हे जाबाले) आपने मेरा प्रिय करने की इच्छा से जो बात कही है, वह कार्य जैसे प्रतीत होने वाले अकार्य एवं पथ्य जैसे प्रतीत होने वाले अपथ्य के समान है।

3—मर्यादाहीन पुरुष पापाचरण से युक्त होता है। वह सज्जनों में कहीं मान प्राप्त नहीं करता। उसका चरित्र उन्हें भिन्न सा ही दिखाई देता है।

4—मनुष्य कुलीन है या अकुलीन, वह वीर है या नाम का ही पुरुष है, अथवा वह पवित्र है या अपवित्र, इस बात को चरित्र ही स्पष्ट कर देता है।

5, 6—यदि मैं शुभ का त्याग करके विधि से हीन इस क्रिया को प्राप्त कर लूँ और लोक के लिए व्यामोह पैदा करने वाले इस अधर्म को धर्म

मानकर स्वीकार करलूँ, तब मैं आर्यसदृश प्रतीत होकर भी अनार्य, पवित्र प्रतीत होकर भी अपवित्र, गुणी प्रतीत होकर भी गुणहीन, एवं चरित्रवान् प्रतीत होकर भी दुश्चरित्र ही हो जाऊंगा।

7—तब कर्तव्य और अकर्तव्य कर्म को पहचानने में चतुर और चेतनावान् कौन व्यक्ति जनता को गुमराह करने वाले या उसके सामने कुपथ का आदर्श रखने वाले, एवं दुराचरण वाले मुझे इस लोक में आदर की दृष्टि से देखेगा!

8—प्रतिज्ञा से हीन कर देने वाली इस वृत्ति से आचरण करता हुआ मैं किसके लिए आदर्श रखूंगा और किस वृत्त में स्वर्ग पा सकूंगा।

9—अपनी इच्छानुसार आचरण तो सारी ही सामान्य जनता करती है। किन्तु राजा लोग जिस प्रकार का आचरण करते हैं, जनता उनका ही अनुसरण करने लगती है।

10—निर्दयता से रहित सत्य ही प्राचीन समय से राजाओं का आचरणमूल रहा है। इसीलिए राज्य को भी सत्यमूलक कहा गया है। सच तो यह है कि सत्य पर लोक की स्थिति आधारित है।

11—ऋषियों और देवताओं ने भी सत्य को ही आदर दिया है। सत्यवादी पुरुष ही इस लोक में अक्षय और परमपद को प्राप्त करता है।

12—जिस प्रकार लोक सांप को देखकर घबरा जाते हैं, उसी प्रकार के अमृतवादी को देख कर भी उद्विग्न हो जाते हैं। लोक में सत्य ही परम धर्म है। और उसे ही सब धर्मों का मूल कहा जाता है।

13—लोक में सत्य ही ईश्वर है। सत्य में ही लक्ष्मी प्रतिष्ठित है। सभी बातों का मूल सत्य ही है। सत्य से बढ़कर किसी भी चीज़ का स्थान नहीं!

14—दिया हुआ दान, इच्छित वस्तु, यज्ञ में दी हुई आहूति, किए हुए तप एवं वेद भी सत्य पर ही आधारित हैं। इसलिए सत्य के प्रति ही निष्ठावान् होना चाहिए!

15—(राजाओं में से) कोई तो लोक का पालन करता है, जब कि दूसरा अपने कुल का पालन करने में ही लगा रहता है। इसमें से एक तो नरक में ही डूब जाता है, जब कि दूसरा स्वर्ग में प्रतिष्ठा पाता है।

16—इसलिए मैं पिता की आज्ञा को क्यों पालन न करूँ। मैं सत्य प्रतिज्ञा वाला हूँ। सत्य की रक्षा या पुष्टि सत्य के द्वारा ही होती है।

17—मैंने अपने पूज्य पिता से सच्ची प्रतिज्ञा की है। मैं लोभ, मोह, अज्ञान अथवा तमोगुण के प्रभाव के कारण सत्य के उस पुल या बाँध को नहीं तोड़ूंगा।

18—जिसकी प्रतिज्ञा असत्य ठहरती है, जो सत्य से विचलित हो जाता है और अस्थिर चित्त वाला है, ऐसे आदमी की या हमारी, पुकार या वचन का प्रत्युत्तर देवों या पितरों में से कोई भी नहीं देता।

19—जिसका स्वरूप स्पष्ट है, ऐसे इस सत्य रूपी धर्म को मैं स्थिर और निश्चित समझता हूं। इसलिए सत्पुरुषों द्वारा इस भार को सदा ही सम्मानपूर्वक देखा जाता है।

20—(सत्य की अपेक्षा) मैं क्षात्र धर्म का त्याग करना उचित समझूंगा। सच यह है कि धर्म से मिले अधर्म का आचरण छोटे, निर्दय, लोभी और पापी लोग ही करते हैं।

21—यह पापकर्म तीन प्रकार का होता है। शरीर द्वारा किया जाने वाला, मन में संकल्प करके, एवं वाणी से असत्य उच्चारण करके।

22—भूमि, कीर्ति यश और लक्ष्मी सच्चे पुरुष से याचना करते हैं और सदा सत्य का अनुसरण करते हैं। अतः सत्य का ही सदा सेवन करें।

23—जो बात आपने बहुत विचारकर बहुत युक्तियों के साथ मुझे यह कहकर कही है कि 'हे भद्र इस पर आचरण करो', वह श्रेष्ठ होकर भी आर्याचरण के विपरीत है।

24—यह कैसे सम्भव है कि अपने पिता के प्रति इस बनवास की प्रतिज्ञा करने के बाद, मैं उनको दिए वचन को तोड़कर भरत के वचन का पालन करूं?

25—अपने पूज्य पिता के सामने की गई मेरी प्रतिज्ञा स्थिर है। वह देवी कैकेयी भी उस समय हर्षित अथवा तृप्त हो गई थी।

26—बनवास में रहता हुआ, पवित्र बना हुआ या बँधा हुआ सीमित भोजन करने वाला, एवं पितरों और देवों को फल-फूल-मूल एवं पुण्यकर्मों से तृप्त करता हुआ, (मैं)—

27—(तथा) पांचों वर्गों को संतुष्ट करके मैं अपना जीवन निर्वाह यहाँ कर रहा हूं। मेरे अन्दर ईर्ष्या नहीं है, मैं श्रद्धा से युक्त हूं और कार्य-अकार्य को पहचानने में चतुर हूं।

सर्ग-127

श्लोक 4—हे पुरुषश्रेष्ठ! पति का भाग्य केवल पत्नी ही पा सकती है। इसीलिए मुझे भी (तुम्हारे साथ ही) यह आदेश मिला है कि 'बन में निवास करो'।

5—सच तो यह है कि इस लोक में, अथवा मरकर भी नारियों के लिए शरण का स्थल केवल पति ही रहता है। माता, पिता, पुत्र, स्वयं, या सखियों में से कोई भी उसकी गति नहीं बनता।

6—हे राघव ! तुम यदि आज ही दुर्गम वन की ओर चल पड़ो, तब मैं कुशाओं और कांटों को रौंदती हुई तुम से आगे-आगे चलूंगी।

7—पीने से बचे हुए पानी की भांति ईर्ष्या और द्वेष की भावना को दूर फेंक कर, हे वीर ! निश्चिन्त होकर मुझे साथ ले चलो ! मुझ में पाप विद्यमान नहीं है।

8—चाहे महलों की चोटियों पर चढ़ जाओ, या विमानों में घूमो, अथवा चाहे आकाश में विचरण करो, किन्तु पांवों का अनुसरण छाया सर्वत्र ही करती है। उसी प्रकार पत्नी भी पति की पादछाया के समान सर्वत्र उसका अनुगमन करती है।

9—विविध प्रकार से माता और पिता ने मुझे पहले ही व्यवहार की विधि के सम्बन्ध में शिक्षित कर रखा है। अब मुझे उस सम्बन्ध में कर्तव्याकर्तव्य समझाने की आवश्यकता नहीं है।

10—मैं तो पुरुषों के लिए भी वर्जित दुर्गम वन में जाऊँगी, भले ही उसमें नाना पशुगण हों और भले ही उसमें अनेकों व्याघ्र और भेड़िये रहते हों।

11—मैं वन में भी उसी प्रकार सुखपूर्वक रहूँगी, जैसे पिता के घर में। मुझे तीनों लोकों की चिन्ता छोड़कर केवल पतिव्रत धर्म की चिन्ता होगी।

12—ब्रह्मचारिणी और संयमी रहकर तुम्हारी सेवा करती हुई मैं, हे वीर ! तुम्हारे साथ उन मधुर गन्ध वाले वनों में विचरण करूंगी।

13—हे राम ! तुम तो वन में अन्य लोगों का भी पालन करने में समर्थ हो। फिर हे मान देनेवाले ! एक मेरा ही रक्षण कौन ऐसी बड़ी बात है ?

14—आज मैं तुम्हारे साथ ही वन में जाऊंगी, उसमें तनिक भी संशय नहीं है। यदि तुम उद्यम भी करो, हे महाभाग ! तब भी तुम मुझे रोक नहीं सकोगे !

15—मैं नित्य ही फलमूल मात्र खाकर तृप्त रहूंगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। तुम्हारे साथ रहते हुए मैं तुम्हें कोई भी कष्ट नहीं दूंगी।

16—मैं तुमसे आगे-आगे चलूंगी, पर खाना मैं तुम्हें खिलाकर ही खाऊंगी। मैं तो नदियों, पर्वतों, तालाबों और वनों को देखना चाहती हूं।

17—मैं तुम जैसे बुद्धिमान पति के साथ निर्भय होकर सर्वत्र हंस और कारण्डव पक्षियों से भरी हुई और भली प्रकार पुष्पित कमलस्थलियों या तालाबों को देखना चाहती हूँ ।

18—तुझ वीर के साथ रहती हुई सदा सुखभरी, मैं कमलतालाबों में नित्य ही संयमपूर्ण व्रत का आचरण करती हुई स्नान करना चाहती हूँ ।

19—और हे विशाल आंखों वाले ! मैं परम हर्षित होती हुई तुम्हारे साथ विहार करूंगी । इसी प्रकार मैं तुम्हारे साथ सहस्रों वर्ष बिता डालूंगी ।

20—इस पर मुझे स्वर्गप्राप्ति भी मार्ग में बाधा बनकर नहीं रोकेगी । स्वर्ग में भी हे राम ! यदि तुम्हारे बिना रहना मिले (तब मैं तुम्हारे बिना उसे भी पसन्द न करूंगी) ।

21—मैं पशुओं से भरे और वानरों और हाथियों से संकुल अत्यन्त दुर्गम वन में भी जाऊँगी और मैं उस बन में उसी प्रकार सादर रहूंगी जैसे पिता के घर में । वहाँ मेरे सहारा बनेंगे तुम्हरे चरण ।

अरण्यकाण्ड

सर्ग 9

श्लोक 2—किसी सूक्ष्मातिसूक्ष्म विधि से भी महान अधर्म होना सम्भव है । उदासीन व्यक्ति के द्वारा भी यह कामज व्यसन के कारण सम्भव है ।

3—कामज व्यसन तीन ही होते हैं । इनमें से भी मिथ्यावाक्य यद्यपि स्वयं गुरुतर है, तथापि शेष दोनों उससे भी बढ़कर हैं । ये हैं; परस्त्रीगमन और बिना वैर के भयंकर कृत्य ।

4—हे राघव ! मिथ्यावाक्य का दोष न तुममें कभी था और न कभी होगा ही । फिर दूसरों की स्त्रियों की इच्छा और धर्मनाश की बात का तो अवकाश ही कहां है ?

5—न ये बातें तुममें कभी थीं, न हैं । हे राम ! यह तो तुम्हारे मन में भी कहीं नहीं है ।

6—हे राजपुत्र ! तुम तो सदा अपनी स्त्री से ही संतुष्ट हो । तुम अत्यधिक धार्मिक, सत्य प्रतिज्ञावाले और पिता के आदेश का पालन करने वाले हो ।

7—हे सत्यप्रतिज्ञ, महाभाग्यशाली, श्रीसम्पन्न, लक्ष्मणाग्रज ! तुम में सत्य और धर्म के साथ-साथ अन्य सब-कुछ भी प्रतिष्ठित है अर्थात् सब-कुछ तुम्हारे ही आधार पर टिका है ।

8—हे महाभाग ! उस सब को विजित इन्द्रियों के बल पर धारण किया जा सकता है और यह मैं भली प्रकार जानती हूं कि तुमने अपनी इन्द्रियों को वश में कर रखा है ।

9—पर, यह जो तीसरा अधर्म मोह के वश 'निर्वर रौद्र' के रूप में प्राणियों की निरपराध ही हिंसा करने के रूप में है, वह अवश्य तुम्हारे लिए उपस्थित हो गया है ।

10—हे वीर ! तुमने दण्डकारण्यवासी ऋषियों की रक्षा के लिए (यज्ञ प्रसंग में) राक्षसों का वध करने की प्रतिज्ञा करली है ।

11—इस बात के लिए दण्डक वन अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । अब तुम धनुषबाण लेकर अपने भाई के साथ इसी दण्डकवन की ओर चले हो ।

12—इसी कारण तुम्हें वन की ओर जाता देखकर तुम्हारी ही बात विचारते हुए, मेरा मन चिन्तातुर हो उठा है । भगवान करे कल्याण ही हो ।

13—हे वीर ! मुझे दण्डक के प्रति तुम्हारा जाना अच्छा नहीं लगता । इस का कारण मैं बताती हूँ । तुम जरा ध्यान से सुनना ।

14—कहीं ऐसा न हो कि भाई के साथ वन में धनुषबाण लेकर गए हुए तुम सभी प्रकार के वनचर प्राणियों को देखकर अपने बाणों का प्रयोग करने लगो ।

15—सच तो यह है कि क्षत्रियों के पास पड़ा धनुष भी उनके तेज और बल को भड़का देता है; जिस प्रकार समीपस्थ ईंधन अग्नि को भड़काने का कारण बनते हैं ।

16—हे महाबाहु ! पहले कभी पशुओं और पक्षियों से आवासित किसी पुण्य वन में एक तपस्वी और सत्यवक्ता मुनि हुआ ।

17—उसके तप में विघ्न डालने के लिए शचीपति इन्द्र, भट का रूप धारण करके, खड्ग हाथ में लिए हुए उसके आश्रम में आए ।

18—उस आश्रम में पुण्यवान् उस तपस्वी के तप करते होने पर इन्द्र ने वह तेज धार वाला उत्तम खड्ग न्यास के रूप में रख दिया ।

19—उस शस्त्र को प्राप्त करके न्यास के रक्षण में तत्पर वह मुनि वन में विचरण करते हुए भी अपने विश्वास को बचाने का यत्न करता था ।

20—जहाँ कहीं भी वह मूलों और फलों को लेने के लिए जाता था, न्याय रक्षा के विचार से वह खड्ग को भी सर्वत्र साथ ही ले जाता था ।

21—इसी प्रकार क्रमपूर्वक नित्य ही उस तलवार को उठाते-उठाते, उस मुनि की बुद्धि भी रौद्र हो गई और तप के विषय में उसका निश्चय जाता रहा ।

22—तब रौद्र कर्म में लगकर प्रमत्त बना हुआ एवं अधर्म से कृश हुआ, वह मुनि उस शस्त्र के सहवास के ही कारण नरक में गया।

23—इस प्रकार से यह एक पुराना आख्यान है, जो शस्त्र के संयोग के कारण घटा।

24—शस्त्र के संयोग को भी अग्नि के संयोग जैसा ही कहा गया है। यह बात मैं तुम्हें स्नेह और अत्यधिक आदर की दृष्टि से स्मरणमात्र दिला रही हूँ। मैं कोई शिक्षा नहीं दे रही हूँ।

25—धनुष हाथ में लिए हुए तुम भी दण्डक में रहने वाले इन राक्षसों के प्रति बिना वैर के ही अपनी बुद्धि (राय) उसी प्रकार की न बना लेना अर्थात्, इन्हें बिना कारण ही मारने की बात न ठान लेना। बात यह है कि बिना अपराध के लोगों के मारने की मैं कामना नहीं करती।

26—वन में संयतात्मा होकर रहने वाले वीर क्षत्रियों को तो धनुष से मात्र इतना ही कार्य है कि वे दु:खी लोगों का सर्वथा रक्षण कर सकें।

27—वैसे तो, वन, एवं क्षात्र धर्म और तप का परस्पर मेल ही कहां बैठता है? फिर भी जब हम यहां आ ही गए हैं, तब हमें यहां के देशधर्म का पालन करना ही उचित है।

28—इस प्रकार, हे आर्य! शस्त्र के सेवन से बुद्धि कलुष या मैली हो जाती है। अयोध्या जाकर बाद में भी तो आपको क्षत्रियधर्म का पालन करना ही है।

29—यदि राज्य को छोड़ने के बाद आप सचमुच मुनिवत् उदासीन हो जाए, तब सच ही सास-ससुर में मेरी प्रीति अक्षय हो जाएगी।

30—धर्म से ही 'अर्थ' सम्भव होता है। उसी से सुख भी सम्भव होता है। धर्म से ही सभी वस्तुओं की उपलब्धि होती है। वास्तव में यह संसार ही धर्म के बल पर टिका है।

31—स्वयं को उन-उन नियमों से प्रयत्नपूर्वक कृश करके निपुण लोग धर्म को प्राप्त करते हैं यों किन्हीं सुखमय उपायों से ही सुख की उपलब्धि नहीं होती।

32—इस लिए, हे सौम्य! नित्य ही पवित्र बुद्धि लेकर तपोवन में रहते हुए धर्म का आचरण कीजिए। यूं तो तीनों लोकों के सम्बन्ध में सब-कुछ आपको यथातथ्य रूप में विदित ही है।

सुन्दरकाण्ड

सर्ग 21

21.3—तब तिनके की ओट करके पवित्र मुस्कान वाली वह सीता उत्तर में बोली—'अपना मन मेरी ओर से हटाकर अपने लोगों का ही उससे ध्यान करो।'

4—'हे पापकर्मा! मुझे अच्छी सिद्धि का रूप मानकर मेरे से प्रार्थना करना उचित नहीं है। एकमात्र अपने पति की पत्नी होने के कारण मेरे द्वारा यह अकरणीय और विनिन्दित कार्य किया जाना सम्भव नहीं है।

5—'उच्च कुल में उत्पन्न मैंने पुण्यवान् कुल प्राप्त भी कर लिया है। (ऐसी मैं यह अकार्य नहीं करूंगी)।' उस रावण को ऐसा कहने के बाद उस यशस्विनी सीता ने रावण को पीठ पीछे करके फिर यह बातकही :

6—'मैं कोई उपाय द्वारा प्राप्त तेरी पत्नी नहीं हूं। तेरी पत्नी परम आर्या और सती है। अपने धर्म को भली प्रकार पहचान और साधुजनों के धर्म का भली प्रकार निर्वाह कर।

7—'हे निशाचर! जिस प्रकार तेरी अपनी पत्नी रक्षणीया है, उसी प्रकार अन्यों की पत्नियां भी रक्षणीया हैं। अपनी ही पत्नी को अतुलनीय समझकर उसमें ही रमण करो।

8—'जो आदमी अपनी पत्नी से असन्तुष्ट रहता है और जिसकी इन्द्रियां चंचल रहती हैं, ऐसे निम्नप्रज्ञा वाले मनुष्य को पराई स्त्रियां पराभव की ओर ले जाती हैं।

9—'ऐसा प्रतीत होता है कि या तो तुम्हारे यहां सज्जन लोग ही नहीं हैं, अथवा उनके होते हुए भी तुम उनका अनुसरण नहीं करते क्योंकि तभी तुम्हारी बुद्धि आचारहीन और विपरीत हो गई है।

10—'कुशल विज्ञों ने मिथ्या और बनावटी वचनों को आत्मा का अपथ्य कहा है। इनसे समृद्ध राष्ट्र और नगर तक विनष्ट हो जाते हैं।

11—'उसी प्रकार तुम अनीति में लीन राजा को पाकर···' (तेरा राज्य भी नष्ट होगा)।

युद्धकाण्ड

सर्ग 116

श्लोक 37—हनुमान के इस प्रकार कहने पर यशस्विनी जनकपुत्री वैदेही ने धर्मवान हनुमान को इस प्रकार कहा;

38—'हे नरश्रेष्ठ ! राजाश्रय के अधीन बनी तथा दूसरों की आज्ञा से कार्य करने वाली, आज्ञाकारिणी भृत्याओं या दासियों पर कौन क्रोध करता है ?

39—भाग्य की विषमता के कारण अथवा अपने किसी पुराने दुराचरण के कारण ही मुझे यह सब प्राप्त हो रहा है । मनुष्य को अपने किये का ही यह सब फल भोगना पड़ता है ।

40—और दशा का संयोग भी ऐसा था कि मुझे ऐसा फल मिलना निश्चित ही था यहां मैं दुर्बल बनी हुई रावण की दासियों की बातों को सहती हूँ ।

41—रावण से आज्ञा पाकर ही ये राक्षसी दासियां मुझे डांटती-फटकारती थीं । अब उसके मरने पर, हे वानरश्रेष्ठ, ये मुझे डराएंगी नहीं ।

42—यह पुराना श्लोक, हे वानर ! मुझसे सुनो । इसे ऋक्ष ने व्याघ्र को सुनाया था ।

43—"कोई भी दूसरों के किए पापकर्मों को अपने ऊपर नहीं लेता । ऐसा कौन है, जिससे कोई अपराध नहीं होता । अतः करुणापूर्ण ढंग से ही कार्य करना चाहिए ।"

सर्ग 131

इस आदर्श की महात्मा गांधी की प्रायः चर्चा किया करते थे ।

श्लोक 95—राम-राज्य में न विधवाएँ शोक पाती थीं, न हिंसक जन्तुओं का भय था और न व्याधियों का ही भय था ।

96—सारा प्रदेश दस्युओं से रहित हो गया था, कोई भी अनर्थ किसी को छूता तक न था और न ही वृद्धजनों को बालकों के मृत्यूपरान्त कार्य करने पड़ते थे अर्थात् बाल्यावस्था में कोई न मरता था ।

97—सभी लोग प्रसन्न थे । सभी धर्मपरायण थे । राम का ही अनुकरण करते हुए एक-दूसरे के प्रति हिंसा में भी प्रवृत्त नहीं होते थे ।

98—राम के राज्य करते होने पर प्रत्येक का समय (वर्ष) अत्यन्त साहस के साथ बीतता था एवं उनके साहसी पुत्र थे । वे पुत्र एवं प्रजाएं रोग और शोक से रहित थीं ।

99—जिधर भी सुनो प्रजाओं को राम की ही कथा सुनाई देती थी । उसके राज्य में सारा जगत् ही जैसे राममय हो उठा था ।

100—बड़े चौड़े तनों वाले वृक्ष सदा पुरुषों और फलों से युक्त रहते थे । बादल समय पर ही वर्षा करते थे और वायु भी सदा सुखमय रूप में ही बहती थी ।

101—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी लोभ से रहित होकर अपने-अपने कर्मों में प्रवृत्त थे । वे सब अपने-अपने कामों में ही सन्तुष्ट थे ।

महाभारत*

बन-पर्व अध्याय 31 अ.

यक्ष—प्रश्न

श्लोक 61—भूमि से अधिक भारी या बड़ा क्या है तथा आकाश से ऊंची वस्तु क्या है ?

62—माता भूमि से भारी या बड़ी है और पिता आकाश से ऊंचा है ।

71—एक शब्द में 'धर्म्य' क्या है ? एक ही शब्द में 'यश' क्या है ? एक ही शब्द में हम 'स्वर्ग्य' और 'सुख' किन्हें कह सकते हैं ?

72—यदि एक ही शब्द में कहें, तो 'दास्य' ही धर्म्य है, 'दान' ही यज्ञ है, 'सत्य' ही स्वर्ग्य है और 'शील' ही सुख है ।

75—धनों में कौन सा धन उत्तम है ?

76—श्रुत ही सर्वोत्तम धन है ।

सर्वोत्तम लाभ कौन सा है ? आरोग्य ही सर्वोत्तम लाभ है ।

सर्वोत्तम सुख कौन सा है ? तृप्ति सर्वोत्तम सुख है ?

77—लोक में धर्म से भी बड़ी बात क्या है ?

अहिंसा या अक्रूरता धर्म से भी बड़ी बात है ।

78—किस चीज को नियन्त्रित करके शोक नहीं होता ? मन को नियन्त्रण में करके शोक नहीं करते । सन्धि को कौन पुरानी नहीं पड़ने देते ? सज्जन लोग सन्धि को जीर्ण नहीं पड़ने देते ।

79—किस चीज को छोड़कर व्यक्ति प्रिय हो जाता है ?

80—मान की भावना को छोड़कर व्यक्ति सर्वप्रिय हो जाता है ।

किस चीज को छोड़कर 'अर्थवान', और किसे छोड़कर 'सुखी' होता है ?

* गोरखपुर संस्करण ।

'काम' को त्यागकर 'अर्थवान' होता है और 'लोभ' को त्यागकर सुखी हो जाता है ।

89—'तप' का लक्षण क्या है ? और 'दम' किसे कहते हैं ? सर्वश्रेष्ठ क्षमा क्या है और लज्जा किसे कहते हैं ?

60—अपने धर्म का ही आचरग करना 'तप' है । मन का दमन ही 'दम' है। द्वन्द्वों को सह लेना ही 'क्षमा' है । और अकर्तव्य कर्म से रुक जाने को ही 'लज्जा' कहते हैं ?

91—'ऋजुता' किसे कहा गया है ? समाचित्तावस्था को 'ऋजुता' कहा गया है ।

93—कौनसा शत्रु ऐसा है, जिसे लोग सरलता से जीत नहीं सकते ? कौनसी ऐसी व्याधि है, जिस का अन्त नहीं होता ? 'साधु' और 'असाधु' की पहिचानें क्या मानी गई हैं ?

94—क्रोध ही दुर्जेय शत्रु है । लोभ ही अनन्त व्याधि है । सब प्राणियों का हित-साधक 'साधु' होता है और दयाहीन व्यक्ति को 'असाधु' माना गया है ।

97—श्रेष्ठ 'स्नान' और 'दान' किन चीज़ों को माना गया है ?

98—मन की मैल के त्याग को 'स्नान' और 'प्राणियों की प्राणरक्षा' को दान माना गया है ।

116—'आश्चर्य' की कौनसी बात है ?

118—प्रतिदिन प्राणी मरते जाते हैं । किन्तु, बचे हुए लोग फिर भी स्थायिता चाहते हैं; इससे बढ़ कर आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है ? विचित्र पहेली क्या है ?

पहेली यही है कि 'पृथ्वी एक देग या पतीला है, आकाश ढक्कन है, सूर्य की अग्नि से रात और दिन को ईंधन बनाकर और मासों और ऋतुओं की कड़छी से घोट कर यह 'काल' प्राणियों को निरन्तर पकाता जा रहा है ।

उद्योग पर्व, अध्याय 33

श्लोक 21—आत्मज्ञान, उद्योग, सहन करने की इच्छा और नित्य धर्म पर आरूढ़ रहना आदि जिसे 'अर्थ' की साधना से विमुख नहीं करते, वह पण्डित कहलाता है ।

23—जो प्रंशसा प्राप्त वस्तुओं का सेवन करता है, निन्दित वस्तुओं का सेवन नहीं करता, नास्तिक नहीं है और श्रद्धावान है, वही पण्डित है ।

24—क्रोध, हर्ष, दर्प, लज्जा, अकड़, अपने सम्मान का अभिमान आदि बातें जिसे 'अर्थ' के चिन्तन से हटाती नहीं, वह भी पण्डित ही है ।

25—उसने क्या काम करना है, अथवा उसने क्या सलाह की है, जिसकी इन बातों को लोग जान नहीं पाते, वही पण्डित कहलाता है ।

26—जिसके किये जाने वाले कार्य में शीत, उष्ण, भय, रति, समृद्धि और असमृद्धि बाधा नहीं डाल सकते, वही सच्चा पण्डित है।

27—जिस की सांसारिक बुद्धि धर्म और अर्थ का ही अनुकरण करती है, और काम से भी 'अर्थ' को प्रधानता देती है, वह व्यक्ति पण्डित कहलाता है।

28—जो नर अपनी शक्ति के हो करने का विचार करते हैं, या उसी के अनुसार कार्य करते हैं और किसी भी चीज को तुच्छ नहीं समझते, वे ही सच्चे पण्डित हैं।

29—जो अर्थ को बहुत शीघ्र ही समझ जाता है, बहुत काल तक उसके बारे में सुनता रहता है और जानकर भी 'काम' की प्रेरणा से 'अर्थ' का सेवन नहीं करता, और बिना पूछे दूसरे के काम में दखल नहीं देता, वह पण्डित के रूप में पहचाना जाता है।

30—पण्डित बुद्धि वाले मनुष्य अप्राप्य की इच्छा नहीं करते, नष्ट के लिए शोक नहीं करते और आपत्ति आने पर मोह को प्राप्त नहीं होते !

31—पण्डित वही है, जो निश्चय करने के बाद यत्न आरम्भ करता है, कर्म में लिप्त नहीं हो जाता, काल का निश्चय सफलता की दृष्टि से ही करता है और जिसका स्वयं पर पूरा नियन्त्रण है।

36—जिसका पढ़ा-सुना बुद्धि का अनुवर्ती है और बुद्धि उसके पढ़े-सुने के अनुरूप है तथा जिसने आर्यमर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है, उसी का नाम 'पण्डित' होता है।

मूढ़ लक्षण

38—जो बिना कुछ ज्ञान प्राप्त किये भी बढ़-चढ़कर प्रदर्शन करे, दरिद्र होकर भी बड़े ऊंचे कल्पना-महल बनाए, एवं जो अभोग्य और अकर्मों को प्राप्त करने की इच्छा रखता है, उसे विद्वान लोग मूढ़ ही कहते हैं।

37—जो अपने प्रयोजन को त्याग कर दूसरों के प्रयोजन को साधने का यत्न करता है एवं जो मित्र के साथ मिथ्या व्यवहार करता है, उसे मूर्ख ही कहा जाता है।

40—उसे भी मूर्खबुद्धि ही समझा जाता है, जो अकाम्य बातों की कामना करता है, और काम्य वस्तुओं को त्याग देता है, तथा जो अपने से अधिक बलवान से द्वेष करता है।

41—जो अमित्र को तो मित्र बनाता है, जबकि मित्र से द्वेष करता है और उसे चोट पहुंचाता है एवं जो दुष्ट या दूषित कार्यों को आरम्भ करता है, उसे मूढ़चेता कहते हैं।

42—जो कामों को फैलाता जाता है तथा सर्वत्र सन्देह करता है एवं शीघ्र करणीय प्रयोजनों में विलम्ब करता है, वह भी, हे भरतश्रेष्ठ ! मूढ़ ही है ।

44—जो बिना बुलाए कहीं प्रवेश करे, बिना पूछे ही बहुत कुछ बोलने लगे और विश्वास के अयोग्य पर भी विश्वास कर ले, उस नराधम को मूढ़ बुद्धि ही कहा जाता है ।

45—अपने आप दोष करते होने पर भी जो दूसरे पर दोष मढ़ देता हो तथा जो असमर्थ या बलहीन होते हुए भी दूसरों पर क्रोध करता हो, वह व्यक्ति मूर्खतम है ।

46—अपने बल को बिना जाने धर्म और अर्थ से रहित एवं अलभ्य बात को निष्कर्म रह कर ही प्राप्त करना चाहे, उसे मूढ़ बुद्धि ही कहा जाता है ।

47—उसे भी, हे राजन् ! मूढ़ ही कहा जाएगा, जो शिक्षा के अयोग्य को तो उपदेश दे, जब कि शिक्षायोग्य को शिक्षित न करे एवं जो कुत्सित बात का सेवन करे ।

अकेला :

48—नौकरों के साथ बिना बांटे, जो अकेला ही सम्पन्न भोजन करता है, अकेला ही सुन्दर घर में निवास करता है, उससे बढ़कर निर्दयी और कौन हो सकता है ?

49—जो अकेला ही ऐसा पाप करता है, जिसका फल अनेक लोगों को भोगना पड़ता है, उसमें कर्त्ता को दोष लगता ही है, भोक्ता लोग अवश्य छूट जाते हैं ।

50—धनुर्धारी द्वारा छोड़ा गया बाण भले ही किसी को मारे या न मारे, किन्तु बुद्धिमान् द्वारा कार्य प्रयुक्त एक भी युक्ति राजमण्डल सहित सम्पूर्ण राष्ट्र को ध्वंस कर सकती है ।

54—जिस प्रकार समुद्र के लिए सोपान (पार जाने का साधन) नौका है, उसी प्रकार स्वर्ग के लिए सोपान सत्य है ।

दो :—

61—कोई भी कठोर बात न कहकर और दुर्जन से न मांग कर : इन दो कामों को करते हुए ही मनुष्य, इस लोक में शोभित होता है ।

63—शरीर को भी सुखा देने वाले ये दो दोष तेज कांटों के समान हैं : निर्धन द्वारा बड़ी कामना करना और बिना सामर्थ्य के क्रोध करना !

तीन :—

72—दूसरों के धन का हरण, परस्त्री का स्पर्श और मित्र का परित्याग—ये तीन दोष विनाशक हैं ।

75—जो भगवान का भक्त है, जो भगवान का भजन या सेवा कर रहा है, और जो 'मैं तेरा ही हूं'—ऐसा कह रहा है—इन तीनों को, शरण में आने पर, कठिन से कठिन अवसर पर भी न त्यागे !

चार :—

76—महाबली राजा के लिए चार बातें वर्ज्य मानी गई हैं। पण्डित व्यक्ति को उन्हें जान लेना चाहिए ! ये चारों हैं : अल्पज्ञ, दीर्घसूत्री, आलसी और चारणों में से किसी से सलाह न करना।

पांच :—

81—हे भरतश्रेष्ठ ! पांच अग्नियों का सेवन मनुष्यों को बड़े यत्नपूर्वक करना चाहिए। ये पांच हैं : पिता, माता, अग्नि, आत्मा और गुरु।

84—पांच इन्द्रियों से सम्पन्न मनुष्य की यदि एक भी इन्द्रिय दोषपूर्ण हो, तब उसकी सारी प्रज्ञा बह जाती है। जैसे किसी पात्र में छेद होने पर उसमें भरा जल बह जाता है।

छह :—

88—सत्य, दान, आलस्यहीनता, ईर्ष्या का अभाव, क्षमा और धैर्य—ये छह गुण ऐसे हैं, जो मनुष्य को कभी नहीं छोड़ने चाहिएं।

89—हे राजन् ! प्रयोजनों की उपलब्धि, नित्य निरोग रहना, पत्नी का प्रेमिका और प्रियभाषिणी होना, पुत्र का वशवर्ती होना और धन देने वाली विद्या की उपलब्धि—ये छह बातें जीवलोक के सच्चे सुख हैं !

91,92—ये छह लोग परवर्ती छह लोगों के रहने पर ही पनपते हैं। इसमें सातवें का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रमत्त की विद्यमानता में चोर, रोगी की विद्यमानता में चिकित्सक, कामुकों के बल पर मतवाली स्त्रियां, यजमानों के रहते पुरोहित, विवाद करने वालों के बल पर राजा लोग और मूर्खों के रहने पर पण्डित लोग अपना जीवन यापन करते है।

94,95—निम्न छह लोग अपने पहले के उपकारकर्त्ताओं को भूल जाते हैं : शिक्षा पाए शिष्य आचार्य को, ब्याहे हुए बेटे माता को, कामवासना से विरत लोग नारी को, अपने प्रयोजन में सफल हो जाने वाले लोग प्रयोजन में लगाने वाले उपकारी को, जंगली नदी पार करने वाले नौका को और रोगहीन लोग चिकित्सक को !

97—जाने का इच्छुक, घृणा करने वाले, असन्तुष्ट रहने वाले, क्रोध करने वाले, नित्य शंकाशील और दूसरे के भाग्य का खाने वाले—ये छह लोग सदा ही दुःखी रहते हैं।

सात :—

99—(सात दोष हैं) :—स्त्रियां, जुए के पासे, शिकार, मद्यपान, कठोर वाणी, दण्ड की महान कठोरता और धन सम्बन्धी दोष !

आठ :—

106—प्रज्ञा, कुलीनता, दम, पढ़ा हुआ, पराक्रम, मितभाषण, यथाशक्ति दान, और कृतज्ञता—ये आठ गुण पुरुष को उत्साहित और उज्ज्वल करते हैं।

नौ :—

107—नौ द्वारों का यह घर है, जिसमें तीन आधारी स्तम्भ हैं और पांच साक्षी या झरोखे हैं। इसका स्वामी क्षेत्र या का ज्ञाता क्षेत्रज्ञ है। जो भी विद्वान इस को जान लेता है, वही परम कवि है।

दस :—

108,9—ये दस आदमी धर्म को नहीं जानते। हे धृतराष्ट्र ! तुम इन्हें पहचान लो। ये दस हैं : मदमस्त, प्रभात बना हुआ, पागल, थका हुआ, क्रोध-युक्त, भूखा, जल्दी मचाने वाला, लोभी, डरा हुआ और कामुक। इसलिए पण्डित इन भावों में नहीं उलझना चाहिए !

अध्याय-43

श्लोक 6—मिथ्या से युक्त जो काम बिना उपाय के ही, हे भरतकुलोत्पन्न ! सिद्ध हो जाएं, उन में अपना मन न लगाओ। अर्थात् उन्हें करने की इच्छा न करो।

7—इसी प्रकार यदि योगपूर्वक, उपायों द्वारा विहित और युक्त भी जो काम सिद्ध न हो, उसमें भी बुद्धिमान् पुरुष को अपना मन लिप्त नहीं करना चाहिए।

14—समृद्धि चाहने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह उसी चीज को उपभोग करे, जो आसानी से खाने के योग्य खाने की वस्तु हो, जो खाने पर पच जाती हो और परिणाम में हितकारी हो।

15—वृक्ष के बिना पके फलों को ही जो चुन लेता है, वह उनसे तो रस प्राप्त ही नहीं कर सकता, उसके बीज भी काम के नहीं रहते !

17—जिस प्रकार भ्रमर पुष्पों की रक्षा करता हुआ ही मधु को लेता है, उसी प्रकार मनुष्यों के लिए उपयोगी है कि वे वस्तुओं को किसी प्रकार की हिंसा भावना से रहित होकर ग्रहण करें।

18—पुष्प मात्र का तो चयन करे, किन्तु मूल को न काटे, जैसे बाग में माला बनाने वाला करता है, लकड़हारे की तरह (मूलोच्छेद) न करे।

40—सत्य से धर्म की रक्षा की जाती है। योग अथवा ध्यान से विद्या की रक्षा की जाती है। शुद्धि के द्वारा रूप की रक्षा की जाती है और, कार्यों के द्वारा कुल की रक्षा की जाती है।

45—विद्या, धन और अभिजन—इन तीनों का मद घमण्डियों को होता है। किन्तु, सज्जनों के लिए ये तीनों ही 'दम' के विषय हैं अर्थात्, विपरीत प्रभावकारी हैं।

48—अच्छे वस्त्रों वाला सभा को जीतने में समर्थ होता है। गाय पालने वाला मिष्टान्न की लालसा को जीत लेता है। सवारी वाला व्यक्ति रास्ते को जीत लेता है। पर, शीलवान सब कुछ जीत लेता है।

51—दरिद्र लोग सदा ही सम्पन्न भोजन करते हैं; क्योंकि भूख ही किसी भोजन में स्वाद को पैदा करती है और वही भूख धनी लोगों में सुदुर्लभ है।

53—नीच लोगों को जीविका न रहने का भय लगा रहता है। मध्यम लोगों को मौत का भय सताता रहता है। किन्तु, उत्तम कोटि के मानवों को अपमान का भय ही सबसे बड़ा भय लगता है।

60—हे राजन्! पुरुष का शरीर ही रथ है। संयत इन्द्रियां इसके घोड़े हैं। उन सधे हुए कुशल अश्वों के साथ अप्रमत्त, धीर और चतुर आत्मा रथारोही की भांति सुखपूर्वक मार्ग तय करता है।

66—जिसने अपनी आत्मा पर काबू पा लिया है, उसका आत्मा स्वयं ही अपना बन्धु हो जाता है। वह आत्मा ही एक निश्चित बन्धु है, अथवा वही एक निश्चित शत्रु है।

77—हे राजन्! वाणी का संयम ही सबसे दुष्कर माना गया है। सच भी है, क्योंकि ऐसी बात बहुत मात्रा में की भी नहीं जा सकती, जो अर्थवती भी हो और विचित्रता से युक्त भी हो!

78—अच्छी प्रकार प्रयुक्त वाणी नाना कल्याणों को लाती है किन्तु, बुरे रूप में बोलने पर वही, हे राजन्! अनर्थ का कारण बनती है।

79—बाणों से बिंधा घाव और कुल्हाड़ों से काटा वन भी फिर से भर जाता है। किन्तु, वाणी के दुर्वचन से उत्पन्न घाव बड़ा भयंकर होता है, और कभी नहीं भरता।

80—नुकीले और खोखले बाणों को भी शरीर से निकाल लिया जाता है किन्तु, वाणी के शल्य को निकालना सम्भव नहीं है, क्योंकि वह हृदय (की गहराई) में छिपा रहता है।

81—वाणी के ये बाण मुख से ि नकलते हैं। उनसे घायल व्यक्ति रात-दिन दुःख में पड़ा रहता है। वे दूसरों के मर्मों को बींध देते हैं। पण्डित व्यक्ति को चाहिये कि उन्हें दूसरे के लिए न रचे और छोड़े।

82—देवता जिस पुरुष को पराभव देते हैं, उसकी बुद्धि को भी वे हर लेते हैं। तब वह सदा निम्नगामी बातों का ही ध्यान करता है।

अध्याय-35

श्लोक 53—देवता लोग पशुपालक की भांति लाठी लेकर किसी की रक्षा नहीं करते। वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसको बुद्धि से सम्पन्न कर देते हैं।

71—वह सभा ही नहीं जिसमें वृद्ध न हों। वे वृद्ध ही नहीं हैं, जो धर्म की बात नहीं कहते। वह धर्म ही नहीं है, जिसमें सत्य न हो और वह सत्य भी नहीं है, जहां छल मिला हुआ है।

80—ऐसे ही काम को दिन में करे, जिससे रात्रि में सुख से रह सके। इसी प्रकार शेष आठ मासों में ऐसे काम करे जिनसे बरसात में सुख से रह सके।

81—आरम्भिक आयु में वे काम करे, जिनसे बुढ़ापे में सुख से रहे और, जीवन भर वे काम करे, जिनसे मरकर भी सुखी रहे।

87—सुवर्णमय फूलों से युक्त इस धरती का संग्रह या उपभोग तीन ही प्रकार के आदमी कर सकते हैं : शूरवीर लोग, कृतज्ञ लोग और सेवा की विधि जानने वाले लोग।

अध्याय-36

श्लोक-12—बोलने की अपेक्षा मौन रहना अधिक अच्छा कहा गया है। उसकी अपेक्षा सत्य बोलना ऊंचे स्थान पर है। सत्य के साथ प्रिय बोले, तो यह उससे भी ऊंची कोटि का है और यदि धर्मयुक्त प्रिय सत्य को बोले, तब सर्वोत्तम प्रकार का है।

37—न तो वही मित्र है, जिसके क्रोध से डर लगे और न ही वह जिसके पास जाते हुए शंका होती हो। जिस मित्र के विषय में पिता का सा अश्वासन मिलता प्रतीत हो, वही सच्चा मित्र है। शेष सब 'संगत' या मिलने-जुलने वाले तो कहे जा सकते हैं, मित्र नहीं।

42—सत्कार और मान पाकर भी जो लोग मित्रों के नहीं बन पातें, उन कृतघ्नों के मरने पर उनके शव को मांसभक्षी पशुपक्षी तक भी नहीं खाते।

अध्याय-39

श्लोक-2—हे भरतकुलश्रेष्ठ ! उचित अवसर के बिना किसी बात को कहने वाला बृहस्पति भी बुद्धि की अवज्ञा और अपमान को ही पाता है।

3—दान पाकर भी कोई व्यक्ति प्रिय बन जाता है। प्रिय बोल पाकर कोई अन्य भी प्रिय बन जाता है। सलाह या मन्त्रादि के कारण अथवा सेना के बल पर अन्य लोग भी प्रिय बन सकते हैं। किन्तु, जो इनके बिना भी प्रिय है, वही सच्चा प्रिय है, अन्य नहीं।

72—जो अपने लिए प्रतिकूल प्रतीत हो, उसे दूसरों के लिए करने की योजना न बनाए। अधिक से अधिक लोगों को अपना बनाने से ही धर्म होता है। 'काम' या 'इच्छा' के वशवर्ती होकर तो सामान्य जन ही चलते हैं।

76—जो प्रयोजन अत्यन्त कष्ट से सिद्ध हों, या धर्म का उल्लंघन करके ही सिद्ध हों, अथवा शत्रु के झुकाए जाने पर सिद्ध हों, उन सब में तुम व्यर्थ मन न लगाओ।

अध्याय-40

श्लोक-21—हे भरतकुलोत्पन्न ! आत्मा उस प्रकार की नदी है, जिसके तट पर पुण्य रूपी तीर्थ बसे हैं, जिसमें सत्य का पानी बहता है, धैर्य जिसके तट के रूप में है, और दया जिसमें लहरें हैं। उसमें नहाने वाला पुण्यकर्मा मनुष्य पवित्र हो जाता है और पुण्य आत्मा सदा ही निर्लोभ रहता है।

शान्ति, अनुशासन पर्व

भीष्मोपदेश

अध्याय-56

श्लोक 15—भाग्य और उद्योग दोनों ही सब के लिए सामान्य हैं। किन्तु, इनमें से मैं पौरुष को श्रेष्ठ मानता हूं। भाग्य तो निश्चित ही होता है।

43—लोक को सताने वाला नित्य ही पराजित होता है और लोक को दुःखी वही राजा करता है, जो हर बात में द्वेष करने वाला होता है।

44—राजा को सदा ही गर्भिणी के समान धर्म वाला होना चाहिए। हे महाराज ! इसका कारण मुझसे सुनिये !

45—जैसे गर्भिणी मन से वशवर्ती अपने प्रिय को भी छोड़ कर गर्भ का ही हित अपने सामने रखती है, उसी प्रकार राजा को भी करना चाहिए।

अध्याय-66

श्लोक-37—धर्म में स्थित, सत्व रूपी जल वाली और धर्म के सेतु वाली यह नदी है। इसे त्याग की वायु से चलनेवाली शीघ्रगामिनी नौका पार करा ही देगी !

अध्याय-72

श्लोक-24—जो अभयदान करता है, उसी को महान फल मिलता है। और प्राणदान के समान तीनों लोकों में कोई अन्य दान नहीं है।

अध्याय-73

श्लोक-24—इहलोक में तो भूमि साधु-असाधु को समान रूप से धारण करती है, सूर्य भी समान रूप से ही दोनों को तपाता है, वायु भी दोनों के लिए समान ही बहती है, तथा जल भी उन दोनों को समान रूप में ही पवित्र करते हैं।

25—किन्तु, यह बात इस लोक तक ही सीमित है। हे राजपुत्र ! परलोक में यह बात इसी प्रकार से नहीं होती। मर कर इन दोनों का अन्तर प्रधान हो उठता है कि इसमें से किसने पुण्य का पालन किया और किसने पाप का !

अध्याय-79

श्लोक-18—धीर पुरुषों ने अहिंसा, सत्यभाषण, निर्दयता का अभाव, दम और दया—इन बातों को ही 'तप' माना है, शरीर के शोषण को नहीं !

21—मृत्यु के सभी स्थल कुटिल हैं। ब्रह्म के सभी पद ऋजुता से युक्त हैं। बस इतनी ही जानने की बात है। इससे अधिक बकने-झकने से क्या लाभ ?

अध्याय-91

श्लोक-19—रण में उपस्थित होकर, हे प्रिय ! दुर्बल जनों को भोग मत बनाना। जिस तरह अग्नि अपने ही आश्रय को जला डालती है, उसी प्रकार तुम्हें भी दुर्बलों की चक्षु जला न डालें !

20—झूठ-मूठ में ही निरपराध मार डाले गए लोगों के रोने पर जो आंसू गिरते हैं, वे उस मिथ्या हत्या के कारण मारने वाले के पुत्रों और पशुओं को मार डालते हैं।

अध्याय-108

श्लोक-12—(माता-पिता और गुरु) इन तीन का जो आदर करता है, वह सभी लोक का आदर करता है। किन्तु, जो इन्हीं का आदर नहीं कर सकता, उसक ' सभी क्रियाएँ निष्फल रहती हैं।

18—(माता सबको) अपने गुरुत्व से अभिभूत या पराजित करती है। उसके समान कोई अन्य गुरु नहीं है। किन्तु, मेरी दृष्टि में पिता और माता की अपेक्षा 'गुरु' का गौरव अधिक है।

19—माता और पिता दोनों तो जन्म के हेतु बन कर ही सामने आते हैं। हे भरतकुलोत्पन्न ! ये दोनों शरीर मात्र का ही सृजन करते हैं।

20—आचार्य द्वारा दीक्षा रूप में दी गई जो 'जाति' या पहचान है, यही दिव्य और अजर तथा अमर है। पर, माता और पिता भी, चाहे वे अपकारी ही हों, अवध्य हैं।

22—जो व्यक्ति अपने सत्यपूर्ण कर्म से घिरा होता है, और जो अनृत का त्याग करके ऋत का व्यवहार करता है, उसे ही सच्चा माता और पिता मानना चाहिए। उसके किये को पहचान कर उससे कभी द्रोह न करे !

अध्याय-109

श्लोक-9—उसी प्रकार का यह एक और सम्वद्ध प्रश्न है कि जहां धर्म की पहचान दुर्लभ हो और उसे स्पष्टतः गिनाया न जा सके, वहाँ निश्चय किस आधार पर किया जाए ?

10—प्राणियों को सामर्थ्य के लिए ही धर्म का प्रवचन किया जाता है। इस लिए जो भी बात सामर्थ्य से युक्त हो, वही धर्म है, ऐसा निश्चय से जानना चाहिए !

11—यह धारण करता है, इसी से इसे धर्म कहते हैं। इसी ने प्रजाओं को धारण किया हुआ है। इसीलिए इस धारण गुण से जो भी संयुक्त हो, निश्चयपूर्वक वही 'धर्म' कहा जाएगा !

12—प्राणियों की हिंसा न हो, इसीलिए धर्म का प्रवचन किया गया है। इस दृष्टि से जो भी बात अहिंसादि से युक्त हो, उसे ही निश्चर्यपूर्वक 'धर्म' जानना चाहिए !

अध्याय-111

श्लोक-59—कर्म संघर्ष से उत्पन्न होने वाले अपवित्र दोषों से पवित्र व्यक्ति भी दूषित हो जाता है। कोई भी अपने से बढ़े हुए को नहीं सुहाता। संसार की यह प्रक्रिया ही वैर पैदा करती है।

60—वन में स्थित कर्मरत पवित्र मनि द्वारा अपने कर्मों को करते होने पर भी उसमें दोष मान ही लिया जाता है।

61—और, (उनके साथ भी) तीन पक्ष उत्पन्न हो ही जाते हैं : मित्र, उदासीन और शत्रु ! लोभी जन पवित्र लोगों से द्वेष करते हैं, कायर तपस्वियों से,

62—मूर्ख पण्डितों से, दरिद्र महान् धनिकों से, धर्महीन लोग धार्मिकों से और असुन्दर लोग सुन्दर रूप वालों से द्वेष करते हैं ।

63—बहुत से पण्डित कहे जाने वाले लोग भी मूर्ख, लोभी और बनावटी बातों पर जीने वाले होते हैं । वे बृहस्पति के समान बुद्धि वाले निर्दोष पुरुष में भी दोष निकाल लेते हैं !

अध्याय-120

श्लोक 45—विद्या, तप, अपार धन, आदि सभी बातें संकल्पजन्य प्रयत्न से सिद्ध हो ही जाती हैं । वह संकल्पज यत्न देहधारियों में बुद्धि के अधीन बनकर रहता है । इसलिए व्यवसाय (संकल्पज यत्न) को ही सबसे महत्व का माने ।

46—जिस देह में बुद्धिमान मनस्वी जन एवं इन्द्र, विष्णु और सरस्वती आदि देवजन अपना आश्रय करते हैं, तथा जिस देह के बल पर सभी प्राणी बसते हैं, उस देह को, इसीलिए, मनुष्य कभी तिरस्कार दृष्टि से न देखे ।

अध्याय 139

श्लोक 85—विद्या, शौर्य, चतुरता, बल और धैर्य को सहजात मित्र माना गया है । बुद्धिमान् लोग उनसे ही व्यवहार चलाते हैं ।

86—निवास, पात्र, क्षेत्र, पत्नी और मित्रजन—ये सब चीजें समीपस्थ ही मानी जाती हैं, क्योंकि पुरुष इन्हें सर्वत्र ही पा लेता है ।

87—बुद्धिमान् पुरुष सर्वत्र ही रम जाता है और सर्वत्र ही शोभा भी पा लेता है । न तो वह किसी को डराता ही है और न डराये जाने पर डरता ही है ।

90—कुछ लोगों की सम्मति में घर ही क्षेत्र, मित्र अथवा स्वदेश है । इन विवादों में बुद्धिभ्रम होने के कारण मनुष्य दुःख पाते हैं ।

96—सच्ची पत्नी वही है, जो प्रियवचन बोलती है । सच्चा पुत्र वही है, जिससे सुख मिले । मित्र वही है, जिस पर विश्वास हो और, देश या स्वदेश भी वही है, जहाँ जीना मिले !

अध्याय 140

श्लोक 34—सन्देह की स्थिति बिना पैदा हुए मनुष्य कल्याण के दर्शन नहीं कर

पाता ! यदि संशय पार करके भी वह जीवित रहता है, तब वह कल्याण को अवश्य अनुभव करता है ।

36—आए हुए सुख का परित्याग करना और अनागत सुख की आशा करना, बुद्धिमान् लोगों की नीति-रीति नहीं है ।

56—किसी से बिना बात के वैर न करे । अपनी बाहों के बल पर ही नदी पार न करे । गाय के सींग के खाने से न तो कोई प्रयोजन सिद्ध होता है, न आयु लाभ होता है । दांत भी टूट जाते हैं और रस भी नहीं मिल पाता !

अध्याय 142

श्लोक 10—कुछ तो सत्य बातों के जानने वाले होते हैं, जबकि कुछ झूठ ही विज्ञानी कहाते हैं । इसलिए वास्तविकता पहचान कर सज्जनों से ज्ञान को ले लेना चाहिए ।

अध्याय 144

श्लोक 9—(मेरी पत्नी) मेरे हर्ष में आने पर हर्षित होती है और दुःखी होने पर दुःखी हो जाती है । मैं बाहर चला जाऊं तब वह मलिन मुख या उदासमुख हो जाती है और, मेरे गुस्सा होने पर वह प्रिय भाषण करने लगती है ।

10—वह पतिव्रता है । पति ही उसकी शरण है तथा वह पति के ही प्रिय हित में लगी रहती है । ऐसी पत्नी जिसकी भी हो, वही पुरुष इस लोक में धन्य है ।

12—जिस व्यक्ति की पत्नी साथ है, उसके लिए वृक्षमूल में रहने पर भी वही घर बन जाता है । किन्तु, पत्नी के बिना महल भी उसके लिए निश्चय ही जंगल के समान बन जाता है ।

14—इस संसार में पत्नी ही पुरुष के लिए सबसे बड़ी वस्तु मानी गई है । असहाय पुरुष की पत्नी ही लोकयात्रा की सहायक मानी गई है ।

15—रोग ग्रस्त और नित्य कठिनाइयों से घिरे पीड़ित मनुष्य के लिए पत्नी के समान और कोई उत्तम दवाई नहीं है ।

16—पत्नी के समान न कोई बन्धु है, और न कोई शरण ! धर्म के संग्रह में भी पत्नी के समान कोई सहायक नहीं है ।

अध्याय 162

श्लोक 6—यहां मैं क्रमपूर्वक सत्य के आचारों और लक्षणों को कहूंगा !

7—और जिस प्रकार सत्य प्राप्त किया जाता है, उसे भी सुन लो ! हे भरतकुलोत्पन्न ! सत्य सभी लोगों के लिए तेरह प्रकार का माना गया है ।

8.9—हे राजेन्द्र ! असंदिग्ध रूप में ये तेरह लक्षण हैं : सत्य, समता, दम, मत्सरराहित्य, क्षमा, लज्जा, सहन की इच्छा, असूयाहीनता, त्याग, ध्यान, आर्यत्व, सदा स्थिर धैर्य और अहिंसा !

अध्याय 266

श्लोक 69—मित्र के साथ बन्धन बहुत समय तक देखने के बाद ही करे और एक बार मित्र बनाए को छोड़ने में भी काफी समय लगाए । बहुत देर में बनाया हुआ मित्र बहुत काल तक रहना भी चाहिए !

70—राग, दर्प, मान, द्रोह, पापकर्म और अप्रिय कर्त्तव्य के मामले में जितना ही देर से करे, उतना ही भला कहलाएगा !

71—बन्धु, भृत्य, मित्र और स्त्रियों के अस्पष्ट अपराधों के मामले में देर से कार्य करने वाला ही अच्छा ठहरता है ।

72—हे राजन् ! इस प्रकार वह गौतम अपने पुत्र के उस कर्म पर, उसकी चिरकारिता के कारण, प्रसन्न हुआ ।

73—इसलिए सभी कार्यों में जो पुरुष पर्याप्त विचार के बाद निश्चय करता है, वह बहुत समय तक परितप्त नहीं होता !

74—ऐसा व्यक्ति रोष को भी चिरकाल तक धारण करता है और कर्म का त्याग भी देर में ही करता है । ऐसा करने से पश्चाताप के लायक कोई काम नहीं हो पाता !

75—वृद्धों के पास चिरकाल तक बैठे और चिरकाल तक ही बैठकर उनकी पूजा करे ! धर्म का सेवन भी चिरकाल तक करे, और अन्वेषण भी चिरकाल तक ही करे !

76—चिरकाल तक विद्वानों के पास बैठ कर और शिष्टों की सेवा करके, तथा स्वयं को चिरकाल तक नम्र बनाकर जो रहता है, वह बहुत काल तक अपमान को प्राप्त नहीं करता ।

77—दूसरे के बोलते रहने पर और बार-बार पूछने पर भी, भले ही धर्म से युक्त वाक्य हो तब भी देर से ही उत्तर देने वाला व्यक्ति बहुत काल तक परिताप से रहित ही रहता है ।

अध्याय 330

श्लोक 2—प्रतिदिन ही मूर्ख के सामने हजारों शोक के अवसर और सैंकड़ों भय के अवसर उपस्थित होते हैं। किन्तु, पण्डितों के सामने ऐसे अवसर नहीं आते !

12—दुःख का इलाज यही है कि इसके बारे में सोचे ही नहीं ! सोचते रहने पर घटने की बजाए यह बढ़ता ही जाता है।

14—मन के दुःख को प्रज्ञा से और शरीर के दुःख को औषधियों से हरण करे। इस ज्ञान की शक्ति या सामर्थ्य से वह बालकों या मूर्खों की समता को प्राप्त नहीं होता।

24—कामनाओं से अतृप्त जो आदमी इस (जाती हुई आयु) का ही विचार या शोक करते रहते हैं, उनको मृत्यु पकड़कर वैसे ही ले जाती है, जैसे व्याघ्र पशुओं को पकड़ ले जाता है !

अनुशासनपर्व

अध्याय 11

श्लोक 1—हे पितामह ! किस प्रकार के पुरुष या स्त्रियों के पास शोभा और लक्ष्मी रहती है, मुझे बताइये।

6—(लक्ष्मी बोली)—मैं सदा उन पुरुषों के ही समीप रहती हूँ, जो सुन्दर, चतुर, कुशल, कर्मरत, क्रोधरहित, देवपूजक, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और उन्नतात्मा वाले हैं।

7—मैं उन लोगों के पास नहीं रहती, जो कर्मशील नहीं हैं, नास्तिक हैं, गड़बड़झाला करने वाले हैं, कृतघ्न हैं, जिनकी वृत्ति बंटी हुई है, जो हिंसक स्वभाव के हैं अथवा जो चोर हैं या गुरु के प्रति ईर्ष्यालु हैं।

8—मैं उन लोगों के पास भी नहीं रहती, जिनमें तेज, बल, मान अथवा आत्मबल की कमी है तथा जो इसी कारण हर एक स्थान पर दुःख पाते हैं और क्रोध करते हैं। न ही मैं गुप्त मनोरथ वाले लोगों के पास रहती हूँ।

9—मैं उन लोगों के पास भी ठीक से नहीं रहती, जो अपने लिए कुछ नहीं मांगते अथवा स्वभाव से ही जिनकी आत्मा दब चुकी है और जो अत्यन्त थोड़े में ही संतुष्ट हो जाते हैं।

11—मैं ऐसी स्त्री के पास नहीं रहती, जिसके बर्तन बिखरे रहते हों, जो बिना विचारे काम करती हो, सदा पति से विपरीत बात कहती हो अथवा दूसरों के घरों में आ सकती हो।

अध्याय 13

श्लोक 1—मैं उन्हीं नारियों के पास निवास करती हूँ, जो सदा सच्ची हैं, प्रिय-दर्शन हैं, सुहागवती हैं, गुणयुक्त हैं, पतिव्रता हैं, कल्याणमय स्वभाव वाली हैं और सजी-धजी हैं।

21—हे देवि ! मैं सशरीर नहीं रहती हूँ और मेरे द्वारा यह कहना या करना ही सम्भव है। मैं तो भाव के द्वारा ही जिस पुरुष के पास भी बस जाती हूँ, वही धर्म, यश, अर्थ और काम की दृष्टि से वृद्धि को प्राप्त होता है।

अध्याय 22

(नारद बोले—लक्ष्मी नित्य ही कन्याओं में प्रतिष्ठित हो कर रहती है। वह शोभन है, शुभ करने वाली या शुभमयी है और मंगल कर्मों में पूजा के योग्य है।

जिस प्रकार खान में पड़ा रत्न सभी कामनाओं और फलों को समीप लाने वाला होता है, उसी प्रकार कन्या के रूप में यह महालक्ष्मी सभी लोक का मंगल करने वाली है।

इस प्रकार कन्या ही परम लक्ष्मी है। वही देहधारियों के लिए काम-भाव और संतोष का साधन है। महान कुल में उत्पन्न कन्याओं का चरित्र अपने कार्यों के द्वारा कसौटी बन जाता है।

साधु स्वभाव वाली कन्या कुल को बढ़ाने का कारण बनाती है। घर में वही परम पुष्टि का कारण बनती है। साधु स्वभाव वाली कन्या-रूपी लक्ष्मी साक्षात् रति ही है। उसी पर सन्तति आधारित है।

स्वर्गारोहणपर्व

अध्याय 5

श्लोक 60—माता और पिता के रूप में हजारों ही और पुत्र और स्त्री के रूप में भी सैंकड़ों ही, संसार में हो चुके हैं, वर्तमान हैं और भविष्य में होकर चले जाएंगे।

61—मर्ख मनुष्यों के लिए प्रतिदिन ही हजारों हर्ष के अवसर और सैंकड़ों भय

के अवसर उपस्थित होते हैं और संत्रस्त करते हैं किन्तु, पण्डित पर इनका कोई प्रभाव नहीं होता।

62—यह देखो मैं बाहें उठाकर चिल्ला रहा हूं। कोई मेरी बात नहीं सुनता। जब धर्म से ही अर्थ और काम की उपलब्धि होती है, तब उस धर्म का ही सेवन क्यों नहीं करते!

63—प्राणी को उचित है कि वह धर्म का आचरण काम, लोभ अथवा दृष्टि से भी न त्यागे। धर्म नित्य है, जबकि सुख और दुःख अनित्य हैं। जीव नित्य जन्मादि इसके हेतु अनित्य हैं।

64—इस (महा) भारत की वाणी को जो सुबह उठते ही पढ़ता है, वह सम्पूर्ण ग्रन्थ के फल को पाकर परम ब्रह्म को प्राप्त करता है।

भगवद्गीता

अध्याय 2

श्लोक 13—जिस तरह देहधारी के जीवन में कुमारावस्था, यौवन और बुढ़ापा आते हैं, उसी तरह अगली स्थिति दूसरी देह की प्राप्ति की भी है। धीर पुरुष उस स्थिति के आने पर मोह में नहीं पड़ते।

17—उसे तुम अविनाशी ही जानो, जिसने यह सब फैलाया है। उस अव्यय का विनाश कोई भी करने में समर्थ नहीं है।

19—जो भी इसे मारने वाला या मरा हुआ मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते कि न यह किसी को मारता है, न किसी से मारा जाता है।

20—यह आत्मा न तो पैदा होता है, न कभी मरता है और न कभी होकर आगे भी होगा। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और चिरपुराण है। मरने वाले शरीर में यह नहीं मरता।

22—जिस प्रकार मनुष्य पुराने कपड़ों को उतार कर अन्य नए कपड़े पहनता है, उसी प्रकार देहवान् भी पुराने पड़े शरीर को छोड़कर अन्य नए देहों से प्राप्त होता है।

24—यह सनातन आत्मा न काटा जा सकता है, न जलाया जा सकता है, न गीला होता है, न सूखने वाला ही है। यह नित्य, सर्वव्यापक, स्थिर और अचल सनातन तत्व है।

25—यह आत्मा व्यक्त नहीं होता, इसका विचार नहीं किया जा सकता और यह विकार को प्राप्त नहीं होता। इसलिए यह सब विचार करके इसका सोच-विचार तुम्हें नहीं करना चाहिए।

47—तुम्हारा अधिकार कर्म तक ही है, फल कामना में कभी नहीं। तुम कर्म-फल के हेतु से ही काम मत करो। किन्तु, इसका अर्थ यह नहीं कि अकर्मण्यता में तुम्हारी आसक्ति हो जाए।

48—योग अर्थात् समता की स्थिति में रहकर कर्म करो, किन्तु उसमें आसक्ति मत करो। तुम्हें सफलता-असफलता में समान रहना चाहिए। इस समता का नाम ही 'योग' है।

49—बुद्धि की इस समता को पाने की अपेक्षा कर्म करना बहुत छोटी बात है। इसलिए तुम भी बुद्धि की शरण में जाओ। फल को हेतु मानकर कर्मरत होने वाले लोग कृपण ही होते हैं।

50—बुद्धि से युक्त मनुष्य लोक में सुकृत और कुकर्म—दोनों—की चिन्ता छोड़ देता है। इसलिए योग-प्राप्ति के लिए यत्न करो। कर्मों में कुशलता का नाम ही योग है।

55—हे पृथापुत्र ! जब मनुष्य सब मनोगत कामनाओं को त्याग देता है तथा स्वयं ही अपने से संतुष्ट हो जाता है, तब उसे स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

56—दुःखों में जिसका मन उत्तेजित न हो और सुखों में जिसकी उत्सुकता न हो तथा राग, भय और क्रोध से जो ऊपर उठ गया हो, उस मुनि को स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

57—जो सर्वत्र ही किसी वस्तु विशेष के प्रति स्नेह से रहित है और जिस-तिस शुभ या अशुभ को पाकर आनन्दित या द्वेषमय नहीं होता, उसकी प्रज्ञा 'स्थित' मानी जाती है।

58—जब यह आत्मा कछुए के अंगों की भांति अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषय में वैसे ही समेट लेती है, जैसा कछुआ चारों ओर से अपने अंगों को समेट लेता है, तब इसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित मानी जाती है।

62—विषयों का चिन्तन करते-करते पुरुषों की आसक्ति उनमें हो जाती है। उस आसक्ति से 'काम' का उदय होता है और उससे क्रोध को प्रवर्धन मिलता है।

63—क्रोध से सम्मोह या मूढ़ता की स्थिति आ जाती है, जिससे आगे चलकर स्मृति में भ्रम उत्पन्न हो जाता है। स्मृति का भ्रंश या पतन होते ही बुद्धि का नाश हो जाता है और इसके बाद मनुष्य का विनाश निश्चित है।

64—किन्तु राग और द्वेष से हीन अपने वश में स्थित इन्द्रियों से विषयों को भोगते हुए यह कार्यरत आत्मा प्रसन्नता पा लेता है।

65—उस प्रसन्नता को पाने पर इस आत्मा के सभी दुःख कम हो जाते हैं या छूट जाते हैं और जिसका चित्त प्रसन्न हो जाता है, उसकी बुद्धि शीघ्र ही केन्द्र-स्थित हो जाती है।

66—जो योग युक्त नहीं है, उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती। जो समर्पित या ध्यानयुक्त नहीं है, उसमें भावना नहीं जागती। जिसकी भावना नहीं जागी, उसे शान्ति नहीं मिलती और, जिसे शान्ति नहीं मिलती, उसे सुख कहां से मिल सकता है ?

67—इसलिए, हे महाबाहो ! जिसकी इन्द्रियां विषयों से संयमित या निगृहीत हो जाती हैं। उसी की बुद्धि स्थिर कही जा सकती है।

69—सब प्राणियों के लिए जो रात है, संयमी (उसे ही दिन मान कर) उसमें सचेत रहता है। किन्तु जिन बातों को प्राणी दिन समझ कर व्यापृत रहते हैं, वह पारदर्शी मुनि के लिए निद्रामयी रात है।

70—चारों ओर से भरा जाने पर भी अचल मर्यादा वाले समुद्र में जिस प्रकार नदियाँ आकर गिरती रहती हैं, उसी प्रकार जिस मनुष्य में सभी कामनाएं जिस पुरुष में प्रवेश करती हैं (और वह विचलित नहीं होता), वही सच्ची शान्ति पाता है, कामनाओं के पीछे दौड़ते रहने वाला नहीं।

71—जो मनुष्य सब कामनाओं को छोड़कर निस्पृह एवं ममता और अहंकार रहित होकर चलता है। वही शान्ति पाता है।

अध्याय 3

श्लोक 3—हे निष्पाप ! मैंने पहले इस लोक में पाई जाने वाली दो प्रकार की निष्ठा की चर्चा की है। सांख्यमार्गी ज्ञानयोग के द्वारा इसे पाते हैं, जब कि योगमार्गी इसे कर्मयोग के द्वारा पाते हैं।

4—कर्मों का आरम्भ ही न करने से 'नैष्कर्म्य' को पुरुष नहीं पा लेता और न कर्मों को सर्वथा त्याग देने से ही वह सफलता को पाता है।

5—कोई प्राणी किसी भी क्षण बिना कोई कर्म किये नहीं रह सकता। सभी कार्य स्वभावज गुणों के कारण अवश होकर किये जाते हैं।

8—इस संसार में जब कर्म करना निश्चित ही है, तब तुम उसे अच्छी तरह करो ! कर्म सदा ही अकर्म की अपेक्षा महान है। कर्म बिना किये शरीर का निर्वाह भी तो सम्भव नहीं होगा !

9—यज्ञ रूप में किये जाने वाले कर्म के अतिरिक्त किये जाने वाले कर्म, इस लोक में, बाँधने वाले होते हैं। इसलिए हे कौन्तेय ! आसक्ति त्यागकर आसक्ति कर्म करो !

अध्याय 4

श्लोक 6—यद्यपि मैं अजन्मा और अविकारी आत्मा हूँ, एवं सब प्राणियों का

अधिष्ठाता हूँ, तब यह मेरा स्वभाव है कि मैं अपनी प्रकृति में स्थित होकर अपनी ही माया और इच्छा से प्रकट होता हूँ ।

7—जब-जब भी धर्म की हानि और अधर्म की बढ़ती होती है, तब-तब मैं स्वयं का (सशरीर) सृजन करता हूँ ।

8—साधुओं की रक्षा, दुष्कर्मियों के विनाश और धर्म की स्थापना के उद्देश्य से मैं समय-समय पर जन्म लेता हूँ ।

9—मेरे इस प्रकार के दिव्य जन्म और कर्म को जो वस्तुतः में जानता है, वह एक बार देह त्याग कर फिर से जन्म को प्राप्त नहीं करता । बल्कि वह मुक्त प्राप्त होता है ।

33—सामग्री आदि युक्त इस यज्ञ की अपेक्षा, हे अर्जुन ! ज्ञानयज्ञ अधिक कल्याणकारी है । हे पार्थ ! सब प्रकार के कर्म ज्ञान पाने के बाद पूर्ण या समाप्त हो जाते हैं अर्थात्, उन्हें करना अनिवार्य नहीं रहता ।

34—उस ज्ञान को नम्रता, प्रश्न-जिज्ञासा और सेवा के द्वारा पा लो ! तत्वदर्शी ज्ञानी लोग तुम्हें तभी ज्ञान का उपदेश देंगे ।

35—इस ज्ञान को पाकर तुम फिर से इस प्रकार के मोह को प्राप्त नहीं होगे। इसके द्वारा तुम सब प्राणियों को ऐसा ही समझोगे, मानो वे तुम्हारे ही भीतर या तुम्हारे अंग रूप में ही हैं ।

36—भले ही फिर तुम सब पापियों में सबसे बढ़े हुए क्यों न हो, इस बात को पाकर तुम इस दुर्गम कठिनाई को ज्ञान की नौका से पार कर-लोगे ।

37—हे अर्जुन ! जिस प्रकार प्रदीप्त अग्नि ईंधन को भस्मसात् कर देता है, उसी प्रकार ज्ञान रूपी अग्नि भी मनुष्य के सब कर्मों को भस्मसात्, या अनिवार्यतारहित कर देता है ।

38—ज्ञान के सदृश पवित्र वस्तु इस संसार में कोई अन्य विद्यमान नहीं है । योग को साध लेने वाला व्यक्ति समय आने पर उस ज्ञान को अपने भीतर ही पा लेता है ।

39—ज्ञान की उपासना में दत्तचित्त व्यक्ति श्रद्धामय और इन्द्रियजयी होकर उसे पा लेता है । ज्ञान को पाकर वह परम शान्ति को भी शीघ्र ही पा लेता है ।

अध्याय 5

श्लोक 18—पंडित लोगों के लिए विद्या और विनय के युक्त ब्राह्मण, गाय,

हाथी, कुत्ते और चण्डाल में कोई अन्तर नहां होता अर्थात्, उनका व्यवहार सबके प्रति समान ही रहता है।

19—जिनका मन समता की वृत्ति पा चुका है, उन लोगों ने इस सृष्टि को इस जीवन में ही जीत लिया है। निर्दोष समत्व ही ब्रह्म है इसलिए समत्वप्राप्ति के कारण, वे ब्रह्म में स्थित होते हैं।

अध्याय 6

श्लोक 16—न तो बहुत खाने वाला ही और न बिल्कुल खाने वाला ही योग कर सकता है। इसी प्रकार न तो बहुत सोने वाला और न बहुत जागते रहने वाला ही (योग कर सकता है)।

17—जिसके आहार और विहार उचित हैं, कर्मों के प्रति जिसका उद्योग समन्वित है और जिसका जागना-सोना समता की स्थिति में है, उनके लिए ही योग दुःख को हरने का कारण बनता है।

अध्याय 7

श्लोक 6—सब प्राणी इससे ही जन्म लेते हैं, यह समझ रखो! मैं ही सम्पूर्ण जगत के उत्पत्ति और विनाश का कारण हूँ।

7—हे धनंजय! मुझसे बढ़कर अन्य कोई वस्तु नहीं है। मुझ में यह सब इसी प्रकार से गुंथा है, जैसे माला के धागे में मणियां!

8—जलीय द्रव्यो में मैं 'रस' हूँ। चन्द्र और सूर्य में मैं चमक हूं। सब वेदों में मैं 'प्रणव' (ओंकार) हूँ। आकाश में मैं शब्द बनकर व्यापक हूँ, और प्राणियों में 'पुरुषत्व' अथवा 'पौरुष' के रूप में हूँ।

9—पृथ्वी में मैं पुण्य गन्ध के रूप में हूँ। सूर्य में मैं तेज के रूप में हूँ सब प्राणियों में मैं जीवन के रूप में हूँ तथा, तपस्वियों में 'तप' के रूप में हूँ।

10—हे अर्जुन! मुझे सनातन को सब प्राणियों के उत्पत्ति कारण या बीज के रूप में समझो। बुद्धिमान मनुष्यों की बुद्धि और तेजस्वियों में तेज के रूप में भी मैं ही हूँ।

11—बलवान लोगों के काम और राग से रहित बल के रूप में मैं हूँ और, प्राणियों में धर्म के अनुकूल काम के रूप में हूँ।

12—सभी सात्विक, राजसी और तामसी भाव मुझ से ही पैदा होते हैं। ये मुझ में रहते हैं, किन्तु मैं उन में लिप्त नहीं होता!

13—तीन गुणों वाले भावों में ही उलझा हुआ यह सारा संसार इस सबसे परे स्थित अविनाशी नहीं पहचान पाता!

14—इन तीन गुणों वाली यह मेरी माया दैवी है और उलझन भरी है। जो लोग मेरी शरण में आ जाते हैं, वे ही इस माया को पार कर पाते हैं।

16—हे अर्जुन ! चार प्रकार के पुण्यशाली लोग मेरी सेवा करते हैं। ये हैं—दुःखी, जानने की इच्छा वाले, धन की इच्छा वाले और ज्ञानी।

17—इनमें ज्ञानी ही नित्य ध्यानपूर्वक स्थिर भक्ति वाला सबसे बढ़कर ठहरता है। मैं उस ज्ञानी को और वह मुझे सबसे बढ़कर प्रिय हैं।

18—यूँ तो ये सभी उदास होते हैं किन्तु, इनमें से ज्ञानी मेरे लिए अपना ही है। अपनी आत्मा को लगाकर वह सर्वश्रेष्ठ गति के रूप में मुझ में ही स्थित हो जाता है।

19—ज्ञानी आदमी बहुत से जन्मों के बाद ही मुझ तक पहुंचता है। 'वासुदेव ही सब कुछ हैं'—ऐसा मानने वाला ज्ञानी कोई विरला ही महान आत्मा होता है।

21—जो जो भी भक्त मुझे जिस-जिस भी रूप में मानकर श्रद्धा से मेरी पूजा करना चाहता है, मैं उसकी श्रद्धा को उस-उस रूप में ही स्थिर कर देता हूँ।

अध्याय 8

श्लोक 6—हे अर्जुन ! जिस-जिस भाव को स्मरण करते हुए अन्त में मनुष्य शरीर का त्याग करता है, उस भावना से अविष्ट वह उस-उस भाव को ही प्राप्त होता है।

7—इसलिए सभी समय मुझे स्मरण रख और युद्ध में प्रवृत्त हो। अपने मन और बुद्धि को मुझ में अर्पित करने के बाद तुम मुझे ही पा लोगे, इसमें संशय नहीं है।

9,10—उस दिव्य और परम पुरुष को वही मनुष्य प्राप्त करते हैं, जो अपनी मृत्यु के समय अचल मन से की गई भक्ति से और योग के बल से अपनी दोनों भवों के बीच में अपने प्राणों को केन्द्रित कर उस पुराण कवि, उपदेष्टा, अणु से भी सूक्ष्म, सबके धारणकर्ता, अचिन्तय रूप वाले, आदित्यवत् उज्ज्वल वर्ण वाले और तम के प्रभाव से परे स्थित उस परम पुरुष को स्मरण करते हैं।

13—ब्रह्म के 'ओम्' इस एकाक्षर नाम का उच्चारण करते हुए, तभी मुझे स्मरण करते हुए मृत्यु के समय जो देह का त्याग अथवा प्रयाण करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है।

16—ब्रह्मलोक तक के सभी लोक ऐसे हैं, जहां से वापिस लौटना पड़ता है। किन्तु, जो स्वयं ब्रह्म में (मुझ में) लीन हो जाता है या मुझे पा लेता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता !

24—अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष, पूर्व के षण्मास और सूर्य का उत्तरायण —ये छह कालावधियां ऐसी हैं, जिनमें मरने वाले ब्रह्मवेत्ता लोग ब्रह्म को ही प्राप्त होते हैं।

25—किन्तु धुआँ, रात्रि, कृष्णपक्ष, शेष छह मास और दक्षिणायन—ये छह कालस्थितियाँ ऐसी हैं कि जिनमें मरने पर योगी चन्द्रमा की ज्योति को पाकर ही फिर से लौट आता है।

26—इस प्रकार संसार की ये दो ही गतियां शाश्वत मानी गई हैं, जिन्हें हम शुक्ल और कृष्ण के नाम से कह सकते हैं। इनमें से एक से फिर से लौटने से छूट जाता है; दूसरी में लौटना पड़ता है।

अध्याय 9

श्लोक 22—जो किसी दूसरे का ध्यान किये बिना केवल मेरा ही चिन्तन करते हैं, उन नित्य दत्तचित्त लोगों के योग और क्षेम का मैं ध्यान रखता हूँ।

26—पत्र, पुष्प, फल या जल जो भी कुछ भी मुझे भक्तिपूर्वक अर्पण करता है। अर्पित चित्त भक्त द्वारा भक्तिपूर्वक लाये गए उस सब को मैं स्वीकार कर लेता हूँ।

27—हे अर्जुन ! तुम जो भी करते हो, खाते हो, आहुति के रूप में देते हो, दान देते हो या तपस्या करते हो, उस सब को मेरे अर्पण कर दो।

29—मैं सभी प्राणियों लिए समान भाव रखता हूँ। मेरे लिए कोई भी प्राणी द्वेष या प्रेम का विशेष पात्र नहीं है। जो भक्तिपूर्वक मेरा सेवन करते हैं, वे मुझमें रहते हैं, और मैं उनमें रहता हूँ।

30—यदि कोई अत्यन्त दुराचारी भी अनन्य भक्ति से मेरा भजन करता है, उसे साधु ही मानना चाहिए, क्योंकि उसका निश्चय अथवा उद्योग ठीक दिशा में है।

31—हे कुन्तीपुत्र ! यह बात तुम समझ लो कि मेरा भक्त कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता। बल्कि वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है और सदा रहने वाली शान्ति को प्राप्त करता है।

अध्याय 10

श्लोक 40—हे परम तपस्वी अर्जुन ! मेरी दिव्य विभूतियों का कोई अन्त नहीं है। इनका विस्तार मैंने तुम्हें सोद्देश्य रूप में बताया ही है।

41—सच तो यह है कि जो-जो भी विभूति वाली अथवा श्री से सम्पन्न वस्तु है, उस सबको तुम मेरे अंश से ही सम्भव मानो ।

42—अथवा बहुत कहने से क्या लाभ ? हे अर्जुन ! मैं इस सभी जगत् को अपने एक अंश मात्र से ही सम्भालकर बैठा हूँ ।

अध्याय 12

श्लोक 13,14—जो मेरा भक्त प्राणिमात्र से द्वेष करना छोड़ देता है, मित्र भाव से युक्त होता है, करुण, ममत्वहीन और अहंकार रहित होता है, एवं सुख-दुःख में समान रहने वाला और सहनशील होता है तथा सदा संतुष्ट, योगी, संयमयी, आत्मा वाला, दृढ़ निश्चय वाला तथा मेरे प्रति अर्पित बुद्धि वाला होता है, वही मुझे प्रिय होता है ।

15—जिससे न लोक भय पाता है और जो न स्वयं लोक से भय पाता है तथा जो हर्ष, क्रोध, भय और उद्वेग से मुक्त हो चुका है, ऐसा भक्त भी मुझे प्रिय है ।

16—जो मेरा भक्त किसी बात की चाह नहीं रखता, पवित्र है, कुशल है, सांसारिकता में अलिप्त या उदासीन है, तथा व्यथा से रहित है, एवं जिसने सभी कर्मों को फलभावना से करना छोड़ दिया है, वह मुझे प्रिय है ।

17—और जो भक्तिमान व्यक्ति हर्ष, द्वेष, शोक और आकांक्षा से रहित है तथा जिसने शुभ और अशुभ कर्मों का समान रूप से परित्याग किया है, वह मुझे प्रिय है ।

18,19—शत्रु और मित्र में समान भाव वाला, मान और अपमान में समान रहने वाला, शीत-उष्ण एवं सुख-दुःख में समानता अनुभव करने वाला, आसक्ति के भाव से रहित, निन्दा और स्तुति को समान मानने वाला, मुनि की तरह रहने वाला (या मौन रहने वाला), हर बात से संतुष्ट रहने वाला, किसी एक ही घर को अपना न समझने वाला एवं स्थिर मति वाला भक्त ही मुझे प्रिय है ।

20—जो भक्त इस धर्म के अमृत को यथोक्त रूप में श्रद्धा के साथ प्राप्त करने का यत्न करते हैं, और मुझे ही अन्तिम शरण मानते हैं, वे मुझे अत्यधिक प्रिय होते हैं ।

अध्याय 18

श्लोक 2—'संन्यास' की परिभाषा पारदर्शी लोगों ने 'काम्य कर्मों के त्याग' के

रूप में की है, जब कि 'त्याग' का अर्थ वे 'सभी प्रकार के कर्मफल के त्याग' के रूप में करते हैं।

5—किसी भी दशा में यज्ञ, दान और तप सम्बन्धी कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिए। उन्हें सदा ही करना चाहिए। यज्ञ, दान और तप मनीषियों को पवित्र करने वाले हैं।

6—इन तीन प्रकार के कर्मों को आसक्ति और फल की भावना छोड़कर ही करना चाहिए। हे अर्जुन ! ऐसा मेरा निश्चित मत है।

7—निश्चित रूप से कर्त्तव्य कर्मों का संन्यास या परित्याग उचित नहीं बैठता। फिर भी जो मोह से ऐसा करते हैं, उनका वह संन्यास 'तामसिक' कहलाता है।

45—अपने-अपने कर्म में पूर्णतः रत रहकर ही मानव सफलता को पाता है। यह सिद्धि वह कैसे पाता है, वह मुझसे सुनो।

46—जिससे सब प्राणियों की उत्पत्ति हुई है, और जिससे इस सबका विस्तार हुआ है, उसकी पूजा अपने कर्मों के द्वारा करके मानव सिद्धि पा लेता है।

47—गुणहीन होने पर ही अपना कर्तव्य धर्म सदा अच्छी तरह किये गए दूसरे के धर्म से भी अच्छा और कल्याणकर है! अपने स्वभाव से निश्चित कर्म को करता हुआ कभी पाप को प्राप्त नहीं करता।

48—दोषयुक्त होने पर भी स्वाभाविक कर्म को, हे अर्जुन ! छोड़नां नहीं चाहिए। सब काम दोषों से उसी तरह आवृत हैं, जैसे धुंए से अग्नि घिरी रहती है।

61—हे अर्जुन ! ईश्वर सबके हृदयप्रदेश में रहता है। सब प्राणियों को अपनी माया के द्वारा उसी प्रकार घुमा रहा है, मानों वे यन्त्र पर चढ़ कर घूम रहे हों।

62—हे भरतश्रेष्ठ। तुम उसी ईश्वर की शरण में भावनाओं को पूर्णतः उसके लिए अर्पित करते हुए जाओ। उसकी कृपा से ही तुम परम शान्ति और सदास्थायी स्थान को प्राप्त करोगे।

65—तुम मेरे प्रति मन अर्पित करके मेरे भक्त बन जाओ, मेरा ही यज्ञ करो एवं मुझे ही नमस्कार करो। मैं तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम मुझे प्रिय हो और मुझे ही प्राप्त भी होगे।

88—तुम सभी प्रकार के धर्मों या कर्मों को मेरे नामपर छोड़कर एकमात्र मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सभी प्रकार के पापों से छुड़ा लूँगा। तुम इस बात की चिन्ता न करो।

श्रीमद्भागवत

स्कन्ध 3, अध्याय 23

श्लोक 5—उस बिन्दुसर पिता के वानप्रस्थ के लिए प्रस्थान करने पर माता का प्रिय करने की इच्छा से भगवान् कपिल वहीं रह गए।

6—कर्मों से मुक्त हुए और तत्वमार्ग के प्रमुख द्रष्टा उस बैठे हुए अपने ही पुत्र कपिलमुनि को माता देवहूति ने ब्रह्मा के वचन का स्मरण दिलाते हुए कहा—

9—जो आदि भगवान् है और पुरुषों का ईश्वर है, वह आप ही हैं। इस तमोगुंण से अन्धे बने लोक के लिए आप सूर्यरूपी चक्षु के रूप में उदित हुए हैं।

10—इसलिए हे देव! आप मेरे उस सम्मोह को दूर करने में समर्थ हैं, जो 'मैं' और 'मेरा' के अवग्रह के रूप में आप ने ही इस संसार में जोड़ दिया है।

12—अपनी माता के इस प्रकार की अनिन्दनीय और लोगों को मोक्षकामना को बढ़ाने वाली इच्छा को सुनकर, बुद्धि से पूजित आत्मावान पुरुषों के एकमात्र शरण के रूप में किंचित् मुसकाते हुए कपिल बोले :

15—यह चित्त ही इस आत्मा के बन्धन या मोक्ष का करण माना गया है। यदि वह सत्वादि गुणों में आसक्त होता है, तब बन्धन का कारण होता है, अन्यथा पुरुष या परमात्मा में रत रहने पर मुक्ति का हेतु बनता है।

16—'मैं' और 'मेरा' के अभिमान से उत्पन्न काम लोभ आदि दोषों से मन जब उपर उठ जाता है, तब यह शुद्ध दुःख रहित और सम हो जाता है।

17-18—तभी पुरुष शुद्ध आत्मा को देख लेता है, जो प्रकृति से भी परे स्थित है, अनन्त ज्योति के रूप में है, अखण्ड सूक्ष्मता के रूप में हैं, और जो सबसे ऊपर उठा हुआ या उदासीन है। ऐसा वह ज्ञान और वैराग्य से एवं भक्ति से युक्त आत्मा के द्वारा ही करता है तथा वह यह भी देख लेता है कि प्रकृति का तेज आत्मा के सामने हत या नष्ट है।

20—कम न होने वाली आसक्ति को पारदर्शी विद्वानों ने आत्मा के पाश के रूप में माना है। परन्तु, यदि वही आसक्ति साधुओं के लिए की जाए, तब मोक्ष के खुले द्वार के समान होती है।

21--साधु या सज्जन लोग सहनशील, करुणावान् सब देहधारियों के मित्र, अजातशत्रु, शान्त और साधुजनों के आभूषण के रूपों में होते हैं।

22—जो लोग अन्य किसी ओर ध्यान बिना दिये मुझ में दृढ़ भक्ति करते हैं, तथा मेरे लिए कर्मों और बन्धु-बान्धवों तक त्याग करते हैं (वे ही सच्चे भक्त होते हैं)।

38—जिनको मैं प्रिय हूँ, उनके लिए मैं आत्मा, सखा, सुत, गुरु, मित्रजन और इष्टदेव—आदि सभी कुछ हूँ।

अध्याय 29

श्लोक 21—मैं सभी प्राणियों में उनकी आत्मा बनकर सदा स्थित हूँ। उस रूप में मेरी उपेक्षा करके मनुष्य पूजा का ढोंग करता है।

22—जो सब प्राणियों में स्थित मुझ ईश्वर को छोड़कर मूर्खता के कारण मेरी किसी अन्य रूप में पूजा करता है, वह भस्म में ही आहुति दे रहा होता है।

23—(दूसरे के साथ द्रोह करते हुए,) उसकी काया विद्यमान मुझसे भी जो मानी द्वेष करता है, प्राणियों के वैरी और (सत्य से) भिन्न दृष्टि वाले उस आदमी का मन शान्ति को नहीं प्राप्त होता।

24—हे पापरहिते ! मैं उस आदमी को छोटे-बड़े द्रव्यों से उत्पन्न क्रियाओं से पूजा गया सन्तुष्ट नहीं होता, जो प्राणीसमूह का अपमान करता है।

25—तब तक ही पूजादि के द्वारा अपने कर्मों को करने वाला, मुझ ईश्वर की पूजा करे जब तक वह अपने हृदय में यह नहीं जान लेता है कि मैं सब भूतों में स्थित हूँ।

26—और जो अपने और पराए में अन्तर करता है, उस भिन्नदर्शी के लिए मैं भयंकर डर और मौत का विधान करता हूँ।

34—इन सब प्राणियों को आदर देकर मन से प्रणाम करे। जीव रूपी अंश के द्वारा इनमें भगवान ही प्रविष्ट है।

अध्याय 33

श्लोक 12—इस प्रकार से भगवान कपिल, उस सती को अपनी शक्ति दिखाने के बाद, अपनी ब्रह्म-वादिनी माता को साथ लेकर चले गए।

13—और वह (सती माता) भी पुत्रोप्रोक्त योग के आदेश से युक्त हुई—

30—आत्मा, ब्रह्म, निर्वाण या भगवान को प्राप्त हुई।

स्कन्ध 7, अध्याय 9

श्लोक 44—हे देव। प्रायः ही मुनिलोग अपनी ही मुक्ति की कामना करते हुए एकान्त में मौन रहते हैं, और परार्थ में दत्तचित्त नहीं रहते। इन दोनों को छोड़ कर किसी मोक्ष की कामना मैं नहीं करता। तुम्हारे अतिरिक्त इस भ्रमणशील आत्मा की कोई अन्य शरण भी मैं नहीं देखता हूँ।

स्कन्ध 8, अध्याय 1

श्लोक 16—मैं उस अहंकार रहित, बुद्धिमान, कामनारहित, पूर्ण, स्वतः प्रेरित स्वमार्ग पर स्थित और समग्र धर्मभावना के रूप वाले, प्रभु की शरण में प्रणाम करता हुआ पहुँच रहा हूँ।

222,4—हे ब्रह्मन्। मैं जिस पर भी कृपा करता हूँ, या जिसे स्वीकार करता हूँ, उसके विष को भी मैं निकाल डालता हूँ। इसके मद में ही अकड़ा हुआ पुरुष मेरी और लोक की अवमानना करता है।

स्कन्ध 9, अध्याय 21

श्लोक 12—मैं ईश्वर से भी परे, आठों ऋद्धियों से युक्त, गति अथवा पुनर्जन्म के अभाव को भी नहीं चाहता। मैं तो अखिल प्राणियों के अन्दर स्थित रहकर उनके दुःख को पालना चाहता हूँ, जिस से प्राणी दुःखहीन हो जाए।

स्कन्ध 12, अध्याय 7

श्लोक 2—इस प्रकार सूचित किये जाने पर देवकीनन्दन भगवान कृष्ण अपने परम प्रिय भृत्य उद्धव से बोले।

3—शाप से ग्रस्त (हमारा) कुल तो एक-दूसरे से लड़कर नष्ट हो रहा है। और आज से सातवें दिन समुद्र भी इस पुरी को डुबो देगा।

4—यही कारण है कि मैंने भी मंगल से हीन यह लोक छोड़ दिया है। हे साधु। शीघ्र ही यह लोक कलियुग से भी पराजित हो जाएगा।

5—जब मैं ही धरती छोड़ चुका हूँ, तब मुझे भी इस पर नहीं रहना चाहिए। कलियुग में, हे भद्र ! लोग अधर्ममय रुचि वाले हो जाएंगे।

6—तुम तो स्वजनों और बन्धुओं में सब प्रकार के स्नेह को छोड़कर और मुझमें मन लगाकर, अच्छी प्रकार से और समदृष्टि के साथ धरती पर घूमो।

9—इसलिए इन्द्रिय समूह को योग से संयत करके और चित्त को लगाकर, तुम इस जगत को अपने ही भीतर विस्तृत देखो तथा स्वयं को मुझ अधीश्वर में देखो।

19—लोकतत्व को जानने वाले लोग प्राय: इस दुनिया में अपनी आत्मा को स्वयं आत्मा की सहायता से ही अशुभ आशयों से छुड़ा कर उबार लेतें हैं।

35—हे राजन् ! ये चौबीस गुरु मेरे ही आश्रित हैं। इनकी शिक्षा वृत्तियों से यहां स्वयं को मैंने अनुशासित किया है।

37—भाग्याधीन प्राणियों से आक्रांत होने पर भी धीर और विद्वान् पुरुष अपने मार्ग से विचलित नहीं होता। मैंने पृथ्वी से इस व्रत को सीखा है।

38—पर्वत से शिक्षा लेने वाले को उससे यह सीख लेनी चाहिए कि सदा दूसरों के हित के लिए सब कामना करने वाला हो और सदा पूर्णत: परार्थ को ही करने वाला हो।

39—मनुष्य को इन्द्रियों के प्रिय विषयों से संतुष्ट न होकर प्राणों की चिन्ता, या साधानादि, से ही संतुष्ट होना चाहिए कि अपने वाणी और मन को इस तरह न फैलाए कि उसका ज्ञान ही नष्ट हो जाए।

40—गुणों और दोषों से छुटी हुई आत्मा वाला योगी अनेक प्रकार के विषयों में हर ओर से प्रवेश करके भी उनमें उसी प्रकार लिप्त नहीं होता जिस प्रकार वायु।

41—जिस प्रकार विविध गन्धों में प्रवेश करने के बाद भी वायु उनसे युक्त नहीं हो जाता, उसी प्रकार योगी भी आत्मा की निगाह से सत्य जानकर इन पार्थिव देहों में प्रविष्ट होकर विविध गुणों का आश्रय तो बन जाता है, किन्तु उन गुणों में लिप्त नहीं होता।

42—स्थिर और जंगम में ब्रह्मात्मभाव और समन्वय के द्वारा व्याप्त अथवा अन्तर्हित मुनि अपनी फैली हुई आत्मा के अविच्छिन्न और आसक्ति-

हीन आकाशसदृश रूप को, उसकी व्याप्तिमत्ता के लक्षण से, पहचान ले ।

44—स्वच्छ, प्रकृति से स्निग्ध मधुरता रूप और मनुष्यों का गुरु रूप, मुनि जनों के मित्र आत्मा कोई परस्तुति और उसके स्पर्श से पवित्र कर देता है ।

45—परमात्मा में लगी आत्मा वाला योगी तेजस्वी, तप से, अत्यधिक पाचन शक्ति वाला और सब कुछ खा जाने वाला होकर प्रदप्ति भी मल या दोष को अग्नि की तरह नहीं ग्रहण करता ।

अध्याय 8

श्लोक 2—खूब कुचले हुए, रसहीन, और छोटे या बड़े उस ग्रास को ही जो, भाग्यवशात् स्वयं ही आ पड़ा है, न हिलने-डुलने वाला अजगर खाता है ।

3—उस अजगर की ही भांति भाग्यभोगी भी बहुत से दिनों तक निराहार और क्रियाहीन रहकर सोता ही रहता है, यदि ग्रास स्वयं ही पास में न आ पड़े ।

5—मुनि उस समुद्र के समान है, जो प्रसन्न रह कर भी गम्भीर जिस का अन्तर का भेद सरलता से पाया नहीं जा सकता, जिसकी गति का पार पाना कठिन है, जिससे आगे निकलना कठिन है, जिसको चंचल नहीं किया जा सकता एवं जिसमें जाकर जल मन्दगति हो जाता है ।

6—समृद्ध इच्छा वाला या अभावग्रस्त, भगवान के अर्पित, मुनि उसी प्रकार न तो अपनी सीमा से बाहर जाता है और न ही उसकी अपेक्षा कम पड़ता जाता है, जिस प्रकार सरिताओं के गिरने या न गिरने से समुद्र की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता ।

9—मुनि को चाहिए कि वह देह को सन्तुष्टि भर में समर्थ भोजन को थोड़ा-थोड़ा करके खाए, गृहों या गृहस्थों को हानि न पहुँचाते हुए भंवरे के समान वृत्ति को धारण करे ।

10—कुशल मनुष्य को चाहिए कि वह चारों ओर से सार का संग्रह, शास्त्रों से अल्प भय रखकर और महान् अभय प्राप्त करके, वैसे ही करे, जैसे भौंरा फूलों से सारसंग्रह करता है

अध्याय 11

श्लोक 8—जानकर मनुष्य स्वयं को देहवान् होकर भी उसी प्रकार देह से रहित समझता है, जिस प्रकार स्वप्न से जागा हुआ आदमी।

7—प्रतिक्रिया से रहित रहने वाला विद्वान इन्द्रियों द्वारा विषयों में, एवं गुणों द्वारा गुणों में, बांध लिए जाने पर भी अहंकार में नहीं पड़ता।

16—समान दृष्टि पा लेने वाला मुनि गुण और दोषों से वर्जित हो जाता है।

17—इस पूर्वप्रोक्त वृत्ति को धारण करके अपनी आत्मा में ही संतुष्ट रहने वाला मुनि जड़ की भांति (प्रतिक्रियाहीन होकर) विचरण करे।

21—इस प्रकार जिज्ञासा के द्वारा (ब्रह्म से) नानात्व के भ्रम को दूर करके अपने रजोगुणहीन मन को सब वस्तुओं में विद्यमान मुझ में रमाए।

24,25—मेरे ही लिए धर्म, काम और अर्थ का आचरण करता हुआ और मुझ पर ही आश्रित व्यक्ति सत्संग द्वारा लब्ध भक्ति से मुझमें ही स्थित हो कर मेरी भक्ति करता हुआ, सज्जनों द्वारा स्वतेज से प्रदर्शित मेरे पद को प्राप्त कर लेता है।

29—जो व्यक्ति सभी प्राणियों के लिए कृपालु है, द्रोहहीन है, सहनशील है, सत्य प्रतिज्ञावान् है, कभी क्षीण न पड़ने वाली आत्मा वाला है, सम है और सबका उपकारी है,—

30—कामजन्य विकारों से जिसकी बुद्धि विनष्ट नहीं हुई है, जो उदार, कोमल, पवित्र और वस्तुहीन है, जिसे कोई इच्छा नहीं है, संयत भोजन करने वाला है, शान्त, स्थिर और मेरी शरण में आ चुका है और मुनि है,

31—एवं प्रभावरहित, गम्भीर आत्मा वाला, धैर्यवान् और छहों गुणों का विजेता है, तथा जो अपना मान न करके भी दूसरों का आदर करने वाला, समर्थ मित्रभावयुक्त, करुणाकर और कान्तवर्ती कवि है।

32—ऐसा जो व्यक्ति सब अन्य धर्म-कर्मों को त्याग कर केवल मेरी ही उपासना करता है, वह सज्जन-पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ है।

33—जो अनन्यभाव से अपने को डुबो डालते हैं, वे मेरी दृष्टि में सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं।

34—(मुझे वही भक्त सर्वाधिक प्रिय है), जो मुझे ही अपनी निशानी मानता है, मेरे भक्तजन के दर्शन, स्पर्श और अर्चन में तत्पर है, उनकी परिचर्या और स्तुति करता है एवं नम्र है तथा उनके गुणों और

धर्मों का कीर्तन या प्रशंसा करता है।

35—(वही), जिसे मेरी कथा के सुनने में श्रद्धा है और हे उद्धव ! जो मेरा ही चिन्तन और ध्यान करता है, तथा सब लोभों को हटाकर जो दास्य भाव से मेरे प्रति अपना समर्पण कर देता है,

40—तथा जिसे न मान है, न दम्भ और न ही अपने किये का बखान करने की भावना।

अध्याय 12

श्लोक 1-2—सब प्रकार की आसक्तियों को हटा देने वाला सत्यसंग मुझे जिस प्रकार पा लेता है, उस प्रकार न मुझे योग के द्वारा, न ही सांख्यप्रोक्त धर्म के द्वारा, न स्वाध्याय, तप और त्याग के द्वारा, न इष्टापूर्त के द्वारा और न ही दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, नियमों अथवा यमों के द्वारा ही पाया जा सकता है।

अध्याय 14

श्लोक 13—मेरे से सन्तुष्ट मन वाला हो जाने के कारण जिसका कुछ भी अपना कहने को नहीं रह गया है, जो उदार, शान्त और समतसमय चित्तवाला है, उसके लिए सभी दिशाएं सुखमय हो जाती हैं।

16—चाहरहित, शान्त, निर्वर और समदर्शी मुनि का मैं भी वैसे ही अनुसरण करता हूं, चरणधूलि किसी जाने वाले का अनुकरण करती है।

21—मुझ में की गई भक्ति जन्मना चण्डालों को भी पवित्र कर देती है।

23—यह चित्त बिना आवेशजन्य रोमहर्ष के, बिना हृदय पिघले और बिना आनन्दाश्रूपूर्ण भक्ति के शुद्ध ही कैसे हो सकता है ?

24—गद्गद् हुई वाणी जिसके चित्त को द्रवित कर देती है, वह अनेकशः रोता है और कभी हंसता भी है। तब वह लज्जा त्यागकर जोर से गाने लगता है और नाचता है। मेरी भक्ति से युक्त ऐसा भक्त सारे लोक को ही पवित्र कर देता है।

31—हे कमलनयन। आप को जिस प्रकार, जिस रूप में और जिस भी द्रव्य से सन्नद्ध करके मोक्ष के इच्छुक को ध्यान करना चाहिए, उस विधि को आप मुझे बताओ।

32,33—सुखपूर्वक एक जैसे आसन में बैठा रहकर, शरीर को समावस्था में रखकर, दोनों हाथों को अपनी गोदी में रखकर, अपनी नाक के अगले भाग पर निगाह टिकाए, तब श्वासमार्ग को पूरक, कुम्भ और रेचक

प्राणायामों से शोधन करे । इन्द्रियजयी होकर कभी-कभी इससे उलटे क्रम से भी अभ्यास करे ।

34—पहले तो हृदय के अन्दर ही अन्दर ओ३म् के रूप में एक ही अविच्छिन्न घण्टानाद-सा प्राण को खींचते हुए करता जाए, वैसे ही जैसे विष का तन्तु फैलता जाता है । किन्तु, सांस के साथ-साथ तब स्वर के द्वारा भी 'ओ३म्' का उच्चारण करना आरम्भ करदे ।

अध्याय 20

श्लोक 6—मनुष्यों की कल्याणकामना से मैंने तीन प्रकार के योग बताए हैं : ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग । इनके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग ही कहीं नहीं है ।

7—इनमें से कर्म का संन्यास करने और उदासीन चित्तवाले लोगों के लिए 'ज्ञानयोग' है । कामनाओं से युक्त और उदासीनता से रहित चित्त वाले लोगों के लिए कर्मयोग है ।

8—जो व्यक्ति न उदासीन होता है, तथा न ही अत्यन्त आसक्त होता है, उसके लिए सफलता देने वाला भक्तियोग है ।

अध्याय 29

9—सब कामों को मेरे लिए ही करे, किन्तु मुझे धीरे-धीरे स्मरण करते हुए, मन और चित्त को मुझमें अर्पित करके, और अपनी मनोवृत्ति को मेरे ही स्वभाव वाली बनाकर ।

12—शुद्ध चित्त वाला मुनि आत्मा में ही अपनी आत्मा को देखे, जैसे आकाश में आकाश को ।

15—हे महान् द्युति वाले । इस प्रकार से सब प्राणियों की मेरे ही भाव से सेवा करता हुआ और उन्हें (मेरा ही अंश) मानने वाला, और केवल ज्ञान पर आश्रित,

14—एवं ब्राह्मण और चाण्डाल, चोर एवं ब्रह्म, सूर्य और चिनगारी, सदय और क्रूर में समदर्शी व्यक्ति ही पण्डित होता है ।

15—मनुष्यों में मेरी ही भावना लेकर चलने वाले पुरुष में से शीघ्र ही अहंकार, स्पर्धा, असूया और तिरस्कार के भाव दूर हो जाते हैं ।

16—आश्चर्यान्वित अपने सम्बन्धियों को छोड़कर, एवं शारीरिक दृष्टि और लज्जा को त्याग कर, अश्व, चन्डाल, गाय और गधे तक को भूमि पर गिरके दण्डवत प्रणाम करे ।

22—बुद्धिमानों एवं मनीषियों का मत यही है कि इस दुनिया में अमृत से सत्य को, और मर्त्य से अमरता को, प्राप्त करता है ।

पातंजल योग सूत्र

समाधि पाद

सूत्र-2—चित्तवृत्तियों को संयत कर लेने का नाम ही योग है।

3—तभी द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो सकता है।

4—अन्यत्र वह अपनी चित्तवृत्तियों की अनुरूपता को ही प्राप्त करता है।

5—वृत्तियाँ पांच प्रकार की होती हैं। उनमें से कुछ क्लिष्ट और कुछ सरल होती हैं।

6—ये पांचों वृत्तियां हैं : प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।

12—अभ्यास और वैराग्य के द्वारा उनका निरोध या नियमन हो पाता है।

13—इनमें से स्थिति या स्थिरता में यत्न 'अभ्यास' कहलाता है।

14—'अभ्यास' का अर्थ है, दीर्घकाल तक निरन्तर रूप में आदर भावना के साथ सेवन की जाने वाली स्थिर स्थिति।

15—'वैराग्य' नाम है उस अवस्था का, जिसमें देखे या सुने विषयों में अरुचि वाले मन की 'वशीकार' नामक स्थिति प्राप्त होती है।

16—'परम वैराग्य' वह है, जिसमें पुरुष को गुणों से अरुचि हो जाती है।

30—व्याधि, अप्रवृत्ति, संशय, प्रमाद, आलस्य, वैराग्य का अभाव, भ्रान्ति दर्शन, योग भूमिका की अप्राप्ति तथा एक ही स्थिति में अस्थिरता को चित्त के 'विक्षेप' कहा जाता है। ये विघ्न होते हैं।

31—इन विक्षेपों के साथ ही दु:ख, मन का क्षोभ, अंगों में कंपकंपी, बिना नियन्त्रण के श्वास और प्रश्वास का अन्दर प्रवेश या बाहर निकलना ये लक्षण भी पैदा होते हैं।

32—उन के प्रतिषेध या निराकरण के लिए एक ही तत्व का अभ्यास किया जाता है।

33—सुख से सम्बद्ध मैत्री, दु:ख से सम्बन्द्ध करुणा, पुण्य से सम्बद्ध मुदिता'

और अपुण्यसे सम्वद्ध उपेक्षा—की भावना से चित्त को प्रसन्नता मिलती है, या उसका विकास होता है।

34—अथवा (चित्त का विकास) प्राण को बाहर निकालने या रोक रखने से भी होता है।

35—ध्येय विषय से सम्बद्ध प्रवृत्ति उदित होकर मन को स्थिति में स्थिर करने वाली होती है।

36—शोक से रहित ज्योतिष्मती वृत्ति भी (चित्त की स्थिति को स्थिर करने वाली है)।

37—राग और विषय से ऊपर उठा चित्त भी (उसी स्थिति की स्थिरता को पाता है)।

38—अथवा स्वप्न और निद्रा में उत्पन्न ज्ञान के आलम्बन से भी (चित्तवृत्ति स्थिर होती है)।

39—अथवा अपने अभिमत विषय का ध्यान लगाने से भी (चित्तवृत्ति स्थिर हो जाती है)।

40—तब इसका अधिकार परम अणु से लेकर परम महत्व तक हो जाता है।

47—निर्विचार अवस्था में स्थिरता प्राप्त होने पर अध्यात्म की प्रसन्नता या आत्मा का विकास प्राप्त होता है।

48—उस समय प्रज्ञा केवल ऋत से ही पूर्ण रहती है।

49—यह प्रज्ञा श्रुत और अनुमान से संभव प्रज्ञा से भिन्न विषय वाली होती है, क्योंकि यह विशेष अर्थवाली होती है।

50—उस प्रज्ञा से उत्पन्न होने वाला संस्कार अन्य संस्कारों का प्रतिबन्धक होता है।

51—किन्तु, जब उस संस्कार को भी अधीन कर लिया जाता है, तब सबके वशीकरण के कारण 'निर्वीज' (विचारहीन) समाधि सम्पन्न होती है।

साधनपाद

सूत्र 1—तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्राणिधान का नाम 'क्रियायोग' है।

2—यह क्रियायोग समाधि को सम्पन्न करने वाला और क्लेशों को कम करने वाला है।

3—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये पांच क्लेश हैं।

4—अस्मितादि चारों तत्व अपने प्रसुप्त, सूक्ष्म, विच्छिन्न, और उदार रूपों में अविद्या में ही पनपते हैं ।

5—अनित्य, अपवित्र, दुःख और अनात्म तत्वों को नित्य, पवित्र, सुख और आत्म समझ लेना ही 'अविद्या' है ।

6—दृष्टिशक्ति और दर्शनशक्ति की एकात्मता ही 'अस्मिता' कहलाती है ।

7—सुख की भावना में व्याप्त रहने वाला क्लेश 'राग' है ।

8—दुःख में व्याप्त रहने वाला भाव 'द्वेष' है ।

9—स्वभाव में चलने वाला एवं विद्वान् को भी अन्यों की भांति प्रभावित करने वाला 'क्लेश' अभिनिवेश है ।

11—इन क्लेशों की वृत्तियां यान के द्वारा त्याज्य हैं ।

15—परिणाम, ताप और संस्कार के रूप में विद्यमान दुःखों से, और सत्वादि तीनों गुणों की वृत्तियों में विरोध के कारण, विवेकी के लिए सब-कुछ दुःखमय ही है ।

16—भविष्य में प्राप्त होने वाले दुःख को अभी से हटाने का उपाय करना चाहिए ।

28—योग के अंगों के अनुष्ठान के द्वारा अशुद्धि का नाम होने पर विवेक की उपलब्धि तक ज्ञान का प्रकाश होता जाता है ।

29—योग के ये अंग आठ हैं : यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ।

30—यम पांच हैं : अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ।

31—ये ही यम जाति देश और काल की सीमा पार कर सार्वभौम रूप में 'महाव्रत' हो जाते हैं ।

32—नियम भी पांच हैं : शौच, संतोष, तप, स्वास्थ्य, और ईश्वर का ध्यान ।

33—इन यमनियमों के विपरीत विचारों द्वारा बाधा होने पर उनसे उलटे विचारों (प्रतिपक्ष) का चिन्तन करे ।

34—प्रतिपक्ष या उलटे विचारों के सम्बन्ध में निम्न चिन्तन करे । हिंसा आदि भाव वितर्क हैं । ये कृत, कारित, और अनुमोदित रूप में हो सकते हैं । लोभ, क्रोध और मोह के बाद ही ये होते हैं । हलके, मध्य और उग्र रूप में ये तीन प्रकार के होते हैं । इनका फल दुःख और अज्ञान के रूप में अनन्त होता है ।

35—अहिंसा की स्थिति दृढ़ होने पर उसकी उपस्थिति में सभी प्रकार का वैर छूट जाता है ।

36—सत्य की स्थिति दृढ़ होने पर साधक क्रियाओं के फल का आश्रय बन जाता है ।

37—अस्तेय की प्रतिष्ठा होने पर सब रत्न उपस्थित हो जाते हैं ।

38—ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा होने पर शक्ति की उपलब्धि होती है ।

39—अपरिग्रह के स्थिर होने पर जन्म कैसे होते हैं, इसका बोध हो जाता है ।

40—शौच का पालन होने पर अपने अंगों में वैराग्य, एवं दूसरों से संसर्ग भावना का अभाव होता है ।

41—साथ ही अन्तःकरण की शुद्धि, मन की प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियों की विजय, और आत्मदर्शन की योग्यता आदि भी शौच से ही आते हैं ।

42—सन्तोष से सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति होती है ।

43—तप के कारण अशुद्धि का क्षय होनेपर शरीर और इन्द्रियां सध जाती हैं ।

44—स्वाध्याय के कारण इष्ट देवता का सम्यक ज्ञान हो जाता है ।

45—ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सफलता मिलती है ।

46—आसन का अर्थ है स्थिर रूप में सरलता से बैठना ।

47—यह आसन प्रयत्न की शिथिलता और अनन्त की उपलब्धि से होता है ।

49—आसन लगने पर श्वास और प्रश्वास की सामान्य गति के रुक जाने को 'प्राणायाम' कहते हैं ।

50—यह प्राणायाम बाह्य, आभ्यन्तर, और स्तम्भ (रोकना) के भेद से तीन प्रकार का होता है । देश, काल और संख्या के आधार पर यह दीर्घ या सूक्ष्म कहलाता है ।

51—इनके अतिरिक्त चौथा प्राणायाम बाह्य और आभ्यन्तर विषयों के अभाव से स्वयं आता है ।

52—उससे प्रकाश के ऊपर पड़ा पर्दा हट जाता है ।

53—और, धारणा के लिए मन में योग्यता आ जाती है ।

54—अपने विषयों का प्रयोग न करने पर इन्द्रियां जब अपने स्वाभाविक रूप में अनुकृत हो जाती हैं, उसे 'प्रत्याहार' कहते हैं ।

55—तब इन्द्रियां परम वशवर्ती हो जाती हैं।

ब्रह्मसूत्रभाष्यम्

प्रथम अध्याय, प्रथमपाद

उपोद्‌घात

'तुम्हारे' और 'मेरे' प्रत्यय में आने वाले विषय और विषयी अन्धकार और प्रकाश की भांति एक-दूसरे से उलटे हैं, और उनसे एक-दूसरे भाव की उत्पत्ति संभव नहीं हो पाती इसी कारण उनके 'धर्मों' में भी एक-दूसरे की उत्पत्ति सिद्ध नहीं हो पाती। अतः यह कहना ठीक ही है कि हमारे द्वारा प्रत्यक्ष विषयों के अधिष्ठान 'चेतन तत्व' में आप के द्वारा प्रत्यक्ष विषयों और उनके धर्मों की स्थिति, अथवा उससे विपरीत विषयी और उनके धर्मों की विषयों में स्थिति, संभव न होने से मिथ्यक कही जानी ही उचित है।

इस पर भी परस्परपुष्ट एक-दूसरे से अभिन्नता को, और एक-दूसरे के धर्मों को स्मरण करके एक-दूसरे में भेद न कर पाने के कारण, एक-दूसरे से भिन्न धर्मी और धर्म में मिथ्या ज्ञान का कारणभूत लोक-व्यवहार, जो सत्य और अमृत को मिलाकर 'यह मैं हूं' और 'यह मेरा है' जैसी भावनाओं को जन्म देता है, वह नैसर्गिक ही है। प्रश्न उठता है, यह अभ्यास क्या है ? उत्तर है, 'बाद की वस्तु में स्मृति रूप में' होने वाली यह प्रतीति की कि 'इसे कहीं पहले देखा है।' कुछ लोग अन्यत्र इसे ही 'अन्यधर्माध्यास' कहते हैं। कुछ के मत में जहां जो 'अध्यास' होता है, वहां उसकी पृथक् पहचान के बल पर भ्रम जन्म लेता है। कुछ अन्य लोग यह मानते हैं कि जहां जो अध्यास होता है वहीं उससे विपरीत धर्म कल्पित होता है। किसी भी रूप में किसी अन्य वस्तु में अन्य धर्मों का अध्यास व्यामिश्र नहीं होता। सांसारिक अनुभव भी ऐसा ही है कि---सीप ही रजत के समान चमकती है, और चन्द्रमा ही 'दो चन्द्रमाओं' के रूप की प्रतीति देता है।

तब विषयरहित प्रत्यागात्मा में विषय के धर्मों का अभ्यास या पूर्वस्मृति कैसे सम्भव होता है ? सभी लोग पहले से विद्यमान विषय में विषयान्तर की

कल्पना (या अध्यास) की जाती है। (शंका होती है कि) पर, आप कहते हैं कि 'तू' (या पर) के विनिश्चय से रहित प्रत्यगात्मा अविषय या विषयरहित है।' इसका उत्तर यह है कि इसे ऐकान्तिक रूप से विषयों से रहित नहीं कहा जा सकता। कारण यह है कि 'मैं' या 'मेरे' के रूप में पहचाना जाता है, तथा प्रत्यगात्मा की प्रसिद्धि प्रत्यक्ष ही है। और, फिर यह भी नियम नहीं है कि पहले से स्थित विषय में ही विषयान्तर की कल्पना होनी चाहिए। आकाश प्रत्यक्ष नहीं है, तब तो बाल-बुद्धि लोग उसे 'अमलिन' (या 'मलिन' ?) आदि के रूप में कल्पित करते ही हैं। इस प्रकार प्रत्यगात्मा में 'अनात्म' का अध्यास होना परस्पर विरोधी बात नहीं है। इस प्रकार ऊपर बताए अध्यास को ही पण्डित लोग अविद्या कहते हैं। इसी को पूरी तरह पहचान कर वस्तु को अपने स्वरूप में पहचानना, या उसके स्वरूप का विनिश्चय, ही विद्या मानी गई है। ऐसा होने पर जिस वस्तु में जिस बात का 'अध्यास' होता है, वह उस वस्तु द्वारा कृत किंचित् मात्र भी दोष या गुण से सम्बद्ध नहीं होता। आत्म और अनात्म के इस पारस्परिक अविद्या नाम अध्यास को सामने रखकर ही लौकिक और वैदिक सभी प्रकार के प्रमाण और प्रमेय सम्बन्धी व्यवहार प्रवृत्त होते हैं, एवं सब शास्त्र विधि-निषेध और मोक्ष का वर्णन करते हैं। फिर, यह कैसे सम्भव कहा जा सकता है कि प्रत्ययादि प्रमाण और शास्त्र अविद्या के ही विषय हैं ?

इस विषय में यह कहा जा सकता है कि देह और इन्द्रियादि के विषय में ('मैं' अथवा 'मेरी' जैसे अभिमान से रहित शुद्ध ?) 'प्रमाता' के सिद्ध न होने पर उसमें 'प्रमाणों' की भी प्रवृत्ति सिद्ध नहीं होती। इन्द्रियों को बिना ग्रहण किए प्रत्यक्ष आदि की बात ही संभव नहीं होती। इन्द्रियों का व्यवहार उनके अधिष्ठान के बिना संभव नहीं ठहरता। और, ऐसा किसी का देह नहीं कहा जा सकता कि जिसमें अध्यासयुक्त आत्मा न हो। इस सब के न होने पर (या इस सब के असत् होने पर), इनमें बेमेल आत्मा का 'प्रमाता' रूप में होना सिद्ध नहीं होता। 'प्रमाता' के बिना 'प्रमाण' की आवश्यकता या सत्ता सिद्ध नहीं होती। इसी लिए कहा गया कि प्रत्यक्षादि प्रमाण और शास्त्र अविद्या के ही विषय हैं। यह बात पशु आदि में भी समान रूप से ही लागू होती है। जिस प्रकार पशु आदि शब्दादि विषयों का क्षेत्रादि इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध होने पर प्रतिकूल शब्द का ज्ञान होने पर उससे हटते या लौटते हैं, और अनुकूल ज्ञान होने पर प्रवृत्त होते हैं। जिस प्रकार डण्डा हाथ में पकड़े किसी भी पुरुष को सामने देखमात्र कर भी, 'यह मुझे मारना चाहता है'—यह सोचकर, उससे भागने का उपक्रम करते हैं, किन्तु हाथ में हरी घास लिए हुए उसी की ओर

दौड़ने लगते हैं। इसी प्रकार परिपक्व चित्त वाले पुरुष भी क्रूरदृष्टि वाले, क्रोधमय, और खड्गधारी बलवान् लोगों को पाकर उनसे भागने लगते हैं, और इनसे विपरीत प्रवृत्ति के लोगों की ओर खिंचते हैं।

इसलिए पुरुषों का प्रमाण और प्रमेयादि सम्बद्ध व्यवहार पशुओं के व्यवहार के समान ही है। प्रत्यक्षादि से सम्बद्ध पशुओं का व्यवहार अविवेक पर आधारित होता है। उनकी समानता के आधार पर व्युत्पत्तिमान् पुरुषों का व्यवहार भी तत्काल और समान ही निश्चय किया जाता है। शास्त्रीय व्यवहार में यद्यपि आत्मा के परलोक-सम्बन्ध को बिना जाने ही बुद्धिपूर्वक प्रवृत्त होने वाले मनुष्य को अधिकृत नहीं किया जाता है, तथापि वेदान्त द्वारा ज्ञेय, खाने आदि की इच्छा से अतीत, ब्रह्मक्षेत्रादिभेद से अतीत और संसरण से हीन आत्मत्व भी शास्त्रीय व्यवहार में अधिकृत नहीं किया जाता। कारण यह है कि वह अनुपयोगी है और उसके ग्रहण से 'अधिकार' (विषय) का विरोध होता है।

किन्तु, उस प्रकार के आत्मतत्व को जाने बिना, या उसके ज्ञान से पहले तक, शास्त्र का विषय अविद्या पर आश्रित ही कहा जा सकता है। यही कारण है कि शास्त्रों में 'ब्राह्मण यज्ञ करे' आदि वाक्य आत्मा में वर्णाश्रमव्यवस्थादि की अध्यास-कल्पना करके ही प्रवृत्त होते हैं। हम पहले ही कह चुके हैं कि 'अध्यास' का अर्थ है जो वस्तु जैसी नहीं है, उसमें वैसी कल्पना करना। यथा पुत्र पत्नी आदि के विकल या सकल होने पर मैं ही विकल या सकल हूं, ऐसी बाह्यधर्मों को आत्मा में अध्यासित करने की बात देखी जाती है। इसी प्रकार 'मैं स्थूल हूं', 'कृश हूं', 'गौर हूं', 'खड़ा हूं', 'जाता हूं,' आदि देहधर्मोंका भी अध्यास किया जाता है। मूक, बधिर, काणा, या अन्धा हूं, आदि के रूप में इन्द्रियधर्मों का भी अध्यास किया जाता है। इसी तरह अन्तःकरण के काम, संकल्प, विचिकित्सा, अध्यवसाय आदि धर्मों आदि की बात है।

इस प्रकार 'अहं' का प्रत्यय देने वाले तत्व को और उस प्रत्यगात्मा को अशेष रूप से आत्म-व्यापार के साक्षीभूत आत्मा में अध्यासित करके ही अभ्युदय का फल देने वाला धर्मज्ञान होता है। ऐसा धर्मज्ञान किसी अनुष्ठानादि की अपेक्षा करता है। ब्रह्मज्ञान निःश्रेयस का फल देने वाला है और किसी अन्य अनुष्ठान पर आश्रित नहीं है। ज्ञानकाल में भावी धर्म जानने योग्य नहीं होता; क्योंकि वह पुरुष के व्यापार के अधीन होता है। किन्तु, इस काल में भूतविषय ब्रह्म ही जिज्ञासय है और, वह नित्यवृत्त होने से पुरुषव्यापार का विषय नहीं है। उसकी प्रेरणा और प्रवृत्ति में भी अन्तर है। जो 'चोदना' या प्रेरणा धर्म का लक्षण मानी गई है ('चोदनाल क्षणो धर्मः' के रूप में), वह

अपने विषय में प्रेरित या प्रवृत्त करती हुई ही पुरुष को ज्ञान प्रदान करती है। ब्रह्मचोदना तो केवल पुरुष को ही अवबुद्ध करती है। अवबोध स्वयं 'चोदना' से जन्म नहीं लेता, इसीलिए पुरुष अवबोध में नियुक्त नहीं किया जाता। यथा, आंख और दृश्यवस्तु के सान्निध्य (या टकराव) से होने वाले अर्थज्ञान में। उसी प्रकार अन्यत्र भी।

इसी कारण यह भी कहना चाहिए कि जिस ब्रह्मजिज्ञासा को बाद में बताया जाता है (या उसकी बाद में चर्चा की जाती है)। नित्य-अनित्यवस्तु के विवेक को, इहलोक और परलोक के अर्थ, भोग और वैराग्य को, एवं शम दम आदि साधनसंपत् को, और मुमुक्षु होने की बात को—ब्रह्मजिज्ञासा के रूप में—बताया जाता है। इनके प्राप्त होने पर धर्म की जिज्ञासा से पूर्व ही उससे उत्तरकालीन ब्रह्मजिज्ञासा को जाना जा सकता है, या उसे जानने की इच्छा की जा सकती है। किन्तु ब्रह्मजिज्ञासा के बाद धर्मजिज्ञासा की बात किसी तरह ठीक नहीं बैठती। इसलिए 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' में 'अथ' शब्द के द्वारा उक्त 'साधनसंपत्ति' का ही आरम्भ में वर्णन किया जाता है। दूसरा शब्द है 'अतः, जो हेत्वर्थक है। इसलिए वेद में ही अग्निहोत्रादिश्रेयस् के साधनों की अनित्यफलवत्ता को बताता है। यथा, इस लोक में कर्मसंग्रह से प्राप्त लोक क्षीण होता है, जबकि दूसरे लोक में पुण्यसंचित लोक क्षीण हो जाते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञान भी परम पुरुषार्थ को दिखाता है : 'ब्रह्मवेत्ता परम (पद) को प्राप्त होता है'—इत्यादि। इसलिए कहा है कि पूर्वोक्त साधनसंपत् को प्राप्त करने के बाद ही ब्रह्म की जिज्ञासा में प्रवृत्त होना चाहिए।

ब्रह्म की जिज्ञासा को 'ब्रह्मजिज्ञासा' कहा गया है। ब्रह्म का लक्षण आगे 'जन्माद्यस्य यतः' के रूप में कहा ही जाएगा। इसलिए ब्रह्म शब्द के जात्यादि नहीं माने जाते। उस अन्तःसाक्षी को अन्तःकरणादि में ही अध्यास करते हैं।

इस प्रकार यह अनादि अनन्त और सहज अध्यास, मिथ्या प्रत्यय के रूप में होकर भी, कर्तृत्व और भोक्तृत्व आदि का प्रवर्तक होकर सभी के लिए प्रत्यक्ष है। अतः अनर्थ के हेतुभूत इस मिथ्या अध्यास के त्याग के लिए और आत्मा के एकत्व को स्थापित करने वाली विद्या की प्रतिपत्ति के लिए ही सब 'वेदान्त' आरम्भ किये जाते हैं। सब वेदान्तों का इस विषय में क्या अभिप्राय है, वही हम इस शारीरिक भाष्य (शारीरिकमीमांसा) में प्रदर्शित करेंगे।

जिज्ञासाधिकरण ॥ सू० 2 ॥

वेदान्त के मीमांसा शास्त्र की व्याख्या करने वाले के लिए 'अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा' यह आदिम सूत्र है ॥2॥ इस में 'अथ' अनन्तर या बाद की वृत्ति को

बताने वाला है। उसे अधिकारार्थक नहीं मानना चाहिए। ब्रह्मजिज्ञासा यहां अधिकार्य (विषय) नहीं है, 'मंगल' का सूचक यह इसलिए नहीं है कि उसकी वाक्य में नहीं बैठती अर्थान्तर में प्रयुक्त होकर ही 'अथ' शब्द सुनने मात्र से ही मंगलप्रयोजन की सूचना देता है। और, तब भी जब पूर्व प्रवृत्त विषय की अपेक्षा फल की दृष्टि से आनन्तर्य भी भिन्न सिद्ध न हो। परन्तु, जब हम 'आनन्तर्य' अर्थ को स्वीकार करते हैं, तब हम जिस प्रकार धर्मजिज्ञासा के विषय में पहले किये वेदाध्यानादि को नियमपूर्वक अपेक्षित मानते हैं, वैसी ही बात यहां भी कही जानी चाहिए। हम दोनों ही जिज्ञासाओं को स्वाध्याय के अनन्तर ही आरम्भ करते हैं, यह बात तो समान ही है। किन्तु, 'अथातो' में 'कर्म के अवबोध के अनन्तर' के रूप में अर्थ की विशेषता है। धर्मजिज्ञासा से पहले वेदान्त पढ़ लेने पर भी ब्रह्म-जिज्ञासा की उत्पत्ति नहीं होती। जिस प्रकार हृदय आदि 'अवदानों' में 'आनन्तर्य' का नियम क्रम की विवक्षा के कारण होता है, उस प्रकार का क्रम यहां विवक्षित नहीं है। इसका कारण यह है कि शेष के बचे रहने (षष्ठी का विषय) अथवा अधिकृत के क्षेत्र (सप्तमी का विषय) होने के विषय में कोई प्रमाण नहीं है एवं धर्म और ब्रह्मसम्बन्धी जिज्ञासा एवं फलजिज्ञासा में भेद भी है।

इनमें शंका की बात नहीं। 'ब्रह्म की' (जिज्ञासा) में षष्ठी या 'की' का प्रयोग 'शेष में षष्ठी' के अर्थ में नहीं हुआ है, अपितु 'कर्मणि षष्ठी' के रूप में हुआ है। कारण यह कि जिज्ञासा जिज्ञास्य के आश्रित होती है एवं कोई दूसरा जिज्ञास्य यहां हो नहीं सकता और फिर, यदि 'शेष' के अर्थ में षष्ठी को स्वीकार भी करेंगे, तब भी ब्रह्म की जिज्ञासा कोई परस्पर विरोधी बात नहीं है। क्योंकि यहां सामान्य सम्बन्ध ही विशेष रूप में निष्ठित है। वैसे भी ब्रह्म के प्रत्यक्ष 'कर्मत्व' (कर्मभाव) को छोड़कर, सामान्य सम्बन्ध के माध्यम से परोक्ष कर्म की कल्पना करना व्यर्थ का ही प्रयास गिना जाएगा।

अगर कोई यह कहे कि सम्पूर्ण विचार के ब्रह्म पर आश्रित होने के कारण उसके प्रति ज्ञान का प्रयोजन मानने से यह प्रयास व्यर्थ नहीं ठहरता, तब कहना होगा कि यह बात ठीक नहीं। कारण यह कि 'प्रधान' (यहाँ ब्रह्म) के विचार प्रसंग में उससे सम्बद्ध या अपेक्षित विषयों का स्वतः ही अन्तर्भाव हो जाता है। यहाँ ब्रह्म की ज्ञान द्वारा प्राप्ति इष्ट है और ज्ञान से भिन्न होने के कारण वही प्रधान है। उस प्रधान जिज्ञासा कर्म के स्वीकृत होने पर जिन बातों का विचार ब्रह्मविचार के लिए अनिवार्य हो जाता है, उन्हें अन्तर्भूत ही मानना चाहिए। उनके लिए पृथक विचार या परिगणन की आवश्यकता नहीं रहती। जिस प्रकार 'राजा जा रहा है' के द्वारा 'सपरिवार राजा' की बात

स्वतः ही गृहीत हो जाती है; उसी प्रकार उक्त विषय में भी समझना चाहिए। फिर, इसमें श्रुति का भी प्रमाण है। 'जिससे ये सब प्राणी उत्पन्न होते हैं'— इत्यादि श्रुतिवाक्यों में 'तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म' (उसको जानने की इच्छा करो) 'वही ब्रह्म है' आदि के रूप में प्रत्यक्ष ही ब्रह्म के जिज्ञासा का उद्देश्य (कर्म) सिद्ध करती हैं। यह बात 'कर्म में षष्ठी' सिद्धान्त को मान कर ही सूत्र से संगत बैठती है। अतः 'ब्रह्म की' में कर्मषष्ठी की बात माननी चाहिए। जानने की इच्छा को जिज्ञासा कहते हैं। ज्ञान का अर्थ है उपलब्धि तक की अवस्था। वह बाध्य इच्छा के कर्मफल का विषय है। यह इसलिए कि ज्ञान के प्रमाण पर ही ब्रह्म को जानना इष्ट है। ब्रह्म की अवगति ही 'पुरुषार्थ' है। क्योंकि, उसके द्वारा ही सांसारिकता की मूल बूता अविद्या का समूल नाश हो सकता है। इसलिए ब्रह्म के विषय में जानने की इच्छा होनी चाहिए।

वह ब्रह्म प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध दोनों प्रकार का हो सकता है। यदि वह प्रसिद्ध है, तब उसकी जिज्ञासा नहीं करनी चाहिए। यदि वह अप्रसिद्ध है, तब उसकी जिज्ञासा सम्भव ही नहीं होती।

इस प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि ब्रह्म तो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला और सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिसम्पन्न है। व्युत्पत्ति करने पर ब्रह्म शब्द के, 'बृह' धातु पर आश्रित होने के कारण, नित्यशुद्धत्वादि अर्थ प्रतीत होते हैं और यह भी प्रसिद्ध है कि वह सबके 'आत्म' तत्व के रूप में रहता है। सब लोग अपने या 'आत्मा' के अस्तित्व पर ही भरोसा रखते हैं या वैसा पहचानते हैं, 'मैं नहीं हूँ' के रूप में नहीं। यदि आत्मतत्व के रूप में प्रसिद्धि न हो, तो सभी लोग 'मैं नहीं हूँ' के रूप में प्रत्यय करेंगे और, यह 'आत्मा' कुछ और नहीं, यही 'ब्रह्म' है। तब अगर दुनिया में ब्रह्म आत्मा के रूप में प्रसिद्ध है, तब यह ज्ञात है ही। तब भी वह जिज्ञासा का विषय नहीं ठहरता।

यह बात ठीक नहीं है। इसमें 'विशेष' की बात को छोड़ दिया गया है। सामान्य जन और लोकायत मत के लोग इस विषय में निश्चित हैं कि 'चैतन्य से विशिष्ट देहमात्र ही आत्मा है।' अन्य एक मत के अनुसार 'चेतन इन्द्रियां ही आत्मा' हैं। एक अन्य मत 'मन ही आत्मा है' के रूप से कहता है। कुछ 'क्षणिक विज्ञान' को, कुछ 'शून्य' को, तथा कुछ 'देह से भिन्न संसरणशील कर्ता और भोक्ता' को आत्मा मानते हैं। जबकि अन्य लोगों के मत में वह आत्मा केवल 'भोक्ता' ही है, कर्ता नहीं। कई लोग यह मानते हैं कि सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान ईश्वर उससे भिन्न और अलग है। उसे ही कुछ लोग 'भोक्ता की आत्मा' मानते हैं।

इस प्रकार बहुत से लोग युक्ति, वाक्य आदि का विविधरूप में आश्रय

लेकर विभिन्न परिणामों पर पहुंचते हैं। इस विषय में बिना विचारे ही किसी निर्णय पर पहुँच जाने वाला निःश्रेयस् से भी हीन हो जाता है और अनर्थ (प्रयोजन-विपरीतता) को भी प्राप्त होता है। इसीलिए 'ब्रह्मजिज्ञासा' को प्रथमतः प्रस्तुत करके उसके लिए अविरुद्ध तर्कों का आश्रय लेने वाली वेदान्त-मीमांसा और वाक्यमीमांसा अथवा वेदान्तवाक्य-मीमांसा को निःश्रेयस् के प्रयोजन की दृष्टि से, प्रस्तुत किया जा रहा है।

कौटिलीय अर्थशास्त्र

प्रथम अधिकरण, अध्याय 1
(विनयाधिकारिकम्)

प्रकरणों का विषय

1—पृथ्वी की उपलब्धि और पालन के सम्बन्ध में जितने भी 'अर्थशास्त्र' पूर्वाचार्यों ने बनाए हैं, प्रायः उन सबका ही संग्रह करके यह एक अर्थशास्त्र बनाया गया है।

2—उसी का यह प्रकरणविषयक समुद्देश या पाद है।

3—इनमें से पहला विषय या प्रकरण है 'विनय' के विषय पर, जिसमें विद्या-विचार, वृद्धसंयोग, इन्द्रियजय, अमात्यों का बनाना, मन्त्रियों और पुरोहितों का चयन, उपायों से अमात्यों की पवित्रता-अपवित्रता का ज्ञान, गूढ़ पुरुषों (जासूसों) की नियुक्ति, उनको दूत आदि बनाना, अपने प्रदेश में कृत्य और अकृत्य पक्ष का रक्षण, शत्रुराज्य में कृत्य और अकृत्य बातों का संग्रह, सलाह का प्रसंग, दूत के कार्य की देख-भाल, राजपुरुषों की रक्षा, रोक लगाए राजपत्रों का आचरण, रोक लगे राजपुत्रों के प्रति आचरण, राजा की परीक्षा, निशान्त या राज-भवन के कार्यों का विचार और आत्मरक्षा के विषय की चर्चा हुई।

4—दूसरा अधिकरण या प्रकरण है 'अध्यक्षप्रचार' का जिसमें वर्णित विषय हैं: नगर बसाना, जोतने योग्य भूमि की व्यवस्था, दुर्ग-व्यवस्था, दुर्गनिवेश, सन्निधाता का संचितरक्षा कार्य, समाहर्ता का राजकर आदि संचय का प्रबन्ध, अक्षपटल (प्रशासक समूह) में गाणनिकों (लेखापरीक्षकों) का अधिकार, युक्तों (अधिकारियों) द्वारा अपहृत धन की पुनः प्राप्ति, उपयुक्त (उच्चाधिकारी) लोगों की परीक्षा, शासन (राज्या-देश) का विषय, कोश में प्रवेश योग्य रत्नों की परीक्षा, खनिजों के कर्मस्थलों का चलाना, अक्षशाला में सुवर्णाध्यक्ष, विशिखा या बाजार

में सुनारों की नियुक्ति, कोष्ठागार का अध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, कुप्य (वनसम्पदा) का अध्यक्ष, आयुधागार का अध्यक्ष, तुला और मापन साधनों का शोधन, देश और काल का मान, शुल्क का अध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, सीताध्यक्ष (कृषि का अध्यक्ष), सुराध्यक्ष, पशुवध के स्थानों का अधिकारी, गणिकाओं का देखभाल अधिकारी, नौशक्ति का अधिकारी, गायों का अधिकारी, अश्वों का अधिकारी, हस्तियों का अधिकारी, रथवाहनों का अधिकारी, पदातियों का अधिकारी, सेनापति का विषयक्षेत्र, राजमुद्राध्यक्ष, चरागाह आदि का अध्यक्ष, समाहर्ता के अधिकार, गृहपति-तापस-वैदेहक नामवाले गुप्तचर, नागरिक गुप्तचर।

5—तीसरा अधिकरण 'धर्मस्थीय' नाम का है अर्थात् न्याय से सम्बद्ध। इसके विषय हैं: व्यवहार की स्थापना, विवाद पद का विनिश्चय, विवाह-सम्बन्धी विचार, दायविभाजन, गृहभवनादि का विचार, समय का न त्यागना, ऋण का ग्रहण, धरोहर के नियम, दासों और कर्मचारियों का विचार, संभूयसमुत्थान या वाणिज्यविचार, क्रय-विक्रय का विचार, दिए द्रव्य को न लौटाना, अस्वामी द्वारा बेचना, वस्तु और स्वामी सम्बन्धी विचार, साहस या बलपूर्वक कार्य, वाक् की कठोरता, दण्ड की कठोरता, जुए और पशुयुद्धादि का विचार तथा प्रकीर्णक।

6—चौथे 'कण्टकशोधन' अधिकरण के विषय हैं: कर्मचारियों से रक्षा का उपाय, वैदेहकों से रक्षा, दैवी विपत्ति का उपाय, गूढ़जीवियों (ठग-बाजों) से रक्षा, सिद्ध नामवाले गुप्तचरों द्वारा गर्हित जनों का प्रकाशन, शंका-रूप और कर्म द्वारा चोरों को पकड़ना, तत्कालमृत की परीक्षा, बातचीत अथवा कार्य द्वारा अपराधी से पूछताछ, सब प्रकार के अधिकारियों से रक्षा, एक अंग काटने का छुटकारा, शुद्धदण्ड अथवा मिश्रित दण्ड, कन्याव्यभिचार का दण्ड और अतिचार का दण्ड।

7—पाँचवा प्रकरण 'योगवृत्ति' है, जिसके विषय हैं: दण्डप्रयोगविधि, कोष का अति संग्रह, भृत्यों का भरण, अनुजीवियों की वृत्ति और वृत्त, समयाचार, राजासम्बन्धी दोषों का विचार और एक ही राजपुत्र को गद्दी देने का विषय!

8—'मण्डलयोनि' नाम के छठे प्रकरण में निम्न विषय हैं: अमात्यादि प्रकृतियों के गुण एवं शम और व्यायाम के विषय!

9—'षाड्गुण्य' नामक सातवें अधिकरण में विषय हैं : षाड्गुण्य का परिचय, क्षय, स्थान और वृद्धि का निश्चय, संश्रय की वृत्ति, सम, हीन और अधिक का गुण स्थापन, हीनकलों के साथ सन्धि, युद्ध के बाद स्वदेश में निवास, सन्धि के बाद शासन, विग्रह के बाद अभियान, संधि करके अभियान, अनेक द्वारा एकसाथ मिलकर अभियान, अभियान पात्र और शत्रु के अभिग्रह के विषय में विचार; प्रजा की क्षीणता, लोभ और विराग के कारण; समवायसम्बन्धी विचार; मिलकर प्रयाण, परिपणित, अपरिपणित और अपसृत सन्धियाँ; द्वैधिभाव पर आश्रित सन्धि और विक्रम; अभियानपात्र विषयक विचार; अनुग्रहयोग्य विशेष मित्रगण; मित्र 'हिरण्य, भूमि और कर्म पर आश्रित सन्धि; पार्णिग्राहचिन्ता, हीनशक्ति की शक्तिपूर्ति, बलवान् से विग्रह करके उपरोध के हेतु; दण्ड के कारण झुकाए गए राजाओं का वृत्त; दण्ड से झुकाए जाने वाले का वृत्त; सन्धिकर्म; सन्धि से छुटकारा; मध्यम बल वाले के साथ कर्तव्य उदासीन के प्रति व्यवहार और मण्डल के प्रति व्यवहार ।

10—'व्यसनविषय' नामक आठवें प्रकरण में विचार्य विषय हैं : अमात्यादि प्रकृतियों के व्यसन, राजा तथा राज्य के व्यसनों की चिन्ता, नियुक्त पुरुषों के व्यसन, पीड़न विचार, राजकार्य ठप कर देने का प्रतिकार, राजस्व न देने वालों का विचार, सेनाविषयक व्यसन और मित्रों के व्यसन ।

11—'अभियान करने के इच्छुक के कर्म' नाम के नवम प्रकरण के विषय हैं : शक्ति, देश, काल और बलाबल का ज्ञान; यात्राकाल; बलसंग्रह के काल; तैयारी के गुण; शत्रुसेना के प्रति कर्म; शत्रु के प्रतिक्रियात्मक कोप का विचार; बाह्य और आन्तरिक अमात्यादि प्रकृति के कोप का प्रतिकार; क्षीणता, व्यय और लाभ का विचार; बाहरी और आन्तरिक आपत्तियां; उपद्रवकारियों और शत्रुओं द्वारा उत्पन्न विपत्ति; अर्थ, अनर्थ और संशय से युक्त विपत्ति और इन विपत्तियों के प्रतिकार के लिए किये जाने वाले उपाय ।

12—'संग्राम विषयक' दसवें प्रकरण के विषय हैं : छावनी डालना, छावनी का बढ़ना, सेना के कष्टों और घेरे के काल की रक्षा, कूटयुद्ध के विकल्प, अपनी सेना को उत्साह देना, अपनी सेना और शत्रुसेना का नियोजन; युद्धभूमि विचार, पदाति, हस्ति, अश्व और रथ सेनांगों के कर्म; पक्ष, कक्ष और उरस्य के अनुसार सेना के अग्र भाग में

व्यूह निर्माण; सेना का शक्तिशाली और निर्बल अंगों में विभाजन; पैदल, रथ, अश्व और हस्ति युद्धों के प्रकार; दण्ड, भोग, मण्डल और असंहत व्यूहों की रचना एवं इन्हीं व्यूहों के प्रतिकार के लिए व्यूहरचना।

13—'संघवृत्त' नामक ग्यारहवें प्रकरण में भेद डालने की विधि और छिपकर हत्यादि की चर्चा है।

14—'आवलीयस' नामक बारहवें प्रकरण में विषय हैं : दूत के कर्म, मन्त्र-युद्ध, सेनामुख्य का वध, मित्रों के मण्डल को प्रोत्साहन; शस्त्र, अग्नि और रस के प्रयोग में सिद्ध गुप्तचर; वीवध के आसार और प्रसार का विनाश; योग या छल से शत्रु का प्रवंचन; दण्ड द्वारा प्रवंचन और एकाकी द्वारा विजय।

15—'दुर्गलम्भोपाय' नामक तेरहवें प्रकरण में विषय हैं : शत्रु में फूट डालना, भय जगाकर शत्रु को भगाना, शत्रु देश में गुप्तचरों की नियुक्ति, घेरने का काम, कुचलना और विजयोत्तर शान्ति स्थापन।

16—'औपनिषदिक' नामक चौदहवें प्रकरण में—शत्रुघात के प्रयोग, प्रवंचन और अपनी सेना पर शत्रु द्वारा प्रहार का प्रतिकार आदि विषय हैं।

17—पन्द्रहवें प्रकरण में तन्त्रयुक्तियों की चर्चा है।

इस शास्त्र में पन्द्रह अधिकरण (प्रकरण) हैं, 15 अध्याय हैं, 180 प्रकरण हैं और छह सहस्र श्लोक हैं।

कौटिल्य द्वारा रचित यह शास्त्र आसानी से समझने योग्य है, व्यवहारसम्बन्धी तत्व का निश्चायक है और जिसमें व्यर्थ का विस्तार नहीं है।

भरतमुनि

नाट्यशास्त्र

1. 14-15—इतिहासमिश्रित इस नाट्यवेद की मैं रचना कर रहा हूँ, इस में धर्म, अर्थ और यश को देने वाले उपदेशों और संग्रहों का उल्लेख है, जिसमें विश्व के लिए भविष्य में किये जाने वाले सब कर्मों का मार्ग दर्शन किया गया है तथा जो सब शास्त्रों के प्रयोजन से समन्वित है और जो सब शिल्पों का रूप स्पष्ट करता है।

16—इस प्रकार संकल्प करके उस महामना ने चारों वेदों को ध्यान में रखकर नाट्यवेद की रचना की।

17—युजर्वेद से अभिनय को, अथर्ववेद से रस को तथा इसी प्रकार अन्यान्य वेदों, उपवेदों से विविध तत्वों को लेकर उस महामना ने नाट्यवेद को उनसे सम्बद्ध किया।

104—इस सम्पूर्ण त्रिलोकी का नाट्य में भावों के द्वारा अनुकीर्तन होता है : कहीं धर्म, कहीं क्रीड़ा, कहीं अर्थ या व्यवहार और शान्ति के प्रयोग के द्वारा।

105—इसमें कहीं हास्य होता है, कहीं युद्ध का प्रदर्शन, कहीं कामना का और कहीं हत्या आदि का भी प्रदर्शन होता है। यह धर्म में प्रवृत्त लोगों के लिए 'धर्म' के रूप में और कामसेवियों के लिए 'काम' के रूप में है।

106—यह दुर्विनीत लोगों के लिए 'जकड़' के रूप में और विनीत लोगों के लिए 'संयमक्रिया' के रूप में, नपुंसकों के लिए शक्ति उत्पन्न करने वाला और शूरों और मानियों के लिए उत्साह के रूप में है।

107—यह अज्ञानियों के लिए जागरण के रूप में, विद्वानों के लिए कुशलता के रूप में, समृद्ध लोगों के लिए विलास देने वाला एवं दुःखी और पीड़ित लोगों के लिये स्थिरता प्रदान करने वाला है।

108—धन कमाने वालों के लिए यह धन के रूप में और व्याकुल चित्त वालों के लिए चित्तवृत्ति या आचरण के रूप में है। इस प्रकार यह नाना भावों से युक्त और अन्तर्वर्ती अनेक अवस्थाओं से सम्पन्न है।

113—यह 'नाट्य' लोक के लिए 'उपदेश देने वाला' होगा। ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या नहीं!

114—न ही कोई ऐसा योग और धर्म है, जो इस नाट्य में नहीं देखा जाता इसमें सभी प्रकार के शस्त्र, शिल्प एवं विविध कर्म दिखाए जाते हैं।

6. 10—इस नाट्य में 'संग्रह' के अन्तर्गत ये तत्व आते हैं: रस, भाव, अभिनय, धर्म पर आधारित प्रवृत्तियां, सिद्धिस्वर, आतोद्य, गान और रंगमंच!

15—इस में प्रयोज्य रस आठ हैं: शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत!

16—इन आठों का परिगणन तो महात्मा द्रुहिण पहले ही करा चुके हैं। किन्तु, मैं स्थायी, संचारी और सत्वज भावों को नए सिरे से दोहराता हूँ।

17—स्थायिभाव हैं: रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय!

18-21—संचारी भाव तेंतीस हैं: निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, क्रीड़ा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, अपस्मार, सुप्त, प्रबोध, अमर्ष, अवहित्थ, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क!

31—इस प्रकार संक्षेप में गिनाने के लिए यह 'संग्रह' बताया है। इसके बाद नाट्यसूत्रों के ग्रन्थनादि का वर्णन करूँगा।

32—(इन बातों को जानकर ही नाटक इस प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकेगा), जिससे लोग उतना ही आनन्द ले सकें, जैसे बहुत से पदार्थों से युक्त और अनेक व्यंजनों से सम्पन्न, भोजन को खाते हुए भोजन का स्वाद जानने वाले लोग आनंद लेते हैं।

27. 49. इस प्रकार विज्ञ लोगों को सिद्धियों का लक्षण पूर्वोक्त ढंग से मानना चाहिए! इसके बाद मैं प्रेक्षकों का लक्षण कहूँगा।

50—उत्तम चरित्र और सम्बन्धियों से युक्त, शान्ति, इतिवृत्त और ज्ञान से सम्पन्न, यश और धर्म के मार्ग पर रत, मध्य आयु में स्थित।

51— छह अंगों वाले नाट्य को जानने वाले, ज्ञानवान्, पवित्र, समस्थिति

को प्राप्त, चारों प्रकार के आतोद्य में कुशल, नेपथ्यक्रिया को जानने वाले, उत्तम धार्मिक,

52-53—देशानुकूल भाषा और विधान को जानने वाले, कला और शिल्प में विलक्षण, हर प्रकार के अभिनय के ज्ञाता, रस और भावों की बारीकियों को समझने वाले, शब्दविधान और छन्दोविधान को जानने वाले एवं नाना शास्त्रों में चतुर लोगों को नाट्य कर्म में प्रेक्षक बनाना चाहिए।

55—नाट्य में अच्छा प्रेक्षक उसे ही माना गया है, जो संतोष का प्रसंग आने पर संतुष्ट, शोक के प्रसंग में शोकपूर्ण, दैन्य के अवसर पर दीनतापूर्ण अवस्था को अनुभव करता है।

56—और, ये सारे गुण एक ही प्रेक्षक में होने आवश्यक नहीं माने गए हैं। कारण है, ज्ञानों की बहुलता और आयु की अल्पता !

59—उत्तम, अधम और मध्यम प्रकार के वृद्ध, बालक और स्त्रियों में तश्रण और विदग्ध लोग समयानुकूल 'काम' से सन्तुष्ट हो जाते हैं।

60—'अर्थ' की साधना करने वाले 'अर्थ' के प्रसंगों में, वैराग्यवान् लोग मोक्ष के प्रसंगों में संतोष को पा लेते हैं। बात यह है कि प्रजाएँ विभिन्न स्वभाव की होती हैं और यह शील या स्वभाव ही नाट्य में स्थापित होता है।

61—इसीलिए शूर लोग वीभत्स और रौद्र के प्रसंगों में, बनावटी युद्धों में या संग्राम के प्रसंगों में एवं वृद्ध लोग धर्म, आख्यान और पुराण के प्रसंगों में नित्य ही संतोष लाभ करते हैं।

62—इस प्रकार के भावों के अनुकरण के द्वारा जो व्यक्ति उक्त गुणों से अलंकृत होकर जिस नाट्य में प्रवेश करता है, उसे ही सच्चा प्रेक्षक मानना चाहिए।

36. 72—व्यवहार में लाने पर यह शास्त्र मनुष्यों की बुद्धि बढ़ाने वाला होता है और तीनों लोकों की क्रियाओं से युक्त होने के कारण सब शास्त्रों का रहस्योद्घाटक है।

74—ब्रह्मा द्वारा प्रोक्त इस नाट्यशास्त्र को जो भी सुनता है या जो भी प्रयोग करता है अथवा जो भी ध्यान लगाकर देखता है।

75—वह उसी गति को प्राप्त करता है, जिसे वेद के ज्ञाता लोग या यज्ञ करने वाले लोग या फिर दानशील लोग प्राप्त करते हैं।

76—सभी राजधर्मों में इसका फल सबसे महान् माना गया है। सब दानों में यह सर्वस्वदान के रूप में पूजित है।

मम्मट

काव्यप्रकाश

उल्लास 1

श्लोक 1—नियति के नियमों से रहित केवल आह्लाद से निर्मित (अथवा, आह्लादरूपिणी), किसी अन्य के अधीन न रहने वाली, नौ रसों—या नए-नए आनन्दों—से सुन्दर और कमनीय रचना को धारण करने वाली कवि की भारती (सरस्वती) सदा विजयिनी हो।

2. काव्य की रचना यश, अर्थ (धन), व्यवहारज्ञान, अशिव की क्षति और तत्काल परम सुख आदि की प्राप्ति के लिए होती है; तथा साथ ही प्रेयसी के तुल्य उपदेश का प्रयोजन पूरा करने के लिए होती है।

...'सकल प्रयोजनों में सर्वश्रेष्ठ, श्रवण के तुरन्त बाद ही अद्भुत आनन्द, जिसमें अन्य किसी भी जानने योग्य बात की सत्ता विलीन हो चुकी होती है, (उसके लिए भी काव्य रचना की जाती है)। इसमें ईश्वर या स्वामी तुल्य वेदादिवचनों और मित्र तुल्य अर्थ या तात्पर्य से विशिष्ट पुराणादि इतिहास-ग्रन्थों से यह विशेषता होती है कि यहां शब्द और अर्थ अत्यन्त गौण होते हैं। वे रस के अंग होकर ही कार्य करते हैं। इसीलिए काव्य उनसे विलक्षण है। उसके रूप में लोकोत्तर वर्णनों में निपुण कवि की रचनाप्रक्रिया कान्ता की भांति सरसता का आपादन (आधान) करके, श्रोता को अभिमुख सा करती हुई, 'तुम्हें रामादि के समान बरतना चाहिए, रावणादि के समान नहीं, इत्यादि के रूप में सहृदय के लिए और कवि के लिए भी, यथायोग्य उपदेश प्रदान करती है। इसलिए हर प्रकार से उस प्रकार की रचना के प्रति यत्न करना चाहिए।

—"काव्य कहते हैं दोषहीन शब्दार्थों को, जो गुणों से युक्त हों और सालंकार हों; यद्यपि कहीं-कहीं बिना अलंकार के भी काव्य हो सकता है।"

दोष, गुण और अलंकारों की चर्चा आगे की जाएगी। 'कहीं-कहीं' का

अभिप्राय यह है : सब जगह तो सालंकार, किन्तु कहीं-कहीं उनके स्पष्ट प्रयोग के बिना भी काव्यत्व में कमी नहीं आती ।

उत्तम—"विद्वान लोग वाच्य की अपेक्षा इसमें व्यंग्य की प्रधानता होने पर 'उत्तम काव्य' कहते हैं; किन्तु कुछ 'ध्वनि' को ही उत्तम काव्य कहते हैं।"

मध्यम—"व्यंग्य के वाच्य की अपेक्षा प्रधान न होने पर वही काव्य 'मध्यम' कहलाता है । व्यंग्य के गौण होने के कारण उसे 'गुणीभूत व्यंग्य' भा कहते हैं ।"

अवर—"व्यंग्य से हीन, केवल शब्द या वाच्य की विचित्रता पर आश्रित काव्य को 'अवर' कहते हैं ।

यहां 'चित्र' या 'विचित्रता' का अर्थ 'गुण या अलंकार से युक्त' है ।

उल्लास-4

"रस, भाव, रसाभास और भावाभास आदि अलक्ष्यक्रम होते हैं। यह अलक्ष्यक्रम ध्वनि रसवदलंकारादि से भिन्न और अलंकार्य के रूप में स्थित रहती है।"

"भरत ने कहा भी है—'विभाव, अनुभाव और संचारीभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है ।' इसकी ही व्याख्या करते हुए भट्टलोल्लट आदि कहते हैं : ललना और उद्यान आदि आलम्बन और उद्दीपन कारणों या विभावों से जनित स्थायी रति आदि भाव ही, कटाक्ष और भुजाक्षेपादि कार्यों वाले अनुभावों से प्रतीति के योग्य बना हुआ, सहकारी निर्वेद आदि संचारियों से पुष्ट होकर, अपनी मुख्य वृत्ति के कारण रामादि अनुकरणपात्र में और उसकी नकल करने के कारण नर्तक आदि में भी, प्रतीत होते समय 'रस' कहलाता है ।

...किन्तु भट्ट नायक का मत है कि रस न तो तटस्थता के द्वारा और न ही आत्मगत रूप से प्रतीत होता है, न यह उत्पन्न होता है और न ही अभिव्यक्त होता है । बल्कि काव्य और नाटक में अभिधादि के साधारणीकरण करने वाले 'भावकत्व व्यापार' के द्वारा साधारणीकरण के रूप में पलटा जाता हुआ, सत्वगुण के बढ़ने से होने वाले प्रकाश के स्फुरणरूपी आनन्दमय ज्ञान में परिणत होने वाला, स्थायी भाव ही तत्स्वरूप भोग के द्वारा भोगा जाता है ।

किन्तु श्रीमान् आचार्यपाद अभिनवगुप्त का मत भिन्न है । उनके अनुसार लोक में स्त्री आदि कारणों से स्थिर हुए स्थायी भाव के प्रति अभ्यास के

कारण चतुरता प्राप्त व्यक्ति जब काव्य और नाटक में विभावनादि के द्वारा उन्हीं में से 'कारणत्वादि' को हीन करके नाममात्र के एक प्रकार के अलौकिक विभावादि के द्वारा 'ये मेरे हैं या मेरे शत्रु के हैं या तटस्थ के (विभावादि) हैं' अथवा 'ये न मेरे, न शत्रु के और न ही तटस्थ के हैं' आदि के रूप में देखते हैं। तब इस प्रकार के सम्बन्ध विशेष की स्थिरता न होने से साधारण, रूप में प्रतीत होने वाले (उन विभावादि से) उनमें अभिव्यक्त होने वाला और सामान्य जनों में 'वासना' के रूप में स्थित, स्थायीभावात्मक रति आदि भाव दर्शक में स्थित रह कर भी उभय सामान्य या साधारण उपाय के द्वारा प्रमाता या दर्शक के हृदय से इस भाव को निकाल देता है कि वह व्यक्तिगत रूप में देख रहा है। इसके बाद दर्शक के मन में यह प्रतीति जन्म लेती है कि जैसे वह भी अन्यों से अभिन्न व्यक्तित्व वाला है। तब उसे अन्य किसी भी ज्ञेय वस्तु का ज्ञान नहीं रहता और वह अपने व्यक्तित्व की सीमा से रहित हो जाता है। जब उसकी अनुभूति सबसे बंटने योग्य या सबसे समान हो जाती है। वह जिस 'रस' की अनुभूति तब करता है वह सर्वसाधारण सुलभ होने के कारण अपने ही आकार की प्रमाता से अभिन्न होकर उसके लिए इन्द्रियगोचर बना हुआ, केवल अनुभूति का विषय बनता हुआ, प्रकट होता है। उसकी उपस्थिति विभावादि की उपस्थिति तक ही रहती है। जैसे पानक में अनेक द्रव्य मिलाने पर भी उसका अपना एक भिन्न ही स्वाद होता है, उसी तरह एक संमिश्र से स्वाद के रूप में ग्रहीत होता हुआ रस हृदय में स्पष्ट सा फड़कता सा प्रवेश करता है और सर्वांग को आलिंगन सा करता हुआ एवं अन्य सब अनुभूतियों को पीछे धकेल देता है। इसका स्वाद ब्रह्मानन्द के समान ही होता है तथा अलौकिक चमत्कार को देने वाला होता है।

किन्तु, इस पर भी वह 'कार्य' या 'अनित्य' नहीं है, क्योंकि विभावादि के रहने पर भी उसकी अनुभूति रहती है। वह 'ज्ञाप्य' या 'सूच्य' भी नहीं है। क्योंकि 'सिद्ध' या 'सम्पन्न' अवस्था में भी नहीं रहता। उसका संभव सदा ही विभावादि के द्वारा सामने आकर आस्वाद्य बनता है। अगर कोई यह कहे कि कारक और ज्ञापक से अन्यत्र यह कहीं दिखाई दे सकता है? तब कहना होगा कि 'कहीं नहीं'। किन्तु, इसकी अलौकिकत्व की बात पुष्ट ही होती है, दूषित नहीं! चर्वण की निष्पत्ति से ही उसकी निष्पत्ति भी सिद्ध होती है, इस दृष्टि से उसे 'कार्य' भी कहा जाना उचित है। वह लौकिक प्रत्यक्ष आदि प्रमाण की तटस्थता से सम्बद्ध ज्ञानमय अपूर्ण योगियों के ज्ञान और अन्य किसी ज्ञेय वस्तु के संस्पर्श से रहित, अपने तक ही सीमित और सधे हुए योगियों की अनुभूति के समान विलक्षण और अलौकिक एवं स्वानुभूतिसंवेद्य

है । इस दृष्टि से उसे 'प्रत्येय' (पहचाने जाने योग्य) भी कहा जा सकता है । उसे ग्रहण कराने वाला प्रमाण भी निर्विकल्प नहीं है, क्योंकि उसमें विभावादि का विचार प्रधान रहता है । किन्तु, वह सविकल्प भी नहीं है, क्योंकि अनुभूयमान अलौकिक आनन्दमय वह केवल स्वानुभूति सिद्ध ही है । इस प्रकार निर्विकल्प और सविकल्प दोनों स्थितियों के अभाव के रूप वाले इसे यदि उभयात्मक भी स्वीकार करलें, तब भी यह पूर्वोक्त रीति की भांति लोकोत्तर बन जाता है । इस प्रकार इन बातों में कोई विरोध नहीं है ।

कालिदास

अभिज्ञान शाकुन्तल (नाटक)

चतुर्थ अंक

(विष्कम्भ)

(तब कुसमों के चयन का अभिनय करती हुई दो सखियाँ प्रवेश करती हैं)

अनसूया—सखि प्रियंवदे ! यद्यपि गान्धर्व विवाह की विधि से कल्याण-सम्पन्ना शकुन्तला अपने अनुरूप पति को पा चुकी है और मेरा हृदय सुखी है, तब भी यह बात विचारणीय है ।

प्रियंवदा—वह क्या ?

अन०—आज उस राजर्षि को, अपना यज्ञ समाप्त करके, ऋषियों ने विदा कर दिया है । अब वह अपने नगर में जाकर और अन्तःपुर में प्रवेश करने के बाद यहां हुई घटना को स्मरण भी करेगा या नहीं ?

प्रियं०—निश्चिन्त रहो ! उसकी प्रकृति उतनी गुणों का विरोध करने वाली नहीं है । हां, अब पितृतुल्य कण्व इस वृत्तान्त को जान कर न जाने क्या सोचेंगे ?

अन०—मेरी समझ में तो उन्हें यह पसन्द ही होगा !

प्रियं०—वह कैसे

अन०—उन का तो पहले ही संकल्प यही था कि गुणवान् को ही कन्या देनी चाहिए ! अब यदि दैव ही उसे पूरा कर दे, तब बिना विशेष प्रयास के ही गुरुजन कृतार्थ या सफल प्रयोजन हुए !

प्रियं०—(**कुसुमपात्र को देखकर**) सखि ! देवोपहार के योग्य पर्याप्त कुसुम तो चुन ही लिए हैं ।

अन०—अरी ! शकुन्तला के सुहाग के देवता की भी तो पूजा करनी है ।

प्रियं०—हां ! ठीक ही है ।

(वैसा फिर से आरम्भ करती हैं)

(नेपथ्य में)

'अरे ! यह मैं हूँ !'

अन० — (**सुनकर**) यह तो अतिथि के समान किसी ने अपनी सूचना दी है ।

प्रियं० — शकुन्तला तो कुटिया के पास है ही ।

अन० — पर, आज वह हृदय से यहाँ नहीं हैं ।

प्रियं० — अच्छा ! फिर बस करो । इतने ही फूल काफी हैं ।

(**जाने लगती हैं**)

(**नेपथ्य में**) — अरी ! अतिथि का निरादर करने वाली ।

'तू अनन्य मन से जिसका स्मरण करती हुई, मुझ उपस्थित तपस्वा तक को नहीं जान पाई, बार-बार स्मरण दिलाने पर भी वह तुझे वैसे ही स्मरण नहीं करेगा, जैसे मद में डूबा आदमी अपने पूर्वकृत व्यवहार को स्मरण नहीं रख पाता ।

अन० — हाय दुर्भाग्य ! वही हुआ ! किसी पूजाई के बारे में सूने हृदय वाला शकुन्तला से अपराध हो गया है । (**फिर से देखकर**) अरे, किसी ऐसे-वैसे के विषय में नहीं ! यह तो महर्षि दुर्वासा हैं, जिनको शीघ्र हा क्रोध आ जाता है । शाप देते ही चंचल और न रोकी जा सकने वाली चाल से लौट गए हैं । अग्नि के अतिरिक्त अन्य कौन जलाने में समर्थ है ? इसलिए जाओ और चरणों में प्रणाम करके उन्हें लौटाओ ! तब तक मैं उनके लिए अर्घ्य और जल को लेकर आती हूँ ।

प्रियं० — अच्छा ! (**चली गई**)

अन० — (**चरणगति में गलती देखकर**) अरे ! आवेग के कारण चरण गलत पड़ने से मेरे हाथों से फूलडाली ही गिर गई है ।

(**बिखरे फूलों को लिपेटना दिखाती है**)

प्रियं० — (**प्रवेश करके**) सखि ! वे तो प्रकृति से ही वक्र हैं । वे किस का अनुनय स्वीकार करते हैं ? फिर भी मैंने उन्हें फिर से कुछ सदय बनाया है ।

अन० — (**मुसकरा कर**) उसके लिए इतना भी बहुत है । हां, आगे बताओ ।

प्रियं० — जब अनुनय करने पर भी लौटने से मना कर दिया, तब मैंने उन्हें सूचित किया !

अन० — क्या ?

प्रियं० — भगवान् ! उसकी पूर्व भक्ति को देखकर तप के प्रभाव से अनजान इस बेटी के एकमात्र अपराध को आप सह लें ।

अन०—तब ?

प्रियं०--तब 'मेरा वचन तो टल नहीं सकता, हाँ ! कोई पहचान का आभूषण दिखाने से यह शाप लौट जाएगा'—यह कहते हुए ही वे अन्तर्हित हो गए।

अन०—अब सान्त्वना देनी सरल है। क्योंकि उस राजर्षि ने जाते हुए अपने नाम से अंकित अपनी एक अँगूठी स्मरण दिलाने के लिए स्वयं ही पहनाई थी। उसके द्वारा ही शकुन्तला इस बात का उपाय कर सकेगी।

प्रियं०—आओ, तब तक इसके लिए देवताओं की पूजा तो सम्पन्न करलें।

(घूमने लगती हैं)

प्रियं०—**(देखकर)** अनसूये ! देख तो प्रिय सखी शकुन्तला को ! कैसे यह बाईं हथेली पर मुख टिकाए चित्र जड़ी सी बैठी है। पतिविषयक चिन्ता में डूबी यह स्वयं ही बेखबर है ! यह किसी आयागत का कैसे ध्यान रख सकती है।

अन०—प्रियंवदे ! अब यह बात हम दोनों तक ही सीमित रहे। स्वभाव से कोमल इस सखी की रक्षा करनी ही उचित है।

प्रियं०—कौन इस नई बेल (माला) को उष्ण जल से सींचना चाहेगा ?

(विष्कम्भ समाप्त)

(तब सोते से जागकर शिष्य प्रवेश करता है)

शिष्य—प्रवास से लौटे पूज्य काश्यप ने समय जानने को कहा है। अतः जरा प्रकाश में जाकर देख लूं कि रात कितनी और बाकी है ? **(घूम-कर और देखकर)** अहा ! सुबह हो गई, तभी तो, एक ओर औषधि-पति चन्द्रमा अस्त हो रहा है, जब कि दूसरी ओर अरुण किरण की अगवानी में यह सूर्य आ रहा है। इन दोनों तेजों के एक ही क्षण में क्षीण और उदय होने से यह लोक मानो सीख रहा है कि सुख-दुःख की दशा पलटने पर क्या कर्त्तव्य है ? साथ ही, चन्द्रमा के छिप जाने पर वही अतिसुन्दर कुमुदिनी अब उतनी अच्छी नहीं लग रही। सच ही इष्टजनों के प्रवास से होने वाले दुःख स्त्रियों द्वारा कठिनता से ही झेले जाते हैं।

अनसूया—**(बीच में लटकने वाले पर्दे के एक ओर प्रवेश कर)** विषयों से पराङ्मुख इन तपस्वी जनों को अभी तक यह नहीं पता कि उस राजा ने इस शकुन्तला के साथ कैसा अनार्य या अन्याय्य व्यवहार किया ?

शिष्य—चलकर गुरुजी को होम-वेला होने की सूचना दूँ ! **(चला जाता है)**

अन०—अथवा, उठकर भी क्या करूँगी ? सुबह के उचित कार्यों में भी मेरे हाथपैर नहीं चल रहे ! वह काम ही अपनी इच्छा पूरी करले, जिसके कारण असत्य प्रतिज्ञा वाले उस आदमी को दिल देकर शकुन्तला सूनी सी बन गई है अथवा दुर्वासा के कोप के कारण ही यह सब हो रहा है । अन्यथा, यह कैसे सम्भव है कि वह राजर्षि उस प्रकार की बातें करके भी इतने दिनों में एक पत्र या सन्देश तक न भेज सका ? तब क्या मैं उस पहचान वाली अंगूठी को ही उसके पास भेजूं ? तप और क्लेश को ही जानने वाले इन तपस्वियों में से किससे प्रार्थना करूँ ? और, 'दोष हमारी सखी का ही है' यह निश्चय होने पर भी, मैं प्रवास से लौटे पूज्य काश्यप से दुष्यन्त द्वारा परिणीता इस शकुन्तला की बढ़ी हुई गर्भदशा को भी बता नहीं पा रही हूँ । इस स्थिति में अब हमें क्या करना चाहिए ?

प्रियं०—**(प्रवेश करके सहर्ष)** सखि ! जल्दी चलो ! चलकर शकुन्तला के प्रस्थानकार्य को पूरा करें !

अन०—सखि ! यह कैसे ?

प्रियं०—सुन ! अभी 'सुख की नींद' की बात पूछने के लिए मैं शकुन्तला के पास गई थी ।

अन०—तब ?

प्रियं०—वहां लज्जा से मुख झुकाए इसे तात कण्व ने स्वयं ही अभिनन्दनपूर्वक कहा—'पुत्री ! भाग्य से यजमान की दृष्टि धुएं से रूंध जाने पर भी आहुति अग्नि में ही गिरी है । आज मुझे तेरे बारे में वैसे ही कोई चिन्ता नहीं रही, जैसे अच्छे शिष्य को दी विद्या के बारे में नहीं होती । आज ही राजर्षि द्वारा परिणीता तुझे मैं तेरे पति के ही पास भेजूंगा !'

अन०—तात कण्व को यह बात बताई किसने ?

प्रियं०—उनके अग्निगृह में प्रवेश करने पर अशरीरी छन्दोमय वाणी ने ही !

अन०—**(मुसकरा कर)** हां, कह तो !

प्रियं०—**(संस्कृत में)**—'हे ब्रह्मन् ! तुम्हारी कन्या पृथ्वी की समृद्धि के लिए दुष्यन्त के बीज को वैसे ही धारण कर रही है, जिस प्रकार शमी वृक्ष अपने अन्दर अग्नि को धारण करता है ?'

अन०—**(प्रियंवदा को आलिंगन करके)** सखि ! यह तो मेरा मनचाहा हुआ !

किन्तु, शकुन्तला आज ही ले जाई जा रही है, इससे मुझे उत्सुकता और ढाढस साथ-साथ ही हो रहे हैं ।

प्रियं०—सखि हम दोनों तो अपनी उत्कण्ठा को हल्का कर ही लेंगे । किन्तु, यह बेचारी तो सुखी हो !

अन०—तभी तो इस आम की शाखा पर लटकने वाले नारिकेलपात्र में मैंने बहुत देर तक टिक सकने वाली केसरमाला लटकायी थी । उसे तब तक तुम उतार लो । इस बीच मैं इसकी विदाई के लिए गोरोचन, तीर्थ की मिट्टी, दूब के पत्ते, आदि माँगलिक वस्तुओं को जुटाती हूँ ।

प्रियं०—वैसा ही करो !

(अनसूया चली जाती है)

प्रियं०—**(सुमनपात्र को पकड़ने का नाट्य करती है)**

(नेपथ्य में)

हे गौतमी ! शार्ङ्गरव महोदय को शकुन्तला को लाने का आदेश दो !

प्रियं०—**(सुनकर)** अनसूये ! जल्दी करो ! हस्तिनापुर जाने वाले ये ऋषि लोग शोर कर रहे हैं ।

(मंगल-सामग्री लिये हुए अनसूया आती है)

अन०—आओ, सखि ! चले !

(घूमती हैं)

प्रियं०—**(देखकर)** यह है शकुन्तला, जिसने सुबह ही अपने बाल धोए हैं और नीवार हाथ में लिए स्वस्तिपाठ करते हुए तापसियां जिसका अभिनन्दन कर रही हैं । आओ ! इसके पास चलें ।

(पास जाती हैं)

(तब पूर्वनिर्दिष्ट रूप वाली शकुन्तला बैठी दिखाई देती है)

एक तापसी—**(शकुन्तला के प्रति)** पुत्री ! पति से अधिक आदर सूचक 'महादेवी' विशेषण को पाओ !

अन्य तापसी—वत्से ! वीर पुत्र की मां बनो !

एक अन्य –पुत्री ! तुझे पति का मान अधिक मिले !

दोनों सखियां—**(पास जाकर)** सखि ! तुम्हारा सुखस्नान हो गया ?

शकुन्तला :—प्रिय सखियों का स्वागत ! इधर बैठो !

दोनों—**(मंगलपात्रों को लेकर बैठकर)** सखि शकुन्तले ! तैयार हो लो । इस बीच हम तुम्हारे मंगलकार्य की बात पर विचार करते हैं ।

शकु०—यह मेरे लिए बहुत आदर की बात है । अब तो मेरे लिए सखियों द्वारा

यह सजाना दुर्लभ हो जाएगा।

(आंसू आ जाते हैं)

दोनों—सखि ! मंगलकाल में तेरा रोना उचित नहीं। **(आंसू पोंछकर सजाने का नाट्य करती हैं)**।

प्रियंवदा– सखि ! आभरणोचित तेरा यह रूप आश्रम के साधनों से बिगाड़ा ही जा रहा है।

(भेंट लिए दो ऋषि-कुमार उपस्थित होते हैं)

कुमार—ये हैं अलंकार ! आप इससे इन्हें सजाएँ !

(सभी देखकर चकित रह जाती हैं)

गौतमी– वत्स नारद ! यह कहां से ?

पहला :—पूज्य काश्यप के प्रभाव से !

गौतमी– क्या इच्छानुसार ही रच डाले ?

दूसरा– नहीं तो ! सुनिए ! पूज्य काश्यप ने हमें आज्ञा दी कि शकुन्तला के लिए वनस्पतियों, फूलों को ले आओ ! तब किसी वृक्ष ने चन्द्रधवल मंगल-चिन्ह दुकूल प्रस्तुत कर दिया, किसी ने चरण रंगने के योग्य लाक्षारस प्रस्तुत कर दिया, जबकि अन्य वृक्षों ने कलाई तक निकले किसलय-सदृश वन-देवताओं के हाथों से आभरण प्रस्तुत कर दिये !

प्रियं०—**(शकुन्तला को देखकर)** सखि ! इस घटना-संयोग से ही सूचित हो गया कि तुम पति के घर में भी राज्यलक्ष्मी का भोग करोगी !

(शकुन्तला लज्जा का अभिनय करती है)

पहला - गौतम ! आओ, अभिषेक के लिए गए काश्यप को वनस्पतियों की इस सेवा का समाचार दें।

दूसरा अच्छा !

(दोनों निकल जाते हैं)

अन०—सखि ! हम लोगों ने कभी भूषणों का उपयोग नहीं किया ! फिर भी, चित्ररचना के परिचय से हम तुम्हारे अंगों पर आभरण पहनाने का कार्य करेंगे !

शकु०—तुम्हारी कुशलता को जानती हूँ।

(दोनों अलंकृत करने का अभिनय करती हैं)

(तब नहाकर आए काश्यप प्रवेश करते हैं)

काश्यप—आज शकुन्तला जा रही है, यह सोचकर हृदय उत्कण्ठा से भर आया है। अन्दर रुके हुए आंसुओं के कारण मेरा कण्ठ रूंधा हुआ है और चिन्ता के कारण मेरी दृष्टि जड़ हो गई है। जब मुझ बनवासी

को भी स्नेह के कारण इतनी विकलता है, तब गृहस्थ लोग लड़की की जुदाई से होने वाले ताजे दुःखों से कैसे पीड़ित न होते होंगे ?

(घूमने लगते हैं ।)

दोनों सखियां—सखि शकुन्तले ! तुम्हारा मण्डन पूरा हुआ । अब दुकूल ओढ़ लो !

(शकुन्तला उठकर पहनती है)

गौतमी—पुत्री ! आनन्दाश्रु बहाने वाले नेत्र से लगते हुए तेरे पूज्य आ गए हैं । इनके प्रति उचित सम्मान दिखाओ !

शकु०—**(लज्जा सहित)** हे पिता ! नमस्कार करती हूँ ।

काश्यप—बेटी ! जैसे ययाति को शर्मिष्ठा प्रिय थी, उसी प्रकार तुम भी अपने पति से बहुत सम्मान पाओ ! तुम भी उसी की तरह चक्रवर्ती सम्राट् पुत्र को प्राप्त करो !

गौतमी—भगवन् ! आपके ये आशीष नहीं, वरदान हैं । बेटी ! वेदी में सब ओर व्याप्त ये पूरी तरह जलते ईंधनवाली, चारों ओर बिछे कुशासनों वाली, यज्ञविधानसम्बन्धी अग्नियां अपनी हवि की गन्ध से दुरितों को नाश करती हुई तुम्हें पवित्र करें ।

(शकुन्तला यज्ञाग्नि की प्रदक्षिणा करती हैं)

कण्व—अब चलना आरम्भ करो ! **(चारों ओर नजर दौड़ाकर)** कहां हैं शार्ङ्गरव आदि ?

शिष्यगण—भगवन् ! यह रहे हम !

काश्यप—शार्ङ्गरव अपनी भगिनी को मार्ग दिखाओ !

शार्ङ्गरव—इधर आइए, आप !

(शकुन्तला घूमती है)

(अन्य सब भी घूमते हैं)

काश्यप—ओ, वन देवताओं सहित तपोवन के वृक्षो ! आज वही शकुन्तला अपने पतिगृह को जा रही है, जो आपको पानी पिलाने से पहले स्वयं पानी नहीं पीती थी, सज्जाप्रिय होने पर भी स्नेह के कारण जो आपके किसलयों को नहीं लेती थी तथा आपके प्रथम बार फूल लगने पर जो स्वयं उत्सव मनाया करती थी । आप सब उसे जाने की अनुमति दीजिए !

(कोकिलरव की सूचना देकर)

'इस शकुन्तला को वन में साथ रहने के कारण बन्धु बने वृक्षों ने गमन

की अनुमति दे दी है, तभी तो इन्होंने इतना सुन्दर कोकिलरव स्वीकृति के रूप में किया है।'

(**आकाश से आवाज आती है**)

'कमलिनी दलों के कारण हरे-काले से बने तालाबों के कारण जगह-जगह मनोरम छायादार वृक्षों के कारण उस पर पड़ने वाले सूर्यकिरणों के नियमित ताप वाला तथा कमलधूलि सदृश कोमल धूलि वाला इसका मार्ग शान्त और अनुकूल पवन से युक्त एवं कल्याणकारी हो!'

(**सभी विस्मित होकर सुनते हैं**)

गौतमी—बेटी! अब तो सम्बन्धिजनों के समान स्नेहपूर्ण तपोवन के देवताओं ने भी तुम्हारे गमन की अनुमति दे दी है। इन पूज्याओं को प्रणाम करो!

शकु०—(**प्रणाम के साथ घूमकर, कान में**) सखि प्रियंवदे! आर्यपुत्र के दर्शनों के लिए उत्सुक होते हुए भी आश्रम छोड़ते हुए मेरे चरण दुःख के कारण आगे की ओर नहीं उठ रहे हैं।

प्रियं०—केवल तुम्हें ही तपोवन का वियोग व्यथित नहीं कर रहा है। यह देखो! तपोवन की भी तुम्हारे समीपस्थ वियोग के कारण क्या दशा है? —हिरणी के मुख के दूर्भेकवल मुख से बाहर निकले जा रहे हैं। मयूरी ने अपना नर्तन छोड़ दिया है और, लताएँ भी इन उड़ते हुए पीले पत्तों के बहाने आंसू बहा रही हैं।

शकु०—(**स्मरण करके**) पूज्य! बहिन बनी वनज्योत्स्ना लता से मैं बात करना चाहूंगी।

काश्यप—उसके प्रति तुम्हारे सौन्दर्यस्नेह को जानता हूँ।

शकु०—(**लता के पास जाकर**) वनज्योत्स्ने! अपने प्रिय आम से मिली होकर भी इधर फैली अपनी बाहुओं से मेरा आलिंगन कर लो! आज से मैं तुमसे दूर चली जाऊंगी!

काश्यप—मैंने तुम्हारे लिए पहले ही जो संकल्प किया था, उसके अनुसार तुम तो पुण्य बल से अपने अनुरूप पति को पा गई हो। यह नई बेल भी आम से मिल गई है। अब मैं तुम्हारे और इसके विषय में सर्वथा चिन्ता रहित हो गया हूँ। अब तुम इधर से मार्ग पकड़ो!

शकु०—सखियो! इसे मैं तुम दोनों के हाथ में देती हूँ!

दोनों—हम दोनों को तुम किसके हाथ में छोड़े जा रही हो?

(**आंसू बहाती हैं**)

काश्यप—अनसूये ! रोओ मत । तुम दोनों को तो शकुन्तला का मन टिकाना है ।

(सब घूमते हैं)

शकु०—पूज्य ! जब यह कुटिया के आसपास मँडराने वाली हरिणी प्रसव से सकुशल निबट जाए, तब मुझे इस प्रिय समाचार को बताने के लिए किसी को भेज देना ।

काश्यप—ऐसा ही होगा । हम नहीं भूलेंगे ।

शकु०—(**गतिभंग दिखाकर**) अरे ! यह कौन मेरे दुपट्टे को पकड़ रहा है ।

(मुड़ती है)

काश्यप—बेटी ! पुत्र बनाया हुआ यह वही मृग तेरी राह को नहीं छोड़ रहा है, जिसके कुशाग्र से बिंधे मुख के व्रणों को भरने के लिए तुम इसके मुख में इमली का तेल लगाया करती थीं और जिसे सांवक चावल खिला-खिला कर तुमने बड़ा किया है ।

शकु०—पुत्र ! मुझ साथ छोड़ने वाली के पीछे-पीछे क्यों आ रहे हो ? जन्म देते ही न रहने वाली माँ के बिना तुझे बढ़ाया है । अब भी मुझ से बिछुड़ने पर पिता तेरी चिन्ता करेंगे ही ! तो, लौट जाओ !

(रोते हुए प्रस्थान)

काश्यप—बेटी ! उठी पलकों वाले नेत्रों की दृष्टि को रोकने वाले वाष्पों को स्थिर होकर रोकने की कोशिश करो ! इस विषम भूमि भाग पर न दिखाई देने के कारण तुम्हारे पांव उल्टे-सीधे पड़ रहे हैं ।

शाङ्गरव—भगवन् सुना जाता है कि राह में जल मिलने तक ही स्नेही जनों को साथ जाना चाहिए और, यह तालाब का तट आ पहुंचा है । यहीं पर हमें सन्देश देकर आपको लौटना उचित है ।

काश्यप—तब फिर इस खिरनी के पेड़ की छाया में बैठ लेते हैं ।

(घूमकर सब बैठ जाते हैं)

काश्यप—(**स्वगत**) पूज्य दुष्यन्त के लिए हमें क्या अनुरूप सन्देश देना चाहिए ?

(सोचता है)

शकु०—(**कान में**) सखि देख । केवल कमल पत्र के पीछे छिपी भी यह चकवी अपने प्रिय को न देख कर व्याकुल होकर पुकार रही है । मैं भी तो यह कठिन काम कर रही हूँ ।

अन०—सखि ! ऐसी बात मत करो ! यह भी प्रिय के बिना दुःख के कारण

दीर्घ बनी रात को बिता ही लेती है। विरह का दुःख कितना ही भारी हो, आशा का बन्धन उसे सहने में समर्थ बना ही देता है।

काश्यप—शाङ्गरव ! तुम मेरी ओर से शकुन्तला को सामने करके उस राजा को इस प्रकार कहना। 'संयम रूपी धनवाले हम लोगों का, अपने ऊँचे कुल का और बिना किसी बन्धुबान्धव के माध्यम के अपने में उत्पन्न इसकी प्रीति का भली-भाँति विचार करके तुम्हें चाहिए कि इसके साथ भी तुम अपनी अन्य पत्नियों के समान ही विश्वास या व्यवहार करो ! इससे अधिक की उपलब्धि भाग्य के अधीन है। उस विषय में बहू के सम्बन्धियों को कुछ कहना उचित नहीं।

शाङ्गरव—यह सन्देश समझ लिया है !

काश्यप—बेटी ! अब तुझे भी समझाना है। देखो ! वनवासी होकर भी हम लोकव्यवहार को जानते हैं।

शाङ्गरव—बुद्धिमानों के लिए कोई भी बात बिना जानी नहीं रह सकती !

काश्यप आज के बाद पतिकुल पहुंचकर तुम बुजुर्ग लोगों की सेवा करना, सौतों के साथ प्रिय सहेलियों का सा व्यवहार करना, और पति के बिगड़ने पर भी क्रोध में आकर उससे उल्टा आचरण मत करना। अपने चारों ओर के लोगों और सेवकों के प्रति दयालु होना, एवं भाग्य चमकने पर गर्व मत करना। ऐसा करने से ही युवतियां 'गृहिणी' कहलाती हैं, अन्यथा कुलों का रोग बन कर रह जाती हैं।

(क्यों गौमती का क्या मत है)

गौतमी—बेटी ! बहुओं के लिए इतना ही उपदेश काफी है। इस सब को समझ ले !

काश्यप—बेटी ! आओ, मुझे और सखियों से गले मिल लो !

काश्यप—पुत्री ! इन दोनों को भी तो किसी के हाथ देना ही है। इन दोनों का वहां जाना उचित नहीं। तुम्हारे साथ गौतमी जाएंगी !

शकु—(**पिता का आलिंगन कर**) मलय तट से उखड़ी चन्दनलता की भांति उसकी गोद से बिछुड़ी मैं परदेस में कैसे जी सकूंगी ?

काश्यप—पुत्री ! इस प्रकार क्यों घबराती हो ! प्रसिद्धकुलोत्मक पति के प्रवरत गृहिणी के पद स्थित रहकर, प्रतिक्षण उसके वैभव की गुरूता से युक्त कार्यों के कारण उसके लिए व्याकुल होती हुई तुम शीघ्र ही पवित्रता देने वाले पुत्र को वैसे ही पाओगी, जैसे पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है। और, तब बेटी ! तुम मेरे विरह से उत्पन्न शोक को भूल ही जाओगी !

(शकुन्तला पिता के चरणों में झुकती है)

काश्यप—पुत्री ! तुम्हारी इस क्षण की इच्छा पूर्ण हो !

शकु—**(सखियों के पास पहुंच कर)** सखियो ! तुम दोनों भी गले मिल लो !

सखियां—**(गले मिलकर)** सखि ! यदि कहीं वह राजर्षि पहचानने में असमर्थ होने लगे, तब उसके नाम वाली यह अँगूठी उसे दिखा देना !

शकु—सखियो ! तुम्हारे सन्देह ने तो मुझे कँपा दिया है।

सखियां—डरो मत ! स्नेह की अधिकता से ही पाप की आशंका होती है।

शार्ङ्ग—सूर्य काफी ऊंचा चढ़ आया है आप जल्दी करें !

शकु—**(आश्रम की ओर मुंह करके)** पूज्य ! कब मुझे फिर से तपोवन के दर्शन करने मिलेंगे ?

काश्यप—सुनो ! बरसों तक चारों समुद्रों तक विस्तीर्ण भूमि की सपत्नी बन कर और अद्वितीय रथी दुष्यन्तपुत्र को जन्म देकर और उसे कुटुम्ब का भार देने के बाद अपने पति के साथ ही इस शान्त आश्रम में तुम्हें दुबारा आना होगा !

गौतमी—बेटी ! तेरा जाने का समय बीतता जा रहा है। अब पिता को लौटा दो। अन्यथा, ये तो चिरकाल तक यही बातें करते रहेंगे ! आप लौट जाइये !

काश्यप—बेटी ! मेरी तप क्रिया में रुकावट आ रही है।

शकु—**(पिता को फिर आलिंगन कर)** तप करने से पीड़ित आपका यह शरीर मेरे लिए और भी उत्कण्ठित हो जाएगा !

काश्यप—(आह भरकर) बेटी ! जब तक मैं कुटिया के द्वार पर तुम्हारे द्वारा पहले ही बनाई गई इस नीवारबलि को देखता रहूंगा, तब तक मेरा शोक कम कैसे हो सकेगा ? अच्छा, जाओ, तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो !

(साथ जाने वालों के साथ शकुन्तला निकल जाती है)

सखियां—**(शकुन्तला को देखकर)** हाय ! यह क्या हुआ ? प्रियसखी शकुन्तला वन वृक्षों में छिप गई।

काश्यप—**(आह भरकर)** अनसूये ! तुम्हारी सहचरी गई ! शोक रोक कर मेरे पीछे लौट चलो !

दोनों—पूज्य ! शकुन्तला से रहित इस सूने तपोवन में कैसे प्रवेश करें ?

काश्यप—स्नेह के कारण ऐसा दीखता है। **(सोचते हुए घूमकर)** अहा ! शकुन्तला को पतिगृह के लिए भेजकर अब मैंने स्वस्थता पा ली है। क्योंकि कन्या तो होती ही पराया धन है। उसे आज उसके पति के

घर भेजकर मेरा अन्तरात्मा वैसे ही पर्याप्त प्रसन्नता अनुभव कर रहा है, जैसे की धरोहर लौटा दी हो।

(सभी निकल जाते हैं)

।। चतुर्थ अंक समाप्त ।।

कुछ सूक्तियां

1.4—कितने ही श्रमपूर्वक सिखाये गए लोगों का चित्त भी स्वयं पर पूरा भरोसा नहीं करता !

17—जैसे शैवाल से घिरा होने पर भी कमल सुन्दर लगता है और चन्द्रमा में पड़ा निशान भी उसकी शोभा को बढ़ाता ही है, उसी तरह वल्कल पहने होने पर भी यह तन्वंगी अधिक सुन्दर ही लग रही है । सच ही है, मधुर आकृति वालों के लिए कौनसी वस्तु मण्डनकारी नहीं ।

19—किसी विषयों में सन्देह उपस्थित होने पर सज्जन अपने अन्तःकरण की प्रवृत्ति को ही प्रमाण मानते हैं ।

7/8—स्नेही जनों से बांट कर दुःख की वेदना भी सह ली जाती है ।

15/16—इसे छिपाने या बचाने की जरूरत नहां । कहने की इच्छा होने पर भी न कही हुई बात पछतावे को जन्म देती है ।

4. 18/19—अत्यधिक स्नेह सदा ही बुरी शंका पैदा करता है।

5. 2—सुन्दर वस्तुएँ देखकर और मीठे शब्द सुनकर जब सुखी व्यक्ति भी उत्सुक हो उठता है, तब निश्चय ही वह चित्त से किसी अज्ञात पूर्व स्मृति को स्मरण कर रहा होता है। वास्तव में अन्य जन्मों के प्रेम भी अपना स्थायी प्रभाव भावनाओं के रूप में बनाए रखते हैं ।

12—फल लगने पर वृक्ष भी झुक जाते हैं। नया पानी पाकर बादल भी नीचे तक झुक आते हैं । समृद्धियों को पाकर सत्पुरुष भी उद्धत नहीं होते । वास्तव में परोपकारियों का यही स्वभाव है ।

6. 25—मनुष्य प्रतिदिन किये जाने वाली अपनी अज्ञानजन्य गलतियों को ही जान नहीं पाता । तब प्रजा में कौन किस पथ में जा रहा है, यह बात पूरी तरह जानने में कौन समर्थ हो सकता है ?

7. 17—वह भाग्यवान् धन्य है, जिसकी गोद में बैठकर यह स्वभाव से हंसमुख, कली के समान कुछ-कुछ झलकते दांतों वाला और तुतला-तुतलाकर बातें करने वाला बालक अपने अंग की धूल उसके अंगों या वस्त्रादि पर लगाकर उन्हें मैला करता होगा ।

रघुवंश (महाकाव्य)

प्रथम सर्ग

5—9 वाणी पर बहुत कम अधिकार होने पर भी (मन्दमति) मैं उन रघुओं के वंश का वर्णन करूँगा, जिनके चरित्र जन्म से ही शुद्ध रहे हैं, जो फलप्राप्ति तक ही कर्म करते हैं, जिनका राज्य समुद्र तक फैला है, जिन का रथ स्वर्ग तक जाता रहता है, जो विधिपूर्वक होम करते हैं, जो याचकों की कामनानुसार दान देते थे, अपराध के अनुसार ही जो दण्ड देते थे, ठीक समय पर उठते थे, जिनका अर्थसंग्रह त्याग के लिए ही था, सच बोलने के कारण ही जो कम बोलते थे, जिनकी विजय कामना केवल यशप्राप्ति की इच्छा से प्रेरित थी, जो ग्रहस्थधर्म सन्तान की इच्छा से अपनाते थे, जो शैशव में विद्याभ्यास, यौवन में विषयभोग और बुढ़ापे में मुनिवृत्ति अपनाते थे एवं शरीरत्याग के समय जो योग के द्वारा उसे त्यागते थे। ऐसा भी इस लिए कि मानों उनके गुण मेरे काम में पड़-पड़कर मुझे इस चपलता के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

12 — उसी (इक्ष्वाकु) के शुद्ध वंश में उसमें भी अधिक पवित्र दिलीप नाम का राजेन्यु उसी प्रकार उत्पन्न हुआ, जिस प्रकार क्षीरसागर से चन्द्रमा जन्म लेता है।

15 — उसकी प्रज्ञा उसके आकार के अनुरूप थी। उसका ज्ञान उसकी प्रज्ञा के अनुरूप था। उसके प्रयत्न उसके ज्ञान के अनुरूप थे और, उस की उन्नति उसके प्रयत्नों के अनुरूप थी!

18 — प्रजाओं से वह कर इसीलिए लेता था कि उनका ही उत्थान कर सके। सूर्य भी जल को सहस्र गुणा करके बरसाने के लिए ही लेता है।

20 — सुगुप्त मन्त्र वाले तथा गूढ़ आकार और चेष्टावाले उसके कार्यों का अनुमान वैसे ही फलों से हो पाता था, जैसे वर्तमान संस्कारों को देख कर पूर्व के कर्मों का अनुमान होता है।

21 — वह निडर होकर अपनी रक्षा करता था, बिना व्याकुलता के धर्म का पालन करता था, बिना लोभ किए धन को लेता था, और बिना आसक्त हुए सुख को भोगता था!

22 — ज्ञान होने पर मौन ग्रहण करना, शक्ति बढ़ने पर क्षमा की वृत्ति, त्याग के अवसर पर प्रशंसा से बचना, आदि बातें ऐसी थीं, जिनसे यह पता

चलता था कि उसके गुण एक दूसरे से इस प्रकार बंधे थे, मानों एक गुण से दूसरा गुण जन्म ले रहा हो !

23 — बिना बुढ़ापा आए भी उसमें 'वृद्ध' होने के सभी लक्षण आ गए थे : विषयों में वह आकृष्ट नहीं था, विद्या का पार वह पा चुका था, तथा धर्म में उसकी रीति थी !

24 — अनुशासन कायम रखने, रक्षा करने और आदर करने के कारण प्रजाओं का वास्तविक पिता वही था । उनके पिता-माता तो केवल जन्म देने के कारण ही वैसे कहलाते थे !

25 — राज्य की स्थिति वनाए रखने के लिए ही वह दण्ड का उपयोग, केवल दण्डनीय लोगों पर ही, करता था तथा केवल सन्तान की इच्छा से ही वह विवाह में बँधा था । इस प्रकार उस मनीषि के धर्म और अर्थ दोनों ही 'धर्म' बन गए थे !

26 — शिष्ट शत्रु को भी वे आदर देते थे, जैसे रोगी औषध को ! किन्तु दुष्ट होने पर प्रिय भी उनके लिए वैसे ही त्याज्य था, जैसे सांप से डसी अंगुली (त्याज्य होती है) ।

सर्ग 8

67 — घर में गृहिणी, सलाह में सचिव, साथ में सखी, ललित कलाओं की शिक्षा में प्रिय शिष्या, (के रूप में तुम मेरे लिए सब कुछ ही थीं) । बताओ ! तुम्हें हरते हुए निष्करुण मृत्यु ने मेरे से क्या नहीं छीन लिया ?

88 — प्रियजन की मृत्यु को मूर्ख लोग वैसा ही कष्टदायक मानते हैं जैसे हृदय में गड़ा शल्य हो । किन्तु, स्थिरमति वाले उस मृत्यु को कुशलता के द्वार रूप में, निकाले शल्य की तरह, सुखहेतु मानते हैं ।

कुमार सम्भव (महाकाव्य)

75 — और बोलीं,—तब आप शिव को भली प्रकार जानते ही नहीं, जो मुझे इस प्रकार कह रहे हो ! ओछे लोग महात्माओं के अलौकिक और विचार से परे के उत्तम चरित को द्वेषबुद्धि से देखते हैं ।

मेघदूत (खंड काव्य)

उत्तर मेघ

2.44—किस को सदा केवल सुख ही मिला है अथवा कौन सदा केवल दुःख ही भोग पाया है ? मनुष्य की दशा चक्र की धुरा के समान नीचे और ऊपर जाती रहती है ।

47—लोग न जाने क्यों विरह में स्नेह को कम होने वाला मानते हैं । सच तो यह है कि उपलभ्य न होने के कारण इष्ट वस्तु में स्वाद बढ़ जाता है और स्नेह की राशि जमा हो जाती है ।

विक्रमोर्वशीय (नाटक)

3.21—दुःख के बाद जो सुख होता है, वह और भी मज़ेदार हो उठता है । पेड़ की छाया भी तो तप्त पुरुष को ही विशेष मुक्तिसुख देती है !

4.17—दूसरे का दुःख कितना ही अधिक हो, पर लोग उसे भली प्रकार शीतल और सह्य ही कहते हैं ।

मालविकाग्निमित्र (नाटक)

1.2—पुराना होने मात्र से ही सब ठीक या अच्छा नहीं होता और न ही नया मात्र होने से ही कोई काव्य निन्दनीय ठहरता है । सज्जन लोग तो परीक्षा करके ही किसी एक को चुनते हैं, किन्तु मूर्ख लोग दूसरे की पहचान के बल पर सोचने वाले होते हैं ।

6 — सिखाने वाले की कला अच्छे पात्र के पास पहुंच कुछ अन्य ही हो उठती है । जैसे बादल का पानी समुद्र की सीप में गिरकर मोती के रूप में पलट जाता है ।

9 — प्रतिबन्ध या रुकावट वाले प्रयोजन को पाने में भी सहायता प्राप्त व्यक्ति ही समर्थ हो पाता है । जैसे आंखें रहते भी कोई व्यक्ति दृश्य वस्तु को अन्धेरे में दिए की सहायता के बिना नहीं देख पाता !

17 — जो व्यक्ति पद पा लेने पर विवाद से कतराता है तथा दूसरों द्वारा की जाने वाली निन्दा को सह लेता है, एवं जिसका उपलब्ध ज्ञान केवल जीविकोपार्जन के लिए ही है, उसके ज्ञान बेचने को (या ज्ञानव्यवसाय को) 'वणिज' (व्यापार) ही कहते हैं ।

2.9 — उपदेश देने वाले की उसी शिक्षा को सज्जन लोग सच्चा उपदेश 'या'

'शिक्षा' मानते हैं, जो अग्नि में पड़े सोने की भाँति आप लोगों के सामने झूठी नहीं पड़ जाती !

3.15—मिलन के लिए अनुत्सुक और उसके लिए उत्कण्ठित के समागम से एक दूसरे के प्रति रति उत्पन्न नहीं होती। किन्तु दूसरी ओर समान अनुराग होने पर परस्पर मिलन निराश प्रेमियों के लिए शरीर नाश भी काम्य होता है।

4.6— केवल बुद्धि के बल पर ही मित्रों का प्रयोजन उपलब्ध नहीं हो जाता। कार्य की सफलता का मार्ग अत्यन्त सूक्ष्म है। उसे अत्यधिक स्नेह के बल पर ही पाया जा सकता है।

शूद्रक

मृच्छकटिक (नाटक)*

1.8— पुत्रहीन का घर सूना होता है मित्रहीन का चिरकाल सूना होता है। मूर्ख के लिए दिशाएं सूनी होती हैं। किन्तु, दरिद्र के लिए सब-कुछ ही सूना होता है।

10—दुःखों को अनुभव करके पाया सुख ही अच्छा लगता है, यथा घने अन्धकार में दीपक का दर्शन सुखकारक होता है. किन्तु, जो मनुष्य सुख से दरिद्रता को प्राप्त करता है. वह शरीर धारण करके भी मृत होकर ही जी रहा होता है।

43—दरिद्र समझकर किसी का निरादर नहीं करना चाहिए, क्योंकि यमराज के यहां कोई भी निर्धन नहीं माना जाता। चरित्रहीन धनिक भी उसके यहां दरिद्र ही माना जाता है।

2. 15—सज्जन सत्कार के धन से ही धनी होता है। सामान्य धन तो सब का ही चलावली वाला होता है। जो दूसरों का सम्मान करना जानता है, वह सम्मान के उपकरणों को भी जानता है।

6. 18—जो मनुष्य शरणागत का परित्याग करता है, उसे विजयलक्ष्मी छोड़ देती है, मित्रगण छोड़ देते हैं और बन्धुबान्धव तक भी छोड़ देते हैं। साथ ही, वह सदा उपहास का पात्र बनता है।

8.24—पाप और पुण्य की साक्षी बनी ये दिशाएं, वनदेवता, चन्द्र, दीप्त किरणोंवाला सूर्य, धर्म, वायु, आकाशजीवात्मा और यह भूमि भी मुझे देख रही है।

29—उत्तम कुल आदि का बखान करने से क्या लाभ ? उच्चता-नीचता में स्वभाव ही वास्तविक कारण है। अगर क्षेत्र अच्छा हो, तो कांटे वाले वृक्ष भी अत्यधिक बढ़कर फैल जाते हैं।

10.59—कुएं पर लगे रहट की भांति यह भाग्य भी एक-दूसरे की विपरीत परिस्थितियों को स्पष्ट करता हुआ लोक स्थिति का ज्ञान करा रहा है। यह किसी को तुच्छ बना देता है तो किसी को भर-भर देता है, किसी को उन्नति पर पहुंचाता है, तो किसी को अवनत या पतित भी कर देता है तथा किसी को विविध दुर्घटनाओं से व्याकुल कर देता है।

---

* निर्णयसागर प्रेस संस्करण

भारवि

किरातार्जुनीय (महाकाव्य)

1.4 — हितकारी और मनोहर वचन दुर्लभ ही होते हैं ।

सर्ग 2

2.30 — किसी भी क्रिया को सहसा ही न करे । बिना विचारे काम करने से बड़ी-बड़ी आपदें आ सकती हैं । सोच-विचारकर काम करने वालों को गुणों के प्रति आकृष्ट होने वाली सम्पत्तियां स्वयं ही वरण कर लेती है ।

43 — भविष्य में भला करने वाला अनगिनत कर्मफल देने वाला, सब प्रकार के उपायों या दोषों से हीन और शत्रुओं का समूल नाश करने वाला उपाय तितिक्षा या क्षमा के बराबर अन्य कोई नहीं है ।

7.15 — अत्यधिक संचित पुण्य ही दोषों का प्रभाव नष्ट कर सकता है ।

8.37 — किसी वस्तु में दीखने वाले गुण, उस वस्तु में नहीं, उसके प्रति प्रेम के ही होते हैं ।

11.11 — सौन्दर्य तो जगत् में सुलभ है, किन्तु गुण पाना दुर्लभ है ।

27 — प्रिय के कमल जाने पर सूनापन भी भर जाता है, कष्ट उत्सव बन जाते हैं और विरह भी लाभकारी सिद्ध होता है ।

28 — इष्ट से रहित होने पर रम्य स्थान भी अरम्य हो उठते हैं, प्रिय प्राण भी शल्य हो उठते हैं, और बन्धुओं सहित व्यक्ति भी स्वयं को एकाकी अनुभव करने लगता है ।

72 — जातिमात्र पर लागू होने वाले सामान्य अर्थ वाले 'पुरुष' शब्द से क्या लाभ ? प्रशंसायोग्य वही है जिसका अपने स्वीकृत गुणों के कारण, आश्चर्यपूर्वक उल्लेख किया जाता है ।

73 — सभा द्वारा गौरवसहित लिए गए और तेजों को निगलते हुए से, जिसके नाम को शत्रु लोग भी अभिनन्दनपूर्वक लेते हैं, वही पुरुष सच्चा पुरुष है ।

माघ

शिशुपालवध (महाकाव्य)*

1.72—जिस तरह प्रकृति निश्चलभाव से हर सृष्टि में पुरुष को ही प्राप्त होती है, उसी प्रकार सती स्त्री भी चरित्र में अडिग रहती हुई अपने पति को जन्मान्तरों में भी प्राप्त होती है।

2.22—कार्य ही एक मात्र उत्तर है।

27—कार्य का मन्थन न करने वाले वाग्मी का सारा वाग्जाल (तर्कवितर्क) व्यर्थ होता है।

3.31—अत्यधिक प्रीति के कारण अनेक बार संस्तुत बात भी नई-नई सी दिखाई देने लगती है।

4.17—रमणीयता का सच्चा रूप वही है, जिसमें कोई वस्तु क्षण-क्षण में नयेपन को अपनाती दीखती है।

44—समय ही बलवत्ता या बलहीनता को भी ला देता है।

8.10—किसी विशिष्ट वस्तु के प्रति आसक्त कौनसा व्यक्ति औचित्य की परवाह करता है?

9.12—गुणहीन का गुण यही है कि वह दोषों से रहित हो।

---

* निर्णयसागर प्रेस संस्करण

भवभूति

महावीरचरित (नाटक)

5.59—मित्रता के महान्व्रत का लक्षण यही है कि प्रिय के लिए प्राणपन से कार्य करना, द्रोह न करना, बहाने न बनाना और अपने ही समान प्रिय कार्यों का करना ।

मालतीमाधव (नाटक)

1.8—जो कोई भी यहां हमारी निन्दा फैलाते हैं, वे कुछ तो जानते ही हैं। उनके लिए हमारा यह प्रयत्न नहीं है। आखिर कभी तो कोई मेरा समानधर्मा पैदा होगा ही (जो मेरा मूल्यांकन करेगा)। काल की भी कोई सीमा नहीं और पृथ्वी भी अनन्त है।

17—विद्वान् पुरुष बाहर से सब प्रकार के गुणों से सुरम्य व्यवहार करता हुआ दूसरों के छोटे से छोटे सदोषस्थानों को भी ढकता जाता है। अकेला होकर भी किन्हीं उपायों से सब जनों का रहस्य जानकर, स्वयं तटस्थ रहता हुआ, अपने प्रयोजन सिद्ध करता है, पर चुप भी रहता है।

27—विभिन्न पदार्थों को कोई एक आन्तरिक प्रयोजन अन्दर से जोड़ देता है। प्रीतियां भी बाह्य कारणों का आश्रय लेकर पैदा नहीं होतीं। सूर्य के उदय होते ही कमल खिल ही जाता है और, चन्द्रमा के उदय होने पर चन्द्रकान्त मणि भी द्रवित हो जाती है।

2.2/3—विवाह कर्म में सबसे मूल्यवान् मंगल एक-दूसरे के प्रति अनुराग होना है।

—जिस पर भी मन और निगाह टिक जाए, उसी में समृद्धि भी आ टिकती है।

3.11—क्रियाओं के विषय में इस प्रकार की इच्छा को पूरा करने वाले गुण ये हैं : शास्त्र पर आश्रय, स्वाभाविक बोध, प्रगल्भता, अभ्यस्त और गुणमय वाणी, काल की पहचान और सूझबूझ की सम्पन्नता।

उत्तररामचरित (नाटक)*

1.5—हर प्रकार से निश्चित होकर व्यवहार करना चाहिए। लोगों की बातों से कहां तक बचा जा सकता है ? मनुष्य स्त्रियों और वाणी का दोष ढूंढ़ने में दुर्जन बनकर लगे ही रहते हैं।

39—उत्तम पुरुष का ऐसा वह एक ही कल्याण किसी भी प्रकार से प्रार्थित है, जिसमें वह सुख और दुःख में अभेद अनुभव करता है, जो सभी अवस्थाओं में एक समान रहता है, जिसमें हृदय शान्ति पाता है, जिसकी उपलब्धि पर बुढ़ापा भी आनन्द को कम नहीं कर सकता, जिसमें जितना ही काल का व्यवधान पड़ता है वह उतना ही पकता जाता है, और जो प्रेम के सघनरूप में अन्तर्हित है।

41—सज्जन लोग लोकाराधन को ही सर्वोपरि मानते हैं, चाहे उसके लिए कुछ भी क्यों न करना पड़े। और, उस लोकाराधन के कर्त्तव्य को पूज्य पिता ने मुझे तथा अपने प्राणों को त्यागते समय पूरा किया ही था।

2. 2—साधुजनों का स्वभाव प्रिय अथवा प्रेमभरा होता है और विनम्रता से मधुर होता है। उनकी वाणी में संयम होता है। उनकी मति स्वभाव से ही कल्याणमयी होती है। बिना बताए उनका परिचय मिल जाता है। चाहे सामने हो या पीछे उनका प्रेम रस अविच्छिन्न रहता है। इस प्रकार का साधुओं का रहस्यमय स्वभाव निरावरण और शुद्ध रूप में सदा सर्वश्रेष्ठ है।

4—गुरु तो प्रज्ञावान् और जड़ को समान रूप से ही विद्यादान देता है। किंतु, वह ज्ञान के विषय में उनकी शक्ति को न तो बढ़ाता है और न घटाता है और फल के विषय में उन दोनों में महान भेद स्पष्ट होता है। जैसे, पवित्र मणि ही बिम्ब को प्रतिबिम्ब के रूप में ग्रहण करने में समर्थ होता है, मिट्टी आदि नहीं !

19—प्रियजन अपनी सुखमय क्रियाओं के द्वारा, बिना कोई विशेष क्रिया किए ही, दुःखों को कम कर देता है। सच तो यह है कि जो भी जिसे प्रिय होता है, वही उसके लिए विशेष वस्तु बन जाता है।

3.11—पति-पत्नी के बीच स्नेह का आश्रय होने से सन्तान को उनके अन्तःकरणों के लिए आनन्द की ग्रन्थिरेखा के रूप में कहा जाता है।

---

* निर्णयसागर प्रेस संस्करण

29— तालाब या बांध के किनारे लांघकर प्रवाह बढ़ जाने पर पानी को निकाल देना ही बचाने का उपाय है। इसी प्रकार शोक की सीमा बढ़ जाने पर हृदय की रक्षा प्रलाप आदि के द्वारा ही की जाती है।

4.11— गुण ही वास्तव में पूजा के पात्र हैं। गुणियों की आयु और लिंग को कोई नहीं पूछता।

17— बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के ही जो किसी के प्रति प्रेम होता है, उसका कोई भी प्रतिकार नहीं हो सकता। वह स्नेहात्मक सूत्र अन्दर ही अन्दर प्राणियों को प्रेम बन्धन में बांधता रहता है।

5.29—उन्मत्त और घमण्डी की वाणी को ऋषि लोग 'राक्षसी वाणी' कहते हैं। वही सब प्रकार के वैरों की जननी है और वही लोक के लिए मौत के समान है।

30—सत्य और मधुर वाणी को धीर पुरुष 'कामधेनु' मानते हैं, क्योंकि वह इच्छाओं को पूरा करती है, अशुभ लक्षणों को दूर कर देती है, कीर्ति को जन्म देती है, दुर्भावना वालों को नष्ट कर देती है, शुद्ध और शान्त है तथा मंगलों को जन्म देने वाली है।

सुबन्धु

वासवदत्ता (गद्य काव्य)*

7—अत्यन्त दोषपूर्ण कार्य के लिए दुष्ट पुरुषों की बुद्धि अत्यन्त निपुण होती है। उल्लुओं की नजर अन्धेरे में ही रूपों को पहचानने में समर्थ होती है।

12—गुणी लोग भी अपने रूप का निश्चय दूसरों के माध्यम से ही करते हैं, क्योंकि उनकी आंखों के दर्पण में ही उन्हें अपनी महिमा का दर्शन हो पाता है।

हर्ष वर्धन

नागानन्द (नाटक)×

4.7—उत्पन्न होने वाले को पहले तो अनित्यता ही सदा गोद में लेती है। धाय के रूप में 'जननी' तो बाद में उसे गोद लेती है। फिर, इसमें शोक की कहां सम्भावना है?

1.— हे मां। अपने अश्रुवेग को अब रोक लो। किसके आगे रो रही हो? वे साधुजन तो कभी के चले गए, जो अत्यधिक दयावान होने के कारण वध की याचना करने वालों की प्रार्थना को भी पूरा नहीं करते थे, जो करुणा के कारण परार्थ साधन करते हुए स्वार्थ की परवाह नहीं करते थे और जो सदा ही दूसरों के दुःख से दुःखी रहते थे।

---

* वाणीविलास प्रेस

× त्रिवेन्द्रम संस्कृत ग्रंथमाला

महेन्द्रविक्रम

भगवदज्जुकीय (नाटक)*

2.— ऐसे लोगों को निर्वाण या मोक्ष नहीं प्राप्त होता, जो अप्राप्त या भविष्य में होने वाली चीजों की प्रार्थना करते हैं, बीती बातों का शोक करते हैं और वर्तमान से असंतुष्ट रहते हैं ।

मुरारि

अनर्घराघव (नाटक)+

1. 4—न्यायमार्ग पर चलने वाले की सहायता पशु-पक्षी भी करते हैं, किन्तु अनुचित मार्ग पर बढ़ने वाले का साथ सगा भाई भी छोड़ देता है ।

6. 22/23—यह बात सच है कि दुखःहीन बनाना अत्यन्त दु:साध्य है ।

37/38—यदि मिल जाएं, तो छोटे-छोटे प्राणी भी किसी बड़े अकेले प्राणी को हरा सकते हैं ।

* अनुजन् अचन त्रिचूर 1925 संस्करण

+ निर्णयसागर संस्करण

विशाखदत्त

मुद्राराक्षस (नाटक)[×]

3.14—सर्वप्रथम तो राजा से ही डरना चाहिए। फिर राजमन्त्री से डरना चाहिए। तब उसके प्रियजन से और तब उन लोगों से भी डरना चाहिए जो उसकी कृपा के पात्र बनकर उसके महल में रहते हैं। फिर, उन लोगों की बारी आती है, जो दीनता के साथ ऊपर मुंह उठाए देख कर और दीनवचन बोल कर, भिक्षा पाने के लिए श्रम करते हैं। इसलिए विद्वान लोगों ने उचित रूप में ही अपमान कराने वाली कुत्ते जैसी वृत्ति कहा है।

16—जो सत्यवादी लोग भी बिना थके राजा के अविद्यमान गुणों का भी गान करते रहते रहते हैं और दीनता भरी वाणी का प्रयोग करते हैं, वह सब तृष्णा के प्रभाव के कारण ही होता है। अन्यथा निरीह लोगों के लिए तो राजा या ऐश्वर्यशाली व्यक्ति तिरस्कार का ही विषय ठहरता है।

5. 8—यह राजनीति ऐसी अद्भुत है कि प्रयोजन के कारण मित्रों को शत्रु, और शत्रुओं को मित्र, बना देती है। यह इसी जन्म में जन्मान्तर की स्थिति ला देती है, क्योंकि जिस प्रकार अगले जन्म में मनुष्य अपने पूर्व के किये को याद नहीं रखता, उसी तरह इसमें भी पहले की बातों को भुला कर ही आचरण करना पड़ता है।

× तैलंग संस्करण

राजशेखर

बालरामायण (नाटक)+

1. —कोई व्यक्ति किसी-किसी ही क्षेत्र में चतुर हो सकता है। सब लोग सब कुछ नहीं जानते।

2.51 —केवल लोकोत्तर चरित (कर्म) ही मनुष्य को प्रतिष्ठा प्रदान करता है। उच्चता प्राप्ति का कारण कुल नहीं होता।

4.47/48 —मधुर मनुष्य की यह (मधुर) प्रकृति ही वास्तविक आनन्द का कारण होती है अथवा आनन्द तो किसी भी प्रकार पाया ही जा सकता है।

7.16 —बड़े लोगों का गम्भीरता मिश्रित यह अजीब ही गुण है कि वे शोक की चुभन को भी सहते जाते हैं और उचित कार्य को भी निभाते चले जाते हैं।

9.21/22—परिपक्व होती हुई बुद्धि ही पुरुष को ऊंचा उठाती है, आयु की अधिकता नहीं।

विद्धशालभंजिका (नाटक)•

3.5 —जिस प्रकार मालती की माला कुचले जाने योग्य नहीं है और नया प्रेम विघ्न या व्यवधान को नहीं सह पाता, अथवा जिस प्रकार मुरझाई केसरमाला भी फेंकी नहीं जाती, उसी प्रकार किसी भी रूप में देवी का प्रणय भी खण्डित करना उचित नहीं है।

+ जीवानन्द विद्यासागर संस्करण

• जीवानन्द विद्यासागर संस्करण

त्रिविक्रम

नलचम्पू (चम्पू)*

3.14—उपकार करना, प्रिय बोलना और अकृत्रिम सहज स्नेह करना,—यह तो सज्जनों का स्वभाव ही है, वैसे ही जैसे चन्द्रमा स्वभाव से ही शीतल है।

15—साधु लोगों की वाणी चित्त के अनुरूप और क्रिया वाणी के अनुरूप होती है। उनके चित्त, वाणी और क्रिया में तालमेल या एकरूपता रहती है।

16—संपत्ति आने पर साथ ही साथ विवेक, विद्याप्राप्ति पर विनय की उपलब्धि एवं प्रभुत्व आने पर नम्रता का संयोग होना महान आत्माओं के लक्षण हैं।

महिमभट्ट

व्यक्तिविवेक (काव्यशास्त्र)+

मेरा यह प्रयास अपने जैसों के लिए ही है। जगत् में कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो सबके लिए मनोहर हो। जगत के लिए प्रकाश फैलाने वाले सूर्य के उदय होने पर भी कुछ जल जाते हैं, कुछ खिल जाते हैं और कुछ बन्द भी हो जाते हैं।

---

* निर्णयसागर संस्करण

+ त्रिवेन्द्रम ग्रंथमाला

अभिनन्द

रामचरित (काव्य)+

12.6—अशक्त या असमर्थ पुरुष के लिए यह संसार ज्वालामय ही है । शक्ति-सम्पन्न का मन तो सभी जगह प्रसन्न रहता है । डर कर भागने वाले के लिए तो कुत्ता भी दिलेर होकर जोर से भौंकने लगता है !

कृष्णमिश्र

प्रबोधचन्द्रोदय (नाटक)×

5.25—अकाल में ही आ पड़ने वाले सजल और मर्मभेदी रोग, शोक और चोट की सबसे बड़ी औषध है, उनकी चिन्ता न करना ।

श्रीहर्ष

नैषधीय चरित (महाकाव्य)•

36—जहां सज्जनोचित क्रिया का आचरण सर्वथा ही रक्षाकार्य में असमर्थ होता है, ऐसी विपद आ पड़ने पर निषिद्ध बात पर भी अमल करना पड़ता है । यदि मुख्य मार्ग अधिक पानी के कारण फिसलन भरा हो गया हो, तब किसी अवसर पर बुद्धिमान लोगों को अन्य मार्ग का भी आश्रय लेना ही पड़ता है ।

+ गायकवाड संस्करण

× निर्णयसागर संस्करण

• पूना संस्करण

125—जनता के मुख को कौन बन्द कर सकता है।

10.13 —वाम पुरुष को जाति, धन या गुण आकृष्ट नहीं कर पाते। वह केवल सौन्दर्य पर ही फिसल पड़ता है (या झुक जाता है)।

19 —कृत्रिम वस्तु स्वाभाविक से भिन्न ही रहती है।

43 —खलता की पहचान यह है कि गुण के कारण अनिन्द्य किसी मनुष्य में भी अन्य दोष निकालें।

14.9 —देवता कुछ अन्य नहीं देते; प्रसन्न होकर वे उत्तम मति प्रदान करते हैं।

83 —जिस प्रकार की लोकयात्रा को पानी वहन करता है, वैसी जीवनयात्रा अन्य महाभूत या प्राणी नहीं करते।

87 —प्रयोजन और नीति के बिना पास आये हुए धन का धीरों को तनिक भी ध्यान नहीं करना चाहिए। (अर्थात् बिना नीति और व्यवहार के पास आया धन भी उपेक्षणीय है)।

जयदेव

प्रसन्नराघव (नाटक)

2.2 —कौतुक या उत्सुकता से युक्त बात, मल रहित विद्या और हिरण की नाभि का लोकोत्तर कस्तूरीगंध—ये तीनों चीज़ें भूमि पर वैसे ही शीघ्रता से बिना किसी रुकावट के फैल जाती है जिस प्रकार पानी में पड़ी तेल की बूंद फैल जाती है।

5.49—दुरात्मा पुरुषों के लिए प्रायः संपतियाँ भी कठिनता से पार पाने लायक हो जाती है, जब कि सज्जन विपदाओं को भी सुख से पूर्ण मान कर सह लेते हैं।

वेदान्तदेशिक

संकल्पसूर्योदय (नाटक)×

1.64—मोह में पड़ा व्यक्ति दूसरों में अविद्यमान दोषों को तो पाने का यत्न करता है, जब कि वह उसमें विद्यमान गुणों को देखता तक नहीं। किन्तु अपने मामले में वह इससे विपरीत ही व्यवहार करता है। उस मोहान्ध की यही विशेषता या बड़प्पन है।

2.31—वर्तमान क्षण में तो सभी वस्तुएं नवीन ही होती है, जबकि भविष्य में वही पुरानी कहलाती है। अतः नूतन और पुरातन दोनों ही दोष या गुण से युक्त नहीं कहे जा सकते।

4.34—इस दुनिया में मनुष्य की भी अजीब हालत है। वह दुविधा में पड़कर किंकर्तव्यविमूढ़ रहता है। वह भय का अवसर आते ही ग्रन्थों का परिशीलन करने लगता है, अन्यथा सोता रहता है। कभी स्वयं को 'आत्मा' के रूप में देखता है, तो दूसरी ओर अपने देह की विधिपूर्वक देखभाल करता है। एक ओर वह दुःख समुद्र से छुटकारा चाहता है, तो दूसरी सुख में डूबना भी चाहता है। (यह है उसकी दुविधा।)

9.19—जो अपने महात्म्य को बचाए रखना चाहता है, वह सत्कार रूपी कालकूट विष से, तरुणीरुपी कुणप से, सभासमूहादि रूपी नागिन से, और राजधानी रूपी कुम्भीपाक नरक से दूर ही रहता है।

उद्दण्ड

मल्लिकामरुत (नाटक)•

10.42—सज्जनों द्वारा प्रस्तुत वास्तविक सत्कार सौहार्दशील हृदय एवं सन्तोष और मुस्कान से स्निग्ध दृष्टि के रूप में होता है अन्य सब बातें तो व्यावहारिक दिखावा मात्र हैं।

× अडयार लाइब्रेरी सं०

• जीवानन्द विद्यासागर सं०

कल्हण

राजतरङ्गिणी (इतिहास)*

1.7 —राग और द्वेष से रहित विद्वान उसी गुणवान व्यक्ति की प्रशंसा करते हैं, जिसकी विद्या या वाणी अतीत की बातों को कहने में स्थिर और समर्थ होती है।

7.789 —कामधेनु गाय के समान वाणी जिस अनर्थ या अभाव को नहीं हर लेती ? वह लक्ष्मी को धारण करती है, कीर्ति को जन्म देती है, पाप को काट डालती है, विरोधियों को भी मित्र बना देती है और सज्जनों के मनोनुकूल मार्गों पर चलती है।

795—वर्षा समीप होने पर ग्रीष्म की गर्मी और तीव्र हो उठती है। सुबह पौ फटने से पूर्व अन्धकार भी अधिक गाढ़ा हो उठता है। इसी प्रकार बलात् विभव के प्रसार और सम्पत्ति के आगमन वाले व्यक्ति से भी निकलती हुई विपदाएं, निकलते-निकलते भी, एक साथ उपद्रवों के अतिरेक से युक्त हो जाती हैं।

8.3138—शठता और मुग्धता की निधि वाले ऐसे कम ही राजा सबको आनन्दित करने वाले होते हैं, जो उस बात को कान में कहते हैं, जिसे सारे राष्ट्र में ढिंढोरा पीट कर कह दिया गया है और उस बात को नम्रतापूर्वक, झुककर और करुणा से भरकर कहते हैं, जिससे दूसरा लज्जित अनुभव करे एवं साथ ही उस बात की प्रशंसा करते हैं, जो उग्र और मर्मान्तिक रूप में न कही गई हो, फिर भले ही उसे शत्रु ने ही कहा हो।

7.985 —महान हृदय वाले लोगों के सामने अत्यन्त संकट आने पर भी उनकी बुद्धि को प्रगल्भता प्रतिभामत्ता, ओज, प्रयोगों में चतुरता और भ्रम या घबराहट न होना, आदि गुण नहीं छोड़ते।

---

* प्राकृत ग्रंथमाला सं०

986—हे राजन् । दान रूपी वृक्ष तो कल्पद्रुम से भी अधिक बढ़कर है। क्योंकि यह दान भी वृक्ष के ही समान अच्छे क्षेत्र या पात्र में बोया हुआ, प्रिय वचनरूपी आलवाल से बंधा हुआ, और निर्दोष मन की प्रसन्नता रुपी जल से सींचा हुआ दाता के मन की हर इच्छा को फल देकर पूरा करता है। इस विषय में काल भी बालक के समान सीधा और अज्ञ सा बन जाता है।

भर्तृहरि

नीतिशतक

2—कुछ न जानने वाला सरलता से समझाया जा सकता है। उससे भी अधिक सरलता से वह मनाया जा सकता है, जो बहुत कुछ जानता है किन्तु, जिसे अपने ज्ञानलेश ने घमण्डी बना दिया है, उसे ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता।

7—जब मैं बहुत थोड़ा ही जानता था, तब मैं अपने 'ज्ञान' पर हाथी की भांति मदान्ध हो उठा था। तब मैं यह समझता था कि मैं सब कुछ जानता हूँ, और मेरा मन घमण्डी हो उठा था। किन्तु, जब बुद्धिमान लोगों के पास से जानना आरम्भ किया, तब मैंने जाना कि 'मैं मूर्ख हूँ' और तब मेरा मद उसी तरह उतर गया, जैसे दवाई पाने के बाद ज्वर उतर जाता है।

12—विद्या नाम का गुप्त धन चोर की निगाहों में नहीं पड़ता, बल्कि कुछ न कुछ शान्ति ही सदा बढ़ाता रहता है। इसे जितना ही याचकों को दिया जाता है, अहर्निश उतना ही बढ़ता है। युगों के परिवर्तन से भी यह नष्ट नहीं होता। ऐसा धन जिनके पास है हे राजाओ! तुम उन लोगों को उचित आदर दो। भला उनसे होड़ कौन करता है?

15—मनुष्य की सजावट न भुजबन्धों से होती है और न चन्द्रोज्वल हारों से। न ही वह स्नान अथवा उबटन से सुन्दर बनता है, और न फूलों या संवारे बालों से ही वह शोभा पाता है। केवल वाणी ही सच्चे रूप में अलंकृत करती है, जो संस्कृत होकर ही धारण करने योग्य बनती

है। अन्य सब आभूषण तो सदा क्षीण हो जाते हैं, किन्तु निरन्तर अविकृत रहने वाला आभूषण वाणी ही है।

16—विद्या ही मनुष्य का सौन्दर्य है और वही छिपाकर सुरक्षित धन है। विद्या ही भोगों को देने वाली है, और वही यश और सुख को देने वाली है। वह गुरुओं की भी गुरु है। विदेश जाने पर वही बन्धुजन के रूप में सिद्ध होती है और वही सर्वश्रेष्ठ देवता है। राजाओं तक में विद्या की ही पूजा होती है, धन की नहीं। जिसके पास विद्या नहीं है, वह निरा पशु ही है।

17—यदि मनुष्य में सहने की क्षमता है, तब कवच के बिना भी वह सुरक्षित है। यदि वह क्रोधवान है, तब शत्रुओं के बिना भी उसकी हानि हो ही रही है। यदि उसके सम्बन्धी हैं, तो उसे जलाने के लिए आग की जरूरत नहीं। (तब उसके बिना भी वह जल ही रहा होता है।) यदि उसके मित्र हैं, तब किसी भी रोग के लिए किसी दिव्य औषध की कोई आवश्यकता नहीं। यदि कुछ दुर्जनों का संग है, तब मौत के लिए सांपों का होना ज़रूरी नहीं और यदि अनिन्दनीया विद्या अधिगत है, तब उसे अन्य किसी धन की जरूरत नहीं। यदि उसे लज्जा प्राप्त है, तो वही सबसे बड़ा आभूषण है और, यदि उसे अच्छी कविता बनाने की क्षमता प्राप्त है, तब उसके लिए राज्य का भी कोई मूल्य नहीं।

19—अकेली सत्संगति ही पुरुषों के कितने लाभ करती है। वह बुद्धि की जड़ता को कम कर देती है, वाणी में सत्य को दृढ़ करती है, मान को बढ़ाती है, पाप को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है और सब दिशाओं में कीर्ति को फैला देती है।

25—जिस प्रकार फूलों का गुच्छा या तो सबके सिर पर चढ़कर शोभित होता है, या वह वन में लगा-लगा ही मुरझा जाता है, उसी प्रकार मनस्वी भी या तो संसार में मूर्धन्य बनकर रहता है या किसी एकान्त कोने में पड़े-पड़े मर जाता है। (वह बीच की स्थिति नहीं रख सकता)।

34—धन की तीन ही गतियां होती हैं : दान, भोग या नाश। जो न उसे दान देता है और न भोगता है, उसके धन की तीसरी गति--नाश-ही होती है।

35—सान पर चढ़ी मणि, शस्त्रों से घायल समरजयी, मद से क्षीण बना नाग, सरदियों में विस्तृत पुलिनों वाली नदी, कलारूप में शेष चन्द्रमा, सुरत

के प्रसंग में मसली गई बाला स्त्री एवं याचकों को धन लुटाने वाले मनुष्य—ये सब 'पतले पड़ कर' ही सुन्दर लगते हैं।

44—जब लोभ ही सबसे बड़ा दोष है, तब अन्य दोषों से क्या प्रयोजन ? जब चुगलखोरी जैसा पाप किसी में हो, तब उसे अन्य पापों से क्या मतलब ? इसी प्रकार सत्य हो तो किसी अन्य तप से, पवित्र मन हो तो किसी अन्य तीर्थ से, सुजनता के रहते किसी अन्य बल से और महिमा हो तो अन्य सजावट से क्या अभिप्राय ? और, यदि सद्विद्या प्राप्त है तब किसी अन्य की जरूरत नहीं तथा अपयश प्राप्त होने पर भौतिक मृत्यु की आवश्यकता नहीं रहती।

47—सेवा करने वाला यदि मौन रहता है, तो उसे गूंगा समझा जाता है। यदि अच्छा प्रवचन देता हो, तो उसे वाचक या बकवासी माना जाता है। यदि वह पास रहे, तब ढीठ और दूर रहे तब चातुर्यहीन समझा जाता है। यदि वह सहिष्णु हो तो डरपोक और यदि असहिष्णु हो तो प्रायः नीचकुलोत्पन्न मान लिया जाता है। सच ही है, सेवा का कार्य अत्यन्त कठिन है। यह योगियों के लिए भी दुस्साध्य है।

48—दुष्टों और सज्जनों की मैत्री दिन के पूर्वार्ध और परार्ध की छाया के समान भिन्न होती है। क्रमशः वह आरम्भ में बढ़ी होकर क्षीण होने वाली और आरम्भ में छोटे से उत्तरोत्तर बढ़ने वाली होती है।

50—घास पर जीने वाले मृग, जल पर जीने वाली मछली और सन्तोष पर जीने वाले सज्जन लोगों के भी बिना कारण ही वैर करने वाले क्रमशः शिकारी, मछुआ और चुगलखोर बन ही जाते हैं।

51—सम्पत्ति पाकर महान् लोगों का चित्त कमल के समान कोमल हो जाता है। किन्तु, विपदा आने पर उन्हीं का चित्त बड़ी पहाड़ी चट्टानों की तरह कठोर हो जाता है।

52—सज्जन लोग प्रच्छन्न रूप में दान देते हैं, घर में आने वाले का स्वागत करते हैं, भला करके भी मौन रहते हैं, उपकृत होने पर सबके सामने बखान करते हैं, लक्ष्मी की प्राप्ति होने पर गर्व नहीं करते और दूसरों की बात चलने पर किसी का तिरस्कार नहीं करते ! उन्हें यह असिधारा पर चलने के समान कठिन व्रत किसने सिखाया है ?

64—एक ओर सत्पुरुष हैं, जो स्वार्थ को भी त्यागकर परार्थ करते हैं। दूसरी ओर, साधारण पुरुष हैं, जो स्वार्थ से टक्कर न होने पर ही दूसरों के हित के लिए उद्यमशील होते हैं। तीसरे, ये मानव देहधारी

राक्षस लोग हैं, जो अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए दूसरे के कार्य को बिगाड़ देते हैं किन्तु जो लोग परहित को बिना बात के ही बिगाड़ते फिरते हैं, उन्हें किस कोटि में माने, हम नहीं जानते।

65—सज्जन अच्छे मित्र का लक्षण यह बताते हैं कि वह पाप करने से रोकता है, हित के कार्य में लगने की वह प्रेरणा देता है, छिपाने योग्य बात को वह छिपाता है, जबकि उसके गुणों को प्रकट करता है, आपत्ति पड़ने पर छोड़ता नहीं और समय पड़ने पर वह धन भी देता है !

70—ऐसे सज्जन दुनिया में कितने हैं, जो मन, वचन और काया में पुण्य रूपी अमृत से भरे होते हैं, जो तीनों लोकों को लगातार उपकारों के द्वारा सन्तुष्ट रखते हैं और जो दूसरों के छोटे से छोटे गुण को भी नित्य राई से पहाड़ बनाकर अपने हृदय में प्रसन्न होते हैं।

72—नीच कोटि के पुरुष विघ्नों के भय से घबराकर किसी काम को आरम्भ ही नहीं करते। मध्यम कोटि के पुरुष आरम्भ करके भी विघ्नों को सह न सकने के कारण बीच में ही रुक जाते हैं। परन्तु, उत्तम कोटि के लोग विघ्नों से बार-बार रुकावटें पाकर भी एक बार आरम्भ किये हुए काम को बीच में नहीं त्यागते।

73—भले ही नीति में निपुण लोग निन्दा करें या स्तुति, भले ही लक्ष्मी इच्छानुसार आए या जाए, भले ही आज मौत हो जाए अथवा युगों बाद हो, किन्तु इन बातों से बिना प्रभावित हुए धीर पुरुष न्याय के पथ को नहीं छोड़ते।

74—सज्जन पुरुष जब यह देखते हैं कि कटने पर भी पेड़ फिर से उग आता है और क्षीण हो कर भी चन्द्रमा फिर से बढ़ जाता है, तब उन्हें इस संसार में कोई सन्ताप नहीं रहता।

75—ऐश्वर्य की शोभा सज्जनता से होती है। वाणी का संयम हो तो शौर्य अधिक उज्ज्वल लगता है। शान्ति से ज्ञान, विनय से श्रुत, सुपात्र में व्यय से दान, क्रोधहीनता से तप, क्षमा से सामर्थ्य और निश्छलता से धर्म की शोभा बढ़ती है। किन्तु, इन सब का मूल कारण और सबसे अधिक शोभा देने वाला (भूषण) शील या आचार है।

83—आर्यजन (श्रेष्ठ जन) उसी प्रकार गिरकर भी ऊपर ही उठते हैं, जैसे गेंद गिरकर भी उछलती है। किन्तु, अनार्य या दुर्जन का पतन मिट्टी के लौदे के पतन के समान होता है, (जिसमें फिर उठना नहीं होता)।

84—हाथी, सांप और पक्षी तक को बांधा जाता देखकर, चन्द्रमा और सूर्य तक का ग्रहों द्वारा पीड़न देखकर एवं बुद्धिमान् लोगों की दरिद्रता देखकर यही मानना पड़ता है कि भाग्य ही बली है ।

95—पण्डित व्यक्ति को चाहिए कि चाहे वह कोई गुणयुक्त कार्य करे या गुणहीन कार्य, आरम्भ में ही उसका परिणाम यत्नपूर्वक विचार ले । अत्यन्त शीघ्रता में किये गए कार्यों का परिणाम बहुत दुःखदायी होता है और विपत्ति पड़ने पर हृदय को पीड़ित करता है ।

शृंगारशतक

3—भवों को चतुरता से फेरने और अर्धनिमीलित नेत्रों से किये गए कटाक्ष, स्नेहमय वाणी, लज्जामिश्रित हास्य, और विलासमय मन्दगति से चलना और खड़े होना—ये सब बातें स्त्रियों के आभूषण भी हैं और हथियार भी ।

20—हरिणी सदृश चंचल नेत्रवाली स्त्रियों के एकांत में किये जाने वाले प्रणय से मधुर, प्रेम से उदार, रस के आधार, मधुर वाक्यों से युक्त, मुग्ध कर देने वाले, गुण सम्पदा को प्रकाशित करने वाले, स्वभाव से सुन्दर, विश्वास से पूर्ण, और काम को जगाने वाले स्वतन्त्र आलाप न जाने जैसे कुछ हर सा लेते हैं ।

22—जब तक हम विशालाक्षी उस स्त्री को नहीं देख लेते, तब तक देखने की कामना रहती है । देख लेने पर आलिंगन सुख की कामना चंचल कर देती है और, उसका आलिंगन कर लेने पर हम शारीरिक अभिन्न मिलन के लिए व्याकुल हो जाते हैं ।

40—लोगो । मैं सत्य कह रहा हूँ, किसी पक्षपात के कारण नहीं । यह बात सातों लोकों के लिए सत्य है कि नितम्बमयी नारियों से अधिक मन को हरने वाली कोई अन्य वस्तु नहीं होती । किन्तु, उसी से बढ़कर दुःख का कारण भी कोई अन्य नहीं है ।

42—प्रेममयी यह स्त्री भी क्या है, जिसके स्मरण से भी ताप होता है, देखने से उन्माद होता है और अगर छू लें तो मोह (मूर्छा) ही हो जाता है

65—जहां मन मिले होते हैं, वहां विरह भी संगम या मिलन बन जाता है । किन्तु, जहां मन फटे हों, वहां संगम विरह से भी अधिक दुःखदायी हो जाता है ।

70—कर्मवीरों या पुण्यवालों का भी शुद्ध विवेक रूपी दीपक तभी तक

प्रदीप्त रहता है, जब तक हरिणी जैसे नेत्रों वाली नारियों के चंचल नेत्रों के अंचल की हवा उन्हें नहीं लगी।

वैराग्यशतक

2—अनेक दुर्गम प्रदेशों वाले देशों का भी भ्रमण किया, किन्तु फल कुछ न मिला। जाति और कुल का अभिमान छोड़कर सेवावृत्ति भी की, किन्तु निष्फल। दूसरों के घरों में खाना भी खाया, किन्तु कौओं जैसी आशंका के साथ ! किन्तु इस पर भी पापकर्मों में उकसाती रहने वाली तृष्णा ! तू अब तक संतुष्ट नहीं हो रही है।

7—भोगों को भोगते-भोगते हम स्वयं ही ग्रास बन गए हैं। तप करते-करते हम स्वयं ही तप गए हैं। समय नहीं बीता, बल्कि हमीं समाप्त हो रहे हैं। इसी प्रकार तृष्णा को पूरा करते-करते वह कम नहीं पड़ी, हम जरूर जीर्ण हो गए हैं।

8—मुंह पर भी झुर्रियां पड़ गई हैं। सिर के बाल भी सफेद हो गए हैं। अंग भी शिथिल पड़ रहे हैं। किन्तु, यह तृष्णा अकेली अवश्य बढ़ती जा रही है (जवान बन रही है)।

27—दीन लोगों को यद्यपि प्रत्येक वन में इच्छापूर्वक पेड़ों से फल प्राप्त हो सकते हैं। यद्यपि उन्हें पुण्य सरिताओं का शीतल और मधुर जल भी जगह-जगह मिल सकता है और, यद्यपि वन में जहां चाहें सुकोमल लताओं के पल्लवों से स्पर्श में कोमल शैया भी वे बना सकते हैं। किन्तु, फिर भी, तब भी न जाने क्यों वे लोग धनियों के द्वार पर सन्ताप ही पाने जाते हैं।

31—दुनिया में सभी चीजें भय से युक्त हैं। भोग के समय रोग का भय लगा रहता है। कुल हो, तब पतन का भय रहता है। धन होने पर राजा का, मान प्राप्त होने पर दीनता का, बल होने पर शत्रु का और सौन्दर्य होने पर बुढ़ापे का भय सताता है। शास्त्रज्ञान होने पर प्रतिवादि से, गुण होने पर दुखों से और शरीर के लिए यम से भय बना रहता है। केवल अकेला वैराग्य ही ऐसा है, जिसे कहीं से भय नहीं रहता।

34—हे ज्ञानवान, बुद्धिमान और ज्ञान देने वाले लोगो ! यह सम्पूर्ण संसार असार ही है। इसके भोग ऊंची लहरमालाओं के समान चंचल हैं। प्राण क्षण में नष्ट हो जाने वाले हैं और प्रियाओं में यौवन सुख की उत्तेजना भी थोड़े ही दिन के लिए स्थिर रह पाती है। इसलिए आप लोग

अपने लोकानुग्रह के कारण स्निग्ध मन से प्रयत्नपूर्वक ध्यान लगाने का उपक्रम करें ।

38—बाघ के समान डराता हुआ बुढ़ापा उपस्थित रहता है । रोग भी शत्रुओं के समान शरीर पर आक्रमण करते रहते हैं । टूटे घड़े में से जल की भांति यह आयु भी रिस-रिस कर कम होती जाती है । इस सब पर भी यह आश्चर्य की ही बात है कि लोग अहितकारी बातों का आचरण करते ही जाते हैं ।

49- पहले तो मनुष्य की आयु है ही सौ वर्ष तक सीमित । फिर, उसमें से भी आधी रातों में बीत जाती है । शेष आधे में से भी आधा बाल्यकाल और वृद्धावस्था में बीत जाता है । जो शेष बचता है, उसमें भी व्याधि, वियोग और द ुःख को सहते हुए भी सेवा आदि करके बिता देना पड़ता है । पता नहीं इस पर भी क्यों जलतरंग के समान चंचल इस जीव में इतना प्रेम रखते हैं ।

50—कुछ देर के लिए बालक रहकर, फिर कुछ देर कामुक और रसभोगी युवा रहकर, कभी धनहीन बन कर, तो कभी ऐश्वर्यों से भरपूर होकर, अपनी संसार यात्रा के अन्त में जरा से जीर्ण अंगों और झुर्रियों से व्याप्त शरीर को लेकर मनुष्य यम की राजधानी रूपी पर्दे के पीछे छिप जाता है, मानों वह भी कोई नट हो, जो अनेक रूप धर कर अन्त में पर्दे में ही छिप जाता है ।

53—हम यहां वल्कलों में ही सन्तुष्ट हैं और तुम वहां रेशमी दुपट्टों में । सन्तोष दोनों को समान ही है । अन्तर कुछ खास नहीं है । दरिद्र तो वह है, जिसकी तृष्णा विशाल है । जब मन सन्तुष्ट हो, तब दरिद्र होने या धनी होने से कोई अन्तर नहीं पड़ता । (वास्तविक धन तो सन्तोष है) ।

अमरुक

अमरुकशतक×

18—चतुरा नायिका ने किसी न किसी बहाने से अपने प्रिय के प्रति कोप को प्रकट कर ही दिया। एक ही आसन पर बैठने की बात उसने दूर ही बैठ कर बचा ली। चुम्बन की बात को वह शीघ्रता में पान लाने के बहाने से टाल गई। और आसपास परिजनों को बिठाकर उसने आपसी बातचीत का अवसर भी टाल दिया। (इस प्रकार उसका कोप स्पष्ट हो गया)।

28—हे मानिनि ! उस दुष्ट मनुष्य के प्रति तुम अपने मान का निर्वाह कैसे करोगी ? जब तुम भंवों को चढ़ाकर दिखाना चाहती हो, तब भी तुम्हारी चाह अधिकाधिक रूप में तुम्हारी दृष्टि से झलक ही जाती है। वाणी रोकने पर भी तुम्हारी कोप से दुग्ध मुख अचानक मुसका पड़ता है। चित्त कर्कश बना लेने पर भी तुम्हारा शरीर रोमांचित हो रहा है (अतः मान छोड़ दो)।

57—'हे बाले।,' 'हाँ नाथ।,' 'मानिनि ! रोष को त्याग दो।' 'मैंने रोष करके ही क्या कर लिया ? 'क्या हम पर खिन्नता है ?' 'नहीं; सारे अपराध तो मुझ में ही हैं।' 'तब फिर भरी आवाज में रोती क्यों हो ?' 'रोया किसके सामने जा रहा है ?' 'यह मेरे सामने ही तो।' 'मैं तुम्हारी क्या लगती हूं ?' 'प्रेमिका !' 'यही तो नहीं हूँ। इसीलिए रो भी रही हूं।'

70—'मुग्धे। तुम मुग्धावस्था में ही अपनी सारी आयु क्यों बिता डालना चाहती हो ? अब तुम मान भी धारण किया करो, धैर्य रखना आरम्भ करो, और सरल तरीके (सीधापन) छोड़ दो !' सखी के द्वारा इस प्रकार समझाए जाने पर भयपूर्ण मुखवाली वह मुग्धा नायिका उत्तर में बोली, 'जरा धीरे बोलो ! कहीं मेरे हृदय में बैठे प्राणेश्वर न सुन लें।

× निर्णयसागर सं०

(क) कुछ कवयित्रियां*

विज्जका

1.—यह दुष्ट भाग्य न जाने हमें क्या दिखा कर रहेगा ? यह चतुर कुम्हार की भांति हमारे मन को प्रियजनों अथवा सखियों आदि की विपत्ति रूपी दण्ड के एक भाग के पुनः-पुनः स्पर्श से चलने वाले चिन्ता के चक पर चढ़ा कर मिट्टी के बलात् बनाए लोंदे की तरह अपने हाथों से घुमा रहा है। (अर्थात्, जैसे कुम्हार मिट्टी के लोंदे को चक्के पर चढ़ा कर डण्डे से घुमाता है, उसी तरह यह भाग्य भी मेरे मन को चिन्ता में फँसा कर विपत्तियों द्वारा भ्रांत किये हुए है।)

2.—प्रेम का वह बन्धन टूट चुका है। हृदय का वह अत्यधिक सम्मान भी गल चुका है। सद्भाव तक मिटने के बाद प्रियजन के सामने से जड़ के समान गुजर जाते हैं। इस सब को देखकर और पिछले (स्नेहपूर्ण) दिनों को यादकर के भी, न जाने वह क्या बात है कि यह हृदय अब भी शतशः टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाता।

मारुला

1.—'तुम पतली क्यों हो ?' 'मेरे अंगों का स्वभाव ही यह है।' 'धुएं के समान मैली क्यों हो ?' 'बजर्गों के घर में खाना पकाने से।' 'कुछ हमें भी याद करती हो ?' 'नहीं, नहीं, नहीं !!!'—और यह कहते ही कहते बाला को कामजन्य कंपकंपी हो आई और वह मेरी छाती पर गिरकर रोने लग गई !

सुभद्रा

पहले तो दुह कर निकाला, फिर उसे उबाला, फिर (खट्टा लगा करके) दही के रूप में उसका माधुर्य कम किया, तब उसे वेग पूर्वक मथा,

---

* निर्णयसागर प्रेस संकलन

फिर उसे घी बनाने के लिए मक्खन के रूप में निकालना पड़ा। स्पष्ट ही है कि स्नेह के कारण अनर्थों की लड़ी सी लग जाती है।

लक्ष्मी

वन प्रांत में मंडराते हुए भंवर ने नवविकसित मंजरियों के बीच में गन्धफनी को नहीं सूंघा क्या वह रमण-योग्य, और भंवरा रमण करने वाला, नहीं थे? (प्रेम के इस व्यापार में भी) केवल ईश्वरच्छा ही बलवान् ठहरती है।

विकटनितम्बा

अरी विशाल जांघों वाली बाले! तू इस घनी अर्धरात्रि में कहां चली? 'जहां मेरे प्राणों का स्वामी और मन का प्यारा बसता है।' 'एकाकिनी जाते तुझे डर क्यों नहीं लगता?' 'अरी! कामदेव जो कुसुमबाण हाथ में लिए मेरे साथ सहायता के लिए हैं।'

मोरिका

यदि कहूं कि 'जाता हूं', तो यह मेरे पैर ही बांध लेगी। यदि मैं उसे 'प्राणसभा' कहूं, तो यह मुझ निर्दय के लिए उचित नहीं। तब भी उसका नाम ले ही दिया। ऐसा करते ही प्रिया का मुख बहते आंसुओं से भर गया। किन्तु, ऐसे मुख को देखकर भी मुझ से जो लोग थोड़े से धन लाभ की भावना से परदेस चले जाते हैं, यह शोकास्पद ही है।

शीलाभट्टारिका

हे नाथ! विरह के कारण बिगड़ा हुआ 'काम' शरीर को कमजोर करता जा रहा है। दिनों को गिनने में चतुर यह यम भी अब दयारहित हो गया है। इस पर तुम भी मान करके बैठ गए हो। अब तुम ही सोचो, हे नाथ! कि किसलय के समान कोमल यह स्त्री जिए कैसे?'

कुछ अन्योक्तियाँ

भल्लट--

श्लोक 21—नाचने वाले मोर और मनोहर काव्यों का पाठ करने वाले शुक अब वैसा करते नहीं दिखाई देते। बल्कि वैसा करने से अब रोके ही जाते हैं। इष्टलाभ कहने के बहाने से जब से इसने वारविलासिनी के घर में प्रवेश पा लिया है, तब से वहीं पर कौए के समान दूसरों के टुकड़ों पर पलने वाले इसने वहीं बिना किसी रोक टोक के हर प्रकार का स्वाद चखना आरम्भ कर दिया है।

32—हे खदिर वृक्ष! हम चन्दन पर विषधर सर्पों को भी सह लेते हैं, क्योंकि सुन्दर वस्तु अरक्षित हो ही नहीं सकती। किन्तु, यह बताओ, क्या तुमने भी अपने गौरव के रक्षार्थ ही ये कांटे बटोरे हैं?

39—हे वृक्ष! तू इस चौराहे पर क्यों पैदा हुआ है? और, तेरे घना छायादार होने का भी क्या लाभ? अकेली छाया किस काम की? यह ठीक है कि तुम फलयुक्त हो। परन्तु फलों की इस समृद्धि से लद कर भी क्या तुम झुक पाए? यदि 'नहीं', तो, हे अच्छे वृक्ष! अब लोगों द्वारा शाखाओं की इस खींचातानी और तोड़-फोड़ या मरोड़ने को चुपचाप सह ले। क्योंकि यह सब तेरी ही, 'न झुकने आदि' कुचेष्टाओं का परिणाम है। (अर्थात् सम्पदा में भी न झुकने का परिणाम है।)

60—जो जन्म से ही लघु हैं और सदा ही और सर्वत्र ही किसी भी गिनती में नहीं माने गए, बल्कि प्रतिदिन पांवों से कुचले जाकर जो बहुत समय से भूमि में ही छिपे रहे हैं, वे ही धूलिकण अब चंचल स्वभाव मारुत द्वारा अन्तरिक्ष में ऊपर की ओर फेंके जाकर, देखो! ऊंचे से ऊंचे पर्वतों के शिखरों के ऊपर अपनी जगह बना रहे हैं।

69—पक्षियों को बुलाने पर यदि उनके सामने उड़ता हुआ मच्छर आ जाए, तब उसे आने से मना नहीं किया जाता। एक स्थान पर मणियों के आगे या पीछे रखी तृणमणि भी उनकी ही कान्ति को पा लेती है। तेजस्वी द्रव्यों या जीवों के बीच में चलता हुआ जुगनू भी घबराता

नहीं। किन्तु, धिक्कार है उस महत्वहीन या सामान्य और जड़वत् प्रभु पर, जिसको चैतन्य छू भी नहीं गया है। (अर्थात्, जो अपनी स्थिति को बदलना ही नहीं चाहता।)

87—वायु पर ही पलने वाले सांपों ने संसार को (विष भक्षण करके) आश्वासन दे दिया है और निश्चिन्त कर दिया है। किन्तु, उन सांपों को भी वे मोर खा जाते हैं, जिसका आधार केवल बादल से प्राप्त जलकणों पर ही है, मानों उसका वही व्रत हो। किन्तु उन्हें भी तो उनके पंखों और चर्म के लोभी शिकारी नष्ट कर देते हैं। यह सब दम्भ के ही कारण होता है। दम्भ के इस कुपरिणाम को जानकर भी लोग मूर्खों की भांति गुणों या महत्वों की कामना करते हैं। यह आश्चर्य ही की बात है।

94—कमलिनी के पत्ते पर गिरे हुए जल का कण आखिर हंस के मुंह से कितनी दूर है ? फिर भी जो व्यक्ति किसी की भी बात को न मानता हुआ जल कण को मोती का दाना मानता रहा, वह जड़ ही तो है। उंगली के अग्र भाग के छूने मात्र से भी गल जाने वाले उस जलकण को लेकर हंस के उड़ जाने पर मेरा मन इसी शोक में डूबा हुआ है (कि वह मोती लुट गया) और वह निद्रा भी कर पा रहा है। (यहां जलकण से 'जीवन' और 'हंस' से 'आत्मा' का अर्थ है।)

—**भल्लटशतक**×

मुरारि—

सारे कष्ट कोई सहता है और फल किसी अन्य को मिलता है। बिंधने की पीड़ा पर्याप्त कष्ट कारक है। ढोने का कष्ट भी कम नहीं है। ये दोनों काम तो करने पड़ते हैं 'कान' को। किन्तु जिस कुण्डल के लिए यह सब किया, वह कुण्डल शोभा कारक बनता है कपोल का।

गवयी और धोयी—

स्थानभ्रष्ट होकर भी, पंखे और छातों के रूप में बदल कर भी, मयूर पंखों ने दूसरों के ताप का भी निवारण किया है।

अज्ञात—

1—कभी आरम्भिक अवस्था में थोड़े से पीये हुए पानी को भी स्मरण करने वाले नारियल के फल लोगों के सिर पर भारों के रूप में लदकर

× काव्य माला गुच्छक

भी अपने जीवन भार लोगों को अमृततुल्य पानी देते हैं। (अर्थात् स्वयं फटकर भी अन्यों को पानी देते हैं।) सच है कि साधुलोग अपने प्रति किये गए उपकार को नहीं भूल पाते।

2—चाहे कोई नीम को कुल्हाड़े से काटे, चाहे उसे मधु और घी से सींचे या फिर चाहे उसे सुगन्ध द्रव्यों या माला आदि से पूजे, वह सबके लिए सदा कड़वा ही रहता है।

3—हे आम के पेड़! तुम्हारे फल भी स्वादु हैं और पुष्प भी सुगन्धित हैं। यहां तक कि तुम्हारे पत्ते भी सब उत्सवों के आरम्भ में मंगलकारी माने गए हैं। किन्तु, गर्मी से सूखे मुख लिए जब तेजी से भागकर तुम्हारी शरण में, तुम्हारी छाया के नीचे, पथिक लोग आराम करने के लिए आते हैं, तब उन्हें लाल चींटियां प्रतिक्षण काटने लगती हैं। यह कितनी दारुण बात है।

4—जिस सूर्य के लिए कमलों का प्रेम अत्यन्त दृढ़ है, जिससे उदय होते ही चक्रवाकसमूह भी महान आनन्द को प्राप्त होता है और जिसके कारण दिशाएं भी विकसित होती हैं, यदि विश्व को विकास और तेज देने वाले उसी सूर्य के उदय होने पर उल्लू प्रसन्न नहीं होता, तब इससे उसकी क्या हानि होती है? हां, उल्लू अवश्य उपहास का पात्र बन जाता है।

5—हे जलघट! मेरी समझ में तो इस धरती पर तुम अकेले ही धन्य हो, जो स्वयं अपने में फांसी लटका कर भी अन्य सबको जीवनपान (जलदान) के द्वारा सन्तुष्ट करते हो।

—**संग्रह श्लोक**

नीलकण्ठदीक्षित—

1—राह में चलते हुए श्रान्त पथिक साथ ही साथ एक ही छायावृक्ष की शरण में आते हैं, (किन्तु उसके प्रति उनके भाव भिन्न होते हैं)। उनमें से एक तो शुभ मन के द्वारा (उसके छायादान से) प्रसन्न होता हुआ उसका ही स्मरण करता है। दूसरा अपनी छड़ी बनाने के लिए उसकी ही शाखाओं को तोड़ने की इच्छा करता है। जब कि तीसरा अपने घर के किवाड़ बनाने के लिए उस सारे वृक्ष को ही काट डालने का निश्चय कर लेता है।

7—जिससे किसी प्रत्युपकार की आशा नहीं और जिससे अपने लिए किसी प्रकार की प्रार्थना की भी परवाह नहीं, उस भूमि को भी बादल अपने जलदान से गीला करते हैं। उससे ही तो जीवों को जीवन मिलता है। किन्तु, एक यह ज्योतिषि भी है, जो 'वर्षा होगी' ऐसा

एक वाक्य मात्र कहकर ही यह समझता है कि क्योंकि वर्षा होने की बात उसने कही थी, इसलिए मानो उसने सारा संसार ही खरीद लिया है। बस यही बात मर्मान्तिक पीड़ा देती है।

12—अरे मित्र कौए! कितना समय इसी तरह भटकते हुए बिता डालोगे? हंस बनकर सुख से इस तालाब के कमल नालों को खाओ। यहां कोई भी चीज बदलने की जरूरत नहीं है। हां, शरीर की कुछ शुद्धि तो करनी ही चाहिए। मैं किसी भी दण्ड को सहने को तैयार हूं, यदि लोग हंस बनने के विषय में किसी भी प्रकार की निन्दा या विवाद करेंगे। (हंस बनने में क्या दोष; पर योग्यता भी तो हो।)

13—हे धत्तूर। मैं जानता हूं कि न तुम दोहद की कामना करते हो, न तुम्हें जल से सींचा गया, न ही तुमने किसी के द्वारा थांवला बनाए जाने की प्रतीक्षा की और न तुम्हारे लिए भूमि ही तैयार की गई। इस पर भी तुम दो ही तीन दिन में पुष्ट होने लगे। मैं तुम्हारे इन गुणों को छिपाना नहीं चाहता। काश! तुम्हारे में यह दुर्गन्ध इतनी न होती, तब तुम हमारे लिए पराजित ही होते।

(ग) कुछ विशेष

1. प्रेम

मायुराज—

उसके मुखरूपी चन्द्र को देखते-देखते दिन बिता डाला और सन्ध्या भी। उससे बातें करते हुए और काम द्वारा उत्तेजित उसके शरीर के अर्पणादि में ही सारी रात भी बिता डाली। अब भी तो मैं उसी को देखने जा रहा हूं और वह मेरे लिए राह में नयन बिछाए बैठी होगी। न जाने फिर भी यह मन अब उत्कण्ठित ही नहीं हो रहा ? कहीं ऐसा तो नहीं कि पूरा आह्लाद पा लेने के बाद मेरा प्रेम ही रीता हो गया है ?"

—**तापसवत्सराज**×

राजशेखर—

जिस स्वादु वस्तुओं में अग्रगण्य (प्रेम) के लिए आपस में (दम्पती) रूप सौन्दर्य को व्यर्थ ही फैलाते हैं। कामदेव के उस एकमात्र मित्र प्रेम का भला हो। उसकी कृपा से ही दोनों पति-पत्नी में, न चाही गई प्रियसखी के रूप में कही गई विचित्र उक्तियां, घण्टों बीत जाने पर भी कोप और प्रमाद का कारण बनती रहती हैं।

—**बालरामायण**

भोजराज—

जो प्रेमी यह सोचता है कि, 'मेरी प्रिया वही कुछ करती है, जो-जो मुझे पसन्द है', वह नहीं जानता कि बात उलटी ही है अर्थात् जो कुछ भी प्रिया करती है, उसे स्वयं वह सभी कुछ प्रिय लगने लगता है।

—**श्रृंगारप्रकाश**

रुद्र—

सखि ! मुझे तो न कपड़े सुन्दर लगते हैं और न उज्ज्वल ग्रीवाहारों में ही मेरी रुचि है। मेरी चाल भी टेढ़ी नहीं है, न मेरा हंसना ही शरारत से भरा है। न ही मुझे कोई मस्ती चढ़ी हुई है। फिर भी जब मैं दुनिया को कहते सुनती हूं कि, 'इसका पति बड़ा अच्छा है कि जो इधर-उधर निगाह नहीं दौड़ाता', तब समझने लगती हूं कि यह विश्व बड़ा ही दुःखदायी है। (या, इस में रहना कठिन है)।

× बंगलौर, 1929 संस्करण

3.15.31 प्रिय के उद्विग्न होने पर उद्विग्न होकर, उसकी प्रसन्नता में प्रसन्न होकर और उसके व्याकुल होने पर व्याकुल होकर प्रेमिका केवल प्रतिबिम्ब के समान ही आचरण करती है। किन्तु, जब प्रेमी क्रोध करता है, तब वह उल्टा उससे डरने लगती है।

—**योगवासिष्ठ**+

प्रज्ञानन्द—

1—योगी और भोगी के लिए क्रमशः वही ध्यान और प्रेम सम्पूर्ण दुःखों को दूर करने वाला होता है, जिसमें उपचार (पूजा या व्यावहारिक कर्तव्य) और विचार (चिन्तन या कर्तव्याकर्तव्य) के लिए अवकाश की संभावना नहीं होती।

2—उसे बिना देखे देखने की चाह बलवान रहती है और देख लेने पर जुदाई का डर सताने लगता है। सच तो यह है कि आपको न उसके देखने में सुख मिल पाता है और न बिना देखे।

3—हे प्रिये ! तुम ही मुझे स्मरण कर लिया करना। मैं तो तुम्हें नहीं कर पाऊंगा। कारण यह कि जिस हृदय से मैं तुम्हें स्मरण कर पाता, वह तो तुमने पहले ही हर लिया है।

एक दाक्षिणात्य कवि—

1—हे नाथ ! तुम जा रहे हो। इस अवसर तुम्हें क्या कहूं ? यदि कहती हूँ 'मत जाओ', तो अमंगल होता है, यदि कहूं 'जाओ', तब यह वचन स्नेह से रीता माना जाएगा। अगर कहूं 'ठहरो', तो इससे प्रभुता का भाव झलकता है। अगर कह दूँ कि 'अपनी इच्छा के अनुसार करो', तब यह मेरी उदासीनता समझी जाएगी। यदि कहती हूं कि 'तेरे बिना जीती न रहूंगी', तो नहीं जानती कि तुम इस पर विश्वास करोगे या नहीं ? इसलिए, आप ही सिखा दो कि मुझे इस अवसर पर क्या कहना चाहिए !

2—कदाचित् वह दिन ही अच्छा था, यह रात नहीं अथवा यह रात ही अच्छी है, दिन नहीं। या, फिर ये दोनों ही नष्ट हो जाएँ, जिनके रहते प्रिय से समागम ही नहीं हो पाया।

+ निर्णयसागर संस्करण

3—सचमुच मैं सौभाग्यशाली हूँ ! मैं स्वयं अपने को ही प्रणाम करता हूँ । क्योंकि आज मुझे डरे हुए हिरण की सी चंचल और बड़ी आँखोंवाली इस बाला ने जो देख लिया है ।

4—सब प्राणी तो संयोग ही चाहते हैं, किन्तु मुझे वियोग की ही कामना है । कारण यह है कि संगम होने पर (संयोग में) केवल अकेली बाला ही मिल पाती है, किन्तु वियोग में सारा संसार ही बाला के रूप में दिखाई देता है ।

5—जिसने भी उसे देख लिया और जिसने नहीं भी देखा, वे दोनों ही एक-साथ ठगे गए । क्योंकि देखने वालों का हृदय उसने लूट लिया और न देखने वालों की आँखों से उनके जीवन का सार छीन लिया (मानो इस रूप को न देखने से वे व्यर्थ हो गईं) ।

6—जो मेरे दुःखी होने पर दुःखी होती है और मेरे प्रसन्न होने पर फूली नहीं समाती । मेरी दीनता के अवसर पर जो स्वयं दीन हो उठती है और क्रोध से भड़कने पर जो हितकारी वचन बोलती है । जिसे उचित अवसर की पहचान है । जो चतुरता से भरी बातें करती है और, मेरी स्तुति सुनकर अनुराग में भर उठती है । ऐसी मेरी पत्नी अकेली होकर भी मेरे लिए मन्त्रिश्रेष्ठ, मित्र, सम्बन्धी, आदि अनेक रूपों में अनेक हो उठी है ।

7—'वह स्त्री है', यह सुनते ही मेरा धैर्य जाता रहा है । जब से यह सुना है कि 'वह सुन्दरी है', तब से तो अपनी दशा ही अवर्ण्य हो उठी है । 'वह सहृदय भी है', यह बात और भी कष्टकारी हो गई है । अगर कहीं वह 'सस्पृह भी है', तब तो मेरे लिए वह स्थिति अत्यन्त असह्य हो उठेगी ।

8—जिसमें बड़े-छोटे का ध्यान बच रहे, जिसमें मित्रों को कोई कसर दिखाई दे, जो उदारता के कारण, भय के कारण या अचानक ही सुरतिसुख के बहाने से उत्पन्न हुआ है, अथवा जिसे लज्जा रोकने में समर्थ होती है, या फिर जिसमें कसमें देकर विश्वास उत्पन्न करना पड़ता है, वह 'प्रेम' नहीं है, उसे तो 'परिचय' कहना चाहिए और, अगर इस सबसे बढ़कर कहीं उसमें 'कोप' की भी सत्ता मौजूद है, तब तो उसे 'परिचय' भी नहीं कहा जा सकता ।

9—प्रिये ! तुम बहुत लम्बी प्रतीक्षा के बाद फिर से मिली हो । समझ नहीं आता कि क्या करूँ ? तुम्हारे अंगों में मिलकर समा जाऊं ? या फिर, तुम्हें ही निगलकर समेट लूं ?

10—प्रेम की प्रक्रिया बड़ी ही विचित्र है। इसमें स्तोत्र का अर्थ है, अपनी तटस्थता दिखाते हुए भी चित्त की व्यथा को प्रकट करना। इसमें की गई निन्दा परिकास के सौंदर्य को धारण करती हुई भी मस्ती प्रदान करती है। इसकी प्रवृत्ति न दोषों को देखकर क्षीण होती है, न ही प्रेमी के गुणों के कारण यह बढ़ती ही है। अपने प्रति रुचि न लेने वाले प्रेम की यह प्रक्रिया किसी विशेष में कदाचित् दूसरे ढंग से कार्य करती होगी। (अन्यथा, प्रेम का यही रूप अनिर्वच और वास्तविक है।)

11—मैं यहां बसते हुए भी तुम्हारा ही हूं और, तुम यहां बसकर भी मेरी ही हो। केवल शारीरिक मिलन ही तो वास्तविक मिलन नहीं है, वास्तविक मिलन है हृदयों का संगम।

12—उस प्रेम की वाणी से चर्चा करके मैं उसे हलका कैसे बना दूं, जिसने अपने प्रथम आविर्भाव के दिन ही स्वल्पतम हेतु की भी परवाह या प्रतीक्षा नहीं की, जो अपराध करने पर घटता नहीं है, ना ही झुकने से वह बढ़ता ही है। अमृत के प्रतिद्वन्द्वी और तीनों लोकों के दुःख से द्रोह करने वाले उस प्रेमरूपी गुरु के विषय में वाणी के द्वारा अब मैं कुछ भी कैसे कहूं ?

26—हम नित्य ही गणेश की स्तुति करते हैं, किन्तु उसी के वाहन सैंकड़ों चूहों को मारते भी हैं। हम हृदय में भैरव का ध्यान करते हैं, किन्तु उसके वाहन कुत्ते को खदेड़ते रहते हैं। इसी प्रकार हम भूतनाथ (शिव) को प्रणाम करते हैं, किन्तु भूतों को सैंकड़ों की संख्या में पकड़ते रहते हैं। सच तो यह है कि किसी एक के गुण किसी अन्य के दोषों को ढकने में समर्थ नहीं हो सकते।

—अन्यापदेशशतक[×]

[×] वाणीविलास संस्करण

२. शैशव

भट्ट उत्कट—

"तुम्हारे पिता आ गए" अपनी माता के कहे इन शब्दों को सुनते ही उसी क्षण धूलि से धूसरित शिशु अपने साथी शिशुओं के साथ क्रीड़ा के आनन्द को भी छोड़कर दूर से ही मुस्कराता हुआ और दोनों बांहें फैलाता हुआ, किसी धन्य भाग्य के ही सम्मुख परम प्रीति से घर्घर शब्द को करता हुआ दौड़ता हुआ आता है।

भट्ट अर्दन—

दो-तीन कदम रखने में ही डगमगा कर धाय के हाथ का फिर से सहारा लेनेवाले तथा कुछ ही देर में फिर से अपने चिर अभ्यस्त घुटनों के बल रेंगने को अपनाकर निश्चिन्त हो जाने वाले एवं नए निकलते दांतों रूपी कलियों वाले मुख से कुछ अस्पष्ट सी वाणी बोलने वाले अपने बेटे को देखकर हृदय में जो सुख मिलता है, हे मित्र ! उसे शब्दों द्वारा वर्णन करना मेरे बस में नहीं !

३. मैत्री

अभिनन्द—

जहाँ व्यवहार करते समय कष्ट या यन्त्रणा प्रतीत होती हो और प्रणय की अधिकता जानकर जहाँ प्रसन्नता न होती हो, एवं जहाँ एक-दूसरे के प्रति शंका और भय बने रहें, उस प्रकार की 'मित्रता' या 'सौहृद' को दूर से ही प्रणाम है ! (अर्थात् वह त्याज्य है)।

अश्वघोष—

ऐसे साधु लोग सदा ही प्रशंसा योग्य हैं, जिन्होंने ईर्ष्या को जीत लिया है, परहित के लिए जो सदा उद्यत रहते हैं, दूसरों की उन्नति सुनकर भी जिनको बुरा नहीं लगता, हाँ, दूसरे की विपत्ति सुनकर जिनका चित्त अवश्य व्याकुल हो उठता है, जिनको केवल महान पुरुषों की कथा के श्रवण में ही उत्सुकता रहती है और जो समस्त दुष्कर्मों रूपी समुद्र के पार जाने के लिए पुल के समान आचरण करते हैं !

दण्डी—

मेरे मन को आनन्द देने वाले हैं ये वन, न कि वे नदियाँ, ये नदियाँ, न कि स्त्रियाँ; और ये हरिण, न कि सम्बन्धी !

1. इस प्रीति की बेल को हृदय के आलवाल में स्नेह वाक्यों रूपी अमृत

की धाराओं से नित्य ही मित्रता की भावना से सींचना चाहिए। इसी तरह यह धीरे-धीरे बढ़ती जाती है।

2. कष्ट पाता हुआ भी भंवरा केवड़े के फूल पर ही आसक्ति रखता है। सच है कि जिसका हृदय जिस किसी के गुणों से आकृष्ट हो चुका है, उसके दोषों से भी कोई विकार उसमें नहीं आता !

3. दुःखों का जन्म स्नेह से होता है। मानसिक बीमारियाँ रसों या आनन्द भोगों से उत्पन्न होती हैं। पापों का जन्म लोभ के मूल से होता है। इसलिए इन तीनों—स्नेह, रस और लोभ—को ही त्याग देना चाहिए !

4. विद्वानों के मुख रूपी कमल से निकलती वाणी किसे आह्लाद नहीं देती ? आरम्भ में वह कानों को सुन्दर प्रतीत होती है। परिणाम में वह जनों द्वारा सुपाच्य और हितकारी सिद्ध होती है। उसका प्रत्येक अक्षर अनेक शास्त्रों के प्रसन्नता देने वाले और माधुर्य जगाने वाले वचनों रूपी रसों से धोया हुआ है। उनके ऐसे वचन चित्तों को अन्दर ही अन्दर आनन्दमय और विकसित करते हुए खिलते कमल की सुगन्ध जैसी प्रसन्नता से संयुक्त होते हैं। उन्हें सुनकर कौन आह्लादित न होता होगा।

गद्य काव्य :

बाण

१. कादम्बरी : चन्द्रापीडजन्म

1. (उस भवन में शयनतल पर बैठी विलासवती को उसने देखा)।

और, हर प्रकार के सुरक्षात्मक उपायों से युक्त, जलते हुए मंगलदीपों वाले, मरे हुए घड़ों से युक्त खण्डों वाले, नए बनाए मंगलचित्रों से युक्त भित्तियों और गलिहारों वाले, श्वेतमण्डप जड़े, वितान के चारों ओर लटकती मोती मालाओं से युक्त (उस भवन में) राख से बनाई पत्तों वाली बेल से (अमंगलों से) रक्षा के लिए घिरे हुए, नींद के लिए सिरहाने रखे श्वेत मंगलकलश से युक्त, विविध औषधियों और मूलयन्त्रों आदि को बाँधकर पवित्र बनाए गए, चारों ओर खींचे रक्षणात्मक घेरे से युक्त, इधर-उधर बिखेरी सफेद सरसों वाले, बालों को सूत्र बनाकर जोड़े गए लटकते पिप्पलपत्रों वाले, हरे नीम के पत्तों से बंधे जिसके नीचे ऊँची चौकी भी पड़ी थी और जिस पर चाँदनी सी सफेद चादर बिछी थी, (ऐसे पलँग पर सोती हुई रानी को उसने) सुवर्ण पात्रों में लिए हुए अविरल रूप से स्थित, दधिकणों जैसे जलतरंग के समान चंचल श्वेत खीलों सहित बिना गूंथे फूलों से शोभित भरे पात्रों के द्वारा, अखण्डित मुख वाली मछलियों से, ताज़े पिसे मांस पिण्डों से, निरन्तर बहती जलधारा के साथ-साथ रखे और लाल चँदोवे के नीचे जलाए, कर्पूरदीपों के साथ, गोरोचन मिले श्वेत-सरसों के बीजों के साथ और जलांजलि आदि के द्वारा जहाँ मंगलाचार में कुशल अन्तःपुर की बूढ़ी स्त्रियों द्वारा जिसको मंगल क्रिया या आरती आदि उतारी जा रही है (ऐसी विलासवती को देखा)।

2. इस प्रकार धीरे-धीरे दोहद की ईप्सित इच्छाओं की पूर्णता के कारण प्रसन्न विलासवती ने प्रसव-समय पूरा होने पर एक शुभ दिन, नाडिका यन्त्र को

देखकर कालगणना में रत बाहर ही बैठे हुए ज्योतिषियों द्वारा बताए शुभ मुहूर्त में, प्रशस्त वेला में समल जनों के हृदयों को आनन्दित करने वाले पुत्र को उसी तरह जन्म दिया, जिस तरह मेघमाला अपने भीतर से सकल लोकप्रकाशक बिजली को जन्म देती है।

उस पुत्र के पैदा होने पर राजकुल में भाग्योदय की सूचक हलचल खूब होने लगी। तेज़ी से इधर-उधर भागते हुए परिजनों के कदमों के पड़ने से भूमि हिलने लगी थी। सैंकड़ों-हजारों कंचुकी लोग राजा की ओर लड़खड़ाते से भाग रहे थे। भीड़ की रगड़ से कुबड़े, बौने और किरात आदि पीसे जा रहे थे। अन्तःपुर के लोगों के आभरणों की झंकार बढ़ती ही जा रही थी और वातावरण को सुन्दर बना रही थी। पूर्णपात्र के लेने के लिए वहाँ वस्त्र और आभरण खींचे जा रहे थे। इस समारोह में जैसे सारा नगर ही चलायमान हो उठा था।

पुत्र का मुख देखने के लिए लालायित होने पर भी दिन का समय होने के कारण राजा ने ज्योतिषियों द्वारा बताए विशिष्ट मुहूर्त में सब सम्बन्धियों को पीछे छोड़ते हुए केवल शुकनाथ के साथ ही नंगी तलवार लिए रक्षा पुरुषों से घिरे सूतिकागृह को देखा ! उस का दरवाजा मणिमय मंगल कलशों से युक्त था। सजावट के लिए उस पर पुतलियाँ आदि बना रखी थीं। अनेक प्रकार के नये पत्तों के गुच्छे वहाँ लटक रहे थे। उसके समीप ही सोने के बने हल और मूसल पड़े थे। उस पर कुछ-कुछ दूरी पर गुंथे सफेद फूलों सहित दूर्वा और मूंगों की माला लटक रही थी। पास ही सागर्वपूर्ण बाघखाल लटक रही थी। वन्दनमालाओं के बीच-बीच घण्टियाँ लटक रही थीं। किवाड़ों के दोनों ओर मर्यादा को जानने वाली स्त्रियों का वर्ग विविध कार्य कर रहा था। उनमें से कुछ गोबर से बनी, उलटी कोड़ियों से दन्तुरित, बीच-बीच में जड़े विविध रंग के सुन्दर कपासपुष्पों के टुकड़े से सजी, कुसुम्भ के केसरी रंग से रंगी रेखाओं से भक्ति के द्योतक स्वस्तिक चिन्हों को बना रही थी, कुछ हल्दी के रंग से रंगे पीले कपड़ों वाली भगवती षष्ठी देवी को बना रही थीं। कुछ खुले पंखों वाले महान मयूर की पीठ पर चढ़े चंचल लाल कपड़े से बनी पताका वाले, शक्तिदण्ड को उठाने से प्रचण्ड बने हुए कार्तिकेय का चित्र खींच रही थीं। कुछ लाखी पटल बनाने के कारण पाटल वर्ण के मध्यभाग से युक्त सूर्य और चन्द्रमा को बना रही थीं। कुछ ऐसी मिट्टी की गुल्लियों की माला बना रही थीं, जो कुंकुम के लेप से रंग बिरंगी बनी थीं, ऊपर से जिनमें स्वर्ण के यवकण बिखेरे हुए थे और खूब घने लगाए हुए सफेद सरसों के दानों के कारण जो सोने के पानी से लिपी दीखती थी। चन्दनजल के प्रलेप से धवलित दीवारों के शिखरों के अग्रभाग पर पाँच रंगों से रंगे विविध कपड़ों की लीरों के समूह को

ग्रौर कुछ पीले से पिसे हुए द्रव्य से चिह्नित सकोरों की कतार को तथा सूतिकागृह के मण्डनकारी ग्रन्यान्य मंगल कार्यों को कर या रच रही थी। उस घर के द्वार के पास ही विविध सुगन्धित पुष्पों की मालाग्रों से सजा हुग्रा बूढ़ा बकरा बंधा खड़ा था ! उसके पलंग के सिहारने पर ब्रीहि के खेतों के बीच खड़ी ग्रार्यवृद्धा (पुतली) बनी हुई थी। उसमें निरन्तर ही साँप की केंचुली ग्रौर मेषश्रृंग का चूर्ण घी मिलाकर जलाया जा रहा था तथा ग्राग में डाले नीम के पत्तों का रक्षाकारक धुग्राँ उठ रहा था। वहाँ निरन्तर ही मन्त्रपाठ में लगे ब्राह्मण शक्तिपाठ कर रहे थे। बालरक्षा की देवताग्रों के नए बने चित्रों को धाइयाँ पूज रही थीं। ग्रनेक वृद्धाग्रों ने मिलकर सूतकसमय के मंगल गीत गाने ग्रारम्भ कर दिए थे। वहाँ स्वस्तिवाचन किया जा रहा था, शिशुरक्षा के लिए उपायों का विधान किया जा रहा था। सफेद फूलों कीं सैंकड़ों मालाएं लटकाई जा रही थीं। निरन्तर ही 'विष्णुसहस्रनाम' का पाठ किया जा रहा था। शुद्ध स्वर्ण के दण्ड पर टिकाये हुए, हृदय में ग्रनेकों शुभ भावनाग्रों से युक्त निश्चल लौ वाले योगी सदृश दीपों से वह प्रकाशित था !

२. हर्षचरित

'हे देव यहाँ से ग्राधा कोस दूर ही मुनियों से बसे, महत्, पर्वमूल में स्थित वृक्षसमूह के बीच दान पर रहने वाला, ग्रनेक शिष्यों वाला, पराशर मत का साधक 'दिवाकरमित्र' रहता है। कदाचित् वह (राज्यश्री की) बात को जानता हो !

यह सुनकर राजा सोचने लगा,—सुनते हैं कि पूज्य स्मरणीय स्वर्गवासी जीजा ग्रहवर्मा का बाल्यसखा विद्वान् मैत्रायणीय ब्राह्मण वेदों के मत को छोड़-कर युवावस्था में ही समाधि की सिद्धि पाकर बौद्धमत में दीक्षित हो गया ग्रौर काषाय वस्त्र धारण कर भिक्षु बन गया था।···क्योंकि हमारा मन इनके दर्शनों के लिए कौतूहल से युक्त हो ही चुका था ग्रौर यह बात इस समय इस प्रसंग में ग्रचानक ही ग्रा पड़ी है, ग्रतः इसे हम कल्याण का शुभ लक्षण मानते हैं। ग्रन्यथा, ऐसे महाभागों का दर्शन तो माँगे भी नहीं मिलता। यह सोचकर वह बोला—'प्रिय ! जहाँ वे पिण्डपाती महात्मा रहते हैं, वह जगह बताग्रो !'

यह कहकर उसके दिखाए मार्ग पर चलने लगा ! इसी तरह चलते हुए उसके सामने चैत्यमूर्ति पेड़ ग्राए ! उनकी घनी शाखाग्रों के तनों पर कमण्डल लटके हुए थे। खाली भिक्षा पात्र रस्सियों के सहारे उनसे सम्बद्ध लता मण्डपों

पर लटक रहे थे। उनके पास ही बनी कुटियों के कारण वे ध्यानावस्थित या चैत्यमूर्ति जैसे लग रहे थे।

यह देखकर राजा के मन में आया कि भवन्त कहीं पास ही होने चाहिए। तब पर्वतीय नदी के किनारे तक जाकर और आचमनादि करके, उसने अश्वारोही सेना को आराम के लिए उसी प्रदेश में रोक दिया। उस सेना के घोड़े एक साथ ही विश्राम का समय पाकर अपनी आवाज़ से जंगल को बहरा सा बना रहे थे। तब उसने तपस्वी लोगों के लायक विनय को हृदय में धारण किया और दाहिना हाथ माधवगुप्त पर रखे और पीछे चुने हुए राजाओं द्वारा अनुगत होकर पैदल ही चलने लगा।

तब उसने उन पेड़ों के बीच में विविध देशों से आए, स्थान-स्थान पर पड़ी शिलाओं पर बैठे, लता-भवनों में रहने वाले या जंगली झाड़ियों की ओट में बैठे या फिर पेड़ों की छाया में बैठे अथवा तरुमूलों में ही बैठे साधुओं द्वारा दूर से ही सूचित किये जाने वाले (उस महात्मा को देखा)।

उनमें से बहुत से वीतराग थे, आर्हत थे, श्वेताम्बर या पीताम्बर जैन साधु थे, कुछ वैष्णव थे, कुछ ब्रह्मचारी थे, कुछ केशों को नुचवा रहे थे या फिर कुछ कपिल अथवा कणाद के अनुयायी थे, कुछ लोकायत मत के थे या कुछ उपनिषदानुकूल ईश्वर भक्त थे, वानप्रस्थी, धर्मशास्त्रवेत्ता या पौराणिक थे। कई उनमें से सप्तत का आश्रय लेने वाले, शब्द का आश्रय लेने वाले अथवा पंचरात्र का सेवन करने वाले थे। ये सब अपने-अपने सिद्धान्तों के विषय में सुन रहे थे, दत्त-चित्त थे, विचार कर रहे थे, उच्चारण कर रहे थे, शंका प्रकट कर रहे थे, निश्चय कर रहे थे, सिद्ध कर रहे थे विवाद अथवा अभ्यास कर रहे थे, या फिर बखान कर रहे थे! ये लोग वहाँ शिष्य बनकर आए थे!

दण्डी

दशकुमारचरित

द्रविड़ देश में काँची नाम का नगर है। वहाँ अनेक करोड़ की सम्पत्ति का स्वामी शक्तिकुमार नाम का एक श्रेष्ठी-पुत्र रहता था। अट्ठारह वर्ष की आयु में ही उसे यह चिन्ता होने लगी कि, 'न तो स्त्री के अभाव में ही सुख है और न अनुकूल गुण वाली स्त्री न मिल सकने पर ही ! तब मैं गुणवती कन्या को कैसे पा सकूंगा ? तब पत्नी को दूसरों के विकास पर लाने पर यथावाँछित सफलता मिलती न देखकर उसने हस्तरेखाविद् का वेश धारण किया और कपड़े में कुछ चावल रखकर घूमने लगा। 'यह लक्षणों को जानने वाला है,' यह सोच-कर लोग उसे अपनी कन्याएं दिखाने लगे। जब वह किसी लक्षणों से युक्त उत्तम वर्ण की कन्या को देखता, तब वह उसे कहता, 'भद्रे ! क्या इन सेर भर चावलों से खूब बढ़िया भोजन बनाकर मुझे खिला सकोगी ?' इस पर लोग हँसी उड़ाकर या अपमानित कर उसे निकाल देते थे। इसी तरह वह घर-घर घूमता रहा।

एक बार शिविदेश में कावेरी के दक्षिणी किनारे के एक नगर में उसने एक कम आभूषणों वाली, पिता-माता से रहित, टूटे-फूटे मकान वाली कन्या को उसकी धाय द्वारा दिखाने पर देखा। उस पर नज़र जमाये वह सोचने लगा,—'इस कन्या के सभी अंग न बहुत मोटे हैं, न बहुत पतले, न छोटे और न लम्बे, न भयंकर या कठोर ही हैं। इसकी आकृति इसके शील को गलत नहीं बता सकती। मेरा हृदय भी इसमें ही आसक्त हो रहा है। अतः मैं परीक्षा करके इससे ही विवाह करूँगा ! बिना विचारे काम करने वालों के मार्ग में दुःख एक के बाद एक आते ही जाते हैं। यह सोचकर उसने स्नेह युक्त दृष्टि के साथ कहा,—'क्या इस सेर भर धान से हमें सम्पन्न भोजन करा सकोगी ?'

तब उस लड़की ने वृद्धा दासी की ओर उत्सुकता से देखा। उसके हाथ से उस सेर भर धान को लेकर उसने उसे छज्जे के साफ़ और मंजे कोने में आसन पर बिठाया। तब उन शालिधान्यों को लेकर वह धूप में जा बैठी और उन्हें

धीरे-धीरे मसल कर स्थिर और समान भूमि पर फैलाकर नाल के गोल पृष्ठ भाग से हल्के-हल्के रगड़कर छिलके और चावल अलग करने लगी। वैसा करके धाय से बोली—'माँ ! इन तुषों से सुनारों को आभूषणों की सफाई आदि में काम पड़ता है। उन्हें ये देकर, जो पैसे मिलें, उनसे मज़बूत एवं न बहुत गीली और न बहुत सूखी लकड़ियाँ, थोड़ा पकाने लायक पतीली और दो सकोरे ले आओ !' वैसा हो जाने पर उसने उन चावलों को पहले तो बहुत ही सम आकार के ऊखल में डाला और फिर खदिर के बने चौड़े और भारी मूसल से बहुत ही चतुरता और सुन्दरता के साथ हौले-हौले भुजा की गति के साथ उन्हें बहुत ही हल्का कूटकर खाजन में साफ किया। तब उन्हें अनेक बार धोकर पाँच गुने उबलते पानी में डाल दिया। जब एक-एक चावल फूल कर उबलने लगा और खिल गया, तब उसने आग को मन्द किया और पतीली के मुँह को ढककर पतीली उलटी करके उसने चावलों से माण्ड को निकाल लिया और तब ढकना उठाकर कड़छी से उन्हें पलट कर उन्हें कुछ पकाया तथा बाद में उनके पक सा जाने पर पतीली को उलटा करके ही रख दिया।

तब लकड़ियों को अन्दर ही अन्दर जलाकर और पानी से बुझा कर उसने कोयले बनाए और उन्हें ग्राहकों के पास भेज दिया। धाय से बोली, 'इन को बेचकर मिले पैसों से शाक, घी, दही, तेल, आँवला, इमली आदि थोड़ा-थोड़ा ले आना।' वैसा करने पर उसने मांड को दो-तीन बार तोड़ा देकर उसे रेत से बने नए सकोरे में डालकर पंखे की हवा से कुछ शीतल किया और तब नमक आदि डालकर, उसे धुवां देकर सुवासित किया और आँवले आदि को चटनी की तरह पीसने के बाद उसने सेठ के बेटे को नहाने के लिए कहलवाया। वह भी आंवले, तेल, आदि को प्रयोग करके स्नान से निबटा।

नहाने के बाद जब वह धोकर पोंछे फर्श पर बिछे आसनपट्ट पर बैठा, तब सामने बिछाये गए केले के ताज़े कटे पत्ते पर रखे दो सकोरों में लाए गए द्रव को वह देखने लगा। उस कन्या ने वह पेय ही पहले प्रस्तुत किया। उसे पीकर उसकी भी राह की थकान दूर हुई और वह प्रसन्न और तरोताज़ा हो गया ! तब कन्या ने उसे दो कड़छी चावल देकर घी, दाल और चटनी दी। बाकी चावलों को उसने बिजातक (इलायची, दालचीनी और तेजपात) मिली दही से और सुगन्धित एवं ठण्डी कांजी के साथ खाने को दिया। अभी भोजन पूरा भी न हो पाया था कि उसे प्यास लगने लगी।

उसने पानी माँगा। वह जो पानी पिलाने को लाई, उसमें ताज़ा भांगरा पड़ा था, अगर के धुएं से वह सुगन्धित था, नए पाढल फूल की सुगन्ध उसमें मिलाई गई थी। खिले कमलपुष्पों के पत्तों की सुगन्ध भी उसमें मिली थी !

उसने वह पानी नली की धार से धीरे-धीरे गिराया। उधर उसने भी सकोरे को मुँह के पास लगाकर जब पानी पीना शुरू किया, तब उसके हिम-शीतल कणों के लगने से उसकी आँखों की पलकें शीतलता अनुभव करने लगीं। उसके कानों में जलकण गिरने की ध्वनि मधुर लगने लगी! उसके उड़ते जलकणों के स्पर्श से उसके कपोल रोमांचित हो उठे। उठती हुई सुगन्ध से नाक भर गई और उसकी मधुरता के कारण उसकी जिह्वा विह्वल हो उठी। उसने जी भरकर पानी पिया। सिर हिलाकर मना करने पर दूसरे जलकणों का कन्या ने उसे आचमन दिया!

वृद्धा ने उसकी जूठन को हटाकर वहाँ ताज़े गोबर का लेप कर दिया। उस पर अपने ही कपड़े को बिछा कर वह भी थोड़ी देर के लिए सो गया। हर प्रकार से सन्तुष्ट होकर उसने विधिवत् विवाह करके कन्या को अपना लिया!

सुभाषित-संग्रह

ज्ञात कवि—

श्री हर्ष देव—

यदि शठताहीन, अचंचल, अबिद्ध चेतनावाले, त्यागी, अनुरागी और विशेष रूप से ज्ञाता मनुष्य को लक्ष्मी अपना आश्रय नहीं बनाती, तब इसमें वही ठगी जाती है; वह पुरुष नहीं !

दामोदर गुप्त—

यदि धन बड़ी मात्रा में न भी हो, तब भी पुरुषों के लिए आरोग्य, विद्वत्ता, सज्जनों की मैत्री, महान् कुल में जन्म और स्वाधीनता, आदि गुण ही महान् ऐश्वर्य हैं !

खरणद—

जिस तरह गन्नों को सींचने के लिए उनके खेत में दिया गया पानी वहां उगने वाली घास और बेलों को भी सींचता ही है, उसी प्रकार धर्म को निमित्त बनाकर शोधि गई क्रिया भी, धर्म के प्रयोजन को बिना कम किये, सुख और अर्थ को भी प्राप्त करा ही देती है !

मसूराक्ष—

मेंढ़ों की लड़ाई में जब एक मेंढ़ा पीछे हटता है, तब वह हमला करने के उद्देश्य से ही ऐसा करता है। अत्यन्त क्रोध में आया शेर भी उछलने की इच्छा से संकोच कर सिकुड़ता ही है। वास्तव में बुद्धिमान लोग वैर को हृदय में ही छिपाए हुए, अपने विचार और उपायों को गुप्त रख कर कुछ न कुछ बात सोचकर ही किसी बात को सहते हैं ! (अर्थात्, किसी समय असह्य बात को भी उनके द्वारा सहने का कुछ विशेष प्रयोजन ही होता है।)

भल्लट—

मान होने पर वह मुझे चाहती नहीं, शान्त होने पर रोक देती है और पृथ्वी को कुरेदते होने पर जो सलज्ज रह जाती है। थोड़ी भी स्वतन्त्रता दिखाते ही वह घेरकर खड़ी हो जाती है और धैर्य छूट जाने पर हाथ झाड़ कर घूम

कर खड़ी हो जाती है। हे तृष्णा ! तुझे बाँधकर मैंने यह फल पाया है कि जिस चीज़ को कभी पाँव से भी न छुआ था, वही अब चरण छूने पर भी नहीं मानता !

हृदय में उठे भावों रूपी तीर्थ ही सब तीर्थों में श्रेष्ठ है और वही सब कामों में प्रमाण भी है। उसी के कारण कान्ता और कन्या को अलग-अलग भावना से आलिंगन किया जाता है।

—**सूतसंहिता**

रवि गुप्त—

1. सज्जन पुरुषों का मन्यु नीच पुरुषों के स्नेह के तुल्य या समान ही होता है। पहले तो वह होता ही नहीं। अगर होता ही है, तो देर तक नहीं रहता। अगर देर तक टिक ही जाए, तब वह फल में भिन्न सिद्ध होता है।
2. अभ्यास के कमाल को देखो ! अभ्यास करते-करते कुछ न जानने वाला भी सुजान बन जाता है। उसी के बल पर शिलाखण्ड भी धीरे-धीरे चूर्णित होता जाता है और, उस के ही कारण घुन भी महान वृक्षों तक को खाने में सफल हो जाता है !
3. आन्तरिक धन चित्त रूपी रत्न से मिलकर रहता है। जिसका वही धन दोषयुक्त है, उसी को सारी बिपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं ! (अर्थात्, चित्त शुद्ध होने पर कोई भी बाह्य विपत्ति कष्ट नहीं पहुँचाती।)
4. दूसरे के हित सम्पादन में लगा हुआ सज्जन विनाश का समय उपस्थित होने पर भी विकार को प्राप्त नहीं होता। अपने को काटने वाले कुल्हाड़े के मुख को कटने वाला चन्दनवृक्ष सुवासित कर ही देता है ?

गोभट—

खल और सज्जन क्रमशः सुई के अगले और पिछले भाग का अनुकरण करते हैं। खल जहाँ भी जाता है छिद्रान्वेषण करता जाता है, जब कि सज्जन वहीं-वहीं सिलाई करके उन छेदों को बन्द करता जाता है !

गोविन्द राज—

ब्रह्मा को सज्जनों के चित्त को देख कर यह दुःख हुआ कि यह समुद्र के

समान ही कठिनता से भरने योग्य क्यों बन गया ? यह देखकर उसने उसे दूसरों के दुःख-दर्द से भर दिया !

गोवर्धन—

जो बात दूसरे से सुनने पर निन्दा लगती है, प्रिय से उसे ही सुन कर वह परिहास प्रतीत होती है। दूसरी लकड़ियों से पैदा होने पर जिसे हम 'धुआँ' कहते हैं, अगर की लकड़ी से उत्पन्न होने पर उसे ही 'धूप' कह देते हैं।

भास्कर—

अन्याय से पैदा होने वाले ऐश्वर्य की अपेक्षा दरिद्रता कहीं भली है। दोषों के बढ़ने से होने वाले मुटापे की अपेक्षा, देह का पतलापन अधिक पसन्द होता है !

वल्लभदेव—

1. सज्जनों का प्रेम जगत् के लिए उपकार करने में ही होता है, जबकि सामान्य जन ऐश्वर्य पाकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। वैसे ही, जैसे सूर्य भगवान् तो सब लोकों में प्रकाश फैलाते घूमते फिरते हैं, जबकि धन का अधिपति कुबेर कैलाश पर ही बैठा रहता है।
2. वे सरल चित्त वाले, सुमति वाले महात्मा लोग किसके लिए स्पर्धायोग्य नहीं होते, जिनके मन, वचन और व्यवहार—तीनों—में समानता विद्यमान है ?

छात्र—

न तो तूने अन्य सारे तारों के मुखों को मलिन कर दिया है, न आकाश को ही अपनी चमक से अस्त कर दिया है तथा न ही तूने कोई अन्य उपकार लोकों के लिए किया है। बता, इन सब के बिना तू अपने किस गुण के बल पर लोगों को विश्वास दिलाएगा कि तू सूर्य का पुत्र है। केवल शपथ दिलाना ही एकमात्र उपाय रह जाता है।

जैसे साँप द्वारा आधा निगला जाने पर भी मेंढक सैकड़ों मक्खियों को खाता ही जाता है, उसी तरह आयु बीत जाने पर भी विषयों में अन्धा मनुष्य विषयों को भोगने का यत्न करता ही रहता है ?

—**प्रबोधसुधाकर**

काशीपति—

42. 'इस परुष शोक को त्याग दो', 'इस बात पर शोक करने से क्या लाभ ?' या, 'निन्दा और शोक करने से अनेकों अन्य शोक उत्पन्न

होते हैं !' (इत्यादि बहुत सी बातें कही जाती हैं।) किन्तु मित्रो ! मैं यह नहीं जानता कि शोक से संतप्त मित्र को मौन, कृपा अथवा विधुरता, आदि कैसे आश्वस्त कर सकते हैं ? (अर्थात् शोक प्राप्त होने पर उसे इस प्रकार से धैर्य नहीं बँधाया जा सकता।)

64. इस प्रकार के उत्तम चरित्र की बात सबके बारे में सभी जानते हैं। किन्तु चतुर लोग एक दूसरे के भय के कारण एक-दूसरे की निन्दा खुले में नहीं करते !

—**मुकुन्दानन्द भान**

अज्ञात कवि—

1. जब कोई कार्य अन्य नीति या उपाय के आश्रय से सिद्ध हो सकता हो, तब बुद्धिमान् पुरुष दण्ड का आश्रय नहीं लेते ! पानी का प्यासा हाथ में रस्सी और घड़ा लेकर भी कभी कुएं में छलांग लगाकर प्यास बुझाने की नहीं सोचता !

2. ऐसे महान पुरुष ही संसार में जयशील माने जाते हैं, जो दूसरों की निन्दा के प्रसंग में चुप रहते हैं, दूसरी नारियों को देखने के मामले में जन्मान्ध जैसे बन जाते हैं और जो दूसरों के धन को हरने के विषय में लंगड़े के समान आचरण करते हैं !

3. सत्यवादी पुरुष दोषों को गुण बनाकर कहने में और गुणों को दोष बनाकर कहने में, समर्थ नहीं होता। उसके लिए यही सत्य है कि दोष दोष हैं और गुण गुण ही हैं ?

4. देखने योग्य वस्तु एक बार देखने पर फिर-फिर भी देखी जाती है। इसी प्रकार सुनने में प्रिय बात एक बार सुनने पर फिर-फिर भी सुनी जाती है। किन्तु, साधु व्यवहार वाले पुरुष के विषय में यह सत्य है कि उसके वचनों में पुनरुक्तता नहीं होती। (अर्थात्, वह एक ही बार जो बात कहता है, उसे पलटता नहीं !)

5. आँधी या तूफान कभी उन तिनकों को नहीं उखाड़ता, जो कोमल और नीचे होकर हर प्रकार से झुक गए हैं। बल्कि, वह तो ऊँचे उठे हुए और तने हुए पेड़ों को ही पीड़ित करता है। सच भी है : बड़ा आदमी बड़ों पर ही अपने क्रोध को उतारता है ?

6. समर्थ लोगों के लिए कोई भी बात अधिक भारी नहीं होती। व्यवसायी लोगों के लिए कोई भी दूरी अधिक नहीं होती। विद्यावालों के लिए

कोई भी देश विदेश नहीं होता। इसी प्रकार प्रियवादियों के लिए कोई भी व्यक्ति 'पराया' या 'शत्रु' नहीं होता !

7. अश्व, शस्त्र, शास्त्र, वीणा, वाणी, नर और नारी—ये सब जिस पुरुष के अधिकार में आते हैं, उसी के अनुसार योग्य या अयोग्य बन जाते हैं। (स्वयं में ये योग्य या अयोग्य नहीं होते।)

8. श्लेष्म (बलगम) और दुर्जन के स्वभावों में भी अजीब समानता है ? दोनों के 'मधुर' वस्तु के प्रयोग से भड़क उठते हैं किन्तु 'कड़वी या तीखी' वस्तु के प्रयोग से शान्त हो जाते हैं ?

9. दुष्ट पुरुष के गुण भी दुष्टता से भरे होते हैं। उसकी सुन्दरता दूसरी औरतों को छेड़ने के लिए होती है। उसका धन दुनिया को सताने के लिए होता है और उसकी प्रभुता साधुओं के विनाश के लिए होती है !

10. वे दुष्ट पुरुष मौत से भी बढ़कर भयावह होते हैं, प्राणिवध जिनके लिए क्रीड़ा के समान है, दूसरों के लिए मर्मभेदी बातें कहने में जिन्हें आनन्द आता है और, दूसरों को सताना ही जिनका एकमात्र कार्य है !

11. यह बहुत कष्टकर और अद्भुत बात है कि इस जगत् में सभी कुछ उलटा है ! जिस बात से साधुजन लज्जा अनुभव करते हैं, दुष्ट पुरुषों को उसी बात से संतोष होता है।

12. मूर्ख लोग भले ही सैकड़ों हाथियों और घोड़ों पर चढ़ कर जाया करें और, धन से हीन बुद्धिमान् लोग भले ही पैदल ही चला करें ? (फिर भी दोनों का अन्तर रहेगा ही ?) गिरि शिखरों पर चढ़कर बैठी हुई कौओं की पंक्ति कभी रेतीले नदी-तटों पर विद्यमान हंसों की तुलना कर सकती है ? (केवल ऊँचा बैठने से ही कोई ऊँचा नहीं बन जाता।)

13. 'यह अपना है या पराया'—ऐसा विचार केवल छोटे दिलवाले लोग ही करते हैं। जो उदार चरित वाले लोग होते हैं, उनके लिए सारी धरती ही कुटुम्ब के समान होती है ?

14. नाका या मगरमच्छ अपनी जगह पर आकर हाथी को भी खींच ले जाता है। किन्तु अपनी जगह से भ्रष्ट होकर वह कुत्ते से भी परिभव पा जाता है ?

15. दुःखी पुरुष को उसी के सामने अपना दुःख कहना चाहिए, या तो जो उसे शान्त कर सकता हो, या जो उससे स्वयं सन्तप्त हो रहा हो ?

16. एक-दूसरे की पत्नियाँ भी देख लीं । एक-दूसरे के घर में निःशंक होकर भोजन भी खा लिया । एक-दूसरे को अपने रहस्य भी बता दिये । इससे बढ़कर 'मित्रता' और किसे कहते हैं ?

17. कभी पहले उपकार करने वाले जन के प्रति जो दान दिया जाता है, वह दान नहीं कहलाता ? वह तो 'धरोहर' होती है ? जब वही दान दीन पुरुष को दिया जाता है, तब वह उसकी याचना का मूल्यमात्र होता है । जब प्रिय को वही दिया जाता है, तब ऐसा प्रेम के वश किया जाता है (न कि दान की इच्छा से) ? जो योग्यपात्र को चुनकर दिया जाता है, वह केवल उससे होने वाले फल के विस्तार की कामना से ही । क्या वह यशकामना से नहीं होता ? सच्चा 'दान' तो वही है, जो प्यार न करने वाले किसी क्षीण मनुष्य को दिया जाता है ! (क्योंकि वही निष्कारण होता है ।)

18. उपकार करने वाले के प्रति, विश्वास करने वाले के प्रति और शुद्ध बुद्धि वाले के प्रति जो पाप का काम करता है, ऐसे असत्य प्रतिज्ञा वाले मनुष्य, हे भगवती धरतीमाता ! तुम कैसे अपने पर सह लेती हो ?

19. दुर्जन से यह तो आशा ही व्यर्थ है कि 'यह हमारा मित्र है' ? 'मैंने इसका बहुत उपकार किया है'—ऐसी बात कहना भी अब संभव नहीं ? 'सज्जन' शब्द भी अब पुराना पड़ गया है । आजकल तो लोग केवल अंशमात्र धन के कारण ही अपने सम्बन्ध मानते हैं ?

20. न तो 'उपकार' ही मित्र का लक्षण है और न 'अपकार करना' शत्रु का ? दोषयुक्त ओर दोषहीन चित्त के द्वारा ही शत्रु और मित्र को पहचाना जा सकता है ।

21. समय कैसा चल रहा है ?, मित्र कौन लोग हैं ?, देश के आचार क्या हैं ? खर्च और आय का क्या हिसाब है ?, मैं स्वयं कौन हूँ ? और मेरी अपनी शक्ति कितनी है ?,—इन्हीं बातों पर बार-बार विचार करना चाहिए ?

22. अधिक परिचय बढ़ जाने पर विशिष्ट वस्तु के प्रति भी उपेक्षा या तिरस्कार की भावना पैदा हो जाती है । प्रयाग में रहने वाले अधिकांश लोग प्रायः कुएं के जल से ही स्नान करते हैं (गंगा के जल से नहीं) ।

23. अधिक परिचय बढ़ने से तिरस्कार की भावना और अधिक जानने से अपना अनादर ही होता है । मलय पर्वत पर रहने वाली भील या आदिवासिनी नारियाँ प्रायः चन्दन वृक्ष की लकड़ियों को ही जलाने के काम लाती हैं ?

24. हर तरह से अपना हित देखकर ही आचरण करना चाहिए। बातें बनाने वाले लोग कर भी क्या लेंगे ? ऐसा कोई उपाय भी तो पता नहीं चलता, जिससे सारी दुनिया को सन्तुष्ट किया जा सके ?

25. पुत्र आज्ञाकारी हो ? विद्या धनोपार्जन और लोक व्यवहार का निर्वाह करने वाली हो, शरीर निरोग हो और सज्जनों की संगति उपलब्ध हो, इन के साथ ही पत्नी मनचाही और कहना मानने वाली हो, ये ही पाँचों चीज़ें दुःख को जड़मूल से उखाड़ फेंकने वाली हैं।

26. विद्वान् लोगों के साथ चर्चा, महाभारत का पाठ, काव्य का विचार, वीणासितारादि तन्त्रीवाद्य, उचित ढंग से प्रयुक्त गाना, मनचाही पत्नी और वैसा ही मित्र,—ये सातों चीज़ें शोक मिटा देती हैं।

27. जो चाहते हैं कि शठता के द्वारा मित्र को, कपट के द्वारा धर्म को, दूसरों को सताकर समृद्धि को, सुख पूर्वक विद्या को और कठोर बनकर नारी को अपना बना लिया जाए, वे लोग निश्चय ही ना-समझ हैं ?

28. दोषरहित और सहजात विवेक तो एक चक्षु है। दूसरी आँख है, विद्वान लोगों के साथ सहवास; जिसे ये दोनों ही आँखें प्राप्त नहीं हैं, वह स्पष्ट ही अन्धा है। यदि ऐसा अन्धा आदमी कुमार्ग पर चले, तब उसका क्या दोष ?

29. खाते समय गिरे हुए अन्नभाग को खाने से हाथी का क्या घट जाता है ? किन्तु, उसे ही खाकर चींटी तो कुटुम्ब सहित जीवन पा लेती है।

30. चूहों ने दुष्टों से क्या सीखा और दुष्टों ने चूहों से क्या सीखा ? जिन दोनों का काम इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कि दूसरे का घर खोदते रहें ?

31. यदि वश में करना हो, तो मित्र को स्नेहपूर्वक, शत्रु को नीति के बल पर, लोभी को धन देकर, स्वामी को कार्यों से, ब्राह्मण को आदर देकर, युवतियों को प्रेम से, बन्धु-बान्धवों को गुणों से, अत्यधिक क्रोधी को स्तुति के द्वारा, गुरु को प्रणामों के द्वारा, मूर्ख को कथाएं सुनाकर, बुद्धिमान को विद्या के द्वारा और रसिक को रसपान कराकर जीता जा सकता है। किन्तु, सब को ही एक साथ वश में करना हो, तो केवल शील के द्वारा ही वश में किया जा सकता है ?

32. कोई किसी एक विषय में ही सबसे बढ़ा-चढ़ा होता है और वह उसके कारण ही दुनिया में प्रसिद्धि को प्राप्त हो जाता है। सब लोग ही सब चीज़ों के जानकर नहीं होते। क्या कभी केवड़े के फल लगते देखा है

या कटहल का फूल देखा है ? अथवा पान की बेल के फल या फूल होते हैं ? (फिर भी वे प्रसिद्ध हैं। उनके क्रमशः फूल, फल और पत्ते ही प्रसिद्ध हैं; शेष से किसी को प्रयोजन नहीं होता ?)

33. वनों को जलाने वाली आग की सहायता को तो वायु भी मित्र के रूप में आ जाता है, किन्तु, दीपक जैसी छोटी ज्वाला को बुझाने का कारण बनता है। सच है, कमज़ोर का मित्र कौन बनता है ?

34. हे नदी ! यह दूर से महान शब्द करता हुआ और ऊँचा उठ कर आने वाला यह बाढ़ का चढ़ाव कितने दिन ठहरेगा ? किन्तु, इसका ज्वार उतर जाने पर भी तेरे जिन तटवर्ती वृक्षों को यह गिरा जाएगा, उनके गिराने का पाप अवश्य चिरस्थायी रहेगा। (अर्थात्, इस क्षणस्थायी प्रेम के आवेश में तू अपने चिरस्थायी प्रेम को क्यों उपेक्षित कर देती है ?)

35. मनुष्यों का भाग्य लंगड़े जैसा है और निश्चय या उद्योग अन्धे जैसा है। उन दोनों के संयोग से जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त होती है, उसी प्रकार वह ज्ञान और चरित्र के योग से भी प्राप्त हो सकती है। (किन्तु, वे दोनों लंगड़े और अन्धे जैसे नहीं हैं।)

36. पत्नी का वियोग, दीन पुरुषों द्वारा की गई निन्दा, बचा हुआ ऋण, कुणप की सेवा और दरिद्रता के बीच प्रिय लोगों का मिल जाना— ये पाँचों बातें आग के बिना भी जलाती रहती हैं।

37. जिसको शत्रु भी नहीं देख पाते और जिसको बन्धु लोग भोग नहीं पाते, हे राजन् ! विदेश गई हुई (या विदेश भेजी हुई) उस प्रकार की लक्ष्मी के होने-न-होने से क्या लाभ ?

38. अच्छे कुल, विद्या, शील, शौर्य और सौन्दर्य की परीक्षा करके ही चतुर भाग्य कन्या रूपी दरिद्रता को (इन गुणों से युक्त पात्र के लिए ही) देता है।

39. सज्जन पुरुषों का जीवन बड़ा ही दुःखदायी होता है। उनका शौक है सच्चरित्र के उदय में। उनके जीवन में सदा यन्त्रणाएं और नियन्त्रण का ही बोलबाला रहता है और वे सदा जन-निन्दा के भय से चौंकते हुए ही जीवन बिताते हैं। उनकी अपेक्षा तो सामान्य जन ही अधिक धन्य हैं, न जिनकी प्रतिभा सतर्क होती है, न जिन्हें अच्छे या बुरे कर्म

से अन्तर पड़ता है और न जिनके हृदय में कभी उचित-अनुचित का ही विचार उठता है !

40. वामन के विषय में यह बात लोक-प्रसिद्ध है कि उसने आकाश को नाप लिया और मधु राक्षस से भी शत्रुता बाँधी ! किन्तु, लोगों का स्वभाव ईर्ष्यालु है । होड़ करने वाले लोग अब भी उन्हीं बातों पर टिकने की बात करके आकाश से भी ऊँची बातें बनाते हैं और मधुरता से द्वेष करते हैं ।

41. श्री या लक्ष्मी की सहचारियाँ ये सात बातें हैं : धैर्य, क्षमा, दया, पवित्रता, औचित्य, निष्ठुरता रहित वाणी, और प्राणियों से द्वेष न करना !

42- सच्चा पण्डित तो वही पुरुष है, जो देश, काल और कार्य को देख कर चलता है । अन्यथा, सुनने की शक्ति होने पर भी लोग बहरे होते हैं, देखकर भी अन्धे और जानकर भी जड़ ही रहते हैं । (यदि उनमें देश-कालादि का विचार नहीं है) ।

43. मूर्खता किसे कहते हैं ? अकल्याणकर कार्यों को करने का विचार ! ज्ञान किसे कहते हैं ? प्रमाद-रहित अवस्था को ! सबसे समीपस्थ बन्धु कौन है ? पुरुष का बन्धु—'पुरुषार्थ' ! और, स्वादु कौन सी वस्तु है ? जिसे मित्रों के साथ बाँट कर खाया जाता है !

44. ऐसी पत्नी पाना सचमुच ही असम्भव है, जो रूप से सम्पन्न भी हो, सभ्य भी हो, प्रेम से भरी भी हो, प्रियवादिनी भी हो, उत्तम कुल में उत्पन्न भी हो और पति के अनुकूल भी हो !

45. लकड़ी को छेद डालने में निपुण भंवरा भी कमल के अन्दर बन्द होकर निश्चेष्ट हो जाता है । सच है कि बन्धन तो अनेकों होते हैं, किन्तु स्नेहरज्जु का बन्धन किसी और ही प्रकार का होता है !

46. द्वार-द्वार पर भीख माँगता हुआ भिक्षुक माँगता नहीं है, बल्कि उपदेश दे रहा होता है कि, 'दान न देकर तुम भी मेरे जैसे मत बनो, बल्कि देकर वैसे ही बने रहो, जैसे अब हो !'

47 उन्नत मनुष्य का लक्षण यही है कि उसे खूब गरम-गरम घी-सहित खाना खाने को मिले, छिद्ररहित कपड़े पहनने को मिलें और किसी अन्य की नौकरी करनी भाग्य में न हो ! किन्तु, जो व्यक्ति इससे भी अधिक चाहता है, वह नीचे ही गिरता है !

48. जो भूख से व्याकुल होते हैं, वे रुचि और पकवान आदि को नहीं देखते । काम से पीड़ित व्यक्ति भय और लज्जा की भी परवाह नहीं करते ! विद्या की प्राप्ति में व्याकुल व्यक्ति सुख और नींद की चिन्ता भी छोड़ देते हैं । इसी प्रकार धन के लिए व्याकुल व्यक्ति न किसी को गुरु मान कर उसकी परवाह करते हैं और न किसी को बन्धु मानकर ही ;

49. 'क्योंकि मुझ में दोष समाप्त हो चुके हैं, इसलिए मुझे किसी का डर नहीं रहा,'—ऐसा विचार मन में मत ला । कारण यह है कि गुणियों में गुणों का होना भी दुष्ट लोगों में वैर की भावना जगाने का कारण बनता है ?

50. मक्खियाँ फोड़ों को ढूंढती हैं, दुर्जनों को दोष ढूंढने की इच्छा रहती है । भवरों को फूलों की टोह रहती है किन्तु, सज्जन लोग सदा गुणों की तलाश में लगे रहते हैं ।

51. सच्चे अर्थों में पण्डित वही है, जिसके लिए शीत, उष्ण, प्रेम, भय, समृद्धि या समृद्धिहीनता, आदि किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित नहीं करते ? (अर्थात् इन सब अवस्थाओं में जो समान रहता है ।)

52. लोग फूलों वाले वृक्षों और पौधों को तो उगाते हैं, किन्तु राल आदि सार देने वाले चीड़ जैसे वृक्षों को काटते और छीलते हैं । जिसके पास धन संचित हो जाता है, धनहीन लोग और बन्धुजन उसे तंग करने लगते हैं । युवती यदि सुन्दर हो, तब उसे आलिंगन पाशों में बंधना पड़ता है और, भूमि यदि जलयुक्त हो, तो वह खोदी जाती है । इस प्रकार यह देखा गया है कि लोक में गुणहीनता अधिक अच्छी है, क्यों-कि गुणवालों को अनर्थ सहने पड़ते हैं !

53. माता-पिता की पूजा, पति की पूजा, सब मनुष्यों में समान दृष्टि, मित्र के प्रति द्रोह न करना और विष्णु में भक्ति,—ये पाँचों बातें ही सच्चे अर्थों में 'पंच महायज्ञ' हैं ।

54. जल में पड़ा बूंद भर भी तेल, दुष्ट को ज्ञात हुई रत्ती भर भी गोप-नीय बात, सुपात्र को मिला किंचित् मात्र भी दान और बुद्धिमान को प्राप्त थोड़ा-सा भी शास्त्र का ज्ञान,—ये सब स्वयं ही अपनी शक्ति के द्वारा ही विस्तार को पा लेते हैं !

55. मेरे शत्रुगण सदा जीते रहें । उनकी कृपा से ही मैं सजग और चतुर

हूँ। जब-जब भी मेरी मति डगमगाती है, तब-तब ही वे मुझे सावधान और सजग कर देते हैं!

56. जिस प्रकार अच्छे घोड़े चाबुक के अघात को नहीं सहते और जिस प्रकार सिंह बादलों को या अन्य किसी ऊँची गरज को नहीं सहन करता, उसी प्रकार मनस्वी लोग भी यह नहीं सहन नहीं कर सकते कि कोई उनमें दोष दिखाने के लिए दूर से अंगुली का इशारा तक भी करें!

57. वह व्यक्ति जीते हुए भी मरा हुआ ही है, जिसके मुख को देखकर लोग दूर से ही टेढ़े मुँह बनाकर आपस में एक-दूसरे को उसकी ओर इशारा करके बातें बताते हैं।

58. जीभ कट नहीं जाएगी और तालु गिरने का डर नहीं है। इसलिए बिना किसी डर के बोलना चाहिए। आखिर, सभी वाचालों को ही पण्डित मान लिया जाता है।

59. रिश्वत, इनाम, भाट, सुभाषित, गूढ़ार्थ और चोरी में अपना हिस्सा—इन सबको तत्काल ही ले लेना चाहिए; नहीं तो ये छहों समय बीत जाने पर फिर नहीं मिल पाते।

60. यदि तुम जगत को किसी एक ही काम से वश में कर लेना चाहते हो, दूसरों की निन्दा की बातें बनाने वाली अपनी वाणी को रोक लो!

61. दुष्ट लोग सामने कुछ और पीठ पीछे कुछ और बात बनाते हैं, मानो उन्हें पुनरुक्ति का डर हो! वे परनिन्दा में चतुर और अनीति में कुशल होते हैं।

62. विद्वानों का ऐसा कौन सा गुण है, जिसे दुर्जनों ने कलंक या दोष के रूप में नहीं देखा। यदि वे लज्जाशील हैं तो उनमें 'जड़ता' बताई जाती है। यदि वे अपनी रुचि प्रकट करते हैं, तब उन्हें 'दम्भी' बताया जाता है, उनकी पवित्रता में छल और शूरवीरता में निर्दयता का लांछन ढूंढा जाता है। मुनि में विपरीत बुद्धि होने का, प्रिय बोलने वाले में दीनता का, तेजस्वी में घमण्ड का, वक्ता होने पर मुखरता का और स्थिरचित्त होने पर शक्तिहीनता का दोष मान लिया जाता है?

63. क्या पुलस्त्य-पुत्र रावण नहीं जानता था कि दूसरे की स्त्री को हरने में दोष है ? राम कैसे न जान पाए कि सोने का हरिण होना असम्भव है और, युधिष्ठिर ने जुआ खेलते हुए कैसे न समझा कि यह महान् पाप है ?

सच यह है कि दैव द्वारा बुद्धि हर लेने पर जानकारों की भी सोचने की शक्ति हरी जाती है।

64. अकारण ही कठोर हो उठने वालों को गिना ही कब जा सकता है? हाँ, कारण रहते क्रोध करने वाले अवश्य ही गिनती के हैं। किन्तु, कारण रहते भी क्रोध न करने वाले लोग इस दुनिया में पाँच-छह (कम) ही होने सम्भव हैं !

65. महात्माओं का यह स्वभाव ही है कि वे प्राणों की रक्षा की अपेक्षा यश की रक्षा की परवाह अधिक करते हैं। उनको शत्रु की अपेक्षा पापकार्य से अधिक डर लगता है और वे धन की अपेक्षा, याचकों के पीछे अवश्य भागते हैं।

सिंधी साहित्य

चयन :

श्री एन० आर० मलकाणी
द्वारा चुना गया विद्वद्वर्ग

अनुवाद :

श्री मोतीलाल जोतवाणी

अनुक्रम

ऐतिहासिक समीक्षा		993
दयाराम गिदूमल शहाणी	• सामी के श्लोकों का तात्पर्य	1000
परमानन्द मेवाराम	• श्रावण आया	1003
भेरूमल मेहर चन्द	• प्रेम	1006
जेठमल परसराम	• गुरु और शिष्य	1008
नारायण दास मलकाणी	• चौपाया माल की चोरी	1011
राम पंजवाणी	• सिंधी लोक-संगीत व नृत्य	1014
तीरथ बसंत	• मनुष्य की रचनात्मक शक्ति	1016
अमरलाल हिंगोरुणी	• भाई अब्दुलरहमान	1020
शाह अब्दुल लतीफ	• मारुई	1026
	• राइ डियाच और बीजल	1028
सचल	• मैं जो हूँ, सो हूँ	1029
भाई चैनराइ सामी	• सामी के श्लोक	1030
किशनचन्द बेवसि	• उदार हृदय बनो	1031
	• सोच समझ कर कहो	1032
लेखराज अज़ीज़	• रुबाइयां	1033
हूंदराज दुखायल	• राष्ट्रीय गान	1034
हरि दिलगीर	• सरोवर व अन्य कविताएं	1035
नारायण श्याम	• जुलाहा	1037

ऐतिहासिक समीक्षा

सिंधी भाषा की उत्पत्ति, वैदिक काल में सिंधु घाटी के दक्षिण भाग में आकर बसे हुए आर्य लोगों की बोली जानेवाली किसी एक उपभाषा में से हुई है। यह प्रदेश बार बार उत्तर-पश्चिम से होने वाले आक्रमणों को सहन करता रहा। अतः इस भूभाग के निवासियों की जातीय तथा सांस्कृतिक विशेषताओं में हमें कई प्रकार के आश्चर्यजनक रंग मिलते हैं। इसलिए आधुनिक बोलचाल की सिंधी भाषा में हिन्दी, फारसी, अरबी, तुर्की, अंग्रेज़ी और पुर्तगाली भाषाओं के कई शब्द पाये जाते हैं जो अपना असली रूप परिवर्तित कर अब सिंधी भाषा के अनुकूल बन गये हैं। अन्य भाषाओं से शब्दों को ग्रहण कर आत्मसात् कर देनेवाली इस स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण सिंधी भाषा प्राचीन काल से प्रचलित होने के कारण भी हमेशा नूतन है।

ईस्वी सन 712 में इस्लाम ने सिंध में पदार्पण किया और कुछ ही समय के बाद वहाँ के निवासियों को आत्मसात करने में सफल हुआ। इस मज़हब वालों की विनाशात्मक प्रवृत्तियों के कारण प्राचीन सिंधी साहित्य का अधिकांश हमें प्राप्त नहीं हुआ है। मुसलमान आक्रमणकारी जहाँ जहाँ गये, वहाँ वहाँ उन्होंने कुरान के मतानुसार उस प्रदेश को रूप देना चाहा इसलिए प्रायः उन्होंने वहाँ की पूर्ववर्ती चीज़ों को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। सूमरा और समाकाल का सिंधी साहित्य शेख हमाद, राजू, इसहाक आदि के कुछ फुटकल पदों को छोड़ कर लुप्त हो गया है। इस काल की कुछ वीर गाथाओं को बाद के कवियों ने कविता के रूप में गाया है। शाह अब्दुलकरीम (1538-1625) की कविता. मामोई के बैंत, काज़ी कजान के दोहे,—यही प्राचीनतम सिंधी साहित्य के अवशेष हैं जो हमें प्राप्त हुए हैं।

अठारहवीं शताब्दी में हमें सिंधी कविता का उत्कर्ष दिखाई देता है। वैसे देखा जाए तो यह काल सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से अनुकूल नहीं था। इस

समय भारत पर नादिरशाह और अब्दाली के आक्रमण हुए। उनके विध्वंस और आतंक से सिंध भी बच न सका। उस समय सिंध पर कल्होड़ा वंश के हाकिमों का शासन था। जिन सेनाओं ने मुग़ल और मराठों की सेनाओं को पराजित कर डाला, दिल्ली को तहस-नहस कर डाला उनके आगे भला सिंध के कमज़ोर हाकिमों के सिपाही क्या टिक सकते थे। सिंध का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह था कि शत्रुओं की आक्रमणकारी तथा आक्रमण के पश्चात् इस प्रदेश से लौटती हुई सेनाओं का आघात उसे विवश होकर सहन करना पड़ता था और विजयी सेनापतियों को उसे कर आदि देना पड़ता था। ऐसे समय में सिंध के महान सूफ़ी कवि शाह अब्दुललतीफ़ का जन्म हुआ और उन्होंने काव्य के क्षेत्र में सिंधी साहित्य को महान कृति प्रदान की। शाह लतीफ़ का जीवन सीधा-सादा और धार्मिक था। उन्हें संगीत और सुर-ताल का अच्छा ज्ञान था। उमंग की हालत में जो 'बैंत' वे गुनगुनाते थे वे उनके शिष्य लिपिबद्ध करते जाते थे। इसी प्रकार इस संत कवि की अनुपम कृति 'शाह जो रिसालो' सिंधी साहित्य को मिली। इसमें जनसाधारण के जीवन के कई सुन्दर चित्र हमें मिलते हैं। खेतों और झोंपड़ियों में काम करने वाले साधारण मनुष्य, वृक्षों की छाया भी जहाँ नहीं मिलती ऐसी पहाड़ियों और निर्जन मरुस्थलों में तूफानों के आघात सहते हुए काफ़िलों को ले जाने वाला सरदार, भयंकर समुद्र में छोटी नौका में व्यापार-हेतु घर से निकला हुआ वणिक्,—इस महान कलाकार के कुछ मर्मस्पर्शी चित्र हैं। शाह अपनी अनोखी शैली और ठेठ सिंधी भाषा के द्वारा प्राचीन काल के सिंधी लोक साहित्य के नायक और नायिकाओं का चित्रण करते हैं और उन्हें अपनी प्रतिभा तथा अनुभूति से चमका देते हैं। सिंध ऐसा प्रदेश है जहाँ ईरानी तथा भारतीय सांस्कृति का सुन्दर संगम हुआ है जिससे वहाँ के निवासियों का दृष्टिकोण उदार हो गया है और वह सम्पूर्ण मनुष्य जाति के कल्याण का इच्छुक है। शाह के काव्य में मुख्यतः 'सर्वभूतहिते रताः,' 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना गहरे रहस्यवाद के रंग में रँगी हुई पाई जाती है। शाह के विशाल काव्यपट पर हमें विविध सुन्दर चित्र देखने को मिलते हैं। वहाँ पहाड़ों और बियाबानों की निर्जनता है, लहरें मारता हुआ पानी और सनसनाती हवाएं हैं और अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए वातावरण से झूझता हुआ साधारण जीवन है। कवि के अनुभव का दायरा इतना विशाल और विविधतापूर्ण है कि क्षुद्र पशु और पौधे, ग़रीब किसान और कुम्हार भी उसकी पैनी दृष्टि से दूर नहीं रहते। शाह सिंध के महान कवि हैं क्योंकि उन्होंने इस प्रदेश की गूंगी जनता को अपने काव्य द्वारा स्पष्ट रूप से मुखरित किया है। शाह अद्वितीय उद्भावना और सूझबूझ वाले संत हैं। वे अगाध दयालुता और

सार्वभौमिक दृष्टिकोण वाले ऐसे द्रष्टा हैं कि उन की रचना पर न केवल सिंध को नाज़ है, परन्तु अन्य लोगों को भी फ़ख्र हो सकता है।

शाह के कुछ ही समय पश्चात् सचल नामक एक दूसरे सूफी संत कवि हुए हैं जिन्होंने किसी भी मज़हब, विशेषतः इस्लाम के बंधनों को मानने से इनकार किया है। उन्होंने संकुचित मनोवृत्ति और तग्रस्सुब की स्पष्ट शब्दों में और ओजपूर्ण वाणी में निन्दा की है। इस इन्कलाबी कवि की रचनाओं के विपरीत हमें वेदान्ती कवि सामी का काव्य मिलता है जो स्वच्छ प्रशांत स्रोत के समान है। उनके काव्य-स्रोत में इस संसार के मायाजाल और उसमें फंसे हुए अज्ञानी जनों के कारण कोई अशांति उत्पन्न नहीं होती। सामी शंकराचार्य के मायावाद के सिद्धान्त के अनुयायी हैं। उन्होंने अपने 21,000 श्लोकों में अहंकार आदि मनोवृत्तियों को त्याग कर गुरू की सहायता से मोक्ष प्राप्त करने का उपदेश दिया है। सामी कवि की अपेक्षा संत अधिक हैं। फिर भी ठेठ और प्रसादपूर्ण सिंधी भाषा के कारण उन के काव्य का सौन्दर्य देखते ही बनता है।

शाह-सचल सामी की त्रिमूर्ति के पश्चात् हमें कई संत कवि मिलते हैं जिन्होंने इन तीनों महान कवियों के विचार तथा विषयों का अनुसरण कर काव्य सृष्टि की है। इन अनुगामी कवियों में बेदिल और उनके पुत्र बेकस का नाम विशेष उल्लेखनीय है। दलपत भी इनके समकालीन कवि हैं जो वेदान्त मत के अनुयायी हैं। इनके पश्चात् गुलमुहम्मद का नाम आता है जिन्होंने सिंध के बैंत, काफ़ी आदि छंदों की अपेक्षा फारसी छंदों के आधार पर काव्य-सृष्टि कर सिंधी में इस नई धारा को प्रचलित किया है। इस प्रकार की कविता करनेवाले बाद में कई कवि हुए हैं जिनमें मिर्जा क़लीच बेग ने विशेष ख्याति प्राप्त की है। इस लघु सर्वेक्षण में उन सभी कवियों का उल्लेख करना ही उचित होगा जिन्होंने फारसी तर्ज़ पर काव्यसृष्टि करने वाले कवियों का अनुसरण न करके अपना नया मार्ग अपनाया है। ऐसे कवियों के मान्य नेता किशनचन्द बेबस थे जिन्होंने कुछ नौजवान कवियों को आकृष्ट किया और अपने आदर्शों पर काव्यरचना करने के लिए प्रेरित किया। देश के विभाजन के पश्चात् स्वातन्त्र्योत्तर युग के वातावरण के अनुसार सिंधी साहित्य में अनुभूति तथा अभिव्यक्ति की नई-नई प्रणालियाँ जन्म ले चुकी हैं।

सिंधी में गद्य-रचना का विकास विशेषतः अंग्रेज़ों के सिंध में राज्य शुरू होने के पश्चात् ही हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्ध में अंग्रेज़ सरकार ने सिंधी भाषा के लिए अरबी-फारसी लिपियों के आधार पर एक नई लिपि निर्धारित की। उसके प्रचारार्थ उस लिपि में सिन्धी तथा फारसी की प्रेमगाथाएं

और लोक-साहित्य लोगों के मनोरंजन के लिए सरकार ने प्रकाशित कराया। सिंधी गद्य के इस प्रारंभिक काल में अंग्रेज़ी, बंगला, उर्दू, हिन्दी तथा संस्कृत की कितनी ही रचनाएं सिन्धी में अनूदित की गईं। इस प्रयत्न के फलस्वरूप न केवल महाभारत, रामायण, गीता, सिखों की धार्मिक पुस्तकें, उपनिषद् आदि ग्रंथ सिन्धी में लाए गए किन्तु कबीर, सूर, मीराबाई, तुलसीदास आदि की बानियों का भी सिंधी में अनुवाद किया गया। इस धार्मिक साहित्य को बार बार प्रकाशित कराने का श्रेय मुख्यतः कई संस्थाओं को है। इस साहित्य के अतिरिक्त बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेज़ी साहित्य के कई उपन्यासों और नाटकों का भी सिंधी में रूपांतर हुआ है। इनके पश्चात् मुंशी प्रेमचन्द, शरच्चंद्र चटर्जी, बंकिमचन्द्र, ताराशंकर बनर्जी, कन्हैयालाल मुँशी आदि की साहित्यिक कृतियों का भी सिन्धी में उल्था किया गया है। हाल में गोर्की आदि रूसी साहित्यकारों की रचनाएं भी सिंधी में लाई गई हैं। परन्तु सिंधी में विश्व साहित्य के चुने हुए और भी उत्तम ग्रंथों को अनूदित करने की आवश्यकता है। यह कार्य सरकार की सहायता के सिवाय सफलतापूर्वक सम्पन्न करना दुष्कर है।

सिंधी गद्य के प्रारंभिक साहित्यकारों में राजर्षि ड्याराम गिदूमल शहाणी और मिर्ज़ा कलीच बेग के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ड्याराम शहाणी महान विद्वान थे जिन्होंने विशेषतः संस्कृत आदि के आध्यात्मिक ग्रंथों की सिंधी में व्याख्या की है, जबकि मिर्ज़ा कलीच बेग ने साहित्य के विभिन्न रूपों के क्षेत्र में अपनी लेखनी चलाई है। मिर्ज़ा ने लगभग दो सौ पुस्तकें सिंधी में लिखी हैं जो ज़्यादातर विभिन्न विषयों पर अन्य भाषाओं में लिखी हुई पुस्तकों से अनूदित की गई हैं। इनका गद्य पटरी पर चलती हुई गाड़ी के समान सरल है। इस युग के अन्य गद्य-साहित्यकारों में कौड़ीमल चंदनमल खिलणाणी विशेष स्थान रखते हैं। वे समाज-सुधारक भी थे और ब्रह्मसमाज के आदर्शों से प्रभावित होकर उन्होंने इस सम्प्रदाय-सम्बन्धी कई पुस्तिकाएं लिखकर प्रकाशित की हैं। परमानन्द मेवाराम इस युग के प्रसिद्ध निबंधकार तथा शब्दकोष रचयिता हो गए हैं। प्रसादपूर्ण शैली और मुहावरेदार भाषा वाले उनके लघु निबंध जवान और बुजुर्ग–दोनों के लिए मनोरंजक और शिक्षाप्रद सिद्ध हुए हैं।

इन साहित्यकारों के कुछ ही बाद हमें सिंधी गद्य-साहित्य में तीन महारथी लेखक मिलते हैं। भेरूमल मेहरचन्द साहित्यकार के साथ-साथ भाषाविज्ञानी और समाजशास्त्रवेत्ता भी थे। लालचन्द अमरडिनोमल की शैली निराली ही है। उनकी गद्य रचनाओं में प्राचीन तथा अनोखे शब्द-प्रयोगों की बहुलता और कोमल भावुकता देखते ही बनती है। तीसरे गद्यकार थे जेठमल परसराम। वे

साहित्यकार के साथ-साथ अच्छे पत्रकार और राजनीतिज्ञ भी थे। जेठमल, श्रीमती ऐनी बसेन्ट के अनुयायी थे और उनके मत से सम्बद्ध कई पुस्तिकाओं का उन्होंने सिंधी में अनुवाद किया है। अंग्रेज़ी साहित्य के कुछ प्रसिद्ध ग्रंथों को सिंधी में संक्षिप्त रूप में लाने का श्रेय भी इस लेखक को है। जेठमल एक अच्छे निबंधकार थे। समाजवाद, थियौसौफी और सूफीमत से प्रेरित उनकी विचारधारा पाठकों को प्रभावित करने में काफ़ी प्रबल थी। इसी पीढ़ी के और सहित्यकारों में आचार्य गिडवानी, नारायणदास रतनमल मलकाणी, लीलाराम प्रेमचंद, ड्याराम मीरचंदाणी, डा० होतचंद मूलचंद गुरबख़्शाणी के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सभी ने सिन्धी साहित्य को प्रशंसनीय साहित्य-कृतियां प्रदान की हैं।

देश के विभाजन से सिंधी जाति को असंख्य बाधाओं और कष्टों का सामना करना पड़ा। परन्तु ऐसी स्थिति में भी सिंधी लेखकों का साहित्य-सृष्टि करने का उत्साह मन्द नहीं हुआ। वास्तव में विभाजन के पश्चात् सिंधियों की साहित्यिक प्रवृत्तियां मन्द होने के विपरीत अधिक तीव्र गति से, पाकिस्तान और भारत—दोनों देशों में आगे बढ़ती जा रही हैं। इसकी हमारे भविष्य पर अवश्य ही गहरी छाप पड़ेगी। उदाहरणार्थ, अब हम चमत्कारिक और नैतिक उपदेश देने वाले नाटकों से काफी आगे बढ़ चुके हैं। प्राध्यापक मंघाराम मलकाणी के नाटकों में असमान पति-पत्नी, बहुपत्नी विवाह, तलाक, सौतेली माँ और उस के पुत्र के बीच प्रेम-सम्बन्ध जैसे विषय मिलते हैं। उसी प्रवार गोबिन्द माल्ही की विशेष विचारधाओं पर आधारित नाटक तथा तीरथ बसन्त के दिमागी कसरत वाले नाटक इस क्षेत्र में प्रगति के सूचक हैं। इसके अतिरिक्त, सिंधी रंगमंच के क्षेत्र में भी कुछ नाटक संस्थाएं स्थापित हुई हैं जिन्होंने सिंधी नाटकों को मंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है।

कविता के क्षेत्र में भी सिन्धी साहित्य मे काफी विकास हुआ है। विदेशीय छन्दों के सिन्धी कविता में सुन्दर प्रयोग मिलते हैं। कविता में अब संगीत का महत्व नहीं रहा। कवि को कीट्स की उस उक्ति का अनुसरण करने की अब कोई चिन्ता नहीं जिसमें उसने सौन्दर्य का महत्व बताया है, "सुन्दर वस्तु सर्वदा आनन्दप्रद होती है।" आज की सिन्धी कविता के विषय में भी महान परिवर्तन आ चुका है। समाज की गन्दगी, दरिद्रता, लोगों की शारीरिक तथा नैतिक गिरावट आज के संवेदनशील भावुक कवि की आत्मा को झकझोरने की पर्याप्त क्षमता रखती है। आज के कवि प्राकृतिक सौन्दर्य के गीत गाने तथा अपने पूर्वजों के निर्धारित आदर्शों को प्रस्तुत करने से इन्कार करते हैं। उनके लिए

असौन्दर्य में सौन्दर्य दिखाने में ही कला की सम्पन्नता है। आज के कवि की आत्मा जीवन के कटु अनुभवों से छटपटा उठी है। अब की कविता उन विद्रोही लोगों की उक्ति है जो यह मानते हैं कि समाज ने उन्हें अच्छा जीवन बिताने का मौका न देकर उनके साथ धोखा किया है। पिछले कुछ वर्षों से ऐसे कवियों की रचनाएं सिन्धी साहित्य में मुख्य स्थान ग्रहण कर चुकी हैं।

जहाँ तक मुझे मालूम है भारतीय साहित्य में हमें अब तक ऐसे उपन्यास नहीं मिलते जो विश्व के महान उपन्यासों का मुकाबला कर सकें। सिन्धी में साहित्य की यह शाखा अभी तक आरम्भिक अवस्था में है। गोबिन्द माल्ही आदि सिन्धी के अच्छे उपन्यासकार हैं। इस क्षेत्र में पोपटी हीरानन्दाणी, सुंदरी उत्तमचंदाणी, कला प्रकाश, तारा मीरचंदाणी आदि लेखिकाओं ने अच्छा योगदान किया है। इन्होंने अधिकतर नारी जीवन सम्बन्धी विषयों को लेकर उन पर अपने ही दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। इन लेखिकाओं की विशेष शिकायत यह है कि आधुनिक परिस्थितियों के कारण समाज का सुसंगठित ढांचा टूट गया है।

कहानी सुनाना वास्तव में विश्व की प्राचीनतम कला है। अब तक कहानी का मतलब था कोई ऐसी घटना का वर्णन जिसमें सुनिर्धारित पात्र भाग लेते थे। जहाँ पहले घटनाओं के क्रम में पात्रों का बुद्धिसंगत वर्णन होता था वहाँ अब अविश्वसनीय चमत्कार आ गया है, जिसे उसके लेखक 'अकहानी' नाम से पुकारने लगे हैं। इस काव्य-रूप का निरीक्षण करने से अकहानीकारों की सनक जाहिर हो सकती है। घटनाओं का सम्बन्ध तो मनुष्यों से है ही और वे मनुष्य बुद्धि-मत्तापूर्ण व्यवस्था तथा विवेकशीलता की शक्ति खो चुके हैं। वे सभी उद्देश्यपूर्ण विषय जो अकहानी के लेखकों को मिल सकते थे, उनके समाप्त होने पर अब ये कलाकार अल-सिरात के किनारे पर एक ख़तरनाक स्थान पर आकर खड़े हो गये हैं और गहरी खाई की दूसरी ओर हूरें उन्हें पुकार रही हैं। सन् 1950 के आसपास प्रगतिवादियों तथा कटु यथार्थ को कहानियों में चित्रित करने वाले लेखकों की रचनाएं हमें सिंधी साहित्य में मिलती थीं जिनमें पढ़े लिखे लोगों का नौकरी की तलाश में भटकने आदि चित्र हमें मिलते हैं। अब सिंधी कहानी उस स्थिति से आगे बढ़ चुकी है। अपने पूर्ववर्ती प्रगतिवादी कहानीकारों से हटकर कुछ लेखकों ने काल्पनिक इन्द्रिय-सुख प्राप्ति की स्थितियों की सृष्टि की, जिससे उनकी मन्द पड़ी हुई शक्तियों में फिर से नई जान-सी आ गई और उनका परिचय समाज के सुखी वर्ग की इच्छाओं तथा अनुभूतियों से हुआ। ऐसी कहानियों में कुछ ऐसी रचनाएं भी हमें मिलती हैं जिनमें नग्नता और

कामुकता का स्वच्छन्दता से प्रदर्शन किया गया है। जो वास्तव में अवांछनीय है क्योंकि ऐसे चित्रण से लोगों के मन पर बुरा असर पड़ सकता है। आजकल के कहानी लेखक कहानी कला के सभी बंधनों की अवहेलना करने का ढोंग करते हैं। वे यह महसूस नहीं करते कि जानबूझ कर अपनी रचना को उद्देश्य-हीन बनाना भी एक प्रकार का उद्देश्य ही है। ऐसी कहानियों में टूटे-फूटे वाक्य, भद्दी रचना, लेखक का स्पष्टतः मुखरित अहंकार, क्षुब्ध करने वाली शैली होने के बावजूद भी लेखक अपनी कल्पना द्वारा किसी न किसी तरह अपने विचारों को पाठकों तक पहुँचाने का रास्ता ढूंढ निकालता है।

आलोचना के क्षेत्र में सिंधी में पहले केवल कुछ कवियों की कृतियों की प्रशंसात्मक टीका मिलती थी। साहित्य के विभिन्न रूपों के सैद्धान्तिक विश्लेषण और रचनात्मक आलोचना का सिन्धी साहित्य में अभाव था। इस कमी को पूरा करने के लिए अब साहित्य के सिद्धान्तों तथा साहित्य के विभिन्न रूपों पर उन्हें लागू कर विश्लेषण करने के विषय पर अब कुछ पुस्तकें लिखी गई हैं। फिर भी इस क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करना बाकी है। आशा की जाती है कि इस क्षेत्र में अधिकाधिक अध्ययन करने से विद्वत्ता में परिपक्वता आ जाएगी।

सिंधी में जीवनचरित्रों के क्षेत्र में ऐसा मौलिक साहित्य बहुत कम है जो कि समय की कसौटी पर खरा उतर सके। पिछले दस वर्षों में विष्णु शर्मा ने डा० चोइथराम गिदवाणी का जीवनचरित्र किश्तों में प्रकाशित किया था जो अब पुस्तकाकार में भी छपा है। इस कृति में हमें एक अच्छी जीवनी लिखने की कला के तत्व मिलते हैं। मैंने भी 'कँवर' नामक एक पुस्तक लिखी है जिसमें सिंध के प्रसिद्ध संत कंवर का जीवन-चरित्र है। मुख्यतः भावात्मक होने के कारण इस कृति की जीवनी के रूप में प्रसिद्धि शाश्वत् रहेगी। आधुनिक काल में हमें निबन्ध-रचना के प्रति भी सिन्धी साहित्यकारों की रुचि बढ़ती हुई दिखाई देती है। कई सुन्दर निबन्ध लिखे गये हैं। पचास वर्षों से भी कुछ अधिक समय तक सिन्धी में राजनैतिक विषयों पर कई पुस्तिकाओं के रूप में निबन्ध-रचना होती रही। सामयिक विवादों से सम्बद्ध होने के कारण उत्तम साहित्य के नाते ऐसी रचनाएं शाश्वत मूल्य नहीं रखतीं। उसी प्रकार ही आरम्भिक काल में लिखे गये आलोचनात्मक निबन्धों में भी हमें शाश्वत् महत्व की रचनाएं बहुत कम मिलती हैं। अब तो कुछ साहित्यकार निबन्ध रचना के स्तर को ऊपर उठाने के लिए कटिबद्ध हो गए हैं और वे उसको विश्व की उत्तम रचनाओं की श्रेणी में देखने की लालसा रखते हैं। इस लघु सर्वेक्षण में सीमित परिधि के कारण कई विषयों को जानबूझ कर छोड़ दिया गया है।

सामी के श्लोकों का तात्पर्य

ड्याराम गिदूमल शहाणी

इस जहान में हमारे पांच शत्रु हैं ऐसे बलवान शत्रु और कोई नहीं। उनके नाम प्रसिद्ध हैं परन्तु उनके निशान कुछ थोड़े ही लोगों को मालूम हैं। ऐसा कोई मनुष्य नहीं मिलेगा जो उनकी निन्दा नहीं करता। लेकिन ऐसा आदमी भी मुश्किल से मिलेगा जो उनमें से किसी न किसी को अपने भीतर धारण नहीं करता। उन शत्रुओं से हमें जितना प्यार है उतना अपने बच्चों से भी नहीं। फिर भी हम से यदि कोई पूछे कि वे आपके दुश्मन हैं या नहीं तो हम निश्चित ही उन्हें अपना शत्रु मानेंगे। उन दुश्मनों को हम जानते हुए भी नहीं जानते, समझते हुए भी नहीं समझते। उनके पास न तो सिपाही हैं, न तोपखाने, फिर भी वे राजाओं से अधिक शक्तिशाली हैं। राजा लोग स्वयं उनके दास हैं। वे ही ऐसे दुश्मन हैं जिन के विनाश के लिए श्रुतियां-स्मृतियां, कुरान-बाइबल बने। व्यास और बाल्मीकि, बुद्ध और ज़रथुस्त, मूसा और ईसा, कनफ्यूशस और हज़रत मुहम्मद, पैग़म्बर और कवीश्वर उन बैरियों को नष्ट करने के लिए पैदा हुए। परन्तु वे हमारे शत्रु अभी तक हमें अपने अधिकार में रखे हुए हैं। वे न केवल हमारे हृदय में विराजमान हैं लेकिन हमारे सज्जनों और हमारे देवताओं का रूप धारण कर हमारी सब पूजा-अर्चना अपनी ओर खींच लेते हैं। उन राक्षसों को नष्ट करने के कितने ही मन्त्र हैं पर उन बैरियों से हमारा इतना स्नेह हो गया है कि मन्त्रों की साधना करने का विचार हमें अच्छा ही नहीं लगता। मनुष्य-योनि का मतलब अब केवल उन शत्रुओं की गुलामी है और न कि जैसे सामी ने कहा है कि 'काल को काट कर अमर बन जाना।' जब हम स्वस्थ हैं तब काल का ध्यान तो हमें स्वप्न में भी नहीं रहता। केवल जब कोई आपदा हम पर पड़ती है तब वैरियों के वैर का ध्यान हमें आता है। ऐसे समय काम का

नशा उतर जाता है, क्रोध का हलाहल कम हो जाता है, लोभ शहद-सा मीठा नहीं लगता, मोह की तुच्छता ज्ञात हो जाती है और अहंकार के अंधकार का परदा हट जाता है। ऐसे समय वे हमारे पांच शत्रु निकल कर प्रकट हो जाते हैं और ईश्वर का नाम हमारी ज़बान पर आता है। ऐसी बीमारी भली, जिसमें हमारा सच्चा मित्र हमारे समीप आ जाता है। ऐसी तन्दुरुस्ती त्याज्य है जिसमें वह हम से दूर रहता है। ऐसा अस्वास्थ्य वास्तव में स्वास्थ्य है और ऐसा स्वास्थ्य वास्तव में अस्वास्थ्य। सामी के अनुसार ऐसी बीमारी का इलाज है साधु-संगति। साधु-संगति का मतलब उन लोगों की संगति नहीं जो अपने को साधु कहलाते हैं और भीख मांगते हैं। बल्कि इसका मतलब है उन लोगों का सम्पर्क, जिनके पास सत्कर्म, शील, संतोष, निर्वैरता, सेवा, दया और धर्म आदि गुण हैं। साधु वे हैं जो हर हाल में प्रसन्न-चित्त रहते हैं, जो जगत् को मिथ्या मान कर काया और माया के मोह में नहीं फँसते। साधु वे हैं जिन के हृदय में हमेशा परमात्मा का निवास है, जिनके लिए सुख-दुःख, उन्नति-अवनति, रंजो-गम सभी समान हैं और जो परमात्मा के स्वरूप पर अपने आपको इस तरह न्यौछावर कर देते हैं जिस तरह चकोर चांद पर, परवाना शमा पर खुद को कुर्बान कर देता है। तात्पर्य यह कि साधु वे हैं जिनका धन आत्म-धन है, जिनका ज्ञान आत्म-ज्ञान है। कोई भी इस बात से इन्कार नहीं करेगा कि ऐसा ही ज्ञान उत्तम है।

दुश्मनों को नष्ट करना एक बात है और दोस्तों को हासिल करना दूसरी बात है। साधु-संगति एक बात है, साधु होना दूसरी। साधुजनों के सम्पर्क से मन के विकारों को निकाला जा सकता है पर साधु बनने के बिना भगवान नहीं मिलता। कुछ लोग समझते हैं कि साधु वे हैं जिन्होंने फ़कीरी बाना पहन लिया है। लेकिन दुनिया के कष्टों का, आकर्षणों का जिसे अनुभव नहीं हुआ वह प्रेम क्या कर सकेगा? जो लहरों से डरेगा वह तैरना कैसे सीखेगा? जो संसार के लोभ-लालच से नहीं लड़ेगा उसे वीर कौन कहेगा? जो कष्टों के भय से डर कर भागेगा उसे परमात्मा की सहायता का क्या अनुभव होगा? हर एक व्यक्ति की आत्मा पर भारी कर्ज़ है और उस कर्ज़ को चुकाना उसका फर्ज़ है। कई अवसर, कई संकेत हमें मिलते हैं, लेकिन अपने ऋण और कर्त्तव्यपालन का हमें जरा भी स्मरण नहीं आता। धनिक को जरा भी याद नहीं कि वह कर्ज़दार है। विद्वान को भी अपना ऋण याद नहीं। दोनों ही अपने को उऋण, निश्चिन्त और कर्त्तव्य-मुक्त समझते हैं। वे नहीं समझते कि उन पर साहूकारों और नादानों से भी अधिक ज़िम्मेदारी है। इस बात का उन्हें तनिक भी ज्ञान नहीं कि वे

मालिक नहीं, पर नौकर हैं। उन्हें जो धन मिला है वह तो धरोहर है जिसे उन्हें अच्छे कार्यों में लगाना है और न कि उससे स्वार्थ-सिद्धि करनी है। सामी के श्लोकों में अधिक जोर अहंकार को मारने पर दिया गया है। यदि हम अपने को महान् समझने लगेंगे और जो हमें मिला है—इन्द्रिय और अंग, धन और विद्या, हुन्नर और होश, उसे मालिक का दिया हुआ न मान कर अपना समझेंगे तो हमारा अहंकार कैसे नष्ट होगा ? प्रतिक्षण हम यदि यह विश्वासघात करते रहेंगे तो फिर हमारा अन्त कैसा होगा ? यह जो उत्तम मनुष्य-योनि हमें मिली है उसमें भी हम यदि परमात्मा को भूल जाएंगे तो हमारा क्या हाल होगा ? कई लोगों ने मनुष्य की सुन्दरता पर लट्टू होकर अपने आपको उस पर न्यौछावर कर दिया है। पर जिस प्रभु ने ऐसे सौन्दर्य की सृष्टि की उसकी असीम शोभा पर हमारा जरा भी ध्यान नहीं जाता। यदि हम परमात्मा के रूप की जरा भी कल्पना करें तो उसकी सेवा करने से हम कभी दूर न भागें और द्वैत का भेद एकदम मिट जाए, मैं, मेरा आदि शब्द हमारे मुख से कभी न निकलें। शाह अब्दुल लतीफ ने कहा है :

सूली जिनके लिए सेज है, मरना उनके लिए प्रभु के दर्शन करना है।

सामी ने भी ऐसे ही श्लोक कहे हैं। उनका भावार्थ यह है कि कष्टों से डरना नहीं चाहिए और अपने अहंकार, संशय आदि को फांसी पर लटका देना चाहिए। स्वार्थ से दूर रहना चाहिए। अपना तन, मन और धन प्रभु की सेवा में अर्पण कर देना चाहिए। यही है सच्ची विद्या जिसकी सामी ने इतनी प्रशंसा की है। काश ! ऐसी विद्या हम सभी को प्राप्त हो। इस विद्या के मिलने पर सूली सेज बन जाती है, विष अमृत बन जाता है, बीमारी सेहत बन जाती है, दुःख सुख बन जाता है, ग़रीबी साहूकारी बन जाती है और मृत्यु जीवन बन जाती है। इस विद्या के अनुसार कोई भी चीज़ उपयोग-रहित नहीं, कोई भी दुर्घटना नियम के बंधनों से मुक्त नहीं। इसी विद्या के अनुसार दूसरों के कल्याण में अपना कल्याण है, दूसरों की सेवा में अपनी सेवा है और प्रभु की दासता साम्राज्य से भी अधिक है। यही पाठ वेदान्त पढ़ाता है। यही पाठ हमें सामी के इन श्लोकों से भी मिलता है।

काश ! श्लोकों की इस शिक्षा को हम हृदयंगम करें, हमारे शरीर की नस नस इस के स्वर को अलापती रहे।

श्रावण आया

परमानन्द मेवाराम

मंगल की रात को काफ़ी बरसात हुई। उससे पहले घुटन हुई, उत्तर दिशा में घटाएं उमड़-घुमड़कर आईं, बिजली तड़पती रही और लगा, अब बरसात हुई, अब बरसात हुई। मौसमी मेघ की बिजली खाली नहीं जाती। रात को बरसात से इधर-उधर सब जगह पानी भर गया। ग़रीब किसान-कामगर प्रसन्न दिखते थे। अब अनाज सस्ता रहेगा। मटके में मक्खन होगा। सुबह से ही कोई बैंत गा रहा था।

बिजूं वसण आयूं, टह टह मींहं टिमनि,
जिनि महांगो लही मेडियो से था हथ हणनि,
पंजनि मंझां पंध्रहां थ्या, इएं था वर्क़ वरनि,
डुकार्या ड्हनि मां शल मूज़ी सभु मरनि।

अर्थात्...'बिजली तड़प रही है। बरसात हो रही है। जिन्होंने अनाज महंगा बेचने के लिए गोदामों में छिपा रखा था, वे हाथ मल रहे हैं। उनके पाँच से पंद्रह हुए, ऐसे उनके बहीखातों के पन्ने पलट रहे थे। ऐसे मुनाफ़ाखोर मरें।'

भला, पानी के उमगने से बाग़ों में बहार जो आ गई। अजीब समा बंध गया है। ऐसे में ऐसे बैंत होंठो पर अनायास आएंगे ही। कोई गा रहा था—

मथां मुंजु के मेघ मलारा,
मींहं घुरनि था मालनि वारा,
तो मां विर्चनि कीन बेचारा,
लालनि को रंगु लाइ, सरहा सारंग डींहं सदाइ :

अर्थात् —'हे ईश्वर। ऊपर से मेघ-मल्हार भेजो। चौपाया माल वाले तुमसे बरसातें मांगते हैं। तुमसे ये बेचारे कभी निराश नहीं हुए। रंग-रौनक लाओ। ये बरसात के दिनों सदा खुश रहते हैं।'

लेकिन मज़ा तो आया उससे पहले शुक्रवार के दिन। आसमान में बादल, हवा में खुनकी, हैदराबाद (सिंध) मानो शिमला हो गया हो। मैं शाम को चहलकदमी के लिए घर से निकला। मुझे क्या आनन्द मिला, मैं कभी नहीं भूलूंगा। वह फुलेली नहर देखो, हड़बड़ाती, बड़बड़ाती, ढहती-गिरती जा रही थी। माई फुलेली को किसी की बात सुनने की फुर्सत न थी। वह अपने किनारों में न समाती थी और ताबड़तोड़ बही जा रही, वह बोली : 'देखते नहीं हो, देर हो गई है, किसान मुँह बाए खड़े होंगे। मेरा कोई दोष नहीं, सनकी दरिया को कहो। प्रेमी का तरह कभी किस मौज में, कभी किस मौज में। कभी शांत रहेगा, कभी नाज नखरे करेगा, कभी बाढ़ से पानी पाट देगा। कुछ को हरा-भरा, कुछ को उजाड़-भंगार कर रख देगा। यह उसकी खराब आदत है। वैसे सिंध के लोगों से उसे इस तरह व्यवहार नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार सोई स्त्री पति को छोड़कर परपुरुष के पीछे दौड़े, उस प्रकार सिन्ध के लोग ईश्वर को एक तरफ छोड़ पहले सिन्धु दरिया को मनाते हैं, 'झूले लाल' कहते हैं, उसमें अक्षत डालते हैं, दिये तिराते हैं, मौन-मूक डुबकियां लगाते हैं। उसे पीर की तरह पूजते हैं। फिर भी उसके ये हाल हैं। मुझसे अगर पूछें, मैं उन्हें कहूं कि वे उसे छोड़ दें, उसकी तरफ़ देखें भी नहीं। जिस सृष्टा ने उसे इतना बड़ा मर्तबा दिया है, उसका यश-गान करें, वे टहनी को छोड़ मूल को पकड़ लें तो उसका सारा नशा काफूर हो जाएगा। पर मैं अबला होकर यह क्या कह रही हूं ? मेरा नाम न लेना। मैं फिर भी उसके दम से हूं, उसकी बच्ची हूं। खुदा मूल, वह टहनी तो मैं उसकी पत्ती हूं, वह रईस, मैं गोली हूं; सिन्धु है इसीलिए फुलेली हूं।'

उधर उसे देर हो रही थी, इधर वह अनर्गल बातें कर गई। ख़ैर, मैं तो किनारे किनारे चलकर फुलेली के प्रवाह का आनन्द लेता एक बाग में जा निकला। ऐसी हरियाली, फूलों की बहार देखते ही बनती थी। पेड़ पौधे हरे थे। गुलाब, गेंदा, चंपा, चमेली आदि के फूल खिले थे। सुगंध, सुवर्ण और सुस्वर का मेला था। ऐसे सुहावने दिन सारी सृष्टि आनन्दमग्न लग रही थी। तरह-तरह के पक्षी भी आ मिले थे और चहचहा रहे थे। वैसे उनके दर्शन दुर्लभ होते हैं, कोई एक दो नज़र आते हैं। उस समय सब से पहले विविध-वर्ण कठफोड़वा कलरव करता सिर के ऊपर से निकल गया। आम के पेड़ पर देखें तो नीलकण्ठ पक्षी बैठा था। गंवारों का कौआ यही है

वहमी लोग दूसरी बार या तीसरी बार बुखार वाले को इसके पर बांधते हैं। तोते तो असंख्य थे। हम लोग तोते पालें, उनकी हर इच्छा पूरी करें, परन्तु वे नामुराद बड़े हानिकारक हैं। बाग़बां से उनकी खबर पूछें तो वह उनकी शिकायतों के ढेर लगा देगा। कहेगा, 'मालिक, इधर मुँह किया नहीं, उधर यह तोता आम या सेब या अमरूद तोड़कर भाग जाएगा, गुलेल की भी परवाह नहीं करेगा'। गर्मी में बुलबुल की आवाज़ बिरले ही सुनाई पड़ती है। उस दिन तो उसका मुजरा-सा हो रहा था। काली मीटो फूलों का स्वाद ले रही थी। उस-सा एक और पक्षी देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। नितान्त उस जैसा, परन्तु रंग हरा। निस्संदेह मीटो ने रंग बदला था। ऐसी उसकी प्रकृति है। मैं बाग़ में एक जगह बैठ ही गया। मंद शीतल समीर बह रहा था, कोयल की कुहू-कुहू बोली में रस घोल रही थी। एक कोयल सिर के बिल्कुल ऊपर से उड़कर अपना श्याम वेश-वर्ण दिखा गई। अबाबीलें भी फिर रही थीं। पेडकी पीछे रहने वाली न थी। संभवतः दूर बबूलों पर से कीड़े झपटने में ही व्यस्त थी। लौटते समय उल्लू भी दिखाई दिया और टिटिहारोर भी कानो पड़ा।

ऐसी एकांत जगह पर जहां शहर का शोरोगुल नहीं, वहां हमारा चित उसकी ओर अनायास आकृष्ट हो जाता है जिसने ऐसी सुन्दर सृष्टि बनाई है। ऐसे सुमधुर और शांत वातावरण में हृदय के पट खुलते हैं और सृष्टा से निरावरण, निस्संकोच वार्तालाप होता है। हम उसका रूप-पान करते हैं। कवि ने भी कहा है ... जब हम शहर के हंगामे से दूर हैं तब हमें लगता है कि पेड़ों को जिह्वाएँ हैं, बहती नहर में पुस्तक, पत्थर में प्रबोध है, प्रत्येक वस्तु में गुण है।

प्रेम

•

भेरुमल मेहरचन्द

कुछ लोगों का ऐसा अच्छा स्वभाव होता है कि वे हरेक बात में अच्छाई देखते हैं। कहते हैं, "जो कुछ हो रहा है, हमारे फायदे के लिए हो रहा है।" ऐसी कोई विपत्ति नहीं जिससे उनके रूह को राहत न आए और हृदय को सांत्वना न मिले। यदि आकाश घनघोर घटाओं से आच्छादित है तो उन्हें कहीं न कहीं से सूर्य की सुन्दर किरणें दिख जाएंगी। किसी समय सूरज आँख से ओझल होगा तो भी वे अपने दिल को इस ख्याल से बहलाएंगे, "सूरज है तो सही, परन्तु ईश ने किसी मतलब से उसे छुपाया है।" उनकी आँखों में ऐसी कोई चमक है जो उन्हें हर बात में नेकी नज़र आती है। उनके चित्त के इर्दगिर्द ऐसा कोई सूरज चमकता है जिससे उनका अंतस् सदा प्रकाशमान है और वे आँख उठाकर जहाँ कहीं निहारते हैं उनकी निगाह में नूर ही नूर आता है।

वे ज़हर पीने के आदी हैं। अचानक उनके सिर पर कोई मुसीबत आ पड़े तो घबराएंगे नहीं, चिल्लाएंगे नहीं। वे नीलकण्ठ हैं।

दिल को धीरज बँधाकर मंजिल की ओर बढ़ते हैं। रास्ते पर कांटे बिखरे होंगे, उन पर से भी ऐसे डग भरते जाएंगे मानो फूल बिछे हों। वे धैर्य का संबल लेकर पहाड़ों के दर पार कर जाते हैं। उनके लिए मुसीबत मुसीबत नहीं। उनके लिए पीड़ा वरदान है। वे दुःखों से कभी नहीं डरते, उनको बुलावा देते हैं। सूली को सुख की सेज मानते हैं। वे स्वयं सुख में हैं। उन्हें देखकर हमें भी सुख मिलता है, हमारी आँखें शीतल होती हैं। वे सबका भला चाहते हैं। शुभ बोलते हैं, शुभ विचारते हैं। सचमुच ऐसे विलक्षण व्यक्ति साधारण जनों के दर्जे से बहुत ऊँचे हैं। उन्हें देवपुरुष कहा जाए तो सर्वथा उचित है।

सब पूछेंगे उनका यह अलौकिक स्वभाव ऐसी किस नींव पर खड़ा है जिससे वे सदा ईश्वर की मर्ज़ी पर खुश रहते हैं और आज की बुराई में कल की भलाई देखते हैं ? इसका उत्तर यह है कि उनमें प्रेम का अंग है । यह प्रेम ही बुनियादी पत्थर है जिस पर उनका अलौकिक स्वभाव टिका है ।

प्रेम एक चुंबकीय आकर्षण का पौधा है और हम सबका कर्त्तव्य है कि भली-भाँति देख-रेख कर इस पौधे को पेड़ बनाएं ताकि हम सब उसकी छाया में सुख की साँस ले । प्रेम से प्रेम बढ़ता है । प्रेम की यह विशेषता है कि इसके होने से मनुष्य अपने आपको भूल जाता है, स्वार्थ नष्ट होता है और उसकी जगह त्याग ले लेता है । उदाहरणतः माँ का बच्चे के लिए प्यार है, वह अपना पेट काटकर भी बच्चे का पेट भरती है, उस पर कुर्बान होने को तैयार रहती है । पत्नी का पति से प्रेम है, वह उसके वशीभूत होकर अपना तन, मन, धन न्यौछावर करती है । जिनका अपने देश से प्यार है, वे अपने देश के लिए कई प्रकार की यातनाएं सहन करते हैं और हर दुःख को सुख समझते हैं । जिन्हें ईश्वर से प्रेम है, उनमें से कितने ईश्वर की राह में सिर देकर शहीद हुए हैं । यह शहादत भी मुहब्बत का एक लक्षण है । इस प्रकार अन्य सभी सुलक्षण प्रेम के कारण हैं । जिसके यहाँ प्रेम है, उसके यहाँ सभी गुण मौजूद हैं । प्रेम में जादू है । मीराबाई को राणा ने विष का प्याला भेजा, वह अमृत समझ पी गई और उसे कुछ नहीं हुआ । फिर राणा ने डिबिया में काला नाग भेजा, वह उसे सालिगराम समझ गले में पहनने लगी । प्रेम के कारण विष अपना प्रभाव न दिखा सका । प्रेम के प्रताप से काला नाग डसने-काटने का स्वभाव भूल गया । प्रेम की लीला अपार है । ईश्वर हमारा चित्त अपनी ओर आकर्षित करे, हम उसके प्रेम में उन्मत्त रहें । एक सिंधी कवि कहते हैं—"मुहब्बत न जिनिजे मन में तिनिजी मिट्टी अणासी" अर्थात्—'जिनके दिल में प्यार नहीं, उनकी मिट्टी बेदार नहीं ।'

गुरु और शिष्य

जेठमल परसराम

गुरु और शिष्य का सम्बन्ध प्राचीन काल से रहा है। परन्तु जैसे-जैसे समय बदला वैसे-वैसे इस सम्बन्ध में भी परिवर्तन होता रहा। पुराने समय में आज के-से विद्यालय न थे, जिनमें दिन को कुछ घण्टों के लिए विद्यार्थी आकर कुर्सियों या बेंचों पर रीढ़ की हड्डी तानकर बैठें, अध्यापक कक्षाओं में आकर बतियाकर या भाषण झाड़कर चले जाएं और छुट्टी होते ही दोनों—विद्यार्थी और अध्यापक···अपने-अपने घरों में जाकर सुखी हों। आजकल विद्यार्थी का कर्त्तव्य है,निर्धारित शुल्क देना और अध्यापक का कार्यभार है परीक्षा में उत्तीर्ण कराना। पढ़ाई भी एक प्रकार से एक दुकानदारी हो गई है। प्राचीन काल में ऐसा न था। आर्य-ग्रंथों से प्रगट होता है कि तब बड़े-बड़े विद्यालय और आश्रम होते थे जिनमें अनेक छोटी-बड़ी उम्र के विद्यार्थी विद्यार्जन करते थे। वहाँ दुकानदारी का नमूना न था, पर घर-परिवार का तौर-तरीका था। शिक्षा की बुनियाद केवल वक्तृत्व-गति नहीं थी, परन्तु शिष्य के जीवन पर गुरु के जीवन का प्रभाव था। आश्रमों में गुरु पिता थे और विद्यार्थी घर के बालक। गुरु उदर पूर्ति की चिन्ता से मुक्त थे, पैसे के आसरे न थे और विद्यार्थियों के सगे-संबंधियों के सहारे न थे। वे विद्यार्थी के अंतस् में प्रकाश भरना अपना कर्त्तव्य समझते थे।

प्रकृति का अध्ययन करेंगे तो पता चलेगा कि मनुष्य एकमात्र भाषणों द्वारा शिक्षा प्राप्त नहीं करता। उदाहरण के लिए घर में बालक बोलना सीखता है, कोई उसे व्याकरण के नियम नहीं सिखाता तो भी उसे शुद्ध भाषा का ज्ञान हो जाता है। प्रकृति का मार्ग प्रायः सूक्ष्म, परोक्ष और फिर भी अचूक है। कैसे बीज से पेड़ होता है? ज़मीन बीज को कोख में सहेजकर रखती है, पानी

उसका पोषण करता है, सूर्य उसे अपनी उष्णता प्रदान करता है, वायु उसे फोड़ती है। प्रकृति का यह नियम है···बीज में से वृक्ष, चिनगारी में से अग्नि, बूंद से दरिया बना देना ? कैसे अन्डे से पक्षी पैदा होता है। मादा अपने प्राणपण से चूजे को पाल-पोस कर बड़ा करती है।

मानव शिशु के साथ भी यही स्थिति है, मानव की विशेषता है विचार और भाव क्षमता, मस्तिष्क और हृदय की शक्ति। उसका केवल भाषणों और पुस्तकों द्वारा विकास नहीं होता, परन्तु जब गुरु की ज्योतिर्मय और करुणामय आत्मा शिष्य में प्रकाश और गंध भरती है तब यह कली फूल बनती है।

संग से नैसर्गिक शिक्षा प्राप्त होती है; गुरु शिष्य की संगति और उनका प्रेममय सम्बन्ध। गीता में अर्जुन कृष्ण से पूछते हैं कि शिक्षा का कौन-सा रास्ता है ? कृष्ण कहते हैं···उसके लिए तीन बातें आवश्यक हैं। सबसे पहले शिष्य को चाहिए कि वह गुरु के पाँव पड़े। आजकल विद्यार्थी यह बात पढ़कर हंसेंगे और अध्यापक भी मुसकरायेंगे। लेकिन इसका बुनियादी अर्थ है कि गुरु और शिष्य के बीच सामंजस्य, सम्पर्क और यथोचित श्रद्धा या स्नेह हो। देखिये संगीतकार कैसे अपने सरोद में से सुमधुर तान छेड़ता है। केवल अंगुलियाँ चलाने से किस प्रकार राग फूटता है। लेकिन पहले आवश्यक है कि संगीतकार और सरोद में संगति स्थापित हो। पहले सरोदकार अपने साज़ के साथ हम-दर्दी पैदा करे, फिर उसकी तान में अपनी आत्मा का रहस्य समाविष्ट करे। जब उस्ताद और शागिर्द हमसाज़ हो जाते हैं तब शिक्षा का आरम्भ होता है।

कृष्ण अर्जुन को अब दूसरा कदम उठाने की ज़रूरत समझाते हैं। वह कदम है—सवाल पूछना। आजकल स्कूलों में और ख़ास तौर पर कालिजों में सवाल पूछने का तरीक़ा नहीं रहा है। शिक्षार्थी बेंचों पर सीधे बैठे हुए और शिक्षक अपनी टाँगों पर सीधे खड़े हुए। शिक्षक बोलते जा रहे हैं और विद्यार्थी सुनते जा रहे हैं। विद्यार्थियों के कान खुले हैं। लेकिन यह पता नहीं कि उन कानों के अन्दर मन सो रहे हैं या जाग रहे हैं। उनके कान खुले हैं। पता नहीं शिक्षा एक कान से जाकर दूसरे कान से बाहर निकल रही है या मन तक जाकर जीवन की पूंजी बन रही है। पीर का काम विषय की ऊपरी समीक्षा से और मुरीद का केवल परीक्षा से रह गया है। छांदोग्य उपनिषद् में पढ़ाने का अच्छा तरीका बताया गया है, वही तरीका जिसे आजकल 'आब्जेक्ट लेसन' कहा जाता है। उसमें भी विद्यार्थी ही अधिकतर बोलता है, अध्यापक नहीं। आर्यकाल में कालिज पेड़ों की छाया में लगते थे। प्राचीन यूनानी सभ्यता के अन्तर्गत सुकरात के युग में कालिज चौकों में लगते थे। सुकरात के विद्यार्थी

पहले दिल-बहलाव करते थे, शरबत के जाम पीते थे, हँसते-हँसाते थे, फिर उन में अनायास प्रश्न उठते थे। सुकरात उन प्रश्नों के उत्तर देते थे। कभी सुकरात पहेलियां बूझते, नवयुवक सोचते रह जाते। गुरु और शिष्य मित्र की तरह थे। अभी हाल ही में डा० अरुण्डेल सेन्ट्रल हिन्दू कालिज में ठीक ऐसे ही पढ़ाते थे।

शेष रहा तीसरा कदम—सेवा। सेवा का अर्थ नौकरी नहीं है। सेवा है प्राप्त शिक्षा को आचरण में लाना। यह गुरु और शिष्य दोनों के लिए आवश्यक है। सेवा वह है जिससे फल प्राप्त हो, वह नहीं जो रीती हो, खाली हो।

जब मैं गीता के बताये हुए इस मार्ग पर सोचता हूँ तब लगता है कि उस श्लोक में अध्यापन-कला पर समुचित प्रकाश डाला गया है।

'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।'

···अर्जुन, अर्पण से, प्रश्न से और सेवा से उसे जानो।

चौपाया माल की चोरी

•

नारायण दास र० मलकाणी

तहसील सकरण्ड चोर तहसील है। चौपाया माल की चौरी करना कोई उनसे सीखे। दरिया नज़दीक है और हर साल बाढ़ का पानी अन्दर तक आ जाता है। पाँच झीलें और पाँचों दरिया जैसी। उन में कछुए बहुत। दूसरे वहाँ जंगल है, जहाँ पैर या खुर का निशान तक नहीं मिलता। चोर जानवर हाँककर जंगल में गायब हो जाते हैं। वहाँ के लोग चैत्र के बाद सिर्फ चोरी करते हैं।

उस दिन जाट ने दिल खोलकर बात की। वह बोला--मालिक, यह तहसील है चोर तहसील। यहाँ केर्या चोर हैं, जल्बाणी चोर हैं, चांड्या चोर है, रिन्द चोर हैं, गोसा चोर हैं......

मैं बोला—मियां, तुम कौन हो ?

जाट ने उत्तर दिया—मैं केर्या हूँ, हम भी नामी हैं।

मैंने कहा—भला तुम लोग दूसरों का माल क्यों ताकते हो ?

जाट ने कहा—मालिक, हम इस चीज़ के आदती हैं। पुरखों का धन्धा कौन छोड़ता है ? चौपाया माल ऐसे उड़ाकर ले जाएंगे जैसे पैसों की थैली हो। वह भी दिन दहाड़े, तुम्हारे सामने से खड़े-खड़े।

मैंने पूछा—भला तुमसे ज़्यादा बड़े चोर भी होंगे।

जाट ने कहा—मालिक, कई नामी-गिरामी चोर हैं। कासिम लशारी, रमज़ान उनड़, धगण केर्या...पर यहाँ हुबो शाह मशहूर है। वह पिछले महीने सज़ा काटकर जेल से रिहा हुआ। आज या कल फिर ननिहाल (जेल) जाएगा। लोगों को बददुआ देनी होती है तो कहते हैं, तुम्हारे माल पर हुबोशाह पड़े।

मैंने कहा--यह माल की चोरी कैसे करते हो ?

जाट—यह माल चर रहा है। तुम थोड़ी दूर हुए सही, माल गायब। भैंसें जंगल में हाँककर ले जाएंगे। वहाँ न पैर लगे, न खुर। दूसरे, जंगल के अन्दर जाए कौन? वह जरूर जाए, जो जान से हाथ धोने को तैयार हो। जंगल में माल कब तक छुपाएंगे? ले जाएंगे दरिया पर। भैंसे पानी में धकेलकर दूसरी पार जा निकलेंगे। इस पार भी चोर, उस पार भी चोर। उनकी आपस में साँठ-गाँठ हैं, उनके घाट, किनारे, जगहें, वक्त सोचे हुए हैं। दस-पन्द्रह रुपये में भैंसें, बीस-पच्चीस रुपये में ऊँट बेचकर लोट आएंगे। उधर खुदा के बन्दे फिर सस्ता खरीदा माल पूरब को ले जाएंगे। फिर सकरण्ड का माल बदीन और बागो जा निकलेगा। वे ऊँट भी नहीं छोड़ते। मशकें फूंककर एक ऊँट के आगे और दूसरी ऊँट की दुम में बाँध देंगे। बेचारा ऊँट दूसरी पार जा निकेलेगा।

मैं—मुफ्त का माल है, इसीलिए पन्द्रह-बीस रुपयों में बेचते हैं।

जाट—पन्द्रह-बीस रुपये अच्छा खासा दाम है। हुबोशाह तो जुल्म करता है। तुम्हारे यहाँ आएगा, रोटी-पुलाव माँगेगा। अगर पूरी तरह रज गया तो ठीक, नहीं तो अपना चौपाया माल ढूंढ़ते फिरोगे। पहले जंगल में, फिर उस पार माल पहुँच जाएगा। वहाँ दूध की कटोरी पर दे आएगा। महज़ दूध की कटोरी पर।

मैं—इससे उसे क्या मिलता है?

जाट—मालिक, लोगों को सिर्फ नुकसान पहुँचाना है। मिलता कुछ नहीं है। पर पुरखों का धन्धा है। हाँ, सब एक-से नहीं हैं। आसपास कच्चा बहुत है और कच्चे में कभी फ़सल होती है, कभी नहीं। अब बाढ़ आई है तो चैत्र अच्छा होगा, लोग सुखी होंगे। परन्तु अगर चैत्र अच्छा न हुआ तो लोग फाके करेंगे। आखिर कोई काम भी चाहिए। सो एक वे आबादी करते हैं, दूसरे वे चोरी करते हैं। चार महीने खेती-बाड़ी, आठ महीने चोरी।

मैं—क्या पुलिस सो रही है? यही जंगल, यही घाट, जहाँ से माल गुज़रे, वहाँ पुलिस धड़-पकड़ करे।

जाट—आप शहर के लोग बड़े भोले हैं। पुलिस ग़रीबों पर तावान है। पुलिस को कहो, मामला और बिगड़ेगा। चोर बेधड़क घूमेंगे फिरेंगे, निरपराधी जेल की हवा खाते रहेंगे। ये आपस में मिलें हुए हैं। रिश्वत लेकर मुल्क लुटवा रहे हैं। न सिर्फ इतना, चोरों के दलाल खुद खेत में से माल बाहर हाँककर भी देंगे। यहाँ चोरी होती है तो पुलिस के पास कोई नहीं जाता। उल्टे वही चोर क्यों बने? हाँ रिश्वत देकर माल वापस कराया जा सकता है।

मैं—माल को दाग क्यों नहीं देते ? इससे पहचान रहती है ।

जाट—हम एक दाग देंगे, चोर चार देंगे । बेचारे जानवर के लिए मुसीबत । वे जानवर के दाँत तोड़ देंगे, सींग और पूंछ काट देंगे । फिर मालिक क्या खाक पहचानेगा ? यह भी एक कारीगरी है । शिकार का-सा मज़ा है । चोरी करो तो चस्का आए ।

सिंधी लोक संगीत व नृत्य

राम पंजवाणी

सिन्धी लोग राग के शौकीन हैं। किसान हो या कामगार, लुहार हो या कुम्हार, जमीदार हो या सरकारी नौकर सब संगीत में रुचि रखते हैं। जो भी कभी गाँव की चौपाल में गया होगा, वह कह सकेगा कि सिन्धी राग में कैसा आनन्द है, कितनी मस्ती है, घट या घड़े के ताल पर जब गाँव के लोग सिन्धी काफी या बैंत गाते हैं तो अजीब समाँ बँध जाता है और श्रोतागण समाधि की स्थिति में आ जाते हैं। एकतारे से "तू...तू" की आवाज़ से जब गायक की आवाज़ मिलकर एक हो जाती है तब ऐसा लगता है कि वह एक ईश्वर के प्रेम में लीन होकर अज्ञात के भेद बताता है। ऐसे ब्रह्मानन्द के समय गायक और श्रोता को अपनी सुधि नहीं रहती। कभी आपने किसी एकतारे वाले से राग हुसैनी या राणा या कोह्यारी की धुन सुनी है ?

जिस जाति को राग से चाव नहीं है, उस जाति का चरित्र शायद ही उन्नत हो। नदियाँ कल-कल स्वर कर बहती हैं, पेड़ करतल-ध्वनि करते हैं, पक्षी करलव करते हैं। फिर मनुष्य क्यों ऐसी देन से वंचित रहे ? सिन्धी लोगों ने संगीत का समुचित आदर किया है। वे गाते हैं, बजाते हैं। वे राग-संगीत और वाद्य-संगीत दोनों में पारंगत हैं। वाद्यों के कई प्रकार हैं—कुछ प्रचलित, कुछ अप्रचलित। भला आपने कभी सिन्ध का नड़ वाद्य सुना है ? नड़ में दो तीले काम में लाये जाते हैं—एक नर तीला, दूसरी मादा तीली। नर दर्द की पुकारें करता हैं और प्रेमाकुल मादा सिसकती-बिलखती है। ऐसा लगता है मानो चकोर और चकोरी रात के समय एक दूसरे से वियुक्त हो एक दूसरे को पुकार रहे हों। फूंक फूंकने पर नड़ बिलख उठता है। लेकिन उसके लिए कलाकौशल चाहिए। सिन्ध के लोगों में बाँसुरी के उस्ताद हैं और नाग को तुंबी (एक प्रकार का तंबूरा) की तानों पर झुमानेवाले माहिर भी हैं।

कई शहनाई वादक भी मिलेंगे। शादी का शुगन ही पूरा न हो यदि शहनाई का मधुर आलाप न हो। चंग (तंबूरा) वादक आज भी चित्त चंचल कर देते हैं। एक सिन्धी लोककथा में कहा गया है कि बीजल के चंग वाद्य के स्वर पर दानवीर राजा डियाच ने सिर उतार कर दे दिया।

और भी कई वाद्य हैं, यथा—एकतारा, ढोल, ढोलकी, कानी, मुरली, बोणींडो, ठीकरियाँ, करताल, घड़ा आदि। घट (घड़ा) वादक भी बड़े कमाल के हैं। घड़े पर थप-थपाकर ताल लेना सरल है, पर उस मिट्टी के मानक से बोल निकालना निपुण घटवादक का काम है।

सिन्धी नृत्य भी निराले हैं। उनमें सरलता, मौलिकता और कमनीयता है। छेज हो या भुमिरि, धमाल हो या भगति, चींघों हो या जमालीं, उनमें जीवन्तता, मस्ती और भक्ति है। छेज पुरुषों का लोकनृत्य है और विशेषकर हिन्दुओं का है। शहनाई और ढोल की लय पर नर्तकों के हाथों में डंडियाँ ठरक-ठरक बज उठती हैं, नर्तक दायरे में और अपने-अपने चारों ओर भी, कभी बैठकर तो कभी अधलेटे-से, फेरा करते आगे बढ़ते जाते हैं। भुमरि महिलाओं का नृत्य है। वे वरुण देव के ज्योति-कलश 'बहराणो' के चारों ओर कदम उठा-उठा कर फेरे लगाती हैं, भुमिरि नाचती हैं। उनमें से कुछ बीच में बैठी केवल ढोलकी या थाल बजाती हैं, ढोलकी या थाल पर ताल देती हैं और मधुर स्वर में प्रणय गीत या सेहरा गाती हैं। सीधी-सादी औरतें सीधा-सादा नृत्य करती हैं। पर उस सादगी में कितनी सच्चाई और सुन्दरता है! भुमिरि या भुमरि पंजाब और राजस्थान में भी प्रचलित है। पर सिन्ध की भुमिरि सुन्दरता, कोमलता, स्वर और ताल का समुच्चय है।

सभी नृत्यों से न्यारा नृत्य है सिन्ध की भगति। कौन-सा सिन्धी इससे अनभिज्ञ है? हिन्दु हो चाहे मुसलमान, वह भगति देखने के लिए इच्छुक है। भगति में अन्य नृत्यों से अपेक्षाकृत अधिक कौशल चाहिए। रियाज़ के सिवा भगति पूरे दर्जे तक नहीं पहुँच सकती। भगति नत और नट का अनोखा मिलाप है।

मनुष्य की रचनात्मक शक्ति

•

तीरथ बसंत

मनुष्य में वर्तमान के प्रति असंतोष और अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए व्याकुलता रहती है। सच तो यह है कि प्रत्येक मनुष्य के भीतर इतनी भूख है कि वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को निगल जाने से भी नहीं मिट सकती। बालक जन्म लेते ही इस अमिट भूख को अपने साथ ले आता है, मानो शैतान की रूह मृगतृष्णा में पानी के लिए तड़प रही हो। हर व्यक्ति सुबह को यह भूख लेकर उठता है और रात को किसी न किसी अपूर्ण इच्छा की चिन्ता में लेट जाता है। प्रकृति हमारी प्यास मिटाने के लिए एक आध बूंद हमारे प्याले में डाल देता है। मगर वह प्याला आकाश के समान असीम है जिसमें सूर्य एक केक या बिस्कुट के समान लगता है। अतः हम पहले की तरह ही भूखे प्यासे रह जाते हैं। यह स्थिति एक तरफ तो हमें कर्म के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है और दूसरी तरफ हममें निराशा और दुःख को जन्म देती है। यह सच है कि मनुष्य की तृष्णा कभी तृप्त नहीं होती। परन्तु यह भी सच है कि तृष्णा ही जीवन है और उसकी तृप्ति है मौत। हम यदि सृष्टि को हाथ में उठा लें और उसकी प्रत्येक वस्तु को रासायनिक क्रिया से पारस बना दें और ग्रह-नक्षत्रों पर भी अधिकार प्राप्त कर लें, फिर भी हमारी तृष्णा नहीं मिटेगी इसीलिए कुछ परेशान और दुःखी वैरागियों ने तृष्णायें त्याग जीवित रहने से इन्कार करने की सलाह दी है। यद्यपि उनका बताया हुआ मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग भी तो एक प्रकार की इच्छा है। निर्वाण या मोक्ष की प्राप्ति के लिए आराधना करना स्वयं ही इच्छाओं के अस्तित्व का बड़ा प्रमाण है। यह भी तृष्णा ही है जो पहले ही तृप्त को दुष्प्राप्य देखकर तृष्णा का त्याग करना सिखाती है। वास्तव में आज़माइश करने से पहले ही ऐसे लोग हिम्मत हार बैठते हैं और वे हाथ-पांव चलाने से इन्कार कर देते हैं। उन्हें

प्रकृति के विचित्र कारनामों में कोई रहस्य दिखाई नहीं देता क्योंकि उनका ध्यान हमेशा विश्व के अन्तिम विनाश पर रहता है।

यदि राजा के कर्मचारी काम करने से इन्कार करेंगे तो काम रुक नहीं जाएगा परन्तु उलटा-सीधा चलेगा। बुद्धिमान मनुष्य जीवन के रहस्य को समझने का प्रयत्न करता है और जानता है कि अणुओं का बेसूद चक्कर और विश्व का विनाश महत्वपूर्ण बातें नहीं। लेकिन इनके बीच में जो निर्माण कार्य होता है, जीवन का प्रकाश होता है वही महत्वपूर्ण है, वही रहस्यमय है। अतः ऐसा व्यक्ति आज़माइश से पहले ही त्यागी-वैरागी नहीं बनता और संसार की तकदीर को अपने शरीर को कष्ट देकर तुच्छ तपस्या-बल द्वारा बदलने का प्रयत्न नहीं करता। इन्सान की रूह अपने आपको नष्ट करने की आदी नहीं। अतः मनुष्य का दिमाग ऐसे विचार के विरुद्ध बग़ावत करता है। इसी प्रकार मनुष्य मजबूर होकर आत्महत्या के बदले जीवित रहने का प्रयत्न करता है।

जीना है दीपक के समान जलना,
जब तक जीओ तब तक जलो, जलने के सिवाय और कोई चारा नहीं।
सुख हो चाहे दुःख, चलते ही रहो। यह हाथ धरे बैठे रहने का समय नहीं।
यह जलना ही जीवन है, इसी का ही दूसरा नाम है तृष्णा।

यह तृष्णा ही है जो हमें अथक बनाकर काम में जुट जाने के लिए और हमेशा नये नये प्रयोग करवाकर अनुभव प्राप्त करने के लिए ललचाती रहती है। वह हमेशा एक रसीली छबीली कामिनी के समान है जो हमें कटाक्षों से बुलाती है। हम भी उसी पर लट्टू होकर उसके पीछे दौड़ते जाते हैं और अन्त में कोई न कोई अनुभव प्राप्त कर अपने जीवन को हरा-भरा करते हैं। इस तृष्णा रूपी कामिनी की यह चाल अनैतिक सी लगती है परन्तु उसका परिणाम है बालक को जन्म देकर वंश-क्रम को कायम रखना—जो नैतिक ही माना जाएगा। कुदरत ऐसी चतुर है कि पाप को पुण्य में बदल देती है और लोभी के लोभ से कारखाने और हुन्नर, ज़ालिम के ज़ुल्म से बड़े बड़े राज्य, अन्याय-कारी के अन्याय से प्रजातन्त्र राज्य और सहकारी समाज बना देती हैं। इसी प्रकार यह अनजान शैतान खुद ख़ुदा का हथियार बन जाता है और इन्सान की ज़िन्दगी में अजीब इन्कलाब आता रहता है। विश्वात्मा होशियार मल्लाह के समान है जो समुद्र के आतंक और तूफान के वेग से तनिक भी नहीं डरता। वह कष्टों को झेल कर आखिर नाव को किनारे लगाता है। इसीलिए जीवन है एक प्रयोग और प्रयोग है जीवन। जो मनुष्य किनारे पर ही बैठकर प्रयोग

द्वारा अनुभव प्राप्त करने से इनकार करता है उसके दिल और दिमाग कुंठित हो जाते हैं।

जरा ध्यान दीजिए कि जीवन के साधारण अनुभवों में से कितनी महान बातें सिद्ध हो जाती हैं। भाप के जोर पर देगची के ढक्कन को कोई ऊपर उठता हुआ देखता है तो उससे इंजन बन जाता है। दूसरा कोई व्यक्ति आसमान से गिरी हुई विद्युत् को घर की दीवार पर लगी हुई लोह-शलाका से गुजरता हुआ देखता है तो उसके मन में बिजली को सैकड़ों कोस दूर पहुँचाने की योजना बन जाती है। ऋषि अथर्वन् और प्रामीथियस को यह मालूम न था कि अग्नि का अन्वेषण मनुष्य को इतना महान बना देगा। वही अग्नि जिसे हम हवन-कुण्ड में प्रज्वलित करते हैं, उसने हमारी शक्ति में इतनी वृद्धि की है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार एक छोटे बीज से महान वटवृक्ष का जन्म होता है उसी प्रकार जीवन की छोटी-छोटी अनुभूतियों से बड़े-बड़े परिणाम निकलते हैं। ये अनुभव असीम हैं क्योंकि प्रकृति की शक्तियों की कोई सीमा नहीं। जरा गौर कीजिए कि एक आग के गोले और उस धरती में कितना भेद है जिस पर समुद्र और पहाड़, नदियाँ और घाटियाँ, नगर और खेत हैं और जहाँ भिन्न-भिन्न प्राणी अपना पार्ट अदा करते हैं। सोचिये तो, एक कीड़े और मनुष्य में कितना भेद है! कीड़े के शरीर की मनुष्य के शरीर से तुलना कीजिये। अब भी मनुष्य का जन्म एक वीर्य-कण से होता है जो बढ़ने के बाद जंगल काट कर दिल्ली नगर का निर्माण करता है, दलदल को न्यूयार्क में परिवर्तित कर देता है। इतना ही नहीं, वह तो विमान में चढ़ कर पृथ्वी की परिक्रमा करता है और मंगल, बुध आदि गृहों पर जाने के लिए ल्यूनिक और स्पूतिनिक बनाता है। प्रकृति के प्रयोगों ने गैसों को सागर और पहाड़, जंगल और बियाबान, कीड़ों और अजगरों में परिवर्तित किया और अन्ततः मनुष्य को जन्म दिया, जो प्रकृति का ही नेत्र बन कर उसकी गुप्त शक्तियों को प्रकाशित करता है। अतः जीवन सर्जनात्मक शक्ति है जिसकी वृद्धि का नियम खुद हमारा अस्तित्व है। अक्ल और इरादा इसके औज़ार हैं जो हमें विकास करने में सहायता देते हैं। हमारी सनकें और धुनें हमारी अनुभूतियों को तीव्र करने का काम करती हैं और इन्हीं के प्रभाव से तथा शारीरिक सुघटन के कारण हम पशुओं से मनुष्य बनते जाते हैं। निस्सन्देह, प्रकृति में मनुष्य एक अनोखी चीज़ है। शायद प्रकृति को कोई ऐसी सनक आई कि उसने कीचड़ में अजगर, समुद्र में मगरमच्छ, जंगल में भालू और गेंडा पैदा करने के पश्चात् इन्सानों की सृष्टि की ताकि वे प्रकृति के गुलाम बनने

के बदले खुद उसे ही अपना दास बना लें। अपने से बेहतर वस्तु के लिए प्रयत्न करना और उसके साथ सस्नेह बर्ताव करना भी एक बहुत ही बड़ा गुण है। प्रकृति की इसी विशेषता ने मनुष्य को जन्म दिया ताकि वह उसकी इच्छाओं और कामनाओं को कार्यान्वित कर सके। हर व्यक्ति में कोई न कोई गुप्त रहस्य समाया हुआ है जो उसे अपनी योग्यता के अनुसार उन्नति करने के लिए विवश करता है, बल्कि हर चीज किसी न किसी समय ऐसी भावना का साधन बन जाती है। उद्देश्य यही है कि प्रत्येक वस्तु उस महान स्तर को पहुँचे जो उसके स्वभाव में वर्तमान है। अतः मनुष्य जब जीवन के अमूल्य वरदान को जगत और जीवन की भलाई के लिए काम में लाता है, तब वह न केवल प्रकृति की प्रयोगशील वृति का अनुसरण करता है परन्तु विश्व के हृदय में विद्यमान गुप्त भावनाओं को प्रकट करने में भी सहायता देता है। हर व्यक्ति के हृदय में यह इच्छा छिपी रहती है कि वह ईश्वर की सृष्टि को अपने अधिकार में कर ले। वास्तव में मनुष्य की यही रचनात्मक शक्ति है जो उसे ईश्वर-तुल्य बना देती है, जिससे उच्चतर कोई आदर्श नहीं।

भाई अब्दुल रहमान

अमरलाल हिंगोराणी

कुछ लोग उसे पागल कहते थे और कुछ उसे दरवेश समझते थे। शायद वह पागल भी था और दरवेश भी। शरीर का छरहरा, गेहुएं रंग का, साधारण कद से किंचित लंबा। शरीर पर केवल गुदड़ी ओढ़ता था, पूर्ण नग्न भी न था।

सदा अपने विचार में खोया रहता था। कभी मढ़ी में तो कभी मस्जिद में जाता था। उन दिनों प्राय: शाम को सखर शहर में नदी किनारे बंदर पर लोग सन्त-कवि सामी के पद पढ़ते थे। उन्हें वह बड़े चाव से सुनता था। कभी-कभी यों भुनभुनाकर कहता था, "भाई अब्दुलरहमान, समझते हो या नहीं ? न जाने कब तुम्हारी आँख खुलेगी।"

एक बार रास्ते पर जाते उसके पाँव में पत्थर की चोट लगी। वह खुद को कहने लगा, "भाई अब्दुलरहमान, तुम्हारा सर फिर गया है। तुम्हारी आँखें आसमान में लगी हैं। यदि आंखें खोलकर चलते तो तुम्हें पत्थर न लगता।" वहीं विचार-मग्न बैठा रहा। तुरन्त बोला, "भाई अब्दुलरहमान, देखो, तुम कैसे स्वार्थी हो। भाई अब्दुलरहमान, रास्ते पर पत्थर छोड़कर, तुम यों चलते बने। कल किसी और पथिक को लग जाए।" फिर एक क्षण रुककर और विचारकर बोला, "भाई अब्दुलरहमान, यदि भलेमानस हो तो पत्थर उठाकर फैंक दो।" और उसने पत्थर उठाकर दूर फेंक दिया।

यह उसकी आदत थी कि वह सदा अपने साथ वार्तालाप करता था और अपने को सम्बोधन कर कहता था, 'भाई अब्दुलरहमान'। शायद खुद को देखकर, खुद में पैठकर रहस्यभरी बातें करता था। यदि कोई उससे खाना खाने के लिए पूछता तो पहले वह अपने से पूछता, "भाई अब्दुलरहमान, तुमसे पूछता है, खाना खाओगे ?" फिर अपने से कहता, "खुर्दन् बराए ज़ीस्तन् अस्त, न ज़ीस्तन् अस्त बराए खुर्दन्" (अर्थात् खाते हैं कि जी सकें, जीवन इसीलिए

नहीं है कि पेट ही भरते रहें)। इस प्रकार विचार-विमर्श कर उत्तर देता था। वह फ़ारसी का कवि था। संभवतः पूरा हाफ़िज़ उसे कण्ठस्थ था। सिन्धी कवियों शाह लतीफ़ और सामी में भी निष्णात था। सिन्धी कवि सचल का तो अनुयायी था। वह उर्दू भी जानता था। कभी कभी पँजाब से उर्दू में जो पत्र आते थे, लोग अब्दुलरहमान को ढूंढकर वे पढ़वाते थे। वह शांत स्वभाव का था। उसे और कोई लालच न था—थोड़ी-सी रोटी खाकर निर्वाह करता था। सर्दी हो या गर्मी, गुदड़ी सदा उसके कन्धे पर होती थी। रात को वह गुदड़ी तानकर सोता था। चाहे कैसा भी गर्मी का मौसम हो, गर्मी के मारे घुटन-सी हो रही हो, यह दोस्त गुदड़ी ओड़कर सोता था। सम्भवतः प्रियतम के साथ लोगों से लुकछिपकर प्रेम-वार्तालाप करता था।

एक बार एक निर्धन व्यक्ति अन्याय से फँसा दिया गया। उस पर फ़रियाद थी कि उसके यहाँ से चोरी की घड़ी बरामद हुई है। पुलिस ने उसकी तलाशी ली थी। सभासदों के सम्मुख उसके यहाँ से घड़ी मिली थी। घड़ी सोने की थी और एक मुसलमान सेठ की थी। एक महीना पहले फ़रियाद हुई थी। प्रतिवादी के विरुद्ध प्रमाण सशक्त था। उसका बचकर निकलना मुश्किल था। उधर सेठ की बड़ी पहुँच थी।

प्रतिवादी ने अपने को निर्दोष कहा। वह बोला, वह सेठ के घर के नीचे से गुज़रा, सेठ को सन्देह हुआ कि वह उसके घर की एक औरत को इशारा करता है, इसीलिए उसे धर-पकड़कर पीटा गया और यदि अब्दुलरहमान बीच में न पड़ता तो-मार-मारकर वे उसे प्राणहीन कर देते।

अब्दुलरहमान के बीच में पड़ने से सेठ छोड़ने वाला था क्या? सेठ बोला, हमारे हरमखानों की ओर बुरी नज़र से देखता है। हम इज्जत वाले लोग हैं। अब्दुलरहमान ने बड़ी कोशिश की, परन्तु सेठ न माना। तब अब्दुलरहमान खुद को कहने लगा, "भाई अब्दुलरहमान, यह सेठ बाज़ न आएगा। उसे इज्जत का खयाल है। उसकी 35 सालों की बहन अविवाहिता बैठी है, लेकिन यह उसकी शादी इसलिए नहीं करेगा कि वह पैतृक सम्पत्ति का कहीं हिस्सा न माँगे। फिर अगर उसका पति नहीं है तो अवश्य..." इतना कहकर वह चुप हो गया और खुद को कहने लगा, "अब्दुलरहमान, तुम किसी का पर्दा न उधाड़ो। फिर सेठ को हाथ जोड़कर समझाओ। फिर भी न समझे तो सच बोल देना।" अब्दुलरहमान अपने साथ भुन-भुन में नहीं बोलता था। सब सुनते थे। लोगों ने संकेत समझ लिया और सेठ ने भी सुना। इस तरह उस ग़रीब की पिटाई से जान जाते-जाते बच गई। अब्दुलरहमान ने सेठ का पर्दा-

फाश करना नहीं चाहा था। लेकिन फिर भी वह बात लोगों के मुँह लग गई और सेठ की सच्ची अथवा झूठी चर्चा हुई।

प्रतिवादी अपने बचाव में यही कहता था। उसने आसपास के अन्य लोग भी गवाही के लिए बुलाए थे। उसने तीन पड़ौसी गवाह दिए थे और चौथा अब्दुलरहमान। वे गवाह चार-पाँच सुनवाइयों में आए थे, पर मुकदमा नहीं चला। प्रतिवादी ने दो गवाहों पर से हाथ खींच लिया क्योंकि सेठ ने उन्हें पैसा देकर अपनी तरफ़ कर लिया था। एक गवाह एक सुनवाई पर न आया तो न्यायाधीश ने उसके खिलाफ वारन्ट निकाले। उसे सेठ के तरफ़दारों ने सलाह दी कि अगर पिछली सुनवाई के अवसर पर न्यायालय में न आने का कारण यह दे कि उसे उस मामले में कुछ मालूम नहीं है तो न्यायाधीश क्षमा कर देंगे। तीसरा बिचारा इस तरह अपनी जान छुड़ा गया। शेष रहा अब्दुल-रहमान। प्रतिवादी का वकील बोला, अब्दुलरहमान ऐसे अव्यवहारिक आदमी पर कैसे बचाव ठहरेगा ? लेकिन प्रतिवादी का अब्दुलरहमान में विश्वास था कि वह ईश्वर से डरनेवाला दयावान आदमी है और किसी का डर नहीं मानेगा।

अब्दुलरहमान को न्यायालय का बुलावा आया। "भाई अब्दुलरहमान, न्यायालय ने तुम्हें बुला भेजा है। न्यायालय में उचित आदर के साथ जाना चाहिए।" सो, वह एक जूती का प्रबन्ध कर आया। हरेक गवाही पर वह जूती गुदड़ी में लपेटकर ले जाता था। आखिर जब उसे न्यायालय में अन्दर जाने की आवाज़ दी गई तो अब्दुलरहमान ने औपचारिकता से जूती पहनी, गुदड़ी दुतहा लपेटकर गले में डाली। अभी अन्दर गया ही था कि चपरासी ने उसे झिड़ककर कहा, "जूती बाहर उतार।" अब्दुलरहमान खुद से बोलने लगा, "भाई अब्दुलरहमान, कोर्ट का चपरासी तुम्हें जूती बाहर उतारने के लिए कहता है। उसे कहो, कोर्ट के लिए ही जूता मांगकर ले आया हूँ।" उसने फिर प्रगट में चपरासी से कहा कि वह कोर्ट के लिए ही जूती ले आया है। ऐसा कहकर उसने भीतर प्रवेश किया। न्यायाधीश ने उसे हँसकर देखा। अभी वह कटघरे में खड़ा था कि न्यायाधीश ने उससे कड़ककर, पूछा, "कन्धे पर गुदड़ी रखकर क्यों आए हो ?" अब्दुलरहमान ने स्वगत कहा, "भाई अब्दुलरहमान, न्याया-धीशजी पूछते हैं कि गले में गुदड़ी क्यों लपेट रखी है। कोर्ट में आए हो, समझ-कर पूरा जवाब दो। उन्हें कहो, साहब, हिन्दू जब कोर्ट में आते हैं तो चादर, दुपट्टा या अंगरखा गले में डाल फिर बयान देते हैं। मैंने भी कोर्ट का मान रखने के लिए गुदड़ी गले में डाल रखी है।" (कोर्ट को) "साहब, हिन्दू जब कोर्ट में आते हैं तो चादर, दुपट्टा या अंगरखा गले में डालकर फिर बयान देते

हैं। मेंने भी इसीलिए, कोर्ट का सम्मान करने के लिए, गुदड़ी गले में डाली है।" जवाब बिल्कुल बेजोड़ था।

सरिश्तादार—"कहिए कि खुदा को हाज़िर नाज़िर जानकर सच कहूँगा और सच के अलावा और कुछ न कहूँगा।"

अब्दुलरहमान—(अपने से) "भाई अब्दुलरहमान, सरिश्तादार तुम्हें कहते हैं कि खुदा को हाज़िर-नाज़िर जानकर सच कहोगे, सच के अलावा और कुछ भी न कहोगे। सरिश्तादार बिल्कुल सच कहते है।" (सरिश्तादार को) "खुदा को हाज़िर नाज़िर जानकर सच कहूँगा और सच के अलावा और कुछ न कहूँगा।"

सरिश्तादार—"नाम ?"

अब्दुलरहमान—(अपने से) "भाई अब्दुलरहमान, सरिश्तदार साहब नाम पूछते हैं। उसे कहो, अब्दुलरहमान।" (सरिश्तादार को) "अब्दुलरहमान।"

कोर्ट में प्राय: ठहाका-सा लग रहा था। न्यायाधीश पहले तो मुस्करा रहे थे, लेकिन फिर किंचित अप्रसन्न होने लगे। वकीलों में से एक ने खड़े होकर न्यायाधीश को अंग्रेजी में समझाया कि यह उसकी आदत है।

सरिश्तादार ने उससे पूछा, "धर्म ?"

अब्दुलरहमान—(अपने से) "भाई अब्दुलरहमान, सरिश्तादार साहब धर्म पूछते हैं। भाई अब्दुलरहमान, याद करना कि तुमने कसम उठाई है कि सच के अलावा कुछ न कहोगे। बड़ा ही अरुचिकर प्रश्न है। यदि मैं मुसलमान कहता हूँ, तो हिन्दू अप्रसन्न होंगे, यदि मैं हिन्दू कहता हूँ, तो मुसलमान नाराज होंगे। सच कह दो। अरे अब्दुलरहमान, छोटी-सी बात पर परेशान हो गये हो। सरिश्तादार को सचल की उक्ति कह दो—

"मैं हिन्दू नहीं हूँ,
मुसलमान नहीं हूँ,
जो हूँ, सो ही हूँ।"

सरिश्तादार न्यायाधीश की ओर ताकने लगे।

न्यायाधीश—(सरिश्तादार को) "लिख दो मुसलमान।"

सरिश्तादार—"उम्र ?"

अब्दुलरहमान—"भाई अब्दुलरहमान, सरिश्तादार साहब उम्र पूछते हैं। हम कहें कि हम मुसलमान नहीं हैं तो न्यायाधीश लिखें मुसलमान। सरिश्तादार को कहो कि यह भी न्यायाधीश से ही पूछें।"

अब्दुलरहमान ने इतना ही कहा था कि न्यायाधीश को क्रोध आ गया और उन्होंने धमकाकर अब्दुलरहमान से कहा, "जाट, अच्छी तरह बयान दो। कोर्ट में आए हो।"

अब्दुलरहमान मुस्कराता रहा और स्वगत बोला, "भाई अब्दुलरहमान, न्यायाधीश कहते हैं—जाट, अच्छी तरह बयान दो। अब्दुलरहमान, न्यायाधीश से पूछो कि जाट किसे कहते हैं।"

अभी अब्दुलरहमान न्यायाधीश से पूछने ही वाला था कि न्यायाधीश बोला, "जाट अनपढ़ को कहते हैं।"

अब्दुलरहमान—(अपने से) "भाई अब्दुलरहमान ! तब तुम जाट नहीं हो। तुम सिन्धी, फ़ारसी, उर्दू, संस्कृत और हिन्दी जानते हो। तुम पाँच भाषाएं जानते हो। न्यायाधीश से पूछो कि वे कितनी भाषाएं जानते हैं।"

अब्दुलरहमान—(न्यायाधीश को) "साहब।..."

न्यायाधीश ने उसकी बात को बीच में ही काटकर कहा, "जाट वह जो अंग्रेजी न जाने।"

अब्दुलरहमान—(अपने से) "भाई अब्दुलरहमान, न्यायाधीश जी कहते हैं कि जाट वह जो अंग्रेजी न जाने। टोपणमल का पुत्र ! उनके पिता कांजीघर के मुन्शी। उनसे पूछो कि उनके बाप-दादा जो अंग्रेज़ी न जानते थे, वे भी जाट थे। अर्थात् वह हुए जाट के......"

न्यायाधीश जी आगबबूला हो उठे। उन्होंने काग़ज लिया, क़लम उठाया और अब्दुलरहमान से कहा, "तुम पर क्यों न वैधानिक कार्यवाही की जाए कि तुमने न्यायालय की मानहानि की है ? अब ज़्यादा न बोलो, जो लिखकर देना हो, लिखकर दो।"

अब्दुलरहमान ने कागज़ और क़लम उठाकर इस प्रकार लिखा—

"श्रीमान् न्यायाधीशजी,

भाई अब्दुलरहमान ने न्यायालय की मानहानि नहीं की है। आप ने स्वयं की है। आज के दिन में आप ने कितने गवाहों को गालियां दीं हैं। पर ये गालियां भाई अब्दुलरहमान की गुदड़ी के पल्लू को भी नहीं लगीं। आप जनता के शासक नहीं, नौकर हैं। हम गवाह कोर्ट में अपनी मर्ज़ी से नहीं आए हैं, आपने बुलाया है। आए का यह आदर है। आप के न्यायालय में कौन गवाही देगा, यदि गवाहों को गालियों की बौछार पड़ेगी ? आप कारण बताएं कि

ग्राप को क्यों न बरखास्त किया जाए क्योंकि ग्रापने न्यायालय में गवाहों को गालियां दी हैं। ग्रापने सम्राट के ताज की मानहानि की है।

जैसा कि ग्रापने ग्रब्दुलरहमान से शपथ ग्रहण करायी, उसने खुदा को हाजिर नाजिर जानकर सच कहा है ग्रौर सच के ग्रलावा कुछ नहीं कहा है।

हस्ताक्षर/ ग्रब्दुलरहमान

मारुई‡

शाह अब्दुल लतीफ़

1. मेरा प्रियतम मैली-कुचैली लोई ओढ़े है। वह बकरियाँ चराता है। वह जैसा है, बहुत अच्छा है। मैं कोई दूसरा पति नहीं करूँगी। वही मेरे हृदय में निवास करता है।

2. जब तक शीलवंत स्त्रियों का शील है तब तक मैं इस कोट में (रानी बनकर) नहीं रहूँगी। सीप समुद्र में रह कर भी अभीष्ट बादल की बूंद के बिना कोई दूसरा पानी नहीं पीती। वह बादल के आसरे पर है, मेरा मन मलीर में है। मैं यहाँ अपने वतन के लोगों की अमानत हूँ। यदि मैं वहाँ वापिस जाऊँ तो वे लोग खुशियाँ मनाएँगे।

3. हमारे कुल की यह रीति नहीं है कि सोने के लालच पर अपने प्रिय-नाते-रिश्ते बदल दें। मैं उमर कोट में आकर यह कुकर्म नहीं करूँगी। झोपड़ियों का प्यार महल के सुख से नहीं बदलूंगी।

4. हे उमर! यदि तुम मेरी चमड़ी चीर-उधेड़ कर उसमें नमक छिड़कोगे, कठोर यातनाएँ दोगे तो भी मैं ऐसा कुकर्म नहीं करूँगी जो मेरे कुल में किसी ने नहीं किया। जब तक जान में जान है तब तक मेरा प्रेम उस बकरियाँ चराने वाले से है।

5. हे उमर! मैंने अपने प्राण मलीर के लोगों से महीन सुई के साथ सिये हैं। मैं यहाँ अपने वतन के पेड़-पौधे याद करती हूँ। मेरा दिल वहीं है, यहाँ तो केवल मिट्टी का शरीर है। मेरे प्राण उन झोंपड़ियों में और मेरा तन इस कोट में बन्द है।

---

‡. शासक उमर ग्राम्य-बाला मारुई को भगाकर अपने उमरकोट में ले आता है। वह उसे महलों के सुखों का प्रलोभन देता है। लेकिन मारुई अपने वतन मलीर (थर) और अपने मंगेतर खेतसेन को एक क्षण के लिए भी नहीं भुला पाती

6. मैं अपने प्राण वतन की ओर निहार निहार कर तजूं। हे उमर! मेरा शरीर इस कोट में कैद न करना, इस परदेसिन को अपने प्रियतम से अलग न करना, यदि मैं यहाँ उसे याद कर-करके मर जाऊँ तो मेरे निर्जीव शरीर पर थर की शीतल मिट्टी बरसाना और लाश को मलीर भेजना।

राइ डियाच और बीजल

शाह अब्दुल लतीफ़

1. चारण बीजल अपने राग से राजा डियाच को रिझाकर उसका सर लेने के लिए उसके दुश्मन अनीराइ की नगरी से चला। चारण बीजल ने ईश्वर का आसरा लिया, अपने तंबूरे को फुंदने और घुंघरु से सजाया। उसने दूर से राइ डियाच का महल देखा। उस समय उसने प्रभु से प्रार्थना की, "हे ईश्वर मेरे राग से राजा रीझ उठे !"

2. (सर का) याचक बीजल जूनागढ़ पहुँचा। उसे तंबूरा ईश्वर की देन मिली थी। उसने उसकी तान से सारे शहर को मस्त कर दिया। महल की दासियाँ व्याकुल हो उठीं। रानियाँ आकुल हो उठीं। चारण ने अपने तंबूरे के सुरों से कहलाया, मैं शिकारी हूँ, मुझे सर चाहिए।

3. याचक महल में रहस्यपूर्ण साज़ लेकर गया। तंबूरे की दर्द भरी तान से सारा महल प्रभावित हुआ। हर जगह पर हाहाकार हो उठा। बीजल का स्वर गूंज उठा। उसने सुलतान से सर की याचना की। जूनागढ़ शहर में मातम और महल में कुहराम छा गया।

4 हे राजा, यह हाल लेकर तुम्हारे दर पर आया हूँ। दयालु, इस निर्बल की यह याचना सुनो। तुम्हारे आंगन में आकर इस वादक ने सर का सवाल किया है। उस पर दया कर उसकी इच्छा पूर्ण करो।

5. मैंने कश्ते में अनाज के दाने कदाचित् नहीं मांगे हैं। मुझे अरबी घोड़े भी नहीं चाहिएं। वे मेरे अस्तबल में बहुत हैं। एक हाथी के लिए भी मैं यह तान नहीं छेड़ता। तुम्हारे धड़ पर यह जो गहना (सर) है, मैं उसकी याचना करता हूँ।

6. हे याचक ! तुम्हें मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। तुम मेरे तुच्छ सर के इच्छुक हो। यदि तुम्हें डियाच का कपाल चाहिए तो लो, मैं बीस बार काट कर देता हूँ।

मैं जो हूँ सो हूँ

•

सचल

कोई क्या कहता है, कोई क्या कहता है । मैं जो हूँ, सो हूँ

1. कोई मोमिन कहता है, कोई काफ़िर कहता है और कोई मुझे अज्ञानी और असभ्य कह देता है । कोई जादूगर तो कोई सुखनवर कहता है । मैं जो हूँ, सो हूँ ।

2. कोई पन्त, कोई सन्त तो कोई बाग़-बहार बसन्त कहता है । किसी की दृष्टि में मैं गाने-बजानेवाला मीरासी ही हूँ ।

3. कोई मुल्ला तो कोई काजी करार देता है । कोई मुफ़्ती (फ़तवा देने वाला), कोई ग़ाज़ी (धार्मिक लड़ाई लड़ने वाला) तो कोई रोज़ा रखनेवाला नमाज़ी कहता है । मैं जो हूँ, सो हूँ ।

4. कोई रद्द, कोई बद समझता है । कोई मुझे बेदीन-ईमान कहता है । कोई बहुईश्वरवादी तो कोई अनीश्वरवादी कहता है । मैं जो हूँ, सो हूँ ।

5. कोई मुझे सूरत से इन्सान तो कोई बुराई से भरा शैतान कहता है । कोई सम्मानित वृद्ध तो कोई मस्त फ़कीर कहता है । मैं जो हूँ, सो हूँ ।

6. कोई रंग, कोई बेरंग कहता है । कोई कोई मस्त मलंग (बेफ़िक्र फ़कीर) ही कह देता है । कोई शर्मदार तो कोई बेशर्म समझता है । मैं जो हूँ, सो हूँ ।

7. कोई विशेष, कोई साधारण मनुष्य कहता है । कोई परिपक्व, कोई अपरिपक्व बताता है । कोई सच्चा नाम सचू पुकारता है पर मैं जो हूँ, सो ही हूँ ।

सामी के श्लोक

भाई चैनराइ सामी

1. हे सत्गुरु, मेरे मन में एक शंका उपजी है। यह जगत् कहाँ से हुआ ?

यह जगत् और कहीं से नहीं, उस से ही हुआ है। पानी का बुलबुला पानी से ही होता है।

2. हे पूर्ण पुरुष ! ईश्वर देखने में कैसा है ?

मुंह से उसका वर्णन नहीं हो सकता। उसका रूप-रंग नहीं, अंग-आकार नहीं। जब वह तुम्हें मिलेगा, तुम जानोगे।

3. परमेश्वर सूर्य की तरह प्रत्यक्ष है। उसे अन्धे अपनी आँखें खोलकर नहीं देखते। उससे सच्चा प्रेम कर, तद्‌रूप बनकर, उसे देखो। तुम क्यों दीवानों की तरह दर-दर भटकते हो, व्यर्थ जाप करते हो ?

4. न ज्ञानप्रवचन करो। न ही ध्यान करो। घर-घर फिरने से भी कोई फायदा नहीं। समझ के बिना यह सब अभिमान ही है। तुम महत् जनों से मिलो और निर्वाण पद प्राप्त करो।

5. न खाओ, न भूखों मरो। न जागो, न सोओ। न हारो, न हठ करो। न सम्हाल कर रखो, न खोओ। साधु की संगति कर इसका अर्थ जानो। जिसका हुक्म चले, वही बादशाह है।

उदार हृदय बनो

•

किशनचन्द बेवसि

उदार हृदय बनो । तुम भी रहो मैं भी रहूँ । मनोवृत्ति में यह परिवर्तन लाओ, तुम भी रहो, मैं भी रहूँ ।

1. यदि रिश्ते-नाते से मैं तुम्हारे व्यक्तित्व में स्थान नहीं पा सकता तो मानवता के नाते अपने दिल के किसी हमदर्द कोने में किंचित् स्थान दो । "तुम्हारा-मेरा" का भाव क्षीण हो । तुम भी रहो, मैं भी रहूँ ।

2. यद्यपि तुम एक प्रदेश के नहीं हो तथापि एक देश-वासी के रूप में व्यवहार करो । देशवासी से अधिक विश्व-नागरिक होकर देखो । तुम्हारी दृष्टि समग्र, स्वस्थ और सुदृढ़ हो । तुम भी रहो, मैं भी रहूँ ।

3. यदि हम एक धर्म के नहीं हैं तो एक राष्ट्रीयता में स्थान दो । भाई-चारे, इन्सानियत और रूहानियत में जगह दो ! दुई की मलीन दृष्टि न रखो । तुम भी रहो, मैं भी रहूँ ।

4. अपने प्रासाद में से यदि तुम एक कोठरी कम करोगे तो मुझसे अशरण के लिए वह सहारा हो जाएगी । लालसा-लिप्सा कम करो । तुम भी रहो, मैं भी रहूँ ।

5. तुम्हारे दस्तरख्वान से जो खाना बेकार जाता है, उस पर चौकसी रखो. वह मेरे लिए बचाओ । तुम भी रहो, मैं भी रहूँ ।

6. तुम्हारे आनन्द-विलास की प्याली से यदि एक बूंद भी बचे तो वह अनाज के दाने बनकर निर्धन का पेट भरेगी । यह बचत बरकत है । तुम भी रहो, मैं भी रहूँ ।

7. यदि तुम्हारे वैविध्यपूर्ण उद्यान में से कांटों के ढेर बचें तो वे बेदरो-दीवार झोंपड़ियों के लिए जंगल का काम दे सकते हैं । सद्बुद्धि रखो । तुम भी रहो, मैं भी रहूँ ।

8. जब लोग दो जून खाना जुटाने की फिक्र में हैं तब दूसरे देशों को जीतकर अपने अधीन करने की लिप्सा है । जब सभ्यता के उन्नत शिखर पर आ पहुँचने की बात हो रही है तब दूसरों का खून बहाने की इच्छा हो रही है। यह तो दिन-दहाड़े अन्धेरा है ! तुम भी रहो, मैं भी रहूँ ।

सोच समझ कर कहो

●

किशनचन्द बेवसि

पर्दे के पीछे से किसका दीदार हो रहा है ? सोच-समझकर कहो। चेतना के आगे कौन बार-बार स्पष्ट हो रहा है ? सोच-समझकर कहो।

1. बिजली एक क्षण में मीलों दूर से रंग व ध्वनि का चित्र लाकर उपस्थित करती है, उस बिजली के अन्दर किसकी सत्ता है ? सोच-समझकर कहो।

2. ये कण उचित परिमाण में मिलकर मुरक्कब (मिश्रित) क्यों कर होते हैं ? जड़ में यह किस की जागृति है ? सोच-समझकर कहो।

3. खाद, ज़मीन हवा रोशनी वही हैं, लेकिन ये फूल इन सब से अलग-अलग रंग और बू क्यों ग्रहण करते हैं ? सोच-समझकर कहो।

4. बीज से पेड़ और दाने से नाज का बाल बना। यह किसकी कला है कि दाने से अंबार लग जाते हैं ? सोच-समझकर कहो।

5. कोई शक्ति सप्तरंगी रोशनी से एक खास रंग छोड़ती है और शेष छः सहेजकर अपने पास रखती है। ऐसा क्योंकर होता है ? सोच-समझकर कहो।

6. जन्म लेते ही बच्चा अनायास मां का दूध पीने लगता है। कौन उसके पैदा होते ही उसे यह शिक्षा देता है ? सोच-समझकर कहो।

7. जिन बिन्दुओं ने रेखा बनाई, वे बिन्दु परिमाण-रहित या बिना लम्बाई, चौड़ई, मोटाई के थे। फिर भला रेखा में लम्बाई कैसे आई ? सोच समझ-कर कहो।

8. दर्पण को दर्पण के समक्ष रखो और देखो। वह एक से अनेक कैसे होता है ? सोच-समझकर कहो।

9. बाँसुरी की पोल में वह स्वयं फूंक भरता है। अन्यथा बेबसि की कविता में क्या है ? सोच-समझकर कहो।

रुबाइयां

लेखराज अज़ीज

1—वह है कि नहीं, यह राज़ कौन कहे !
हैरान हुआ होश, न ही वहाँ अक्ल चले ।
"इनकार" करें कैसे गर देखें नयन कहीं
"इक़रार" हो कैसे गर गुमां दिल को पड़े ?

2—सिर पर आएं ग़म, तो न ग़म को, दिल ! देख,
जिससे न बने कुछ, न वह मंजिल देख,
वह बाग़ देख, गुल देख और दरिया देख,
देख ! चाँद और तारों की मस्त महफ़िल देख ।

3—इन्सान ! मरना सीख तो जीना खुद आएगा
पाएगा तभी जब देना खुद आएगा
हुआ मौत ज़िन्दगी में बाल-भर का फ़र्क़
निकाल फ़र्क़, तो एक उससे होना खुद आएगा ।

राष्ट्रीय गान

•

हूंदराज दुखायल

1. पैदा हुए हो तो अवश्य मरोगे लेकिन शेर की मौत मरो, गीदड़ की नहीं।

2. मुफ्त ही मर्ज़ों में कुढ़-कुढ़कर, कुलबुलाकर क्यों मरते हो ? आओ, देश पर न्योछावर होकर सुन्दर मौत मरो।

3. जहाँ प्रताप, शिवाजी, गुरुगोबिन्द पैदा हुए, वहाँ तुम बेबस और लाचार बनकर कैसे रह सकोगे ?

4. जब नारी भी मैदान में उतर आई है तब तुम्हारे लिए संवेदनहीन पाषाण बनकर रहना उचित नहीं है।

5. हम डेढ़ सौ सालों से कायर, कमज़ोर रहे। उसकी सज़ा हम पर गुलामी का ज़ुल्म बनकर आई।

6. यदि हमने जी-हुज़ूरी में अपना सर झुकाया तो हमारा कपाल फ़कीर का कशकोल होकर रह जाएगा।

7. उठो, जागो, बुद्धिमान बनो। तुम्हें सुनहला अवसर मिला है। दुखायल कहते हैं, यदि हमने इस अवसर को हाथ से खोया तो हम हश्र करेंगे, रोएंगे-चिल्लाएंगे।

हरि दिलगीर

सरोवर

यह सुन्दर शांत सरोवर
मन को कितना मोहता है,
पर शायद ही किसे पता है,
दलदल जिसका हिसाब नहीं
इसके तल में रहता है;
यह एक ही पत्थर से
लहरें-लहरें हो जाएगा,
मन के सरोवर की तरह ।

रचित प्रभु

प्रभु ने सृष्टि रची
परन्तु सृष्टि ने भी है रचा
युग के प्रभुओं को;
वे रचित प्रभु सभी
बनकर बैठें प्रभु सृष्टि के;
देखकर रचित प्रभुओं को,
प्रभु सृष्टा छिप गया है ।

आत्म प्रवंचना

हूं न वह जो होना चाहता हूँ मैं,
जो नहीं होना चाहता, वह हूँ मैं,
धोखा दे रहा जग को और अपने आपको भी,
क्या जुगत ठगी की सदा जोड़ रहा हूँ मैं ।

समय की सतह पर

काल-धरातल फिसलन का,
चल चलकर गिर पड़ूँ,
गिर गिरकर उठने लगूँ,
उठ उठकर चलने लगूँ,
चल चलकर फिर गिरूँ,
न जग की खबर है,
इसी तरह बस चलता हूँ,
न राह का पता है,
न जाने क्या करता हूँ,
न जाने क्यों करता हूँ ।

जुलाहा

नारायण श्याम

"हे जुलाहे ! अपने काम में मग्न रहते हो। समय का ध्यान करो। पौं-फटी से काम पर बैठे हो और न जाने क्यों कुसकाते हो। यह प्रभात-सा स्वर्णिम कपड़ा किस काम आएगा ?"

"इससे बच्चे का सुंदर पहनावा बनेगा। ऐसे में समय का किसे ध्यान है ?"

"तुम अपने काम में मग्न रहते हो। समय का ध्यान करो। काम की धुन और राग की लय में तुम्हें यह भी ध्यान नहीं रहा है कि सूर्य ढल गया है। यह कुनकुना, कुमकुम कपड़ा किस काम आएगा ?"

"इससे दूल्हा-दुल्हन की ओढ़नियां बनेंगी। ऐसे में समय का किसे ध्यान है?'

मुर्दनी-सी चाँदनी छाई है, रात नम है, लेकिन तुम काम में मग्न हो। तुम्हारा लाल गुलाल-सा कपड़ा किस काम आएगा ?

"मेरा यह कपड़ा किसी निर्जीव शरीर का कफ़न बनेगा। ऐसे में समय का किसे ध्यान है ?"

हिंदी साहित्य

चयन :

डा० नगेन्द्र

अनुक्रम

ऐतिहासिक समीक्षा (कविता)

चंद बरदाई	• पृथ्वीराज रासो	1049
विद्यापति	• पदावली	1052
मलिक मोहम्मद जायसी	• पद्मावत	1059
कबीरदास	• साखी	1061
तुलसीदास	• रामचरितमानस	1065
	• कवितावली	
	• विनयपत्रिका	
सूरदास	• सूरसागर	1069
केशवदास	• रसिकप्रिया	1073
बिहारी	• दोहे	1077
घनानन्द	• काव्य संग्रह	1079
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	• यमुनाछवि	1082
	• प्रेममाधुरी	
श्रीधर पाठक	• प्राकृतिक शोभा	1085
अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	• महारास	1087
मैथिली शरण गुप्त	• कन्दर्प	1090
	• पृथिवीपुत्र	
माखनलाल चतुर्वेदी	• कलिका	1093
जयशंकर प्रसाद	• देश हमारा	1098
	• बीती विभावरी जागरी	
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	• बादल राग	1103
	• वह तोड़ती पत्थर	1106
	• राम की शक्ति पूजा	1107
सुमित्रानन्दन पन्त	• आः धरती कितना देती है	1109

	• मन जलता है	1111
	• मर्म व्यथा	1113
	• परिवर्तन	
महादेवी वर्मा	• रूपसि तेरा घनकेश-पाश	1116
	• मधुर-मधुर मेरे दीप	1117
	• यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो	1119
	• धीरे-धीरे उतर क्षितिज से	1120
सियाराम शरण गुप्त	• खिलौना	1121
	• बापू	1122
रामधारीसिंह दिनकर	• गीत अगीत	1124
	कौन सुन्दर है	
	• चांद और कवि	1125
	• मनुज का श्रेय	1126
	• कुरुक्षेत्र	1128
	• भारत	1129
ऐतिहासिक समीक्षा (कविता)		1130
इंशाअल्लाह खां	• रानी केतकी की कहानी	1135
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	• चन्द्रावली	1137
	• भारतदुर्दशा	1137
बालकृष्ण भट्ट	• बातचीत	1139
बालमुकुन्द गुप्त	• शिवशम्भु का चिट्ठा	1141
महाबीर प्रसाद द्विवेदी	• कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता	1143
श्यामसुन्दर दास	• साहित्य और समाज	1145
रामचन्द्र शुक्ल	• कविता क्या है	1147
प्रेमचन्द	• गोदान (उपन्यास)	1150
जयशंकर प्रसाद	• चन्द्रगुप्त (नाटक)	1153
	• काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध	1155
वृन्दावन लाल वर्मा	• मृगनयनी	1156
चतुरसेन शास्त्री	• वैशाली की नगरबधू	1158

राहुल सांकृत्यायन	• हिमपात	1161
सियाराम शरण गुप्त	• गद्य संकलन	1163
यशपाल	• दिव्या	1166
जैनेन्द्र	• त्यागपत्र	1169
नन्ददुलारे बाजपेयी	• छायावाद	1172
महादेवी वर्मा	• चिन्तन के कुछ क्षण	1174
	• अतीत के चलचित्र	1175
हजारी प्रसाद द्विवेदी	• मनुष्य की जीवन-धारा	1177
	• बाणभट्ट की आत्मकथा	1179
रामधारीसिंह 'दिनकर'	• संस्कृति के चार अध्याय	1180
अज्ञेय	• शेखर : एक जीवनी	1182
नगेन्द्र	• रस-सिद्धान्त	1184
	• हिन्दी साहित्य	1185
फणीश्वर नाथ 'रेणु'	• मैला आंचल	1186
मोहनदास करमचन्द गांधी	• सत्य और अहिंसा	1189
विनोबा भावे	• प्रार्थना	1192

ऐतिहासिक समीक्षा (कविता)

हिन्दी-काव्य के प्रारंभिक संकेत सातवीं-आठवीं शताब्दी के लगभग किन्हीं पुष्प नामक कवि की रचनाओं में माने जाते हैं, किन्तु प्रामाणिक रूप में हिन्दी-काव्य का जन्म ईसा की 10वीं शताब्दी के आसपास ही हुआ। तब से अब तक हमारे देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में समय-समय पर होने वाले परिर्वतनों के कारण हिन्दी-कविता की विषय-वस्तु और शैली भी निरंतर विकसित होती रही है। हिन्दी-साहित्य के विभिन्न इतिहास-लेखकों ने इस सम्पूर्ण विकास-क्रम को प्राय: चार भागों में विभक्त किया है—आदि-काल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल।

आदिकाल

आदिकाल के अन्तर्गत लिखे गए हिन्दी-काव्य का सीमा-निर्धारण 10वीं शती के मध्य से लेकर 14वीं शती के प्रारम्भ तक किया जा सकता है—यों इस युग की कतिपय धार्मिक रचनाएँ 7वीं शती के मध्य में भी मिल जाती हैं। हिन्दी-साहित्य का यह काल नामकरण एवं कवियों व कृतियों की प्रामाणिकता की दृष्टि से सर्वाधिक विवादास्पद रहा है। विद्वानों ने इसे आदिकाल, वीर-गाथाकाल, चारणकाल, अंधकार-काल, अपभ्रंश-काल, संध्या-काल, सिद्ध-सामंत-काल, आदि अनेक नामों से अभिहित किया है, किन्तु इनमें सर्वमान्य संज्ञा आदि-काल ही रही है। अध्ययन की सुविधा के लिए इस युग के काव्य के तीन वर्ग (अपभ्रंश-काव्य, देशभाषा अथवा वीरकाव्य, स्फुट काव्य) बनाए जासकते हैं—

(अ) **अपभ्रंश-काव्य**: इसके अन्तर्गत सिद्ध-साहित्य, नाथ-साहित्य और जैन-साहित्य की गणना की जाती है। सिद्ध-साहित्य की रचना सामान्यत: सन् 750 से 1200 तक मानी जा सकती है क्योंकि प्रमुख 84 सिद्धों का समय यही रहा है। इन सिद्धों की भाषा जनभाषा थी और इनकी साधना के अनु-रूप इनका साहित्य भी भक्ति-भावना के साथ-साथ तृप्त शृंगारिकता से मुखरित था। नाथ-साहित्य सातवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी के मध्य गोरखनाथ व उनके अनुयायियों द्वारा रचा गया। नाथों ने सिद्धों की शृंगारिकता को ग्रहण न कर अपने काव्य में जाति-पांति का विरोध किया और सदाचार पर बल दिया। इनकी रचनाओं में प्रमुखत: दोहा, चौपाई या चर्या-गीतों का प्रयोग है। शांत रस-प्रधान इन रचनाओं का परवर्ती संत-साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इसी युग में 7वीं सदी से लेकर 14वीं सदी के बीच स्वयंभू, सोमदत्त सूरि, शार्गधर, आदि जैन-कवियों ने चरित-काव्यों की रचना की। नैतिक विचारधारा का प्रतिपादन करने के साथ-साथ इन कवियों ने प्रकृति का विशद चित्रण किया है। शांत रस इनकी रचनाओं का अंगी रस है। पउम-

चरिउ, आदिपुराण, महापुराण आदि जैन-साहित्य की उल्लेखनीय कृतियां हैं।

(आ) **देशभाषा का वीर-काव्य** : आदिकालीन साहित्य की सर्वाधिक प्रमुख प्रवृत्ति देशभाषा में रचित वीर-काव्य है। ऐतिहासिक दृष्टि से यवनों के आक्रमण और राजपूत राजाओं के पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष के कारण उस समय अशांति का वातावरण था। अतः उस युग के कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में वीरगाथाओं का प्रणयन किया। इन युद्धों के मूल में प्रायः नारी का आकर्षण और उसकी प्राप्ति की लालसा होने के कारण वीर और उस के साथ-साथ श्रृंगार रस भी मुख्य रस के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सामान्यतः इस युग का काव्य आश्रयदाताओं के प्रसादन के लिए निर्मित हुआ था, अतः उसमें इतिहास की अपेक्षा कल्पना का अंश अधिक है। पृथ्वीराजरासो (चन्दबरदाई), खुमानरासो (दलपतिविजय), बीसलदेवरासो (नरपति नाल्ह), परमालरासो (जगनिक) आदि इस युग की प्रमुख रचनाएँ हैं। सभी में युद्धों का अत्यंत सजीव वर्णन है और इसका माध्यम प्रायः राजस्थान की साहित्यिक भाषा डिंगल है।

(इ) **स्फुट काव्य** : अपभ्रंश और देशभाषा के वीर-काव्य के अतिरिक्त इस युग में कुछ कवियों ने स्फुट रूप में भी काव्य रचना की। विषय-वस्तु की दृष्टि से इनके काव्य में वैविध्य रहा है। खुसरो की मुकरियाँ व पहेलियां तथा विद्यापति की पदावली इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं।

आदिकाल की इन तीन काव्य-प्रवृत्तियों में साहित्यिक दृष्टिकोण से वीर-काव्य का महत्त्व अधिक है, क्योंकि सिद्ध, नाथ तथा जैन-आचार्यों द्वारा प्रणीत साहित्य में धर्म की प्रचार-भावना अधिक है और उधर स्फुट काव्य अपने अल्प परिमाण के कारण किसी प्रवृत्ति का प्रवर्तन करने में असमर्थ रहा।

भक्ति-काल

14वीं शती से 17वीं शती के मध्य तक लिखा गया काव्य भक्ति-साहित्य के अंतर्गत आता है। इस युग में मुस्लिम शासकों का आधिपत्य हो जाने के कारण हिन्दू-जाति अवसाद का अनुभव करने लगी थी। ऐसे समय में कवियों ने नैतिक दायित्व को निभाते हुए अपनी वाणी के माध्यम से निराश हृदयों में भक्ति और शांति का संचार किया। ईश्वर के निराकार तथा साकार दोनों रूपों की उपासना करने के कारण इस युग के कवियों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—निर्गुणमार्गी तथा सगुणमार्गी। साधना-पद्धति के अंतर के आधार पर निर्गुणमार्गी कवियों के भी दो उपवर्ग हैं। जिन कवियों ने ज्ञान-साधना द्वारा ईश्वर की प्राप्ति का समर्थन किया वे ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि अथवा संत कवि कहलाये। कबीरदास, गुरु नानक, धर्मदास, मलूकदास, दादूदयाल, सुंदरदास, आदि इसी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने अपनी साखियों तथा पदों के अन्तर्गत एकेश्वरवाद की स्थापना, रूढ़िवाद व बाह्य आडम्बरों का विरोध तथा संसार की नश्वरता का प्रतिपादन किया है।

इसके विपरीत जिन कवियों ने प्रेम द्वारा ईश्वर की प्राप्ति पर बल दिया वे प्रेममार्गी अथवा सूफी कवि कहलाए । जायसी, मंझन, कुतुबन, उसमान आदि इस धारा के प्रतिनिधि कवि हैं । इन कवियों की सभी रचनाएं (पद्मावत, मृगावती, मधुमालती, चित्रावली) भारतीय प्रेमगाथाओं की कथावस्तु के आधार पर प्रबंध-काव्यों के रूप में लिखी गई हैं जिनमें आत्मा को पति तथा परमात्मा को पत्नी के रूप में कल्पित कर भक्ति-निवेदन किया गया है ।

सगुणमार्गी कवियों के भी दो वर्ग हैं—रामभक्त एवं कृष्णभक्त । रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास हैं जिन्होंने रामचरितमानस, गीतावली, कवितावली, विनयपत्रिका आदि अनेक महत्वपूर्ण कृतियों के माध्यम से भगवान राम के शील-शक्ति-सौंदर्य से संपन्न मर्यादापूर्ण आदर्श जीवन का चित्रण किया है । उनके अतिरिक्त अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान आदि ने स्फुट रूप से इस काव्य धारा का विकास किया । कृष्णभक्त कवियों में महाकवि सूरदास, नंददास, कृष्णदास, परमानंददास, गोविंदस्वामी, रसखान, मीरा आदि कवियों ने अपने उपास्य की लीलाओं का निरूपण किया है । इनके काव्य का अधिकांश भाग पदों के रूप में लिखा गया है ।

तुलनात्मक दृष्टि से यह ज्ञातव्य है कि रामभक्ति शाखा के कवियों ने जहां भगवान राम के मर्यादापुरुषोत्तम रूप पर बल देते हुए भक्ति के क्षेत्र में सेवक-सेव्य भाव को अपनाया वहां कृष्णभक्ति शाखा के कवियों ने लीलामय कृष्ण के लोकरंजन रूप को स्वीकार किया और माधुर्यभावमयी भक्ति की प्रतिष्ठा की । कृष्ण-काव्य व्रजभाषा में गेय मुक्तकों के रूप में लिखा गया, जबकि रामकाव्य अवधी में या फिर आधुनिक काल में खड़ी बोली में लिखा गया और उसमें प्रबंध-तत्व अधिक है । विषय की सरसता तथा गेय रूप के कारण कृष्ण-काव्य अधिक जनप्रिय हुआ ।

उपलब्धि की दृष्टि से भक्तिकाल हिन्दी-काव्य का स्वर्ण-काल है । इस युग के अधिकांश कवि शास्त्र-ज्ञान में निपुण न होने पर भी जीवन के मार्मिक अनुभवों की निश्छल अभिव्यक्ति के द्वारा अमर साहित्य का सृजन कर गए हैं । संत कवियों की साखियां और पद, जायसी का पद्मावत, गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस और सूरदास के सरस पदों का संग्रह—सूरसागर इस युग की महान कृतियां हैं जिनमें प्रतिपादित ज्ञान एवं भक्ति के उदात्त संदेश ने सामाजिक मनोबल के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग दिया ।

रीतिकाल

भक्तिकाल में कवियों ने जिन "राधा कन्हाई" के गुण आंतरिक भक्ति-भाव की प्रेरणा से गाए थे, उन्हीं के 'सुमिरन' को 'बहाना' बना कर रीतिकालीन कवियों ने काव्य के क्षेत्र में अपनी शृंगारिक मनोवृत्ति की अभिव्यंजना की । इस शृंगारिक मनोवृत्ति के परिपाक के लिए उन्हें मनोनुकूल

राजनीतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि भी मिल गई थी। यह काव्यधारा पूरी दो शताब्दियों तक प्रवाहित रही।

प्रतिपाद्य के आधार पर रीतिकालीन कवियों के दो वर्ग किए जा सकते हैं—रीतिबद्ध कवि तथा रीतिमुक्त कवि। रीतिबद्ध कवियों ने संस्कृत काव्य-शास्त्र के आधार पर कवि-शिक्षा के उद्देश्य से लक्षण व लक्ष्य ग्रन्थों का निर्माण किया। दोहों में रस, अलंकार, नायिका-भेद आदि का स्वरूप परि-भाषित करने के उपरांत प्रेम भाव के व्यंजक सवैयों व कवित्तों में उनके उदाहरण देकर इन्होंने अपने आचार्यत्व की प्रतिष्ठा की। केशव, चिंतामणि, मतिराम, देव, कुलपतिमिश्र, भिखारीदास प्रभृति कवि इस दृष्टि से उल्लेख-नीय हैं। बिहारी भी इसी परंपरा के मूर्धन्य कवि हैं—अंतर यह है कि उन्होंने लक्ष्ण-निर्माण न कर रस-अलंकार के विविध रूपों को स्वतंत्र दोहों में शब्दबद्ध कर दिया है।

दूसरा वर्ग रीतिमुक्त कवियों का है। आलम, घनानंद, बोधा, ठाकुर आदि इसी वर्ग के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने लक्षणबद्ध शृंगार-काव्य लिखने की अपेक्षा प्रेम और उसकी अनेक विवृतियों के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। इसी कारण इनके काव्य में मौलिक अभिव्यंजना और प्रभावक्षमता अपेक्षाकृत अधिक है।

रीतिबद्ध और रीतिमुक्त काव्यधारा के अतिरिक्त इस युग में दो अन्य प्रकार की काव्य-प्रवृत्तियां भी विकसित हुईं। एक ओर वृन्द, बेताल, गिरिधर आदि कवियों द्वारा स्फुट रूप में नीति-काव्य रचा गया और दूसरी ओर भूषण, सूदन तथा लाल ने अपने युग की राष्ट्र-भावना से प्रेरित होकर वीररस प्रधान काव्य लिखा—यद्यपि इसमें राष्ट्रभक्ति के स्थान पर राजभक्ति की भावना ही प्रायः अधिक प्रबल थी।

इस युग के काव्य की माध्यम ब्रजभाषा थी। कवियों के प्रिय छंद थे—दोहा, कवित्त और सवैया। मुक्तक काव्य के रूप-बन्ध और अभिव्यंजनाशिल्प का विकास रीतिकाल की विशिष्ट उपलब्धि है।

आधुनिक काल

सन् 1857 से भारतीय इतिहास का आधुनिक युग प्रारम्भ होता है और आधुनिक भारतीय साहित्य का प्रारम्भ भी प्रायः इसके आसपास ही हो जाता है। आधुनिक हिन्दी-साहित्य को इतिहासकारों ने चार खण्डों में विभक्त किया है: आरम्भ के 11 वर्ष एक प्रकार से परिवर्तन की भूमिका माने जा सकते हैं। (1) भारतेन्दु अथवा पुनर्जागरण युग (1868-1893 ई०); (2) द्विवेदी युग (1893-1918 ई०); (3) छायावाद युग (1918-1937 ई०) और (4) समसामयिक काल 1937 से अब तक।

उत्तर-मध्यकाल में जीवन के मूल स्रोत से हिन्दी कविता का सम्बन्ध

विच्छिन्न हो गया था और वह एक प्रकार से विलास का साधन मात्र बन गई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1849-1882 ई०) की दृष्टि, जो हिन्दी-प्रवेश में पुनर्जागरण आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे, इस दोष की ओर गई और उन्होंने कविता को विलास-सौध से बाहर लाकर सामाजिक-राष्ट्रीय जीवन के मुक्त वातावरण में खड़ा कर दिया। भारतेन्दु ने हिन्दी-साहित्य में आधुनिक दृष्टि का उन्मेष किया और इसलिए आधुनिक युग के प्रवर्तन का श्रेय उनको ही प्राप्त है। आगे चलकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस सूत्र को ग्रहण किया। द्विवेदी जी प्रकृति और व्यवहार दोनों से सुधारवादी थे और उन्होंने अत्यन्त सतर्क भाव से काव्य की विषयवस्तु तथा माध्यम भाषा के परिमार्जन का प्रयत्न किया। परिणामतः हिन्दी कविता का नैतिक स्वर गंभीर होने लगा --शायद आवश्यकता से अधिक भी—और भाषा का स्वरूप स्वच्छ, शुद्ध एवं परिनिष्ठित बनता गया। द्विवेदी जी ने ब्रजभाषा-बनाम खड़ी बोली के विवाद को समाप्त कर कविता और गद्य की भाषा के अस्वाभाविक भेद को मिटा दिया। हमारे विचार और भावना की भाषा भिन्न हो, यह निश्चय ही एक विडम्बना थी, अतः इस निर्णय से आधुनिक साहित्य के विकास का मार्ग प्रशस्त हो गया। द्विवेदी जी के काव्यादर्शों को आधुनिक युग के दो महान कवियों ने मूर्तिमंत किया—ये हैं अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और मैथिलीशरण गुप्त। श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के अन्य प्रसिद्ध कवि हैं। यह वास्तव में सांस्कृतिक पुनरुत्थान का युग था—जब-कि वर्तमान जीवन की समृद्धि के लिए भारत की प्राचीन संस्कृति के वैभव का उद्घाटन किया गया। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याएं कविता में प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त हुईं और राष्ट्रीय जागरण का स्वर सर्वत्र मुखरित होने लगा।

इन तत्त्वों के संकलित प्रभाव के फलस्वरूप वर्तमान हिन्दी-कविता की उस प्रमुख प्रवृत्ति का विकास हुआ जिसकी आत्मा राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से दीपित थी और जो स्वतंत्र भारत में और भी अधिक वेग से प्रवाहित हो उठी। इस धारा के प्रमुख कवि हैं माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सियारामशरण गुप्त और दिनकर। किन्तु यह तो चित्र का एक पहलू था। इस काव्यधारा में जीवन के नैतिक पक्ष पर इतना अधिक बल दिया गया कि मानव-चेतना की अन्य सहज वृत्तियां—प्रेम की वासना, अहंभाव की अनेकरूप विवृति तथा सौन्दर्य की सूक्ष्मतर संवेदना आदि—कुंठित होने लगीं। प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी और अंततः ये सूक्ष्मतर संवेदनाएं छायावाद के रूप में प्रतिफलित हुईं—जिसके प्रवर्तक थे प्रसाद और प्रतिनिधि कवि थे निराला, पंत तथा महादेवी। ये सभी कवि अत्यंत समर्थ हैं और हिन्दी-कविता के संवेद्य-तत्व तथा शिल्प दोनों को ही इनकी कालजयी रचनाओं से अपूर्व समृद्धि

प्राप्त हुई । छायावाद की चरम उपलब्धि है कामायनी । मानव-चेतना के विकास का यह महाकाव्य अथवा मानव-सभ्यता का यह विराट् रूपक आधुनिक भारतीय काव्य का मानदण्ड है ।

प्रसाद की मृत्यु और कामायनी के प्रकाशन के बाद सन् 1937-38 से छायावाद का अपकर्ष आरम्भ हो गया । प्राणों की वह मधुर स्फूर्ति चिंतन के भार से आक्रांत होने लगी । निदान उसके विरुद्ध भी प्रबल प्रतिक्रिया हुई । यह वह समय था जबकि भारत के राजनीति-मंच पर वाम-शक्तियां गांधी-दर्शन के विरुद्ध संगठित हो रही थीं । वामपक्षीय विचारधारा की अभिव्यक्ति हिन्दी-कविता की दो परस्परविरोधी प्रवृत्तियों में हुई । एक को प्रगतिवाद के नाम से अभिहित किया गया । यह सर्वहारा वर्ग की जन-कविता थी जिसने मार्क्सवादी सिद्धान्तों से अभिप्रेरित होकर सामाजिक यथार्थ-दर्शन को वाणी देने का उत्कट प्रयास किया । दूसरी ने इस अनगढ़ सामाजिक-चेतना से काव्य शुद्धता की रक्षा करने का संकल्प किया और आधुनिक भाव-बोध को प्रतिफलित करने के लिए कथ्य तथा शिल्प के नूतन प्रयोग किए । प्रारम्भ में प्रयोगवाद और फिर नई कविता के नाम से वह नवीन काव्यधारा आज पूरे वेग से प्रवाहित है । प्रथम वर्ग के पुरोधा हैं सुमित्रानन्दन पंत । बाद में निराला भी इधर आकृष्ट हुए और नरेन्द्र, अंचल तथा सुमन आदि तरुण कवियों ने इसके विकास में योगदान किया । दूसरे वर्ग के प्रमुख कवि हैं अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर तथा धर्मवीर भारती । इनके समानान्तर वैयक्तिक प्रगति कविता की एक और धारा का अविर्भाव हुआ जिसका लक्ष्य था सामाजिक अथवा साहित्यिक सिद्धान्तों से मुक्त व्यक्तिमन के सुख-दुःख और आशा-निराशा की सहज अभिव्यक्ति । बच्चन इस प्रवृत्ति के अग्रणी कवि हैं । विरोधी विचारधाराओं के संघात से गांधीवाद का स्वरूप और अधिक उज्ज्वल होने लगा—और सियारामशरण गुप्त के काव्य में उसका शुद्ध-सात्त्विक रूप निखर कर सामने आया । उधर अरविन्द-दर्शन के अंतश्चेतनावाद से प्रभावित होकर छायावाद ने पंत के परवर्ती स्वर्णकाव्य में एक नवीन आयाम प्राप्त किया । समसामयिक युग में भी प्रायः ये सभी प्रवृत्तियां किसी-न-किसी रूप में जीवित हैं यद्यपि इन सभी में समान वेग आज नहीं है । नई कविता का प्रचार और प्रसार आज कुछ अधिक है, परन्तु उपलब्धि की दृष्टि से आज भी पूर्व-प्रवृत्तियों का महत्त्व कम नहीं है ।

हिन्दी-कविता का इतिहास, इस प्रकार प्रायः एक हजार वर्ष तक फैला हुआ है । गुण और परिमाण की दृष्टि से वह भारत की ही नहीं विश्व की किसी भी समद्ध भाषा के समकक्ष है ।

चन्दबरदाई
(बारहवीं शताब्दी)

पृथ्वीराजरासो

1. पद्मावती का रूप

पदमसेन कूंवर सुघर, ता घर नारी सुजांन।
ता उर इक पुत्री प्रगट, मनहुं कला ससि भांन॥
मनहुं कला ससि भांन, कला सोलह सोवन्निय।
बाल वेस ससिता-समीप, अम्रत रस पिन्निय।
बिगसि कमल म्रग भमर, नैन खंजन म्रग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिंब, मोति नख सिख अहि घुट्टिय॥
छत्रपति-गयंद हरि हंस गति, बिह बनाय संचे सचिय।
पदमनिय रुप पदमावतिय, मनहु काम कामिनि रचिय॥
मनहुं कांम कांमिनि रचिय, रचिय रुप की रास।
पसु पंछी मृग मोहिनी, सुर नर मुनियर पास॥
सामुद्रिक लच्छिन सकल, चौसठि कला सुजांन।
जानि चतुर-दस अंग-खट, रति बसन्त परमांन॥
सखियन संग खेलत फिरत, महलनि बागनि वास।
कीर इक्क दिख्खिय नयन, तब मन भयो हुलास॥
मन अति भयो हुलास, बिगसी जनु कोक किरन रबि।
अरुन अधर तिय सधर, बिंब फल जानि कीर छबि॥
यह चाहत चख चकित, उहजु तक्किय झरप्पि-झर।
चंच चहुट्टिय लोभ, लियो तब गहित अप्प कर॥
हरखत अनंद मन महिं हुलस, लैं जु महल भीतर गइय।
पंजर अनूप नग मनि ज़टिल, सो तिहि महं रख्खत भइय॥
तिहिं महिल्ल रख्खत भइय, गइय खेल सब भुल्लि।
चित्त चहुट्यो कीर सौं, रांम पढ़ावत फुल्लि॥

कीर कुंवरि तन निरखी दिखि, नख सिख लौं यह रुप ।
करता करी बनायके, यह पदमिनी सरुप ।।
कुटिल केस सुद्देस, पौहप-रचियत्त पिक्क सद ।
कमल गंध बयसंध, हंस गति चलत मंद-मंद ।।
सेत वस्त्र सोहैं सरीर, नख स्वाति बुंद जस ।
भमर भमहि भुल्लहि सुभाव, मरकंद बास रस ।।
नैनन निरक्खि सुख पाय सुक, यह सुदिन्न मूरति रचिय ।
ऊमा प्रसाद हर हेरियत, मिलहि राज पृथिराज जिय ।।

2. संयोगिता-परिणय

भय टामंक दिस्सह न दिसि बहु पषर महराउ ।
मनु अकाल टिड्डिय सघन सु पव्वइ छुट्टि प्रवाह ।।
प्रवाहे स्वेत ताजी न लज्जे अहारे ।
मनउ रव्वि के रथ्थ आने पहारे ।।
सामि संग्रामि झिल्लइ दुधारा ।
उप्पमा कैम दीजइ छिकारा ।।
साहियं वग्ग कढ्ढइ जिलारा ।
मनउ आवझइ हथ्थ बज्जिंति तारा ।।
छुट्टियं तेज बुठ्ठे जि कारा ।
ते सज्जियं सूर सव्वे तुषारा ।।
पष्षरे प्रान से मत्त बारा ।
कंध नामइ नहीं लोह धारा ।।
घाट अवघाट बैंक (त) निनारा ।
कंठ झूमंति गजगाह भारा ।।
लोह लाहउर बाजइ तुरक्की ।
तिने धावते दीसइ नहि धूरि पुरकी ।।
पच्छिमी सिंधु जानइ न धक्की ।
ते साधि सीधी बले जक्कि जक्की ।।
पवन पंषीन अंषी मनक्की ।

जे आस कड्ढे नहीं चंपि नक्खी ॥
राग बागे नहीं सुधि उरक्की ।
मनउ उप्पमा उच्च आबइ धुरक्की ॥
आरबी देसावरी लोह लछ्छी ।
गनइ को कंठ कंठी न कछ्छी ॥
धरा षित्ति पुद्दंति तुट्टंति बाजी ।
दिष्षअइ एक अंकेक (अक्केक) ताजी ॥
पंडवे पंगुरे राय सज्जे ।
दुवन दल तुछ्छ देषंत लज्जे ॥
एह अप्पुव्व कवि चंद पेक्खउ ।
तरणि सम तेज दुजराज देख्खउ ॥

विद्यापति

(चौदहवीं शताब्दी)

पदावली

(एक)

सैसव जौवन दुहु मिलि गेल ।
स्रवन क पथ दुहु लोचन लेल ॥2॥
वचन क चातुरि लहु-लहु हास ।
धरनिये चांद कएल परगास ॥4॥
मुकुर लई अब करई सिंगार ।
सखि पूछइ कइसे सुरत-विहार ॥6॥
निरजन उरज हेरइ कत बेरी ।
हसइ से अपन पयोधर हेरि ॥8॥
पहिल बदरि-सम पुन नवरंग ।
दिन-दिन अनंग अगोरल अंग ॥10॥
माधव पेखल अपुरुब बाला ।
सैसव जौवन दुहु एक मेला ॥11॥
विद्यापति कह तुहु अगेआनि ।
दुहु एक जोग इह के कह संयानि ॥

(दो)

सजनी, भल कए पेखल न भेल ।
मेघ-माल सयं तड़ित-लता जनि
हिरदय सेल दई गेल ॥
आध आंचर खसि आध बदन हसि
आधहि नयन तरंग ।

आध उरज हेरि आध आंचर भरि
तबधरि दगधे अनंग ।।
एके तनु गोरा कनक कटोरा,
अतनु कोंचला उपाम ।
हार हारल मन जनि बूझि ऐसन
फांस पसारल काम ।।
दसन मुकुता पांति अधर मिलायल
मदु मदु कह तहिं भासा ।
विद्यापति कह अतए से दुख रह
हेरि-हेरि न पुरल आसा ।।

(तीन)

ससन-परस खसु अम्बर रे
देखल धनि देह ।
नव जलधर-तर संचर रे
जनि बिजुरी-रेह ।।
आज देखल धनि जाइत रे
मोहि उपजल रंग ।
कनक-लता जनि संचर रे
महि निर अवलम्ब ।।
ता पुन अपरुब देखल रे
कुच-जुग अरबिन्द ।
बिगसित नहि किछु कारन रे
सोझा मुख-चन्द ।।
विद्यापति कवि गाओल रे
रस बूझ रसमन्त ।
देवसिंह नृप नागर रे
हासिनी देइ कन्त ।।

(चार)

सहजहि आनन सुन्दर रे
भौंह सुरेखलि आंखि ।
पंकज मधु-पिबि मधुकर रे
उड़ए पसारल पांखि ।।

ततहि धाओल दुहु लोचन रे
जतहि गेली बर नारि ।
आसा-लुबुधल न तेजए रे
कृपन क पाछु भिखारि ।।
इंगितनयन तरंगित रे
बाम भौंह भेल भंग ।
तखन न जानल तेसर रे
गुपुत मनोभव रंग ।।
चन्दन चरचु पयोधर रे,
ग्रिम गज मुकुताहार ।
भसम भरल जनि संकर रे,
सिर सुरसरि जलधार ।।
बाम चरन अगुसारल रे,
दाहिन तेजइत लाज ।
तखन मदन सर पूरल रे,
गति गंजए गजराज ।।
आज जाइत पथ देखलि रे
रूप रहल मन जागि ।
तेहि खन सयँ गुन गौरव रे
धैरज गेल भागि ।।
रूप लागि मन धाओल रे
कुच-कंचन-गिरि साँधि ।
ते अपराधें मनोभव रे
ततहि घएल जनि बाँधि ।।
विद्यापति कवि गाओल रे
रस बुझ रसमंत ।
रूपनरायन नागर रे,
लखिमा देइ कंत ।।

(पांच)

अनुखन माधव माधव सुमरित,
सुन्दरि भेलि मधाई ।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल,
अपने गुन लुबुधाई ।।

माधव, अपरुब तोहर सिनेह ।
अपने बिरह अपन तनु जरजर
जिबइत भेलि संदेह ।।
भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि,
छल-छल लोचन पानि ।
अनुखन राधा राधा रटइत
आधा आधा बानि ।।
राधा सयँ जब पुनतहि माधव,
माधव सयं जब राधा ।
दारुन प्रेम तबहि नहि टूटत
बाढ़त बिरहक बाधा ।।
दुहुदिस दारु-दहन जैसे दगधई
आकुल कीट परान ।
ऐसन बल्लभ हेरि सुधामुखि
कवि विद्यापति भान ।।

(छः)

सरस बसंत समय भल पाओलि,
दछिन पवन बहु धीरे ।
सपनहुँ रूप बचन एक भाखिए,
मुख सों दुरि करु चीरे ।।
तोहर बदन सम चान होअथि नहि,
जइओ जतन बिहि देला ।
कए बेरि काटि बनाओल नव कय
तइओ तुलित नहि भेला ।।
लोचन-तूल कमल नहि भए सक
से जग के नहि जाने ।
से फेरि जाए लुकाएल जल भए
पंकज निज अपमाने ।।
भनहि विद्यापति सुनु बर जोबति
ई सभ लछमी समाने ।
राजा सिवसिंध रूपनरायन
लखिमा देई पति भाने ।।

प्रेमगीत

(एक)

बारिस जामिनि कोमल कामिनि दारुण अति अन्धकार ।।1।।
पथ निशाचर सहसे सञ्चर घन तर पर जलधार ।।2।।
माधव प्रथम नेह् से भीती ।।3।।
गए अपनहि से अवलोकिअ करिअ तैसनि रीती ।।4।।
अति भयाउनि आतर जूउनि कैसे कए आउति पार ।।5।।
सुरतरस सुचेतन बालभु ता-पति सबे असोर ।।6।।
एत गुनि मने विमुख सुमुखि तोह मने नहि लाज ।।7।।
कतए देखल मधु अपने जा मधुकर (केर) समाज ।।8।।
भनइ विद्यापति·········।

(दो)

आसा मन्दिर बैस निसी गभवाए सुखे न सूत सयान ।।1।।
जखने जतने जाहि निहारए ताहि ताहि तुअ मान ।।2।। ध्रुव ।।
वन उपवन कुंज कुटीरहि सवहि तोर निरूप ।।3।।
तोहि बिनु (हरि) पुनु-पुनु मुरुछए अइसन पेम सरूप ।।4।।
मालति सफल जीवन तोर ।।5।।
तोरे विरहे भूवन भमए भेल मधुकर भोर ।।6।।
जातकि केतकि कत न अछ (ए) कुमुमरस समान ।।7।।
सपनहु (ओ) नहि काहु निहारए मधु कि करत पान ।।8।।
जकर हृदय (सखि) जतए रहल धसि (से) पए ततहि जाए ।।9।।
जँअओ जतने बान्धि निरोधिअ निम न नीर समाए ।।10।।
भनइ विद्यापति··· ·····।

(तीन)

प्रथमहि अलक तिलक लेब साजि काजरे चंचल लोचन आजि ।।1।।
बसने जाएब हे आग सबे गौर दुरहि बरते अरथित होय ।।2।। ध्रु०।।

सुन्दरि प्रथमहि रहब लजाए कुटिले नयने देब मदन जगाए ।।3।।
झापब कुच दरसाओब आध खने खने सुदृढ़ करब निवि बान्ध ।।4।।
मान कइए दरसाओब भाव रस राखब ते पुनु पुनु आव ।।5।।
सुन्दरि मजे कि सिओ बिसी आओर रङ्ग अपनहि गुरु भए कहन
अनङ्ग ।।6।।
भनइ विद्यापति·········।

(चार)

ततहि धाओल दुहु लोचन रे जेहि पथे गेलि बरनारि ।
आसा-लुबुधल न तेजए रे कृपणक पाछु भिषारि ।।1।। ध्रुव।।
सहजहि आनन सुन्दर रे भौह निवित आखि ।
पङ्कज मधुकर मधु पिबि रे उड़ए पसारलि पाखि ।।2।।
आजे देखलि धनि जाइते रे रूप रहल मन लागि ।
रूप लागल मन धाओल रे कुच कंचन गिरि सान्धि ।।3।।
ते अपराधे मनोभव रे ततए धएल जनि वान्धि ।।4।।
विद्यापति कवि गाबिह रे गुण बूझ रसिक सुजान ।।5।।
राजाहुं रूप नराएण रे लखिमा देवि रमान ।।6।।

(पांच)

सहजहि आनन अछल अमूल
अलकँ तिलकँ ससधर-तूल ।।1।।
कालागि अइसनपसाहन देल
जे छल रूप सेहओ दुर गेल ।।3।। ध्रुव।।
अछल सोहाँबोन की भए गेल
भूषण कएले दूषण भेल
दरसि जगावए मुनि-जन-आधि
नागरका ओ सहज बैआधि ।।4।।
लिहले उखलल अओछा भार
भेटले मेटत अछ परकार ।।5।।
भनइ विद्यापति·········

(छः)

आजे मंजे हरि-समागम जाएब कथ मनोरथ मेल ।।1।।
घर गुरू-जन नीन्द निरुपैतें चन्दाए उदय देल ।।2।। ध्रुव।।

चन्दा कठिन तोहरि रीति ॥3॥
जेहि-मति तोहि कलङ्क लागत तैंअओ न मानसि भीति ॥4॥
जगत-नागरी-मुह जिनइते गेलाहे गगन हारि ॥5॥
ततहु राहु गरास पलताह देव तोहि की गारि ॥6॥
एके मासे तोहि विहि सिरजए कन-जतन-बले ॥7॥
दोसर दिना रहए न पारह ओही पापक फले ॥8॥
भनइ विद्यापति·········।

(सात)

नौनुअ वदन सिरि-धनि तोरि
जस लागिह मोहि चान्दक चोरि ॥1॥
दरसि हलह जनु हेरह काहु
चान्द-भरमे मुख गरसत राहु ॥2॥ ध्रुवं॥
धवल नयन तोर काजरे कार
तीख तरल (धनु व्याधा जनि) धार ॥3॥
निरलि निहारि फास गुण जोलि
बान्धि हलत तोहि खंजन बोलि ॥4॥
सागर-सार चोराओल चन्द
ता लागि राहु करए बड़ दन्द ॥5॥
कतए लुकाओब चान्द क चोरि
जतहि लुकाइअ ततहि उजोरि ॥6॥
भनइ विद्यापति·········॥

मलिक मुहम्मद जायसी

(अनुमानतः १५००-१५५८)

पद्मावत

नागमती-विरह

पिउ बियोग अस बाउर जीऊ । पपिहा तस बोलै पिउ पीऊ ।
अधिक काम दगधै सो रामा । हरि जिउ लै सो गएउ पिय नामा ।
बिरह बान तस लाग न डोली । रकत पसीज भीजि तन चोली ।
सखि हिय हेरि हार मैन मारी । हहरि परान तजै अब नारी ।
खिन एक आव पेट महं स्वांसा । खिनहि जाइ सब होइ निरासा ।
पौनु डोलावहिं सींचहिं चोला । पहरक समुझि नारि मुख बोला ।
प्रान पयान होत केइं राखा । को मिलाब चात्रिक कँ भाखा ।
आह जो मारी बिरह की आगि उठी तैहि हांक ।
हंस जो रहा सरीर महं पांख जरे तन थाक ।।
चढ़ा असाढ़ गँगन घन गाजा । साजा बिरह दुंद दल बाजा ।
धूम स्याम धौरे घन धाए । सेत धुजा बगु पांति देखाए ।
खरग बीच चमके चहुं औरा । बुंद बान बरिसे घन घोरा ।
अद्रा लाग बीज भुइं लेई । मोहि पिय बिनु को आदर देई ।
औनै घटा आई चहुं फेरी । कंत उबारु मदन हौं घेरी ।
दादुर मोर कोकिला पीऊ । करहिं बेझ घट रहै न जीऊ ।
पुख नछत्र सिर ऊपर आवा । हौं बिनु नांह मंदिर को छावा ।
जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारौ तिन्ह गर्ब ।
कंत पियारा बाहिरें हम सुख भूला सर्ब ।।
भर भादों दूभर अति भारी । कैसें भरों रैनि अंधियारी ।
मंदरि सून पिय अनतै बसा । सेज नाग भै धै-धै डसा ।
रहौं अकेलि गहें एक पाटी । नैंन पसारि मरौं हिय फाटी ।
चमकि बीज घन गरजि तरासा । बिरह काल होइ जीउ गरासा ।

बरिसै मघा झंकोरि झंकोरी। मोर दुइ नैन चुवँहि जसि ओरी।
पुरबा लाग पुहुमि जल पूरी। आक जवास भई हौं झूरी।
धनि सूखी भर भादों माहां। अबहूं आइ न सींचति नाहां।

जल थल भरे अपूरि सब गंगन धरति मिलि एक।
धनि जोबन औगाह महं बूड़त दे पिय टेक ।।

अगहन देवस घटा निसि बाढ़ी। दूभर दुख सो जाइ किमि काढ़ी।
अब धनि देवस बिरह भा राती। जरै बिरह ज्यों दीपक बाती।
कांपा हिया जनावा सीऊ। तौ पै जाइ होइ संग पीऊ।
घर-घर चीर रचा सब काहू। मोर रूप रंग लै गा नाहू।
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहूं फिरै फिरें रंग सौई।
सियरि अगिनि बिरहैं हिय जारा। सुलगि-सुलगि दगधै भै छारा।
यह दुख दगध न जानै कंतू। जोबन जरम करै भसमंतू।

पिय सौं कहेहु संदेसरा ऐ भंवरा ऐ काग।
सो धनि बिरहैं जरि गई तेहिक धुआं हम लाग ।।

भा बैसाख तपनि अति लागी। चौला चीर चंदन भौ आगी।
सूरुज जरत हिवंचल ताका। बिरह बजागि सौंहं रथ हांका।
जरत बजागिनि होइ पिउ छांहा। आइ बुझाउ अंगारन्ह मांहां।
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि सों करु फुलवारी।
लागिउं जरै जरै जस भारू। बहुरि जो भूंजसि तजौं न वारू।
सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ होइ बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिय टेका। दिस्टि दवंगरा मैरवहु एका।

कंवल जो बिगसा मानसर छारहि मिलै सुखाइ।
अबहुं बेली फिरि पलुहै जौं पिय सींचहु आइ ।।

कुहुकि कुहुकि जसि कोइलि रोई। रक्त आंसु घुंघुंची बन बोई।
पै करमुखी नैन तन राती। को सिराव बिरहा दुख ताती।
जहं जहं ठाढ़ि होइ बनबासी। तहं तहं होइ घुंघुचिन्ह कै रासी।
बुंद बुंद महं जानहुं जीऊ। कुंजा गुंजि करहिं पिउ पिऊ।
तेहि दुख डहे परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे परभाते।
राते बिंब भए तेहि लौहू। परवर पाक फाट हिय गोहूं।
देखिअ जहां सौइ होइ राता। जहां सो रतन कहै कौ बाता।

ना पावस ओहि देसरें ना हेवंत बसंत।
ना कोकिला न पपीहरा केहि सुनि आवहि कंत ।।

कबीर दास

(अनुमानतः १३९९-१४९५)

1. साखी

यह तत वह तत एक है, एक प्राण दुइ गात ।
अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात ।।

उठा बगूला प्रेम का, तिनका उड़ा अकास ।
तिनका तिनका से मिला, तिनका तिनके पास ।।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं हम नाहिं ।
प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाहिं ।।

गगन गरजि बरसे अमि, बादल गहिर गंभीर ।
चहुं दिसि दमके दामिनि, भीजें दास कबीर ।।

सुन्न मंडल में घर किया, बाजे शब्द रसाल ।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीनदयाल ।।

नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय ।
पलकों की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय ।।

नैनों अंतर आव तू, नैन झांपि तोहि लेव ।
ना मैं देखों और को, ना तोहि देखन देव ।।

सुपने में सांई मिले, सोवत लिया जगाय ।
आंखि न खोलूं डरपता, मत सुपना ह्वै जाय ।।

प्रीतम को पतियां लिखूं, जो कहुं होय बिदेस ।
तन में मन में नैन में, ताकों कहा संदेस ।।

तेरा सांई तुज्झ में, ज्यों पुहुपन में बास ।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर फिर ढूंढे घास ।।

लाली मेरे लाल की, जित देखों तित लाल ।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ।।

हेरत हेरत हेरिया, रहा कबीर हिराय ।
बुंद समानी समुंद में, सो कित हेरी जाय ।।

अंखियां तो भांई परी, पंथ निहार निहार ।
जीहड़ियां छाला परा, नाम पुकार पुकार ।।

बिरह कमंडल कर लिये, बैरागी दो नैन ।
मांगे दरस मधूकरी, छके रहें दिन रैन ।।

आतम अनुभव ज्ञान की, जो कोई पूछे बात ।
सो गूंगा गुड़ खाइ के, कहै कौन मुख स्वाद ।।

कागद लिखे सो कागदी, की व्योहारी जीव ।
आतम दृष्टि कहां लिखे, जित देखे तित पीव ।।

पहले यह मन काग था, करता जीवन-घात ।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुगि चुगि लात ।'

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत ।
कह कबीर पीउ पाइए, मनहीं की परतीत ।।

माटी कहे कुम्हार सों, तूं क्या रूंदे मोंहि ।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं रूंदूंगी तोंहि ।।

माली आवत देखि के, कलियां करें पुकार ।
फूली फूली चुनि लिये, काल्हि हमारी बार ।।

सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय ।
सात समुंद की मसि करूँ, गुरू गुन लिखा न जाय ।।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि मांहि परंत ।
कोइ एक गुरू ज्ञान तें, उबरे साधु संत ।।

सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय ।
जैसे बाती दीप की, कटि उजियारा होय ।।

सूरा के तो सिर नहीं, दाता के धन नांहि ।
पतिबरता के तन नहीं, सुरति बसै मन मांहि ।।

ऋतु बसंत जाचक भया, हरषि दिया द्रुम-पात ।
तातें नव पल्लव भया, दिया दूर नहिं जात ।।

सांचे स्राप न लागइ, सांचे काल न खाय ।
सांचे को सांचा मिले, सांचे मांहि समाय ।।

बाद बिबादे बिष घना, बोले बहुत उपाध ।
मौन गहे सबकी सहें, सुमिरे नाम अगाध ।।

बृच्छ कबहुं नहिं फल भखें, नदी न संचे नीर ।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर ।।

2. पद

(1)

मोकों कहां ढूंढै बंदे मैं तो तेरे पास में ।
ना बकरी में ना भेड़ी में ना मैं छुरी गंडास में ।
नहीं खाल में नहीं पूंछ में ना हड्डी न मांस में ।
ना देवल में ना मसजिद में ना कोबे केलास में ।
ना तो कौनो क्रिया कर्म में नहीं जोग बैराग में ।
खोजी होय तो तुरते मिलिहों पल भर की तलास में ।
मैं तो रहों सहर के बाहर मेरी पुरी मवास में ।
कहें कबीर सुनो भाई साधो सब सांसों की सांस में ।।

(2)

चंदा झलके येहि घट मांही । अंधी आंखिन सूझे नाहीं ।।
येहि घट चंदा येहि घट सूर । येहि घट गाजे अनहद तूर ।।
येहि घट बाजे तबल निसान । बहिरा शब्द सुने नहिं कान ।।
जब लग मेरी मेरी करे । तब लग काज न एको सरे ।।
जब मेरी ममता भरि जाय । तब प्रभु काज संवारे आय ।।
जब लग सिंह रहे बन माहिं । तब लग वह बन फूले नाहिं ।।
उल्टा स्वार सिंह को आय । उल्टा बन फूले हरियाय ।।
ज्ञान के कारन करम कमाय । होय ज्ञान तब करम नसाय ।।
फल कारन फूले बनराय । फल लागे पर फूल सुखाय ।।
मिरग पास कस्तूरी बास । आप न खोजे खोजे घास ।।
पारे पिंड भी न ले खाई । कहें कबीर लोग बौराई ।।

(3)

दरियाव की लहर दरियाव है जी दरियाव ओ लहर भिन्न कोयम ।
उठे तो नीर है बैठता नीर है कहो किस तरह दूसरा होयम ।
उसी नाम को फेर के लहर धारो लहर के कहे क्या नीर खोयम ।
जक्त ही फेर सब जक्त है ब्रह्म में ज्ञान कनि देख कब्बीर गोयम ।।

(4)

जागु पियारी अब का सोवे । रैन गई दिन काहे को खोवे ।
जिन जागा तिन मानिक पावा । मैं बौरी बौरापन भावा ।
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी । कबहुं न पिय की सेज संवारी ।
तें बौरी बौरापन कीन्हो । भर जौवन पिय अपन न चीन्हो ।
जाग देख पिय सेज न तेरे । तोहि छांड़ि उठ गए सबेरे ।
कह कबीर सोई धुन जागै । शब्द बान उर अंतर लागै ।।

(5)

रस गगन गुफा में अजर झरै ।
बिन बाजा झनकार उठे जहं समुझि परे जब ध्यान धरे ।
बिना ताल जहं कंवल फुलाने तेहि चढ़ि हंसा केलि करे ।
बिन चंदा उजियारी दरसे जहं तहं हंसा जंजर परे ।
दसवें द्वारे ताड़ी लागी अलख पुरूष जाको ध्यान धरे ।
काल कराता निकट नहिं आवे काम क्रोध मद लोभ जरे ।
जुगन जुगन की तृषा बुझानी करम भरम अध व्याधि टरे ।
कहें कबीर सुनो भाई साधो अमर होय कबहुं न मरे ।।

(6)

झीनी झीनी बीनी चदरिया ।
काहे कै ताना काहे कै भरनी कौन तार से बीनी चदरिया ।
इंगला पिंगला ताना भरनी सुषमन तार से बीनी चदरिया ।
आठ कंवल दल चरखा डोले पांच तत्त गुन बीनी चदरिया ।
सांईं को सियत मास दस लागे ठोंक ठोंक के बीनी चदरिया ।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया ।
दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया ।।

तुलसी दास

(अनुमानतः 1540-1623)

1. रामचरित-मानस

सीता स्वयंबर

देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर ।।

नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा ।।
अहह तात दारून हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी ।।
सचिव समय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई ।।
कहं धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहं स्यामल मृदुगात किसोरा ।।
बिधि केहि भांति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा ।।
सकल सभा के मति भै भौरी। अब मोहि संभुचाप गति तोरी ।।
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहिं हरूअ रघुपतिहि निहारी ।।
अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग सन सम जाहीं ।।

प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल ।।

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी ।।
लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसें परम कृपन कर सोना ।।
सकुची व्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरजु प्रतीति उर आनी।
तन मन बचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा ।।
तौ भगवानु सकल उर बासी। करिहि मोहि रघुबर के दासी ।।
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कुछ संदेहू ।।
प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना ।।
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें। चितव गरूड़ लघु ब्यालहि जैसें ।।

लखन लखेउ रघुबंसमनि ताकेउ हर कोदंडु ।
पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मांडु ।।

दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला । धरहु धरनि धरि धीर न डोला ।।
रामु चहहिं संकर धनु तोरा । होहु सजग सुनि आयसु मोरा ।।
चाप समीप रामु जब आए । नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए ।।
सब कर संसउ अरू अग्यानू । मंद महीपन्ह कर अभिमानू ।।
भृगुपति केरि गरब गरूआई । सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई ।।
सिय कर सोचु जनक पछितावा । रानिन्ह कर दारून दुख दावा ।।
संभुचाप बड़ बोहितु पाई । चढ़े जाइ सब संगु बनाई ।।
रामु बाहुबल सिंधु अपारू । चहत पार नहिं कोउ कड़हारू ।।

राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि ।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि ।।

देखी बिपुल बिकल बैदेही । निमिष बिहात कलप सम तेही ।।
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा । मुएं करइ का सुधा तड़ागा ।।
का बरषा सब कृषी सुखानें । समय चुकें पुनि का पछितानें ।।
अस जियं जानि जानकी देखी । प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी ।।
गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा । अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा ।।
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ । पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ ।।
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े । काहुं न लखा देख सबु ठाढ़े ।।
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । भरे भुवन धुनि घोर कठोरा ।।

भरे भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ।।
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं ।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं ।।

संकर चापु जहाजु, सागर रघुबर बाहुबल ।
बूड़ सो सकल समाजु, चढ़ा जो प्रथमहिं मोह बस ।।

2. कवितावली

राम बनवास

पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै ।

फिरि बूझति हैं, "चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै ?"
तिय की लखि आतुरता पिय की अंखियां अति चारु चलीं जल च्वै ।।
"जल को गए लक्खन हैं लरिका, परखौ, पिय्, छांह घरीक ह्वै ठाढ़े ।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरू पायं पखारिहौं भूभरि डाढ़े ।
तुलसी रघुबीर प्रिया स्रम जानि के बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े ।
जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े ।।
बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु, री सखी, मोहि सी ह्वै ।
मग जोग न, कोमल क्यों चलिहैं ? सकुचात मही पदपंकज छ्वै ।।
तुलसी सुनि ग्रामबधू बिथकीं, पुलकीं, तन औ चले लोचन च्वै ।
सब भांति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै ।।
सांवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है ।
बान कमान निषंग कसे, सिर सोहें जटा, मुनिवेष कियो है ।
संग लिये बिधु-बैनी बधू रति को जेहि रंचक रूप दियो है ।
पांयन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलि हैं ? सकुचात हियो है ।।
रानी में जानी अजानी महा, पवि पाहन हूं ते कठोर हियो है ।
राज हू काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है ।
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ?
आंखिन में, सखि ! राखिबे जोग, इन्हें किमि के बनबास दियो है ?
सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरछी-सी भौंहें ।
तून सरासन बान धरे, तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं ।
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं ।
पूछति ग्राम बधू सिय सों "कहौ सांवरे से, सखि रावरे को हैं ?"
सुनि सुन्दर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली ।
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकन लोचन-लाहु अली ।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली ।।

विनयपत्रिका

(एक)

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि रामभगति-सुरसरिता आस करत ओसकन की ।।
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की ।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचन की ।।

ज्यों गच-कांच बिलोकि सेन जड़ छांह आपने तन की ।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की ।।
कहं लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति मन की ।
तुलसीदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की ।।

(दो)

केसव कहि न जाई का कहिए ?
देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए ।।
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोए मिटै न, मरै भीति-दुख, पाइय यहि तनु हेरे ।।
रबिकर-नीर बसै अति दारून मकररूप तेहि माहीं ।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ।।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोउ, जुगल प्रबल करि माने ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचाने ।।

(तीन)

कबहुंक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ कृपालु-कृपा ते संत सुभाव गहौंगो ।।
यथालाभ संतोष सदा काहू सौं कछु न चहौंगो ।
परहित-निरत-निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ।।
परुषवचन अतिदुसह स्त्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन, नहिं दोष कहौंगो ।।
परिहरि देहजनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो ।।

(चार)

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
सो छांड़िए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ।।
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितनि, भए मुदमंगलकारी ।।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं ।
अंजन कहा आंखि जेहि फूटे बहुतक कहौं कहां लौं ।।
तुलसी सो सब भांति परम हित पुंजी प्रान ते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम पद, एतौ मतो हमारो ।।

सूरदास

(अनुमानतः 1478-1583)

सूरसागर

(एक)

अब हौं नाच्यों बहुत गोपाल ।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ।।
महा मोह के नूपुर बाजत, निन्दा शब्द रसाल ।
भरम भरो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल ।।
तृसना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दे ताल ।
माया को कटि फैंटा बांध्यो, लोभ तिलक दियो भाल ।।
कोटिक कला काछि दिखराई जल, थल, सुधि नहिं काल ।
'सूरदास' की सबै अविद्या, दूरि करहु नंदलाल ।।

(दो)

छांड़ि मन हरि बिमुखन को संग ।
जाके संग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग ।।
कहा भयो पय पान कराये विष नहिं तजत भुजंग ।
काम क्रोध मद लोभ मोह में निसि दिन रहत उमंग ।।
कागहि कहा कपूर चुगाए, स्वान न्हवाये गंग ।।
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषण अंग ।।
पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतो करत निषंग ।
'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़ै न दूजो रंग ।।

(तीन)

जा दिन मन पंछी उड़ि जै है ।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जै हैं ।।
या देही को गर्व न करिये स्यार काग गिध खै हैं ।
तीन नाम तन विष्टा कृमि ह्वै अथवा खाक उड़ै हैं ।।

कहं वह नीर, कहाँ वह शोभा, कहं रंग रूप दिखे हैं ।
जिन लोगन सों नेह करतु है तेही देखि घिनै हैं ।।
घर के कहत दुवारे काढ़ो भूत होय घर खै है ।
जिन पुत्रनहि बहुत प्रतिपार्‍या देवी देव मनै हैं ।।
तेइ ले बांस दयो खोपड़ी में सीस फेरि बिखरै हैं ।
अजहूं मूढ़ करो सतसंगति संतन में कछु पैहै ।।
नर बपु धरि जाने नहिं हरि को जम की मार जु खै है ।
'सूरदास' भगवंत भजन बिनु वृथा सुजन्म गवै हैं ।।

(चार)

मेरो मन अनत कहां सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पर आवै ।।
कमल नैन को छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै ।
परम गंग को छाँड़ि पियासो दुरमति कूप खनावै ।।
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील फल खावै ।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ।।

(पांच)

किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत ।
मनिमय कनक नंद के आंगन मुख प्रतिबिंब पकरिवे धावत ।।
कबहुं निरखि हरि आप छांइ को पकरन को चित्त चाहत ।
किलकि हँसत राजत द्वै दंतियाँ पुनि पुनि तिहिं अवगाहत ।।
कनक-भूमि पर कर पग छाया यह उपमा एक राजत ।
प्रतिकर प्रतिपद प्रतिमनि वसुधा कमल बैठकी साजत ।।
बालदसा-सुख निरखि जसोदा पुनि पुनि नंद बुलावति ।
अंचरा तर लै ढांकि 'सूर' प्रभु जननी दूध पियावति ।।

(छः)

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो ।
मोसों कहत मोल को लीनो तोहि जसुमति कब जायो ।।
कहा कहौं एहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जातु ।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु ।।
गोरे नंद जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर ।
चुटकी दै दै हंसत ग्वाल सब सिखे देत बलबीर ।।

तू मोही को मारन सीखी दाउहि कबहुं न खीझं ।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि सुनि रीझैं ।।
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही को धूत ।
'सूर' स्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत ।।

(सात)

मैया, मैं नाहीं दधि खायो ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो ।
देख तुही सीके पर भाजन ऊंचे धर लटकायो
तुही निरखि नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायो ।।
मुख दधि पौंछि कहत नंद नंदन दोना पीठि दुरायो ।
डारि सांट मुसकाइ तबहि गहि सुत को कंठ लगायो ।।
बाल बिनोद मोद मन मोह्यो भगति प्रताप देखायो ।
"सूरदास" प्रभु जसुमति के सुख सिव बिरंचि बौरायो ।।

(आठ)

देखि री हरि के चंचल नैन ।
खंजन मीन मृगज चपलाई नहिं पटतर एक सैन ।।
राजिवदल, इन्दीबर, सतदल, कमल, कुसेसय जाति ।
निसि मुद्रित, प्रातहिं वे बिकसत, ये बिकसत दिन राति ।।
अरुन सेत सिति झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ ।
मनु सरसुति गंगा जमुना मिलि संगम कीन्हो आइ ।।
अवलोकनि जलधार तेज अति तहां न मन ठहरात ।
'सूर' स्याम लोचन अपार छबि उपमा सुनि सरसात ।।

(नौ)

देखि सखी अधरन की लाली ।
मनि मरकत तें सुभग कलेवर ऐसे हैं बनमाली ।।
मनो प्रात की घटा सांवरी तापर अरुन प्रकास ।
ज्यों दामिनि बिच चमकि रहत है फहरत पीत सुबास ।।
कीधौं तरून तमाल बैलि चढ़ि जुग फल बिंबा पाके ।
नासा कीर जाय मनो बैठो लेत बनत नहिं ताके ।।
हंसत दसन एक सोभा उपजति उपमा जात लजाई ।
मनो नीलमनि पुट मुकुतागन बंदन भरि बगराई ।

किधौं बज्रकन लाल नगन खचि, तापर बिद्रुम पांति ।
किधौं सुभग बंधूक सुमन पर झलकत जलकन कांति ।।
किधौं अरून अंबुज बिच बैठी सुन्दरताई आइ ।
'सूर' अधरन की सोभा बरनत बरनि न जाइ ।।

(दस)

मुरली तऊ गोपालहिं भावति ।
सुन री सखी जदपि नंदनंदहिं नाना भांति नचावति ।।
राखति एक पाय ठाढ़ो करि अति अधिकार जनावति ।
कोमल अंग आपु आज्ञागुरू कटि टेढ़ी ह्वै जावति ।।
अति आधीन सूजान कनौड़े गिरधर नारि नवावति ।
आपुन पौढ़ि अधर सज्या पर कर पल्लव सन पद पलुटावति ।।
भृकुटी कुटिल फरक नासा पुट हम पर कोपि कुपावति ।
"सूर' प्रसन्न जानि एको छिन अधर सु सीस डोलावति ।।

(ग्यारह)

उपमा एक न नैन गही ।
कबिजन कहत कहत चलि आये सुधि करि करि काहू न कही ।।
कहे चकोर, मुख बिधु बिनु जीवत, भंवर न तहं उड़ि जात ।
हरिमुख कमल कोस बिछुरे तें ठाले क्यों ठकरात ।।
खंजन मनरंजन-जन जो पै कबहुं नाहिं सतरात ।
पंख पसारि न उड़त, मंद ह्वै समर समीप बिकात ।।
आये बधन व्याध ह्वै ऊधो, जो मृग क्यों न पलाय ।
देखत भागि बसें घन वन में जहं कोउ संग न जाय ।।
ब्रजलोचन बिनु लोचन कैसे ? प्रतिदिन अति दुख बाढ़त ।
"सूरदास" मीनता कछू इक जल भरि संग न छांड़त ।।

(बारह)

दूर करहु बीना कर धरिबो ।
मोहे मृग नाहीं रथ हांक्यो नाहिन होत चन्द को ढरिबो ।।
बीती जाहि पै सोई जाने कठिन है प्रेम पास को परिबो ।
जब तें बिछुरे कमल नयन सखि, रुकत न नयन नीर को गरिबो ।।
सीतल चंद अगिनि सम लागत, कहिये धरो कौन बिधि धरिबो ।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, सच भूठो जतननि को करिबों ।।

केशवदास

(1555—1617)

1. रसिक-प्रिया

(एक)

जो हौं कहूं रहिये तो प्रभुता प्रकट होत,
    चलन कहौं तो हित हानि नाहीं सहनो ।
भावै सो करहु तो उदास भाव प्राणनाथ,
    साथ ले चलहु कैसे लोकलाज बहनो ।
कैशोराय की सौं तुम सुनहू छबीले लाल,
    चलै हीं बनत जो पै नाहिं आजू रहनो ।
तैसिये सिखावो सीख तुमहीं सुजान पिय,
    तुमहिं चलत मोहि जैसो कछू कहनो ॥

(दो)

सिखै हारी सखी डरपाइ हारी कादंबिनी,
    दामिनी दिखाइ हारी दिशि अधिरात की ।
झुकि-झुकि हारी रति, मारि-मारि हार्यो मार,
    हारी झकझोरित त्रिविध गति बात की ।
दई निरदई बाहि ऐसी काहि मति दई,
    जारत जु रैन ऐन दाह ऐसी गात की ।
कैसे हूं न माने ही मनाइ हारी केशोदास,
    बोलि हारी कोकिल, बुलाइ हारी चातकी ॥

(तीन)

छवि सों छवीली वृषभानु की कुंवरि आज,
रही हुती रूप-मद मान-मद छकि के।
मारहू तें सुकुमार नंद के कुमार ताहि,
आये री मनावन सयान सब तकि के ॥
हंसि हंसि सौंह करि-करि पांय परि-परि,
केशोराय की सों जब रहे जिय जकि कै।
ताही समै उठे घन घोर, घोर दामिनी-सी,
लागी लौटि श्याम-घन-उर सों लपकि के ॥

मुद्रिका प्रदान

देखि देखि के अशोक राज पुत्रिका कह्यो !
देहि मोहि आगि तें जो अंग आगि ह्वै रह्यो।
ठौर पाइ पौन पुत्र डारि मुद्रिका दई।
आस पास देखि कै उठाय हाथ कै लई ॥

जब लगी सियरी हाथ। यह आगि कैसी नाथ ॥
यह कह्यो लषि तब ताहि। मणि जटित मुंदरी आहि ॥

जब बांचि देख्यौ नाउं। मन पर्यो संभ्रम भाउ ॥
आवाल ते रघुनाथ। यह धरी अपने हाथ ॥

बिछुरी सो कौन उपाउ। केहि आनियो यहि ठांउ ॥
सुधि लहौं कौन उपाउं। अब काहि बूझन जाउं ॥

चहुं ओर चितै सत्रास। अवलोकियो आकास ॥
तहं शाख बैठो नीठि। तब पर्यो बानर डीठि ॥

सीता-हनुमान संवाद

तब कह्यो को तू आहि। सुर असुर मोतन चाहि ॥
के यज्ञ-पज्ञ विरूप। दशकंठ बानर रूप ॥

कहि आपनो तू भेद । नतु चित्त उपजत खेद ।।
कहि वेगि वानर पाप । नतु तोहिं दैहौं शाप ।।
डरि वृक्ष शाखा झूमि । कपि उतरि आयो भूमि ।।
कर जोरि कह्यो हौं पवन पूत ।
जिय जननि जानु रघुनाथ दूत ।।
रघुनाथ कौन दशरत्थ नंद ।
दशरत्थ कौन अज तनय चंद ।।
केहि कारण पठये यहि निकेत ।
निज देन लेन संदेश हेत ।।
गुण रूप शील शोभा सुभाउ ।
कछु रघुपति के लक्षण बताउ ।।
अति यदपि सुमित्रा नंद भक्त ।
अति सेवक हैं अतिशूर शक्त ।।
अरु यदपि अनुज तीन्यो समान ।
पै तदपि भरत भावत निदान ।।
ज्यों नारायण उर श्री वसंति ।
त्यों रघुपति उर कछु द्युति लसंति ।।
जग जितने हैं सब भूमि भूप ।
सुर असुर न पूजैं राम रूप ।।

सीता—मोहिं परतीति यहि भांति नहिं आवई ।
प्रीति कहि यों सुनर वानरनि क्यों भई ।।
वात सब विर्ण परतीति हरि ज्यों दई ।
आंसु अन्हवाइ उर लाइ मुंदरी लई ।।
आंसु बरषि हियरे हरषि, सीता सुखद सुभाइ ।
निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि, बरषाति है बहु भाइ ।।

मुद्रिका वर्णन

यह सूरकिरण तम दुःखहारि ।
शशिकला किधौं उर शीतकारि ।।
कल कीरति सी शुभ सहित नाम ।
कै राज्यश्री यह तजी राम ।।

कै नारायण उर सम लसंति ।
शुभ अंकन ऊपर श्री बसंति ।।
वर विद्या सी आनंद दानि ।
युत अष्टापद मनु शिवा मानि ।।

जनु माया अच्छर सहित देखि ।
कै पत्री निश्चयदानि लेखि ।
प्रिय प्रतीहारनी सी निहारि ।
श्री रामोजय उच्चारकारि ।।

पिय पठई मानौ सखि सुजान ।
जगभूषण को भूषण निधान ।।
निजु आई हमको सीख देन ।
यह किधौं हमारो भरम सेन ।।

सुखदा शिखदा अर्थदा, यशदा रसदातारि ।
रामचन्द्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु नारि ।।

बहू बरणा सहज प्रिया, तम-गुनहरा प्रमान ।
जग मारग दरशावनी, सूरज किरण समान ।।

श्री पुर में वन मध्य हौं, तू मग करी अनीति ।
कहि मुंदरी अब तियन की, को करि है परतीति ।।

कहि कुशल मुद्रिके रामगात ।
पुनि लक्ष्मण सहित समान तात ।।
यह उत्तर देति न बुद्धिवंत ।
केहि कारण धौं हनुमंत संत ।

हनूमान—तुम पूंछत कहि मुद्रिके, मौन होति यहि नाम ।।
कंकन की पदवी दई, तुम बिन याकहं राम ।।

बिहारी

(अनुमानतः 1600—1663)

1—मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झांई परी स्यामु हरित-दुति होइ ।।

2—या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ ।
ज्यौं ज्यौं बूड़े स्याम रंग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ ।।

3—अधर धरत हरि कें, परत ओठ डीठि पट—जोति ।
हरित बांस की बांसुरी इन्द्र-धनुष-रंग होति ।।

4—भूषन-भारु संभारिहै क्यों इहि तन सुकुमार ।
सूधे पाइं न धरि परें सोभा ही कें भार ।।

5—मानहु विधि तन-अच्छ-छवि स्वच्छ राखिबे काज ।
दृग-पग पोंछन कौं करे भूषन पायंदाज ।।

6—अनियारे, दीरघ दृगनि किती न तरुनि समान ।
वह चितवनि औरै कछू जिहिं बस होत सुजान ।।

7—बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ ।
सौंह करै भौंहनि हंसै, देन कहैं नटि जाइ ।।

8—कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात ।।
कहिहै सबु तेरौ हियो मेरे हिय की बात ।

9—दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गांठि दुरजन हियैं, दई, नई, यह रीति ।।

10—इन दुखिया अंखियानु कौं सुख सिरज्योई नांहि ।
देखैं बने न देखतैं, अनदेखैं अकुलांहि ।।

11—बामा, भामा, कामिनी कहि बोलौ, प्रानेस ।
प्यारी कहत खिझात नहिं पावस चलत बिदेस ।।

12—बिरह-बिकल बिनु ही लिखी पाती दई पठाइ ।
आंक-बिहूनीयो सुचित सूनें बांचत जाइ ।।

13—नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास इहि काल ।
अली, कली ही सौं बंध्यौ, आगैं कौन हवाल ।।

14—रनित भृंग-घंटावली, झरति दान मधु-नीरू ।
मंद मंद आवतु चल्यौं कुंजरू कुंज-समीरू ।।

15—बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन तन मांह ।
देखि दुपहरी जेठ की छाँहौ चाहति छांह ।।

16—कहलाने एकत बसत अहि मयूर, मृग बाघ ।
जगतु तपोवन सौ कियौ दीरघ-दाघ निदाघ ।।

17—स्वारथु, सुकृत न, श्रमु बृथा, देखि बिहंग, विचारि ।
बाज, पराएं पानि पर तूं पच्छीनु न मारि ।।

घन आनन्द

(अनुमानत : 1690—1739)

(एक)

तीछन बान बखान सो,
पेनी दसान ले सान सढ़ावत ।
प्रानन प्यारे, भरे अति पानिप,
मायल चोप घायल चटावत ।
यौं घनआनंद छावत भावत,
जान-सजीवन-और तैंआवत ।
लोग हैं लागि कबित्त बनावत,
मोंहि तौ मेरे कबित्त बनावत ।।

(दो)

प्रेम सदा अति ऊंचो लहै सु,
कहै इहि भांति की बात छकी ।
सुनि के सबके मन लालच दौरे,
पै बौरे लखैं सब बुद्धि-चकी ।
जग की कबिताई के धोखें रहे,
ह्यां प्रबीनन की मति जाति जकी ।
समझै कविता घनआनंद की ।
हिय-आंखिन नेह की पीर तकी ।

(तीन)

रूप-चमूप सज्यौ दल देखि,
भज्यो तजि देसहि धीर-मवासी ।

नैन मिलै उर के पुर पैठते,
लाज लुटी न छुटी तिनका सी ।
प्रेम दुहाई फिरा घनआनंद,
बांधि लिये कुल-नेम गुढ़ासी ।
रीझ सुजान सची पटरानी,
बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी ।

(चार)

लै ही रहे हो सदा मन और को,
दैबो न जानत जान दुलारे ।
देख्यो न है सपने हूं कहूं दुख,
त्यागे सकोच और सोच सुखारे ।
कैसो संजोग वियोग धौं आहि,
फिरो घनआनंद ह्वै मतवारे ।
मो मति बूझि परै तब ही,
जब होहु घरीक हू आप तैं न्यारे ।

(पांच)

अति सूधो सनेह को मारग है,
जहां नेकु सयानप बांक नहीं।
तहां सांचे चले तजि आपुनपौ,
झझके कपटी जे निसांक नहीं ।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौं,
यहां एक ते दूसरो आंक नहीं ।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ,
मन लेहु पै देहु छटांक नहीं ।

(छः)

एरे वीर पौन, तेरो सबे और गौन,
वीर तो सौ और कौन मने ढरकौं हीं बानि दे ।
जगत के प्रान, ओछे बड़े सौं समान,
घनआनंद-निधान सुखदान दुखियानि दे ।
जान उजियारे गुनभारे अंत मोही प्यारे,

अब ह्वै अमोही बैठे, पीठि पहिचानि दे ।
बिरह-विथाहि मूरि, आंखिन में राखौं पुरि,
धूरि तिनि पायनि की हा हा ! नेकु आनि दे ।

(सात)

ब्रज बृंदावन गिरि गोधन जमुन-तीर,
सुबस सुदेस पुर बन सुख-साधा को ।
जाकी भूमि भागहि सिहात हैं, गिरीस ईस,
धूरि रसमूरि हरै दुख सब बाधा को ।
एक रह बिहरत दोऊ महारस भीजैं,
आनंद पयोद प्रीति परम अराधा को ।
स्याम के सरूप को कछुक निरधार होय ।
तौ कहु कह्यो परे अगाध प्रेम राधा को ।

(आठ)

खलत खिलार गु-आगर उदार,
राधा नागरि छबीली फाग राग सरसाति है ।
भाग-भरे भवाते सौं औसर फव्यो है आनि,
आनंद के धन की घमंड दरसाति है ।
औचक निसंक अंक चांपि खेल-घूंघरि में
सखिन त्यौं सैननि ही चैननि सिहाति है ।
केसु-रंग बोरि गोरे करि स्याम सुन्दर कों,
गोरी स्याम-रंग बीच बूड़ि-बूड़ि जाति है ।

(नौ)

रूप के भारन होति है सौंहीं,
लजौंहिये दीठि सुजानि यौं भूली ।
लागिये जाति, न लागि कहूं निसि,
पागी तहां पलको गति भूलि ।
बैठिये जू हिय पैठत आजु,
कहा उपमा कजयै समतूली ।
आए हौ भोर भएं घनआनंद,
आँखिन मांझ तौ सांझ-सी फूली ।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र

(1850—1885)

1—यमुना-छवि

तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल-परसन-हित मनहुं सुहाए॥
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥

मनु आतप बारन तीर कों, सिमिटि सबे छाए रहत।
कै हरि-सेवा-हित नै रहे, निरखि नैन मन सुख लहत॥

परत चंद्र प्रतिबिम्ब कहूं जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहूं सोई मन भायो॥
मनु हरि-दरसन हेत चंद जल बसत सुहायो।
कै तरंग कर मुकुर लिए सोभित छबि छायो॥

कै रास-रमन में हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है।
कै जल-उर हरि-मूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है॥

कबहुं होत सत चंद कबहुं प्रगटत दुरिभाजत।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल में बहु साजत॥
मनु ससि भरि अनुराग जमनजल लोटत डोले।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोले॥

कै बालगुड़ी नभ में उड़ी सोहत इत-उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती॥

कहूं बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई॥

पिय के आगम हेत पांवड़ मनहुं बिछाए ।
रत्नरासि करि चूर कूल में मनु बगराए ।।
मनु मुक्त मांग सोभित भरी श्यामनीर चिकुरन परसि ।
सतगुन छायो कै तीर में ब्रज निवास लखि हिय हरसि ।।

2—प्रेम-माधुरी

हों तो याही सोच में विचारत रही री काहे,
दरपन हाथ तें न छिन बिसरत है ।
त्योंही हरिचंद जू बियोग और संयोग दोऊ,
एक से तिहारे कुछ लखि न परत है ।
जानी आज हम ठकुरानी तेरी बात तू तौ,
परम पुनीत प्रेम-पथ बिचरत है ।
तेरे नैन मूरति पियारे की बसत ताहि,
आरसी में रैन दिन देखिबो करत है ।।
रोकहिं जो तो अमंगल होय,
ओ प्रैम नसै जो कहै पिय जाइये ।
जौ कहैं जाहु न तौ प्रभुता,
जौ कछू न कहैं तो सनेह नसाइए ।
जौ हरिचंद कहैं तुमरे बिन जी हैं न,
तो यह क्यों पतिआइए ।
तासों पयान समै तुमरे हम,
का कहैं आपै हमैं समझाइए ।।
इन दुखियान को न चैन सपनेहूं मिल्यौ,
तासों सदा व्याकुल बिकल अकुलायंगी ।
प्यारे हरिचंद जू की बीती जान औध,
प्रान चाहते चले पे ये तो संग ना समायंगी ।
देख्यो एक बार हू न नैन भरि तोहि यातें,
जौन-जौन लोक जैहें तहां पछतायंगी ।
बिना प्रान-प्यारे भए दरस तुम्हारे, हाय ।
मरे हू पे आंखें ये खुली ही रहि जायंगी ।।1।।

कूकै लगीं कौइलैं कदंबन में बैठि फेरि
धोए धोए पात हिलि-हिलि सरसै लगे ।
बोले लगे दादुर मयूर लगे नाचै फेरि
देखि के संजोगी—जन—हिय हरसे लगे ।
हरी भई भूमि सीरी पवन चलन लागी
लखि 'हरिचंद' फेर प्रान तरसै लगे ।
फेरि झूमि-झूमि बरषा की ऋतु आई फेरि
बादर निगोरे झुकि-झुकि बरसै लगे ॥2॥

श्रीधर पाठक

(1859 – 1928)

प्राकृतिक शोभा

प्रकृति इहां एकांत बैठि निज रूप संवारति ।
पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन-छिन धारति ।
बिमल-अंबु-सर मुकुरन महं मुख बिम्ब निहारति ।
अपनी छबि पै मोहि आप ही तन मन वारति ।
चहुं दिसि हिमगिरि सिखर, हरित-मन मौलि-अवलि मनु ।
स्रवन सरित सितधार, द्रवत सोइ चन्द्रहास जनु ।
फल फूलन छवि छटा छई जो बन उपवन की ।
उदित भई मनु अवनि-उदार सों, निधि रतनन की ।
तुहिन सिखर, सरिता, सर विपिनन की मिलि सो छवि ।
छई मंडलाकार, रही चारहुंदिसि यों फबि ।
मानहुं मनिमय मौलि-माल आकृति अलबेली ।
बाँधी विधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली ।
अधे चंद्र सम सिखर-स्रेनि कहुं यों छबि छाई ।
मानहु चंदन-धौरि, गोरि-गुरु, खोरि लगाई ।
बहु विधि दृश्य अदृश्य कला कौशल सों छायो ।
रच्छन निधि नैसर्ग मनहु विधि दुर्ग बनायो ।
अथवा छछ विमल बटोर विश्व की निखिल निकाई ।
गुप्त राखिबे काज सुदृढ़ संदूक बनाई ।
किधैं चढ़ायों धाता ने भारत के मस्तक ।
माया-मालिनि रच्यो चारु कुसुमुन को गुच्छक ।

कामधेनु के रवि-हय की खर-छाप सलौनी ।
कै वसुधा पै सुधा-धार-ब्रह्मद्रव द्रोनी ।
याको उपमा याही की मौंहि देत सुहावै ।
या सम दूजो ठोर सृष्टि में दृष्टि न आवै ।
यहै स्वर्ग सुरलोक, यहै सुरकानन सुंदर ।
यहिं अमरन को ओक, यहीं कहुं बसत पुरंदर ।
झरना जहं तहं झरत करत छल छल कल जल-रव ।
पियत जीव सो अंबु अमृत-उपमा हिम-संभव ।
पवन सीत अति सुखद बुझावत बहु विधि तापा ।
बादर दरसत परसत बरसत आपहि आपा ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिओध'

(1865—1945)

महारास

भू में रमी शरद की कमनीयता थी,
नीला अनन्त-नभ निर्मल हो गया था ।
थी छा गई कुकुम में अमिता सिताभा,
उत्फुल्ल-सी प्रकृति थी प्रतिभात होती ।

था मेघ शून्य नभ उज्वल- कान्तिवाला ।
मालिन्य-हीन मुदिता नव-दिग्वधू थी ।
थी भव्य-भूमि गत-कर्दम स्वच्छ रम्या,
सर्वत्र धौत जल निर्मलता लसी थी ।

कान्तार में सरित-तीर सूगह्वरों में,
थे मंद-मंद बहते जल स्वच्छ-सोते ।
होती अजस्र उनमें ध्वनि थी अनूठी,

वे थे कृती शरद की कल-कीर्ति गाते ।
था क्वार-मास निशि थी अति-रम्य-राका,
पूरी कला-सहित शोभित चन्द्रमाथा ।
ज्योतिर्मयी विमलभूत दिशा बना के,

सौंदर्य साथ लसती क्षिति में सिता थी ।
थे स्नात से सकल-पादप चन्द्रिका से,
प्रत्येक-पल्लव प्रभा-मय दीखता था ।
फैली लता विकचबेली प्रफुल्ल-शाखा,

डूबी विचित्र-तर निर्मल-ज्योति में थी ।
पूरी समुज्वल हुई सित-यामिनी थी,
होती प्रतीत रजनी-पति भानु-सा था ।
पीती कभी परम-मुग्ध बनी सुधा थी,

होती कभी चकित थी चतुरा-चकोरी ।
ले पुष्प-सौरभ तथा पय-सीकरों को,
थी मन्द-मन्द बहती पवनातिप्यारी ।
जो थी मनोरम अतीव-प्रफुल्ल-कारी,

हो सिक्त सुन्दर सुधारक की सुधा से ।
ऐसी अलौकिक अपूर्व वसुंधरा में,
ऐसे मनोरम-अलंकृत-काल को पा ।
वंशी अचानक बजी अति ही रसीली,

आनन्द-कन्द ब्रज-गोप-गणाग्रणी की ।
भावाश्रयी मुरलिका स्वर मुग्ध-कारी,
आदौ हुआ मरूत साथ दिगन्त-व्यापी ।
पीछे पड़ा श्रवण में बहु-भावुकों के,

पीयूष के प्रमुद-वर्द्धक-विन्दुओं-सा ।
वंशी—निनाद सुन त्याग निकेतनों को,
दौड़ी अपार जनताति उमंगिता हो ।
गोपी-समेत बहु गोप तथांगनायें,

आई बिहार-रुचि से बन-मेदिनी में ।
हो हो विभक्त बहुशः दल में सबों ने,
प्रारंभ की विपिन में कमनीय-क्रीड़ा ।
बाजे बजा अति—मनोहर—कण्ठ से गा,

उन्मत्त-प्राय बन चित्त-प्रमतता से ।
मीठे—मनोरम—स्वरांकित बेणु नाना,
हो के निनादित विनोदित थे बनाते ।
थी सर्व में अधिक---मंजुल—मुग्धकारी ।

वंशी महा-मधुर केशव कोशली की ।
हो-हो सुवादित मुकुन्द सदगुंली से,
कान्तार में मुरलिका जब गूंजती थी ।
तो पत्र-पत्र पर था कल-नृत्य होता ।

रागांगना—विद्युन्मुखी चपलांगिनी का ।
ले वायु कण्ठ-स्वर, वेणु-निनाद-न्यारा,
प्यारी मृदंग-ध्वनि, मंजुल बीन-मीड़े ।
सामोद घूम बहु-पान्थ खगों मृगों को,

थी मत्तप्राय नर-किन्नर को बनाती ।
गोपी समेत अतएव समस्त—ग्वाले,
भूले स्व-गात सुधि हो मुरली—रसाद्र ।
गाना रुका सकल-वाद्य रुके सवीणा,

वंशी-विचित्र-स्वर केवल गूंजता था ।
होती प्रतीत उर में उस काल यों थी,
है मंत्र साथ मुरली अभिमंत्रिता सी ।
उन्माद —मोहन—वशीकरणादिकों के,

हैं मंजु-धाम उसके ऋजु-रंध्र-सा तो ।
पुत्र-प्रिया-सहित मंजुल-राग गा—गा,
ला-ला स्वरूप उनका जन-नेत्र-आगे ।
ले-ले अनेक उर-वेधक-चारू-तानें,
कीं श्याम ने परम-मुग्धकारी क्रियायें ।

पीछे अचानक रुकीं वर-वेणु तानें,
चावों समेत सबकी सुधि लौट आई ।
आनंद-नादमय कंठ-समूह द्वारा,
हो-हो पड़ी ध्वनित बार कई दिशाएं ।

मैथिलीशरण गुप्त

(1886-1964)

कंदर्प से

मुझे फूल मत मारो ।
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो ।
होकर मधु के मीत मदन, पटु, तुम कटु गरल न गारो ।
मुझे विकलता, तुम्हें विफलता, ठहरो, श्रम परिहारो ।
नहीं भोगिनी यह मैं कोई, जो तुम जाल पसारो ।
बल हो तो सिंदूर-बिन्दु यह, यह हर-नेत्र निहारो ।
रूप दर्प कंदर्प, तुम्हें तो मेरे पति पर वारो ।
लो, यह मेरी चरण-धूलि उस रति के सर पर धारो ।

(यशोधरा से)

पृथिवी-पुत्र

माता भूमि : मानती हूँ, बड़ा धूर्त या तू सब में ।
किन्तु वे सरीसृप वा पशु ही हैं, उनमें
ज्ञान का अभाव है, तू वैज्ञानिक जीव है ।
मारता है फिर भी मनुष्य तू मनुष्यों को ।

पृथिवीपुत्र : अम्ब वे मनुष्य हैं या बर्बर हैं, धन्य है ?

माता भूमि : एक दिन तू था उनसे भी बड़ा वन्य था,
आकृति तो पलटी है, प्रकृति वही रही तेरी

पृथिवीपुत्र : अम्ब, मेरी और उनकी क्या तुलना
योग्यतम का ही आधिपत्य सदा योग्य है ।

माता भूमि : उनमें भी ऐसे योग्य क्या हो नहीं सकते,
तेरा यह आविष्कार अणु-सा उड़ा दें जो
दूसरों को बार-बार वन्य कहता है तू,
देखे नहीं आरण्यक तूने, यदि देखता,
भूल जाता दम्भ निज नागरिकता का तू।
किन्तु मैंने देखे हैं, इसी से कहती हूँ, मैं,
देखते थे सब में वे अपने ही आप को।
लोभ न था उनको किसी के धन-धाम का,
भोग में नहीं वे त्याग में ही तुष्टि मानते।
किन्तु दीखती है आज बाहर से ही अर्थ की
भीतर से काम की ही मुख्यता मनुज में।
धर्म और मोक्ष दो विनोद उन दोनों के।

पृथिवीपुत्र : अम्ब, कुछ कह तू, परन्तु एक सबका
शासक हूँ मैं ही, तुझे शीघ्र दिखा दूंगा मैं।

माता भूमि : पर मैं करूँगी गर्व कैसे उस जय का ?
एक केतु पूंछ फटकार कर नभ में
किसको डराता नहीं अपने उदय से ?

पृथिवीपुत्र : युद्ध से ही युद्ध को समाप्त कर दूंगा मैं।

माता भूमि : एक के अनन्तर अपेक्षा एक युद्ध की,
देखती मैं आ रही हूँ, ज्ञात नहीं कब से।
एक सदुद्देश्य कहके ही सब जूझे हैं,
किन्तु एक इति में जुड़ा है अर्थ दूसरा।
शासक का नाम रख त्रासक ही होगा तू,
भय से जो बाध्य होंगे साध्य होंगे क्या कभी ?
अनुगत होंगे घात करने को पीछे से
तेरे पहले भी हुए कितने विजेता हैं,
किन्तु जनता ने उन्हें नेता कहाँ माना है ?

पृथिवीपुत्र : तो क्या चाहती है तू बता दे यही मुझको।

माता भूमि : तुझको बड़े से बड़ा देखा चाहती हूँ मैं।
मेरे जात सारे जन्तुओं में मुख्य तू ही है,
किन्तु छोटा होकर ही कोई बड़ा होता है।

मिथ्या दर्प छोड़ने का साहस हो तुझमें,
तो व्यक्तित्व अपना समष्टि में मिला दे तू,
देश, कुल, जाति किंवा वर्ग-भेद भूल के ।
जा तू विश्व-मानव हो, सेवा कर सबकी ।
भीति नहीं, प्रीति यथा रीति तेरी नीति हो ।
उठ, बढ़, ऊँचा चढ़ संग लिये सबको,
सबके लिए तू और तेरे लिए सब हैं ।
नाश में लगी जो बुद्धि, बिलसे विकास में,
गर्व करूँ मैं भी निज पुत्रवती होने का ।

माखनलाल चतुर्वेदी

(1888-1968)

कलिका से–
कलिका की ओर से

—क्यों मुसकातीं ? बोलो आली ।
जाड़ा है, रात अन्धेरी है,
सन्नाटा है, जग सोया है
फिर यह कांटों की टहनी है,
कैसे मुसका उट्ठी आली ?
क्या तुम्हें रात में दीख रहा ?—
तुम योगी हो ? अथवा उलूक ?
क्यों हास्य बिखरता है बोलो
कर कर मृदु सम्पुट टुक टुक ।
—क्यों आँख खोल दी,
क्या अपना जग,
फूला-फूला-सा दीखा ?
क्या मुंदी आँख में,
यह सपना जग
भूला-भूला-सा दीखा ?
क्या इन पत्तों ने
जगा दिया कुछ
जाग जाग कर सूने में ?
क्या जागृति की
पुकार सुन ली
जागना छू लिया छूने में ?

—क्या कहूँ साँस वाले जग को
जो निस दिन सो सो जगता है ?
क्यों मेरा जगना एक बार भी ?
इसे अनोखा लगता है ?

—'मेरा जगना, मेरा हँसना,
जग-जीवन का उल्लास कहाँ ?
मैं हँसू, मुंदूं मन-चाही-सी
विधि का मुझ पर विश्वास कहाँ ?'
—तुम हँसते हो तुम रो रो कर
चुप होकर मुसका जाते हो ।
मैं हँसी, कौन-सा पाप हुआ ?
जो प्रश्न पूछने आते हो ?

—'कोमल रवि-किरणें आती हैं
वे मुझे ढूंढती घूम घूम .
अपने बिजली-से ओठों से
मेरा मुँह लेतीं चूम चूम ।
क्या कहूँ हवा से, यह वैरिन !
चुप, धीमें-धीमें जाती है,
फिर मुझे हिलाती धीरे से
निद्रा मेरी खुल जाती है ।
पत्तों का, इन मदमत्तों का
बस झूम-झूम कर गा देना,
कुछ कभी ताल-सी दे देना,
कुछ यों चुटकियाँ बजा देना ।

—'जो पंख-वायु से जग न उठे
यों ठंडी मेरी आग कहाँ ?
मेरा मीठापन बह न उठे
वह काबू का अनुराग कहाँ ?'

—डूबते हुए इन तारों से
बोलूं तो क्या बोलूं आली ।

इनकी समाधियों पर मेरी ?
मुसकान कौन थाती पाली ?'

—'मेरा हँसना वह हँसना है
जिससे मेरा उद्धार नहीं,
मेरा हँसना वह हँसना है
जिस पर टिक पाया प्यार नहीं ।
मेरा हँसना वह हँसना है
जिसमें सुख का एतबार नहीं,
मेरे हँसने में मानव-सा,
पापी विधि हुआ उदार नहीं ।
जग आँख मूंदकर मरता है.
में आँख खोलकर मरती हूँ,
मेरी सुन्दरता तो देखो,
मरने के लिए उभरती हूं ।

—'रवि की किरणों को तो देखो,
वे जगा विश्व व्यापार चलीं,
मेरी किस्मत ! वे ही मुझको
यों हँसा-हँसा कर मार चलीं ।
मैं जगी कि जैसे मीठा-सा,
प्रिय का कोई सन्देश जगा ।
मधु बहा कि जैसे सन्तों का,
धीमें धीमें सन्देश जगा ।'

—'मैंने ! हाँ हाँ, बर भी पाया,
जिसकी गोदी में बड़ी हुई,
जिसका रस पी मधु-गन्धमयी
खिल खिल कर ऊँची खड़ी हुई ।
आयी बहार, मैं उसकी हो
चरणों पर नत हो, झुकी सखी,
फिर जी की एक-एक पंखुड़ि,
उस पर बलि मैं कर चुकी सखी ।'

— मैं बलि का गान सुनाती हूँ,
प्रभु के पथ की बनकर फकीर,
माँ, पर हँस-हँस बलि होने में.
खिंच, हरी रहे मेरी लकीर।

पुतलियों में कौन ?

पुतलियों में कौन ?
अस्थिर हो, कि पलकें नाचतीं हैं।
विन्ध्य-शिखरों से
तरल सन्देश मीठे
बाँटता है कौन
इस ढालू हृदय पर
कौन पतनोन्मुख हुआ
दौड़ा मिलन को ?

कौन द्रुत-गति निज
पराजय की विजय पर ?
पत्र के प्रतिबिम्ब, धारों पर
विकल छवि बाँचती है,
पुतलियों में कौन ?

अस्थिर हो, कि पलकें नाचती हैं।
बिना गूंथे, कौन
मुक्ताहार बन कर,
सिंधु के घर जा
रहा, पहुँचा रहा है ?
कौन अन्धा, अल्प
का सौन्दर्य ढोता,
पूर्ण पर अस्तित्व
खोने जा रहा है ?

कौन तरणी इस पतन का
वेग जी से जाँचती है ?
पुतलियों में कौन ?

अस्थिर हो, कि पलकें नाचती हैं।
धूलि में भी प्राण है
जलदान तो कर,
धूलि में अभिमान है
उट्ठे हरे सर,
धूलि में रज-दान है
फल चख मधुर तर,
धूलि में भगवान है
फिरता घरों घर,

धूलि में ठहरें बिना, यह
कौन-सा पथ नापती है
पुतलियों में कौन ?
अस्थिर हो, कि पलकें नाचती हैं।

जयशंकर 'प्रसाद'

(1890-1937)

देश हमारा

अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहां पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा
सरस तामरस-गर्भ विधा पर—नाच रही तरुशिखा मनोहर,
छिटका जीवन हरियाली पर—मंगल कुंकम सारा।
लघु सुरधनु से पंख पसारे—शीतल मलय समीर सहारे,
उड़ते खग जिस ओर मुंह किये—समझ नीड़ निज प्यारा।
बरसाती आँखों के बादल—बनते जहाँ भरे करुणा जल,
लहरें टकरातीं अनन्त की—पाकर जहाँ किनारा।
हेम-कुम्भ ले उषा सवेरे—भरती ढुलकाती सुख मेरे,
मदिर ऊंघते रहते जब—जग कर रजनीभर तारा।

(चन्द्रगुप्त)

बीती विभावरी जागरी

बीती विभावरी जागरी।
अम्बर पनघट में डुबो रही—
तारा घट उषा नागरी।
खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई—
मधु मुकुल नवल रस गागरी।

अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये—
तू अब तक सोई है आली।
आँखों में भरे विहागरी।

कामायनी

लज्जा सर्ग

कोमल किसलय के अंचल में
नन्ही कलिका ज्यों छिपती-सी
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती सी।

मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद निखरता ज्यों,
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों,

वैसी ही माया में लिपटी
अधरों पर उंगली धरे हुए,
माधव के सरल कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए,

नीरव निशीथ में लतिका-सी
तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
कोमल बाहें फैलाये-सी
आलिंगन का जादू पढ़ती।

किन इन्द्रजाल के फूलों से
लेकर सुहाग कण राग भरे,
सिर नीचा कर हो गूंथ रही
माला जिससे मधु धार ढरे ?

पुलकित कदम्ब की माला-सी
पहना देती हो अन्तर में,
झुक जाती है मन की डाली
अपनी फलभरता के डर में।

तुम कौन ? हृदय की परवशता ?
सारी स्वतंत्रता छीन रही
स्वच्छंद सुमन जो खिले रहे
जीवन वन से हो बीन रही ।

संध्या की लाली में हँसती,
उसका ही आश्रय लेती-सी,
छाया प्रतिमा गुनगुना उठी
श्रद्धा का उत्तर देती-सी ।

'इतना न चमत्कृत हो बाले !
अपने मन का उपकार करो ।
मैं एक पकड़ हूँ जो कहती
ठहरो कुछ सोच विचार करो ।

अम्बर-चुम्बी हिम-शृंगों से
कलरव कोलाहल साथ लिये,
विद्युत की प्राणमयी धारा
बहती जिसमें उन्माद लिये ।

मंगल कुंकम की श्री जिसमें
निखरी हो उषा की लाली,
भोला सुहाग इठलाता हो
ऐसी हो जिसमें हरियाली ।

हो नयनों का कल्याण बना
आनन्द सुमन-सा विकसा हो,
वासन्ती के बन-वैभव में
जिसका पंचम स्वर पिक-सा हो,

जो गूंज उठे फिर नस-नस में
मूर्च्छना समान मचलता-सा,
आँखों के साँचे में आकर
रमणीय रूप बन ढलता-सा,

नयनों की नीलम की घाटी
जिस रस घन से छा जाती हो,

वह कौंध कि जिससे अन्तर की
शीतलता ठंढक पाती हो ।

हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का
गोधूलि की-सी ममता हो,
जागरण प्रात-सा हंसता हो
जिसमें मध्याह्न निखरता हो ।

हो चकित निकल आई सहसा
जो अपने प्राची के घर से,
उस नवल चन्द्रिका के बिछले
जो मानस की लहरों पर से

फूलों की कोमल पंखड़ियाँ
बिखरें जिसके अभिनन्दन में,
मकरन्द मिलाती हों अपना
स्वागत के कुँकुम चन्दन में .

कोमल किसलय मर्मर रव से
जिसका जय-घोष सुनाते हों,
जिसमें दुख-सुख मिलकर मन के
उत्सव आनन्द मनाते हों ।

उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनन्त अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं :

मैं उसी चपल की धात्री हूँ
गौरव महिमा हूँ सिखलाती,
ठोकर जो लगने वाली है
उसको धीरे से समझाती ।

मैं देव सृष्टि की रति रानी
निज पंचवाण से वंचित हो,
बन आवजना मूर्ति दीना
अपनी अतृप्ति-सी संचित हो ।

अवशिष्ट रह गई अनुभव में
अपनी अतीत असफलता सी,
लीला विलास की खेद भरी
अवसादमयी श्रम दलिता सी।

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ
मैं शालीनता सिखाती हूँ,
मतवाली सुन्दरता पग में
नूपुर-सी लिपट मनाती हूँ।

लाली बन सरल कपोलों में
आँखों में अंजन-सी लगती,
कुंचित अलकों सी घुंघराली
मन की मरोर बन कर जगती।

चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हल्की-सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

(1897-1961)

बादल राग

[एक]

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर ।
राग-अमर । अम्बर में भर निज रोर ।
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में,
घर, मरु, तरु, मर्मर, सागर में,
सरित-तड़ित-गति-चकित पवन में
मन में, विजन-गहन-कानन में,
आनन-आनन में, रव-घोर-कठोर—
राग-अमर । अम्बर में भर निज रोर ।
अरे वर्ष के हर्ष
बरस तू बरस-बरस रसधार ।
पार ले चल तू मुझको ।
बहा, दिखा मुझको भी निज
गर्जन-भैरव-संसार ।
उथल-पुथल कर हृदय—
मचा हलचल—
चलरे चल,—
मेरे पागल बादल ।
धंसता दलदल,
हँसता है नद खल्खल्
बहता, कहता कुलकुल कलकल कलकल ।

देख-देख नाचता हृदय
बहने को महा विकल-बेकल,
इस मरोर से—इसी शोर से—
साधन घोर गुरु गहन रोर से
मुझे—गगन की दिखा सघन वह छोर।
राग अमर। अम्बर में भर निज रोर।

[दो]

ऐ निर्बन्ध।—
अन्ध-तम-अगम-अनर्गल—बादल।
ऐ स्वच्छन्द।—
मन्द-चंचल-समीर-रथ पर उच्छृंखल।
ऐ उद्दाम।
अपार कामनाओं के प्राण।
बाधारहित विराट्।
ऐ विप्लव के प्लावन।
सावन-घोर गगन के
ऐ सम्राट।
ऐ अटूट पर छूट टूट पड़ने वाले—उन्माद।
विश्व-विभव को लूट-लूट लड़नेवाले—अपवाद।
श्री बिखेर, मुख-फेर कली के निष्ठुर पीड़न।
छिन्न-भिन्न कर पत्र-पुष्प-पादप-वन-उपवन,
वज्र-घोष से ऐ प्रचण्ड।
आतंक जमानेवाले।
कम्पित जंगम,—नीड़-विहंगम,
ऐ न व्यथा पाने वाले।
भय के मायामय आंगन पर
गरजो विप्लव के नव जलधर।

[तीन]

निरंजन बने नयन-अंजन।
कभी चपल गति, अस्थिर मति,
जल-कलकल तरल प्रवाह,

वह उत्थान-पतन-हत अविरत
संसृित-गत उत्साह,
कभी दुख-दाह,
कभी जलनिधि-जल विपुल अथाह,—
कभी क्रीड़ारत सात प्रभंजन—
बने नयन-अंजन ।
कभी किरण-कर पकड़-पकड़कर
चढ़ते हो तुम मुक्त गगन पर,
झलमल ज्योति अयुत-कर-किंकर,
सीस झुकाते तुम्हें तिमिरहर—
अहे कार्य से गत कारण पर ।
निराकार, है तीनों मिले भुवन—
बने नयन-अंजन ।
आज श्याम-घन श्याम, श्याम छवि,
मुक्त-कण्ठ है तुम्हें देख कवि,
अहो कुसुम कोमल कठोर-पवि ।
शत-सहस्र-नक्षत्र-चंद्र रवि संस्तुत
नयन-मनोरंजन ।
बने नयन-अंजन ।

ठूँठ

ठूंठ यह है आज ।
गयी इसकी कला,
गया है सकल सान ।
अब यह बसन्त से होता नहीं अधीर,
पल्लवित, झुकता नहीं अब यह धनुष-सा,
कुसुम-से काम के चलते नही हैं तीर,
छाह में बैठते नहीं पथिक आह भर,
झरते नहीं यहाँ दो प्रणयियों के नयन-नीर ।
केवल वृद्‌ध विहग एक
बैठता कुछ कर याद ।

वह तोड़ती पत्थर

वह तोड़ती पत्थर।
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।

कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय कर्म-रत मन।
गुरु हथोड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार—
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार।

चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन
दिवा का तमतमाता रूप।
उठी झुलसाती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गई,
प्रायः हुई दुपहर :
वह तोड़ती पत्थर।

देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार।
देखकर कोई नहीं
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोयी नहीं।

सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार।
एक क्षण के बाद वह कांपी सुधर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा—
मैं तोड़ती पत्थर।

राम की शक्ति-पूजा

है अमा निशा, उगलता गगन धन अंधकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन-चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अंबुधि विशाल
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न केवल जलती मशाल ।
स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय
रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय,
जो हुआ नहीं आज तक हृदय रिपु-दम्य-श्रांत,
एक भी, अयुत-लक्ष में रहा जो दुराक्रांत,
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार,
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार ।

ऐसे क्षण अंधकार मन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का,—प्रथम स्नेह का लतांतराल मिलन
नयनों का नयनों से गोपन, प्रिय संभाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन,
कांपते हुए किसलय, झरते पराग-समुदय,
गाते खग-नव-जीवन-परिचय, तरू मलय-वलय,
ज्योति प्रभात स्वर्गीय,—ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कंपन तुरीय ।
सिहरा तन, क्षण भर भूला मन, लहरा समस्त,
हर-धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन राम के अधर,
फिर विश्व-विजय-भावना हृदय में आई भर,
वे आये याद दिव्य शर अगणित मंत्रपूत,
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत,
देखते राम, जल रहे शलभ ज्यों रजनीचर,
ताड़का, सुबाहु, विराध, शिरस्त्रय, दूषण, खर,
फिर देखह भीमा मूर्ति आज रण देखी जो
आच्छादित किये हुए सम्मुख समग्र नभ को,
ज्योतिर्मय अस्त्र सकल बुझ-बुझ कर हुए क्षीण

पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन ।
लख शंकाकुल हो गये अतुल-बल शेष-शयन,
खिच गये दृगों में सीता के राममय नयन ।
फिर सुना—हँस रहा अट्टहास रावण खलखल
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता-दल ।

सुमित्रानन्दन पन्त
(1900–)

आः धरती कितना देती है !

मैंने छुटपन में छिपकर पैसे बोए थे
सोचा था, पैसों के प्यारे पेड़ लगेंगे,
रुपयों की कलदार मधुर फसलें खनकेंगी,
और फूल फलकर मैं मोटा सेठ बनूंगा ।

पर बंजर धरती में एक न अंकुर फूटा,
बंध्या मिट्टी ने न एक भी पैसा उगला ।
सपने जाने कहाँ मिटे, कब धूल हो गए ।
मैं हताश हो, बाट जोहता रहा दिनों तक,
बाल कल्पना के अपलक पांवड़े बिछाकर ।
मैं अबोध था, मैंने गलत बीज बोये थे,
ममता को रोपा था, तृष्णा को सींचा था ।

अर्थशती हहराती निकल गई है तब से ।
कितने ही मधु पतझर बीत गए अनजाने,
ग्रीष्म तपे, वर्षा झूलीं, शरदें मुसकाई,
सी-सी कर हेमंत कंपे, तरु झरे, खिले बन,
ओं जब फिर से गाड़ी ऊदी लालसा लिये,
गहरे कजरारे बादल बरसे धरती पर,
मैंने, कौतूहलवश, आँगन के कोने की
गीली तह को यों ही उँगली से सहलाकर

बीज सेम के दबा दिये मिट्टी के नीचे ।
भू के अंचल में मणि माणिक बाँध दिए हों ।

मैं फिर भूल गया इस छोटी-सी घटना को,
और बात भी क्या थी, याद जिसे रखता मन ।
किन्तु एक दिन, जब मैं संध्या को आंगन में
टहल रहा था,—तब सहसा मैंने जो देखा,
उससे हर्षविमूढ़ हो उठा मैं विस्मय से ।
देखा, आँगन के कोने में कई नवागत
छोटी छोटी छाता ताने खड़े हुए हैं ।
छाता कहूँ कि विजय-पताकाएं जीवन की,
या हथेलियां खोले थे वे नन्हीं, प्यारी—
जो भी हो, वे हरे हरे उल्लास से भरे
पंख मार कर उड़ने को उत्सुक लगते थे,
डिम्ब तोड़कर निकले चिड़ियों के बच्चे-से !

निर्निमेष, क्षण भर, मैं उनको रहा देखता,—
सहसा मुझे स्मरण हो आया, कुछ दिन पहले,
बीज सेम के रोपे थे मैंने आंगन में,
और उन्हीं से बौने पौधों की यह पलटन
मेरी आँखों के सम्मुख अब खड़ी गर्व से
नन्हें नाटे पैर पटक, बढ़ती जाती है !
तब से उनको रहा देखता,—धीरे धीरे
अनगिनती पत्तों से लद, भर गईं झाड़ियाँ,
हरे भरे टंग गए कई मलमली चंदोवे !
बेलें फैल गईं बल खा, आंगन में लहरा,—
और सहारा लेकर बाड़े की टट्टी का
हरे हरे सौ झरने फूट पड़े ऊपर को !
मैं अवाक् रह गया वंश कैसे बढ़ता है !
छोटे, तारों-से छितरे, फूलों के छींटे
झागों-से लिपटे लहरी श्यामल लहरों पर
सुन्दर लगते थे, मावस के हंसमुख नभ-से,
चोटी के मोती-से, आँचल के बूटों-से !

ओह, समय पर उनमें कितनी फलियां टूटी !
कितनी सारी फलियां, कितनी प्यारी फलियां
पतली चौड़ी फलियां,—उफ, उनकी क्या गिनती !
लम्बी लम्बी अंगुलियां-सी, नन्हीं-नन्हीं
तलवारों-सी, पन्ने के प्यारे हारों-सी,
झूठ न समझें चन्द्र कलाओं-सी नित बढ़तीं,
सच्चे मोती की लड़ियों-सी, ढेर ढेर खिल,
झुंड-झुंड झिलमिलकर कचपचिया तारों-सी !
आः इतनी फलियां टूटीं, जाड़ों भर खाईं,
सुबह शाम वे घर घर पकीं, पड़ोस पास के
जाने अनजाने सब लोगों में बंटवाई,
बंधु, बांधवों, मित्रों, अभ्यागत मंगतों ने
जी भर भर दिन रात मुहल्ले भर ने खाईं ?
कितनी सारी फलियां, कितनी प्यारी फलियां

यह धरती कितना देती है ! धरती माता
कितना देती है अपने प्यारे पुत्रों को !
नहीं समझ पाया था मैं उसके महत्व को !
बचपन में, छिः, स्वार्थ लोभ वश पैसे बोकर !
रत्न प्रसविनी है वसुधा, अब समझ सका हूं !
इसमें सच्ची समता के दाने बोने हैं,
इसमें जन की क्षमता के दाने बोने हैं,
इसमें मानव ममता के दाने बोने हैं,
जिससे उगल सके फिर धूल सुनहली फसलें
मानवता की—जीवन श्रम से हँसे दिशाएँ !
हम जैसा बोयेंगे वैसा ही पायेंगे ?

मन जलता है

मन जलता है,
अन्धकार का क्षण जलता है,
मन जलता है !

मेरा मन तन बन जाता है,
तन का मन फिर कट कर
छंट कर,
कन कन ऊपर
उठ पाता है
मेरा मन तन बन जाता है !

तन के मन के श्रवण नयन हैं,
जीवन से सम्बन्ध गहन हैं,
कुछ पहचाने, कुछ गोपन हैं,
जो सुख दुख के संवेदन हैं ।
कब यह उड़ जग में छा जाता
जीवन की रज लिपटा जाता,
घिर मेरे चेतना गगन में
इन्द्रधनुष धन बन मुस्काता ?
नहीं जानता, कब कैसे फिर
यह प्रकाश किरणें बरसाता ।
बाहर भीतर ऊपर नीचे
मेरा मन जाता आता है,
सर्व व्यक्ति बनता जाता है !

तन के मन में कहीं अंतरित
आत्मा का मन है चिर ज्योतित,
इन छाया दृश्यों को जो
निज आभा से कर देता जीवित !
यह आदान-प्रदान मुझे

जाने कैसे क्या सिखलाता है !
क्या है ज्ञेय ? कौन ज्ञाता है ?
मन भीतर बाहर जाता है !

मन जलता है,
मन में तन में रण चलता है,
चेतन अवचेतन नित नव
परिवर्तन में ढलता है !
मन जलता है !

मर्म व्यथा

प्राणों में चिर व्यथा बाँध दी ?
क्यों चिर-दग्ध हृदय को तुमने
वृथा प्रणय की अमर साध दी !

पर्वत को जल, दारु को अनल,
वारिद को दी विद्युत चंचल,
फूल को सुरभि, सुरभि को विकल
उड़ने की इच्छा अबाध दी !

हृदय दहन रे हृदय दहन,
प्राणों की व्याकुल व्यथा गहन।
यह सुलगेगी, होगी न सहन,
चिर-स्मृति की श्वास-समीर साथ दी !

प्राण गलेंगे, देह जलेगी,
मर्म-व्यथा की कथा ढलेगी,
सोने-सी तप कर, निकलेगी
प्रेयसि-प्रतिमा, ममता अगाध दी !
प्राणों में चिर व्यथा बाँध दी !

परिवर्तन

अहे निष्ठुर-परिवर्तन !
तुम्हारा ही ताण्डव-नर्तन
विश्व का करुण-विवर्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान, पतन !
अहे वासुकि सहस्र-फन !

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर !
शत-शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर !
मृत्यु तुम्हारा गरल-दन्त कंचुक-कल्पान्तर,

अखिल विश्व ही विवर,
वक्र-कुंडल,
दिङ्. मण्डल !
विश्वमय हे परिवर्तन !

अतल से उमड़ अकूल, अपार,
मेघ से विपुलाकार ;
दिशावधि में पल विविध प्रकार
अतल में मिलते तुम अविकार !

अहे अनिर्वचनीय ! रूप धर भव्य, भयंकर,
इन्द्रजाल-सा तुम अनन्त में रचते सुन्दर;
गरज, गरज, हँस हँस, चढ़ गिर, छा ढा, भू-अम्बर,
करते जगती को अजस्र जीवन से उर्वर;
अखिल विश्व की आशाओं का इन्द्रचाप-वर

अहे तुम्हारी भीम-भृकुटि पर
अटका निर्भर !
एक और बहु के बीच अजान
घूमते तुम नित चक्र समान,
जगत के उर में छोड़ महान
गहन-चिह्नों में ज्ञान !

परिवर्तित कर अगणित नूतन-दृश्य निरन्तर,
अभिनय करते विश्व-मंच पर तुम मायाकर !
जहाँ हास के अधर, अश्रु के नयन करुणतर
पाठ सीखते सकेतों में प्रकट, अगोचर;
शिक्षास्थल यह विश्व-मंच, तुम नायक-नटवर,
प्रकृति नर्तकी सुघर
अखिल में व्याप्त सूत्रधर !

हमारे निज सुख-दुख निःश्वास
तुम्हें केवल परिहास;
तुम्हारी ही विधि पर विश्वास
हमारा चिर आश्वास !

हे अनन्त हृत्कम्प ! तुम्हारा अविरत-स्पन्दन
सृष्टि-शिराओं में संचारित करता जीवन;
खोल जगत के शत शत नक्षत्रों-से लोचन,
भेदन करते अन्धकार तुम जग का क्षण, क्षण,
सत्य तुम्हारी राज-यष्टि, सम्मुख नत त्रिभुवन,
भूप, अकिंचन,
अटल शास्ति नित करते पालन !
तुम्हारा ही अशेष व्यापार,
हमारा भ्रम, मिथ्याहंकार
तुम्हीं में निराकार, साकार
मृत्यु-जीवन सब एकाकार !

अहे महाबुंधि ! लहरों से शत लोक, चराचर,
क्रीड़ा करते सतत तुम्हारे स्फीत वक्ष पर,
तुंग तरंगों से शत युग, शत शत कल्पांतर
उगल, महोदर में विलीन करते तुम सत्वर;
शत-सहस्र रवि-शशि असंख्य ग्रह, उपग्रह, उडगण,
जलते, बुझते हैं स्फुलिंग से तुम में तत्क्षण,
अचिर विश्व में अखिल दिशावधि, कर्म, वचन, मन,
तुम्हीं चिरंतन
अहे विवर्तन-हीन विवर्तन !

महादेवी वर्मा
(1907-   )

रूपसि तेरा घन केश-पाश

रूपसि तेरा घन केश-पाश ।
श्यामल-श्यामल कोमल-कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश !

नभगंगा की रजत धार में,
धो आई क्या इन्हें रात ?
कम्पित हैं तेरे सजल अंग,
सिहरा-सा तन हे सद्यस्नात !
भीगी अलकों के छोरों से
चूतीं बूँदें कर विविध लास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

सौरभ-भीना झीना गीला
लिपटा मृदु अंजन-सा दुकूल;
चल अंचल से झर झर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण-फूल;
दीपक से देता बार बार
तेरा उज्ज्वल चितवन-विलास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !
उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है
वक-पांतों का अरविन्द-हार;

तेरी निश्वासें छू भू को
वन बन जाती मलयज बयार;
केकी-रव की नूपुर-ध्वनि सुन
जगती जगती की मूक प्यास;
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

इन स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अंकों में भर विशाल,
झुक सस्मित शीतल चुम्बन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल;
दुलरा देना बहला देना
यह तेरा शिशु जग है उदास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

मधुर मधुर मेरे दीपक जल

मधुर मधुर मेरे दीपक जल !
युग-युग प्रति दिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर !
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल !
पुलक पुलक मेरे दीपक जल !

सारे शीतल कोमल नूतन,
मांग रहे तुझ से ज्वाला कण,
विश्व शलभ सिर धुन कहता मैं
हाय न जल पाया तुझमें मिल !
सिहर सिहर मेरे दीपक जल !

जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक,
जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत ले घिरता है बादल !
विहँस विहँस मेरे दीपक जल !

द्रुम के अंग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयंगम,
वसुधा के जड़ अन्तर में भी,
बन्दी है तापों की हलचल !
बिखर बिखर मेरे दीपक जल !

मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर;
मैं अंचल की ओट किये हूँ,
अपनी मृदु पलकों से चंचल ।
सहज सहज मेरे दीपक जल !

सीमा ही लघुता का बन्धन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन;
मैं दृग के अक्षय कोषों से
तुझमें भरती हूँ आँसू-जल !
सजल सजल मेरे दीपक जल !

तुम असीम तेरा प्रकाश चिर;
खेलेंगे नव खेल निरन्तर;
तम के अणु अणु में विद्युत-सा
अमिट चित्र अंकित करता चल !
सरल सरल मेरे दीपक जल !

तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय,
मधुर मिलन में मिट जाना तू
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल !
मदिर मदिर मेरे दीपक जल !
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो !
रजत-शंख-घड़ियाल स्वर्ण-वंशी-वीणा स्वर,
गये आरती-वेला को शत शत लय से भर,
जब था कलकंठों का मेला,
विहंसे उपल तिमिर था खेला,
अब मन्दिर में इष्ट अकेला,
इसे अजिर का शून्य जलाने को गलने दो !

चरणों से चिह्नित अलिंद की भूमि सुनहली,
प्रणत शिरों के अंक लिये चन्दन की दहली,
झरे सुमन बिखरे अक्षत सित,
धूप अर्घ्य नैवेद्य अपरिमित,
तम में सब होंगे अन्तर्हित,
सबकी अर्चित कथा इसी लौ में पलने दो
पल के मन के फेर पुजारी विश्व सो गया,
प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरों बीच खो गया,
सांसों की समाधि, सा जीवन,
मसि-सागर-सा पन्थ गया बन,
रुका मुखर कण कण का स्पन्दन,
इस ज्वाला में प्राण रूप फिर से ढलने दो !

झंझा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी,
जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल,
रेखाओं में भर आभा जल,
दूत सांझ का इसे प्रभाती तक जलने दो !

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त रजनी !

तारकमय नव वेणी बंधन,
शीशफूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित घन-अवगुंठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी ।
पुलकती आ बंसत-रजनी !

मर्मर की सुमधुर नूपुर-ध्वनि,
अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणि,
भर पद-गति में अलस तरंगिणि,
तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मित से सजनी ।
विहँसती आ बसंत-रजनी !

पुलकित स्वप्नों की रोमावलि,
कर में हो स्मृतियों की अंजलि,
मलयानिल का चल दुकूल अलि !
घिर छाया-सी श्याम, विश्व को
आ अभिसार बनी ।
सकुचती आ बसंत-रजनी !

सिहर-सिहर उठता सरिता-उर,
खुल खुल पड़ते सुमन सुधा-भर,
मचल मचल आते पल फिर फिर,
सुन प्रिय की पद-चाप हो गई
पुलकित यह अवनी ।
सिहरती आ बसंत-रजनी !

सियारामशरण गुप्त
(1895-1963)

खिलौना

मैं तो वही खिलौना लूंगा
मचल गया दीना का लाल,—
"खेल रहा था जिसको लेकर
राजकुमार उछाल उछाल।"
व्यथित हो उठी माँ बेचारी—
था सुवर्ण-निर्मित वह तो !
खेल इसी से लाल,—नहीं है
राजा के घर भी यह तो !
"राजा के घर ! नहीं नहीं माँ,
तू मुझको बहकाती है;
इस मिट्टी से खेलेगा क्या
राजपुत्र तू ही कह तो।"
फेंक दिया मिट्टी में उसने
मिट्टी का गुड्डा तत्काल;
"मैं तो वही खिलौना लूंगा—
मचल गया दीना का लाल।।
" मैं तो वही खिलौना लूंगा"
मचल गया शिशु राजकुमार,—
"वह बालक पुचकार रहा था
पथ में जिसको बारंबार।

"वह तो मिट्टी का ही होगा,
खेलो तुम तो सोने से ।"
दौड़ पड़े सब दास दासियाँ
राजपुत्र के रोने से ।

"मिट्टी का हो या सोने का,
इनमें वैसा एक नहीं;
खेल रहा था उछल उछल कर
वह तो उसी खिलौने से ।
राजहठी ने फेंक दिये सब
अपने रजत-हेम-उपहार ।
"लूंगा वही, वही लूंगा मैं ।"
मचल गया वह राजकुमार ।

बापू

विश्व-महावंश-पाल,
धन्य, तुम धन्य हे धरा के लाल !
छद्म-छल के अवधि,
वीतराग वीतक्रोध
तुममें पुरातन है नूतन में,
नूतन चिरन्तन में ।
छोटे-से क्षितिज हैं,
वसुधा के निज हैं,
वसुधा तुम्हारे बीच स्वर्ग में समुन्नत है,
स्वर्ग वसुधा में समागत है,
आकर तुम्हारे नये संगम में,
लघु अवतीर्ण है महत्तम में,
दूर और पास आस-पास खिले,
एक दूसरे से हिले
भीतर में बाहर में,
हास और रोदन ध्वनित एक स्वर में
जाने किस भाषा में,

ज्ञात किसे, जानें किस आशा में,
हास में तुम्हारे विश्व हँसता;
रोदन में आकर निबसता
विश्व-वेदना का महा पारावार
घोर-घन हाहाकार;
छोटा-सा तुम्हारा यह वर्तमान;
विपुल भविष्य में प्रवर्द्धमान;
आज के आपत्य तुम, कल के जनक हो,
एक के अनेक में गणक हो;
सबके सहज साध्य,
सबके सदा अबाध्य,
आत्मलीन सर्वकाल सर्वात्मीय;
कौन तब परकीय ?
तुम अपने हो विश्व भर के
पुण्यातिथि भी सदैव घर के;
हे बिदेह
गेही भी सदैव तुम हो अगेह;
फेंक सकते हो तुम्हीं निर्विकार,
मृत्तिका-समाज हेम-हीर-मणि-मुक्ता-हार;
सन्तत अतुल है
जन्मजात उच्च स्वर्गकुल के,
मर्त्य-कुलशाखा में हुए हो गोद
सप्रमोद;
भूतल की शक्ति यह हल्की
एक बड़ी बूंद किसी पुण्य-स्वाति जल की
दुर्लभ सुयोग जन्य
प्राप्त कर तुममें हुई धन्य धन्य धन्य !
बाल तुम ?—बाल-युवा-वृद्ध नहीं कुछ भी,
पूर्ण विश्व-मानव तभी, तभी;
प्यार-प्रेम श्रद्धा राह
बार बार प्रणत प्रणाम तुम्हें अहरह !

रामधारी सिंह दिनकर

(1908–)

गीत, अगीत कौन सुन्दर है

(1)

गाकर गीत विरह के तटिनी
वेगवती बहती जाती है,
दिल हल्का कर लेने को
उपलों से कुछ कहती जाती है।
तट पर एक गुलाब सोचता—
"देते स्वर यदि मुझे विधाता,
अपने पतझड़ के सपनों का
मैं भी जग को गीत सुनाता।"
गा-गा कर बह रही निर्झरी,
पाटल मूक खड़ा तट पर है।
गीत, अगीत कौन सुन्दर है ?

(2)

बैठा शुक उस घनी डाल पर
जो खोते पर छाया देती,
पंख फुला नीचे खोते में
शुकी बैठ अन्डे है सेती।

गाता शुक जब किरण बसन्ती
छूती ग्रंग पर्ण से छनकर,
किन्तु, शुकी के गीत उमड़कर
रह जाते सनेह में सनकर ।

गूंज रहा शुक का स्वर वन में,
फूला मग्न शुकी का पर है ।
गीत, ग्रगीत कौन सुन्दर है ?

(3)

दो प्रेमी हैं यहाँ, एक जब
बड़े सांझ ग्राल्हा गाता है,
पहला स्वर उसकी राधा को
घर से यहाँ खींच लाता है ।
चोरी-चोरी खड़ी नीम की
छाया में छिपकर सुनती है,
"हुई न क्यों मैं कड़ी गीत की
विधना", यों मन में गुनती है ।

वह गाता, पर किसी वेग से
फूल रहा इसका ग्रन्तर है ।
गीत, ग्रगीत कौन सुन्दर है ?

चांद और कवि

रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद,
ग्रादमी भी क्या ग्रनोखा जीव होता है ।
उलझनें ग्रपनी बना कर ग्राप ही फँसता,
ग्रौर फिर बेचैन हो जगता न सोता है ।

जानता है तू कि मैं कितना पुराना हूँ ?
मैं चुका हूँ देख मनु को जनमते-मरते,
ग्रौर लाखों बार तुझसे पागलों को भी
चाँदनी में बैठ स्वप्नों पर सही करते ।

आदमी का स्वप्न ? है वह बुलबुला जल का,
आज बनता और कल फिर फूट जाता है,
किन्तु, तो भी धन्य, ठहरा आदमी ही तो !
बुलबुलों से खेलता, कविता बनाता है।

मैं न बोला, किन्तु मेरी रागिनी बोली,
चाँद ! फिर से देख, मुझको जानता है तू ?
स्वप्न मेरे बुलबुले हैं ? है यही पानी ?
आग को भी क्या नहीं पहचानता है तू ?

मैं न वह जो स्वप्न पर केवल सही करते,
आग में उसको गला लोहा बनाती हूँ,
और उस पर नींव रखती हूँ नये घर की,
इस तरह, दीवार फौलादी उठाती हूँ।

मनु नहीं, मनु-पुत्र है यह सामने, जिसकी
कल्पना की जीभ में भी धार होती है,
बाण ही होते विचारों के नहीं केवल,
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है।

स्वर्ग के सम्राट को जा कर खबर कर दे,
रोज़ ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं ये,
रोकिये, जैसे बने, इन स्वप्न वालों को,
स्वर्ग की ही ओर बढ़ते आ रहे हैं ये।

मनुज का श्रेय

रसवती भू के मनुज का श्रेय,
यह नहीं विज्ञान, विद्या-बुद्धि यह आग्नेय;
विश्व-दाहक, मृत्यु-वाहक, सृष्टि का संताप,
भ्रान्त पथ पर अन्ध बढ़ते ज्ञान का अभिशाप।
भ्रमित प्रज्ञा का कुतुक यह इन्द्रजाल विचित्र,
श्रेय मानव के न, आविष्कार ये अपवित्र।

सावधान मनुष्य, यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक, तज कर मोह, स्मृति के पार।

हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी अज्ञान;
फूल-कांटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान,
खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार,
काट लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धार।

रसवती भू के मनुज का श्रेय,
यह नहीं विज्ञान कटु, आग्नेय।
श्रेय उसका, प्राण में बहती प्रणय की वायु,
मानवों के हेतु अर्पित मानवों की आयु।

श्रेय उसका आंसुओं की धार,
श्रेय उसका, भग्न वीणा की अधीर पुकार।
दिव्य भावों के जगत में जागरण का गान,
मानवों का श्रेय, आत्मा का किरण-अभियान।
यजन, अर्पण, आत्मसुख का त्याग,
श्रेय मानव का, तपस्या की दहकती आग।
बुद्धि-मन्थन से विनिर्गत श्रेय वह नवनीत—
जो करे नर के हृदय को स्निग्ध, सौम्य, पुनीत।
श्रेय वह विज्ञान का वरदान,
हो सुलभ सबको सहज जिसका रुचिर अवदान।
श्रेय वह नर-बुद्धि का शिवरूप आविष्कार,
ढो सके जिससे प्रकृति सबके सुखों का भार।

2

मनुज के श्रम के अपव्यय की प्रथा रुक जाय,
सुख-समृद्धि-विधान में नर के, प्रकृति झुक जाय।
श्रेय होगा मनुज का समता-विधायक ज्ञान,
स्नेह-सिंचित-न्याय पर नव विश्व का निर्माण।
एक नर में अन्य का निःशंक, दृढ़ विश्वास,
धर्मदीप्त मनुष्य का उज्ज्वल नया इतिहास—
समर, शोषण, ह्रास की विरुदावली से हीन,
पृष्ठ जिसका एक भी होगा न दग्ध मलीन।
मनुज का इतिहास जो होगा सुधामय कोष,
छलकता होगा सभी नर का जहाँ संतोष।

युद्ध की ज्वर-भीति से हो मुक्त,
जब कि होगी सत्य ही वसुधा सुधा से युक्त ।
श्रेय होगा सुष्ठु विकसित मनुज का वह काल,
जब नहीं होगी धरा नर के रुधिर से लाल ।
श्रेय होगा धर्म का आलोक वह निर्बन्ध,
मनुज जोड़ेगा मनुज से जब उचित सम्बन्ध ।

साम्य की वह रश्मि स्निग्ध, उदार,
कब खिलेगी, कब खिलेगी विश्व में भगवान ?
कब सुकोमल ज्योति से अभिसिक्त—
हो, सरस होंगे जली-सूखी रसा के प्राण ?

कुरुक्षेत्र से

किन्तु, है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
छूटकर पीछे गया है रह हृदय का देश;
नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्यौहार,
प्राण में करते दुखी हो देवता चीत्कार ।

चाहिए उनको न केवल ज्ञान,
देवता हैं माँगते कुछ स्नेह, कुछ बलिदान;
मोम-सी कोई मुलायम चीज
ताप पाकर जो उठे मन में पसीज-पसीज
प्राण के झुलसे विपिन में फूल कुछ सुकुमार;
ज्ञान के मरु में सुकोमल भावना की धार;
चाँदनी की रागिनी, कुछ भोर की मुसकान;
नींद से भूली हुई बहती नदी का गान;
रंग में घुलता हुआ खिलती कली का राज;
पंक्तियों पर गूंजती कुछ ओस की आवाज;
आँसुओं में दर्द की गलती हुई तस्वीर;
फूल की, रस में बसी-भीगी हुई, जंजीर ।

धूम, कोलाहल, थकावट धूल के उस पार,
शीत जल से पूर्ण कोई मन्दगामी धार;

वृक्ष के नीचे जहां मन को मिले विश्राम,
आदमी काटे जहाँ कुछ छुट्टियाँ, कुछ शाम
कर्म-संकुल लोक-जीवन से समय कुछ छीन,
हो जहाँ पर बैठ नर कुछ पल स्वयं में लीन,—
फूल-सा एकान्त में उर खोलने के हेतु,
शाम को दिन की कमाई तोलने के हेतु।
ले चुकी सुख-भाग समुचित से अधिक है देह,
देवता हैं मांगते मन के लिए लघु गेह।

भारत

वृथा मत लो भारत का नाम।
मानचित्र में जो मिलता हैं, नहीं देश भारत है
भू पर नहीं, मनो में ही, बस, कहीं शेष भारत है।
भारत एक स्वप्न, भू को ऊपर ले जानेवाला।
भारत एक विचार, स्वर्ग को भू पर लानेवाला।
भारत एक भाव, जिसको पाकर मनुष्य जगता है,
भारत एक जलज, जिसपर जल का न दाग लगता है।
भारत है संज्ञा विराग की, उज्ज्वल आत्म-उदय की,
भारत है आभा मनुष्य की सबसे बड़ी विजय की।
भारत है भावना दाह जग-जीवन का हरने की,
भारत है कल्पना मनुज को राग-मुक्त करने की।
जहाँ कहीं एकता अखण्डित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में खड़ा वहाँ भारत जीवित, भास्वर है।
भारत वहाँ, जहाँ जीवनसाधना नहीं है भ्रम में,
धाराओं को समाधान है मिला हुआ संगम में।
जहाँ त्याग माधुर्यपूर्ण हो, जहाँ भोग निष्काम।
समरस हो कामना, वहीं भारत को करो प्रणाम।
वृथा मत लो भारत का नाम।

ऐतिहासिक समीक्षा (गद्य)

हिन्दी-गद्य के आविर्भाव और विकास में सामाजिक परिस्थितियों, नवोत्थान की प्रेरणा और राजनीतिक आवश्यकताओं का युगानुसार योग रहा है। यद्यपि गद्य का उत्कर्ष विशेषतः आधुनिक युग में खड़ी बोली के माध्यम से हुआ, तथापि यह उल्लेखनीय है कि इसके पूर्व भी राजस्थानी, ब्रज-भाषा और खड़ी बोली में स्फुट गद्य-परम्परा विद्यमान थी। राजस्थानी में बारहवीं शती से पन्द्रहवीं शती तक दानपत्रों, शिलालेखों, पट्टे-परवानों आदि में गद्य का प्रकीर्ण उपयोग किया गया था। इस काल की गद्य-शैली पर आरंभ में संस्कृत, बाद में अपभ्रंश और तदनन्तर ब्रजभाषा की शब्दावली और क्रिया-रूपों के प्रभाव को सहज ही लक्षित किया जा सकता है। आरम्भिक हिन्दी-गद्य के विकास में ब्रजभाषा का योगदान और भी अधिक महत्वपूर्ण है। पन्द्रहवीं-सोलहवीं शती में गोस्वामी विट्ठलनाथ और उनसे भी पूर्व गुरु गोरखनाथ की कुछ-एक संक्षिप्त रचनाएं प्राप्त होती हैं, किन्तु उनकी गद्य शैली सर्वथा अनगढ़ है। सत्रहवीं शती में गोस्वामी गोकुलनाथ और गोस्वामी हरिराय ने वार्ता-साहित्य की रचना द्वारा ब्रजभाषा-गद्य के विकास में योगदान किया। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि उपर्युक्त सभी रचनाएं न तो गद्य की किसी क्रम-बद्ध परम्परा का द्योतन करती हैं और न भाषा-शैली की दृष्टि से इनमें गठन और संस्कार ही लक्षित होता है। अतः हिन्दी-गद्य का सम्यक् विकास खड़ी-बोली के उदय के पश्चात् ही मानना होगा। भारतेन्दु-पूर्व लेखकों में रामप्रसाद निरंजनी, सदासुखलाल, इंशाअल्ला खां, लल्लूलाल और सदल मिश्र ने पुराण-गाथा, कृष्ण-लीला, कल्पित प्रेम-कथा आदि के आधार पर गद्य-रचनाएं प्रस्तुत की थीं जिनमें शैली का स्वरूप उभरने लगा था। इन लेखकों में इंशाअल्ला खां ने ठेठ खड़ी बोली के प्रयोग पर बल दिया, किन्तु अन्य लेखकों ने शब्द-विन्यास में संस्कृत और ब्रजभाषा से भी प्रभाव ग्रहण किया। शैली की दृष्टि से विशेषतः वर्णन-विवरण-प्रवृत्ति और कहीं-कहीं रागात्मक तत्व के स्पर्श भी

इनकी रचनाओं में सहज प्राप्त हो जाते हैं। राजा लक्ष्मणसिंह की भाषा में गद्य-काव्य के सहज मिठास का समावेश भी हो गया था।

हिन्दी-गद्य की विभिन्न विधाओं का सूत्रपात 1868 ई० के लगभग भारतेन्दु युग में हुआ। तब से अब तक के गद्य-साहित्य को सुविधा के लिए तीन वर्गों में बांटा जा सकता है : प्रारंभ काल (1868-1918 ई०), विकास काल (1819-1937 ई०), वर्तमान काल या उत्कर्ष काल (1938······)।

प्रारंभ काल

भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग का गद्य-साहित्य प्रारंभ काल के अंतर्गत आता है। इस काल के लेखकों ने नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध और आलोचना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की। नाट्य-रचना की दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट और राधाकृष्णदास का योगदान प्रमुख था। इनके नाटकों में अधिकतर समसामयिक सामाजिक स्थितियों के व्यंग्यात्मक विश्लेषण की प्रवृत्ति मिलती है; यद्यपि आदर्शवादी सामाजिक नाटकों और देशभक्तिमूलक ऐतिहासिक नाटकों की रचना की ओर भी इन्होंने ध्यान दिया था। इस काल में संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी-नाटकों के अनुवाद भी प्रस्तुत किए गए, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि प्रारम्भ काल में भारतेन्दु के उपरांत कोई अन्य नाटककार नाट्य-शैली में नवीन संभावनाओं का उन्मेष नहीं कर पाया। उपन्यास-रचना के क्षेत्र में भी प्रायः यही स्थिति लक्षित होती है। इस गद्य-विधा के प्रमुख लेखक हैं– श्रीनिवासदास, किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनन्दन खत्री आदि। इन्होंने जीवनगत यथार्थ की अपेक्षा पारंपरिक आदर्शों के प्रत्यक्ष कथन पर बल दिया, पात्रों के मनोविश्लेषण की तुलना में घटना-जाल के प्रति मोह व्यक्त किया, संवाद-योजना की अपेक्षा वर्णन और विवरण को प्रमुखता दी और कहीं-कहीं काव्यात्मक भाषा का भी प्रयोग किया। वैसे तो जयशंकर प्रसाद ने भी इसी युग में कहानी-लेखन आरंभ किया था, किन्तु इस काल के प्रतिनिधि कहानीकार हैं—चन्द्रधर शर्मा गुलेरी। इस समय मुख्यतः सामाजिक कहानियों की ही रचना की गई, यद्यपि कुछ कहानीकारों ने पौराणिक, ऐतिहासिक और जासूसी कथानकों को भी ग्रहण किया। गद्य की प्रमुख विधा निबन्ध का उदय भी इसी समय हुआ जिस के विकास में बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, पूर्णसिंह आदि का योगदान महत्वपूर्ण है। इन्होंने अधिकतर सामाजिक विषयों पर निबन्ध-रचना की है और विषय के अनुरूप कहीं ललित शैली, कहीं व्यंग्यमय और कहीं इतिवृत्त शैली को अपनाया है। इस युग के अधिकांश निबंधकारों ने आलोचनात्मक निबंध भी लिखे हैं, जिनमें वस्तुनिष्ठता और

क्रमबद्धता पर ही अधिक बल रहा है। प्रारंभ काल के विशिष्ट आलोचक हैं—पद्मसिंह शर्मा, मिश्रबन्धु और श्यामसुन्दरदास। इस युग के समीक्षकों ने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों समीक्षा-पद्धतियों का उपयोग किया, किन्तु वे साहित्य की आत्मा में प्रायः प्रवेश नहीं कर सके।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि परिणाम और वैविध्य की दृष्टि से प्रारंभ काल में गद्य-विकास के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार हो गई थी। यद्यपि प्रारंभिक रचनाओं में गद्य-शैली अपरिपक्व थी, फिर भी विषय-क्षेत्र के विस्तार के साथ कालान्तर में उसका परिष्कार होता गया और भाषा आनुप्रासिक वाक्य-विन्यास, ब्रजभाषा के प्रभाव, व्याकरणविरुद्ध प्रयोग और वागाडम्बर आदि दोषों से मुक्त होती गयी।

विकास काल

विकास काल के अन्तर्गत हिन्दी-गद्य के विविध रूपों को स्थिरता प्राप्त हुई। कविता के क्षेत्र में छायावाद के उदय के फलस्वरूप इस काल के गद्य में भी विषय और शैली दोनों की दृष्टि से नवीन संभावनाओं का उदय हुआ। स्वयं छायावादी कवियों ने प्रायः सभी गद्य-रूपों के अंतर्गत सफल रचनाएं प्रस्तुत कीं और हिन्दी-गद्य को अनुभूति-प्रवणता, कल्पना की समृद्धि, चिंतन की गरिमा, अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता आदि ऐसे गुणों से मंडित किया जो पूर्ववर्ती गद्य-लेखकों की रचनाओं में सुलभ नहीं थे। इस शैली के प्रतिनिधि लेखक हैं—जयशंकर प्रसाद, राय कृष्णदास, माखनलाल चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा आदि। उधर गद्य के व्यावहारिक रूप का भी विकास हुआ जिसके सर्वप्रमुख शैलीकार हैं प्रेमचन्द और उनके सहयोगी हैं सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा आदि।

विकास-काल में नाट्य साहित्य को उपयुक्त गरिमा प्राप्त हुई, किन्तु साहित्यिक रंगमंच की स्थापना और विकास की दिशा में अपेक्षित प्रगति नहीं हुई। इस युग के प्रमुख नाटककार जयशंकर प्रसाद हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति के पुनर्निर्माण के उद्देश्य से अनेक सफल ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। इस प्रवृत्ति के अन्य नाटककार हैं—सेठ गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट आदि। समस्या-नाटक का आरम्भ भी इस युग में हो गया था और लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में उसका सुष्ठु रूप विकसित हो रहा था। उधर रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, अश्क आदि ने एकांकी-कला का विकास किया। इस युग में कथा-साहित्य को भी विशेष आयाम प्राप्त हुए। उपन्यास-कहानी में जीवन के आदर्शों के साथ ही यथार्थ-दर्शन के प्रति भी आग्रह बढ़ा और कथा-शिल्प में मनोविज्ञान का समावेश होने लगा। इस क्षेत्र में प्रेमचन्द का

स्थान सर्वप्रमुख है, किन्तु जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, जैनेन्द्र, यशपाल आदि ने भी तत्कालीन कथा-साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। प्रारंभ काल के उत्तरार्द्ध में ललित निबंधों और वैयक्तिक निबंधों की रचना की प्रवृत्ति कुछ क्षीण हो गई थी पर विकास-काल में वह फिर उभर कर आई। इस युग में हिन्दी-आलोचना में गांभीर्य का समावेश हुआ; अंतर्दर्शन की प्रवृत्ति विकसित हुई। काव्यशास्त्र और साहित्यालोचन से संबद्ध विषयों के गंभीर अनुशीलन के साथ ही व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान का प्रभाव बढ़ने लगा। पूर्व-युग के आलोचकों में शास्त्रीय समीक्षा-पद्धति के प्रति आग्रह था, परन्तु अब रचना को उसके स्वतंत्र परिप्रेक्ष्य में देखने पर बल दिया जाने लगा। इस कालखण्ड के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार और युग-प्रवर्तक आलोचक हैं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल। इस प्रकार, विकास-काल में हिन्दी-गद्य की विभिन्न विधाओं का बहुमुखी विकास हुआ और साथ ही गद्यकाव्य, संस्मरण, रेखाचित्र आदि कुछ नवीन विधाएं भी प्रकाश में आईं।

उत्कर्ष काल

१९४७ ई० में भारत की स्वतंत्रता केवल राजनीतिक उपलब्धि ही नहीं थी, साहित्य के उन्नयन में भी नवीन परिस्थितियाँ विशेष प्रभावकारी सिद्ध हुई—विश्वविद्यालयीय शिक्षा का वर्धमान प्रसार, अनेक पत्र-पत्रिकाओं का नवप्रकाशन, विचार-स्वातंत्र्य की सुविधा, विदेशी तथा भारतीय भाषाओं के साहित्य से निकटतर सम्पर्क आदि के परिणामस्वरूप उत्कर्ष काल में हिन्दी-गद्य की सभी विधाओं में उत्तरोत्तर सशक्त परिवर्तन लक्षित होते हैं। वर्तमान नाट्य-साहित्य रंगमंच के निकट आ गया है, युग-जीवन की यथार्थ-अभिव्यक्ति का आग्रह बढ़ रहा है और काव्य-नाटक, रेडियो-रूपक आदि नवीन विधाएं प्रतिष्ठित हो गई हैं। नाटक के लेखन, समीक्षण और अभिनय में पहले जो अन्तराल रहता था, वह अब क्रमशः भरता जा रहा है अर्थात् सर्जन की नवीन दिशाओं की खोज और नाटक के मूल्यांकन की प्रक्रिया अब अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली हो गई है। वर्तमान नाटककारों और एकांकी लेखकों में अश्क, जगदीशचन्द्र माथुर और मोहन राकेश की उपलब्धियाँ उल्लेखनीय हैं। उत्कर्षकाल में कथा-साहित्य का विकास और भी अधिक हुआ। कथा-संयोजन में यथार्थ का आग्रह बढ़ा या समसामयिक प्रवृत्तियों का अंतरंग चित्रण किया गया, वातावरण की सृष्टि में आंचलिक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला, पात्रों के व्यक्ति-विश्लेषण में मनोविश्लेषणशास्त्र की नवीन पद्धतियों का प्रयोग होने लगा और भाषा-शैली में नई अर्थवत्ता भरने के प्रयत्न

किए गए । वर्तमान कथा-साहित्य के स्वरूप-विकास में जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय, अमृतलाल नागर और रेणु आदि का योगदान महत्वपूर्ण है । अन्य गद्य-रूपों की भाँति, वर्तमान युग में हिन्दी-निबन्ध और आलोचना-साहित्य का भी बहुमुखी विकास हुआ । निबंध के क्षेत्र में ललित गद्यबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, प्रतिवेदन, साक्षात्कार आदि के माध्यम से सर्जनात्मक गद्य-साहित्य के अनेक रूप सामने आए और हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्र तथा महादेवी वर्मा तथा सियारामशरण आदि की कृतियों में हिन्दी-गद्य-शैली की नवीन भंगिमाएं प्रस्फुटित हुई । आलोचना आधुनिक युग की सबसे अधिक समृद्ध विधा है : शास्त्रीय और व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में सिद्धांत-प्रतिपादन तथा कला-समीक्षा की अनेक पद्धतियों का सम्यक् विकास हुआ, काव्य-चिंतन समृद्ध हुआ और सौन्दर्य के विविध रूपों के उद्घाटन के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ । इधर सामयिक आवश्यकताओं के अनुसार ज्ञान के साहित्य का भी द्रुतगति से विस्तार हो रहा है और उपयोगी संदर्भ-ग्रंथ हिन्दी के भण्डार की श्रीवृद्धि कर रहे हैं । इस दिशा में काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा का योगदान स्तुत्य है ।

हिन्दी-गद्य के इतिहास का प्रसार चाहे अधिक न हो, परन्तु उसके विकास की गति अत्यन्त तीव्र रही है । हिन्दी-गद्य ने अपनी यात्रा का आरम्भ कुछ देर से किया किन्तु अभीष्ट गंतव्यों तक पहुँचने में उसे देर नहीं लगी ।

इंशा अल्ला खां

डौल-डाल एक अनोखी बात का

'रानी केतकी की कहानी' से

एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गंवारी कुछ उसके बीच में न हो। अपने मिलने वालों में से एक कोई बड़े पढ़े-लिखे, पुराने-धुराने, डांग, बूढ़े घाग यह खटराग लाए। सिर हिलाकर, मुंह थुथाकर, नाक-भौं चढ़ाकर, आंखें फिराकर लगे कहने— यह बात होते दिखाईं नहीं देती। हिंदवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। बस जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं, ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छांह किसी की न हो, यह नहीं होने का। मैंने उनकी ठंडी सांस का टहोका खाकर भुँभलाकर कहा—मैं कुछ ऐसा बढ़-बोला नहीं जो राई को परबत कर दिखाऊं और झूठ सच बोलकर उंगलियां नचाऊं और बे-सिर बे-ठिकाने की उलझी-सुलझी बातें सुनाऊं। जो मुझसे न हो सकता तो यह बात मुँह से क्यों निकालता ? जिस ढब से होता, इस बखेड़े को टालता।

दूल्हा उदैभान सिंहासन पर बैठा और इधर-उधर राजा इंदर और जोगी महेंदर गिर जम गए और दूल्हा का बाप अपने बेटे के पीछे माला लिए कुछ गुनगुनाने लगा। और नाच लगा होने और अधर में जो उड़न-खटोले राजा इंदर के अखाड़े के थे सब उसी रूप से छत बांधे थिरका किये। दोनों महा-रानियां समधिन बन के आपस में मिलियां चलियां और देखने दाखने को कोठों पर चन्दन के किवाड़ों के आड़ तले आ बैठियां। सवांग संगीत भंडताल रहस हंसी होने लगी। जितनी राग रागिनियां थीं, ईमन कल्यान, सुध कल्यान, झिंझोटी, कन्हाड़ा, खम्माच, सोहनी, परज, बिहाग, सोरठ, कालंगड़ा, भैरवी गीत, ललित भैरों रूप पकड़े हुए सचमुच के जैसे गाने वाले होते हैं, उसी रूप

में अपने अपने समय पर गाने लगे और गाने लगियां । उस नाच का जो ताव भाव रचावट के साथ हो, जिसका मुंह जो कह सके । जितने महाराजा जगत परकास के सुखचैन के घर थे, माधो विलास, रसधाम कृष्णनिवास, मच्छी भवन, चंद्र भवन सबके सब लप्पे लपेटे और सच्ची मोतियों की झालरें अपनी अपनी गांठ में समेटे हुए एक भेस के साथ मतवालों के बैठनेवालों के मुंह चूम रहे थे ।

बीचोंबीच उन सब घरों के एक आरसी धाम बना था जिसकी छत और किवाड़ और आंगन में आरसी छुट कहीं लकड़ी, ईंट, पत्थर की पुट एक उंगली के पोर बराबर न लगी थी । चांदनी का जोड़ा पहने जब रात घड़ी एक रह गई थी, तब रानी केतकी सी दुल्हन को उसी आरसी भवन में बैठाकर दूल्हा को बुला भेजा । कुंवर उदैभान कन्हैया सा बना हुआ सिर पर मुकुट धरे, सेहरा बांध उसी तड़ावे और जमघट के साथ चांद सा मुखड़ा लिए जा पहुंचा । जिस जिस ढब में बाह्मन और पंडित कहते गए और जो जो महाराजों में रीतें होती चली आईं थीं, उसी डौल से उसी रूप से भंवरी गंठजोड़ा हो लिया ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

बरसात

'चन्द्रावली नाटिका' से

कामिनी—सखी, देख बरसात भी अब की किस धूमधाम से आई है मानो कामदेव ने अबलाओं को निर्बल जानकर इनके जीतने को अपनी सेना भिजवाई है। धूम के चारों ओर से घूम-घूमकर बादल परे के परे जमाए बगपंगति का निशान उड़ाए लपलपाती नंगी तलवार सी बिजली चमकाते गरज-गरज कर डराते बान के समान पानी बरखा रहे हैं और इन दुष्टों का जी बढ़ाने को मोर करखा से कुछ अलग पुकार-पुकार गा रहे हैं। कुल की मरजाद ही पर इन निगोड़ों की चढ़ाई है। मनोरथों से कलेजा उमगा आता है और काम की उमंग जो अंग-अंग में भरी है उनके निकले बिना जी तिलमिलाता है। ऐसे बादलों को देखकर कौन लाज की चद्दर रख सकती है और कैसे पतिव्रत पाल सकती है।

महानिद्रा

'भारत-दुर्दशा' नाटक से

हा! भारतवर्ष को ऐसी मोह निद्रा ने घेरा है कि अब इसके उठने की आशा नहीं। सच है, जो जान-बूझकर सोता है उसे कौन जगा सकेगा? हा देव! तेरे विचित्र चरित्र हैं, जो कल राज करता था वह आज जूते में टांका उधार लगवाता है। कल जो हाथी पर सवार फिरते थे आज नंगे पांव बन-बन की धूल उड़ाते फिरते हैं। कल जिनके घर लड़के-लड़कियों के कोलाहल से कान नहीं दिया जाता था, आज उनका नाम लेवा और पानी देवा कोई नहीं बचा और कल जो घर अन्न, धन, पूत, लक्ष्मी हर तरह से भरे पूरे थे आज उन घरों में तू ने दिया बालने वाला भी नहीं छोड़ा। हा! जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, पाणिनि, शाक्यसिंह, बाणभट्ट, प्रभृति

कवियों के नाममात्र से अब भी सारे संसार में ऊंचा है, उस भारत की यह दुर्दशा ! जिस भारतवर्ष के राजा चंद्रगुप्त और अशोक का शासन रूम-रूस तक माना जाता था, उस भारत की यह दुर्दशा ! जिस भारत में राम, युधिष्ठिर, नल, हरिश्चंद्र, रतिदेव, शिवि इत्यादि पवित्र चरित्र के लोग हो गए हैं, उसकी यह दशा ! हाय, भारत भैया, उठो । देखो विद्या का सूर्य पश्चिम से उदय हुआ चला आता है । अब सोने का समय नहीं है । अंगरेज का राज्य पाकर भी न जगे तो कब जागोगे । मूर्खों के प्रचंड शासन के दिन गए, अब राजा ने प्रजा का स्वत्व पहिचाना । विद्या की चरचा फैल चली, सबको सब कुछ कहने-सुनने का अधिकार मिला, देश-विदेश से नई-नई विद्या और कारी-गरी आई । तुमको उस पर भी वही सीधी बातें, भांग के गोले, ग्रामगीत, वही बाल्य-विवाह, भूत-प्रेत की पूजा, जन्मपत्री की विधि ! वही थोड़े में सन्तोष, गप हांकने में प्रीति और सत्यानाशी चालें । हाय, अब भी भारत की यह दुर्दशा ! अरे अब क्या चिता पर सम्हलेगा भारत । भाई ! उठो, देखो, अब यह दुख नहीं सहा जाता, अरे कब तक बेसुध रहोगे । उठो, देखो, तुम्हारी संतानों का नाश हो गया । छिन्न-भिन्न होकर सब नरक की यातना भोगते हैं, उस पर भी नहीं चेतते । हाय ! मुझसे तो अब यह दशा नहीं देखी जाती । प्यारे जागो !

बालकृष्ण भट्ट

सहृदय-गोष्ठी

'बातचीत' से

सहृदय-गोष्ठी इसी का नाम है। सहृदय-गोष्ठी की बातचीत की यही तारीफ़ है कि बात करने वालों की लियाक़त अथवा पाण्डित्य का अभिमान या कपट कहीं एक बात में न प्रकट हो; वरन् जितने काम रसाभास पैदा करने वाले हों, सबों को बरकाते हुए चतुर सयाने अपनी बातचीत का उपक्रम रखते जो हमारे आधुनिक शुष्क पण्डितों की बातचीत में, जिसे शास्त्रार्थ कहते हैं, कभी आवेगा ही नहीं। मुर्ग और बटेर की लड़ाइयों की झपटा-झपटी के समान जिनकी नीरस कांव-कांव में सरस संलाप का तो चर्चा ही चलाना व्यर्थ है वरन् कपट और एक-दूसरे को अपने पाण्डित्य के प्रकाश से बाद में परास्त करने का संघर्ष आदि रसाभास की सामग्री वहां बहुतायत के साथ आपको मिलेगी। घण्टे भर तक कांव-कांव करते रहेंगे, तय कुछ न होगा। बड़ी-बड़ी कम्पनी और कारखाने आदि बड़े से बड़े काम इसी तरह पहले दो-चार दिली दोस्तों को बातचीत ही से शुरू किये गए, उपरान्त बढ़ते-बढ़ते यहां तक बढ़े कि हजारों मनुष्यों की उससे जीविका और लाखों की साल में आमदनी उसमें है। पच्चीस वर्ष के ऊपर वालों की बातचीत अवश्य ही कुछ-न-कुछ सारगर्भित होगी। अनुभव और दूरंदेशी से खाली न होगी और पच्चीस से नीचे वालों की बातचीत में यद्यपि अनुभव, दूरदर्शिता और गौरव नहीं पाया जाता, पर इसमें एक प्रकार का ऐसा दिलबहलाव और ताज़गी रहती है कि जिसकी मिठास उससे दस गुना अधिक चढ़ी-बढ़ी है।

यहां तक हमने बाहरी बातचीत का हाल लिखा, जिसमें दूसरे के शरीक होने की बहुत ही आवश्यकता है। बिना किसी दूसरे मनुष्य के हुए जो किसी तरह सम्भव नहीं है और जो दो ही तरह पर हो सकती है या तो कोई हमारे यहां कृपा करे या हमीं जाकर दूसरे को सरफ़राज करें। पर यह सब तो दुनियादारी है जिसमें कभी-कभी रसाभास होते देर नहीं लगती; क्योंकि जो

महाशय अपने यहां पधारे उनकी पूरी दिलजोई न हो सकी तो शिष्टाचार में त्रुटि हुई, अगर हमीं उनके यहां गये--पहले तो बिना बुलाये जाना ही अनादर का मूल है और जाने पर अपने मन-माफिक बर्ताव न किया गया, तो मानो एक-दूसरे प्रकार का नया घाव हुआ; इसलिए सबसे उत्तम प्रकार बातचीत करने का हम यही समझते हैं कि हम वह शक्ति अपने में पैदा कर सकें कि अपने-आप बात कर लिया करें। हमारी भीतरी मनोवृत्ति, जो प्रतिक्षण नये-नये रंग दिखलाया करती है और जो बाह्य प्रपंचात्मक संसार का एक बड़ा भारी आईना है, जिसमें जैसी चाहो वैसी सूरत देख लेना कुछ दुर्घट बात नहीं है; और जो एक ऐसा चमनिस्तान है जिसमें हर किस्म के बेल-बूटे खिले हुए हैं—इस चमनिस्तान की सैर क्या कम दिलबहलाव है? मित्रों का प्रेमालाप कभी इसकी सोलहवीं कला तक भी पहुंच सकता है? इसी सैर का नाम ध्यान या मनोयोग या चित्त का एकाग्र करना है, जिसका ध्यान एक-दो दिन का काम नहीं वरन् साल-दो साल के अभ्यास के उपरान्त यदि हम थोड़ा भी अपनी मनोवृत्ति स्थिर कर अवाक् हो अपने मन के साथ बातचीत कर सकें तो मानो अति भाग्य है। एक वाक्शक्तिमात्र के दमन से न जानिये कितने प्रकार का दमन हो गया। हमारी जिह्वा, जो कतरनी के समान सदा स्वच्छन्द चला करती है, उसे यदि हमने दबाकर अपने काबू में कर लिया तो क्रोधादि बड़े-बड़े अजेय शत्रुओं को बिना प्रयास जीत अपने वश कर डाला। इसलिए अवाक् रह अपने-आप बातचीत करने का यह साधन यावत् साधन का मूल है, शान्ति का परम पूज्य मन्दिर है, परमार्थ का एकमात्र सोपान है।

बालमुकुन्द गुप्त

लार्ड मिन्टो का स्वागत

'शिवशम्भु का चिट्ठा' से

भगवान करे श्रीमान इस विनय से प्रसन्न हों— मैं इस भारत देश की मट्टी से उत्पन्न होनेवाला, इसका अन्न, फल-मूल आदि खाकर प्राण धारण करने वाला मिल जाय तो कुछ भोजन करनेवाला नहीं तो उपवास कर जाने वाला, यदि कभी कुछ भंग प्राप्त हो जाय तो उसे पीकर प्रसन्न होने वाला, जवानी बिताकर बुढ़ापे की ओर फुर्ती से कदम बढ़ानेवाला और एक दिन प्राणविसर्जन करके इस मातृभूमि की वन्दनीय मिट्टी में मिलकर चिर शान्ति-लाभ करने की आशा रखने वाला शिवशम्भू शर्मा इस देश की प्रजा का अभिनन्दनपत्र लेकर श्रीमान की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। इस देश की प्रजा श्रीमान का हृदय से स्वागत करती है। आप उसके राजा के प्रतिनिधि होकर आये हैं। पांच साल तक इस देश की 30 करोड़ प्रजा के रक्षण पालन और शासन का भार राजा ने आपको सौंपा। इससे यहां की प्रजा आपको राजा के तुल्य मानकर आपका स्वागत करती है और आपके इस महान् पद पर प्रतिष्ठित होने के लिये हर्ष प्रकट करती है।

भाग्य से आप देश की प्रजा के शासक हुए हैं अर्थात् यहां की प्रजा की इच्छा से आप यहां के शासक नियत नहीं हुए। न यहां की प्रजा उस समय-तक आपके विषय में कुछ जानती थी जब कि उसने श्रीमान के इस नियोग की खबर सुनी। किसी को श्रीमान की ओर का कुछ भी गुमान न था। आप के नियोग की खबर इस देश में बिना मेघ की वर्षा की भाँति अचानक आ गिरी। अब भी यहां की प्रजा श्रीमानके विषय में कुछ नहीं समझी है, तथापि उसे आपके नियोग से हर्ष हुआ। आपको पाकर वह वैसी ही प्रसन्न हुई है जैसे डूबता थाह पाकर प्रसन्न होता है। उसने सोचा है कि आप तक पहुंच जानेसे उसकी सब विपदों की इति हो जायगी।

भाग्यवानों से कुछ न कुछ सम्बन्ध निकाल लेना संसार की चाल है। जो लोग श्रीमान तक पहुंच सके हैं उन्होंने श्रीमान से भी एक गहरा सम्बन्ध निकाल लिया है। वह लोग कहते हैं कि सौ साल पहले आपके बड़ों में से एक

महानुभाव यहां का शासन कर गये हैं इससे भारत का शासक होना आपके लिये कोई नई बात नहीं है। वह लोग साथ ही यह भी कहते हैं कि सौ साल पहलेवाले लार्ड मिन्टो बड़े प्रजापालक थे। प्रजा को प्रसन्न रखकर शासन करना चाहते थे। यह कहकर वह श्रीमान से भी अच्छे शासन और प्रजा रंजन की आशा जनाते हैं। पर यह सम्बन्ध बहुत दूरका है। सौ साल पहले की बात का कितना प्रभाव हो सकता है, नहीं कहा जा सकता। उस समय की प्रजा में से एक आदमी जीवित नहीं जो कुछ उस समय की आंखों देखी कह सके। फिर यह भी कुछ निश्चय नहीं कि श्रीमान अपने उस बड़े के शासन के विषय में वैसा ही विचार रखते हों जैसा यहां के लोग कहते हैं। यह भी निश्चय नहीं कि श्रीमान को सौ साल पहले की शासननीति पसन्द होगी या नहीं तथा उसका कैसा प्रभाव श्रीमान के चित्त पर है। हां, एक प्रभाव देखा कि श्रीमान के पूर्ववर्ती शासन ने अपने से सौ साल पहले के शासन की बात स्मरण करके उस समय की पोशाक में गवर्नमेंट हौस के भीतर एक नाच नाच डाला था।

जिस दिन श्रीमान ने इस राजधानी में पदार्पण करके इसका सौभाग्य बढ़ाया उस दिन प्रजा के कुछ लोगों ने सड़क के किनारों पर खड़े होकर श्रीमान को बड़ी कठिनाई से एक दृष्टि देख पाया। इसके लिये पुलिस पहरे-वालों की गाली, घूंसे और धक्के भी बरदाश्त किये। बस उन लोगों ने श्रीमान के श्रीमुख की एक झलक देख ली। कुछ कहने सुनने का अवसर उन्हें न मिला, न सहज में मिल सकता था। हुजूर ने किसी को बुलाकर कुछ पूछताछ न की न सही, उसका कुछ अरमान नहीं, पर जो लोग दौड़कर कुछ कहने सुनने की आशा से हुजूर के द्वार तक गये थे उन्हें भी उल्टे पाँव लौट आना पड़ा। ऐसी आशा अन्ततः प्रजा को आपसे न थी। इस समय वह अपनी आशा को खड़ा होने के लिये स्थान नहीं पाते हैं।

आशा मनुष्य को बहुत लुभाती है, विशेषकर दुर्बल को परम कष्ट देती है। श्रीमान ने इस देश में पदार्पण करके बम्बई में कहा और यहां भी एक बार कहा कि अपने शासनकाल में श्रीमान इस देश में सुख शान्ति बढ़ाना चाहते हैं। इससे यहां की प्रजा को बड़ी आशा हुई थी कि वह ताक से नीचे उतार ली जायगी, पर श्रीमान के दो एक कामों तथा कौंसिल के उत्तर ने उस आशा को ढीला कर डाला है, उसे ताक से उतारने का भरोसा भी नहीं रहा।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

उपेक्षिता उर्मिला

'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' से

हाय बाल्मीकि ! जनकपुरी में तुम उर्मिला को सिर्फ एक बार, वैवाहिक वधू वेश में, दिखाकर चुप हो बैठे । अयोध्या आने पर ससुराल में उसकी सुध यदि आपको न आई थी तो न सही, पर क्या लक्ष्मण के वनप्रयाण समय में भी उसके दुःखाश्रु मोचन करना आपको उचित न जंचा ? रामचन्द्र के राज्याभिषेक की जब तैयारियाँ हो रही थीं, जब राजान्तःपुर ही क्यों सारा नगर नन्दन बन रहा था, उस समय नवला उर्मिला कितनी खुशी मना रही थी, सो क्या आपने नहीं देखा ? अपने पति के परमाराध्य राम को राज्य-सिंहासन पर आसीन देख उर्मिला को कितना आनन्द होता, इसका अनुमान क्या आपने नहीं किया ? हाय वही उर्मिला एक घंटे बाद, राम-जानकी के साथ, निज पति को 14 वर्ष के लिए वन जाते देख, छिन्नमूल शाखा की तरह राजसदन की एकान्त कोठरी में भूमि पर लोटती हुई क्या आपके नयनगोचर न हुई ? फिर भी उसके लिए आपकी 'वचने दरिद्रता' ! उर्मिला वैदेही की छोटी बहिन थी । सो उसे बहिन का वियोग सहना पड़ा और प्राणाधार पति का भी वियोग सहना पड़ा, पर इतनी घोर दुःखिनी होने पर भी आपने दया न दिखाई । चलते समय लक्ष्मण को उसे एक बार आंख भर देख भी न लेने दिया । जिस दिन राम और लक्ष्मण, सीता देवी के साथ चलने लगे, जिस दिन उन्होंने अपने पुरत्याग से अयोध्या नगरी को अन्धकार में, नगरवासियों को दुःखोदधि में और पिता को मृत्यु-मुख में निपतित किया, उस दिन भी आपको उर्मिला याद न आई । उसकी क्या दशा थी, वह कहां पड़ी थी, सो कुछ भी आपने न सोचा । इतनी उपेक्षा !

तुलसीदास जी ने भी उर्मिला पर अन्याय किया है । आपने इस विषय में आदि-कवि का ही अनुकरण किया है । 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' लेकर जब रामचरितमानस की रचना करने की घोषणा की थी, तब यहां पर आदि-काव्य को ही अपने वचनों का आधार मानने की कोई वैसी जरूरत न थी ।

आपने भी चलते वक्त लक्ष्मण को उर्मिला से नहीं मिलने दिया। माता से मिलने के बाद झट कह दिया—

गये लषण जहं जानकिनाथा।

आपके इष्टदेव के अनन्य सेवक 'लषण' पर इतनी सख्ती क्यों ? अपने कमण्डलु के करुणावारि का एक भी बूंद आपने उर्मिला के लिए नहीं रक्खा। सारा का सारा कमण्डलु सीता को समर्पित कर दिया। एक ही चौपाई में उर्मिला की दशा का वर्णन कर देते अथवा उसी के मुंह से कुछ कहलाते।

हां, भवभूति ने इस विषय में कुछ कृपा की है। राम, लक्ष्मण और जानकी के बन से लौट आने पर भवभूति को बेचारी उर्मिला की एक बार याद आ गई है। चित्र-फलक पर उर्मिला को देखकर सीता ने लक्ष्मण से पूछा 'इयमप्यपरा का ?' अर्थात् लक्ष्मण, यह कौन है ? इस प्रकार देवर से पूछना कौतुक से खाली नहीं। इसमें सरसता है। लक्ष्मण इस बात को समझ गए। वे कुछ लज्जित होकर मन ही मन कहने लगे…उर्मिला को सीतादेवी पूछ रही हैं। उन्होंने सीता के प्रश्न का उत्तर दिए बिना ही उर्मिला के चित्र पर हाथ रख दिया। उनके हाथ से वह ढक गया। कैसे खेद की बात है कि उर्मिला का उज्ज्वल चरित्र-चित्र कवियों के द्वारा भी आज तक इसी तरह ढकता आया।

श्यामसुन्दर दास

साहित्य और समाज

'साहित्य और समाज' से

सामाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिए जो भाव सामग्री निकाल कर समाज को सौंपता है, उसी के संचित भण्डार का नाम साहित्य है। अतः किसी जाति के साहित्य को हम उस जाति की सामाजिक शक्ति या सभ्यता का निर्देशक कह सकते हैं। वह उसका प्रतिरूप, प्रतिच्छाया या प्रतिबिम्ब कहला सकता है। जैसी उसकी सामाजिक अवस्था होगी, वैसा ही उसका साहित्य होगा। किसी जाति के साहित्य को देखकर हम यह स्पष्ट बता सकते हैं कि उसकी सामाजिक अवस्था कैसी है; वह सभ्यता की सीढ़ी के किस डंडे तक चढ़ सकती है। साहित्य का मुख्य उद्देश्य विचारों के विधान तथा घटनाओं की स्मृति को संरक्षित रखना है। पहले-पहल अद्भुत बातों को देखने से जो मनोविकार उत्पन्न होते हैं, उन्हें वाणी द्वारा प्रदर्शित करने की स्फूर्ति होती है। धीरे-धीरे युद्धों के वर्णन, अद्भुत घटनाओं के उल्लेख और कर्मकाण्ड के विधानों तथा नियमों के निर्धारण में वाणी का विशेष स्थायी रूप में उपयोग होने लगता है। इस प्रकार वह सामाजिक जीवन का एक प्रधान अंश हो जाती है।

एक विचार को सुन या पढ़कर दूसरे विचार उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार विचारों की एक श्रृंखला बंध जाती है, जिससे साहित्य के विशेष-विशेष अंगों की सृष्टि होती है। मस्तिष्क को क्रियमाण रखने तथा उसके विकास और वृद्धि में सहायता पहुँचाने के लिए साहित्य-रूपी भोजन की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार का यह भोजन होगा, वैसी ही मस्तिष्क की स्थिति होगी। जैसे शरीर की स्थिति और वृद्धि के लिए अनुकूल आहार की अपेक्षा होती है; उसी प्रकार मस्तिष्क के विकास के लिए साहित्य का प्रयोजन होता है। मनुष्य के विचारों में प्राकृतिक अवस्था का बहुत भारी प्रभाव पड़ता है। शीत-प्रधान देशों में अपने को जीवित रखने के लिए निरन्तर परिश्रम करने की आवश्यकता रहती है। ऐसे देशों में रहने वाले मनुष्यों का सारा समय

अपनी रक्षा के उपायों के सोचने और उन्हीं का अवलम्बन करने में बीत जाता है। अतएव क्रम-क्रम से उन्हें सांसारिक बातों से अधिक ममता हो जाती है और वे अपने जीवन का उद्देश्य सांसारिक वैभव प्राप्त करना ही मानने लगते हैं।

जहां उसके प्रतिकूल अवस्था है, वहां आलस्य का प्राबल्य होता है। जब प्रकृति ने खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने का सब सामान प्रस्तुत कर दिया, तब फिर उसकी चिन्ता ही कहां रह जाती है। भारत-भूमि को प्रकृति-देवी का प्रिय और प्रकाण्ड क्रीड़ा-क्षेत्र समझना चाहिए। यहां सब ऋतुओं का आवागमन होता रहता है। जल की यहां प्रचुरता है। भूमि भी इतनी उर्वरा है कि सब खाद्य-पदार्थ यहां उत्पन्न हो सकते हैं। फिर इनकी चिन्ता यहां के निवासी कैसे कर सकते हैं? इस अवस्था में या तो सांसारिक बातों से हटकर मन जीवात्मा और परमात्मा की ओर लग जाता है, अथवा विलास-प्रियता में फंसकर इन्द्रियों का शिकार बन बैठता है। यही मुख्य कारण है कि यहां का साहित्य धार्मिक विचारों या शृंगार-रस के काव्यों से भरा हुआ है। अस्तु, जो कुछ मैंने अब तक निवेदन किया है, उससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मनुष्य की सामाजिक स्थिति के विकास में साहित्य का प्रधान योग रहता है।

रामचन्द्र शुक्ल

सुन्दर और असुन्दर

'कविता क्या है' निबन्ध से

सौन्दर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है। योरोपीय कला-समीक्षा की यह एक बड़ी ऊंची उड़ान या बड़ी दूर की कौड़ी समझी गई है। पर वास्तव में यह भाषा के गड़बड़झाले के सिवा और कुछ नहीं है। जैसे वीरकर्म से पृथक् वीरत्व कोई पदार्थ नहीं, वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक् सौंदर्य कोई पदार्थ नहीं। कुछ रूपरंग की वस्तुएं ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अन्तःसत्ता की यही तदाकार-परिणति सौंदर्य की अनुभूति है। इसके विपरीत कुछ रूप-रंग की वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनकी प्रतीति या जिनकी भावना हमारे मन में कुछ देर टिकने ही नहीं पाती और एक मानसिक आपत्ति-सी जान पड़ती है। जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार परिणति जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर कही जायगी। इस विवेचन से स्पष्ट है कि भीतर बाहर का भेद व्यर्थ है। जो भीतर है वही बाहर है।

यही बाहर हंसता-खेलता, रोता-गाता, खिलता-मुरझाता जगत् भीतर भी है जिसे हम मन कहते हैं। जिस प्रकार यह जगत् रूपमय और गतिमय है उसी प्रकार मन भी। मन भी रूप गति का संघात ही है। रूप मन और इन्द्रियों द्वारा संघटित है या वन और इन्द्रियां रूपों द्वारा इससे यहाँ प्रयोजन नहीं। हमें तो केवल यही कहना है कि हमें अपने मन का और अपनी सत्ता का बोध रूपात्मक ही होता है।

किसी वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से हमारी अपनी सत्ता के क्रोध का जितना ही अधिक तिरोभाव और हमारे मन की उस वस्तु के रूप में जितनी ही पूर्ण परिणति होगी उतनी ही बढ़ी हुई हमारी सौंदर्य की अनुभूति कही जायगी। जिस प्रकार की रूपरेखा या वर्णविन्यास से किसी को तदाकार परिणति होती है, उसी प्रकार की रूपरेखा या वर्णविन्यास उसके लिए सुन्दर

है। मनुष्यता की सामान्य भूमि पर पहुंची हुई संसार की सब सभ्य जातियों में सौंदर्य के सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हैं। भेद अधिकतर अनुभूति की मात्रा में पाया जाता है। न सुन्दर को कोई एकबारगी कुरूप कहता है और न बिलकुल कुरूप को सुन्दर। जैसा कि कहा जा चुका है, सौंदर्य का दर्शन मनुष्य मनुष्य ही में नहीं करता है, प्रत्युत पल्लव-गुम्फित पुष्पहास में, पक्षियों के पक्षजाल में, सिन्दूराभ सान्ध्य दिगंचल के हिरण्य-मेखला-मण्डित घन-खण्ड में, तुषारावृत तुंग-गिरि-शिखर में, चन्द्रकिरण से झलमलाते निर्झर में और न जाने कितनी वस्तुओं में वह सौंदर्य की झलक पाता है।

जिस सौन्दर्य की भावना में मग्न होकर मनुष्य अपनी पृथक् सत्ता की प्रतीति का विसर्जन करता है वह अवश्य एक दिव्य विभूति है। भक्त लोग अपनी उपासना या ध्यान में इसी विभूति का अवलम्बन करते हैं। तुलसी और सूर ऐसे सगुणोपासक भक्त राम और कृष्ण की सौन्दर्य-भावना में मग्न होकर ऐसी मंगल-दशा का अनुभव कर गए हैं जिसके सामने कैवल्य या मुक्ति की कामना का कहीं पता नहीं लगता।

कविता केवल वस्तुओं के ही रंग-रूप के सौन्दर्य की छटा नहीं दिखाती, प्रत्युत कर्म और मनोवृति के सौन्दर्य के भी अत्यन्त मार्मिक दृश्य सामने रखती है। वह जिस प्रकार विकसित कमल रमणी के मुखमंडल आदि का सौंन्दर्य मन में लाती है उसी प्रकार उदारता, वीरता, त्याग, दया, प्रेमोत्कर्ष इत्यादि कर्मों और मनोवृत्तियों का सौंन्दर्य भी मन में जमाती है। जिस प्रकार वह शव को नोचते हुए कुत्तों और शृगालों के वीभत्स व्यापार की झलक दिखाती है उसी प्रकार क्रूरों की हिंसावृत्ति और दुष्टों की ईर्ष्या आदि की कुरूपता से भी क्षुब्ध करती है। इस कुरूपता का अवस्थान सौंदर्य की पूर्ण और स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए ही समझना चाहिए। जिन मनोवृत्तियों का अधिकतर बुरा रूप हम संसार में देखा करते हैं उनका भी सुन्दर रूप कविता ढूंढ कर दिखाती है। दशवदन- निधनकारी राम के क्रोध के सौंदर्य पर कौन मोहित न होगा।

सुन्दर- और कुरूप काव्य में बस ये ही दो पक्ष हैं। भला-बुरा, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, मंगल-अमंगल, उपयोगी-अनुपयोगी...ये सब शब्द काव्यक्षेत्र के बाहर के हैं। ये नीति, धर्म-व्यवहार, अर्थशास्त्र आदि के शब्द हैं। शुद्ध काव्य क्षेत्र में न कोई बात भली कही जाती है न बुरी, न शुभ न अशुभ; न उपयोगी न अनुपयोगी। सब बातें केवल दो रूपों में दिखाई जाती हैं—सुन्दर और असुन्दर जिसे धार्मिक शुभ या मंगल कहता है, कवि उसके सौंदर्य-पक्ष पर आप

ही मुग्ध रहता है और दूसरों को भी मुग्ध करता है। जिसे धर्मज्ञ अपनी दृष्टि के अनुसार शुभ या मंगल समझता है, उसी को कवि अपनी दृष्टि के अनुसार सुन्दर कहता है। दृष्टिभेद अवश्य है। धार्मिक की दृष्टि जीव के कल्याण ,परलोक में सुख, भवबन्धन से मोक्ष आदि की ओर रहती है। पर कवि की दृष्टि इन सब बातों की ओर नहीं रहती। वह उधर देखता है जिधर सौंन्दर्य दिखाई पड़ता है।

प्रेमचन्द

गोदान

'गोदान' उपन्यास से

आज दस बजे ही से लू चलने लगी और दोपहर होते-होते तो आग बरस रही थी। होरी कंकड़ के झोवे उठा-उठा कर खदान से सड़क पर लाता था और गाड़ी पर लादता था। जब दोपहर की छुट्टी हुई, तो वह बेदम हो गया था। ऐसी थकान उसे कभी न हुई थी। उससे पांव तक न उठते थे। देह भीतर से झुलसी जा रही थी। उसने न स्नान ही किया, न चबेना। उसी थकान में अपना अंगोछा बिछाकर एक पेड़ के नीचे सो रहा; मगर प्यास के मारे कण्ठ सूखा जाता था। खाली पेट पानी पीना ठीक नहीं। उसने प्यास को रोकने की चेष्टा की; लेकिन प्रतिक्षण भीतर की दाह बढ़ती जाती थी। उस से न रहा गया। एक मज़दूर ने बाल्टी भर रखी थी और चबेना कर रहा था। होरी ने उठकर एक लोटा पानी खींच कर पिया और आकर लेट रहा; मगर आध घण्टे में उसे क़ै हो गयी और चेहरे पर मुर्दनी-सी छा गयी।

उस मज़दूर ने कहा—'कैसा जी है होरी भैया ?'

होरी के सिर में चक्कर आ रहा था। बोला—'कुछ नहीं, अच्छा हूं।'

यह कहते-कहते उसे फिर क़ै हुई और हाथ-पांव ठण्डे होने लगे। यह सिर में चक्कर क्यों आ रहा है ? आंखों के सामने जैसे अंधेरा छाया जाता है। उसकी आंखें बन्द हो गयीं और जीवन की सारी स्मृतियां सजीव होकर हृदय-पट पर आने लगीं; लेकिन बेक्रम, आगे की पीछे, पीछे की आगे, स्वप्नचित्रों की भांति बेमेल, विकृत और असम्बद्ध। वह सुखद बालपन आया, जब वह गुल्लियाँ खेलता था और मां की गोद में सोता था। फिर दुलहिन बनी हुई, लाल चुंदरी पहने धनिया उसको भोजन करा रही थी। फिर एक गाय का चित्र सामने आया, बिलकुल कामधेनु-सी। उसने उसका दूध दुहा और मंगल को पिला रहा था कि गाय एक देवी बन गयी और······।

उसी मज़दूर ने फिर पुकारा—'दोपहरी ढल गयी होरी, चलो झौवा उठाओ।'

होरी कुछ न बोला। उसके प्राण तो न जाने किस-किस लोक में उड़ रहे थे। उसकी देह जल रही थी, हाथ-पांव ठण्डे हो रहे थे। लू लग गयी थी।

उसके घर आदमी दौड़ाया गया। एक घण्टे में धनिया दौड़ी हुई आ पहुंची। शोभा और हीरा पीछे-पीछे खटोले की डोली बनाकर ला रहे थे।

धनिया ने होरी की देह छुई, तो उसका कलेजा सन-से हो गया। मुख कांतिहीन हो गया था।

कांपती हुई आवाज़ से बोली—'कैसा जी है तुम्हारा ?'

होरी ने अस्थिर आंखों से देखा और बोला—'तुम आ गये गोबर। मैंने मंगल के लिये गाय ले ली है। वह खड़ी है देखो।'

धनिया ने मौत की सूरत देखी थी। उसे पहचानती थी। उसे दबे पांव आते भी देखा था, आंधी की तरह भी देखा था। उसके सामने सास मरी, ससुर मरा, अपने दो बालक मरे, गांव के पचासों आदमी मरे। प्राण में एक धक्का-सा लगा। वह आधार जिस पर जीवन टिका हुआ था, जैसे खिसका जा रहा था, लेकिन नहीं, यह धैर्य का समय है, उसकी शंका निर्मूल है, लू लग गयी है, इसी से अचेत हो गये हैं।

उमड़ते हुए आंसुओं को रोककर बोली—'मेरी ओर देखो, मैं हूं; क्या मुझे नहीं पहचानते ?'

होरी की चेतना लौटी। मृत्यु समीप आ गयी थी; आग दहकने वाली थी, धुआं शान्त हो गया था। धनिया को दीन आंखों से देखा, दोनों कोनों से आंसू की दो बूंदें ढलक पड़ीं। क्षीण स्वर में बोला—'मेरा कहा-सुना माफ़ करना धनिया ! अब जाता हूं। गाय की लालसा मन में ही रह गयी। अब तो यहां के रुपए क्रिया करम में जायेंगे। रो मत धनिया, अब कब तक जिलायेगी ? सब दुर्दसा हो गयी। अब मरने दे।'

और उसकी आंखें फिर बन्द हो गयीं। उसी वक्त हीरा और शोभा डोली लेकर पहुंच गये। होरी को उठाकर डोली में लिटाया और गांव की ओर चले।

गांव में यह खबर हवा की तरह फैल गयी। सारा गांव जमा हो गया। होरी खाट पर पड़ा शायद सब-कुछ देखता था, सब-कुछ समझता था; पर ज़बान बन्द हो गयी। हां, उसकी आंखों से बहते हुए आंसू बतला रहे थे कि मोह का बन्धन तोड़ना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा, उसी के दु:ख का नाम तो मोह है। पाले हुए कर्त्तव्य और निपटाये हुए कामों का क्या मोह ? मोह तो उन अनाथों को छोड़े जाता है जिनके साथ हम अपना कर्त्तव्य न निभा सके; उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें······

मगर सब-कुछ समझकर भी धनिया आशा की मिटती हुई छाया को पकड़े हुए थी। आंखों से आंसू गिर रहे थे, मगर यन्त्र की भांति दौड़-दौड़कर कभी आम भूनकर पना बनाती, कभी होरी की देह में गेहूं की भूसी की मालिश करती। क्या करे, पैसे नहीं हैं, नहीं किसी को भेजकर डाक्टर बुलाती।

हीरा ने रोते हुए कहा—'भाभी, दिल कड़ा करो, गो-दान करा दो, दादा चले।'

धनिया ने उसकी ओर तिरस्कार की आंखों से देखा। अब वह दिल को और कितना कड़ा करे? अपने पति के प्रति उसका जो कर्म है, क्या वह उस को बताना पड़ेगा? जो जीवन का संगी था उसके नाम को रोना ही क्या उस का धर्म है?

और कई आवाजें आयीं—गो-दान करा दो अब यही समय है।

धनिया यन्त्र की भांति उठी, आज जो सुतली बेची थी उसके बीस आने पैसे लायी थी, पति के ठण्डे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली—'महाराज, घर में न गाय, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गो-दान है।'

और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

जयशंकर प्रसाद

भर्त्सना

'चन्द्रगुप्त' नाटक से

चाणक्य—चन्द्रगुप्त ! मैं ब्राह्मण हूं ! मेरा साम्राज्य करुणा का था, मेरा धर्म प्रेम का था। आनन्द-समुद्र में शान्ति-द्वीप का अधिवासी ब्राह्मण मैं, चन्द्र, सूर्य्य, नक्षत्र मेरे दीप थे, अनन्त आकाश वितान था, शस्यश्यामला कोमला विश्वम्भरा मेरी शय्या थी। बौद्धिक विनोद कर्म था, सन्तोष धन था। उस अपनी, ब्राह्मण की जन्मभूमि को छोड़कर कहां आ गया ! सौहार्द के स्थान पर कुचक्र; फूलों के प्रतिनिधि कांटे, प्रेम के स्थान में भय ! ज्ञानामृत के परिवर्तन में कुमंत्रणा। पतन और कहां तक हो सकता है ! ले लो मौर्य्य चन्द्रगुप्त ! अपना अधिकार, छीन लो। यह मेरा पुनर्जन्म होगा। मेरा जीवन राजनीतिक कुचक्रों से कुत्सित और कलंकित हो उठा है। किसी छाया-चित्र, किसी काल्पनिक महत्व के पीछे, भ्रमपूर्ण अनुसन्धान करता दौड़ रहा हूं ! शान्ति खो गई, स्वरूप विस्मृत हो गया। जान गया मैं कहां और कितने नीचे हूं।

प्रेममय स्मृति

'चन्द्रगुप्त' नाटक से

सुवा०—अकस्मात् जीवन-कानन में, एक राका-रजनी की छाया में छिप कर मधुर वसन्त घुस आता है। शरीर की सब क्यारियां हरी-भरी हो जाती हैं। सौन्दर्य का कोकिल—'कौन?' कहकर सबको रोकने-टोकने लगता है, आंसू-भरी स्मृतियाँ मकरंद-सी उसमें छिपी रहती हैं।

कार्ने०—**(उसे गले लगा कर)** आह सखी ! तुम तो कवि हो। तुम प्रेम करना जानती हो और जानती हो उसका रहस्य। तुमसे हमारी पटेगी। एलिस ! जा, पिताजी से कह दे, कि मैंने उस स्त्री को अपनी सखी बना लिया।

(एलिस का प्रस्थान)

सुवा०—राजकुमारी ! प्रेम में स्मृति का ही सुख है। एक टीस उठती है, वही तो प्रेम का प्राण है। आश्चर्य तो यह है कि प्रत्येक कुमारी के हृदय

में वह निवास करती है। पर, उसे सब प्रत्यक्ष नहीं कर सकतीं, सब को उसका मार्मिक अनुभव नहीं होता।

कार्नें०—तुम क्या कहती हो ?

सुवा०—वही स्त्री-जीवन का सत्य है। जो कहती है कि मैं नहीं जानती- वह दूसरे को धोखा तो देती ही है, अपने को भी प्रवंचित करती है ! धड़कते हुए रमणी-वक्ष पर हाथ रखकर उसी कम्पन में स्वर मिला कर कामदेव गाता है। और राजकुमारी ! वही काम-संगीत की तान सौन्दर्य की रंगीन लहर बनकर, युवतियों के मुख में लज्जा और स्वास्थ्य की लाली चढ़ाया करती है।

कार्नें०—सखी ! मदिरा की प्याली में तू स्वप्न-सी लहरों को मत आन्दोलित कर। स्मृति बड़ी निष्ठुर है। यदि प्रेम ही जीवन का सत्य है, तो संसार ज्वालामुखी है।

काव्य का स्वरूप

'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' से

काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है। विश्लेषणात्मक तर्कों से और विकल्प के आरोप से मिलन न होने के कारण आत्मा की मनन-क्रिया जो वाङ्मय रूप में अभिव्यक्त होती है, वह निः सन्देह प्राणमयी और सत्य के उभय लक्षण प्रेय और श्रेय दोनों से परिपूर्ण होती है।

इसी कारण हमारे साहित्य का आरम्भ काव्यमय है। वह एक द्रष्टा कवि का सुन्दर दर्शन है। संकल्पनात्मक मूल अनुभूति कहने से मेरा जो तात्पर्य है, उसे भी समझ लेना होगा। आत्मा की मनन-शक्ति की वह असाधारण अवस्था, जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पनात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है। कोई भी यह प्रश्न कर सकता है कि संकल्पनात्मक मन की सब अनुभूतियां श्रेय और प्रेय दोनों ही से पूर्ण होती हैं, इसमें क्या प्रमाण है ? किन्त इसीलिए साथ-ही-साथ असाधारण अवस्था का भी उल्लेख किया गया है। असाधारण अवस्था युगों की समष्टि अनुभूतियों में अन्तर्निहित रहती है; क्योंकि सत्य अथवा श्रेय ज्ञान कोई व्यक्तिगत सत्ता नहीं, वह एक शाश्वत चेतनता है, या चिन्मयी ज्ञान-धारा है, जो व्यक्तिगत स्थानीय केन्द्रों के नष्ट हो जाने पर भी निर्विशेष रूप से विद्यमान रहती है। प्रकाश की किरणों के समान भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के दपर्ण में प्रतिफलित होकर वह आलोक को सुन्दर और ऊर्ज्ज-स्वित बनाती है।

ज्ञान की जिस मनन-धारा का विकास पिछले काल में परम्परागत तर्कों के द्वारा एक दूसरे रूप में दिखायी देता है, उसे हेतु विद्या कहते हैं। किन्तु वैदिक-साहित्य के स्वरूप में ऊषा-सूक्त और नारदीय-सूक्त इत्यादि तथा उप-निषदों में अधिकांश संकल्पनात्मक प्रेरणाओं की अभिव्यक्ति है। इसी लिए कहा है—तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

वृन्दावनलाल वर्मा

वीरत्त्व का उद्रेक
'मृगनयनी' से

जहां भी रहूं इस प्यारी नदी की दमकती हुई कल्लोलिनी धार को अपने पास में रक्खूं । बाहर जाऊं तो क्या इसको बांधकर, समेटकर नहीं ले जाया जा सकता ? ऊंघती लहराती बालों को किसी कागज पर उतार लिया जाय । पहाड़ों की ऊंचाइयों को एक स्थल पर क्यों न इकट्ठा कर लूं ? बड़े-बड़े पेड़ों के बन्दनवार बना लिए जायं और डालियों पत्तों के साजों के झरोखे । उनमें से चांदी की कड़ियों वाली लहरों को नाचता हुआ देखा जाय और फिर गाऊं—जाग परी मैं पिय के जगाए ··लहरें चांदी और मोतियों के हार से पहने हुए इठलाती हुई नाचती रहेंगी, बन्दनवार सदा हरे रहेंगे, पत्तों की झिलमिलियां निरन्तर चांदनी की भीगी हुई चमक और फूलों की महक से लदी रहेंगी उसने सोचा । साथ ही स्मरण हो आया––यदि सिकन्दर या उस सरीखा कोई आ गया तो इनको फिर रोंद डालेगा । जिस भांति बनैले पशुओं की खेती की रक्षा तीर-कमान द्वारा होती है क्या उसी भांति इस नदी और उस जंगल पहाड़ की रक्षा उसी तीर-कमान से नहीं हो सकती ? परन्तु किसानों को यह सब सर्वनाश के लिये छोड़कर गिरि-कन्दराओं की शरण लेनी पड़ती है । राजा लोग अपने थोड़े से भाई बान्धवों को किसी गढ़ में बन्द करके लड़ते-लड़ते मर जाते हैं और उनकी स्त्रियां चिता में जलकर भस्म हो जाती हैं । क्या वे स्त्रियां तीर कमान चलाना नहीं जानती होंगी ? क्या इनके खेत नहीं होंगे जिनकी रखवाली करने के लिये उनको मचान पर तीर कमान और तलवार लेकर बैठना पड़ता हो ? उनके खेत नहीं होंगे, क्योंकि रानियां तो पर्दे में मुंह छिपाये बैठी रहती हैं । सुनती तो यही आई हूं परन्तु क्या उनके हाथ पैर इतने निकम्मे होते होंगे कि अपने ऊपर आंख और हाथ डालने वाले पुरुष को घूंसे से धरती न सुंघा सकें ? कैसी स्त्रियां होंगी ये । खाने को इतना और ऐसा अच्छा मिलते हुए भी मन उनके ऐसे मरियल !! चिता में जलकर मरें स्त्रियों पर हाथ डालने वाले !!! मैं तो कभी इस तरह नहीं मरने की ।

निन्नी ने सहसा दांत भींचे ।

उसको अपने विकार पर आश्चर्य हुआ । मुस्कराई और खेत के ऊंघते हुए पौधों पर दृष्टि फेरती हुई नदी की उर्मियों का चांदनी के साथ खेल देखने लगी ।

हवा और भी ठण्डी हो गई । पहाड़ की ऊंचाइयों, जंगल के विशाल वृक्षों के बन्दनवारों, बड़े-बड़े हरे पल्लवों के झरोखों, इन चमकीली-चंदीली लहरों और पतोखी की उन बोलियों को कैसे एक ही स्थल पर इकट्ठा किया जाय ? वह अधमुंदी आंखों सोचने लगी । अच्छा, बहुत-सी मिट्टी को सानकर उससे नदी, प्रवाह, पहाड़, वृक्ष, पल्लव, हूंगे, चने के लहराते हुये खेत बना लिए जायेंगे । मिट्टी के एक भवन में यह सब आ जायगा । और उस पतोखी की बोली ? मैं गाऊंगी – जाग परी जब···परन्तु विकल्प आगे न बढ़ा । झीम आई और माथा झूम गया, मचान के ढक्कन से धीरे से जाकर टिक गया ।

आधी घड़ी के उपरान्त उसको भासित हुआ मानो नदी की लहरों की कलकल से अटल के खुर्राटे जा टकराये हों । हड़बड़ाकर आंख खोली । देखा तो खेत के बीच में एक बड़ा सुअर चड़ाकों के साथ अन्न का संहार कर रहा है ।

निन्नी ने तीर-कमान सम्भालकर आसन जमाई । सांस साधकर लक्ष्य बांधा । तीर एक सर्र के साथ सूअर के एक बाजू को फोड़ कर गर्दन के पार आधा निकल गया । सूअर हुड़-हुड़ करके वहीं चक्कर खाने लगा । अटल जाग पड़ा । निन्नी ने कमान की डोर पर दूसरा तीर साध लिया था । कुछ क्षण उपरान्त सुअर समाप्त हो गया ।

अटल बोला, 'ऐसा अच्छा निशाना तो मैं भी नहीं ले सकता हूं ।'

'हूं ऊं । तुमसे ही तो सीखा है ।' निन्नी ने कहा ।

चतुरसेन शास्त्री

अवश नृत्य

'वैशाली की नगर-वधू' से

एकाएक आंख खुलने पर उसने देखा—उस सुरक्षित लताकुंज में एक प्रभावशाली पुरुष उसके सम्मुख खड़ा है। उसकी अवस्था तरुणाई का उल्लंघन करने लगी है—परन्तु उसका गौर वर्ण, तेजस्वी मुख सूर्य के समान देदीप्यमान है। उसके सघन काले बाल काकपक्ष के रूप में पीछे को संवारे हुए हैं। प्रशस्त वक्ष और प्रलम्ब पुष्ट बाहु बहुमूल्य दुकूल से आवृत हैं। अधोअंग में एक कोमल पीत कौशेय सुशोभित है। उसकी सघन काली मूछें उसके दर्शनीय मुख पर अद्भुत शोभा विस्तार कर रही हैं। कानों में हीरक कुण्डल और कण्ठ में गुलाबी आभा के असाधारण दुर्लभ मुक्ता सुशोभायमान हैं। उसके बड़े-बड़े काले चमकीले नेत्रों और उत्फुल्ल सरस ओष्ठों से आनन्द, विलास और प्रेम की अटूट धारा प्रवाहित हो रही है। उसके एक हाथ में महार्घ अप्रतिम वीणा है। अम्बपाली हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई। उसने आश्चर्यचकित होकर उस पुरुषपुंगव की ओर देखा। अनायास ही उस पर उस पुरुष का प्रभाव छा गया। वह अम्बपाली, जो आज तक किसी पुरुष से प्रभावित नहीं हुई थी, इस पुरुष को देख कर क्षण भर जड़-स्तम्भित रह गई। पुरुष ने ही पहले कहा—

'जनपद कल्याणी देवी अम्बपाली प्रसन्न हों। क्या मैंने तुम्हारे इस एकान्त विश्राम में व्याघात करके तुम्हें रुष्ट कर दिया है?'

'नहीं, नहीं! परन्तु आप भन्ते, यहां इस सुरक्षित कोष्ठ में बिना अनुमति आ कैसे पहुंचे? क्या प्रहरी सो गए हैं? या आपने उन्हें अपनी माया से विमोहित कर दिया है?'

पुरुष ने हंसकर कहा—'नहीं कल्याणी, मैं अदृश्य होकर आकाशमार्ग से आया हूं। बेचारे प्रहरी मुझे देख नहीं सके।'

अम्बपाली आश्चर्य मूढ़ होकर बोली—'किन्तु आप हैं कौन भन्ते? क्या आप गन्धर्व हैं?'

'नहीं भद्रे, मैं मनुष्य हूँ !'

'परन्तु आपका ऐसा आगमन ?'

'मुझे सिद्धियां प्राप्त हैं। मैं लोपांजन विद्या और खेचर विद्या जानता हूं।'

अम्बपाली खड़ी हो गई। उसने पूछा—'आप साधारण पुरुष नहीं हैं महानुभाव, आप क्या कोई देव, दानव, यक्ष मुझे ठगने आए हैं ?'

'नहीं, जनपद कल्याणी, मैंने तुम्हारे अप्रतिम रूप, लावण्य, असह्य तेज, दर्प और लोकोत्तर प्रतिभा की चर्चा अपने देश में सुनी थी। इसी से, केवल तुम्हें देखने मैं बहुत दूर से छद्मवेश में आया हूं। अब मैंने जाना कि सुनी हुई बातों से भी प्रत्यक्ष बहुत बढ़कर है। तुम सी रूपसी बाला कदाचित् विश्व में दूसरी नहीं है।' अम्बपाली का कौतूहल कुछ कम हो गया था और उसका साहस लौट आया था। उसने अपने रूप-लावण्य की प्रशंसा सुन कहा— 'भन्ते, औरों की प्रशंसा करने और अपना गुप्त प्रेम प्रदर्शन करने में आप वैसे ही कुशल हैं, जैसे अदृश्य रूप से आकाश मार्ग द्वारा किसी स्त्री के एकान्त-आवास में पहुंच जाने में। किन्तु······।'

भद्र पुरुष ने महार्घ वीणा का आवरण उठाया। उस पर आश्चर्यजनक हाथी-दांत का काम हो रहा था और वह दिव्यवीणा साधारण वीणाओं से अद्भुत थी। अम्बपाली ने आश्चर्यचकित होकर कहा—

'निश्चय ही यह वीणा अद्भुत है। परन्तु भन्ते, आप मेरा मूल्य इससे आंकने का दुस्साहस मत कीजिए।'

'इसका तो अभी फैसला होगा, जब इस वीणावादन के साथ देवी अम्बपाली को अवश नृत्य करना होगा।'

'अवश नृत्य' ?

'निश्चय।'

'असम्भव।'

'निश्चय।'

आगन्तुक रहस्यमय पुरुष वहीं श्वेतमर्मर की पीठ पर बैठ गए। उन्होंने वीणा को झंकृत किया। अम्बपाली मूढ़वत् बैठी रही। एक ग्राम, दो ग्राम पर जब उस आश्चर्य पुरुष की उंगलियां नृत्य करने लगीं और वातावरण में वीणा का स्वर भर गया—तो अम्बपाली जैसे मत्त होने लगी। उसे अपने चारों ओर एक मूर्तिमान संगीत, एक प्रिय सुखस्पर्शी घोष, एक सुषमा से ओतप्रोत वातावरण प्रतीत होने लगा।

वीणा बज रही थी। उसकी गति तीव्र से तीव्रतर होती जा रही थी। अम्बपाली को ऐसा प्रतीत हो रहा था—तंतुवाद्य के कम्पन से जो स्वर-लहरी उत्पन्न हो रही है, वह उसके चर्मकूपों को भेद कर उसके रक्त में प्रविष्ट हो रक्त को उत्तप्त कर रही है। उसका मुंह लाल हो गया, नेत्रों में मद छा गया, गात्र कांपने लगा। वह अपनी सम्पूर्ण सावधानता से उस पुरुषपुंगव के असाधारण वीणावादनको विस्फारित नेत्रों से देखती रही।

एकाएक ही वादक ने उंगलियों की गति में हेरफेर किया और तब अम्बपाली ने मूढ़ होकर देखा—वीणा एक ही काल में तीन ग्रामों में बज रही है। ऐसा तो न देखा, न सुना था। कुछ ही क्षणों में अम्बपाली विवश हो गई। उसे प्रतीत हुआ, मानों उसके शरीर में रक्त के स्थान पर जलती हुई मदिरा बह रही है और अब वह स्थिर नहीं रह सकती। वह टकटकी बांध कर वीणा पर विद्युत वेग से थिरकती उंगलियों को देखते-देखते अचेत सी हो गईं। अब उसे ऐसा प्रतीत हुआ, उसका मृदुल गात्र ही वीणा के रूप में झंकृत हो रहा है। उसी अचेतावस्था में उसने उठकर नृत्य करना आरम्भ कर दिया। पहले मन्द, फिर तीव्र, फिर तीव्रतर और उन उंगलियों में और उन चरणों में प्रगति की होड़ बदी थी। नृत्य और वादन एकीभूत हो गया था। वादक की उंगलियां और नर्तकी के चरण-चाप एक मूर्त हो गए थे। कौन नृत्य कर रहा था, कौन वीणावादन और कौन उस अलौकिक दृश्य को देख सुन रहा है, यह नहीं कहा जा सकता था। धीरे-धीरे अम्बपाली अवश होने लगी और वादक की उंगलियां भी विराम पर आने लगीं। अम्बपाली धीरे से एक लता-गुल्म पर झुक गई और महापुरुष ने महार्घं वीणा रख कर उसे हाथों ही में उठा कर श्वेत मर्मर की पीठिका पर लिटा दिया।

राहुल सांकृत्यायन

हिमपात

10 जनवरी को सवेरे आकाश बिल्कुल निरभ्र था। हलका नीला रंग, जिसमें सूर्य और भी अधिक चमक रहा था। जमीन पर दो फुट बर्फ़ बिछी हुई थी मानो शंख-श्वेत छोटे दानेवाली चीनी बिछी हुई हो। मकानों की दीवारों को छोड़ कर भूमि का कोई अंश बर्फ़ से खाली नहीं था। बाड़ के लिए लगाई लोहे की जालियां हिम से मढ़ कर चांदी की बन गई थीं। तार भी रौप्यमय बन गए थे। देवदार, पद्म, बंज (ओक) जैसे ही कुछ वृक्ष हैं, जो यहां की सर्दी में अपने पत्तों को नहीं गिराते। देवदार का गहरा हरा रंग तो जाड़ों में और भी अधिक मोहक मालूम होता है, क्योंकि हरियाली की शोभा में वह सबसे बढ़कर है, और ऐसे काल में जबकि आँखें सब्ज़ी देखने के लिए तरसती हैं। देवदार दिन के 9 बजे भी हिममुक्त नहीं हुआ था। उसकी सुई जैसी पत्तियां अपने स्वाभाविक रंग को छोड़ कर रूपहली बन गई थीं और पत्ती सहित डालियां हाथ के पंजे की तरह बर्फ़ के लोदों से ढकी विचित्र-सी मालूम होती थीं। हमारे घर के सामने की आस्ट्रेलियन खजूर के सारे चौड़े पत्ते सफेद बर्फ़ के मोटे कंबल को ओढ़े मानो सर्दी के निवारण का प्रयत्न कर रहे थे। दूसरे दिन भी सबसे ऊपरवाला केवल एक पत्ता हिममुक्त हो पाया, बाकी पत्ते मोटी बर्फ़ की तह से अब भी ढके थे।

दरवाजे से चंडालगढ़ी की तरफ नज़र दौड़ाने पर एक अद्भुत दृश्य दिखाई देता था। कम्पनी बाग और ऊपरवाली पहाड़ी पर जो सीधे खड़े हरे हरे शिखरदार देवदार दिखाई पड़ते थे, वे सब सिर से पैर तक बर्फ़ से ढके कुछ दूसरे ही वृक्ष मालूम होते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि खंभों के सहारे विकराल मक्के की बालें लटकाई गई हैं या पृथिवी से स्वर्ग से रुपहले विचित्र देवदारु निकले हुए हैं। वे चारों तरफ श्वेतिमा से मढ़े होने के कारण जंगली वृक्षों की तरह सटे हुए नहीं, बल्कि एक-एक वृक्ष अलग अलग खड़ा मालूम होता था। श्वेत देवदारों और श्वेत भूमि के बीच में जहां-तहां मंसूरी के दुमंजिले-तिमंजिले घर खड़े थे। छतों पर हाथ-हाथ मोटी बर्फ़ थी। हमें तो

डर मालूम होने लगा था कि बर्फ़ के बोझ के मारे छत नीचे गिर पड़गी। सचमुच ही यदि सात-आठ इंच और हिमवृष्टि होती, तो मसूरी के कितने ही घरों की छतें नीचे आ गई होतीं। मसूरी के बनाने वाले अंग्रेज थे, जिन्हें हिमवृष्टि का अनुभव था। यूरोप के मकानों की छतें दीवार से बहुत थोड़ा कोण बनाती खड़ी होती हैं, जिन पर बर्फ़ टिक नहीं सकती। अधिक कोण छोड़ने पर छतें हिम से बोझिल होने लगती हैं लेकिन फिर अपने ही बोझ के मारे बर्फ़ फिसल कर नीचे चली आती है।

पड़ती हुई बर्फ़ का दृश्य बड़ा मोहक होता है। जो बादल हरिद्वार और दिल्ली में पानी की बूंदे बरसाते हैं, वे ही बहुत ठण्ड पड़ने पर 6000 फुट के ऊपर की जगहों में बर्फ़ बन कर गिरने लगते हैं। मसूरी में भी आकाश का तापमान जब तक शून्य डिग्री (सैं०) से नीचे नहीं होता, बादल जलवृष्टि ही के रूप में उतरता है। आकाश का तापमान यदि हिमबिन्दु से नीचे हो, लेकिन पृथ्वी का तापमान उतना नीचा न हो, तो बर्फ़ के छोटे-बड़े कण पृथ्वी पर पहुँचते ही विलीन होकर जल बन जाते हैं। मसूरी में जलवृष्टि निम्न तापमान में बजरी (नरम छोटे-छोटे ओलों) का रूप लेती है। तापमान के और गिरने पर बजरी हिमकणों का रूप लेती है; और भी अधिक शीतलता आने पर हिम रुई के फायों का रूप लेती है। हलकी-सी हवा चल रही हो तो ये फाये हवा में तैरते हुए तिरछे चल कर भूमि पर उतरते हैं। हिमकणों या फायों के गिरने से पृथ्वी ढकने लगती है। यदि चांदनी रात में हिमवृष्टि हो रही हो तो दृश्य और भी सुन्दर होता है। चांदनी में हिमकणों या फायों का स्वरूप और रंग निखर आता है। चांदनी वैसी भी मोहक होती है, पर इस समय की चांदनी तो सचमुच ही अद्भुत होती है।

सियारामशरण गुप्त

आनन्द और वेदना

'गद्य संकलन' से

मनुष्य होने के कारण ही जीवन को हम अपार में, अनंत में, फैला हुआ देखना चाहते हैं। हमारी ऊंचाई साढ़े तीन हाथ की, हमारा शरीर मांसल, हमारे हाथ-पैर मजबूत—इन्हीं सब बातों को लेकर हम चुप नहीं रह सकते। समस्त की, संपूर्ण की, निश्शेष की अनुभूति अपने में किए बिना हमारी तृप्ति नहीं होती। जब तक हम अपने को सब ओर फैला न देंगे, तब तक हमारा मनुष्यत्व अधूरा रहेगा। इस अधूरेपन से निकलकर पूरे होने की चाहना में ही कवित्व का उदय है। हममें से कौन है, जिसके भीतर इसकी अखंड धारा प्रवाहित न हो! पृथ्वी में एक बित्ता ज़मीन ऐसी नहीं; जिसके तल में अथाह समुद्र नहीं पाया जाता। इसी तरह संसार में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं, जिसके भीतर कवित्व का यह अगाध रस लहराता नहीं मिलता। जितने काव्य, जितनी कविताएं, अब तक लिखी गई हैं, वे सब उसके सामने नगण्य हैं। ऐसी हैं, जैसे किसी अगाध में से कोई छोटा सोता फूट निकला हो।

पर शरीर से मनुष्य ससीम है। वह उसी को लिए बैठा रहे और शेष जो कुछ है उससे निज को विच्छिन्न कर ले तो हीन पड़ता है। यह उसे सुहा कैसे सकता है? अनजान में ही सही उसे अपनी कुलीनता का बोध है। उसे आभास-सा है कि निखिल के साथ उसका सीधा संबंध है। इसी से वह अपने को विराट में उपलब्ध करना चाहता है। इससे बिना जैसे वह अकेले में कहीं निर्वासित हो, निष्कासित हो। इसी से जब वह दूर तक फैली हुई स्वच्छ चांदनी को देखता है, तब क्या उछल नहीं पड़ता? तब क्या उसे यह बोध नहीं होता कि इसी तरह अमल-धवल होकर वह यहां, वहां और सब जगह बिछ नहीं गया है? तब क्या उसके भीतर के प्रकाश से सराबोर होकर मुंह से 'वाह! वाह!' एक दम निकल नहीं पड़ता? यह उल्लास किसी छंद में बंधा हो या न बंधा हो, यह एक उच्च कोटि की कविता है। चिरकाल के अनंत ओठों से घिसकर भी यह पुरानी नहीं पड़ी। इसी सहायता से मनुष्य पहुंच जाता है नक्षत्रलोक में, मिल जाता है मेघ मंडली में, लहरा उठता है

अथाह सागर में। कितनी ही दूरी हो, कितनी ही कठिनाई हो, उसे बाधक नहीं होती। वह अनुभव करता है कि सबके साथ वह एकरूप है। इसी से चाहता यह है कि वह वृक्षों में जाकर पल्लवित हो जाए, लताओं में मिलकर खिल उठे, नदी के बहाव में और घुमाव में दुर्गम और दुरूह की यात्रा ले कर। शरीर उसका ससीम है तो क्या हुआ ? हृदय और मन के पंख लगाकर वह कहीं भी उड़ जाता है। कहीं भी ज्ञात और अज्ञात के घर पहुंचकर अपनी आत्मीयता प्रकट करते हुए उसे हिचक नहीं होती।

जितना भी यह आनंद है, सब बाहरी है। अपना भी मनुष्य का कुछ होना चाहिए। निजी उसका कुछ न हो तो उसका गौरव गिर जाता है इसी से उसके पास अपनी भी व्यक्तिगत कुछ पूंजी है और यह है उसकी वेदना। वह आनंद प्रकाश है तो यह वेदना छाया। एक वह दिन है तो दूसरी यह रात अर्थात् एक के द्वारा हम दूसरे को पाते हैं। नहीं तो वह पाना पाना नहीं रह जाता। वेदना के घाट पर आकर ही आनंद की धारा तीर्थ-रूप होती है।

इसी से जब हम किसी की आंख में आँसू देखते हैं तो उसका खारीपन हमारे भीतर के किसी घाव में लगकर चुभता है। इसी से जब हम किसी का क्रंदन सुनते हैं तो हमें यह नहीं लगता कि यह किसी दूसरे का है। जान पड़ता है, हमारा अपना ही कुछ जैसे यह दूसरे के कंठ से निकल पड़ा हो। 'हम' और 'उस' की दीवार उस समय परदे की तरह खिसक जाती और 'हम' ही 'हम' रह जाते हैं। आनंद की उपलब्धि से वेदना की यह उपलब्धि श्रेष्ठ है।

बात यह है कि चांदनी की निर्मल धारा में जब हम नहाते हैं, तब हम आत्मीय के नाते उसकी शीतलता निस्संकोच ले लेते हैं। लेकर भी देने के लिए हमारे पास कुछ नहीं होता। हम कुछ दक्षिण पवन नहीं, जो उसके, उस चाँदनी के, कोमल विस्तार पर सुगंधि का लेपन कर सकें। हम न हों तब भी वह मलिन न पड़ जाएगी। पर किसी के आँसू या रुदन के विषय में ऐसा नहीं।

हम न हों, तो किसी के आँसुओं का मूल्य क्या ? जहां वे अपने में बरस रहे हैं, वहां तो पहले ही सागर या नद हिलोरें ले रहा है। हमारी मिट्टी में आकर ही किसी के आँसू सफल हैं। हमारे क्षेत्र में आकर ही वे संसार की हरियाली बढ़ाते हैं, फूल और सुगंधि बनकर हँसते और फैलते हैं। दूसरे का रुदन भी हमारे बिना अपना भार अपने आप नहीं झेल सकता। वह निरर्थक हो जाता है। जब वह हमारे भीतर के तंत्र को स्पर्श करता है, तभी उसमें से अपनी रागिनी निखरती है। इसी से वेदना को आनंद से श्रेष्ठ कहा है।

वह दो को एक करती है। उसके कारण हमारी छोटी सीमा टूटती है और हम विराट की ओर बढ़ते हैं और विराट हमारी ओर आता है।

आनंद और वेदना का यह महाकाव्य आदि काल से आज तक प्रत्येक मानव के भीतर रचित और संचित हो रहा है। सभी के सभी इसके कवि और सभी के सभी इसके रसिक और सभी के सभी इसके भोक्ता हैं। यह ठीक है कि कुछ छोटे होते हैं, उन्हें हम 'खद्योत सम' कहते हैं। यह इसलिए कि उनकी अभिव्यक्ति अपने आपके घेरे से आगे नहीं बढ़ती, उतनी के लिए भी उन्हें अंधेरा आवश्यक होता है। और कुछ बड़े होते हैं, ऐसे होते हैं कि उन्हें हम सूर और शशि कह कर अभिनंदित करते हैं। कुछ हो, जाति दोनों की विभिन्न नहीं। क्षण भी काल है और युग भी काल है।

यशपाल

आश्रय दो, आर्य !

'दिव्या' से

चारों दीपदण्डधारी कक्ष के चारों कोनों में खड़े हो गये। अंधियारा कक्ष प्रकाश से जगमगा उठा। दिव्या अप्सरा के वेश में भित्ति का सहारा लिये भूमि पर बैठी थी। मस्तक उठा कर उस ने आगन्तुकों की ओर देखा। वह निश्चल बैठी रही। द्वार से झांक रहा जन-समूह विस्मय में मौन था।

स्थिर नेत्र उठा कर दिव्या ने आचार्य से प्रश्न किया—"इस प्रताड़िता के लिये अब क्या आज्ञा है ?"

भूमि पर बैठी दिव्या के सम्मुख कंचुकी द्वारा बिछाया आसन ग्रहण कर आचार्य बोले—"देवी, तुम्हारा स्थान नर्तकी-वेश्या के आसन पर नहीं। तुम कुल कन्या हो। तुम्हारा स्थान कुल-वधू के आसन पर, कुल-माता के आसन पर है। आचार्य रुद्रधीर देवी को आचार्य कुल की महादेवी के आसन पर स्थान देने के प्रयोजन से उपस्थित हैं। देवी, अपना आसन स्वीकार कर आचार्य को कृतार्थ करो।"

निष्पलक दृष्टि आचार्य के मुख पर स्थिर किये दिव्या ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—"आचार्य, कुलवधू का आसन, कुलमाता का आसन, कुल महादेवी का आसन दुर्लभ सम्मान है। यह अकिंचन नारी उस आसन के सम्मुख आदर से मस्तक झुकाती है परन्तु आचार्य, कुलमाता और कुलमहादेवी निरादृत वेश्या की भांति स्वतन्त्र और आत्म-निर्भर नहीं हैं। ज्ञानी आचार्य, कुलवधू का सम्मान, कुलमाता का आदर और कुलमहादेवी का अधिकार आर्य पुरुष का प्रश्रय मात्र है। वह नारी का सम्मान नहीं उसे भोग करने वाले पराक्रमी पुरुष का सम्मान है। आर्य, अपनी इच्छा से अपने स्वत्व का त्याग करके ही नारी वह सम्मान प्राप्त कर सकती है। ज्ञानी आर्य, जिसने अपना स्वत्व ही त्याग दिया, वह क्या पा सकेगा ? आचार्य दासी को क्षमा करें। दासी हीन होकर भी आत्म-निर्भर रहेगी। स्वत्वहीन होकर वह जीवित नहीं रहेगी।"

आचार्य अपनी असीम क्षमता को असमर्थ अनुभव कर दिव्या की कठिन मूर्ति की ओर विवश दृष्टि किये मौन बैठे रहे।

उस समय आचार्य के आसन समीप आकर भिक्षु ने पुकारा—"आर्य, मैं तथागत का सेवक भिक्षु पृथुसेन समाज से प्रताड़ित नारी को तथागत की शरण में ग्रहण करने के लिये उपस्थित हूं।"

दीपदण्डों के प्रकाश में सम्मुख खड़े काषाय चीवरधारी भिक्षु का स्वर सुनकर और परिचय पाकर दिव्या के नेत्र फैल गये। एक कम्पन-सा उसके शरीर पर अनुभव हुआ। एक गहरे श्वास से उसका वक्ष ऊपर उठा और वह भिक्षु की ओर दृष्टि लगाये फिर निश्चल हो गई।

आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ उठा कर भिक्षु पृथुसेन बोला—"देवी, तथागत की कृपा से तुमने आसक्ति और मोह के भ्रम को जानने का अवसर पाया है। देवी, शान्ति वैभव में नहीं, शान्ति प्रभुता में नहीं, शान्ति तृप्ति में नहीं। देवी, चिरन्तन सुख केवल निर्वाण में है। देवी, संसार का कोई दुःख निर्वाण के आनन्द को क्षुब्ध नहीं कर सकता। देवी, संसार के पीड़ित समाज से प्रताड़ित बुद्ध की शरण में, धर्म की शरण में, संघ की शरण में शान्ति पाते हैं। देवी, उस अपार करुणा की शरण ग्रहण करो।"

क्षण भर के लिये मौन दिव्या की दृष्टि धुंधली हो गई। दीपदण्ड के प्रकाशित कक्ष में अधिकार और शक्ति की प्रतिमा महामात्य रुद्रधीर और काषाय चीवरधारी भिक्षु उसकी दृष्टि से लुप्त होकर मथुरापुरी के महाबोधि विहार के मुदे पटों के सम्मुख वृक्ष के नीचे, सन्तान गोद में लिये अशरण, आर्त-नारी भगवान बुद्ध धर्म और संघ से शरण की भिक्षा माँगती दिखाई देने लगी।

दिव्या के नेत्र पुनः दीप्त हो गये। कम्पित स्वर में दिव्या ने प्रश्न किया—"भन्ते, भिक्षु के धर्म में नारी का क्या स्थान है ?"

भिक्षु ने धीर स्वर में उत्तर दिया—"देवी, भिक्षु का धर्म निर्वाण है। नारी प्रवृत्ति का मार्ग है। भिक्षु के धर्म में नारी त्याज्य है।"

"भन्ते, अपने निर्वाण धर्म का पालन करें"—दिव्या ने मन्द परन्तु दृढ़ स्वर में उत्तर दिया, "नारी का धर्म निर्वाण नहीं, सृष्टि है। भिक्षु उसे अपने मार्ग पर जाने दें।"

अवसर पाकर पूर्व देश से आये पथिक ने भिक्षु के समीप आकर पुकारा "मैं मारिश, देवी के सामीप्य के लिये ही मथुरापुरी से सागल आया हूँ।"

दीपदण्ड के प्रकाश में दिव्या के नेत्र पुनः विस्मय और जिज्ञासा से फैल कर चमक उठे। धूलि-धूसरित पथिक बोला—"मारिश देवी को राजप्रासाद में महादेवी का आसन अर्पण नहीं कर सकता। मारिश देवी को निर्वाण के चिन्तन सुख का आश्वासन नहीं दे सकता। वह संसार के सुख-दुःख अनुभव करता है। अनुभूति और विचार ही उसकी शक्ति है। उस अनुभूति का ही आदान-प्रदान वह देवी से कर सकता है! वह संसार के धूलि-धूसरित मार्ग का पथिक है। उस मार्ग पर देवी के नारीत्व की कामना में वह अपना पुरुषत्व अर्पण करता है। वह आश्रय का आदान-प्रदान चाहता है। वह नश्वर जीवन में सन्तोष की अनुभूति दे सकता है।......सन्तति की परम्परा के रूप में मानव की अमरता दे सकता है।"

भूमि पर बैठी दिव्या ने भित्ति का आश्रय छोड़ दोनों बाहु फैला दिये। उसका स्वर आर्द्र हो गया—"आश्रय दो आर्य!"

जैनेन्द्र

कसौटी

'त्याग पत्र' उपन्यास से

जीवन एक परीक्षा है। कम से कम मैंने तो उसको यही बना लिया है। तुम आओगे, तो आ जाना। लेकिन मुझसे किसी बात की उम्मीद न करना। जिन लोगों के बीच बसी हूँ वे समाज की जूठन हैं। जूठन हैं और कौन जानता है कि वे जूठन होने योग्य भी नहीं हैं। लेकिन आखिर तो इन्सान हैं। और यह बात, जबकि उनके बीच पड़ी हूँ, मैं साफ देखती हूँ। मैं किसी भी और बात पर अब जिन्दा रहना नहीं चाहती, उनकी बुझती और जगती इन्सानियत के भरोसे ही रहना चाहती हूँ। दर-दर भटकी हूँ और मैंने सीखा कि दुर्जन लोगों की सद्भावना के सिवा मेरी कुछ और पूंजी नहीं हो सकती। किसी और बात के लिए जीने की मुझमें अब साध भी कोई नहीं रह गई है। मुझको ऐसा अनुभव हो रहा है कि इन लोगों में, जिन्हें दुर्जन कहा जाता है, कई तह पार कर वह भी तह रहती है कि उसको छू सकी तो दूध-सी श्वेत सद्भावना का सोता ही फूट निकलता है। इससे यह प्रतीति मेरे लिए उतनी कठिन नहीं रह गई है कि सबके अभ्यन्तर में परमात्मा है। वह सर्वान्तिर्यामी है। इससे मैं अभी यहां से टूटकर उखड़ना नहीं चाहती। क्यों चाहूं ? कहां सब कुछ नहीं है ?

"यहां क्या लाभ ?—तुम पूछोगे। लाभ बहुत हैं। यहां किसी को यह कहने का लोभ नहीं है कि वह सच्चरित्र है। यहां सच्चरित्रता के अर्थ में मानव का मूल्य नहीं जाना जाता। दुर्जनता ही मानो कीमती है। यहां उसी हिसाब से मानव की घट-बढ़ कीमत है। मैं मानती हूं कि यही रोग है, यही भयानक जड़ता है किन्तु लाभदायक भी है। इस जगह आकर यह असम्भव है कि कोई अपने को सच्चरित्र दिखाए, दिखाना चाहे या दिखा सके। यहां सदाचार का कुछ मूल्य ही नहीं है, अपेक्षा ही नहीं है बल्कि ऋण मूल्य है। अगर कहीं भीतर, बहुत मज्जा तक मैं, छिपा पशुता का कीड़ा है तो यहां वह ऊपर आ रहेगा। यहां छल असम्भव है, वह छल जो कि सभ्य समाज में जरूरी ही है। यहां तहजीब की मांग नहीं है, सभ्यता की आशा नहीं है। बेहयाई जितनी उघड़ी

सामने आवे उतनी यहां रसीली बनती है। बर्बरता को लाज का आवरण नहीं चाहिए, मनुष्य यहां खुलकर सगर्व पशु हो सकता है। जो नहीं हो सकता, उसको मनुष्यता में बट्टा समझा जाता है। इसलिए सच्चरित्र दीखनेवाला यहां नहीं टिक सकता। उसे मज्जा तक सच्चा होना होगा, तभी खैरियत है। जो बाहर हो, वही भीतर। भीतर पशु हो तो इस जलवायु में आकर बाहर की मनुष्यता एक क्षण नहीं ठहरेगी। मनुष्य हो, तो भीतर तक मनुष्य होना होगा। कलईवाला सदाचार यहां खुलकर उघड़ा रहता है। यहां खरा कंचन ही टिक सकता है, क्योंकि उसे जरूरत ही नहीं कि वह कहे कि मैं पीतल नहीं हूँ। यहां कंचन की मांग नहीं है, पीतल से परहेज नहीं है। इससे भीतर पीतल रखकर ऊपर कंचन दीखनेवाला लोभ यहां छन भर नहीं टिकता है। बल्कि यहां पीतल का मूल्य है। इससे सोने के धैर्य की यहां परीक्षा है। सच्चे कंचन की पक्की परख यहीं होगी। यह यहां की कसौटी है। मैं जानती हूँ कि जो इस कसौटी पर खरा हो सकता है, वह खरा है और वही प्रभु का प्यारा हो सकता है।"

मैं उनको प्रणाम करता हूँ

'त्याग पत्र' से

पूछता हूं, मानव के जीवन की गति क्या अंधी है? वह अप्रतिरोध्य है, पर अंधी है यह तो मैं नहीं मानूंगा। मानव चलता है, चलता जाता है और बूंद-बूंद दर्द इकट्ठा होकर उसके भीतर भरता जाता है। वही सार है, वही जमा हुआ दर्द मानव की मानख-मणि है, उसके प्रकाश में मानव का गतिपथ उज्ज्वल होगा। नहीं तो चारों ओर गहन वन है, किसी ओर मार्ग सूझता नहीं है और मानव अपनी क्षुधा-तृषा, राग-द्वेष, मान-मोह में भटकता फिरता है। यहां जाता है, वहां जाता है। पर असल में वह कहीं भी नहीं जाता, एक ही जगह पर अपने ही जुए में बंधा कोल्हू के बैल की तरह चक्कर मारता रहता है।

इतनी उम्र बिताकर बहुतों को मरते और बहुतों को जीते देखकर अगर मैं कुछ चाहता हूँ तो वह यह है कि भीतर का दर्द मेरा इष्ट हो। धन न चाहूं, मन चाहूं। धन मैल है, मन का दर्द पीयूष है। सत्य का निवास और कहीं नहीं है। उस दर्द की साभार स्वीकृति में से ज्ञान की और सत्य की ज्योति प्रकट होगी। अन्यथा सब ज्ञान ढकोसला है और सब सत्य की पुकार अहंकार है।

जो होता है उसके लिए दोष मैं किसे दूं ? विधाता को तो दोष दे नहीं सकता, क्योंकि उन तक मैं किसी प्रकार अपना धन्यवाद भी नहीं पहुंचा सकता। दोष दूं ही क्यों ? अगर मेरे मन में दोष उठे बिना नहीं रहता, तो उसे मैं किसी को भी क्यों दूँ, स्वयं ही क्यों न ले लूं ? मैं जान लूं कि चाहे कुछ भी हो, हमारा दुःख विधाता का ही दुःख है। पर जो जगत् की कठोरता का बोझ स्वेच्छापूर्वक अपने ऊपर उठाकर चुपचाप चले चलते हैं और फिर समय आने पर इस धरती माता से लगकर उसी भांति चुपचाप सो जाते हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूँ। मैं उनको अभागा ही कह लूंगा, पापी भी कह लूंगा; लेकिन मैं उनको प्रणाम करता हूँ।

बुआ का जो अन्त हुआ, उस पर मैं क्या सोचूं ? मैं कुछ नहीं सोचना चाहता। शायद जो हुआ, ठीक हुआ। ठीक इसलिए कि उसे अब किसी भी उपाय से बदला नहीं जा सकता। लेकिन इतना तो सोचा ही करता हूँ कि जो प्रेम उनसे मुझे प्राप्त हुआ था, वह क्या किसी भी भांति भूला जा सकता है और क्या वह स्वयं में इतना पवित्र नहीं है कि स्वर्ग के द्वार उसके समक्ष खुल जाएं ?

नन्ददुलारे बाजपेयी

छायावाद

छायावाद काव्य-प्रवाह हिन्दी में अब अपनी सुनिश्चित धारा बना चुका है। अब वह केवल विरोध की वस्तु नहीं है और न केवल वाचिक अभ्यर्थना का विषय रह गया है। अब तो उसकी सम्यक् समीक्षा और परीक्षा भी की जा सकती है। आरम्भ से ही अपनी छायात्मक निगूढ़ अभिव्यक्तियों के कारण छायावाद आध्यात्मिक काव्य कहा जा रहा था। पूर्ववर्ती भक्ति-काव्य की साकार वर्णनाओं के विपरीत इसकी निराकार पद्धति थी, किन्तु इसका यथार्थ स्वरूप अब तक स्पष्ट नहीं किया गया। छायावाद की पद्धति कबीर आदि की निर्गुण निराकार व्यंजनाओं से भिन्न तो है, सूफियों की पद्धति से भी पृथक् है। उक्त दोनों परम्पराएं प्रमुखतः आध्यात्मिक कही जा सकती हैं, यद्यपि सूफी कवियों ने लौकिक संस्कृति के निर्माण में भी कम सहायता नहीं दी। आधिभौतिक पक्ष में देखा जाये तो एक ओर उमर खैयाम और दूसरी ओर शेखसादी तथा भारत से जायसी आदि कवियों में बहुत बड़ा दृष्टिभेद है। इन सभी कवियों ने सामयिक संस्कृति और देशकाल की विचारधाराओं को भिन्न-भिन्न स्वरूपों में व्यक्त किया है उदाहरण के लिए उमर खैयाम की काव्य-धारा अदृष्ट, भाग्य या नियति के कठोर चक्र से भयभीत होकर उससे तटस्थ हो जाने का मानो आमंत्रण करती है। उनका काव्य ईरान और फारस की एकान्त वाटिकाओं और उपवनों में दो प्राणियों की प्रेम-परिचर्या का ही सरल आदर्श लेकर उपस्थित हुआ। सादी आदि की रचनाएं उनसे भिन्न वातावरण और विचार-क्रम का द्योतन करती हैं। जायसी आदि भारतीय सूफियों की कविता न तो उमर खैयाम का सा भाग्यवाद प्रवर्तित करती है और न दो प्राणियों के एकान्त जीवन और औपवनिक परिस्थितियों का प्रदर्शन करती है, न वह अरबी सूफियों की तरह इस्लाम की छत्रछाया में ही विकसित हुई है। व्यापक भारतीय जीवन और सौन्दर्य के अनेकानेक दृश्यों के बीच से होकर यह काव्य-धारा प्रवाहित हुई है। इस प्रकार देश, काल और विचार-क्रम में भेद होते हुए भी

सूफी काव्य मुख्यत: आध्यात्मिक कहा जाता है, क्योंकि उसका लक्ष्य, निराकार प्रेम की अनुभूति, सब में समान रूप से पाया जाता है। उसके लौकिक, देशकाल सापेक्ष और सांस्कृतिक पहलू प्रधान स्थान नहीं पा सके हैं, काव्य के प्राण प्रेम—अलौकिक प्रेम में ही अटके हैं।

कबीर आदि ज्ञानमार्गियों की आध्यात्मिकता तो एकदम स्पष्ट है। रहस्य-मय सत्ता की अभिव्यक्ति और मिथ्या संसार की सुदृढ़ धारणा उनके अध्यात्म के अविचल स्तम्भ हैं। आध्यात्मिक काव्य के लिए एक अखण्ड सत्ता का स्वीकार—वह प्रेममय हो, ज्ञानमय या आनन्दमय—जितना आवश्यक था, सांसारिक सत्ता या व्यावहारिक जीवन का अस्वीकार भी उतना ही अनिवार्य हो गया था। आध्यात्मिक या अध्यात्मवादी काव्य की यही विशेषता थी। साकारोपासक भक्तों ने भी राम-कृष्ण आदि के चरित्रों को अखण्ड अव्यय लीला, दिव्य और अलौकिक कहकर उसी कसौटी को स्वीकार किया है। संसार की प्राकृतिक किसी सत्ता की आत्यंतिक स्वीकृति सिद्धान्तत: वे भी नहीं करते। यह अवश्य मानना होगा कि साकारोपासक कवियों ने सांस्कृतिक, नैतिक और जीवन के व्यावहारिक पक्षों का विस्तृत दिग्दर्शन कराया है, किन्तु उनकी दृष्टि अलौकिक 'आदर्श' पर ही रही है। संसार की दृश्यमान् वास्त-विकता और तज्जन्य प्रगतियों से वे प्राय: दूर ही रहे हैं तथापि इन कवियों ने जीवन के बहुविध पक्षों का सौन्दर्य दिखाया और तत्कालीन संस्कृति के निर्माण में योग दिया। आदर्श और अलौकिक की भूमि पर वे व्यवहार और प्रत्यक्ष की इतनी चर्चा भी कर गए, यह कम नहीं। कबीर आदि निर्गुणियों ने भी आत्मा की व्यापक सत्ता घट घट में दिखायी और उसे पहचानने का आग्रह किया। साधन-रूप में उन्होंने सरल और त्यागमय जीवन की शिक्षा दी तथा जाति-पांति के भेदों का निषेध किया; किन्तु उनका लौकिक क्षेत्र साकारो-पासकों की अपेक्षा भी सीमित था, क्योंकि उनका अध्यात्म लोक से परे की वस्तु थी, जिसकी साधना तटस्थ और ऐकांतिक ही हो सकती थी।

महादेवी वर्मा

दीपशिखा (एकांश)

'चिन्तन के कुछ क्षण' से

जीवन के निश्चित बिन्दुओं को जोड़ने का कार्य हमारा मस्तिष्क कर लेता है, पर इस क्रम से बनी परिधि में सजीवता के रंग भरने की क्षमता हृदय में ही सम्भव है। काव्य या कला मानो इन दोनों का सन्धि-पत्र है; जिसके अनुसार बुद्धिवृत्ति झीने वायुमण्डल के समान बिना भार डाले हुए ही जीवन पर फैली रहती है और रागात्मिका वृत्ति उसके धरातल पर, सत्य को अनन्त रंगरूपों में चिर नवीन स्थिति देती रहती है। अतः कला का सत्य जीवन की परिधि में सौन्दर्य के समान माध्यम द्वारा व्यक्त अखण्ड सत्य है।

सौन्दर्य सम्बन्धी समस्या भी कुछ कम उलझी हुई नहीं है। बाह्य जगत अनेक रूपात्मक है और उन रूपों का सुन्दर तथा कुरूप में एक व्यावहारिक वर्गीकरण भी हो चुका है। क्या कला इस वर्गीकरण की परिधि में आने वाले सौन्दर्य को ही सत्य का माध्यम बना कर शेष को छोड़ दे? केवल बाह्य रेखाओं और रंगों का सामंजस्य ही सौन्दर्य कहा जावे तो प्रत्येक भूखण्ड का मानव-समाज ही नहीं प्रत्येक व्यक्ति भी अपनी रुचि में दूसरे से भिन्न मिलेगा। किसके रुचि-वैचित्र्य के अनुसार सामंजस्य की परिभाषा बनाई जावे यह प्रश्न सत्य से भी अधिक जटिल हो उठेगा।

सत्य की प्राप्ति के लिए काव्य और कलाएं जिस सौन्दर्य का सहारा लेते हैं वह जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति पर आश्रित है, केवल बाह्य रूप-रेखा पर नहीं। प्रकृति का अनन्त वैभव, प्राणिजगत की अनेकात्मक गतिशीलता, अन्तर्जगत की रहस्यमयी विविधता सब-कुछ इनके सौन्दर्य-कोष के अन्तर्गत है और इसमें से क्षुद्रतम वस्तु के लिए भी ऐसे भारी मुहूर्त आ उपस्थित होते हैं जिनमें वह पर्वत के समकक्ष खड़ी होकर ही सफल हो सकती है और गुरुतम वस्तु के लिए भी ऐसे लघु क्षण आ पहुंचते हैं जिनमें वह छोटे तृण के साथ बैठकर ही कृतार्थ हो सकती है।

महादेवी वर्मा

रामा-एक रेखा चित्र

'अतीत के चलचित्र' से

साँप के पेट जैसी सफ़ेद हथेली और पेड़ की टेढ़ी-मेढ़ी गाँठदार टहनियों जैसी उँगलियों वाले हाथ की रेखा-रेखा हमारी जानी-बूझी थी, क्योंकि मुँह धोने से लेकर सोने के समय तक हमारा उससे जो विग्रह चलता रहता था, उसकी स्थायी संधि केवल कहानी सुनते समय होती थी। दस भिन्न दिशाएँ खोजती हुई उंगलियों के बिखरे कुटुंब को बड़े-बूढ़े के समान सँभाले हुए काले स्थूल पैरों की आहट तक हम जान गये थे क्योंकि कोई नटखटपन करके हौले से भागने पर भी वे मानो पंख लगाकर हमारे छिपने के स्थान में जा पहुँचते थे।

शैशव की स्मृतियों में एक विचित्रता है। जब हमारी भावप्रवणता गंभीर और प्रशांत होती है, तब अतीत की रेखाएँ कुहरे में से स्पष्ट होती हुई वस्तुओं के समान अनायास ही स्पष्ट से स्पष्टतर होने लगती हैं; पर जिस समय हम तर्क से उनकी उपयोगिता सिद्ध करके स्मरण करने बैठते हैं, उस समय पत्थर फेंकने से हटकर मिल जाने वाली, पानी की काई के समान विस्मृति उन्हें फिर-फिर ढक लेती है।

रामा के संकीर्ण माथे पर खूब घनी भौंहें और छोटी-छोटी स्नेहतरल आँखें कभी-कभी स्मृतिपट पर अंकित हो जाती हैं और कभी-कभी धुँधली होते-होते एकदम खो जाती हैं। किसी थके, झुँझलाये शिल्पी की अंतिम भूल जैसी अनगढ़ मोटी नाक, साँस के प्रवाह से फैले हुए-से नथुने, मुक्त हँसी से भरकर फूले हुए-से ओठ तथा काले पत्थर की प्याली में दही की याद दिलानेवाली सघन और सफेद दंतपंक्ति के संबंध में भी यही सत्य है।

रामा के बालों की तो आध इंच से अधिक बढ़ने का अधिकार ही नहीं था, इसी से उसकी लंबी शिखा को साम्य की दीक्षा देने के लिए हम कैंची लिये घूमते रहते थे। पर वह शिखा तो म्याऊँ का ठौर थी, क्योंकि न तो उस का स्वामी हमारे जागते हुए सोता था और न उसके जागते हुए हम ऐसे सदनुष्ठान का साहस कर सकते थे।

कदाचित् आज कहना होगा कि रामा कुरूप था; परन्तु तब उससे भव्य साथी की कल्पना भी हमें असह्य थी।

वास्तव में जीवन सौन्दर्य की आत्मा है; पर वह सामंजस्य की रेखाओं में जितनी मूर्तिमत्ता पाता है, उतनी विषमता में नहीं। जैसे-जैसे हम बाह्य रूपों की विविधता में उलझते जाते हैं, वैसे-वैसे मूलगत जीवन को भूलते जाते हैं। बालक स्थूल विविधता से विशेष परिचित नहीं होता, इसी से वह केवल जीवन को पहचानता है। जहां उसे जीवन से स्नेह-सद्भाव की किरणें फूटती जान पड़ती हैं, वहाँ वह व्यक्त विषम रेखाओं की उपेक्षा कर डालता है और जहां द्वेषघृणा आदि के धूम से जीवन ढका रहता है, वहां वह बाह्य सामंजस्य को भी ग्रहण नहीं करता।

हजारीप्रसाद द्विवेदी

मनुष्य की जीवन-धारा

'अशोक के फूल' से

मुझे मानव-जाति की दुर्दम-निर्मम धारा के हजारों वर्ष का रूप साफ दिखाई दे रहा है। मनुष्य की जीवनी-शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती-बहाती यह जीवन-धारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पाई है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सब कुछ में मिलावट है, सब-कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा (जीने की इच्छा)। वह गंगा की अबाधित-जनाहत धारा के समान सब-कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है। सभ्यता और संस्कृति का मोह क्षण-भर बाधा उपस्थित करता है, धर्माचार का संस्कार थोड़ी देर तक इस धारा से टक्कर लेता है, पर इस दुर्दम धारा में सब-कुछ बह जाते हैं। जितना कुछ इस जीवनी-शक्ति को समर्थ बनाता है उतना उसका अंग बन जाता है, बाकी फेंक दिया जाता है। धन्य हो महाकाल, तुमने कितनी बार मदन देवता का गर्व-खंडन किया है, धर्मराज के कारागार में क्रांति मचाई है, यमराज के निर्दय तारल्य को पी लिया है, विधाता के सर्वकर्त्तव्य के अभिमान को चूर्ण किया है। आज हमारे भीतर जो मोह है, संस्कृति और कला के नाम पर जो आसक्ति है, धर्माचार और सत्यनिष्ठा के नाम पर जो जड़िमा है, उसमें का कितना भाग तुम्हारे कुंठ-नृत्य से ध्वस्त हो जायगा, कौन जानता है। मनुष्य की जीवन-धारा फिर भी अपनी मस्तानी चाल से चलती जायगी। आज अशोक के पुष्प-स्तवकों को देखकर मेरा मन उदास हो गया है; कल न जाने किस वस्तु को देखकर किस सहृदय के हृदय में उदासी की रेखा खेल उठेगी। जिन बातों को मैं अत्यन्त मूल्यवान समझ रहा हूँ और जिनके प्रचार के लिए चिल्ला-चिल्लाकर गला सुखा रहा हूँ, उनमें कितनी जियेंगी और कितनी बह जायंगी; कौन जानता है।

आज जिसे हम बहुमूल्य संस्कृति मान रहे हैं, वह क्या ऐसी ही बनी रहेगी ? सम्राटों-सामंतों ने जिस आचार-निष्ठा को इतना मोहक और मादक रूप दिया था वह लुप्त हो गई; धर्माचार्यों ने जिस ज्ञान और वैराग्य को इतना महार्घ समझा था, वह समाप्त हो गया; मध्ययुग के मुसलमान रईसों के अनुकरण पर जो रस-राशि उमड़ी थी, वह वाष्प की भांति उड़ गई, तो क्या यह मध्ययुग के कंकाल में खिला हुआ व्यावसायिक-युग का कमल ऐसा ही बना रहेगा ? महाकाल के प्रत्येक पदाघात से धरती धसकेगी। उसके कुंठनृत्य की प्रत्येक चारिका कुछ-न-कुछ लपेटकर ले जायगी। सब बदलेगा, सब विकृत होगा—सब नवीन बनेगा।

आज उसके क्रीड़ापर्वत पर सुन्दरियां अपने वलय-ध्वनि के उन्मद मयूरों को नहीं नचा रही होंगी। आज उसके क्रीड़ा-सरोवर के मृदंग ने चक्रवाक-दम्पति को अकारण उत्कण्ठित नहीं किया होगा। आज अन्तःपुर की कुट्टिम-भूमि पादालक्तकों से लाल नहीं बन सकी होगी। आज 'मित्तियाओं के अंग-हारों ने महोत्सव को मंगलकलश से सुसज्जित-सा नहीं कर दिया होगा। आज चंचल चक्षुओं की किरणों से सारा दिन कृष्णसार मृगों से परिपूर्ण की भांति नहीं दिखेगा, भुज-लताओं के विक्षेप से जीवलोक मृणाल-वलय से वलयित नहीं जान पड़ेगा, शिरीष-कुसुम के स्तवकों के कर्णपूरों से अन्तःपुर की धूप शुक-पिच्छके रंग में नहीं रंगी होगी, शिथिल धम्मिल्ल से गिरे हुए तमाल-पत्रों ने अन्तरिक्ष को कज्जलायमान नहीं किया होगा, आभरणों के रणत्कार ने दिशाओं में किंकणी नहीं बांध दी होगी।

बाणभट्ट की आत्मकथा

कालिदास ने उज्जयिनी में प्रातःकाल जो दृश्य देखा था, वह मैं स्थाण्वीश्वर में मध्याह्न को देख रहा हूं। ठीक उसी प्रकार गमन के उत्कम्पवश यहां भी सुन्दरियों के केश से मन्दार-पुष्प झड़े हुए हैं, कान से सुनहरे कमल खिसक कर भू-लुंठित हो रहे हैं, हृदय-देश पर बार-बार आघात करनेवाले हारों से बड़े-बड़े गन्धराज-कुसुम टूट कर गिर गये हैं; परन्तु फिर भी मैं इसे प्रेमाभिसार का मार्ग नहीं समझ रहा हूं। इस रास्ते से उल्लास और उन्माद चाहे गये हों, अनुराग और औत्सुक्य नहीं गये। यह सब क्यों रहा है? यह क्या धर्म है? क्या न्याय है? मेरा चित्त कहता है कि कहीं-न-कहीं मनुष्य-समाज ने अवश्य गलती की है। यह उन्मत्त उत्सव, ये रासक गान, ये शृंगक-सीत्कार, ये अबीर-गुलाल, ये चर्चरी और पटह मनुष्य की किसी मानसिक दुर्बलता को छिपाने के लिये हैं, ये दुःख भुलाने वाली मदिरा है, ये हमारी मानसिक दुर्बलता के पर्दे हैं। इनका अस्तित्व सिद्ध करता है कि मनुष्य का मन रोगी है, उसकी चिन्ताधारा अविरल है, उसका पारस्परिक सम्बन्ध दुःखपूर्ण है।

रामधारीसिंह 'दिनकर'

भारतीय नवोत्थान

'संस्कृति के चार अध्याय' से

भारतीय नवोत्थान का एक प्रधान लक्षण अतीत की गहराइयों का अन्वीक्षण था। यूरोप के पास जो पूँजी थी, उसमें विज्ञान ही एक ऐसा तत्व था, जो भारत को नवीन लगा और जिसे भारत ने खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया। बाकी प्रत्येक दिशा में, भारत ने अपने अतीत की पूँजी टटोली और अपने प्राचीन ज्ञान को नवीन करके वह नए मार्ग पर अग्रसर होने लगा। अंग्रेजी भाषा में एक शब्द 'रिवाइवलिज़्म' है जो दूषित अर्थ देता है। जो भी व्यक्ति आज के सत्य को अनादृत करके भूतकाल की मरी हुई बातों को दुहराता है, उसे हम पुनर्जागरणवादी या रिवाइवलिस्ट कहते हैं और पुनर्जागरणवादी होना कोई अच्छा काम नहीं है। किन्तु, नवोत्थान में भी अतीत की बातें दुहरायी जाती हैं। जब नवोत्थान का समय आता है, जातियों के कुछ पुरातन सत्य दुबारा जन्म लेते हैं। यह पुनर्जागरण नहीं, सत्यों का पुनर्जन्म है। बहुत से सत्य ऐसे होते हैं, जो मिटना नहीं जानते, जो कुछ दिनों के लिए प्रच्छन्न तो हो जाते हैं, किन्तु समय पाकर जिन्हें मनुष्य फिर से प्राप्त कर लेता है। भारत में ऐसे सत्य वेदान्त के सत्य रहे हैं। जब जब भारत में नवोत्थान हुआ है, तब-तब वेदान्त की भूमिका मनुष्य के सामने प्रकाशित हो उठी है। वेदान्त ने बुद्ध का साथ दिया, वेदान्त ने शंकर को चमकाया, वेदान्त के आधार पर कबीर और नानक सत्य सिद्ध हुए और उसी वेदान्त की नई व्याख्या करके रामानुज ने भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। जब ईसाइयत और विज्ञान भारत पहुंचे और भारत को उनके स्वागत-सत्कार की व्यवस्था करनी पड़ी तब भारत ने एक बार फिर वेदान्त का सहारा लिया। जिस नवोत्थान का आरम्भ राममोहनराय, दयानन्द और विवेकानन्द ने किया था और जिसकी धारा में हम आज भी तैरते हुए आगे जा रहे हैं, वेदान्त उस आन्दोलन की रीढ़ है।

नवोत्थान का दूसरा प्रधान लक्षण निवृत्ति का त्याग था। कुश्ती का अखाड़ा यदि केवल धार्मिक रहा होता तो सम्भव था कि भारत इस बार भी निवृत्ति को नहीं छोड़ता क्योंकि उपनिषदों और बुद्ध के समय से यह ज़हर

उसकी नसों में बराबर उतारा जा रहा था और निवृत्तिवाद भारतीय स्वभाव का अंग हो गया था। किन्तु इस बार यूरोप के क्रान्तिकारी विचारों का भागीदार बन जाने के कारण, भारत पराधीनता के दाह को बेचैनी से अनुभव करने लगा था, और उसे यह अनुभव होने लगा था कि यूरोप की श्रेष्ठता का कारण केवल यही नहीं है कि उसके पास युद्ध के अधिक उन्नत शस्त्र हैं, बल्कि यह भी कि जीवन-विषयक उसका दृष्टिकोण प्रवृत्तिमय है। वह जीवन से भागकर अपना सुख नहीं खोजता, प्रत्युत, उसके भीतर पैठकर उसका उपयोग करता है। इस्लाम भी हिन्दुत्व की तुलना में प्रवृत्ति-मार्गी ही था, किन्तु, हिन्दुओं ने इस्लाम से प्रवृत्ति की शिक्षा नहीं ली थी, प्रत्युत इस्लाम का भी सूफी अंश ही हिन्दुओं को पसन्द आया था और यह सूफी अंश उतना ही निवृत्ति-प्रधान था, जितना हिन्दुओं का वेदान्त समझा जाता है, बल्कि, भारत में रहते-रहते निवृत्तिवाद का ज़हर अब इस्लाम में भी प्रवेश कर गया था। किन्तु अब जो हिन्दुत्व और इस्लाम यूरोप से टकराये तो उन्हें यह सोचने को बाध्य होना पड़ा कि निवृत्ति जीवन की सच्ची राह नहीं है। लेकिन, यहां भी यह आभास नहीं मिलता कि प्रवृत्ति को भारतवासियों ने नया दर्शन समझ कर अपनाया। नहीं, स्वामी विवेकानन्द और लोकमान्य तिलक ने वेदान्त और गीता की ही नई व्याख्या करके यह प्रतिपादन किया कि भारतीय वैदिक धर्म का मूल उपदेश निवृत्ति नहीं, प्रवृत्ति है। यह हिन्दुत्व की बात है। जीवन सत्य है, संसार सपना नहीं है, वैराग्य जीवन की पराजय को नहीं कहते हैं, तथा कर्माकर्म का विचार ऐसा नहीं होना चाहिए कि मनुष्य के इहलौकिक सुखों का ही नाश हो जाय। ये और ऐसे उपदेश इस काल के चिन्तकों के मुख से बार-बार सुनायी देते हैं। असल में, उन्नीसवीं सदी का नवोत्थान, भारत में प्रवृत्तिवाद का ही अनुपम उत्थान है। राममोहन, दयानन्द, रामकृष्ण, विवेकानन्द और लोकमान्य तिलक ने प्रवृत्ति पर इतना अधिक जोर दिया कि सारा हिन्दू दर्शन प्रवृत्ति के ही उत्स-सा दीखने लगा और संन्यास से गार्हस्थ्य को श्रेष्ठ समझने में जो बाधा थी, वह आप से आप क्षीण होने लगी।

अज्ञेय

फांसी

'शेखर : एक जीवनी' से

फांसी !

जिस जीवन को उत्पन्न करने में हमारे संसार की सारी शक्तियां, हमारे विकास, हमारे विज्ञान, हमारी सभ्यता द्वारा निर्मित सारी क्षमताएं या औजार असमर्थ हैं, उसी जीवन को छीन लेने में, उसी का विनाश करने में, ऐसी भोली हृदय-हीनता – फांसी !

फांसी, क्यों ? अपराधी को दण्ड देने के लिए । पर इससे क्या वह सुधर जायगा ? इससे क्या उसके अपराधों का मार्जन हो जायगा ? जो अमिट रेखा उसके हाथों में खिची है वह क्या उसके साथ मिट जायगी ? फांसी, दूसरों को शिक्षा देने के लिए । पर यह कैसी शिक्षा है कि जीवन के प्रति आदरभाव सिखाने के लिए उसी की घोर हृदयहीन उपेक्षा का प्रदर्शन किया जाय और उससे भी कभी कोई सीखा है····· मुझे तो फांसी की कल्पना सदा मुग्ध ही करती रही है—उसमें सांप की आंखों-सा एक अत्यन्त तुषारमय, किन्तु अमोघ सम्मोहन होता है······एक सम्मोहन, एक निमन्त्रण, जो कि प्रतिहिंसा के इस यन्त्र को भी कवितामय बना देता है, जो कि उस पर बलिदान होते हुए अभागे—या अतिशय भाग्यशाली – को जीवन की एक सिद्धि दे देता है, और उसके असमय अवसान को भी सम्पूर्ण कर देता है······

फांसी !

यौवन के ज्वार में समुद्र-शोषण ! सूर्योदय पर रजनी के उलझे हुए और घनी छायाओं में भरे कुन्तल । शारदीय नभ की छटा पर एक भीमकाय काला बरसाती बादल ! इस विरोध में, इस अचानक खण्डन में निहित अपूर्व भैरव कविता ही में इसकी सिद्धि है······

सिद्धि कैसी – काहे की ? मेरी मृत्यु की क्या सिद्धि होगी—मेरे जीवन की क्या थी ?

यवनिका उठती है और गिर जाती है । परदे आते हैं और बदल जाते हैं । किन्तु यवनिका का प्रत्येक आक्षेप, परदे का प्रत्येक परिवर्तन, अपने अवसान

में लीन होकर भी, नाटक के प्रवाह में एक बूंद और डाल देता है; एक बूंद जो स्वयं कुछ नहीं है किन्तु जिसके बिना उस प्रवाह में गति नहीं आ सकती, जिसके बिना उसका अस्तित्व ही नहीं हो सकता।

मैं अपने जीवन का प्रत्यावलोकन कर रहा हूं, अपने अतीत जीवन को दुबारा जी रहा हूं। मैं जो सदा आगे ही देखता रहा, अपनी जीवन-यात्रा के अन्तिम पड़ाव पर पहुंचकर पीछे देख रहा हूं कि मैं कहां से चलकर किधर-किधर भूल-भटक कर कैसे-कैसे विचित्र अनुभव प्राप्त करके यहाँ तक आया हूं और तब दीखता है कि मेरी भटकन में भी एक प्रेरणा थी, जिसमें अन्तिम विजय का अंकुर था, मेरे अनुभव-वैचित्र्य में भी एक विशेष रस की उपभोगेच्छा थी जो मेरा निर्देश कर रही थी। जीवन-यात्रा के पथ में जो पहाड़, तराइयां, नदी-नाले, झाड़-झंखाड़, आंधी-पानी आये उन सब में मेरे और केवल मेरे सम्बन्ध में एक ऐक्य था, जिसका ध्येय था किसी विशेष काल में, विशेष परिस्थिति में, विशेष स्थान पर, विशेष साधनों और उपायों से मेरे जीवन का विशेष रूप से समापन, जिससे उसे अपनी सिद्धि, अपनी सफलता, और अपनी सम्पूर्णता प्राप्त हो जाय···अब मैं अधूरा हूं, पर मुझमें कुछ भी न्यूनता नहीं है; अपूर्ण हूं, मेरी सम्पूर्णता के लिए कुछ भी जोड़ने को स्थान नहीं है।

सिवाय इस प्रत्यावलोकन के, शायद, जीवन-पथ के अन्तिम पड़ाव का पाथेय ही यही है, क्योंकि मुझे इससे, और इस भाव से, तृप्ति मिलती है···

डा० नगेन्द्र

रस सिद्धान्त

'रस सिद्धांत' से

शास्त्र-रूढ़ियों से मुक्त रस-सिद्धान्त अपने व्यापक एवं विकासशील रूप में काव्य का सार्वभौम सिद्धान्त है जिसके आधार पर प्रत्येक देश और प्रत्येक काल के सर्जनात्मक साहित्य का, सर्जनात्मक साहित्य की प्रत्येक विधा का उचित मूल्यांकन किया जाता है। इसकी प्रकल्पना इतनी सर्वांगीण है कि मानव-चेतना की मूल वृत्ति—राग—को धुरी बनाकर यह अन्य सभी प्रमुख तत्वों को उचित रूप में स्वीकार कर चलता है। अतः जीवन के समस्त रूपों तथा विविध मूल्यों के साथ रस-सिद्धान्त का पूर्ण सामंजस्य है जिसमें विभिन्न वादों के अन्तर्विरोध समाहित हो जाते हैं। कारण वास्तव में यह है कि रस-सिद्धान्त मानववाद के दृढ़ आधार पर प्रतिष्ठित है : यह मानव को उसकी देह और आत्मा, शक्ति और सीमा तथा समस्त रागद्वेष के साथ स्वीकार करता है, इसलिए मानव के अतीत, वर्तमान तथा भविष्य के साथ इसका अभिन्न सम्बन्ध है। जिस प्रकार मानववाद मानव को अन्तिम सत्य मानकर जीवन के विकास के साथ निरन्तर विकासशील है, उसी प्रकार मानव-संवेदना को चरम सत्य मानकर रस-सिद्धान्त भी निरन्तर विकासशील है। जैसे जैसे जीवन की गतिविधि बदलती जाती है, वैसे वैसे मानववाद की प्रकल्पना में भी संशोधन होता जाता है; ठीक इसी प्रकार जैसे जैसे साहित्य की गतिविधि में परिवर्तन होता जाता है, वैसे वैसे रस का स्वरूप भी व्यापक होता जाता है। जीवन की निरन्तर विकासशील धारणाओं और आवश्यकताओं का आकलन जिस प्रकार मानववाद में ही हो सकता है, इसी प्रकार साहित्य की विकासशील चेतना का परितोष भी रस-सिद्धान्त के द्वारा ही हो सकता है। जीवन की भूमिका में जब तक मानवता से महत्तर सत्य का आविर्भाव नहीं होता···और साहित्य की भूमिका में जब तक मानव-संवेदना से अधिक रमणीय सत्य की उद्‌भावना नहीं होती तब तक रस-सिद्धान्त से अधिक प्रामाणिक सिद्धान्त की प्रकल्पना भी नहीं की जा सकती।

कवि और आलोचक

'हिन्दी साहित्य' से

काव्य का विषय जीवन है पर कवि अपने विषय का सृजन नहीं करता, पुनःसृजन ही करता है। इसी तरह आलोचना का विषय काव्य है और आलोचक भी एक प्रकार से अपने आलोच्य विषय का पुनःसृजन करता है। सृजन के ही अर्थ में आलोचना-शास्त्र के अन्तर्गत एक और सरल शब्द का प्रयोग होता है और वह है आख्यान। काव्य की एक अत्यन्त परिचित परिभाषा है—काव्य जीवन का आख्यान है। इसी शब्द का प्रयोग करते हुए सीधे तौर पर कहा जा सकता है कि आलोचना काव्य का आख्यान है। यहां भी, स्पष्ट है कि आख्यान विवेचन मात्र का वाचक न होकर पुनःसृजन का ही वाचक है, अन्यथा 'काव्य जीवन का आख्यान है'—यह काव्य सही अर्थ खो बैठता है। आलोचना के सन्दर्भ में भी आख्यान वस्तु-विश्लेषण मात्र नहीं है, यहां भी पुनः सृजन की प्रक्रिया चलती है। भेद केवल दो हैं। पहला भेद कारण या साधन का है—अर्थात् कवि के साधनों में भावना और कल्पना प्रधान है, बुद्धि प्रायः संश्लेषण में ही सहायक होती है; जब कि आलोचक के कर्म में मूलतः भावना और कल्पना का सम्यक् उपयोग करते हुए भी बुद्धि अधिक सक्रिय रहती है। दूसरा भेद सृजन-शक्ति के बलाबल का है। कवि जीवन का पुनःसृजन करता है और आलोचना काव्य का अर्थात् जीवन के पुनःसृजन का पुनःसृजन करता है। सृजन का परिणाम है पदार्थ और पुनःसृजन का परिणाम है बिम्ब। अतएव कवि-व्यापार में बिम्ब-रचना का ही प्राधान्य रहता है। इस पद्धति से पुनःसृजन के पुनःसृजन का अर्थ होता है बिम्ब के भी बिम्ब=प्रतिबिम्ब का निर्माण, अर्थात् ऐसे बिम्ब का निर्माण जो रचना-प्रक्रिया में बिम्ब की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और धूमिल हो जाता है। इस प्रकार आलोचक का कर्म कवि-कर्म की अपेक्षा कम सर्जनात्मक रह जाता है, यह सच है। कवि-कर्म में जहां बिम्बों के प्रयोग की प्रचुरता रहती है वहां आलोचना में इन बिम्बों की धारणा या प्रत्यय अधिक उपयोग में आते हैं—और सही शब्दों में काव्य में ऐन्द्रिय-मानसिक बिम्ब प्रमुख रहते हैं जबकि आलोचना में मानसिक-प्रज्ञात्मक बिम्बों का अधिकांश रहता है।

फणीश्वरनाथ रेणु

कांचहि बांस के पिंजड़ा

'मैला आंचल' से

मठ सूना लगता है। जीवन में आज पहली बार लछमी समझ रही है महंथ साहेब की कीमत को।…नेत्रहीन हो गए थे, कुछ देख नहीं सकते थे, बिना रामदास के सहारे के एक पग चल भी नहीं सकते थे, किन्तु ऐसा लगता था कि मठ भरा हुआ है। बिना महंथ के मठ और बिना प्राण के काया !

कांचहि बांस के पिंजड़ा,
जा में दियरो न बाती हो,
अरे हंसा उड़ल आकाश,
कोई संगो न साथी हो !

…जो भी हो, संसार में सबसे बढ़कर लछमी को ही प्यार करते थे महंथ साहेब। चढ़ती जवानी में, सतगुरु साहेब की दया से, माया को जीतकर ब्रह्मचारी रहे। बुढ़ौती में तो आदमी की इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं; माया के प्रबल घात को नहीं संभाल सकती हैं। इसीलिए तो साधू-ब्रह्मचारी लोग बुढ़ापे में ही माया के बस में हो जाते हैं। यह तो महंथ साहेब का दोख नहीं। उसका भाग ही खराब है। यदि वह नहीं होती तो महंथ साहेब सतगुरु के रास्ते से नहीं डिगते। यह ध्रुव सत्त है। दोख तो लछमी का है। एक ब्रह्मचारी का धरम भ्रष्ट करने का पाप उसके माथे है। अब उसका अपना कौन है ? कोई नहीं ! …

"महंथ साहेब ! महंथ साहेब। हमको छोड़कर आप कहां चले गए ? दासी के अपराध को छिमा करना गुरु। जीवन में तुम्हारी कोई सेवा सुखी मन से नहीं कर सकी। मरने के समय भी तुमको सुख नहीं दे सकी प्रभु।… छिमा करो !"

जिन्दगी-भर के जमे हुए आंसू आज निकल जाना चाहते हैं, रोके रुकते नहीं "जयहिन्द कोठारिन जी !"

"दया सतगुरु के ! बलदेव जी, बैठिए !"

बालदेवजी सब भूल गए। लछमी को सांत्वना देने के लिए रास्ते में जितनी बातें सोची थीं, दोहा, कवित्त, सब भूल गए। उसे मायेजी याद आ जाती है। मायेजी का वह रूप…'गंगा रे जमुनवां की धार नयनवां से नीर बही।'

बालदेवजी की गढ़ी हुई ढाढ़स की बांध इस तेज धारा में नहीं टिक सकेगी। बालदेवजी की भी आंखें छलछला जाती हैं। फल्गू में भी बाढ़ आती है। वह दिल को मजबूत करके कहते हैं, "कोठारिनजी, सब परमेसर की माया है। हानि-लाभ जीवन-मरन जस-अपजस विधि हाथ।…हम तो सूरज उगने के पहले ही डागडर साहेब के साथ बाहर निकल गए थे। डागडर साहेब को गांव की चौहद्दी दिखलानी थी। दखिन संथालटोली से शुरु करके दुसाधटोली तक गली-कूची अगवारा-पिछवारा देखते-देखते दस बज गए। वहीं मालूम हुआ कि महंथ साहेब इंतकाल कर गए हैं। डागडर साहेब का भी मन उदास हो गया। वे इसपिताल लौट गए। बाकी टोली को कल देखेंगे।…आज रौतहट हाट में ढोल भी दिला देना है—इसपिताल खुल गया है। शोभन मोची को भेजकर हम यहां आए हैं।"

लछमी के आंसू थम चुके थे। बालदेवजी ठीक समय पर आ गए। महंथ साहेब बालदेवजी को बहुत प्यार करने लगे थे। पांच-सात दिनों की जान-पहचान में ही महंथ साहेब ने बालदेवजी को अच्छी तरह पहचान लिया था। रुपैया को बजाकर देखा जाता है और आदमी को एक ही बोली से पहचाना जाता है। महंथ साहब कहते थे, "सुद्ध विचार का आदमी है। संसकार बहुत अच्छा है।" इसके पहले महंत साहेब ने किसी पर इतना विश्वास नहीं किया था। मठ में रोज तरह-तरह के साधु-संन्यासी आते थे। महंथ साहेब रोज यह कहना नहीं भूलते थे—'लछमी ! इन लोगों का कोई विश्वास नहीं। रमता लोग हैं। इन लोगों से ज्यादा मिलना-जुलना अच्छा नहीं !' नई उमर के साधुओं को पैर की आहट से ही वे पहचान लेते थे। उनके अन्तर की दृष्टि बड़ी तेज थी। पिछले साल एक दिन सत्संग में एक नौजवान साधु आकर बैठ गया। रात में आया था, बराहछत्तर[1] जा रहा था।…उसके नैन बड़े चंचल ! सत्संग में बैठकर लछमी की ओर टकटकी लगाकर देखने लगा।

1. वराहक्षेत्र, एक तीर्थस्थान।

महंथ साहेब, 'साहेब बचन' सुना रहे थे। आखर[2] कहते-कहते अचानक रुक गए। बोले —'हो नौगछिया के नौजवान उदासी जी ! अरे साहेब, बचन पर धेयान दीजै जी ! लछमी के सरीर पर क्या नैन गड़ाए हैं। माटी का शरीर तो मिथ्या हैं, साहेब वचन सत्त !' ··बेचारा उदासी बिना 'बाल-भोग' किये ही आसन छोड़कर चला गया था। लेकिन, बालदेवजी पर उनका बड़ा विश्वास था।...'असल तेयागी यही लोग हैं लछमी !'

2. पंक्ति।

मोहनदास करमचंद गांधी

सत्य और अहिंसा

'सत्य और अहिंसा' से

साधारणतः सत्य का अर्थ सच बोलना मात्र ही समझा जाता है; लेकिन हमने विशाल अर्थ में सत्य शब्द का प्रयोग किया है। विचार में, वाणी में और आचार में सत्य का होना ही सत्य है। इस सत्य को संपूर्णतः समझानेवाले के लिए जगत में और कुछ जानना बाकी नहीं रहता। उसमें जो न समाए वह सत्य नहीं है, ज्ञान नही है। तब फिर उससे सच्चा आनंद तो हो ही कहां से सकता है? यदि हम इस कसौटी का उपयोग करना सीख जाएं तो हमें यह जानने में देर न लगे कि कौन प्रवृत्ति उचित है, कौन त्याज्य, क्या देखने योग्य है, क्या नहीं; क्या पढ़ने योग्य है, क्या नहीं।

सत्य की आराधना भक्ति है, और भक्ति 'सिर हथेली पर लेकर चलने का सौदा' है अथवा वह 'हरि का मार्ग' है, जिसमें कायरता की गुंजाइश नहीं है, जिसमें हार नाम की कोई चीज है ही नहीं। वह तो 'मरकर जीने का मंत्र' है। सब बालक-बड़े, स्त्री-पुरुष चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, खेलते-कूदते—सारे काम करते हुए यह रटन लगाये रहें और ऐसा करते-करते निर्दोष निद्रा लिया करें तो कितना अच्छा हो। यह सत्यरूपी परमेश्वर मेरे लिए रत्नचिन्तामणि सिद्ध हुआ है। हम सभी के लिए वैसा ही सिद्ध हो।

सत्य का, अहिंसा का मार्ग जितना सीधा है उतना ही तंग भी, खांड़े की धार पर चलने के समान है। नट जिस डोर पर सावधानी से नज़र रखकर चल सकता है, सत्य और अहिंसा की डोर उससे भी पतली है। ज़रा चूके कि नीचे गिरे। पल-पल साधना से ही उसके दर्शन होते हैं।

चोर हमें सताता है, उससे बचने को हमने उसे दंड दिया। उस वक्त के लिए तो वह भाग गया जरूर, लेकिन उसने दूसरी जगह जाकर सेंध लगाई। पर वह दूसरी जगह भी हमारी ही है। अतः हमने अंधेरी गली में ठोकर खाई। चोर का उपद्रव बढ़ता गया, क्योंकि उसने तो चोरी को कर्तव्य मान रखा है। इससे अच्छा तो हम यह ही पाते हैं कि चोर का उपद्रव सह लें, इससे चोर को समझ आएगी। इस सहन से हम देखते हैं कि चोर कोई हमसे भिन्न नहीं

है । हमारे लिए तो सब सगे हैं, मित्र हैं, उन्हें सजा देने की जरूरत नहीं है; लेकिन उपद्रव सहते जाना ही बस नहीं है । इससे तो कायरता पैदा होती है । अतः हमारा दूसरा विशेष धर्म सामने आया । यदि चोर अपना भाई-बिरादर है तो उसमें वह भावना पैदा करनी चाहिए । हमें उसे अपनाने का उपाय खोजने का तक का कष्ट सहने को तैयार होना चाहिए । यह अहिंसा का मार्ग है । इसमें उत्तरोत्तर दुःख उठाने की ही बात आती है, अटूट धैर्य-शिक्षा की बात आती है । यदि यह हो जाए तो अंत में चोर साहूकार बन जाता है और हमें सत्य के अधिक स्पष्ट दर्शन होते हैं । ऐसा करते हुए हम जगत को मित्र बनाना सीखते हैं; ईश्वर की, सत्य की महिमा अधिक समझते हैं । संकट सहते हुए भी शांति-सुख बढ़ता है; हममें साहस, हिम्मत बढ़ती है; हम शाश्वत-अशाश्वत का भेद अधिक समझने लगते हैं । हमें कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेक हो जाता है, गर्व गल जाता है, नम्रता बढ़ती है, परिग्रह अपने आप घट जाता है और देह के अंदर भरा हुआ मैल रोज-रोज कम होता जाता है ।

यह अहिंसा वह स्थूल वस्तु नहीं है जो आज हमारी दृष्टि के सामने है । किसी को न मारना, इतना तो है ही । कुविचारमात्र हिंसा है । उतावली हिंसा है । मिथ्या-भाषण हिंसा है । द्वेष हिंसा है । किसी का बुरा चाहना हिंसा है । जगत के लिए जो आवश्यक वस्तु है, उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है । पर हम जो कुछ खाते हैं वह जगत के लिए आवश्यक है । जहां खड़े हैं वहां सैकड़ों सूक्ष्म जीव पड़े पैरों तले कुचले जाते हैं, यह जगह उनकी है । फिर क्या आत्महत्या कर लें ? तो भी निस्तार नहीं है । विचार में देह के साथ संसर्ग छोड़ दें तो अंत में देह हमें छोड़ देगी । यह मोहरहित स्वरूप सत्यनारायण है । यह दर्शन अधीरता से नहीं होते । यह समझकर कि देह हमारी नहीं है, वह हमें मिली हुई धरोहर है, इसका उपयोग करते हुए हमें आगे बढ़ना चाहिए ।

इतना तो सबको समझ लेना चाहिए कि अहिंसा बिना सत्य की खोज असंभव है । अहिंसा और सत्य ऐसे ओतप्रोत हैं जैसे सिक्के के दोनों रूख या चिकनी चकती के दो पहलू । उसमें किसे उलटा कहें, किसे सीधा ? फिर अहिंसा को साधन और सत्य को साध्य मानना चाहिए । साधन अपने हाथ की बात है । इससे अहिंसा परमधर्म मानी गई । सत्य परमेश्वर हुआ । साधन की चिन्ता करते रहने पर साध्य के दर्शन किसी दिन कर ही लेंगे । इतना निश्चय करना, जग जीत लेना है । हमारे मार्ग में चाहे जो संकट

आएं, बाह्य दृष्टि से देखने पर हमारी चाहे जितनी हार होती दिखाई दे, तो भी हमें विश्वास न छोड़कर एक ही मंत्र जपना चाहिए—सत्य है, वही है, वही परमेश्वर है। उसके साक्षात्कार का एक ही मार्ग है, एक ही साधन अहिंसा है, उसे कभी न छोड़ेंगे। जिस सत्यरूप परमेश्वर के नाम पर यह प्रतिज्ञा की है, वह हमें इसके पालन का बल दे।

विनोबा भावे

प्रार्थना

ओम् असतो मा सद्गमय.
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्मा अमृतं गमय ॥

हे प्रभो, मुझे असत्य में से सत्य में ले जा । अंधकार में से प्रकाश में ले जा । मृत्यु में से अमृत में ले जा ।

इस मंत्र में हम कहाँ हैं, अर्थात् हमारा जीव-स्वरूप क्या है, और हमें कहाँ जाना है, अर्थात् हमारा शिव-स्वरूप क्या है, यह दिखाया है । हम असत्य में हैं, अंधकार में हैं, मृत्यु में हैं । यह हमारा जीव-स्वरूप है । हमें सत्य की ओर जाना है, प्रकाश की ओर जाना है, अमृतत्व को प्राप्त कर लेना है । यह हमारा शिव-स्वरूप है ।

'मुझे असत्य में से सत्य में ले जा,' ईश्वर से यह प्रार्थना करने के मानी हैं, "मैं असत्य में से सत्य की ओर जाने का बराबर प्रयत्न करूंगा,' इस तरह की एक प्रतिज्ञा सी करना । प्रयत्नवाद की प्रतिज्ञा के बिना प्रार्थना का कोई अर्थ ही नहीं रहता । यदि मैं प्रयत्न नहीं करता और चुप बैठा जाता हूं अथवा विरुद्ध दिशा में जाता हूं, और जबान से 'मुझे असत्य में से सत्य में ले जा' यह प्रार्थना किया करता हूं तो इससे क्या मिलने का ? नागपुर से कलकत्ते की ओर जानेवाली गाड़ी में बैठकर हम 'हे प्रभो, मुझे बंबई ले जा' की कितनी ही प्रार्थना करें, तो उसका क्या फायदा होना है ? असत्य से सत्य की ओर ले चलने की प्रार्थना करनी हो तो असत्य से सत्य की ओर जाने का प्रयत्न भी करना चाहिए । प्रयत्नहीन प्रार्थना प्रार्थना ही नहीं हो सकती । इसलिए ऐसी प्रार्थना करने में यह प्रतिज्ञा शामिल है कि मैं अपना रुख असत्य से सत्य की ओर करूंगा और अपनी शक्तिभर सत्य की ओर जाने का भरपूर प्रयत्न करूंगा ।

. प्रयत्न करना है तो फिर प्रार्थना क्यों ? प्रयत्न करना है, इसीलिए तो प्रार्थना चाहिए । मैं प्रयत्न करनेवाला हूं । पर फल मेरी मुट्ठी में थोड़े ही है । फल तो ईश्वर की इच्छा पर अवलंबित है । मैं प्रयत्न करके भी कितना

करूंगा। मेरी शक्ति कितनी अल्प है? ईश्वर की सहायता के बिना में अकेला क्या कर सकता हूं? मैं सत्य की ओर अपने कदम बढ़ाता रहूं तो भी ईश्वर की कृपा के बिना मैं मंज़िल पर नहीं पहुंच सकता। मैं रास्ता काटने का प्रयत्न तो करता हूं, पर अंत में मैं रास्ता काटूँगा कि बीच में मेरे पैर ही कटने वाले हैं, यह कौन कह सकता है? इसलिए अपने ही बलबूते में मंजिल पर पहुँच जाऊंगा, यह घमंड फिजूल है। काम का अधिकार मेरा है, पर फल ईश्वर के हाथ में है। इसलिए प्रयत्न के साथ-साथ ईश्वर की प्रार्थना आवश्यक है। प्रार्थना के संयोग से हमें बल मिलता है। यों कहो न कि अपने पास का संपूर्ण बल काम में लाकर और बल की ईश्वर से मांग करना, यही प्रार्थना का मतलब है।

प्रार्थना में दैववाद और प्रयत्नवाद का समन्वय है। दैववाद में पुरुषार्थ को अवकाश नहीं है, इससे वह बावला है। प्रयत्नवाद में निरहंकार वृत्ति नहीं है, इससे वह घमंडी है। फलतः दोनों ग्रहण नहीं किए जा सकते। किन्तु दोनों को छोड़ा भी नहीं जा सकता। कारण, दैववाद में जो नम्रता है, वह जरूरी है। प्रयत्नवाद में जो पराक्रम है, वह भी आवश्यक है। प्रार्थना इनका मेल साधती है। 'मुक्तसंगो नहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः' गीता में सात्विक कर्त्ता का यह जो लक्षण कहा गया है, उसमें प्रार्थना का रहस्य है। प्रार्थना मानी अहंकार-रहित प्रयत्न। सारांश, 'मुझे असत्य में से सत्य में ले जा' इस प्रार्थना का संपूर्ण अर्थ होगा कि 'मैं असत्य में से सत्य की ओर जाने का, अहंकार छोड़कर उत्साहपूर्वक सतत प्रयत्न करूंगा।' यह अर्थ ध्यान में रखकर हमें रोज प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए कि—हे प्रभो, तू मुझे असत्य में से सत्य में ले जा। अंधकार में से प्रकाश में ले जा। मृत्यु में से अमृत में ले जा।

अनुक्रमणिका

लेखक	पृष्ठ
अखौ (गुजराती)	379
अख्तर मुहिउद्दीन (कश्मीरी)	354
अत्रे, प्र० के० (मराठी)	740
अनन्तफंदी (मराठी)	718
अप्पर (तमिल)	473
अभिनन्द (संस्कृत)	947
अमरलाल हिंगोराणी (सिंधी)	1020
अमरुक (संस्कृत)	958
अमिय चक्रवर्ती (बंगाली)	695
अम्बिका गिरी राय चौधरी (असमिया)	111
अयोध्यासिंह, उपाध्याय 'हरिऔध' (हिन्दी)	1087
अरविन्द (अँग्रेजी)	26, 27, 28
अल्लम प्रभु (कन्नड़)	256
अल्लासानि पेद्दन्न (तेलुगु)	549
अह्-प-पेय्-सिद्धर (तमिल)	480
आण्डाल (तमिल)	476
आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव (गुजराती)	403
आबिद हुसैन डा० (उर्दू)	194
इक़बाल (उर्दू)	224
इन्दिरा संत (मराठी)	726
इलंगो अडिगल् (तमिल)	466
इलम् पेरूवाहुदि (तमिल)	457
उत्कलमणि गोप बन्धु दास (उड़िया)	167

लेखक	पृष्ठ
उपेन्द्र भंज, कवि सम्राट् (उड़िया)	146
कच्चियप्प शिवाचारियार (तमिल)	497
कडुवन् इलवेयिन नार् (तमिल)	459
कणियनपुङ कुनूर नार (तमिल)	458
कनकदास (कन्नड़)	268
कंबन (तमिल)	448
कलापी (गुजराती)	386
कपिलर् (तमिल)	455
कबीरदास (हिन्दी)	1061
कल्याण सुन्दरम्, वी (तमिल)	521
कविराजमार्ग (कन्नड़)	234
कन्दुकूरि वीरेशलिंगम्पंतुलु (तेलुगु)	578
काका कालेलकर (गुजराती)	414
काजी नज्रूल (बंगाली)	665
कान्त (गुजराती)	383
काप्पियाटरू-काप्नियनार् (तमिल)	459
कालमेघ पुलावर (तमिल)	502
कालिदास (संस्कृत)	920
किशोर लाल मशरूवाला (गुजराती)	417
कुदम्बै-स-सिद्दर (तमिल)	481
कु० वे० पुट्टप्पा (कन्नड़)	284
कुमार व्यास (कन्नड़)	265

लेखक	पृष्ठ
कुरुगुंडि मरुदनारे (तमिल)	456
कुलशेखर आलवार (तमिल)	477
कुलुवे वीरिराजु (तेलुगु)	574
कुसुमाग्रज (मराठी)	725
कूडलूर् कीज़ार (तमिल)	454
कृष्णमिश्र (संस्कृत)	947
कृष्ण राज़दान (कश्मीरी)	335
कृष्ण वारियर् (मलयालम)	774
केशवदास (हिन्दी)	1073
केलकर न० चि० (मराठी)	735
केशवसुत (मराठी)	727
कोंकण सिद्धर (तमिल)	480
कौल जिन्द (कश्मीरी)	340
गडकरी राम गणेश (मराठी)	736
गडियारम् वेंकटशेष शास्त्री (तेलुगु)	566
ग़ालिब (उर्दू)	220
गुण्डप्पा (कन्नड़)	282
गुरु अर्जुन देव (पंजाबी)	607
गुरु गोविंद सिंह (पंजाबी)	615
गुरु नानक देव (पंजाबी)	398
ग़ुलाम अहमद महजूर (कश्मीरी)	338
ग़ुलाम नबी ख़याल (कश्मीरी)	351
ग़ुलाम रसूल नाज़की (कश्मीरी)	353
ग़ुलाम हसन बेग 'आरिफ' (कश्मीरी)	343
गोकाक, वी० कृ० (कन्नड़)	293
गोपाल कृष्ण अडिग (कन्नड़)	295
गोपाल कृष्ण भारती (तमिल)	504
गोपीनाथ महन्ती (उड़िया)	170
घनानंद (हिन्दी)	1079

लेखक	पृष्ठ
चण्डीदास (बंगाली)	674
चतुरसेन शास्त्री (हिन्दी)	1158
चन्द्रकांत मेहता (गुजराती)	371
चन्द्रकुमार अग्रवाल (असमिया)	87,98
चन्द्र बरदाई (हिन्दी)	1049
चेमकुर वेंकट कवि (तेलुगु)	553
जगन्नाथ दास (कन्नड़)	269
जन्न (कन्नड़)	249
जयशंकर प्रसाद (हिन्दी)	1098
ज्योतिप्रसाद अग्रवाल (असमिया)	120
जवाहरलाल नेहरू (अंग्रेजी)	54
जावडेकर आचार्य, श० द० (मराठी)	738
ज़िन्द कौल (कश्मीरी)	340
ज़िया उल हसन फारुकी (उर्दू)	179
जीवनानन्द दास (बंगाली)	691
जेठमल परसराम (सिंधी)	1008
ज्ञानेश्वर, संत (मराठी)	713
झवेरचन्द मेघाणी (गुजराती)	391
डोम मोरेस (अंग्रेजी)	32
ताम्बे, भा० रा० (मराठी)	721
तिक्कन सोमयाजी (तेलुगु)	540
तिरुजान सम्बन्दर (तमिल)	473
तिरुपति व वेन्कटेश्वर कविद्वय (तेलुगु)	558
तिरुवल्लुवर (तमिल)	463
तिरुमूलर (तमिल)	479
तिलक, बा० ग० (मराठी)	733
तिर,-त्-तक्क देवकर (तमिल)	482
त्रिविक्रम (संस्कृत)	946

लेखक	पृष्ठ
तीरथ बसंत (सिंधी)	1016
तुलसीदास (हिन्दी)	1065
तोरु दत्त (अंग्रेजी)	12
दण्डिन् (संस्कृत)	975
दयाराम (गुजराती)	382
दयाराम गिदुमल शहाणी (सिंधी)	1001
'दर्शक' (गुजराती)	425
दर्शन सिंह मैनी (पंजाबी)	595
दास गुप्ता (बंगाली)	429
दीनानाथ 'नादिम' (कश्मीरी)	345
दुर्गसिंह (कन्नड़)	244
दुर्गेश्वर शर्मा (असमिया)	106
दुब्बुरि रामिरेड्डि (तेलुगु)	560
देवकान्त बरुआ (असमिया)	118
देवलपल्लि कृष्ण शास्त्री (तेलुगु)	570
देवुलपल्लि वेन्कटकृष्ण शास्त्री (तेलुगु)	569
धनीराम चात्रिक (पंजाबी)	627
कु० धीरूबेन पटेल (गुजराती)	433
नक्कीरर् (तमिल)	470
नगेन्द्र (हिन्दी)	1184
नज़ीर अकबराबादी (उर्दू)	228
नन्द दुलारे वाजपेयी (हिन्दी)	1174
नन्दलाल अंबारदार (कश्मीरी)	342
नन्द रिशी (कश्मीरी)	312
नन्हालाल (गुजराती)	388
नन्नय्य भट्ट (तेलुगु)	537
नरसिंहाचार (कन्नड़)	289
नरसिंह मेहता (गुजराती)	378
नलिनीबाला देवी (असमिया)	115
नलिम रावल (गुजराती)	396

लेखक	पृष्ठ
नागचन्द्र (कन्नड़)	247
नाच्चियार तिरुमोलि (तमिल)	476
नाजी नजरुल इस्लाम (बंगाली)	665
नम्मालवार (तमिल)	478
नारायणानन्द अवधूत स्वामी (उड़िया)	156
नारायणदास र० मलकाणी (सिंधी)	1011
नारायण पिल्ले, डा० के० के० (मलयालम)	745
नारायण श्याम (सिंधी)	1037
नालायिर (तमिल)	476
निरंजन भगत (गुजराती)	394
पतंजलि (योग सूत्र) (संस्कृत)	898
पटवर्धन, डा० डी० वी० (मराठी)	699
पंप (कन्नड़)	239
परमानंद (कश्मीरी)	323
परमानंद मेवाराम (सिंधी)	1003
परांजपे, शि० म० (मराठी)	374
परवस्तु चिन्नयम सूरि (तेलुगु)	576
पिंगलि व काटूरि कविद्वय (तेलुगु)	562
पी० लाल (अंगेज़ी)	33
पुरन्दर दास (कन्नड़)	267
पुष्कर भान (कश्मीरी)	365
पूरन सिंह (पंजाबी)	624
प्रियकान्त मणियार (गुजराती)	395
प्रेमचन्द (हिन्दी)	1150
बलवंत राय ठाकुर (गुजराती)	389
बाण (संस्कृत)	971, 973
बाल कवि (मराठी)	720

लेखक	पृष्ठ
बुद्धदेव बसु (बंगाली)	693
बेज्ज महादेवी (तेलुगु)	542
बुल्लेशाह (पंजाबी)	616
बेंद्रे (कन्नड़)	287
बोरकर (मराठी)	724
भर्तृहरि (संस्कृत)	951
भवभूति (संस्कृत)	939
भारवि (संस्कृत)	937
भाई वीर सिंह (पंजाबी)	618
भारतीदासन (तमिल)	
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (हिन्दी)	1082
भेरुमल मेहरचन्द (सिंधी)	1006
मक़बूल शाह (कश्मीरी)	326
मंगेश राव पंजे (कन्नड़)	280
मधुसूदन राव (उड़िया)	151
महमूद गामी (कश्मीरी)	320
महात्मा गांधी (गुजराती)	411
महादेव देसाई (गुजराती)	430
महादेवी वर्मा (हिन्दी)	1176
महावीर प्रसाद द्विवेदी (हिन्दी)	1143
महेश्वर नियोग (असमिया)	81
माधव देव (असमिया)	86, 88, 90, 91
मायाधर मानसिंह (उड़िया)	153
मिर्जा हादी रिसवा (उर्दू)	209
मीर (उर्दू)	229
मीर अम्मान (उर्दू)	219
मुगलि, आर० एस० (कन्नड़)	292
मुद्दण (कन्नड़)	253
मैथिलीशरण गुप्त (हिन्दी)	1090
मोरोपंत (मराठी)	719
मोहनदास कर्मचन्द गांधी (अंग्रेजी)	42
महादेवी यक्का (कन्नड़)	259
महिमभट्ट (संस्कृत)	946
माघ (संस्कृत)	938
यतीन्द्रनाथ दुवारा (असमिया)	107
यथावाक्कुल अन्नमय्य (तेलुगु)	555
यशवंत (मराठी)	722
रघुनाथ चौधरी (असमिया)	104
रत्न कान्त बरकाकति (असमिया)	113
रत्नाकर वर्णि (कन्नड़)	271
रन्न (कन्नड़)	239
रमणलाल बसंतलाल देसाई (गुजराती)	407
रवीन्द्रनाथ ठाकुर (अंग्रेजी)	17, 19, 38
रवीन्दनाथ ठाकुर (बंगला)	647
रसूल मीर (कश्मीरी)	334
रहमान (राही) (कश्मीरी)	348
राघवन, डा० वी० (संस्कृत)	
राघवांक (कन्नड़)	263
राजगोपालाचारी, चक्रवर्ती (अंग्रेजी)	59
राजरत्नम् (कन्नड़)	290
राजा राव (अंगेजी)	63
राजशेखर (संस्कृत)	945
राधाकृष्णन् सर्वपल्ली (अंगेजी)	49
राधानाथ राय, कविवर (उड़िया)	148
रामचन्द्र शुक्ल (हिंदी)	1147

लेखक	पृष्ठ
रामदास, सन्त (मराठी)	716
रामधारी सिंह दिनकर (हिन्दी)	1124
राम पंजवाणी, प्रोफेसर (सिंधी)	1014
राम प्रसाद सेन (बंगला)	664
रामराजभूषणुडु (तेलुगु)	551
लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ (असमिया)	99
लछमन रैना 'बुलबुल' (कश्मीरी)	329
लक्ष्मीनरसिंह राव (तेलुगु)	579
लल-द्यद (कश्मीरी)	310
लाल, पी० (अंग्रेजी)	33
लेखराज अज़ीज़ (सिंधी)	1033
बनलता सेन (बंगला)	691
वली उल्लाह मुतू (कश्मीरी)	322
विद्यापति (हिन्दी)	1052
विनोबा भावे, आचार्य (हिन्दी)	739
विभूति भूषण बंद्योपाध्याय (बंगला)	677
विवेकानंद स्वामी (बंगला)	34
विश्वनाथ सत्यनारायण (तेलुगु)	564
विशाखदत्त (संस्कृत)	944
विष्णु डे (बंगला)	667
विष्णु बुवा, ब्रह्मचारी (मराठी)	730
विष्णु शास्त्री चिपलूणकर (मराठी)	732
वेंकटावधानी डी० (तेलुगु)	547
व्यास कवि फकीरमोहन सेनापति (उड़िया)	160
शंकर देव (असमिया)	83,85
शिवदास (उड़िया)	158
श्रीकण्ठय्या (कन्नड़)	278
श्रीधर कन्दली (असमिया)	92
श्रीधर पाठक (हिन्दी)	1085
श्रीनाथ (तेलुगु)	545
श्रीनिवास (कन्नड़)	286
श्रीनिवास अयंगार, के० आर० (अंग्रेजी)	1
शुद्र मुनि सारलादास (उड़िया)	143
शूद्रक (संस्कृत)	936
शेख फरीद (पंजाबी)	596
श्यामसुन्दरदास (हिन्दी)	1132, 1145
सन्त एकनाथ (मराठी)	714
संत तुकाराम (मराठी)	715
संत ज्ञानेश्वर (मराठी)	713
सच्चिदानंद राउत राय (उड़िया)	155
सर्वज्ञ (कन्नड़)	274
सरोजनी नायडू (अंग्रेजी)	22, 24
सावरकर, वि० दा० (मराठी)	741
सियारामशरण गुप्त (हिन्दी)	1121
सुधीन्दनाथ दत्त (बंगला)	697
सुन्द्रम् (गुजराती)	390
सुमित्रानंदन पंत (हिन्दी)	1109
सुरेन्द्र महन्ती (उड़िया)	173
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (हिन्दी)	1103

लेखक	पृष्ठ
सूर्यकुमार भुइयां (असमिया)	109
सूरदास (हिन्दी)	1069
हजारी प्रसाद द्विवेदी (हिन्दी)	1177
हबीबुल्ला (कश्मीरी)	302
हरिहर (कन्नड)	261
हब्बा खातून (कश्मीरी)	314
हंसमुख पाठक (गुजराती)	396
हुंदराज दुखायल (सिंधी)	1034
हेमचन्द गोस्वामी (असमिया)	103